

हिन्दीविवेचनसमन्वित  
तत्त्वबोधविधायिनी टीकालङ्कृत

# ॥ सन्मति - तर्कप्रकरण ॥

खण्ड - ३



सूत्रकार :  
सिद्धसेन दिवाकरसूरि

वृत्तिकार :  
तर्कपञ्चानन अभयदेवसूरि

प्रकाशक  
दिव्यदर्शन ट्रस्ट, कलिकुण्ड  
धोलका - ३८७८१०



શ્રી ઉમરા શ્વે. મૂ. જૈન સંઘ મંડુજા



શ્રી પદ્મપ્રભસ્વામી ભગવાન  
ઉમરા (સૂરવ)



मेरा मुझ में कछु नाहीं, जो कुछ है सो तेरा ।  
तेरा तुझ को सोंपतें, क्या लागत है मेरा ॥

युवाशिविर के आद्यप्रणेता  
परम पूज्य भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा के  
चरणों में  
सादर समर्पण

श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः

श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरि विरचित

# सन्मति - तर्कप्रकरण

श्री तर्कपञ्चानन-वादिमुख्य-अभयदेवसूरि विरचिता

तत्त्वबोधविधायिनी वृत्ति

(प्रथमः काण्डः)

आ० जयसुंदरसूरि कृत

हिन्दी विवेचन

[ तृतीय खण्ड ]

आशिषदाता : न्यायविशारद आचार्यश्री विजयभुवनभानु सू. म.सा.  
एवं सिद्धान्तदिवाकर गच्छाधिपति आचार्यश्री विजय जयघोष सू.म.सा.

आर्थिक लाभार्थी : श्री उमरा जैन श्वे० मू० संघ, उमरा, सूरत-७

प्रकाशक : दिव्यदर्शन ट्रस्ट  
C/o, कुमारपाळ वि. शाह  
३९, कलिकुंड सोसायटी, कलिकुण्ड तीर्थ, धोळका - ३८७८१०, गुजरात

\* सा विद्या या विमुक्तये \*

प्रथमावृत्ति

विक्रमसंवत्-२०६७

वीर नि.सं.२५३६

प्रति ३००

## सन्मतितर्कप्रकरण

[सर्वाधिकार श्रमणप्रधान जैन संघ को स्वायत्त]

★ प्राप्तिस्थान ★

१. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, ३९, कलिकुंड सोसायटी, धोळका-३८७८१०
२. श्री भुवनभानुसूरि ज्ञानमंदिर -- दिव्य दर्शन ट्रस्ट, C/o कल्पेश वि. शाह  
२९, ३० वासुपूज्य बंगलोझ, फन रिपब्लिक के सामने, रामदेव नगर चार रस्ता,  
सेटेलाईट, अमदावाद. फोन : ०७९-२६८६०५३१
३. श्रेयस्कर अंधेरी गुजराती जैन संघ,  
श्री आदिपार्श्व जिनालय, जय आदिनाथ चोक, करमचंद जैन पौषधशाळा,  
एस.वि.रोड, इरला, विलेपार्ले (वे.), मुंबई-४०००५४

टाईपसेटिंग : श्री पार्श्व कोम्प्युटर्स, ५८ पटेल सोसायटी, जवाहर चोक, मणिनगर, अमदावाद-३८०००८

**आ.श्री भुवनभानुसूरिजन्मशताब्दीवर्ष**

परमोपकारी सुविशुद्धब्रह्ममूर्ति कर्मसाहित्यनिष्णात, चारित्रसम्राट  
सिद्धान्तमहोदधि सुविशालगच्छाधिपति सकलसंघसमाधिदाता प.पू. आचार्यदेव  
श्रीमद् विजय प्रेमसूरीधरजी म.सा. के चरणों में भावपूर्ण वन्दनावलि

**धन्यवाद-अभिनंदन**

वि.सं. २०६५ के चातुर्मासार्थ बिराजमान पू.आचार्य जयसुंदर सू. के बहुमानार्थ  
श्री उमरा जैन संघ-सूरत ने अपनी ज्ञाननिधि में से विशाल धनराशि का  
सद्व्यय किया है - एतदर्थ उस संघ को सहस्रशः धन्यवाद ।

## ❖ नूतन आवृत्ति के अवसर पर ❖

जैनशासन का एक अमूल्य शास्त्रग्रन्थरत्न 'सन्मति तर्कप्रकरण'। पू० हरिभद्रसूरिजी० के ले कर लघुहरिभद्र महो० यशोविजय एवं आ० श्री विजयानंदसूरिजी आदिअनेक जैन महापुरुषोंने इस ग्रन्थ का अध्ययन किया, इस ग्रन्थ की गाथाओं के उद्धरण अपने अपने ग्रन्थों में उद्धृत कर के इस ग्रन्थरत्न का गौरव बढ़ाया। इसग्रन्थरत्न के अध्ययन के विना द्रव्यानुयोग में गीतार्थता अपूर्ण रहती है।

पू० आ० अभयदेवसूरिजीने इस ग्रन्थरत्न को संस्कृत भाषा में विस्तारयुक्त व्याख्या बनायी।

यह ग्रन्थ पढ़ने के लिये अत्यन्त कठिन माना जा रहा था। विरल अभ्यासी इस को हाथ लगाते थे। पू० आ० गुरुदेव भुवनभानुसूरिजी म०ने इसका गहराई से अध्ययन किया। अत एव उनकी उपदेशवाणी अनेकान्तवाद-नयवाद से सुसंस्कृत बनी रही। उन्हें यह महसूस हुआ कि कठिन ग्रन्थों का अभ्यास प्रति दिन घटता जा रहा है तो इस ग्रन्थ को समझने के लिये लोकभाषा (हिन्दी) में इसे प्रस्तुत किया जाय तो बहुत उपकारक बनेगा।

उनकी प्रेरणा से पूरा सटीक सन्मति तर्कप्रकरण हिन्दी विवेचन के साथ प्रकाशित हुआ है।

पहले इस का प्रथम खण्ड मोतीशा लालभाग चेरिटी ट्रस्ट (मुंबई) की ओर से प्रकाशित हुआ था जो अब अनुपलब्ध है। बाद में पंचम खण्ड, उसके बाद दूसरा खण्ड प्रकाशित हुआ। सं० २०६७ में चौथा और तीसरा खण्ड तय्यार हुआ। कारण यह था कि प्रथम खण्ड प्रकाशित होने के बाद स्व० पू० गुरुदेवश्री भु० भा० सूरेश्वरजी म.सा. की इच्छा थी अब पंचमखंड का लेखन-प्रकाशन किया जाय। पंचम खंड प्रकाशित होने के बाद दूसरे खण्ड का लेखन-प्रकाशन किया गया। उस के बाद तृतीय खण्ड क्रम प्राप्त था। किन्तु यह अशुद्धि बहुल था अतः पहले चौथे खण्ड का लेखन मुद्रण कार्य किया गया। प्रतीक्षा यह थी कि कोई ताडपत्रीय शुद्ध पाठवाला हस्तादर्श मिल जाय तो तीसरे खंड का शुद्धीकरण हो सके, किन्तु यह आशा विफल हुई। आखिर तीसरे खण्ड का जैसा था वैसा पाठ स्वीकार कर लेखन-मुद्रण किया गया है। इस ढंग से व्युत्क्रम से लेखन-मुद्रण हुआ है। किन्तु स्व० पू० भु० भा० सूरेश्वरजी जन्मशताब्दी वर्ष में प्रकाशकों की भावना अनुसार पहला-दूसरा और पांचवा खंड पुनर्मुद्रित करा कर पाँचों खंडों का एक साथ अब प्रकाशन किया जा रहा है यह बड़े आनन्द का पुण्यावसर है। गुजरातविद्यापीठ(अमदावाद) के संस्करण में पंचम खंड में जितने (१३) परिशिष्ट थे वे सब ज्यों के त्यों इस संस्करण के तृतीय खंड के अन्तभाग में अध्ययनकर्ताओं की सुविधा के लिये सभार उद्धृत करके जोड़ दिया हैं। विद्वद्गण इस का स्वागत-अध्ययन करेगा, अनेकान्तवाद से रोम रोम वासित करके मुक्तिलाभ प्राप्त करेगा यही शुभ कामना।

सज्जन श्री पार्श्व कोम्प्युटर्सवाले विमलभाई पटेलने इस ग्रन्थ की नूतन आवृत्ति का कार्य पूर्ण निष्ठा से किया है - उसको हमारा हजारों धन्यवाद हैं।

श्री शत्रुंजयतीर्थधाम - भु० भा० मानसमंदिर  
पोष सुदि १३ - शाहपुर

\* सन्मतितर्क० तृतीयखण्ड - विषय निर्देश \*

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
१	.....पंचमगाथा का अवयवार्थ	१५	.....सपक्ष की व्यवस्था दुष्कर नहीं
२	.....ऋजुसूत्रवचनविच्छेद - शब्द का तात्पर्य	१६	.....हेतु का लक्षण 'साध्य के साथ प्रतिबद्धता'
२	.....शब्दात्मक वचनविच्छेद नयाधार कैसे ?	१७	.....नैयायिककल्पित सत्तालक्षण का निरसन
३	.....पर्यायनय का कुछ स्वरूप निर्धारण	१७	.....सत्ता का सही लक्षण अर्थक्रियासामर्थ्य
४	.....ऋजुसूत्रे बौद्धसंमतवादप्ररूपणायामक्षणिकवाद- पूर्वपक्षः	१७	.....उत्पादादिरूप सत्त्वलक्षण की समीक्षा
४	.....ऋजुसूत्रावतरितबौद्धमतप्ररूपणा-अक्षणिकवादि- पूर्वपक्ष	१८	.....प्रत्यक्ष से क्षणिकत्वसिद्धि की चर्चा
४	.....अनुमान से क्षणभंगवाद का निश्चय अशक्य	१९	.....सत्त्व हेतु से परोक्ष भावों में क्षणिकत्वानुमान की चर्चा
५	.....क्षणिकता अनुमान के लिये तीनों हेतु व्यर्थ	१९	.....शब्द परमार्थतः अर्थवाचक नहीं होता
५	.....कार्य और अनुपलब्धि हेतु के विशेषलक्षण का निरसन	२०	.....सत्त्वस्वभावहेतु में क्षणिकत्व के तादात्म्यप्रति- बन्धनिश्चय पर प्रश्न
६	.....प्रत्यभिज्ञा के प्रामाण्य और प्रत्यक्षत्व का समर्थन	२१	.....क्षणिक भाव के साथ क्रमादि का मेल अघटित
७	.....प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष का प्रमेय कौन ?	२१	.....क्रमाक्रम के विना भी अर्थक्रिया की सम्भावना
७	.....प्रत्यभिज्ञा में भिन्नाभिन्नवस्तुविषयता का समर्थन	२२	.....नित्य पदार्थ में क्रमाक्रमयोगाभाव संदेहग्रस्त
८	.....संदेहनिरसन भी प्रामाण्य का प्रयोजक	२२	.....क्षणिकवादी का उत्तर - क्रम की व्याख्या एवं समीक्षा
८	.....प्रत्यभिज्ञा अविकल्परूप भी होती है	२३	.....स्वतन्त्रकालतत्त्ववादी के मत में क्रमग्रहण प्रश्नग्रस्त
९	.....प्रत्यक्ष की स्थैर्यविषयता का समर्थन	२४	.....नित्यवादीपक्ष में अन्यप्रकार के कर्तृत्व की असंगति
१०	.....नीलादि का अतूटरूप से अक्षणिकत्व संवेदन	२४	.....क्षणिक भाव में क्रमाक्रम का नियम सुसंगत
१०	.....विनाश अहेतुक नहीं होता - स्थैर्यवादी	२५	.....नित्य वस्तु के साथ क्रमाक्रम की असंगति
११	.....विनाश में कार्यत्व की उपपत्ति	२५	.....क्षणिकत्वनिश्चय के बाद प्रत्यक्षबाध अकिंचित्कर
१२	.....ऋजुसूत्रनयावलम्बिसौगतीयः क्षणभंगसिद्धा- वुत्तरपक्षः	२६	.....क्षणिकत्व की सिद्धि में कृतकत्व हेतु निर्दोष
१२	.....वैशेषिक मतानुसार अभाव में कार्यता संगति	२७	.....निर्बाधरूप से अन्वय-व्यतिरेक निश्चय की उपपत्ति
१२	.....क्षणिकत्वसिद्धि-ऋजुसूत्रानुसारी बौद्ध-उत्तरपक्ष	२७	.....सत्त्व हेतु में विपक्षबाधकशंका का निवारण
१३	.....हेतु में साध्यप्रतिबद्धता का निश्चय कैसे ?	२८	.....अर्थक्रिया का व्यापकत्व क्रमादि में प्रश्नापन्न
१३	.....साध्यनिश्चय का आधार सिर्फ व्याप्ति		
१४	.....हेतु में सामान्यलक्षणविरह के आपादन का निरसन		

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
२९	.....क्रम-यौगपद्य से अन्य प्रकार के अभाव की प्रसिद्धि	४२	.....सामान्यरूप अभेदमूलक कारणसामग्री की जनकता शंका - उत्तर
२९	.....सर्वभाव स्व-पर सर्वस्वरूप मानने पर क्षतियाँ	४३	.....अनेक कारणों से अनेककार्योत्पत्ति का निरसन
३०	.....क्रम-यौगपद्य से अन्य प्रकार की असिद्धि	४३	.....अभिन्न तत्त्व में कारणता का स्वीकार दोषग्रस्त
३०	.....असाधारणरूप परिच्छेद में अतद्रूपपरिच्छेद का अन्तर्भाव	४४	.....कार्य - कारणभाव सिद्धि का आधार कौन ?
३०	.....प्रत्यक्ष से प्रकारान्तराभावसिद्धि कैसे ? प्रश्न का उत्तर	४५	.....क्षणिक भाव से व्यापार के विना कार्योत्पत्ति-शंका - उत्तर
३१	.....परोक्ष पदार्थों के लिये भी क्रम-यौगपद्य का निर्णय सरल	४६	.....कार्योत्पत्ति के लिये व्यापार कल्पना निरर्थक
३२	.....प्रकारान्तराभाव की अनुमान से सिद्धि	४६	.....नष्ट कारण से कार्योत्पत्ति का असम्भव
३३	.....अक्षणिक भाव में क्रम/यौगपद्य की असंगति	४७	.....विनाश के लिये हेतुव्यापार नहीं होता
३४	.....सहकारी द्वारा विशेषाधान के विकल्प का निरसन	४७	.....अध्ययनादिमतप्रदर्शन - निरसन
३४	.....एककार्यप्रतिबद्धतारूप सहकारित्व अघटित	४८	.....विनाश का शब्दार्थ एकक्षणस्थायि भाव
३५	.....कार्य में सामग्रीजन्यस्वभावता का निरसन	४९	.....अक्षणिकत्व की प्रत्यभिज्ञा में अनुमानबाध
३६	.....स्वभावभेदावतारवारणनिष्फलता	५०	.....सद्धेतु और साध्याभाव का स्पष्ट विरोध
३६	.....नित्य के कार्यजननस्वभाव वैचित्र्य की शंका - उत्तर	५१	.....प्रत्यक्षज्ञान के प्रामाण्य का आधार कौन ? प्रश्न
३६	.....नित्य पदार्थ में निमित्त सापेक्ष स्वभाव की शंका - उत्तर	५२	.....प्रत्यभिज्ञा का बाधक अकेला प्रत्यक्ष नहीं
३७	.....अक्षणिक भाव में क्रमिक कार्यकारित्व अघटित	५३	.....सदोषकारणजन्य होने से प्रत्यभिज्ञा अप्रमाण
३७	.....अक्षणिकभाव में युगपत् कार्यकारित्व अघटित	५३	.....अर्थक्रियासाधक न होने से प्रत्यभिज्ञा अप्रमाण
३८	.....क्षणिकभाव में अर्थक्रियाकारित्व अशक्य - शंका	५४	.....जलादि वास्तव बाह्यार्थ न मानने पर शून्यवादापत्ति
३८	.....क्षणिक भाव में सत्त्व हेतु अनैकान्तिक	५४	.....प्रत्यभिज्ञा और तद्विषय में भेदापादन
३९	.....सत्ता हेतु में अनैकान्तिक दोष का निरसन	५५	.....प्रत्यभिज्ञा नामक आलम्बन के स्वभाव की कालपृच्छा
४०	.....क्षणिक भावों में क्षणान्तरजनन अघटित - शंका	५५	.....अवस्था - अवस्थावान् में भेद असंगत
४०	.....क्षणान्तरजनन अघटित नहीं - उत्तर	५५	.....क्रमिक प्रत्यभिज्ञा से विषय-क्रमिकता की सिद्धि
४१	.....भिन्न कारणों में एकरूपता के अभाव का विमर्श	५६	.....सात्तिशयता का स्वीकार, भेद का क्यों अस्वीकार ?
		५७	.....प्रत्यभिज्ञा में प्रमेयाधिक्य/ प्रामाण्य का असम्भव
		५८	.....पूर्वकालदृष्टार्थता का अपूर्वग्रहण असम्भव



पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
५९	.....प्रत्यभिज्ञा और स्मृति में अभेद की सिद्धि	७६	.....व्यवहार एकत्वबल से प्रत्यभिज्ञा एकत्वसिद्धि अशक्य
६०	.....इदानींतन अस्तित्व का पूर्वबुद्धि से अग्रहण कैसे ?	७७	.....एकत्वग्रहण और संवाद से प्रत्यभिज्ञा प्रमाण - आशंका
६१	.....पूर्वोत्तरभाव के एकत्व का ग्रहण कैसे ?	७८	.....पूर्वकालयोगिता- एकत्व-प्रत्यभिज्ञा बेबुनियाद
६३	.....पूर्वदृष्टपदार्थ का पुनः दर्शन अशक्य	७९	.....नाश की सहेतुकता का निरसन
६३	.....पूर्वदृष्ट रूप का द्वितीयविज्ञान से ग्रहण अशक्य	८०	.....आत्मा के अव्यक्तविकाररूप बुद्धिध्वंस अमान्य
६४	.....अभिन्न विषय के अवभास का निरूपण असंगत	८१	.....प्रध्वंसाभाव कृतक या अकृतक - विकल्पनिरसन
६५	.....वर्तमानदर्शनवृत्ति-अप्रच्युति का अन्योन्याश्रय	८२	.....अभाव में भावत्व का अनिष्टापादन
६५	.....पूर्वदृष्ट रूप के लिये दो प्रश्न	८३	.....अभाव और भवति का परस्परविरोध
६६	.....निर्विकल्प में पूर्वापर भावावभास के प्रति विकल्पद्वयी	८३	.....पर्युदास नकार से अर्थान्तरविधान का विमर्श
६६	.....प्रतिभास्यों के अभेद की सिद्धि का असम्भव	८४	.....अभाव (ध्वंस) काल में काष्ठानुपलब्धि की संगति कैसे ?
६७	.....अखंडरूप से पूर्वापर का प्रतिभास अशक्य	८४	.....सहेतुक विनाश में वैविध्य की आपत्ति
६७	.....पूर्वदृष्ट के दर्शन का पूर्वकथन अयुक्त	८५	.....नाश के नाश की अथवा बुद्धि आदि अविनाश की आपत्ति
६८	.....नील के अध्यवसाय से नीलग्रहण का प्रश्न - अन्यमत	८५	.....बुद्धि को स्वसंविदित न मानने पर अविनाशप्रसंग
६९	.....भेदनिश्चय अनुमानमूलक, अन्यत्र सुलभ	८६	.....बुद्धिनाश की तरह विनाश के विनाश की आपत्ति
७०	.....एकत्वग्राही निर्विकल्प का निरसन	८६	.....लोक में भी विनाश की तुच्छता की मान्यता
७१	.....स्मृतिसहकृत दर्शन से एकत्व का ग्रहण असम्भव	८७	.....कृतकविनाश की नित्यता युक्तियुक्त नहीं
७१	.....एकाधिकरणतारूप अभेद की परिभाषा का प्रतिकार	८७	.....अनुपलम्भ मात्र से वस्तु अभाव की सिद्धि अशक्य
७२	.....क्या आत्मा एकत्वबोध कर सकता है ?	८८	.....वस्त्र के रंग की अवश्यंभाविता अनिश्चित
७२	.....अनेकदर्शनानुगत एक शुद्धात्मा की कल्पना असंगत	८९	.....नश्वर/अनश्वर स्वभाव विकल्पों में अनुपपत्तियाँ
७३	.....अभेदप्रत्यभिज्ञा से एकत्व सिद्धि की आशंका का उत्तर	९०	.....अन्तकाल में स्वभाव तदवस्थ होने से नाश अयोग
७४	.....लिङ्गजन्य 'सुरभि चन्दन' प्रतीति की तुल्यता प्रत्यभिज्ञा में	९०	.....मोगरादि की निवृत्ति प्रति सापेक्षता प्रश्नगत
७५	.....एकत्वाध्यवसाय बल से प्रत्यभिज्ञा - एकत्वसिद्धि दुर्गम	९१	.....नाश की तरह उत्पत्ति के विकल्पों का आपादन

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
९२	.....अनुत्पत्तिस्वभाव के स्वीकार में इष्टापत्ति	१०७	...विज्ञानवादियोगाचारमतेन विज्ञप्तिमात्रता- सिद्धि :- उत्तरपक्षः
९३	.....भावधर्म और अभावधर्म तुल्य नहीं होते	१०७	...बाह्यार्थवादी के सामने विज्ञानवादी का उत्तरपक्ष
९३	.....ऋजुसूत्र पर्यायनय का विस्तार शब्द-समभिरूढ- एवंभूतनय	१०८	...व्यतिरिक्त ग्रहणक्रियापक्ष में विकल्पद्वय की सदोषता
९५	.....ऋजुसूत्रव्याख्यान्तरे विज्ञप्तिवादसिद्धये प्रथमं पूर्वपक्षः	१०९	...बोध एवं संवेदनक्रिया में कारण—कार्यभाव असंगत
९५	.....ऋजुसूत्र की अन्य व्याख्या — विज्ञप्तिवाद के सामने पूर्वपक्ष	११०	...समकालीन बोध ग्रहणक्रिया के लिये असमर्थ
९६	.....अर्थाभाव प्रत्यक्ष का विषय नहीं होता	१११	...भिन्न ग्रहणक्रिया की उत्पत्ति का नील से क्या सम्बन्ध ?
९६	.....बाध है तो किस को ? — तीन विकल्प	१११	...अर्थ की प्रत्यक्षता का तथा कर्मादित्रितय- प्रतीति का निषेध
९७	.....बाधकतत्त्व से बाध की अनुपपत्ति	११२	...त्रितयावगाहि एक कल्पना से ग्राह्यग्राहक- भावसिद्धि दुष्कर
९८	.....बाधक ज्ञान की बाधकता पर दो प्रश्न	११३	...तुल्यकालीन नीलोद्भासक प्रतीति की अनुपपत्ति
९८	.....अनुपलम्भ बाधक प्रमाण हो नहीं सकता	११४	...बाह्यार्थ एवं संवेदन के अभेदप्रसंग से विज्ञप्तिमात्रसिद्धि
९९	.....शुद्धदर्शन में चन्द्रयुगल न भासने का कारण	११५	...नीलदर्शन—पीतदर्शन की ऐक्यापत्ति का निरसन
१००	...चन्द्रयुगल सिर्फ ज्ञानाकार होने का कथन गलत	११६	...जन्य—जनकभावप्रेरित ग्राह्य-ग्राहकभाव असत्
१००	...अनुमान से भी बाह्याभावसिद्धि दुःशक्य	११७	...प्राग्भाव के विना भी नियतदेशादि की उपपत्ति
१०१	...अनुमान से अर्थाभावसिद्धि अशक्य	११९	...विज्ञानवाद में 'नील का प्रकाश' भेदबुद्धि की संगति
१०२	...सहोपलम्भहेतुक अभेदानुमान में बाध — असिद्धि दोष	१२०	...आत्मप्रकाशन बुद्धि की भी परोक्षता की आपत्ति
१०३	...सहोपलम्भनियम हेतु की सिद्धि के प्रयास का निरसन	१२१	...बुद्धि परोक्षतावादी मीमांसक के मत की समीक्षा
१०४	...बुद्धि प्रत्यक्ष है, सहोपलम्भ के साथ भेद सत्ता — नैयायिक	१२२	...अर्थप्रत्यक्षता ही बुद्धि, पृथगर्थकल्पना का निरसन
१०४	...प्रतिबन्धमूलकभेद दोनों ओर समान	१२२	...ग्राह्य—ग्राहक दो आकार युक्त एक ज्ञान असत्
१०५	...सहोपलम्भ हेतु में अनैकान्तिक या विरुद्ध या असिद्धि दोष	१२३	...भ्रमज्ञान के रजताकार की तरह सब ज्ञानमय
१०६	...ज्ञानमात्र का या अर्थ का एकोपलम्भ हेतु सदोष	१२४	...रजत का लौकिकरूप से ग्रहण में अनवस्था प्रसंग
१०६	...अभेदसाधक तथा संवेदन हेतु में दोषप्रसङ्ग		
१०६	...साधारण संवेदनरूप हेतु में दोषपरम्परा		

पृष्ठ	विषय
१२५	...सीप और रजत का भान सत्य है या विपरीत ?
१२५	...अन्यथाख्याति की गहराई से समालोचना
१२६	...ज्ञान की निरालम्बनता का उपपादन
१२७	...संवादप्रेरित अर्थग्राहितासाधन का निरसन
१२७	...अर्थ के विना भी स्वप्नादि में अर्थक्रियानिष्पत्ति
१२८	...नील—नीलबुद्धि का अभेद प्रत्यक्षसिद्ध-अनुमान से व्यवहारसिद्धि
१२९	...अभेद प्रत्यक्षसिद्ध है तो अनुमान का प्रयोजन क्यों ?
१३०	...बुद्धिपरोक्षतावादी मीमांसक मत का निरसन
१३०	...हेतु में अनैकान्तिकता या संदिग्धविपक्षव्यावृत्ति दोषों का उद्धार
१३१	...सहोपलम्भ में भेदसाधकता प्रयुक्त विरुद्धदोष का निरसन
१३२	...एक अर्थ में 'सह' शब्दप्रयोग की संगति
१३२	...संवेदनस्वरूप होने से दोनों में अभेद सिद्ध
१३३	...सहोपलम्भनियम और तथासंवेदन दो हेतु में भेद
१३४	...भेदावभास के होने पर भी संवेदन से अभेद
१३४	...चित्त-चैत्तादि स्थल में व्यभिचार का वारण
१३५	...अभ्युपगमवाद से मीमांसकमतानुसार भी विज्ञानमात्रता
१३५	...विज्ञानवाद में प्रमेयादिव्यवस्था शंका—समाधान
१३६	...नीलादि अनुभवस्वरूप है — विज्ञानवादी
१३७	...कर्तृआदि भेदविकल्प का मूल अनादि वासना
१३८	...ऋजुसूत्रनयान्यव्याख्याया शून्यवादनिरूपणम्
१३८	...शुद्धपर्यायास्तिकप्रकारभूत ऋजुसूत्र नय विज्ञानमात्रग्राही
१३८	...अन्यप्रकार से व्याख्या के द्वारा ऋजुसूत्रनय का शून्यवादसमर्थन

पृष्ठ	विषय
१३९	...मिथ्याज्ञानोत्पन्न प्रवृत्ति का बाध असम्भव
१४०	...बाधक के सामर्थ्य से बाध्यता की अनुपपत्ति
१४०	...अर्थानुपलब्धि से बाध की अनुपपत्ति
१४१	...सत्यदर्शिता — कारणदोषाभाव में अन्योन्याश्रय दोष
१४२	...बाधाभाव भावसत्ता का प्रसाधक नहीं
१४२	...प्रसज्यनजर्थ तुच्छस्वरूप बाधाभाव अकिञ्चित्कर
१४४	...मीमांसककथितरूप से अभावग्रहण में अनवस्थाप्रसंग
१४४	...अभावप्रमाण से प्रतियोगिनिवृत्ति असंभव
१४५	...पर्युदासरूप बाधकाभाव से अर्थतथात्वव्यवस्था अशक्य
१४६	...स्वप्नदशावत् जागृति में भी द्रव्यादि की असिद्धि
१४७	...अर्थों में कालभेदप्रयुक्त भेद सम्भव नहीं
१४८	...देशादिभेदप्रयुक्त भावभेद का असम्भव
१४९	...स्वयं नीलादि के भेद का अवभास अशक्य
१४९	...एक — स्थूल स्तम्भादि का भी निश्चय अशक्य
१५०	...भेद की असिद्धि से अभेद का साधन अनुचित
१५०	...नैसर्गिक शुद्ध ज्योति की परमार्थसत्ता का निषेध
१५१	...विज्ञानवाद तत्त्वभूत नहीं है
१५२	...बाह्यरूपता से नीलादि की सत्यता का निषेध
१५३	...भ्रान्तरजतस्थल में स्मृतिप्रमोष का निषेध
१५३	...एकदेशीय पदार्थ में अन्यदेशादिवृत्तित्व का भान अशक्य
१५४	...पूर्वदेशादि वर्तमानदेशादिता के ऐक्य का निषेध
१५५	...असद् भासित होने पर असत्ख्याति की आपत्ति
१५७	...अविस्वादा का निर्वचन दूषित है
१५८	...पूर्वदर्शन—उत्तरदर्शन विषयों का ऐक्य असम्भव

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
१५९	...पूर्वरूप—उत्तररूप ऐक्य के तीन पक्षों का निरसन	१७२	...शब्दब्रह्म में ग्रहण—अग्रहण उभय की अनुपपत्ति
१५९	...भ्रान्तज्ञानविषय अलौकिक नहीं होता	१७३	...शब्दात्मक घटादि में भेदाभेदोभाय की अनुपपत्ति
१६०	...अवयवी की सत्ता की सिद्धि अशक्य	१७३	...शब्द से जगत् की उत्पत्ति वाला दूसरा 'हेतुकृत' विकल्प
१६१	...व्यवहार के बल पर बहिरर्थसिद्धि अशक्य	१७४	...अविभक्तब्रह्मतत्त्वोपपादनं तत्रतिविधानं च
१६२	...परमाणु में षड्दिकसंयोग से सांशता आपत्ति	१७४	...शब्दकारानुविद्धत्व हेतु में असिद्धि दोष
१६२	...अर्थ की तरह बोध भी असत् है	१७५	...ब्रह्मसिद्धि के लिये प्रमाणपृच्छा
१६३	...सर्व धर्म मायाजाल है	१७६	...शब्दब्रह्म की सिद्धि अनुमान से दुष्कर
१६४	...साधनादि उपायविहीन शून्यवादी का वाद में अनधिकार — पूर्वपक्ष	१७६	...योगिजन के ब्रह्मदर्शन की मीमांसा
१६४	...साधनादिउपायवाले अर्थवादी का अनधिकार — उत्तरपक्ष	१७७	...द्वैतवादी के क्षणिकतामत में मोक्षाभावापत्ति नहीं
१६५	...शुद्धतर पर्यायवादी ऋजुसूत्र मत से सर्व शून्यम्	१७८	...पर्यायास्तिकनय से बन्ध—मोक्ष की उपपत्ति
१६६	...सौत्रान्तिकादिचतुष्कस्य ऋजुसूत्रादिचतुष्के- ऽवतारः	१७९	...आत्मज्योतिस्फुरणरूप ब्रह्म का कोई साधक नहीं
१६६	...निक्षेपेषु द्रव्य-पर्यायनययुगलावतारः	१७९	...अभेदभावकृत संकेत शब्दार्थतादात्म्य असिद्ध
१६६	...ऋजुसूत्रादि चार नयों में सौत्रान्तिकादि चार मतों का प्रवेश	१८०	...शब्दार्थनित्यसम्बन्धवादिमीमांसकमतनिरसनम्
१६६	...निक्षेपों में द्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिक का अवतार	१८०	...अशुद्धद्रव्यास्तिकमतप्रविष्ट मीमांसकनित्य-सम्बन्धवादसमीक्षा
१६७	...षष्ठगाथा का अवयवार्थ	१८१	...नित्यवाद—अनित्यवाद दोनों को तुल्य अनवस्था दोष
१६७	...नामनिक्षेपः— व्याख्या—संकेत—विषयाः	१८२	...शब्दस्य द्रव्यार्थनिक्षेपरूपताया उपसंहारः
१६७	...नामनिक्षेप के विषय—संकेत—और व्याख्या	१८२	...स्थापनाया द्रव्यार्थिक निक्षेपरूपता प्रदर्शनम्
१६८	...शब्दब्रह्मवादिभर्तृहरिमत्पूर्वपक्षो द्रव्यार्थिका- नुगामी	१८२	...शब्द(= नाम) की द्रव्यार्थनिक्षेपरूपता का उपसंहार
१६८	...द्रव्यार्थिकसदृश शब्दब्रह्मवादी भर्तृहरिमत् — पूर्वपक्ष	१८२	...स्थापनानिक्षेप का प्रतिपादन
१६९	...ज्ञानमात्र शब्दानुविद्ध, प्रकाश की वाग्रूपता	१८३	...द्रव्यार्थिक नय स्वीकृत—द्रव्यनिक्षेप व्याख्या
१७०	...पर्यायास्तिक नय से विश्व—वाङ्मयता प्रति दोषापादान	१८३	...विस्तरेण क्षणभङ्गवादनिरसनम्
१७१	...शब्दमयता पक्ष में घट—पटादि में अभेदप्रसंग	१८३	...द्रव्यार्थिकनयमान्य द्रव्यनिक्षेपव्याख्या
१७२	...क्षणिकत्व की तरह शब्दमयता के असंवि- दितत्व की अनुपपत्ति	१८४	...द्रव्यार्थिकनय से क्षणभंगवाद का विस्तृत निरसन प्रारम्भ

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
१८६	...प्रत्यक्ष से क्षणिक—निरंश अर्थसिद्धि दुष्कर	२०२	...अनुमान में प्रत्यक्षबाधकता का निरसन
१८७	...अनुमान से क्षणभंगुरता की सिद्धि दुष्कर	२०३	...प्रत्यभिज्ञाप्रदर्शित स्थायित्व के प्रति शंका— समाधान
१८९	...उत्पादक की नाशकता के सभी विकल्पों में दूषण	२०४	...प्रत्यभिज्ञा के प्रामाण्य की शंका का समाधान
१९०	...अन्वय—व्यतिरेकबल से अभाव में सहेतुकत्व की प्रतिष्ठा	२०४	...स्वभावलिंगक अनुमान से क्षणिकतासिद्धि अशक्य
१९१	...विनाश में मोगर आदि जन्यता की निर्बाध सिद्धि	२०५	...क्षणिकवादसमर्थक दीर्घ पूर्वपक्ष
१९२	...मोगरप्रहार से सामर्थ्यविघात की शंका — समाधान	२०६	...अनुमान की बाधकता बलवती—पूर्वपक्ष चालु
१९३	...विलक्षण कार्यात्पत्ति के स्वीकार पक्ष में असंगतियाँ	२०७	...नित्यतावादी कृत क्षणिकवाद—प्रतिकार
१९३	...मोगरप्रहार की व्यर्थता का कलंक तदवस्थ	२०८	...प्रत्यक्ष से पूर्वकालपरामर्श की अशक्यता का निरसन
१९४	...मोगरप्रहारव्यर्थ होने पर लोकव्यवहार- निष्फलताप्रसंग	२०९	...पूर्वापरभाव के एकत्व की बुद्धि भ्रममूलक— शंका
१९५	...‘असत्’ व्यवहार के साथ अर्थान्तरग्रहण अनिवार्य	२१०	...छत्र-कुण्डलादि के दृष्टान्त से पूर्वापरकालीन में एकत्व-समाधान
१९५	...शत्रु—मित्र से अतिरिक्त (ध्वंसरूप) अभाव की स्वीकारापत्ति	२११	...क्षणभंगानुमान में प्रत्यक्ष से बाधितत्व की उपपत्ति
१९५	...अभाव में भावरूपता की आपत्ति का प्रतिकार	२१२	...प्रतीतिभेद एकसन्तानमूलक कहना शोभास्पद नहीं
१९६	...घटस्वरूप या कपालरूप प्रच्युति का समीक्षण	२१२	...अर्थ के ज्ञानजनकत्व के अवगम की शंका और समाधान
१९७	...कपालकाल में घट के स्वतन्त्र विनाश की समीक्षा	२१३	...अन्वय—व्यतिरेकसहकृत जनकत्वनिश्चय
१९८	...विनाशहेतु की निष्फलता का आपादन	२१४	...जनकत्वनिश्चायक प्रत्यक्ष नहीं किन्तु अनुमान ?
१९८	...सहेतुकविनाश की हेतुपूर्वक सिद्धि	२१४	...ज्ञान मात्र का विषय आरोपित मानने पर आपत्तियाँ
१९९	...भाव का युगान्तरस्थायी स्वभाव निर्बाध	२१५	...क्षणभंगानुमान अन्यथासिद्ध एवं बाधग्रस्त
२००	...उत्पत्तिधर्मता की तरह नाशधर्मिता में युक्तितुल्यता	२१६	...क्षणिकत्व प्रत्यक्ष के बाद स्थायित्वनिश्चय का उदय क्यों ?
२०१	...असत् सद्भवन की तरह घट का कपालभवन अविरुद्ध	२१६	...क्षणिकत्वसंवेदन स्थायित्वध्यवसाय — व्याघात किस को ?
२०१	...भावान्तररूप घटप्रच्युति — तीसरे विकल्प की आलोचना		

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
२१७	...विरुद्धाकार दो प्रतीतियों का सामानाधिकरण्य नहीं	२३३	...क्षणिकताव्यवहारसाधनार्थ अनुमान की सफलता दुष्कर
२१८	...स्थायित्वबाधक प्रमाण की समालोचना	२३४	...एकत्वव्यवहारबाधक अनुमान का अभाव
२१९	...सत्ता के स्वरूप की मीमांसा—पूर्व पक्ष	२३५	...पूर्वापरअस्पृष्ट मध्यक्षणमात्र का प्रतिभास अशक्य
२१९	...कल्पनाबुद्धि से सत्ता की सिद्धि असम्भव	२३६	...पूर्वज्ञान उत्तरज्ञान विषयों का अभेद—प्रत्यक्ष सुविदित
२२०	...सत्ता का योग विवादास्पद — पूर्वपक्ष चालु	२३७	...पूर्वादृष्टदर्शन की स्मृतिरूपता का निषेध
२२१	...नित्यपदार्थ में स्वरूप सत्त्व अघटमान — पूर्वपक्ष	२३८	...पर्यायाधारभूत द्रव्यवस्तुसिद्धि — द्रव्यार्थिक निक्षेप पूर्ण
२२२	...अर्थक्रियाभेद से हेतुभेद असिद्ध — उत्तरपक्ष	२३९	...द्रव्यनिक्षेपस्य आगमोक्तस्वरूपम्
२२२	...प्रतिक्षण अर्थक्रिया भेद भी असिद्ध	२३९	...द्रव्यार्थिक निक्षेपवादी के मत से द्रव्यस्वरूप-वर्णन
२२३	...काल स्वीकारने पर भी कार्य भेद अयुक्तिक	२४०	...४-भावनिक्षेपनिवेदनम् पर्यायार्थिकनयसमावेशश्च
२२४	...कल्पनासूचित स्वभावभेद भावभेदक नहीं	२४०	...पर्यायनयान्तर्गत भावनिक्षेपव्याख्या
२२५	...क्षणिकत्व के साथ अर्थक्रिया की असंगति	२४१	...गाथा—७ का विवरण
२२५	...दूसरे—तीसरे विकल्पों का निरसन	२४१	...मीलित द्रव्य—पर्याय बोधक उभय नय ही शास्त्रहृदय
२२६	...अनेक से अनेक का सृजन—चौथा विकल्प सदोष	२४२	...सातवीं गाथा के पदों का शब्दार्थ
२२६	...ग्राह्य-ग्राहक आकार काल्पनिक नहीं	२४३	...सातवीं गाथा के वैकल्पिक अवयवार्थ
२२७	...अनेक से अनेक की उत्पत्ति — चतुर्थविकल्प निरसन	२४४	...द्रव्य—पर्याय संकीर्णताबोधार्थ ज्ञानानेकान्त-निरूपणम्
२२७	...कारणभेद से कार्य में भी अनेक स्वभाव की शंका और उत्तर	२४४	...गाथा—८ का विवरण
२२८	...चक्षु आदि में ज्ञानरूपता की, मनस्कार में भेद की आपत्ति	२४४	...द्रव्य—पर्यायों की अवियुक्तताप्रदर्शक ज्ञान अनेकान्तवाद
२२९	...धर्म—धर्मो शक्ति—शक्तिमान् का भेदपक्ष असंगत	२४४	...जहाँ तक द्रव्योपयोग वहाँ तक द्रव्यार्थिक विषय
२३०	...परस्परनिरपेक्ष एक एक कारण से एक कार्योत्पत्ति में विरोध	२४५	...शुद्धद्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिकास्तित्वं गगनपुष्पवत्
२३०	...अर्थक्रिया एवं सत्त्व अन्योन्य सम्बन्ध की समीक्षा	२४५	...गाथा—९ का विवरण
२३१	...अर्थक्रियास्वरूप सत्त्व से क्षणिकतानुमान अशक्य	२४५	...शुद्ध द्रव्यार्थिक शुद्ध पर्यायार्थिक कोई है नहीं
२३२	...प्रत्यक्ष/अनुमान से क्षणिकत्व की सिद्धि असंभव		

पृष्ठ	विषय
२४६	...अन्योन्यनययोः तत्तदविषययोर्वस्तुता
२४६	...गाथा-१० का विवरण
२४६	...अन्योन्य नय से तत्तद् विषय की अवस्तुता
२४७	...उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ये नयद्वयस्य स्वस्वाभ्युपगमः
२४७	...उत्पत्ति-व्यय-स्थिति के बारे में नयद्वय का अभिप्राय
२४८	...गाथा-११-१२ का विवरण
२४८	...द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रुवता
२४९	...सविस्तरं उत्पादादेरन्योन्याविनाभावित्वोपपादनम्
२४९	...उत्पादादि तीनों के अविनाभावित्व का उपपादन
२४९	...इन्द्रियसंनिकर्ष के बाद अन्वयभान की उपपत्ति
२५०	...सामान्यअबोधदशा में विशेषभान असंभव
२५१	...स्थूलावभास समुदितपरमाणुमूलक नहीं है
२५१	...स्थूल-एक स्तम्भादि के प्रतिभास में मिथ्यात्व अप्रमाण
२५३	...कारण-कार्य में अंशतः भेदाभेद का समर्थन
२५३	...अंशतः स्थूलता के अस्वीकार में बहुत नुकसान
२५४	...एक-स्थूलाकार को भ्रान्त मानने पर प्रत्यक्षलोपापत्ति
२५४	...भिन्न भिन्न परमाणुओं में पूर्वापर अनुवृत्ति का समर्थन
२५५	...शब्द-विद्युत्-प्रदीपादि में उत्तरपरिणामतः स्थैर्य
२५६	...वस्तु का पूर्वोत्तरपरिणाम-साधन सयुक्तिक
२५६	...उत्पादादि तीन में एकान्त से भेद या अभेद दुर्घट
२५८	...सत्त्व का श्रेष्ठ लक्षण उत्पादादित्रय
२५८	...सदृश अपरापरक्षणप्रेरित एकत्व भ्रान्ति का निरसन
२५९	...क्षणिकवाद में चिरविनष्ट वस्तु से कार्य की आपत्ति

पृष्ठ	विषय
२५९	...अक्षणिक पक्ष में कार्यो की स्वनियतकाल व्यवस्था सुघट
२६०	...कारणव्यावृत्ति की कार्योत्पत्ति के लिये निरुपयोगिता
२६०	...अक्षणिक भाव में कारणतासिद्धि से परिणामवाद सिद्धि
२६१	...अभेदबुद्धि हरहमेश भ्रान्त नहीं होती
२६२	...भाव क्षणिक मान लेने पर भी यथार्थोपलब्धिनियम नहीं
२६२	...अनपेक्षत्व की तद्भावनियतत्व से व्याप्ति परिणामसाधक
२६३	...एकान्तमतसिद्धि में दृष्टान्ताभाव
२६४	...कथंचिद् अभेद के विना ग्राह्य-ग्राहकाकार अनुपपत्ति
२६४	...ग्राह्य-ग्राहकसंवित्तिअविभाग की तरह परमात्मा अविभाग
२६५	...स्वभावभेद ही आखरी भेदक होता है
२६६	...विशेष के विना सामान्य का असम्भव
२६७	...द्रव्य का लक्षण 'उत्पाद-स्थिति-व्यय' - निष्कर्ष
२६८	...गाथा-१३-१४ का विवरण
२६८	...निरपेक्ष प्रत्येकमूल नय मिथ्यादृष्टि
२६८	...उभयप्राहि तृतीयनय की कल्पना असत्य
२६९	...गाथा-१५ का विवरण
२६९	...स्वतन्त्र प्रत्येक सर्व नय दुर्नय हैं
२७०	...गाथा-१६ का विवरण
२७०	...उभयवादप्ररूपक कोई भी स्वतन्त्र नय नहीं है
२७०	...बाह्यवत् अभ्यन्तर पदार्थ भी उभयात्मक
२७१	...गाथा-१७ का विवरण
२७१	...एकान्तवाद में संसार की अनुपपत्ति
२७२	...गाथा-१८ का विवरण

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
२७२	...एकान्तवाद में सुख-दुःख भोगादि की अनुपपत्ति	२८७	...सांख्यविशेषमान्यानर्थान्तरभूतपरिणामवादस्य निरसनम्
२७३	...गाथा-१९ का विवरण	२८७	...सांख्यविशेष के अनर्थान्तरभूतपरिणामरूपकार्य का निरसन
२७३	...एकान्तवाद में कर्मसिद्धान्त की अनुपपत्ति	२८७	...नैयायिकादिमान्य असत्कार्यवाद का निरसन
२७४	...‘मैं बद्ध हूँ’ इत्यादि बुद्धि में मिथ्यात्व असिद्ध	२८८	...बौद्धमतेन कारणव्यतिरिक्त असत् कार्यमित्येकान्तस्य भङ्गः
२७४	...‘मैं वही हूँ’ यह प्रतीति मिथ्याविकल्परूप नहीं	२८८	...कारण से कार्य का भेद एवं उत्पत्तिपूर्व असत्त्व का निरसन
२७५	...गाथा-२० का विवरण	२८९	...असद्रूप निवृत्ति के चतुर्विध विकल्पों की समीक्षा
२७५	...बन्ध नहीं तो संसार का भय क्यों ?	२८९	...कारणनिवृत्ति के अन्यविध चार विकल्पों की समीक्षा
२७६	...गाथा-२१ का विवरण	२९०	...कारणनिवृत्ति और कारणस्वरूप के भेद - अभेद की समीक्षा
२७६	...नय मिथ्यादृष्टि नय सम्यग्दृष्टि कब कैसे ?	२९१	...कारण और निवृत्ति के आधार-आधेयभाव की असंगति
२७७	...प्रत्येक में नहीं है तो समुदाय में कैसे ? शंका	२९२	...‘कारण स्वयं नहीं होता’ - यहाँ विकल्पद्वय का असमाधान
२७८	...सम्यक्त्वापादक समुदाय की विशेष व्याख्या	२९२	...अभाव के पर्युदास-प्रसज्य विकल्पों की चर्चा
२७८	...प्रमाण-नय भेदव्यर्थता शंका का समाधान	२९३	...प्रसज्याभावात्मकता - दूसरे मूल विकल्प की आलोचना
२७९	...प्रमाणलोप-आपत्ति का निरसन	२९५	...पूर्वपर्यायविनाश-उत्तरपर्यायोत्पाद का एकत्व
२७९	...नयसमुदाय में अर्थदर्शित्व निषेध का निरसन	२९६	...निरन्वय नाश का सयुक्तिक निरसन
२८०	...गाथा-२२-२५ का विवरण	२९६	...निर्हेतुकनाशवत् निर्हेतुक उत्पत्ति का आपादन
२८०	...अनेकान्तवाद के समर्थन में रत्नमाला का दृष्टान्त	२९७	...विनाशहेतु से भाव के अभवने-करण का आपादन
२८१	...पृथग् पृथग् मणियों को ‘रत्नावली’ बिरुद नहीं	२९८	...क्षणभंगमत में कारण-कार्यभाव असंगत
२८१	...विशिष्टरचनालंकृत मणियों को रत्नावली बिरुद	२९९	...क्षणिक पदार्थ में कारण-कार्य भाव अनुपपत्ति
२८२	...प्रत्यक्षसिद्ध भाव के लिये दृष्टान्त की उपयोगिता	२९९	...अक्षणिक में अस्तुत्थापत्ति का निरसन
२८३	...गाथा-२६ का विवरण	३००	...स्वभावभेद से व्यक्तिभेद आपत्ति का निरसन
२८३	...रत्नावली दृष्टान्त प्रदर्शन के विविध हेतु		
२८४	...गाथा-२७ का विवरण		
२८५	...सांख्याभिमतसत्कार्यवादैकान्तनिरसनम्		
२८५	...सांख्यसम्मत एकान्तसत्कार्यवाद का निरसन		
२८५	...मूर्त्त कारण से मूर्त्त कार्य का आवरण असंगत		



पृष्ठ	विषय
३०१	...अक्षणिकवाद में अध्यक्षप्रवृत्ति में अन्योन्याश्रय नहीं
३०२	...विविध—अद्वैततत्त्ववादिमतानां निरसनम्
३०२	...विविध अद्वैतवादियों अद्वैततत्त्व का निरसन
३०३	...द्रव्याद्वैत—प्रधानाद्वैत—शब्दाद्वैत—ब्रह्माद्वैत सब अविश्वस्य
३०४	...कारण—कार्य—परिणाम—सत्—असत् आदि चर्चा का निगमन
३०५	...सिद्धान्तविकृतं नयसत्याऽसत्यताविभाग-विमर्शनम्
३०५	...गाथा—२८ का विवरण
३०५	...सिद्धान्तज्ञाता की नयसत्याऽसत्यता के प्रति विवेकदृष्टि
३०६	...गाथा—२९ का विवरण
३०६	...अन्यनयविषयसापेक्षभाव से स्वनयविषय का ग्रहण
३०६	...द्रव्यार्थिक/पर्यायार्थिक नय से एक वस्तु का स्वरूप
३०७	...गाथा—३० का विवरण
३०७	...नय भेद से अर्थनियत—व्यञ्जननियत विभाग
३०८	...भेद—अर्थपर्याय—अभिन्न आदि पद-परामर्श
३०८	...व्यञ्जनपर्यायशब्द—समन्निरूढ—एवंभूत नय मान्यता
३०९	...गाथा—३१ का विवरण
३०९	...अतीतादिपर्यायों से एकद्रव्य की अनन्तता
३१०	...एकान्त असत् का उत्पाद नहीं, एकान्त सत् का नाश नहीं
३१०	...३२ वे श्लोक की भिन्न भिन्न अवतरणिका
३१०	...गाथा—३२ का विवरण
३११	...वाच्य—वाचकसम्बन्धमीमांसायां

वैयाकरणाभिप्रायः

पृष्ठ	विषय
३११	...पुरुष में व्यञ्जनपर्याय—अर्थपर्याय की स्पष्टता
३११	...शब्दस्वरूप मीमांसा—सम्बन्धसमीक्षा—स्फोटचर्चा
३१३	...चरमवर्ण से अर्थबोध की अनुपपत्ति
३१३	...संस्कार या तज्जन्य स्मृति का सहकारित्व अघटित
३१४	...अन्यथा अनुपपत्ति से स्फोटतत्त्व की सिद्धि
३१४	...स्फोट—प्रत्यक्ष को भ्रान्त मानने पर मुसीबतें
३१५	...स्फोटवादनिरसनं वैशेषिके स्वप्रक्रियावर्णनं च
३१५	...स्फोटवादनिषेध अन्त्यवर्ण से अर्थबोध-वैशेषिक
३१६	...अथवा पूर्ववर्णज्ञानध्वंससहकृत अन्त्यवर्ण से बोध
३१६	...अविनष्टसंस्कारजन्य अन्त्यसंस्कार + अन्त्यवर्ण से अर्थबोध
३१७	...स्फोटवाद में संस्कार की बात अशोभनीय
३१७	...स्फोटवाद में संस्कार प्रति विकल्प—असह्यता
३१८	...स्फोट संस्कार पर एकदेश—सर्वात्मता विकल्प प्रहार
३१९	...स्फोट में आवृत—अनावृतत्व से सावयवत्व दोष
३१९	...स्फोट और एक देशों का भेदाभेदविकल्प
३२०	...वायु के द्वारा स्फोट की अभिव्यक्ति का निरसन
३२१	...स्फोट के प्रत्यक्ष की वार्त्ता असार
३२२	...मीमांसकमतेन शब्दस्वरूपं तन्निरसनं च
३२२	...आनुपूर्वीस्वरूप शब्द प्रदर्शक मीमांसक का निषेध
३२३	...नित्य एवं व्यापक वर्णों में आनुपूर्वी सम्भव नहीं
३२४	...वाच्य—वाचकसम्बन्धे नित्यत्वनिराकरणम्
३२४	...मीमांसकमान्य नित्य शब्दार्थसम्बन्ध की समालोचना

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
३२५	...वृद्धव्यवहार से वाच्य—वाचक अवधारण	३३८	...एकान्त अर्थान्तररूपता से स्वरूप से व्यावृत्ति की आपत्ति
३२५	...प्रतिनियत योग्यता के लिये स्वाभाविक सम्बन्ध निरूपयोगी	३३९	...निक्षेपों से प्रयुक्त आद्य तीन भंग—२
३२६	...शाब्दं प्रमाणमनुमानभिन्नमिति प्रस्थापनम्	३३९	...नामादि घट के आकार से प्रयुक्त भंगत्रय—३
३२७	...त्रेरूप्य के अभाव में अनुमानरूपता अस्वीकार्य	३४०	...मध्य-पूर्वोत्तरावस्थाभेद से तीन भंग — ४
३२७	...अनुमानरूपता की सिद्धि के व्यर्थ प्रयास	३४१	...इन्द्रियग्राह्यत्व-अग्राह्यत्व से तीन भंग — ६
३२८	...मीमांसकमतोक्तं वर्णानां वाचकत्वमसंगतम्	३४१	...घटकुटशब्दवाच्यत्वावाच्यत्व प्रयुक्त तीन भंग — ७
३२८	...शाब्दप्रमाण स्वभावलिङ्गक अनुमान नहीं	३४२	...उपादेयादि-हेयादि रूप प्रयुक्त तीन भंग — ८
३२८	...मीमांसक मत में वर्णों में अप्रामाण्य की आपत्ति	३४२	...इष्टार्थबोधकत्व—अबोधकत्वरूप से तीन भंग — ९
३२९	...जैनदर्शनानुसार वर्णों की शब्दरूपता संगत	३४३	...घटत्व एवं सत्त्वासत्त्व स्व—पररूपों से भंगत्रय — १०
३३०	...क्रम और वर्णों के भेदाभेद से सर्वसंगति	३४४	...व्यञ्जनपर्याय-अर्थपर्याय से पर-स्वरूप से भंगत्रय — ११
३३१	...व्यञ्जन पर्यायरूप शब्द वाच्य अर्थ का पर्याय	३४४	...दो अवाच्यों से स्व—पर—रूप से भङ्गत्रय — १२
३३२	...गाथा—३३ का विवरण	३४५	...संद्वेषता और सत्त्वादि से भंगत्रय — १३
३३२	...पुरुष की एकानेकरूपता न मानने पर अनिष्टापत्ति	३४५	...रूपादि और असद्वेषत्व से भंगत्रय—निष्पत्ति — १४
३३३	...गाथा—३४ का विवरण	३४६	...रूपादि और मतुप् अर्थ से भंगत्रय प्राप्ति — १५
३३४	...गाथा—३५ का विवरण	३४६	...बाह्य-अभ्यन्तर रूपों से भंगत्रय निष्पत्ति — १६
३३४	...सविकल्प-निर्विकल्प उभयरूप से वस्तुप्रतिपादन सत्य	३४७	...सप्त भंगों में सकलादेश-विकलादेश विभाग
३३५	...गाथापञ्चकेन सप्तभंगीस्वरूपनिरूपणार्थ-मारम्भः	३४७	...सकलादेश—विकलादेश भंगों का वाक्यार्थ
३३६	...गाथा—३६ का विवरण	३४८	...विकलादेश के उत्तर चार भंगों का स्वरूप
३३६	...भङ्गत्रयसमर्थकाः षोडशापेक्षाभेदाः	३४८	...नय—दुर्नय—सुनय—प्रमाण का विभाग एवं व्यवहारसम्पादन
३३६	...सप्तभंगी के प्रथम तीन भंगों का स्पष्टीकरण—१	३४९	...क्रमशः उत्तरभंगचतुष्कनिरूपणे गाथाचतुष्कम्
३३७	...बहुव्रीहि—द्वन्द्व—अव्ययीभाव समास की निष्फलता		
३३७	...तत्पुरुष—द्विगु—कर्मधारय समासों की निष्फलता		
३३८	...संकेतित एक पद से भी वाच्यता का असंभव		

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ	विषय
३४९	...गाथा—३७ का विवरण	३६१	...एकान्तनित्य आत्मवाद में जन्मादि लोप की आपत्ति
३४९	...चौथे सावयव अस्ति—नास्ति भंग का विवेचन	३६१	...कपालोत्पत्ति घटविनाश कथंचिद् एक
३५०	...गाथा—३८ का विवरण	३६३	...दण्डादिसंनिधान में हेतुत्व की उपपत्ति
३५०	...पंचम भंग अस्ति—अवक्तव्य का निदर्शन	३६३	...स्याद्वाद में विरोधादि दोषों का परिहार
३५१	...गाथा—३९ का विवरण	३६५	...घट को त्रि—आत्मक न मानने पर दोष—परम्परा
३५१	...छठे भंग की निष्पत्ति एवं स्पष्टीकरण	३६६	...गाथा—४७ का विवरण
३५१	...सप्तम भंग का निष्पादन और स्पष्टता	३६७	...गाथा—४८ का विवरण
३५२	...गाथा—४० का विवरण	३६७	...संसार या मोक्ष दशा में रूपादि-ज्ञानादि का प्रवेश
३५२	...मल्लवादीसूरि के ग्रन्थ में कोटिकोटी उपभेद	३६८	...गाथा—४९ का विवरण
३५३	...आठवा भंग युक्तिसंगत क्यों नहीं ? — उत्तर	३६८	...स्थानांग सूत्र कथित आत्मा आदि के एकत्व का समर्थन
३५४	...गाथा—४१ का विवरण	३६९	...गाथा—५० का विवरण
३५४	...अर्थनय—शब्दनय में सात भंगों की व्यवस्था	३६९	...जैन दर्शन में न कुछ बाह्य न अभ्यन्तर
३५४	...शब्दनय में सविकल्प—अविकल्प सात भंग	३६९	...देहाभिन्न आत्मा की परप्रत्यक्षतापत्तिनिरसन
३५५	...अर्थनय में सात भंग, शब्द नय में दो	३७०	...संसारी आत्मा में देहपरतन्त्रता की उपपत्ति
३५५	...शब्द—समभिरूढ नयों में सविकल्प, एवंभूत में निर्विकल्प	३७१	...आत्मा के अवयवों के छेद की आपत्ति का समाधान
३५६	...गाथा—४२ का विवरण	३७२	...एक आत्मा में विभाग के विना भी छेद की उपपत्ति
३५६	...पर्यायार्थिक नय का द्रव्यविषयक अभिप्राय अनुचित	३७३	...आत्मा में गमनक्रिया से अनित्यत्वप्राप्ति निर्दोष
३५७	...गाथा—४३ का विवरण	३७४	...गाथा—५१ का विवरण
३५७	...एकान्तवाद की समीक्षा	३७४	...दोनों नयों के अनुसार कर्ता—भोक्ता का अभेद और भेद
३५७	...द्रव्यार्थिकनय का उदाहरण	३७५	...गाथा—५२-५३ का विवरण
३५८	...गाथा—४४ का विवरण	३७६	...गाथा—५४ का विवरण
३५८	...बाल—युवा—वृद्ध में एकान्त अभेद का निषेध	३७६	...व्यक्तिविशेष के लिये एक नय की प्ररूपणा निर्दोष
३५९	...गाथा—४५ का विवरण		
३५९	...दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक का उपसंहार		
३६०	...गाथा—४६ का विवरण		
३६०	...भेदाभेदात्मक जीवद्रव्य को दिखाने के लिये दृष्टान्त		
३६०	...उत्पादादि के द्वारा आत्मतत्त्व की स्थिति		

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः  
श्री सिद्धसेनदिवाकर-अभयदेवसूरीश्वराभ्यां नमः  
श्रीमद् विजय प्रेम-भुवनभानु-जयघोषसूरीश्वर-सद्गुरुभ्यो नमः  
॥ सुअदेवया भगवई मम मइतिमिरं पणासेउ ॥

# सन्मति—तर्कप्रकरणम्

तत्त्वबोधविधायिनी व्याख्या

## प्रथमकाण्डे तृतीयखण्डः

(पर्यायास्तिक-ऋजुसूत्रादिनयविवरणम्)

(व्याख्या-अवतरणिका) विशेषप्रस्तारस्य पर्यायनयो मूलव्याकरणी, शब्दादयश्च शेषाः पर्यायनयभेदाः  
इति प्रागुक्तम् तत्समर्थनार्थम्—

मूलणिमेणं पज्जवणयस्स उज्जुसुयवयणविच्छेदो।

तस्स उ सदाईआ साह-पसाहा सुहुमभेया ॥५॥ इति गाथासूत्रम्।

अस्य तात्पर्यार्थः — पर्यायनयस्य प्रकृतिराद्या ऋजुसूत्रः स त्वशुद्धा, शब्दः शुद्धा, शुद्धतरा समभिरूढः,  
अत्यन्ततः शुद्धा त्वेवंभूतः इति।

अवयवार्थस्तु— मूलम् = आदिः ने(णि)मेणं = आधारः पर्यायो = विशेषः तस्य नयः = उपपत्तिबलात्  
परिच्छेदः तस्य, ऋजु = वर्तमानसमयं वस्तु स्वरूपावस्थितत्वात्, तदेव सूत्रयति = परिच्छिनन्ति नातीतानागतम्

### [ हिन्दी विवेचन ]

श्री सन्मति तर्कप्रकरण के द्वितीय खण्ड में पहले तृतीय गाथा (पृष्ठ २६५) में कहा था — (जैसे सामान्यप्रस्तार का मूलतः प्रभाषक द्रव्यास्तिक नय है वैसे) विशेष प्रस्तार का मूल प्रभाषक पर्यायास्तिक नय है। शेष शब्दादि तीन तो पर्यायनय के प्रकार हैं। इसी तथ्य का समर्थन करते हुए मूलग्रन्थकार श्री सिद्धसेन दिवाकरसूरिजी प्रथम गाथा सूत्र में कहते हैं —

गाथार्थ :- पर्यायनय का मूल बीज ऋजुसूत्र वचन की सीमा (= अवधारण) है। उस के शाखा-प्रशाखानुत्पत्त्य सूक्ष्म (अवान्तर) भेद तो शब्दादिक हैं ॥५॥

व्याख्यार्थ :- मूल ग्रन्थ के व्याख्याकार महर्षि श्री अभयदेवसूरिजी तात्पर्यार्थ में कहते हैं — पर्यायनय की आद्य प्रकृति (यानी प्रकार) ऋजुसूत्र नय है, किन्तु वह अशुद्ध है। शुद्ध प्रकृतिरूप तो शब्दनय है। समभिरूढ नय तो अधिक शुद्ध है। एवंभूत नय की प्रकृति तो अत्यन्त शुद्ध मानी गयी है। (पर्यायनय स्कन्ध है, ऋजुसूत्र मूलशाखा है, 'शब्द' मूल शाखा की उपशाखा है, उस की प्रशाखा है समभिरूढ, और एवंभूत उसकी चरम शाखा है।

### [ पंचमगाथा का अवयवार्थ ]

गाथा सूत्र के एक एक शब्द का अर्थ :- मूल = आदि यानी बुनीयादी अथवा प्रारम्भिक। निमेणं = आधार यानी नींव। पर्याय = विशेष यानी व्यावृत्तिहेतु। उस से संबंध रखनेवाला जो नय = युक्तिबलप्रयुक्त

तस्याऽसत्त्वेन कुटिलत्वात्, तस्य वचनम् = पदं वाक्यं वा तस्य विच्छेदो = अन्तः सीमा यावत्।  
‘ऋजुसूत्रवचनस्य’ इति कर्मणि षष्ठी, तेन ‘ऋजुसूत्रस्य एवमयमर्थो नान्यथा’ इति प्ररूपयतो वचनं  
विच्छिद्यमानं यत् तत् मूलनिमेनम्<sup>१</sup> अत्र गृह्यते।

ननु कथं वचनविच्छेदः शब्दरूपः परिच्छेदस्वभावस्य नयस्याधारः ? नैष दोषः, विषयेण विषयी(?)वि-  
कथनरूपत्वादस्य। न च वचनार्थोऽस्य विषयः न शब्द इति वाच्यम्, वचनार्थयोरभेदात् वचनमपि यतो  
विषयः। अथ विषय एव किं नोक्त इति न प्रेरणीयम्, शब्दनयानां यत् शब्दहतस्यैव प्रमाणत्वमिति  
ज्ञापनार्थत्वादेवमभिधानम्, तस्य च पूर्वपरपर्याये(?)विचित्ते एकपर्याय एव प्ररूपयतो वचनं विच्छिद्यते  
बोधात्मक नय। ऐसे विशेषग्राही नय का जो मूलाधार है वह है ऋजुसूत्रवचनविच्छेद। विशेषग्राही नय  
तो शब्द-समभिरूढ-एवंभूत भी है, किन्तु उनका भी मूलाधार ऋजुसूत्रवचनविच्छेद है। ऋजु = वर्तमान समय  
की वस्तु। अतीतानागत यानी नष्ट और अनुत्पन्न भाव अपने स्वरूप से च्युत रहते हैं जब कि वर्तमानसमय  
की वस्तु अपने स्वरूप में अवस्थित होती है। ऋजु शब्द से उसी का निर्देश है, क्योंकि ऋजु यानी सरल,  
वर्तमान समय की वस्तु ही स्वकार्य के लिये सरलता से उपलब्ध होती है, नष्ट-अनुत्पन्न वस्तु सरलता  
से उपलब्ध हो नहीं सकती, अत एव वह वक्र यानी असत् कही जाती है। ऋजु यानी वर्तमान समय  
की वस्तु का ही जो सूत्रण = ग्रहण या बोध करे, अतीत-अनागत का नहीं, वह है ऋजुसूत्र। अतीत अनागत  
तो कुटिल = वक्र होने से, सरलता से उपलब्ध न रहने से असत् होने के कारण उस का सूत्रण ऋजुसूत्र  
नहीं करता। इस प्रकार के ऋजुसूत्र का वचन = पद या वाक्य, उस का विच्छेद = अन्त अथवा सीमा,  
यह है ऋजुसूत्रविच्छेद।

### [ ऋजुसूत्रवचनविच्छेद-शब्द का तात्पर्य ]

‘ऋजुसूत्रवचनविच्छेद’ का उपरोक्त व्याख्या अनुसार मतलब यह हुआ कि ऋजुसूत्र यानी वर्तमान समय  
की वस्तु के ग्रहण की सीमा यानी अवधारण। पर्यायनय (ऋजुसूत्र से लेकर एवंभूतनय) गर्भित पद या  
वाक्य कभी भी ऋजुसूत्र की मर्यादा को लाँघ कर वस्तुबोधकारक नहीं हो सकता। विच्छेद यानी एक प्रकार  
से अवधारण, इस का निशान है ऋजुसूत्रवचन, निशान यानी व्याकरण की परिभाषा अनुसार कर्म।  
व्याख्याकार ने ऋजुसूत्रवचन का विच्छेद इस ढंग से जो समास का विग्रह दिखाया है वहाँ षष्ठी विभक्ति  
से विच्छेद = अवधारण का कर्म (या निशान) सूचित किया है। अतः ऋजुसूत्रवचनविच्छेद का फलितार्थ  
यह होगा कि वर्तमान वस्तुग्रहण यह ऋजुसूत्र का ही अर्थ = विषय है, अन्य किसी का नहीं - इस प्रकार  
की मर्यादा गर्भित अवधारण विषयभूत जो वचन, वही पर्यायनय का मूलनिमेन यानी मूलाधार है - प्रस्तुत  
में यही समझना है।

### [ शब्दात्मक वचनविच्छेद नयाधार कैसे ? ]

शंका :- नय तो बोधस्वभाव होता है, बोध अर्थाधारित (यानी स्वविषयावलम्बी) होता है न कि  
वचनाधारित। तब सूत्रकार ने शब्दात्मक वचनविच्छेद (= सीमितवचन) को नय का आधार कैसे जताया ?

उत्तर :- इस में कोई दोष नहीं है। विषयभूत अर्थ के माध्यम से (पर्याय नयों के प्रस्ताव में) विषयी

१. ‘गिमेणमवि ठाणे’ - ‘गिमेणं = स्थानम्’ - देशीना० च० व० गा० ३७ - टीका - इति पूर्वसम्पादकौ।

एकपर्यायस्य परपर्यायाऽसंस्पर्शात्। उक्तं च तन्मतमर्थं प्ररूपयद्भिः - [ ]

पलालं न दहत्यग्निर्दह्यते न गिरिः क्वचित्।

नाऽसंयतः प्रव्रजति भव्यजीवो न सिद्ध्यति।।

पलालपर्यायस्य अग्निसद्भावपर्यायादत्यन्तभिन्नत्वात्, यः यः पलालो नासौ दह्यते यश्च भस्मभावमनुभवति नासौ पलाल-पर्याय इति।

5

यानी (विषयबोधक) वचनात्मक शब्द का ही यहाँ प्रतिपादन अभिप्रेत है।

शंका :- पर्यायनय का प्रतिपाद्य विषय तो अर्थ ही है न कि शब्द। फिर शब्द को क्यों 'प्रतिपाद्य' दिखाते हैं ?

उत्तर :- नय का आधारभूत जो अर्थ (यानी विषय) है उस का प्रतिपादक वचन उस से (अर्थ से) सर्वथा भिन्न नहीं होता, कथंचिद् अभिन्न होता है। अतः पर्यायनय का विषय शब्द भी है।

10

शंका :- अर्थ को ही पर्यायनय का विषय क्यों न कहा ?

उत्तर :- न कहने का प्रयोजन यह है कि शब्दनय अर्थव्युत्पादक शब्द से गर्भित ही वाच्यार्थ का प्रतिपादन करे तभी प्रमाणभूत माना गया है - इसी तथ्य को इंगित करने के लिये सूत्रकार ने शब्द को पर्यायनय का आधार कहा है।

### [ पर्यायनय का कुछ स्वरूप निर्धारण ]

15

पर्यायनय के प्रस्ताव में, पूर्वापर (यानी नष्ट-अनुत्पन्न) पर्यायों से सर्वथा पृथक् वर्तमान एकपर्याय के बारे में (यहाँ विषय अर्थ में सप्तमी विभक्ति है।) प्ररूपण करनेवाला वचन ही सीमाबद्ध यानी मर्यादानुसारी हो सकता है, क्योंकि वर्तमान एक पर्याय कभी अन्य पर्याय से सम्बन्ध नहीं रखता। विशेषस्वभाव ही पर्याय है (जो कि वर्तमानसमय की ही वस्तु है।) वह अपने निराले स्वभाव में ही निमग्न रहता है, अन्य किसी पर्याय के प्रति उस को कुछ भी लेना देना नहीं है - इस प्रकार की मान्यता धारण करने वाले तज्ज्ञों ने भी यही कहा है - (तत्त्वार्थसूत्र आदि में उद्धृत) 'अग्नि पलाल (= तृणविशेष) का दहन नहीं कर सकता, पर्वत कभी दाहाभिभूत नहीं होता, असंयत कभी प्रव्रज्या (= दीक्षा) अंगीकार नहीं करता, भव्यजीव कभी सिद्ध नहीं बन सकता।"

भावार्थ :- लोग रूढी से (उपचार से) कहते हैं कि अग्नि पराळ को भस्मीभूत करता है। किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से देखे तो पता चलेगा कि पलाल-पर्याय और अग्निज्वलनपर्याय यानी (भस्मीभवन पर्याय) दोनों एक-दूसरे से अत्यन्तभिन्न एवं भिन्नक्षणवृत्ति हैं, दोनों ही एक-दूसरे से अलिप्त-असम्बद्ध हैं। कारण, पराळ जब तक जिस क्षण में जिन्दा है, पराळ ही है, वह दाहपरिणत कैसे उस क्षण में कहा जायेगा ? भस्मीभावापन्न क्षण उस से सर्वथा भिन्न ही है, जिस को पलाल पर्याय के साथ कोई स्नान-सूतक ही नहीं है तो कैसे कह सकते हैं कि भस्मभाव पराल का है ? इसी तरह प्रतिक्षणभिन्न पर्यायों के कारण पर्वत और भस्मभाव, असंयत और प्रव्रजित एवं भव्यजीव एवं सिद्धजीवों का भी सर्वथा भेद समझ लेना।

30

\*. तत्त्वार्थ० टी० पृ.४०२ पं. २२। श्री भगवतीसूत्र टी. पृ.२०५ अ. पं.४ - 'त्यग्निर्भिद्यते न घटः क्वचित्'।

♦. 'भव्योऽसिद्धो न सिध्यति' नयोप. पृ.४० द्वि. श्लो.३१। - इति पूर्वसम्पादकौ।

[ ऋजुसूत्रे बौद्धसंमतवादप्ररूपणायामक्षणिकवादपूर्वपक्षः ]

ननु च क्षणक्षयपरिणामसिद्धावेवं वक्तुं युक्तम्, प्रमाणरहितस्य वचसो विपश्चितामनादरणीयत्वात्।  
न च क्षणक्षयावगमे प्रमाणव्यापारः।

यतो न तावदध्यक्षं क्षणक्षयितां भावानामवगच्छत् प्रतीयते, परैरभ्युपगम्यते वा । यतः परैरन्त्यक्षणदर्शनामेव  
5 प्रत्यक्षतः क्षणिकताया निश्चयः प्रकल्प्यते, भ्रान्तिकारणसद्भावाद् न प्राक्। उक्तं च — [प्र.वा.१-१०४]  
क्वचित्तदपरिज्ञानं सदृशापरसंभवात्। भ्रान्तेरपश्यतो भेदं मायागोलकभेदवत्।। इति।

नाप्यनुमानात् तन्निश्चयः, अनुमानस्य लिङ्गबलादुपजायमानत्वात्। सामान्यलक्षणं च तस्य 'पक्षधर्मत्वम्  
सपक्षे सत्त्वम् विपक्षे चाऽसत्त्वमेव' (न्यायप्र.सू. ) निश्चितम् इति परैर्गीयते। तत्र पक्षधर्मतानिश्चयः  
'प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा' [ ] इति वचनाद् यद्यपि प्रमाणद्वयनिबन्धनः सिद्धः, तथापि सपक्षे सत्त्वं

10 [ ऋजुसूत्रावतरितबौद्धमतप्ररूपणा-अक्षणिकवादिपूर्वपक्ष ]

पूर्वपक्ष :- पलालपर्याय और भस्मपर्याय इत्यादि में आपने भेद दर्शाया वह न्याययुक्त नहीं है। न्याययुक्त  
तभी कहा जा सकता है यदि वस्तुपरिणाम मात्र को प्रमाणपुरस्सर क्षणिक यानी क्षणभंगुर सिद्ध किया जाय।  
बगैर प्रमाण के बोलेजानेवाले वचनों के प्रति विद्वज्जनों को आदर नहीं होता। वस्तु के क्षण-विनाशमत  
के अंगीकार में किसी भी प्रमाण का सामर्थ्य नहीं है। कारण यह है —

15 ऐसा किसी को अनुभव नहीं है कि प्रत्यक्ष प्रमाण वस्तु की क्षणभंगुरता को भाँप लेता हो। क्षणिकवादी  
विद्वान् भी ऐसा मानते नहीं है। कारण यह है — प्रत्यक्ष से क्षणिकता का (यानी वस्तुविनाश का) निश्चय  
तो अन्त्यक्षण की पूर्वक्षणों में नहीं होता, क्योंकि तब स्थिरता के भ्रम करानेवाले वासनादि कारण मौजूद  
रहते हैं। प्रमाणवार्तिक ग्रन्थ में आचार्य धर्मकीर्त्तिने यही कहा है — (१-१०४)

20 'समान अन्य (भाव) की (त्वरित) उत्पत्ति के कारण, जादूगर के गोलक भिन्न भिन्न रहते हुए भी  
जैसे भेद का दर्शन न होने से भ्रान्ति के जरिये कहीं पर क्षणिकता का अनुभव नहीं होता है। (जैसे  
जादूगर अपनी बगल में एक गोली डाल कर फिर मुँह से निकाल कर दिखाता है तो यद्यपि बगलवाली  
और मुखनिर्गत गोली भिन्न भिन्न होने पर भी देखनेवाले को सादृश्य के कारण एक ही दीखती है —  
यह देखनेवाले की भ्रान्ति है।)

[ अनुमान से क्षणभंगवाद का निश्चय अशक्य ]

25 प्रत्यक्ष से क्षणिकता की सिद्धि जैसे नहीं होती, अनुमान से भी उस की सिद्धि शक्य नहीं है, क्योंकि  
अनुमान का उत्थान लिङ्ग पर ही निर्भर है। क्षणिकता का साधक कोई लिङ्ग ही नहीं है। लिङ्ग का  
जो सामान्य लक्षण है वह क्षणिकतासाधक किसी भी पदार्थ में घट नहीं सकता। देखिये — पक्षधर्मता,  
सपक्ष में वृत्तित्व, विपक्ष में अभाव — ये तीन समुदित धर्म लिङ्ग का लक्षण है ऐसा क्षणिकवादी बौद्धों  
का अभिमत है। यद्यपि लिंग में 'प्रत्यक्ष से या अनुमान से' इस बौद्धवचनाधारित पक्षधर्मता का निश्चय  
30 प्रमाणयुगल के द्वारा कर भी लिया जाय, फिर भी सपक्ष में सत्ता का सत्त्वादि हेतु में निश्चय करना  
अशक्य है। कारण, यहाँ सभी अर्थों में क्षणिकतासिद्धि अभिप्रेत होने से पक्ष बाहर कोई अर्थ ही नहीं

सत्त्वादेर्हेतोः निश्चेतुमशक्यम् क्षणिकतया सर्वार्थानां साध्यितुमभिलषि(त)त्वात् सपक्षस्यैवाभावात् ।

साध्यस्य तन्मात्रानुबन्धः स्वभावहेतोर्विशेषलक्षणम्<sup>१</sup> क्षणक्षयस्य चाऽनध्यक्षत्वात् तत्र सोऽपि नाध्यक्षतो निश्चितः । नाप्यनुमानात् तन्निश्चयः अनवस्थाप्रसङ्गात् ।

तत्कार्यताऽवगमः कार्यहेतोरपि विशेषलक्षणम् । न च क्षणिक(व)स्तुकार्यतया किञ्चित् प्रसिद्धं वस्तु, प्रत्यक्षाऽनुपलम्भसाधनत्वात् तस्याः । न च क्षणिकस्य किञ्चित् कार्यं सम्भवति । तथाहि— न विनष्टात् 5 कारणात् कार्यजन्म असतोऽजनकत्वात् । नाप्यविनष्टात्, व्यापारालीढस्य द्वितीयक्षणावस्थितेर्जनकत्वे क्षणभङ्गभङ्गप्रसङ्गात् निर्व्यापारस्य च शशशृंगवदजनकत्वात् कार्य-कारणयोरेककालताप्रसक्तेः ।

है जिसे सपक्ष (= उदा०) के रूप में दिखाया जा सके। जब सपक्ष नहीं तो 'सपक्ष में सत्ता' लक्षणांश लिंग में घटेगा कैसे ?

### [ क्षणिकता अनुमान के लिये तीनों हेतु व्यर्थ ]

10

उपरांत, हेतु के तीन प्रकार बौद्धमान्य हैं, १-स्वभाव, २-कार्य, ३-अनुपलब्धि । उन में से स्वभाव हेतु यहाँ निरवकाश है। कारण, स्वभाव हेतु का विशेष लक्षण है — साध्य का हेतुमात्र से अनुबन्ध यानी तादात्म्य होना। किन्तु यहाँ क्षणिकता साध्य प्रत्यक्षविषय न होने से उस का तादात्म्य भी सत्त्व हेतु में प्रत्यक्ष से निश्चित नहीं हो सकता। अनुमान से भी वह निश्चित नहीं हो सकता क्योंकि उस अनुमान के साध्य का हेतु के साथ तादात्म्यादि निश्चित करने के लिये और एक अनुमान जरूरी बन जायेगा, 15 उस अनुमान के लिये भी और एक अनुमान.. इस प्रकार अन्त ही नहीं आयेगा।

### [ कार्य और अनुपलब्धि हेतु के विशेषलक्षण का निरसन ]

२ — कार्य हेतु का विशेषलक्षण है साध्यजन्यता का निश्चय। परिस्थिति ऐसी है कि क्षणिकवस्तु(साध्य) के कार्यरूप में कोई पदार्थ ही सिद्ध नहीं है। कार्यरूप से पदार्थ की सिद्धि, प्रत्यक्ष और अनुपलम्भ यानी प्रसंग और विपर्यय से होती है। इन के आधार पर यहाँ क्षणिक अर्थ का कोई कार्य सिद्ध 20 नहीं होता। देखिये— जब सोचते हैं कि विनष्ट कारण (क्षण) से कार्य (क्षण) उत्पन्न होगा या अविनष्ट क्षण से ? असत् पदार्थ कार्यजनक नहीं होता, विनष्ट कारण तो असत् है, अतः उस से कार्योत्पत्ति असम्भव है। यदि अविनष्ट कारण से, तो मतलब यह हुआ कि प्रथम क्षण में कारण अपनी उत्पत्ति में व्यग्र होगा, दूसरे क्षण में विनष्ट नहीं होगा किन्तु कार्योत्पत्ति अनुकूल व्यापार करेगा, तभी वह तीसरे क्षण में कार्योत्पादक बनेगा, किन्तु यहाँ द्वितीय-तृतीयादि क्षणों में कारण की अवस्थिति रह 25 जाने पर क्षणभंगवाद का ही अवसान हो जायेगा। यदि वह विना व्यापार ही कार्योत्पत्ति करेगा, तब तो विना व्यापार शशशृंग भी कार्योत्पत्ति कर सकेगा, किन्तु विना व्यापार शशशृंग कार्योत्पत्ति नहीं कर सकता तो कारणक्षण भी कार्यजनक नहीं हो सकता। विना व्यापार कार्योत्पत्ति मानने पर तो कारण स्वक्षण में ही कार्योत्पत्ति कर बैठेगा — अतः कारण-कार्य समानकालीन हो जाने की आपत्ति आयेगी।

30

१. स्वभावः स्वसत्ताभाविनि साध्यधर्म हेतुः ।।१६।। (न्या.बि.द्वि.प.पृ.१८-१९)



अनुपलब्धेश्चात्राधिकार एवाऽसम्भवी प्रतिषेधसाधकत्वात्तस्याः, क्षणिकताविधिस्त्वत्र साध्यत्वेनाऽभिप्रेतः । न चापरो हेतुः\* सौगतैरभ्युपगम्यते । नापि प्रत्यक्षानुमानव्यतिरिक्तं प्रमाणान्तरं\* तदभिप्रायेण विद्यत, इति कुतः क्षणिकतानिश्चयः ?

प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षास्व(?क्षाच्च) भावानां स्थैर्यप्रतिपत्तेः क्षणिकाभ्युपगमोऽसंमत एव । न च प्रत्यभिज्ञा

5 न प्रमाणम्—▼

तत्र(1)पूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम् ।

अदुष्टकारणारब्धं प्रमाणं लोकसंमतम् ॥

इति प्रामाण्यलक्षणयोगात् । प्रत्यक्षं च प्रत्यभिज्ञा आत्मेन्द्रियार्थसम्बन्धानुविधानतस्तदन्यप्रत्यक्षवत् सिद्धम् । न च स्मृतिपूर्वकत्वात् 'स एवायम्' इत्यनुसन्धान(1?)ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वमयुक्तमिति वाच्यम्,

10 सत्सम्प्रयोगजत्वेन स्मरणपश्चाद्भाविनोप्यक्षप्रत्ययस्य लोके प्रत्यक्षत्वेन प्रसिद्धत्वात् । उक्तं च— (श्लो.वा.प्रत्यक्ष.)

न हि स्मरणतो यत् प्राक् तत् प्रत्यक्षमितीदृशम् ॥२३४॥

वचनं राजकीयं वा लौकिकं नापि विद्यते ।

न चापि स्मरणात् पश्चादिन्द्रियस्य प्रवर्तनम् ॥२३५॥

वार्यते केनचिन्नापि तत् तदानीं प्रदुष्यति ।

15 तेनेन्द्रियार्थसम्बन्धात् प्रागूर्ध्वं वापि यत् स्मृतेः ॥२३६॥

३—अनुपलब्धि हेतु का यहाँ क्षणिकतासिद्धि के लिये अधिकार ही संभवित नहीं है, क्योंकि वह तो निषेध(= अभाव) की साधक होती है, जब कि यहाँ विधिस्वरूप (= भावात्मक) क्षणिकत्व सिद्ध करना अभिलषित है । और किसी हेतु का तो बौद्धमत में स्वीकार ही नहीं है । उपरांत, बौद्ध मत में प्रत्यक्ष-अनुमान के सिवा अन्य किसी प्रमाण का भी स्वीकार नहीं है, तो क्षणिकता की सिद्धि यानी निश्चय किस

20 प्रमाण से सिद्ध होगा ?

### [ प्रत्यभिज्ञा के प्रामाण्य और प्रत्यक्षत्व का समर्थन ]

क्षणिकवाद का अंगीकार इस लिये भी असत् है, प्रत्यभिज्ञा संज्ञक प्रत्यक्ष से पदार्थों की स्थिरता यानी चिरकालस्थायिता सुज्ञात होती है । प्रत्यभिज्ञा को 'अप्रमाण' मत कहना, हेतुबिन्दुटीकादि विविध ग्रन्थों में कहा है — "प्रमाण की व्याख्या में, वह प्रमाण लोकमान्य होता है जिस में अपूर्व अर्थ का भान होता

25 हो, बाधमुक्त हो, निर्दोष कारणों से प्रादुर्भाव हुआ हो ।" — इस प्रमाणलक्षण का अन्वय प्रत्यभिज्ञा में निर्बाध है । ऐसा भी मत कहो कि प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष नहीं है । जैसे घटादिप्रत्यक्ष आत्मा, इन्द्रिय-अर्थ संनिर्कर्षजन्य होता है वैसे यह प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष भी सिद्ध है । ऐसा भी मत कहना कि — 'यह तो वही है' इस प्रकार से होने वाला पूर्वापर अनुसन्धानकारक ज्ञान तो पूर्वाश की स्मृति से गर्भित होने के कारण, प्रत्यभिज्ञा को 'प्रत्यक्ष' मानना अनुचित है — क्योंकि जानकार लोगों में, स्मृति गर्भित होने पर भी सत् पदार्थ के

\*. त्रिरूपाणि च त्रीण्येव लिङ्गानि ॥११॥ अनुपलब्धिः स्वभावः कार्यं च (न्या.बिं.द्वि.पं.पृ.२१) ♦. द्विविधं सम्यग्ज्ञानम् ॥२॥ प्रत्यक्षमनुमानं च ॥३॥ (न्या.बिं.प्र.प.पृ.५-६) ▼. हेतुबिन्दु-प्रमाणपरीक्षा - तत्त्वार्थश्लो.-प्रमेयक.मा.नयोपदेशादिग्रन्थेषु श्लोकोयमुद्धृतः ।

विज्ञानं जायते सर्वं प्रत्यक्षमिति गम्यताम् । २३७ पूर्वार्धः ।

इत्यनेकदेश-कालावस्थासमन्वितं सामान्यम् द्रव्यादिकं च वस्तु अस्याः प्रमेयमित्यपूर्वप्रमेयसद्भावः ।  
तदुक्तम्— [श्लो.वा.प्रत्यक्ष. २३२-२३३-२३४]

गृहीतमपि गोत्वादि स्मृतिस्पृष्टं च यद्यपि । तथापि व्यतिरेकेण पूर्वबोधात् प्रतीयते ॥

देशकालादिभेदेन तत्रास्त्यवसरो मितेः । यः पूर्वमवगतो ना(?)शः स च नाम प्रतीयते ॥ 5

इदानींतनमस्तित्वं न हि पूर्वधिया गतम् । इति ।

नन्वेवं भिन्नाभिन्नवस्तुविषयोऽनिब(?नुस)न्धानप्रत्ययः प्राप्तः । इष्यत एवैतत्, यतो(न?)भिन्नत्वे न  
प्रत्यभिज्ञानम् अभिन्नत्वेऽपि न प्रमेयभेदः । प्रत्यभिज्ञाव्यपदेशोऽप्यस्य भेदाभेदालम्बनत्वमेव द्योतयति । यतो

सनिकर्ष से जन्य होने के कारण इन्द्रियजन्य बुद्धि का, प्रत्यक्षरूप से व्यवहार सुविदित है । श्लोकवार्तिक  
ग्रन्थ में कहा गया है — 10

‘ऐसा कोई राजकीय (= राजाज्ञारूप) या लोकमान्य वचन नहीं है कि स्मृति के पूर्व होनेवाला  
(ज्ञान) प्रत्यक्ष नहीं होता ॥ स्मृति के बाद यदि (प्रत्यक्षजनक) इन्द्रिय प्रवृत्ति होती है तो कोई भी  
उस को रोक नहीं सकता । अतः प्रत्यक्ष उस काल में प्रदूषित (= दोषग्रस्त) नहीं है ॥ अतः स्मृति  
के पूर्व या पश्चाद् जो विज्ञान इन्द्रियार्थ सम्बन्ध से निपजता है वह सब ‘प्रत्यक्ष’ जान लेना ॥

### [ प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष का प्रमेय कौन ? ] 15

इससे फलित होता है कि प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष प्रमाण है जिस का प्रमेय है — अनेक देशों में,  
अनेक काल में, अनेक अवस्थाओं में अनुगत सामान्य एवं उस से विशिष्ट वस्तु । (उदा० देवदत्त  
द्रव्य एवं भिन्न भिन्न स्थलों में, बचपन आदि विविध काल में, एवं विविध बाल्यादि अवस्थाओं में  
‘यह वही देवदत्त है’ इस प्रकार देवदत्तत्व सामान्य विषयक प्रत्यभिज्ञा होती है वह इन्द्रियसम्बन्ध  
जन्य होने से ‘प्रत्यक्ष’ है ।) ऐसा नहीं है कि प्रत्यभिज्ञा सर्वथा पूर्वदृष्ट प्रमेय गोचर ही हो — श्लोकवार्तिक 20  
में कहा है — ‘हालाँकि गोत्वादिसामान्य स्मृतिस्पृष्ट हो कर (पूर्व में) गृहीत रहता है, फिर भी पूर्वबोध  
(में जैसा दीखता था उस) से भिन्नरूपेण प्रतीत होता है ॥ देश-कालादि भेद से वहाँ (अपूर्वतया)  
प्रमिति अवसरप्राप्त है । पहले जिस अंश का (बुद्धत्वादि अवस्था आदि का) बोध नहीं हुआ था वह  
(अपूर्वतया) यहाँ प्रतीत होता है । आखिर, पूर्वबुद्धि में वर्तमानक्षणव्याप्त अस्तित्व का तो ग्रहण नहीं  
हुआ ॥ (वह अभी गृहीत होने से अपूर्व प्रमेय का बोध प्रत्यभिज्ञा में सिद्ध होता है ।) 25

### [ प्रत्यभिज्ञा में भिन्नाभिन्नवस्तुविषयता का समर्थन ]

शंका :- ‘यह वही हैं’ इस प्रकार पूर्वोत्तरकालीन दृष्ट पदार्थ के ऐक्य का अनुसन्धान करनेवाली प्रत्यभिज्ञा  
प्रतीति में भिन्नाभिन्न वस्तुविषयता प्रसक्त होगी ।

उत्तर :- वह तो हमें इष्ट ही है । अगर पूर्वोत्तरकालीन वस्तु सर्वथा भिन्न होती तो ऐक्यावगाही प्रत्यभिज्ञा  
का उद्भव ही नहीं होता । तथा, यदि वहाँ सर्वथा अभेद होता तो कालभेदप्रयुक्त प्रमेयभेद न होता । उस 30  
प्रत्यक्ष की ‘प्रत्यभिज्ञा’ ऐसी संज्ञा भी यही सूचित करती है कि इस का विषय अकेला भेद या अकेला

नैककालैकप्रमेयगोचराणां भिन्नप्रमातृसम्बन्धिज्ञानानां 'प्रत्यभिज्ञा' इति व्यपदेशः। नापि सर्वथा भिन्नेषु घट-पटादिषु। न च कालस्यातीन्द्रियत्वाद् भिन्नकालैकप्रमेयप्रत्यभिज्ञाने न प्रमेयातिरेक इति वक्तव्यम्, यतो यद्यपि न कश्चित् तत्र प्रमेयातिरेकस्तथापि घटादयः कदाचिदुपलक्षिताकारा अन्यदाऽनुपलक्ष( ?क्ष्य)माणाः सदसत्तया सन्देहविषयतामापद्यन्ते तत्त्वभावावेदिका च प्रत्यभिज्ञा तेषां सन्देहविषयतामपाकुर्वाणा प्रमाणतामश्नुते। यतो

5 न विषयातिरेक एव प्रामाण्यनिबन्धनं प्रत्ययानाम् किन्तु सन्देहापाकरणमपि सन्दिग्धस्य। यदा त्वविरतोपलब्धिस्तन्नाः पुनः पुनरपेतसन्देहसङ्गाः प्रत्यभिज्ञायन्ते भावाः तदा सन्देहविच्छेदाधिकफलाभावात् मा भूत् प्रत्यभिज्ञा प्रमाणम्।

न च सविकल्पकमेवैकं प्रत्यभिज्ञाज्ञानम् अविकल्पकस्यापि एकत्वग्राहिणः प्रत्यभिज्ञाज्ञानस्य सद्भावात्। तथाहि— एकप्रमातृसम्बन्धिप्रथमप्रत्ययाऽभिन्नविषयाकारानुभवतोऽनुत्पद्यद्वूपार्थग्राह्यविकल्पकं ज्ञानमनुभूयत एव,

10 एकत्वग्राहि च ज्ञानं प्रत्यभिज्ञाज्ञानमुच्यते इति। क्षणिकाभिव्यक्तिष्वपि शब्दमात्रास्वालोचनप्रत्ययावगतमेव स्थैर्यम् 'स एवायम्' इत्यनन्तरमनुसन्धानविकल्पोत्पत्तिदर्शनात्। तथाहि— अर्थसंसर्गानुसारिणोऽनुभवादुपजा-

अभेद नहीं किन्तु भेदाभेद ही है। देखिये— किसी एक काल में अगर भिन्न भिन्न ज्ञाता किसी एक ही प्रमेय का बोध करे, फिर भी वह बोध 'प्रत्यभिज्ञा' नहीं कहा जाता। उपरांत, भिन्नभिन्न घट-पटादि का एक व्यक्ति को होनेवाला बोध भी प्रत्यभिज्ञा नहीं कहा जाता।

15 [ संदेहनिरसन भी प्रामाण्य का प्रयोजक ]

शंका :- प्रामाण्य का मूल है प्रमेयातिरेक यानी अपूर्व (= अधिक) प्रमेयग्रहण, प्रत्यभिज्ञा में कालभेद का ग्रहण अतीन्द्रिय होने से शक्य नहीं। अतः कालभेदमूलक प्रमेयभेद गृहीत न होने से एकरूप प्रमेय की ग्राहक प्रत्यभिज्ञा प्रमाण नहीं हो सकती।

उत्तर :- ऐसा कहना ठीक नहीं है। हालाँकि कालभेद अतीन्द्रिय होने से प्रमेयभेद उपलक्षित नहीं

20 होता, फिर भी पूर्व में एक बार कभी घटादि देखने में आ गये। तदनन्तर विविध व्याक्षेपो के कारण, वे घटादि नहीं देख पाये तब उन के सत्त्व, असत्त्व के बारे में सन्देह हो गया। पुनः प्रत्यभिज्ञा होने पर घटादि अपने स्वभाव से वेदित हुए, अतः घटादि की संदेहग्रस्तता दूर हो गयी। इस प्रकार सन्देहग्रस्तता का निरसन करनेवाली प्रत्यभिज्ञा प्रमाणता को प्राप्त होती है। विषयातिरेक यानी विषयाधिक्य ही प्रतीतियों में प्रामाण्यप्रयोजक हो ऐसा नहीं है किन्तु संदेहग्रस्त प्रमेयों के संदेहों का अपाकरण भी प्रामाण्य-प्रयोजक

25 है। हाँ, जब पुनः पुनः सत्त्वर संदेहमुक्ततया निरन्तर भावोपलब्धि प्रवाह चलता रहे तब न संदेहापाकरण है न विषयातिरेक, यानी संदेहविच्छेद जैसा कोई अधिक फल न होने से उस वक्त प्रत्यभिज्ञा को प्रमाण मत मानो, कोई हानि नहीं।

[ प्रत्यभिज्ञा अविकल्परूप भी होती है ]

प्रत्यभिज्ञाज्ञान एकमात्र सविकल्प ज्ञान ही होता है ऐसा भ्रम नहीं रखना। अविकल्परूप भी प्रत्यभिज्ञान

30 होता है जो एकत्वावगाहि होता है। देखिये — जैसे, एक ही प्रमाता को प्रथमानुभव से अभिन्नाकारविषयस्पर्शी अखण्डस्वरूप अर्थ के ग्राहकरूप में अविकल्प अनुभव होता ही है। अभिन्नाकारविषयस्पर्शी और अखण्डस्वरूप अर्थ का ग्रहण यही तो एकत्वग्रहण है और एकत्वग्राहि ज्ञान ही 'प्रत्यभिज्ञा ज्ञान' कहा जाता है। यहाँ

तान्नीलविकल्पात् तद्व्यापारानुसारिणो यथा नीलानुभवव्यवस्था सौगतैरभ्युपगता तथा 'पूर्वदृष्टं पश्यामि' इत्युल्लेखवतानुसन्धानविकल्पात्(?द)त्रुट्यद्रूपशब्दाद्यवभासिनस्तत्त्वात् तर्ह्य(?द)धिगत रूपत्वं किमिति न व्यवस्थाप्यते ? 'पूर्वदृष्टमेव पश्यामि' इत्युल्लेखवानुपजायमानोऽप्यनुसन्धानप्रत्ययो न प्रत्यभिज्ञाध्यक्षतामनुभवति क्षणिकाभिव्यक्तिषु शब्दमात्रास्वक्षसंसर्गाभावतस्तदोपजायमानत्वात् । चिरन्तरकालाभिव्यक्तीनां तु घटादिव्यक्तीनां अनुसन्धानविकल्पप्रत्यधिगतमेव स्थिरत्वम् इन्द्रियसंसर्गानुसरणतस्तस्य प्रादुर्भावात् ।

5

न चेन्द्रिय(1)विषयत्वात् स्थैर्यस्य तदनुसारिणो विकल्पस्य वाऽध्यक्षस्य न पौर्वापर्ये वृत्तिरिति वक्तुं युक्तम्, नीलादावप्यस्य समानत्वात् । यथा चाक्षव्यापारानन्तरं नीलाद्यवभासस्यानुभूतेस्तस्य नीलादिविषयत्वम् तथा नयनव्यापारानन्तरमत्रुट्यद्रूपप्रतिभासानुभूतेस्तस्य तद्विषयत्वमपि व्यवस्थापनीयम् । न च पूर्वदर्शानुस्मरणमन्तरेण दृश्यमानस्यार्थस्य पूर्वदृष्टताधिगतिर्न सम्भवति पूर्वदर्शनस्मरण एव वर्तमानदर्शनग्राह्यस्य

शब्दनित्यतावादी मीमांसक कहता है कि जिन शब्दमात्राओं की अभिव्यक्ति हालाँकि क्षणिक ही होती है, फिर भी उन में आलोचनप्रतीति यानी निर्विकल्प ज्ञान के द्वारा स्थिरता का भान गर्भितरूप से होता ही है । अत एव उसके बाद 'यह वही (ककार) है' ऐसा अनुसन्धान विकल्प उत्पन्न होता हुआ दिखाई देता है । 'यह वही(ककार) है' इस अनुसन्धान प्रतीति का उदाहरण लेकर यदि कोई 'पूर्वदृष्ट को देखता हूँ' ऐसी भिन्न भिन्न शब्दमात्राओं की अनुसन्धानात्मक प्रतीति (यानी सर्वथा भिन्न घट-पट शब्दों की प्रतीति) में भी प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष का आपादन करें तो वह उचित नहीं है — क्योंकि तब पूर्वकालीन शब्दमात्राओं के साथ इन्द्रिय का संनिकर्ष उपस्थित नहीं है । फिर भी, दीर्घकाल के अन्तराल से अभिव्यक्त होनेवाले घटादि की स्थिरता को भी ग्राहक अनुसन्धान प्रतीति घटादि की स्थिरता को भी ग्रहण कर लेती है — इस में बाध नहीं है क्योंकि उसी घटादि के साथ उत्तरकाल में भी इन्द्रिय संसर्ग होने के कारण ही उस का (अनु० प्रतीति का) उदय होता है ।

10

15

### [ प्रत्यक्ष की स्थैर्यविषयता का समर्थन ]

20

आशंका :- स्थैर्य (= चिरकालसम्बन्ध) अतीन्द्रिय होने से, स्थैर्य ग्रहण प्रवण विकल्प अथवा प्रत्यक्ष (= अविकल्प) की उस के पूर्वापरभावग्रहण में शक्ति नहीं हो सकती ।

उत्तर :- नीलादि भी क्षणमात्रवृत्ति होने से क्षण की अतीन्द्रियता के कारण उस का प्रत्यक्ष हो नहीं सकेगा — आप को भी यह समान दोष है । फिर भी जैसे इन्द्रियसंचार के बाद नीलादि का अवभास अनुभवसिद्ध है अतः प्रत्यक्ष में नीलादिविषयता माननी पडती है, उसी तरह नेत्रसंचार के बाद अस्खलितरूप से स्थैर्य के प्रतिभास का अनुभव होता है अतः स्थैर्यविषयता भी प्रत्यक्ष में मान लेना ही चाहिये ।

25

आशंका :- 'पूर्वदृष्टं स्मरामि' इस ढंग से, पूर्वदृष्ट वस्तु के पश्चात् स्मरण के विना, वर्तमान में दृश्यमान वस्तु की पूर्वदृष्टता का अवगम सम्भव नहीं । कारण, पूर्वदर्शन का स्मरण होने पर ही वर्तमानप्रत्यक्षगृहीत पदार्थ में 'पहले यह देखा है' ऐसा पूर्वदृष्ट का अध्यक्षसाय उत्पन्न होता है । अब वस्तुस्थिति ऐसी है कि वर्तमानकालीन दर्शन में पूर्वदर्शन तो भासित नहीं होता । तब उस का प्रतिभास न होने पर, वर्तमानदर्शन गृहीत पदार्थ में पूर्वदृष्टता को जान लेने में प्रत्यक्ष कैसे समर्थ हो पायेगा ? पूर्वदृष्टता के अवगम के विना इन्द्रियजन्य प्रतीति की पूर्वापरभाव के ग्रहण में प्रवृत्ति कैसे होगी ?

30

‘पूर्वदृष्टमेतत्’ इत्यध्यवसायात्, तच्च दर्शनं नेदानीन्तनदृशि प्रतिभातीति तदप्रतिभासने न तद(?दृ)ष्टतां वर्तमानदर्शनग्राह्यस्याध्यक्षमधिगन्तुं प्रभुरि(?दृ)ति कथं पौर्वापर्येऽक्षजप्रत्ययप्रवृत्तिः ? इति वक्तव्यम्, यतः ‘पूर्वदृष्टमेतत्’ इत्युल्लेखमन्तरेणाऽपि पौर्वापर्ये दृगवतारात्।

- तथाहि— मलयगिरिशिखराद्यनुस्मरणकालेऽप्यक्षजे दर्शने पुरो व्यवस्थितो नीलादिरर्थः स्फुटमन्नुट्यद्वूपतया प्रतिभाति। तद्वूपतया प्रतिभासनमेवाऽक्षणिकत्वप्रतिभासनं कथं न निर्विकल्पकप्रत्यभिज्ञाध्यक्षसमवसेयं तत्त्वम्? न च निर्विकल्पाध्यक्षेणैवैकत्वग्रहणात् तदेवेदमपि(?मिति) सविकल्पप्रत्यभिज्ञाध्यक्षं गृहीतग्राहितया व्यवहारमात्रदर्शन(?प्रवर्तन)फलत्वात् नीलादिविकल्पवदप्रमाणम् (?) यतो गृहीतमगृहीतं वार्थस्वरूपमवभासयन्ती प्रतिपत्तिः अबाधितरूपा अर्थाऽविसंवादित्वात् प्रमाणम् अर्थाधिगतिफलनिबन्धनत्वे(न) प्रमाणस्य लोके सिद्धत्वात्। ततो निर्विकल्पकस्य विकल्पकस्य वा स्थैर्यग्राहिणः प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययस्य प्रमाणतेति तद्बाधितत्वात्
- 10 क्षणक्षयस्य नाभ्युपगमाहता युक्तिसङ्गता।

विनाशस्य सहेतुकत्वात् हेतुसंनिधेः प्रागभावात् क्षयिणामपि भावानां कियत्कालं यावत् स्थैर्यमनुमानादप्यवसीयते। न च नाशहेतूनामभावः, ‘दण्डेन घटो भग्नः’ — ‘अग्निना काष्ठं दग्धम्’ इति नाशहेतु-

उत्तर :- ऐसा नहीं बोलना, क्योंकि ‘पूर्व में यह देखा है’ ऐसा उल्लेख न होते हुए भी पूर्वापरभाव के ग्रहण में दर्शन का अवतार हो सकता है।

### 15 [ नीलादि का अतूटरूप से अक्षणिकत्व संवेदन ]

देखिये— जब एक ओर अपनी सामग्री के बल से मलय पर्वत के शिखरादि की याद आ रही है उसी वक्त इन्द्रियादि सामग्री बल से जात दर्शन में अस्खलितरूप से संमुखवर्ती नीलादि अर्थ का स्फुट प्रतिभास भी होता है। यही नीलादि अर्थ प्रतिभास अक्षणिकत्व प्रतिभास गर्भित ही होता है। तो फिर कैसे कह सकते हैं कि अक्षणिकत्व निर्विकल्प प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष से गृहीत नहीं हो सकता ?

- 20 शंका :- (अक्षणिकत्व यानी स्थिरत्व अथवा) एकत्व यदि दर्शन यानी निर्विकल्प प्रत्यक्ष से ही गृहीत हो चुका है, तब तो ‘वह यही है’ ऐसा जो सविकल्प प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष है वह गृहीतग्राहि होने से अप्रमाण ठहरेगा, क्योंकि उस नीलादि सविकल्प का नीलादिव्यवहारप्रवर्तन के सिवा और तो कोई प्रमात्मक फल है नहीं।

- उत्तर :- गृहीत या अगृहीत तत्त्व प्रमाण/अप्रमाण का प्रयोजक नहीं है। कोई भी अबाधितविषयक प्रतीति सही अर्थ स्वरूप को प्रकाशित करती है तो अर्थ-अविसंवादी होने के जरिये प्रमाण होती है। लोगों में अर्थाधिगम (= अर्थप्रमा) फलकारणतारूप से ही प्रमाण की प्रसिद्धि है न कि अगृहीतग्राहितारूप से।

निष्कर्ष :- निर्विकल्प या सविकल्प किसी भी स्थैर्यग्राहक प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष प्रमाणभूत होने के कारण, उस से क्षणिकत्व बाधित हो जाने से क्षणभंगवाद स्वीकारार्ह एवं युक्तिसंगत नहीं है।

### [ विनाश अहेतुक नहीं होता - स्थैर्यवादी ]

- 30 अहेतुक विनाश वादी क्षणिकमत से विपरीत ही स्थैर्यवादी कहता है कि विनाशहेतु के संनिधान से ही नाश होता है, नाशक्षण के पहले जब तक नाशहेतु का संनिधान नहीं है तब तक विनाश भाव भी किंचित्काल पर्यन्त स्थिर यानी जिन्दा रहता है, इस तथ्य को अनुमान से भी जान सकते हैं — (भाव

नामन्वय-व्यतिरेकाभ्यां लोके सुप्रसिद्धत्वात् । अन्वय-व्यतिरेकनिबन्धनो हि सर्वत्र हेतुफलभावः, तमभ्युपगच्छन्  
'हेतुभिरनाधेयत्वं (?ध्वं)सा घटादयः' इति प्रत्येतुं न क्षमः । उक्तं च- [ ]

▽ अभिघाताग्निसंयोग-नाशप्रत्ययसन्निधिम् ।

विना संसर्गितां याति न विनाशो घटादिभिः ॥ इति ।

न चाऽवस्तुत्वाद् विनाशस्य कार्यत्वं न सङ्गतमिति वक्तव्यम्, यतः - [ ] 5

◆ भवान्तरविनिर्मुक्तो भावोऽत्रानुपलम्भवत् ।

अभावः संमतस्तस्य हेतोः किं न समुद्भवः ? ॥

घटेन्धनपयसां समासादितविकाराणामवस्थान्तरमेव ध्वंसं मन्यन्ते । येऽनुपजालविकाराः प्रदीपबुद्ध्यादयो  
ध्वंसमालम्बन्ते तेऽप्यव्यक्तरूपतामात्मस्वभावतां च विकारमेव ध्वंसमासादयन्ति यथा नोपलम्भव्यावृत्तिरेवानुपलम्भः  
परेषां किन्तु विवक्षितोपलम्भादन्यः पर्युदासवृत्त्योपलम्भ एव, तथा भावातिरेकेणाभावस्याऽसंवेद्यत्वाद् भाव 10  
एव(ऽ)भावः ।

कुछ काल स्थिर रहता है, क्योंकि नाशहेतु तब असंनिहित हैं ।) 'नाश का कोई हेतु ही नहीं होता' यह  
कथन गलत है । अन्वय और व्यतिरेक के बल से विश्व में विनाश के हेतु अति प्रसिद्ध है । उदा० 'डंडे  
से घट को फोड़ दिया, आग से लकड़ी जल गयी...' इत्यादि व्यवहारों से स्पष्ट है कि विश्व में घट और  
लकड़ी आदि का नाशहेतु क्रमशः डंडा और आग इत्यादि प्रसिद्ध है । विश्व के कोने कोने में अन्वय-व्यतिरेक 15  
मूलक कारण-कार्य भाव निश्चित है । इस तथ्य को स्वीकारनेवाला कोई भी व्यक्ति 'घटादि का ध्वंस कारण  
से आधेय (= प्रयुक्त) नहीं है' ऐसी बेतुकी बात मानने को तैयार नहीं । किसी विद्वान् ने कहा है —  
'(डंड का) अभिघात अथवा अग्निसंयोग रूप नाशनिमित्तों के सानिध्य के विना नाश घटादि के साथ संसर्गिता  
अनुभव नहीं करता ।' [ ] इति ।

### [ विनाश में कार्यत्व की उपपत्ति ]

20

'विनाश अवस्तुरूप होने से उस में कार्यत्व नहीं मेल खाता' ऐसा मत कहना, क्योंकि बहुत  
से विद्वान् स्पष्ट कहते हैं — 'अनुपलम्भ की तरह अन्यभाव से व्यावृत्त भाव ही 'अभाव' माना गया  
है, तब कारण के विना उस का उद्भव कैसे होगा ?' (अनुपलम्भ का अर्थ उपलम्भाभाव नहीं होता  
किन्तु अन्य (भूतलादि) अर्थ के उपलम्भ को अनुपलम्भ कहा जाता है वैसे अभाव के लिये भी समझ  
लेना ।) इस श्लोकार्थ के आधार पर घट के इन्धन के या दुग्ध के विकारप्राप्त रूपान्तर को ही (खप्पर, 25  
भस्म, दध्यादि को ही) ध्वंसात्मक मानते हैं । तथा, प्रदीप, बुद्धि आदि के बारे में जहाँ भस्मादिवत्  
विकार अनुपलम्भ है वहाँ भी उन की जो व्यक्त भावात्मकस्वभावता है वह बदल कर अव्यक्तभावापन्नता  
जो कि एक विकाररूप है उसी को ध्वंस मानते हैं । (प्रदीप आदि पहले व्यक्तरूप थे, नाशहेतु का  
संनिधान होने पर वे अव्यक्त यानी तिरोहित हो जाते हैं — यही ध्वंसात्मक विकार है ।) जैसे बौद्धों  
के मत में अनुपलम्भ उपलम्भव्यावृत्तिस्वरूप नहीं किन्तु पर्युदास नञ् (तद्भिन्नसूचक नकार) का अवलम्ब 30  
कर के विवक्षित (वस्तु के) उपलम्भ से भिन्न (अन्य वस्तु के) उपलम्भ को ही 'अनुपलम्भ' माना

▽. हेतुबिन्दुटीकायामृद्धतोऽयं श्लोकः ॥ ◆. हेतुबिन्दुटीका-स्याद्वावरत्नाकर-रत्नाकरावतारिकायां समृद्धतोऽयं श्लोकः ।

वि(?वै)शेषिकास्तु मन्यन्ते— भवत्वनपेक्षितभावान्तरसंसर्गः प्रच्युतिमात्रमेव प्रध्वंसाभावः, तथापि तत्र हेतुमत्ता न विरोधमनुभवति। तथाहि— (हेतु० टीका )

सं(सन्) बोधगोचरप्राप्तस्तद्भावे नोपलभ्यते।

नस्या(श्य)न् भावः कथं तस्य न नाशः कार्यतामियात्।।

- 5 कारणधीनः पदार्थेषु प्रध्वंस इति तद्धेतुसन्निधानात् प्रागनासादितविनाशसङ्गतयो भावा इत्यनुमानाद-  
क्षणिकत्वसिद्धेर्न क्षणक्षयिता तेषामभ्युपगन्तुं युक्तेति।

[ ऋजुसूत्रनयावलम्बिसौगतीयः क्षणभंगसिद्धावुत्तरपक्षः ]

- अत्र प्रतिविधीयते— यदुक्तम् (४-५) 'नाध्यक्षतः क्षणिकतावगमः' इति, तत्र यथा अध्यक्षमेव  
क्षणविशरारुतां भावानामवगमयति तथा प्रतिपादितं प्राक् 'वेदान्तवादिमतनिराकरणं कुर्वद्भिः। यदपि  
10 'नानुमानतोऽपि तत्सिद्धिः(ः) सामान्यविशेषलक्षणाऽयोगात् लिङ्गस्य' (४-८) इति - तदसंगतमेव। यतः  
'सपक्षे सत्त्वम्' (४-१०) इत्यादिना स्वसाध्यप्रतिबिम्ब(बन्ध) एव हेतोः निश्चितोऽभिधीयते न दर्शनादर्शनमात्रम्,

जाता है — उसी तरह भाव से विनिर्मुक्त अभाव का संवेदन शक्य न होने से (अन्य) भाव को ही अभाव माना जाता है। (इसीलिये अभाव का 'अस्ति' रूप से अनुभव होता है।)

[ वैशेषिक मतानुसार अभाव में कार्यता संगति ]

- 15 वैशेषिकों की मान्यता है — अन्य दण्डादि भाव के संसर्ग की अपेक्षा नहीं रखनेवाला सीर्फ प्रच्युति  
(= स्वरूपभंग) रूप ही प्रध्वंसाभाव बौद्ध विद्वान् भले ही मानते हो, किन्तु तथास्वभावी प्रध्वंस के साथ  
सहेतुकता का कोई विरोध नहीं है। देखिये — 'बोधगोचरप्राप्त (यानी उपलब्धिलक्षण प्राप्त) पदार्थ (=  
इन्धन) अग्निसान्निध्य के बाद में (नाशपर्यायापन्नभाव) उपलब्ध नहीं होता। तो वह नाश अग्नि का कार्य  
क्यों नहीं होगा ?" — (हेतुबिंदुटीका) इस से फलित यह होता है कि अनुमान से सिद्ध हो सकता है  
20 कि पदार्थों का प्रध्वंस कारणाधीन ही होता है। क्योंकि ध्वंस-कारणों के संनिधान के पहले भाव कभी  
विनाशालिङ्गनप्राप्त नहीं होता।

निष्कर्ष :- भावों की क्षणभंगरता स्वीकारोचित नहीं है।

[ क्षणिकत्वसिद्धि-ऋजुसूत्रानुसारी बौद्ध उत्तरपक्ष ]

- ऋजुसूत्रनयमतवादी अथवा बौद्धमतवादी अब स्थैर्यवादीमत की आलोचना में कहते हैं — स्थैर्यवादी  
25 ने जो कहा (४-१६) प्रत्यक्ष से क्षणिकता का भान नहीं होता — इस के विरुद्ध — प्रत्यक्ष ही भावों की  
क्षणभंगरता को भाँप लेता है इस तथ्य का प्रतिपादन दूसरे खंड में पहले वेदान्तवादिमत के निरसन में  
किया जा चुका है (▼)। यह जो कहा था (४-२३) अनुमान से भी क्षणिकता की सिद्धि नहीं होती, क्योंकि  
लिङ्ग में पक्षधर्मत्वादि सामान्य लक्षण की, अथवा स्वभाव-कार्यत्वादि विशेष लक्षण की संगति नहीं होती।  
यह असंगत है क्योंकि हेतु में 'सपक्षे सत्त्व' इत्यादि (४-२५) सामान्यलक्षण के बहाने हमारा अभिप्राय  
30 है कि हेतु में निश्चितरूप से अपने साध्य के साथ प्रतिबद्धता यानी अव्यभिचारिता होनी चाहिये, सपक्ष  
का अस्तित्व चाहे हो या न हो, उस में हेतु की सत्ता का दर्शन हो या अदर्शन — यह कोई महत्त्व

▼. वेदान्तवादिमतनिराकरणं द्वि० खण्डे पृष्ठ २८० तः २९४ मध्ये पृ.३०६ तः ३३६ मध्ये दृष्टव्यम्।

सपक्ष-विपक्षयोर्हेतुभावाऽभावयोः सर्वत्र निश्चयाऽयोगात्। न हि पार्थिवत्वादौ दर्शनाऽदर्शनयोः सतोरप्यन्वयः(१)निश्चयः इति कृतकत्वादावपि स न स्यात्।

तथाहि— बहुलमदृष्टे(ष्ट)व्यभिचारस्यापि केनचिदसति प्रतिबन्धे सर्वत्र सर्वस्य न तथाभावावगमो नियमनिबन्धनाऽभावात्। न वा सर्वदर्शनाऽव्याप्यसपक्षविपर्यय(क्ष)यो हेतोर्भावाभावौ ग्रहीतुं शक्यौ (?), यतो न हेतुमन्तः सर्व एव भावाः साध्यधर्मसंसर्गितयाऽसर्वविदः प्रत्यक्षा(ः) साध्यविविक्ता वा हेतुविकलतया, 5 अदृश्यतानुपलब्धेरभावाऽव्यभिचारित्वाऽयोगात्। उक्तं च— [श्लो० वा० अर्था० ३८]

गत्वा गत्वा च तान् देशान् यद्यर्थो नोपलभ्यते। तदान्यकारणाभावादसन्नित्यवगम्यते।। इति।

यत्र यत्र साधनधर्मस्तत्र सर्वत्र साध्यधर्मः यत्र च साध्याभावस्तत्र सर्वत्र साधनधर्मस्याप्यभाव इति अशेषपदार्थाक्षेपेण सपक्षेतरयोः हेतोः सदसत्त्वे ख्यापनीय(ये) स्तः। क्वचिदेव तादात्म्य-तदुत्पत्तिलक्षणस्य

नहीं रखता। सपक्ष में हेतु का रहना और विपक्ष में नहीं रहना इन का निश्चय सर्वत्र अनुमान स्थल 10 में होना संभव नहीं। पार्थिवत्व के साथ लोहलेख्यत्व का बार बार दर्शन होता है और पार्थिवत्व न हो वहाँ लोहलेख्यत्व का बार बार दर्शन नहीं होता — फिर भी लोहलेख्यत्व का पार्थिवत्व में अन्वय निश्चय नहीं होता क्योंकि वज्र में पार्थिवत्व होने पर भी लोहलेख्यत्व नहीं रहता — यह बात मंजूर है, लेकिन उस का यह मतलब नहीं कि — कृतकत्वादि में अनित्यत्व का अन्वय निश्चय भी न हो। कृतकत्व हेतु में साध्यप्रतिबद्धता निर्विवाद है। 15

### [ हेतु में साध्यप्रतिबद्धता का निश्चय कैसे ]

देखिये — जिस भाव में प्रायशः अन्य का व्यभिचार नहीं देखा गया, किन्तु अन्य के साथ उस की प्रतिबद्धता प्रमाणसिद्ध नहीं है, तो यह नहीं जाना जा सकता कि सर्व क्षेत्रों में उस भाव का या तत्सदृश सजातीय सर्व भावों का अन्य के साथ अव्यभिचार होगा ही, क्योंकि अव्यभिचारनियम जानने के लिये कोई आधार वहाँ नहीं है। सभी असर्वज्ञ के दर्शन का जो अव्याप्य यानी अविषय हैं ऐसे सपक्ष और 20 विपक्ष में, हेतु का अन्वय और व्यतिरेक जानना शक्य नहीं (इसी लिये हमने कहा है कि अनुमान के लिये सपक्षसत्त्वादि का कोई महत्त्व नहीं है।) क्योंकि असर्वज्ञ को हेतुशाली सभी भावों का साध्यधर्म के साथ अवश्य संसर्गिता का प्रत्यक्ष भान होना शक्य नहीं। तथा जितने साध्यविकल स्थान हैं वे सब हेतु से भी रहित है — ऐसा भी निर्णय असर्वज्ञ लोग प्रत्यक्ष से नहीं कर सकते। कारण, सर्व साध्यविकल स्थानों में कदाचित् हेतुवैकल्य यानी हेतु-अनुपलब्धि मान ली जाय तो वह अदृश्य-अनुपलब्धि है, उस से 25 सर्वत्र हेतु-अभाव का निर्णय नहीं हो सकता, क्योंकि अदृश्यानुपलब्धि में अभाव की अव्यभिचारिता का नियमतः योग असिद्ध है। जैसे कि श्लोकवार्तिक में कुमारील विद्वान ने का है — (श्लो.वा.अर्था. ३८)

### [ साध्यनिश्चय का आधार सीर्फ व्याप्ति ]

‘अर्थ का अभाव तभी निर्णीत हो सकता है यदि उन देशों में पुनः पुनः जाने पर भी अर्थ उपलब्ध न हो।’

जहाँ जहाँ साधनधर्म हो वहाँ सर्वत्र साध्यधर्म रहेगा, जहाँ साध्यधर्म का अभाव होगा वहाँ सर्वत्र



च प्रतिबन्धस्यैकस्मिन्नपि प्रमाणतोऽधिगमेऽन्वय-व्यतिरेकयोर्व्याप्त्या निश्चयः सम्पद्यते नान्यथा तदात्मनस्तादात्म्याभावे नैरात्म्यप्रसङ्गात्, कार्यस्य च स्वकारणाभिमते(त)भावाभावे भवतो निर्हेतुकत्वप्रसक्तेऽथ । उक्तं च — (प्र.वा.३-३९/३४)

स्वभावेऽप्यविनाभावो भावमात्रानुरोधिनि ।

5 तदभावे स्वयं भावस्याभावः स्यादभेदतः ।।

तथा — कार्यं धूमो हुतभुजः, कार्यधर्मानुवृत्तितः ।

स भवंस्तदभावेऽपि हेतुमत्तां विलंघयेत् ।।

यस्य च क्वचित् धर्मिणि प्रागुप्र(प)दर्शितप्रतिबन्धसाधकं प्रमाणं वृत्तम् इदानीं विस्मृतम् तस्य तदुपन्यासेन तत्र स्मृतिर(त)धीयते । अनुमेयार्थप्रसिद्धे(द्धि)स्तु अविनाभावविनिश्चये तत एव स्मर्यमाणात् (??) प्रमाणात्, न पुनर्दृष्टान्तप्रतिबिम्ब(बन्ध)ग्राहकं च प्रामाण्यम् । यद्वा स्यान्नाद्यापि (??) क्वचिद्धर्मिणि प्रवृत्तं तस्यानुमानोपन्यासकाल एव प्रदर्शनीयमिति न तस्य प्रतिबिम्बग्राहिप्रमाणानुस्मृत्यर्थं पक्षीकृतार्थव्यतिरेकवान् साधनधर्म का भी अभाव रहेगा — इस प्रकार सकल पदार्थों का समुच्चय कर के ही सपक्ष में हेतु का सत्त्व और विपक्ष में उस का असत्त्व जाहीर करना पड़ेगा । (यह तो कैसे शक्य होगा ? अतः) किसी एक भी अधिकरण में साध्य का हेतु के साथ तादात्म्य या तदुत्पत्ति सम्बन्ध प्रमाणमूलक ज्ञात होगा तो 15 अन्वय-व्यतिरेक व्याप्ति के बल से साध्य का निश्चय प्राप्त हो सकेगा, अन्यथा नहीं । नहीं इसलिये कि साध्यात्मा का तादात्म्य सम्बन्ध नहीं होगा, तो हेतु के साथ आत्मभाव न होने से वह हेतु नहीं बनेगा । यदि कार्य (रूप हेतु) भी कारणविधया माने गये भाव के विरह में रह जायेगा तो वह हेतुरूप कार्य निर्हेतुक यानी विना कारण उत्पन्न हो गया ऐसा स्वीकारना पड़ेगा । प्रमाणवार्तिक के दो श्लोको में कहा गया है (३-३९/३४)

20 भावमात्र का अनुसरण करनेवाला स्वभाव (हेतु में) होगा तो (उस के साथ) अविनाभाव जरूर रहेगा । यदि (हेतु में साध्य की) स्वभावरूपता नहीं है तो उस भाव का (हेतु का) भी अभाव प्रसक्त होगा क्योंकि वह उससे अभिन्न है ।।३९ ।। तथा — धूम अग्नि का कार्य है क्योंकि उसमें कार्यधर्म (= कारण सत्त्वे सत्त्वम् तदभावे अभावः) का अनुसरण हैं । (अत एव) अग्नि के न रहने पर भी वह रह जायेगा तो हेतुमत्ता (= कार्यता) का उल्लंघन होगा ।।३४ ।।

25 [ हेतु में सामान्यलक्षणविरह के आपादन का निरसन ]

ऋजुसूत्रबौद्ध विद्वान् का कहना है कि हेतु में सामान्यलक्षण के विरह का आपादन अयुक्त ही है यह उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट हो जाता है, फिर भी एक और बात है — किसी प्रमाता को किसी एक धर्मी में पूर्वप्रदर्शित व्याप्तिसाधक (तादात्म्यादि सूचक) प्रमाण प्रवृत्त हुआ । लेकिन अभी वह उस को विस्मृत हो गया । इस स्थिति में हम जो प्रतिबन्ध का धर्मी में उपन्यास करेंगे उससे उस प्रमाता को पुनः उस 30 प्रमाण का स्मरण जाग्रत होगा । (स्मरण होने में तो कोई बाध नहीं है ।) एक बार पूर्वजात प्रमाण का स्मरण हो आया तो उस प्रमाता को स्मृत प्रमाण से ही अविनाभावित्व का निश्चय हो कर साध्यार्थ की सिद्धि हो जायेगी । प्रमाण को दृष्टान्त के प्रतिबिम्ब का (यानी दृष्टान्तगत साध्यादि का ग्राहक हम नहीं

साधर्म्यादिदृष्टान्तः प्रदर्शनीयः, अतस्तत्प्रतिबन्धप्रसाधकं साक्षादेव प्रमाणं प्रदर्शनीयम्। तत्र च प्रदर्शिते न किञ्चित् दृष्टान्तप्रदर्शनेन, तस्य चरितार्थत्वात्। प्रतिबिम्बप्रसिद्धौ च प्रमाणतः साध्यधर्मं सत्यवानुमेये हेतोः सद्भाव इति कथं तस्य सामान्यलक्षणविरहः ? !

तथाहि— सपक्षः साध्यधर्मवानेवार्थ उच्यते। बाधकप्रमाणबलाच्च विपक्षाऽव्यापितो हेतुः साध्यधर्मवत्त्वे(ति) च साध्यधर्मिणि वर्तमानः कथं न सपक्षे वृत्तः यतो न सपक्षव्यवस्था वा ? सर्वमिच्छाव्यवस्थापितलक्षणं 5 पक्षत्वमपाकरोति साध्ययितुमिष्टे, इतीच्छा (?) व्यवस्थापितत्व(त्वं) पक्षलक्षणस्य सिद्धमेव। सपक्षत्वात् (त्वं) तु तस्य साध्यधर्मयोगात् वस्तुबलायातमिति न तत् तेन बाध्यते अन्यथा सपक्षव्यतिरिक्ते पक्षे वर्तमानो हेतुः विपक्षाऽ(क्ष)वृत्तेरनैकान्तिकः प्रसक्त इति सर्वानुमानोच्छेदः। अथ पक्षीकृतपरिहारेणैवाऽसपक्षस्यापि व्यवस्थापितत्वात्

मानते जिस से कि दोषप्रवेश हो सके।) हाँ, जिस प्रमाता को अब तक किसी धर्मों में पूर्व कथित प्रमाण प्रवृत्त नहीं हुआ उस के प्रति अनुमानप्रयोगकाल में ही अनुमानप्रयोग के साथ तादात्म्यादिप्रतिबन्ध प्रसाधक 10 प्रमाण का निरूपण कर देना होगा। अतः उस को प्रतिबिम्बग्राहक प्रमाण का स्मरण कराने के लिये हम ऐसा कोई साधर्म्यादि दृष्टान्त प्रदर्शित नहीं करेंगे जो पक्षीकृत अर्थ से विरुद्ध हो। यानी उस प्रमाता के प्रति साक्षात् ही प्रतिबन्धसाधक प्रमाण प्रदर्शित किया जायेगा। उस प्रमाण के उपन्यास से ही उस प्रमाता को साध्यार्थ का अनुमान हो जायेगा, फिर तो दृष्टान्त के प्रदर्शन की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि उस का कार्य सिद्ध हो गया है। अब बराबर ध्यान में लो कि जब प्रमाण से प्रतिबिम्ब सिद्धि हो गयी 15 तो 'साध्यधर्म के रहने पर ही अनुमेय धर्मों में हेतु की सत्ता रहेगी' इस प्रकार सामान्य लक्षण प्रसिद्ध हो गया। फिर कैसे कह सकते हैं कि हमारे क्षणिकवादमत में हेतु को सामान्यलक्षण का असम्भव है। (हमारी सम्यक् मतिस्फुरणा के अनुसार, संदिग्ध पाठ के रहते हुए हिन्दी विवेचन लिखने का प्रयास किया है। जब भी इससे अच्छा अर्थविवेचन करने का जिसे मौका मिले और शुद्ध पाठ प्राचीन आदर्शों से उपलब्ध हो जाय तो अधिकृत तज्ज्ञों को अधिक संतोषप्रद अर्थविवेचन करने के लिये अनुरोध है।) 20

### [ सपक्ष की व्यवस्था दुष्कर नहीं ]

देखिये — साध्यधर्मवान् अर्थ ही सपक्ष कहा जाता है। बाधक प्रमाण के कारण जिस हेतु में विपक्षाव्यापिता सिद्ध है ऐसा हेतु जब साध्यधर्मवान् सपक्ष में विद्यमान रहेगा तो ऐसा हेतु सपक्षवृत्ति क्यों नहीं होगा ? अथवा उस से सपक्ष का निश्चय भी क्यों नहीं होगा ? साध्य सिद्धि की इच्छा के विषयभूत स्थान में साध्यसिद्धि की इच्छा से गर्भित लक्षण से युक्त जितने भी व्यक्ति हैं वे सब पक्षता 25 का पुरस्कार करते हैं, अतः सिषाधयिषागर्भितत्व यह पक्ष का लक्षण सिद्ध होता है। साध्य धर्म के योग की प्रसिद्धिवाले स्थान में सपक्षत्व वस्तुभूत (वास्तविकतारूप) बल से प्राप्त हो जाता है। अतः सपक्ष के द्वारा पक्ष में किसी बाध को अवकाश नहीं है। अन्यथा, सपक्षभिन्न ऐसे पक्ष में (साध्यसिद्धि के पहले ही) रहनेवाला हेतु यदि सपक्षभिन्नता स्वरूप विपक्ष स्वरूप पक्ष में रह जाने मात्र से (क्योंकि पक्ष में साध्य सिद्ध नहीं होने से) अनैकान्तिक मान लिया जाय तो धूम से अग्नि अनुमान आदि अनुमानमात्र का विच्छेद 30 प्रसक्त होगा, क्योंकि सपक्षभिन्न होने मात्र से ही पक्ष को विपक्ष ठहराया जाता है, उस में सभी सद् हेतु रह जायेंगे।

‘न पक्षे वृत्तो’ = ऽसपक्षवृत्तो, असपक्षवृत्तित्वादनैकान्तिकः। नन्वेवं पक्षपरिहारेण (?) साध्यभावाभावयोस्तद्धान्व( ?न)यं हेतुर्न साध्यधर्मिणीति कथं पक्षो हेतुमानपि साध्यधर्माध्यासितत्वात्।

- न हि ‘यस्माद( ?स्या)नुमेये साध्यं विनापि भावः तत्सद्भावाद्धर्मी साध्यधर्मवान्’ इत्यभिधातुं युक्तम्। न च साध्यधर्मवृत्तिव्यतिरेकस्वरूपौ सपक्ष-विपक्षौ विहाय प्रकारान्तरस्य सम्भवः यत्र पक्षत्वं स्यात्। अन्योन्य-  
5 व्यवच्छेदरूपतया सर्वस्य द्वैराश्यव्यवस्थितेः। हेतोश्च पक्ष-सपक्षादिप्रविभागापेक्षया गमकत्वे काल्पनिकत्वमनुमानेऽप्यंगीकृतं स्यात्, न वस्तुबलप्रवृत्तम्। तस्मात् साध्यप्रतिबद्धभावतया हेतोर्गमकत्वे साध्यधर्मिण्यपि साध्यधर्मयुक्त एव परमार्थतः सपक्षात्मन्येवासौ वर्तते इति कथं सामान्यलक्षणयोगी न स्यात्? उक्तं च—

‘यत् क्वचिद् दृष्टान्(टम्) तस्य यत्र प्रतिबिम्बः तद्विदः तस्य तद् गमकं तत्रेति वस्तुगतिः।’ इति (हेतुबिन्दु टीकाग्रन्थे पृ० १६ मध्ये)

- 10 शंका :- असपक्ष यानी विपक्ष की व्यवस्था पक्षभूत व्यक्तियों को अलग कर के ही मान ली जाय तो कह सकते हैं कि पक्ष में रहनेवाला सद् हेतु असपक्ष (= विपक्ष) वृत्ति नहीं है अत एव असपक्ष (= पक्ष) वृत्ति होने मात्र से अनैकान्तिक भी नहीं है।

- उत्तर :- अरे ! तब तो पक्ष को दूर रख कर, साध्यवान् का अन्वय वाला या साध्याभाववान् का अन्वयवाला ही हेतु ठहरा, साध्यधर्मी में रहनेवाला तो हेतु नहीं ठहरा, फिर हेतुमान् होने पर भी साध्यधर्म  
15 से युक्त होने से, कैसे उस को ‘पक्ष’ सिद्ध करेंगे ?

### [ हेतु का लक्षण साध्य के साथ प्रतिबद्धता ]

- ऐसा तो नहीं कह सकते कि अनुमेय (= पक्ष) में साध्य के विरह में जिस का अस्तित्व है, उस के होने से धर्मी (पक्ष) साध्यधर्मयुक्त है। साध्यधर्म जिस में रहे वह सपक्ष है, जिस में न रहे वह विपक्ष है, तीसरा तो कोई प्रकार नहीं है जिस को आप ‘पक्ष’ कह सकेंगे। जो भी पदार्थ एक-दूसरे के व्यवच्छेदी  
20 (= सप्रतिपक्ष) होते हैं वे सब विधि-या-निषेध दो राशि में किसी एक में अन्तर्भूत रहता है। मतलब, पक्ष एक कल्पना है, उसी के आलम्बन से सपक्ष-विपक्ष के विभाग के अवलम्ब से ही यदि हेतु साध्यबोधक बनेगा तो वहाँ अनुमान में भी काल्पनिकता का ही स्वीकार करना पड़ेगा, न कि वास्तविकता के जोश से हुआ प्रादुर्भाव।

- सारांश, पक्षादि की माथापच्ची को छोड़ कर इतना ही हेतु-लक्षण समझना चाहिये कि साध्य से  
25 प्रतिबद्धता (= व्याप्तता) होने के जरिये ही हेतु साध्यबोधक होता है, वह जब साध्यधर्मी में निश्चित होगा तो वास्तव में तो सरलता से यह फलित हो सकेगा कि साध्यधर्मयुक्त सपक्ष में ही वह वृत्ति है। इस प्रकार, अब कहिये कि हेतु सपक्षसत्त्वरूप सामान्य लक्षण का योगी कैसे नहीं होगा ?

किसी ग्रन्थ में (प्रमाणविनिश्चय में) कहा है कि — ‘किसी एक प्रदेश में जो देख लिया गया, उस का जिस में (जिस के साथ) प्रतिबन्ध रहेगा उस (प्रतिबन्ध) को जाननेवाले को वह उस का (स्वप्रतिबद्ध

▼. ‘अत एवान्यत्रोक्तम्’ इत्युक्त्वा ‘यत् क्वचिद् दृष्टं तस्य... वस्तुगतिः’ अन्यत्र = विनिश्चये (सम्भवतः प्रमाणविनिश्चयग्रन्थे) यत् = लिङ्गं क्वचित् = प्रदेशे दृष्टम् = निश्चितम् तस्य = लिङ्गस्य यत्र = वस्त्यादौ तद्विदः = प्रतिबन्धविदः तस्य = वस्तेः तद् = लिङ्गम् तत्र = ‘यत्र दृष्टं तत्रैव नान्यत्र’ — इति हेतुबिन्दुटीकाग्रन्थे पृ० १६ मध्ये २-३-२४-२५ पंक्तिषु।

ततो व्यवस्थितं क्षणिकत्व-सत्त्वयोस्तादात्म्यात् क्वचिद् वस्तुनि वर्तमानं सत्त्वं क्षणिकत्वयुक्त एव वर्तते इति नास्य सामान्यलक्षणाऽयोगः।

सत्त्वं च भावानां न सत्तायोगलक्षणम् सामान्यादिष्वभावात् अव्याप्तेः, शशशृंगादिष्विति (?पि) भावादतिव्याप्तेश्च। न च शशशृंगादीनामसत्त्वाद् न सत्तायोग इति वाच्यम्, इतरेतराश्रयत्वप्रसक्तेः। तथाहि— तेषामसत्त्वं सत्तायोगविरहात् तद्विरहश्चाऽसत्त्वात् इति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम्। अथ अर्थक्रियासामर्थ्यविरहाद् 5 न तेषां सत्तायोगः — ननु एवं यदर्थक्रियासामर्थ्ययुक्तं सत्तायोगस्तस्यैव इत्यर्थक्रियासामर्थ्यमेव सत्त्वमायातमिति व्यर्थः सत्तायोगः। अत एव सामान्यादीनामपि स्वरूपसत्त्वं अर्थक्रियासामर्थ्यात् सिद्धम् 'सत्'प्रत्ययस्य सर्वत्राऽविशेषात्। न च सामान्यादिषूपचरितः 'सत्'प्रत्ययः अस्खलदृष्टित्वात्।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्येन विरोधात् एकस्मिन् धर्मिण्ययोगात् 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' (तत्त्वार्थ० ५-साध्य का) बोधक बनेगा — यह (स्पष्ट) वस्तु स्थिति है।' — (यानी महानसादि में धूमादि लिंग एक 10 बार देखा गया, फिर वह अग्नि आदि के साथ प्रतिबद्ध है ऐसा जिस को पता चलेगा, उस व्यक्ति को धूमादि अग्नि आदि का बोधक होगा।)

इस प्रकार से हेतुलक्षण निश्चित होने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि तादात्म्य के जरिये सत्त्व क्षणिकत्व के साथ प्रतिबद्ध है, अतः जिस वस्तु में सत्त्व रहेगा, क्षणिकत्व से युक्त हो कर ही रहेगा। निष्कर्ष, हेतु में सामान्यलक्षण का अयोग नहीं है। 15

### [ नैयायिककल्पित सत्तालक्षण का निरसन ]

पदार्थों का सत्त्व भी नैयायिक की तरह सत्तासामान्य के सम्बन्ध से प्रयुक्त नहीं है, क्योंकि सामान्यादि में भी पदार्थ होने के जरिये सत्त्व तो होता है किन्तु वह सत्तासामान्यसम्बन्धरूप न होने से अव्याप्ति दोष लगेगा। तथा शशशृंगादि में सत्त्व न होते हुए भी सत्तासामान्यसम्बन्ध (व्यापक समवाय) रह जाने से अतिव्याप्ति दोष प्रसक्त है। ऐसा मत कहना कि — 'शशशृंगादि तो असत् है उन में सत्तासम्बन्ध नहीं 20 रह सकता अत एव अतिव्याप्ति नहीं होगी' — क्योंकि तब इतरेतराश्रय दोष प्रसक्त होगा। देखिये — पूछा जाय कि शशशृंगादि क्यों असत् है — उत्तर होगा कि सत्तासम्बन्ध नहीं है। सत्तासम्बन्ध क्यों नहीं — तो उत्तर देंगे कि असत् है इसलिये। मतलब, स्पष्ट ही अन्योन्याश्रय प्रसक्त होगा।

### [ सत्ता का सही लक्षण अर्थक्रियासामर्थ्य ]

यदि कहें — असत् है इसलिये नहीं किन्तु अर्थक्रियासामर्थ्य से वंचित होने के कारण शशशृंगादि 25 में सत्तासम्बन्ध नहीं है — अब अन्योन्याश्रय टल गया। नहीं, इस ढंग से तो, जो अर्थक्रियासामर्थ्यविशिष्ट होता है उसी में ही सत्तासम्बन्ध होता है। अतः (यानी समनियत पदार्थों का ऐक्य होने से) फलित यह हुआ कि अर्थक्रियासामर्थ्य यही सत्ता है, न कि सत्तासामान्य का सम्बन्ध (यानी सत्तासम्बन्ध निरर्थक है)। इसी लिये तो सामान्यादि में भी, 'सत्-सत्' ऐसा अनुवृत्ति प्रत्यय प्रसिद्ध होने से, अर्थक्रियासामर्थ्यरूप स्वरूप सत्त्व सिद्ध होगा। सामान्यादि में 'सत्' इत्याकार प्रतीति औपचारिक नहीं मानी जा सकती, क्योंकि यह 30 प्रतीति स्खलनाग्रस्त यानी बाधित नहीं है।

### [ उत्पादादिरूप सत्त्वलक्षण की समीक्षा ]

जैनमत के अनुसार सत्त्व का जो यह लक्षण कहा गया है — उत्पत्ति-नाश-स्थैर्ययुक्तत्व, वह भी

- २९) इत्येतदपि सत्त्वलक्षणमयुक्तम्। अथ कथंचिद् उत्पाद-व्ययौ कथंचिद् ध्रौव्यम् इत्यभ्युपगमः। नैतत्, यतो यथोत्पाद-व्ययौ न तथा ध्रौव्यम्, यथा च ध्रौव्यं न तथोत्पादव्ययौ इति कथमेकं वस्तु यथोक्तलक्षणयुक्तं भवेत् अतोऽर्थक्रियासामर्थ्यमेव सत्त्वमक्षणिकात् क्रम-यौगपद्यविरोधाद् व्यावर्तमानं क्षणिक एवावतिष्ठते इति, तदात्मतां कथमतिक्रामेत् ? तत्र विशेषलक्षणस्याप्ययोगः (५/२-४)। तस्मात् 'यत् सत् तत् क्षणिकमेव, सन्ति च द्वादशायतनानि' इति क्षणिकतायामिदमनुमानम्।

- 5 अत्र च पञ्चस्य (?सु) रूपादिष्वध्यक्षतः सत्त्वसिद्धिः। ▼मनो-धर्मायतनयोः स्वसंवेदनतः स्कन्धत्रय-स्वभावत्व(?) धर्मायतनस्य संस्कारस्कन्धस्य च विप्रयुक्तस्याभावात् चक्षुरादि(च?) पञ्चस्वनुमित्ये(ते)स्तत्कार्य-विज्ञानस्य कादाचित्कतया करणान्तरसापेक्षत्वसिद्धेः देशादिविप्रकृष्टेषु च सर्वपदार्थेषु अभ्युपगमविषयेषु प्रसङ्गमुखेन सत्तायाः क्षणिकतासाधन(म्) व्याप्यसद्भावे व्यापकस्य नियतसंनिधित्वा(त्) व्यापकाभावे च
- 10 समीचीन नहीं है, क्योंकि उत्पत्ति-नाश का स्थैर्य के साथ स्पष्ट विरोध है एवं एक धर्मी पदार्थ में एक साथ तीनों का अस्तित्व भी शक्य नहीं। यदि कहें कि — 'जैनमत में पदार्थों में कथंचित् सापेक्षभाव से ही उत्पाद-व्यय-स्थैर्य का समावेश माना गया है, तब विरोधादि दोषसम्भव नहीं है' — तो यह अयुक्त है। कारण, एक ही वस्तु में जिस प्रकार (जिस काल में) उत्पत्ति-नाश होते हैं उसी प्रकार (उसी काल में) स्थैर्य का होना सम्भव नहीं (विरोध होने से)। एवं जिस प्रकार एक वस्तु में (जिस
- 15 काल में) स्थैर्य रहेगा उसी प्रकार (उस काल में विरुद्ध होने से) उत्पत्ति-नाश नहीं रह सकते। आखिर और किसी तरह सत्त्व की व्याख्या संगत नहीं होने पर, अर्थक्रियाशक्ति को ही 'सत्त्व' मानना न्यायोचित्त है। ऐसा सत्त्व अक्षणिक में नहीं हो सकता, क्योंकि तब प्रश्न आयेगा — अक्षणिक भाव क्रमशः अर्थक्रिया सम्पन्न करेगा या एक साथ ? दोनों ही पक्ष में विरोध स्पष्ट होने से आखिर अक्षणिक से पल्ला छुड़ा कर अर्थक्रियाशक्ति रूप सत्त्व को क्षणिक पदार्थ में ही विश्राम करना पडेगा। इस प्रकार, सत्त्व
- 20 हेतु क्षणिकतात्मकत्व (यानी क्षणिकता के साथ तादात्म्य) का अतिक्रमण कैसे करेगा ? निष्कर्ष, हेतु के स्वभावादि विशेष लक्षण की भी अनुपपत्ति नहीं है। ऋजुसूत्रालम्बी बौद्ध मत में १२ पदार्थ माने गये हैं जिन्हें द्वादश आयतन कहा गया है, उन सभी में अर्थक्रियात्मकशक्तिस्वरूपसत्त्व के रहने से, 'जो सत् होता है वह क्षणिक होता है — बारह आयतन सत् है' इस प्रकार से क्षणिकता का अनुमान करना बहुत सरल है।

## 25 [ प्रत्यक्ष से क्षणिकत्वसिद्धि की चर्चा ]

बौद्धदर्शन में रूपादि पाँच विषय + नेत्रादि पाँच इन्द्रिय + मन और धर्मायतन — ये जो बारह आयतनों का निरूपण है, उन में से रूप-रसादि पाँच स्कन्धों में सत्त्व की सिद्धि तो प्रत्यक्षतः होती है। मनः स्कन्ध और धर्मायतन की सिद्धि स्वसंवेदन से की जा सकती है। ('स्कन्धत्रयस्वभावत्व' इतने अंश का विवरण पाठाशुद्धि के कारण शक्य नहीं।) धर्मायतन से संस्कारस्कन्ध पृथक् न होने से एक की सिद्धि

▼. चक्रायतनं, रूपायतनं, सोलायतनं, सद्दायतनं, घानायतनं, गन्धायतनं, रसायतनं, कायायतनं, फोडुब्बायतनं, मनायतनं, धम्मायतनं ति ।। विसुद्धिमग्गो पृ.३३४ ।। तथा पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषया पञ्च मानसम् । धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि च ।। षड् द० समु० का० ८ ।।

व्याप्यस्याप्यभावात् चक्षुरादि-ध्वनीनां सन्(त्)शब्दस्य च प्रवृत्तिनिमित्तभेदादर्थभेदतः परमार्थतो भेदाभावेऽपि न धर्मिण एव हेतुता, पारमार्थिकरूपस्याऽवाच्यत्वात्। विकल्पावभासिनमेवार्थं ध्वनयः प्रतिपादयन्ति 'क्षणिक'शब्दस्यापि (अ)क्षणिकसमारोपव्यवच्छेदविषयतया न 'सत्'शब्दार्थतोऽभिन्नार्थतेति तद्द्वारेणापि न प्रतिज्ञार्थकदेशता(म्?)। अन्वयादिनिश्चयस्तु प्रतिबन्धनिश्चायकप्रमाणनिबन्धनः। स च तादात्म्यलक्षणः प्रतिबन्धः स्वभावहेतोः प्रमाणनिबन्धनः।

5

होने पर दूसरे की भी (संस्कारस्कन्ध की) सिद्धि हो गयी। चक्षु आदि पाँच इन्द्रियों की अनुमान से सिद्धि कर लेने पर उस के कार्य के रूप में विज्ञानस्कन्ध की सिद्धि इस लिये शक्य है कि विज्ञान कादाचित्क होता है, अत एव इन्द्रिय उपरांत अन्य करण (मन) की सापेक्षता से विज्ञान की निष्पत्ति होती है। इन सभी में सत्त्व हेतु से क्षणिकता की सिद्धि की जा सकती है।

### [ सत्त्व हेतु से परोक्ष भावों में क्षणिकत्वानुमान की चर्चा ]

10

प्रत्यक्ष या स्वसंवेदन से जिन प्रमेयों की सिद्धि शक्य नहीं है — जैसे दूर क्षेत्र में रहे हुए, या स्वभाव से ही परोक्ष (अतीन्द्रिय) हो — ऐसे सभी पदार्थों जो कि भिन्न भिन्न दर्शनों में मान लिये गये हैं उन में प्रसङ्ग (और विपर्यय अर्थात् अन्वय और व्यतिरेक) के बल से सत्ता के आधार पर क्षणिकता की सिद्धि की जा सकती है। सत्ता व्याप्य है क्षणिकता की। अतः प्रसंगापादन से उन प्रमेयों में मान्य सत्ता रूप व्याप्य से नियतसंनिहित होनेवाली अर्थात् व्यापक क्षणिकता की सिद्धि होती है। तथा जहाँ व्यापक 15 का अभाव होता है वहा व्याप्य भी नहीं होता (इस विपर्यय के द्वारा नित्य माने गये आकाशादि से सत्त्व की निवृत्ति होती है।)

**प्रश्न :-** 'चक्षु' आदि वर्णानुपूर्वीरूप शब्दों में क्षणिकता की सिद्धि कैसे होगी ? यदि वहाँ हेतु प्रयोग में 'सत्' शब्द का (सत्त्वात् इस तरह) प्रयोग करेंगे तो आखिर शब्दों की क्षणिकता की सिद्धि के लिये शब्द को ही हेतु करने से, यानी परमार्थत दोनों में भेद न होने से पक्ष और हेतु के ऐक्य का दोष 20 प्रसक्त होगा।

**उत्तर :-** चक्षु आदि एवं सत् - ये सभी शब्द शब्दत्वेन एक होने पर भी उन में चक्षण - रसनादि प्रवृत्तिनिमित्त भिन्न भिन्न हैं, इस तरह उन शब्दों में अर्थभेद स्पष्ट है, अर्थभेदप्रयुक्त भेद शब्दों में रह जाने से अब धर्मी (चक्षु आदि शब्द) और 'सत्' शब्द में धर्मी-हेतु के ऐक्य का दोष प्रसक्त नहीं है।

**प्रश्न :-** क्षणिकशब्द जो साध्यवाचक है और 'सत्' शब्द हेतु का वाचक है, आखिर वाचक शब्द 25 ही साध्य और हेतु है, यहाँ भिन्नता न होने से साध्य-हेतु के ऐक्य का दोष क्यों नहीं होगा ?

### [ शब्द परमार्थतः अर्थवाचक नहीं होता ]

**उत्तर :-** पहले यह ध्यान में रख लो कि शब्द कभी भी पारमार्थिकरूप से अर्थ का बोधक नहीं हो सकता क्योंकि शब्द का अर्थ के साथ तादात्म्य या तदुत्पत्ति कोई सम्बन्ध नहीं है। शब्द तो केवल कल्पित अर्थ का ही बोधक होता है। इस स्थिति में 'क्षणिक' शब्द अक्षणिक समारोप की व्यावृत्ति को 30 एवं 'सत्' शब्द असत् समारोप व्यावृत्ति को विषय करता है। यहाँ दोनों व्यावृत्ति भिन्न होने से व्यावृत्तिभेद द्वारा साध्यशब्द से हेतुशब्द की भिन्नार्थता (यानी 'सत्' शब्दार्थता से 'क्षणिक' शब्दार्थता में भिन्नार्थता

ननु क्षणिकत्वस्य प्रत्यक्षेणाऽनिश्चयात् कथं तत्तादात्म्यं स्वभावहेतोः प्रत्यक्षप्रमाणतः सिद्धम् ? अथ  
 'कृतका विनाशं प्रति अनपेक्षत्वात् तद्भाववनियता यतो भावाः' इत्यनुमानसिद्धं तत्तादात्म्यम्— नैतत्, यतो  
 निर्हेतुकत्वेऽपि विनाशस्य यदैव घटादयो नाशमनुभवन्तः प्रतीयन्ते तदैव तेषामसौ निर्हेतुकः स्यात् नान्यदेति  
 कथं क्षणविशारुता भावानाम् ? अथ एकक्षणभावित्वेन भावस्योत्पत्तेः प्रागपि विनाशसंगतिः। ननु  
 5 यथैकक्षणस्थायित्वेनोत्पत्तिः स्वहेतुभ्यः, तथाऽनेकक्षणस्थायित्वेनापि साऽविरुद्धा। दृश्यन्ते हि विचित्रशक्तयः  
 स्पष्ट है। अत एव प्रतिज्ञार्थ (यानी साध्य) की एकदेशता का हेतु में प्रसञ्जन शक्य न होने से कोई  
 दोष नहीं है।

**प्रश्न :-** सत्त्व हेतु में साध्य क्षणिकता के अन्वय, आदिशब्द से व्यतिरेक का निश्चय किस प्रमाण  
 से करेंगे ?

10 **उत्तर :-** (तादात्म्यादि) प्रतिबन्ध (साध्य का हेतु के साथ सम्बन्ध) का निश्चायक जो प्रमाण होगा  
 उसी से अन्वयादि का भी निश्चय फलित होगा। यहाँ सत्त्व हेतु में क्षणिकत्व साध्यका तादात्म्य रूप प्रतिबन्ध,  
 स्वभावहेतु (सत्त्व) के साधक प्रमाण से ही गृहीत होता है।

[ सत्त्वस्वभावहेतु में क्षणिकत्व के तादात्म्यप्रतिबन्धनिश्चय पर प्रश्न ]

अब बौद्ध के सामने पूर्वपक्षी दीर्घ प्रश्न खडा कर रहा हैं — ननु... से लेकर अत्र केचित् (२२-८) तक..

15 **प्रश्न :-** जब क्षणिकत्व का प्रत्यक्ष से निश्चय नहीं होता तब स्वभावहेतु (सत्त्व) में प्रत्यक्षप्रमाण  
 से उस का तादात्म्य प्रतिबन्ध भी कैसे सिद्ध होगा ?

उत्तर में यदि कहा जाय कि कृतक भाव विनाश के लिये हेतु आदि की अपेक्षा नहीं रखते इसी  
 लिये क्षणिकस्वभाव से व्याप्त होने चाहिये — इस अनुमान से क्षणिक का तादात्म्य सिद्ध होगा। — तो  
 यह समुचित नहीं है क्योंकि विनाश भले हेतुनिरपेक्ष हो, फिर भी घटादि भाव जिस पल में नाशकवलित  
 20 दिखते हैं उसी पल में ही उन का निर्हेतुक नाश होता है उस के पहले नहीं — ऐसा मान सकते हैं —  
 फिर भावों की क्षणिकता कैसे स्वीकारना ? यदि यहाँ कहेंगे — 'कि भाव की उत्पत्ति एकक्षणजीवित्व गर्भित  
 स्वरूप से ही होती है। अत एव जिस पल में उन का नाश दीखता है उस के पहले भी दूसरी क्षण  
 में नाश मानना संगत है।' — तो ऐसा भी मान सकते हैं कि अपने हेतुओं से भावों की उत्पत्ति एकक्षणजीवित्व  
 की तरह अनेकक्षणजीवित्वगर्भितस्वरूप से भी होती है, इस में कोई विरोध नहीं। भिन्न भिन्न भावों की  
 25 उत्पादक सामग्री तरह तरह की शक्ति धारण करती दिखती है तो तथाविध सामग्री से अनेकक्षणजीवित्व  
 भी हो सकता है। यदि आप तर्क करें कि — 'कहाँ भी किसी भी काल में (न कि दूसरे पल में ही)  
 भाव का विनाश हो सकता है' — तो यह भी मानना पडेगा कि तत्कालीन विनाश को तत्कालस्वरूप  
 ब्रव्य की अपेक्षा रहती है, फलतः भावों के विनाश में अन्य निरपेक्षता की हानि प्रसक्त होगी' — तो यह  
 तर्क गलत है क्योंकि किसी भी पल में विनाश हो, वहाँ अवर्जनीय संनिधि के कारण कोई भी काल उपस्थित  
 30 रहे, लेकिन विनाश में उस की अपेक्षा न माने तो कोई हानि नहीं है। अगर आप ऐसा स्वीकार नहीं

▼. यद्भावं प्रति यत्रैव हेत्वन्तरमपेक्षते। तत् तत्र नियतं ज्ञेयं स्वहेतुभ्यस्तथोदयात् ॥ निर्निबन्धा हि सामग्री स्वकार्योत्पादने यथा।  
 विनाशं प्रति सर्वेऽपि निरपेक्षाश्च जन्मिनः ॥ (तत्त्वसंग्रहे का० ३५४-३५५)। तथा प्रामाण्यचर्चयामेषा व्याप्तिः प्रथम खंडे ४-  
 ११ मध्ये दृश्या।

सामग्र्यः। न च यदि क्वचित् कदाचित् विनाशोद्भवे (वः) तदा तत्कालद्रव्यापेक्षत्वाद् अन्यानपेक्षत्वहानिः इति वक्तव्यम्, विनाशहेत्वनपेक्षत्वेनानपेक्षत्वात्, अन्यथा द्वितीयेऽपि क्षणे विनाशो न स्यात् तत्कालाद्यपेक्षत्वात्।

न च, क्रम-योगपद्याभ्यां सामर्थ्यलक्षणं सत्त्वं व्याप्तम् क्रमाऽक्रमनिवृत्तौ च नित्यात् सत्त्वं निवर्तमानं क्षणिकेष्वेवावतिष्ठते इति सत्त्वयुक्तस्य कृतकत्वस्य गमकत्वम्। यतः क्षणिकत्वे सति क्रमाऽक्रमप्रतिपत्तेरसंभव एव। तथाहि— येन ज्ञानक्षणेन तत्पूर्वकं वस्तु प्रतिपन्नं न तेनोत्तरकालभावि, येन चोत्तरकालसंगतं न तेन 5 पूर्वकालालीढमिति कथं क्रमप्रतीतिः ? योपि पूर्ववस्तु-प्रीत्य(प्रतीत्य)नन्तरमपरस्य ग्राहकः स क्रमग्राही भवेत्। तथा च क्षणिकत्वमस्य स्यात्, बौद्धस्य च काल एव नास्तीति कथं तस्य क्रमग्रहः ? भिन्नकालवस्त्वग्रहा (?हे) कालाभावे चानेकवस्तुरूप एव क्रमः। तथा, नित्यस्यापि क्रमकर्तृत्वं न विरुध्यते। यथा च नित्यस्य क्रमकर्तृत्वादनेकरूपत्वात्(?त्वं) तथा क्षणिकस्यापि स्यात्।

अथ क्षणवद् द्वितीये क्षणे नित्यस्याप्यभावो भवेत् कार्याभावात्। अयुक्तमेतत्, कालाभावात् भवन्मतेन। 10 भवतु वा ग्रहस्तथापि कथं क्रमाऽक्रमाभ्यां सत्त्वस्य व्याप्तिः, क्रम-योगपद्यव्यतिरिक्तप्रकारान्तरेणाप्यर्थक्रियासंभवात्। करंगे तो फिर जब दूसरे ही क्षण में भाव का विनाश स्वीकारने पर, द्वितीयक्षणकाल की अपेक्षा आप को भी स्वीकारनी पड़ेगी, फलतः क्षणिकवाद में भी विनाश में कालद्रव्यसापेक्षता होने से अन्यनिरपेक्षत्व की नाश में हानि प्रसक्त होगी। द्वितीयक्षणसापेक्षता नहीं मानेंगे तो द्वितीयक्षण में भाव का नाश नहीं हो सकेगा। 15

### [ क्षणिक भाव के साथ क्रमादि का मेल अघटित ]

(मुख्य प्रश्न चालु है —) यदि कहा जाय — ‘अर्थक्रियासामर्थ्यरूप सत्त्व का क्रमशः युगपद् वा कार्यकारित्व (अन्यतर) व्यापक है। नित्य वस्तु में यह अन्यतरस्वरूप व्यापक घटता नहीं है, अतः सत्त्वरूप व्याप्य नित्य में नहीं हो सकता। तो फिर क्षणिक भावों में ही वह रहेगा। अत एव कृतकत्व भी सत्त्व के साथ रह कर अनित्यता का (क्षणिकता का) ज्ञापक बन सकता है।’ — इस के निषेध में हम कहते हैं कि 20 ऐसा नहीं घट सकता, क्योंकि क्षणिक वस्तु के साथ क्रम-अक्रम प्रतीति का मेल ही बैठ नहीं सकता। कैसे यह देखिये — जिस ज्ञान क्षण से पूर्वकालीन वस्तु का ग्रहण किया है उस से उत्तर क्षण की वस्तु का ग्रहण अशक्य है — उत्तरकालीनवस्तुग्राहक ज्ञान क्षण से पूर्वकालीन वस्तु का ग्रहण अशक्य है अतः पूर्वापरभावस्वरूप क्रम का ग्रहण ही क्षणिकपक्ष में असंभव है। जो पूर्वक्षणवर्तीवस्तुग्राहक हो कर उत्तरक्षण का ग्राहक होगा वही क्रमग्राही बन सकेगा, तब (स्वयं अनेकक्षणवर्ती हो कर) वस्तु की क्षणिकता को 25 प्रसिद्ध कर सकता है, किन्तु बौद्धमत में क्रमग्रहण का इस लिये भी असंभव है कि उस के मत में काल जैसा पदार्थ ही नहीं। (तत्त्वसंग्रह पंजिका श्लो० ११४-१५ में काल पदार्थ के अस्वीकार की सूचना स्पष्ट की गयी है।)

### [ क्रमाक्रम के विना भी अर्थक्रिया की सम्भावना ]

यदि कहें — ‘नित्य भाव के लिये दूसरे क्षण में कोई भी कार्य शेष न रहने से द्वितीयक्षण में उस 30 का अभाव हो जाना चाहिये जैसे कि क्षण का।’ — तो यह भी गलत है क्योंकि आप के मतानुसार कालसंज्ञक कोई पदार्थ ही नहीं है। मान लो कि आप के मत में किसी तरह क्रम-अक्रम ग्रह कर लिया, फिर भी



- न च प्रकारान्तराभावनिश्चयो दृश्यानुपलम्भात् । ततो विशिष्टदेशादावेवाभावनिश्चयप्रसक्तेः न सर्वत्र सर्वदा वा । नाप्यदृश्यानुपलम्भात् तद(ि?)भावनिश्चयः, तस्य संदेहहेतुत्वात् । तस्मात् नित्येषु क्रमाऽक्रम(ि)ऽयोगेऽपि सत्त्वाऽनिवृत्तेः कथं सत्त्वस्य क्षणिक(स्व)भावत्वं प्रमाणतः सिद्धम् येनाऽन्वय-व्यतिरेकनिश्चयो भवेत् ? यद्यपि क्रमाऽक्रमाभ्यां सत्त्वस्य व्याप्तिः प्रकारान्तराभावात् सिद्धा तथापि क्रमाऽक्रमाऽयोगो न नित्येषु
- 5 प्रत्यक्षादिना सिद्धः, नित्यानामतीन्द्रियत्वात् । तदसिद्धौ न तेषु सत्त्वनिवृत्तिसिद्धिः, तदसिद्धौ च न सत्त्वस्य क्षणिकस्वभावत्वसिद्धिः । किञ्च, सत्त्वात् क्रम-योगपद्यानुमानं स्यात् ताभ्यां तस्य व्याप्तत्वाद् न तु क्षणिकत्वानुमानम् तत्र क्रमकर्तृत्वाऽसंभवात् इति ।

अत्र केचित् प्रतिविदधति— प्रत्यक्षसिद्धे एव क्रम-योगपद्ये । तथाहि— सहभावो भावानां योगपद्यम्

- क्रमाऽक्रमान्यतर के साथ सत्त्व की व्याप्ति की सिद्धि कठिन है, क्योंकि संभावना की जा सकती है कि
- 10 क्रम या अक्रम के विना भी अर्थक्रिया निष्पन्न हो । यदि इन दोनों के विना कोई तृतीयप्रकार नहीं होने से व्याप्ति मान ली जाय तो यह समुचित नहीं, क्यों कि तृतीयप्रकार के अभाव का निश्चय कैसे होगा ? यदि दृश्य होने पर भी अनुपलब्धि के द्वारा निश्चय करेंगे तो जिस देश-काल में उस की अनुपलब्धि होगी वहाँ ही तृतीयप्रकार का अभाव निश्चित होगा, सर्वकाल-सर्वदेश में तो नहीं होगा । अदृश्य होने पर भी अनुपलब्धि से तृतीयप्रकाराभाव का निश्चय करेंगे तो यह निश्चय सदा के लिए संदेहहेतु बना रहेगा कि
- 15 तृतीयप्रकाराभाव अदृश्य होने से अनुपलब्ध रहता है या उस का अस्तित्व न होने से ? इस चर्चा का सार यही निकलेगा कि नित्यपदार्थों में क्रमाक्रम उभय न घटने पर भी सत्त्व का अभाव नहीं होता । तो आपने कैसे बोल दिया कि 'सत्त्व का क्षणिकतास्वभाव प्रमाणसिद्ध है' जिसके आधार से अन्वय-व्यतिरेक का निश्चय किया जा सके ?

### [ नित्य पदार्थ में क्रमाक्रमयोगाभाव संदेहग्रस्त ]

- 20 अरे मान लिया कि क्रमाऽक्रम से भिन्न तृतीय प्रकार नहीं है अतः क्रमाक्रम के साथ सत्त्व की व्याप्ति भी सिद्ध होना मान ले, फिर भी नित्य पदार्थों में क्रमाक्रम का विरह किस प्रमाण से सिद्ध करेंगे ? नित्य वस्तु में तो वह अतीन्द्रिय है इस लिये प्रत्यक्षादि से उस की सिद्धि की आशा रख नहीं सकते । क्रम-अक्रम सिद्ध हुये बिना नित्य भाव से सत्त्व की व्यावृत्ति भी सिद्ध नहीं होगी । नित्य से सत्त्वव्यावृत्ति की असिद्धि के रहते हुए सत्त्व में क्षणिकत्वस्वभाव की सिद्धि दुरुह रहेगी ।
- 25 यह भी ध्यान में लिजिये कि सत्त्व से तो सीर्फ क्रमाक्रम की ही अनुमानतः सिद्धि होगी क्योंकि उन के साथ उस की व्याप्ति है, क्षणिकत्वानुमान सत्त्व से सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि क्षणिक भाव में क्रमिककर्तृत्व का सम्भव ही नहीं । तो क्रमिककर्तृत्व के न रहने से क्षणिकता के साथ सत्त्व की व्याप्ति के न होने पर सत्त्व से क्षणिकता का अनुमान कैसे आकार लेगा ? — क्षणिकत्वविरोधी पक्ष (प्रश्न) निरूपण सम्पूर्ण ।

### 30 [ क्षणिकवादी का उत्तर – क्रम की व्याख्या एवं समीक्षा ]

अक्षणिक पदार्थवादी के बयान की अब क्षणिकवादी की ओर से प्रतिक्रिया प्रस्तुत की जाती है — यह जो अभी आपने कहा कि क्रमाक्रमयोग (नित्यों में) प्रत्यक्षादि से सिद्ध नहीं है — हम कहते हैं कि

क्रमस्तु पूर्वापरभावः। स च क्रमिणामभिन्नः एकप्रतिभासश्च तत्रप्रतिभासः। अथैकप्रतिभासानन्तरमपरस्य प्रतिभासः क्रमप्रतिभासः न त्वेकस्यैवातिप्रसङ्गात्। एवमेतत्, किन्तु यदैकप्रतिभासः न तदा परस्य, तदा तत्रप्रतिभासे यौगपद्यप्रतिभासप्रसक्तेः। तस्मात् क्रमिणोः पूर्वापरज्ञानाभ्यां ग्रहणे तदभिन्नक्रमोऽपि गृहीत एव। केवलं पूर्वानुभूतपदार्थाऽऽहितसंस्कारप्रबोधात् 'इदमस्मादनन्तरमुत्पन्नम्' इत्यादिविकल्पप्रादुर्भावे क्रमो गृहीत इति व्यवस्थाप्यते। क्रमः (?मि)णोग्रहेऽपि कथञ्चिदानुपूर्व्या विकल्पानुत्पत्तौ क्रमग्रहव्यवस्थापनाऽयोगात्। अतः 5 एव क्रमिणामेकग्रहेऽपि न क्रमग्रहो व्यवस्थाप्यते।

अपि च कथं कालाभ्युपगमवादिनोऽपि क्रमग्रहः सर्वकार्याणामेककालत्वात् ? न च भिन्नकालकारणोपाधिक्रमात् कार्यक्रमो युक्तः, कालस्याऽभिन्नत्वेनाभ्युपगमात् (न) तद्योगात् भावानां क्रमसद्भाव इति। न च पूर्वापररूपत्वात् 'कालः क्रमवान्' इति वक्तव्यम्, यतस्तस्यापि यद्यपरकालापेक्षः क्रमः तदाऽनवस्थाप्रसक्तिः। अथ स्वरूपेण तस्य क्रमः, तथा सति कार्याणामपि बहूनामसहायानां क्रमो भवेत्। अस्माकं तु लोकप्रतीत्या 10

प्रत्यक्षसिद्ध है। कैसे यह देखिये — यौगपद्य का अर्थ है पदार्थों का (कालिक) सहभाव। क्रम का अर्थ है (कालिक) पूर्वापरभाव। क्रमिक भावों का पूर्वापरभाव क्रमिकों से अभिन्न ही होता है। किसी एक क्रमिकभाव का प्रतिभास क्रमप्रतिभासरूप ही होता है।

शंका :- अरे ! एक का प्रतिभास ही क्रमप्रतिभास कैसे हो सकता है ? फिर भी मानेंगे तो एकप्रतिभास से सारे जगत् का प्रतिभास मानना पड़ेगा। अतः एक भाव के प्रतिभास के अनन्तरक्षण में दूसरे भाव का प्रतिभास — इसे ही क्रम-प्रतिभास मानना पड़ेगा। 15

उत्तर :- ठीक है आप की बात। लेकिन जब एक का प्रतिभास जिस काल में होता है उस काल में दूसरे का नहीं होता — यही उस का मतलब है। अगर एक ही काल में दोनों का प्रतिभास होता तब तो प्रतिभासों में समकालीनता की प्रसक्ति होगी। हम कहना चाहते हैं कि जब पूर्वापरभावापन्न ज्ञानों से क्रमिकों का ग्रहण होगा, तभी (न कि किसी एक का) उन दो से अभिन्न क्रम भी गृहीत हो जाता है — यह निश्चित बात है। यदि क्रमिकों का ग्रहण होने पर भी क्रमशः उन के पीछे संयोगवश विकल्पों का जन्म नहीं होगा, तो क्रमग्रहण का निश्चय भी हो नहीं पायेगा। हमने इसी लिये स्पष्ट किया है कि क्रमिक भावों में किसी एक का ग्रहण होगा (न कि पूर्वापरभाव से दोनों का) तो भी क्रमग्रह का निश्चय नहीं होगा। 20

### [ स्वतन्त्रकालतत्त्ववादी के मत में क्रमग्रहण प्रश्नग्रस्त ]

25

और एक प्रश्न है — कालतत्त्व स्वीकारने पर भी वह एक तत्त्व स्वरूप होने से (अपने में कोई स्वतः भेद न होने से) सकल कार्यों में क्रम का बोध कैसे होगा ? यदि कहें कि — 'अतीतादिभेदगर्भित कालरूप कारणात्मक उपाधि भेदों के क्रम से कार्यों में भी क्रम घटेगा।' — वह अयुक्त है, क्योंकि काल को तो आप अखण्ड एकद्रव्यरूप भेदविहीन मानते हैं फिर भिन्नकालोपाधि का सम्भव कैसे ? फिर उस के योग से भावों का क्रम भी कैसे घट सकता है ? यदि कहें कि — पूर्वापरभावगर्भित होने से काल भी क्रमिक है — तो यह कथन व्यर्थ है, क्योंकि काल तो अखण्ड एक होने से उस में कोई पूर्वापरभाव हो नहीं सकता, तब और कोई उपाधिभूत अन्य काल ढूँढना पड़ेगा जिस के सांनिध्य से काल में पूर्वापर 30

‘पूर्वाहण’आदिप्रत्ययविषयो महाभूतविशेषः कालोस्त्येव तद्भेदात् क्रमादिप्रतीतिर्युक्तैव।

नापि नित्यस्य प्रकारान्तरेण कर्तृत्वसङ्गतिः। यतः एकदेशकार्यकारणानेक – (?)करणे अन्यदा प्रकारान्तरेण करणेऽङ्गीक्रियमाणे वस्तुनः स्वभावभेदात् भेदप्रसक्तिरिति नैकत्वम्, पुनः पुनः कार्यकरणे च क्रम एव न प्रकारान्तरसम्भवः। न च प्रकारान्तरेण ‘नैकदा कार्य करोति पुनः पुनश्च करोति’ इत्येवं करणमभ्युपगन्तव्यम् भावस्याऽवस्तुत्वप्रसक्तेः सर्वदाऽकर्तृत्वात्। अथ ‘एकदा कार्य करोति पुनः पुनश्च न करोति’ इति प्रकारान्तरेण करणमभिमतं तथापि (न?) यदा न करोति (न?)तदाऽवस्तुत्वमेव प्रसक्तम्। तस्मात् ‘घटादिः पदार्थोऽक्रियाकारी क्रमाक्रमाभ्यां प्रत्यक्षसिद्धः (यद्यपि) ‘स एवायम्’ इति ज्ञानादक्षणिकश्च प्रतीयत एव’ (किन्तु) तस्यैककार्यकरणं प्रति यत् सामर्थ्यं तत् तदैव न पूर्वं न पश्चात् तत्कार्याभावात्, सामर्थ्यं तु ततोऽव्यतिरिक्तमेव, उत्तरकार्योत्पत्तावप्येवं द्रष्टव्यमिति सामर्थ्यभेदेन पदार्थभेदात्

10 भाव घटाया जा सके। फिर उस काल में भी पूर्वापरभाव व्यवस्था करने के लिये अन्य एक काल की कल्पना, इस तरह अप्रामाणिक कल्पना का अन्त नहीं आयेगा।

यदि अन्यकाल सांनिध्य रूप सहायक के बदले मुख्य काल में स्वरूपतः पूर्वापरभाव मान लिया जाय तो उस के बदले जिन भावात्मक कार्यों में पूर्वापरभाव सिद्ध करना हैं उन में भी मुख्य काल सहाय के विना स्वरूपतः ही पूर्वापरभाव मान लेने से अपने आप क्रमव्यवस्था हो जायेगी। अतः स्वतन्त्र मुख्य काल मानने के बदले हमारे मत में तो यही बात है कि लोक समाज में जो पूर्वाहणादि प्रतीति होती है उस का विषयभूत कोई पूर्वाहण-अपराहणादि महाभूत है (जो कि प्रसिद्ध ही है) जिस की ‘काल’ संज्ञा की गयी है और ऐसे महाभूत तो अनेक हैं अतः उन के भेद से पूर्व-अपर आदि भिन्न भिन्न भावों में क्रम की प्रतीति संगत ही है।

### [ नित्यवादीपक्ष में अन्यप्रकार के कर्तृत्व की असंगति ]

20 क्रमाक्रम के विना नित्यपदार्थ में अन्य किसी प्रकार से कर्तृत्व की संगति सम्भव नहीं है। कारण यह है कि नित्य पदार्थ एक देश में जिस प्रकार से कार्य करेगा अन्य देश में उसी प्रकार से कार्य करने का मानेंगे तो देशाेक्य प्रसक्त होगा, अन्य प्रकार से कार्य करेगा तो स्वभावभेद से वस्तुभेद की आपत्ति होगी। इसी तरह काल भेद से स्वभावभेदापत्ति भी समझ लेना। इस से फलित हुआ – भिन्न काल में वस्तु एक नहीं है। यदि कहा जाय कि नित्य भाव बार बार कार्य करता रहेगा – तो यहाँ क्रम से ही कार्य हुआ, तीसरा तो कोई प्रकार नहीं आया। यानी क्रम से कार्य करने पर भिन्नस्वभावता से वस्तुभेद प्रसक्त है। यदि ऐसा कहें कि ‘क्रमअक्रम उपरांत तीसरा प्रकार यह है कि एक बार कार्य करता नहीं किन्तु करता है जरूर बार बार।’ – तो यह असंगत है, क्योंकि जो एक बार कार्य नहीं करता वह कभी भी कार्य कर नहीं सकता, यानी सर्वदा अकर्ता बने रहने से भाव में अवस्तुत्व प्रसक्त होगा। यदि कहें कि – ‘तीसरा प्रकार ऐसा है - बार बार नहीं करता, एक बार जरूर करता है।’ – तो भी जब करता है तब तो वस्तु है किन्तु जब नहीं करता उस काल में असत्त्व प्रसक्त रहेगा।

### [ क्षणिक भाव में क्रमाक्रम का नियम सुसंगत ]

फलतः यह प्रत्यक्षसिद्ध हुआ कि घटादि पदार्थ क्रम-अक्रम (अन्यतर) प्रकार से ही अर्थक्रियाकारी है।

कथं न क्षणिक एव क्रमाऽक्रमयोर्नियमः ?

अतो यत्र सत्त्वं तत्र क्रमाक्रमावप्रतीतावपि क्षणिकत्वप्रतीतिरेव । य एव क्षणिके क्रमाक्रमयोर्नियमो नित्येष्यमेव (प्येवमेव) न (?तद्) योगः । ततो घटादौ यदेतन्नित्यत्वं प्रतीतिविषयत्वेनाध्यवसितं तत् सत्त्वविरुद्धमिति क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधो नित्यस्य सिद्ध उच्यते । यथा च दृष्टेषु घटादिषु क्षणिकत्वव्याप्तं सत्त्वं तथाऽदृष्टेष्वप्यविशेषादिति सर्वोपसंहारेण व्याप्तिमवगत्य यथा यथा तेषु सत्त्वं निश्चीयते तथा तथा 5 क्षणिकत्वानुमानम् । यत्र च सत्त्वाऽनिश्चयः तत्र सत्त्वाशङ्कया शशविषाणादिष्विव न क्षणिकत्वप्रतीतिरन्यत्र प्रसङ्गसाधनात् ।

न च तत्राप्यनुमानवैयर्थ्यं बाधकप्रमाणादेवाक्षणिकत्वस्य निश्चितत्वात् इति वाच्यम्, प्राग् गृहीतव्याप्तिकस्य

हालाँकि वह 'यह वही है' इस प्रतीति से अक्षणिक भासता है, किन्तु एक कार्य करते समय उस में जो सामर्थ्य है वह उस क्षण में ही हो सकता है, पूर्व या पश्चात् क्षणों में नहीं, क्योंकि पूर्वोत्तर क्षणों में उस 10 का कोई कार्य उपलब्ध नहीं होता । सामर्थ्य भी उस पदार्थ का अभिन्न स्वरूप ही है । उत्तरकालीन कार्यात्पत्ति में उत्तरकालीन सामर्थ्य ही कार्यकारी बनेगा, न पूर्वकालीन । तथा वह सामर्थ्य भी उत्तरकालीन पदार्थ का अभिन्न स्वरूप ही है । अतः फलितार्थ यही निकलेगा कि पूर्वोत्तरकालीन सामर्थ्यभेद होने से पदार्थ भी बदल जाता है - तो अब ऐसा कहने में क्या दोष है कि क्रमाक्रम का नियम क्षणिक वस्तु के साथ ही संगत होता है, अक्षणिक के साथ नहीं । 15

### [ नित्य वस्तु के साथ क्रमाक्रम की असंगति ]

इस से यह फलित होता है कि जहाँ सत्त्व होगा वहाँ क्रमाक्रमप्रतीति हो या न हो, क्षणिकत्व प्रतीति जरूर होगी । पदार्थ क्षणिक होने पर जैसे क्रमाक्रम का नियम लगता है वैसे पदार्थ नित्य होने पर भी उस को क्रमाक्रमपरीक्षा तो देना ही होगा । तब पता चलेगा कि पदार्थ में जो 'यह स्थिर है' ऐसी प्रतीति होती है उस का विषय नित्यत्व कल्पित है अत एव सत्त्व से विरुद्ध है क्योंकि नित्य वस्तु में क्रम-यौगपद्य 20 से अर्थक्रिया का मेल नहीं बैठता यह सिद्ध किया जा सकता है ।

शंका :- अदृष्ट वायु आदि भावों में क्षणिकत्वानुमान कैसे करेंगे ?

उत्तर :- जैसे दृष्ट घटादि भावों में निश्चित है कि सत्त्व क्षणिकत्व से व्याप्त है वैसे अदृष्ट में दृष्टतुल्यता होने से, सर्व भावों में व्यापकरूप से व्याप्ति का आकलन हो जाने पर, जिन जिन भावों में सत्त्व सुनिश्चित होता जायेगा, उन उन भावों में (यानी अदृष्ट भावों में भी) क्षणिकत्व का अनुमान आसानी से होता 25 चलेगा । शशविषाणादि की तरह जिन में सत्त्व का निश्चय नहीं होगा, वहाँ सत्त्व शंकाग्रस्त रहने से क्षणिकत्व प्रतीति प्रसङ्ग साधन के अलावा नहीं हो सकेगी । प्रसङ्गसाधन में, 'यदि शशविषाणादिवत् आशंकित भाव में सत्त्व होगा तो वह क्षणिक होगा' इस तरह क्षणिकत्व की शशविषाणादि में आहार्य (कृत्रिम) प्रतीति का निषेध नहीं है ।

### [ क्षणिकत्वनिश्चय के बाद प्रत्यक्षबाध अकिंचित्कर ]

ऐसा नहीं कहना कि - 'घटादि भावों में क्षणिकत्व का अनुमान व्यर्थ है, क्योंकि वहाँ स्थैर्यग्राही प्रत्यक्षप्रमाण से अक्षणिकत्व पूर्वनिश्चित ही है ।' - निषेध का हेतु यह है कि जिसने प्रथमतः ही क्षणिकत्व 30

सत्त्वनिश्चयमात्रेणैव क्षणक्षयाधिगते बाधकप्रमाणवैयर्थ्यात्। ये तु विपक्षाद् व्यावृत्तत्वेन क्षणिकत्वव्याप्तिं सत्त्वस्य सर्वत्रावगम्य तत्रैव सत्त्वात् क्षणिकत्वमनुमापयन्ति तेषां व्याप्तिग्राहकादेव प्रमाणात् क्षणक्षयस्य सर्वत्र निश्चितत्वादानुमानोत्थानमेव न स्यात्, त्रैलोक्यस्य च सर्वस्य प्रत्यक्षत्वात् धर्मसिद्धिश्च तेषां दोषः, असिद्धश्च हेतुः प्राप्नोति, पक्षीकृते च सर्वास्मिन् धर्मिणि बाधकं च स्यात्। यदि विपक्षाभावः सिद्धः तदा साध्यस्यापि सिद्धत्वादानुमानोत्थानं न स्यात् अन्यश्च धर्मी न सिद्धः इति कथं वा कस्य प्रवृत्तिरिति — यत् किञ्चिदेतत्। तत् स्थितमेतत् सत्त्वविशिष्टस्य कृतकत्वस्य क्षणिकत्वेन सह तादात्म्यं प्रमाणनिश्चितमिति — कथं नान्वय-व्यतिरेकनिश्चयः ?

यद्वा सत्त्वविशेषविकलस्याऽपि कृतकत्वादेः क्षणपरिणामे साध्ये नानैकान्तिकत्वम्। यतस्तस्य प्रथमे क्षणे य एव स्वभावो द्वितीयेऽपि क्षणे स एव चेत् तदा प्रथमक्षणवदभूत्वा भवनमेव प्रसक्तमिति क्षणिकत्वम्। अथ प्रथमक्षणे जन्मैव तस्य न स्थितिः, द्वितीये स्थितिरेव न जन्म, एवमपि क्षणिकत्वप्रसक्तिर्जन्म-जन्मिनोः

के साथ व्याप्ति ग्रहण कर ली है उस को घटादि में सत्त्वनिश्चय होने पर त्वरित ही (स्थैर्य प्रत्यक्ष के पहले ही) क्षणिकत्व का निश्चय हो गया, फिर कितने भी बाधकों का उदय हो सब व्यर्थ है।

कुछ विद्वान् ऐसा कहते हैं कि सर्व भावों में क्षणिकत्व का निश्चय होने के पहले सत्त्व की विपक्ष (अक्षणिक) से व्यावृत्ति का निश्चय करना जरूरी है, बाद में जहाँ भी सत्त्वनिश्चय होगा वहाँ सर्वत्र (धर्मीओं में) क्षणिकत्व का अनुमान शक्य बनेगा। — इन के मत में तो व्याप्तिग्राहक प्रमाण जो कि प्रत्यक्ष के अलावा और कोई है नहीं, सर्व भावों में सत्त्व में क्षणिकत्व की व्याप्ति का प्रत्यक्ष से ही ग्रहण हो जायेगा। फलतः क्षणिकत्व धर्म की सन्मात्र में प्रत्यक्ष से ही सिद्ध हो जायेगी — यह बड़ा दोष होगा। तथा, सर्वधर्मी को पक्ष करने पर सत्त्व हेतु में असिद्धि दोष होगा, क्योंकि प्रत्यक्ष से सभी धर्मीयों में इष्ट साध्य क्षणिकत्व जब प्रसिद्ध हो गया, फिर सत्त्व वहाँ हो न हो — क्या फर्क पडता है। तथा सर्व धर्मीयों को पक्ष करने पर, बाधक भी उपस्थित होगा, क्योंकि भावत्वरूपावच्छेदकावच्छेदेन क्षणिकत्व सिद्ध करना है तब सामानाधिकरण्येन स्थैर्य का प्रत्यक्ष जरूर बाध करेगा।

यह तो कह चुके हैं कि यदि विपक्ष में साध्य का अभाव सिद्ध है तब तो पक्षभूत धर्मी मात्र में साध्य सिद्ध हो जाने से अनुमान का उत्थान होगा नहीं। शेष कोई धर्मी बचा नहीं तो कैसे किस अनुमान की कहाँ प्रवृत्ति होगी ? सारांश, उन कुछ विद्वानों का मत मूल्यविहीन है। स्थित पक्ष यह हुआ कि सत्त्वविशिष्ट कृतकत्व का क्षणिकत्व के साथ तादात्म्य प्रमाणसिद्ध है। अब बताईये कि अन्वय-व्यतिरेक का निश्चय क्यों नहीं हो सकता ?

### [ क्षणिकत्व की सिद्धि में कृतकत्व हेतु निर्दोष ]

अथवा, सत्त्वविशिष्ट कृतकत्व के बदले क्षणिकत्व साध्य के प्रति अकेले कृतकत्व को हेतु करे तो भी अनैकान्तिकत्व दोष असंभव है। देखिये — पहले क्षण में भाव का जो स्वभाव है वह यदि दूसरे क्षण में भी रहेगा तो प्रथमक्षण के पूर्वक्षण में जैसे 'न रह कर प्रथम क्षण में सत्ता को धारण करने' का ऐसा स्वभाव होने से दूसरे क्षण में भी ऐसा स्वभाव तभी होगा जब वह प्रथमक्षण में न रह कर दूसरे क्षण में सत्ताधारण करता। (इसी को कहते हैं 'अभूत्वा भवन') इस तरह तो स्वतः क्षणिकत्व प्रसक्त हुआ।

स्थिति-स्थितिमतोश्चाभेदात् । न च द्वितीयेऽपि क्षणे जन्मव्यतिरेकेण स्थितिर्युक्ता । अथ तत्रापि जन्म तर्हि न तदा स्थितिद्वितीयादिक्षणभावित्वात् तस्याः । एवमुत्तरोत्तरक्षणेष्वपि सर्वदोषत्तिरेव न स्थितिरिति क्षणक्षयित्वमेव । उत्पत्तिश्च हेतुकृतेति तत्रैव कृतकत्वम् । (स्थितौ ?) तस्मात् कृतकत्वस्याऽक्षणिकत्व-विरुद्धत्वात् नानैकान्तिकत्वमिति सत्त्वानन्तर्भूतस्यापि कृतकत्वस्य व्याप्तिः प्रमाणनिश्चितेत्यत्राप्यन्वय-व्यतिरेकनिश्चयः ।

5

परे तु— सत्त्वलक्षणस्य हेतोस्तादात्म्यस्वरूपः प्रतिबन्धो विपर्यये बाधकप्रमाणनिबन्धनः इत्येवं वर्णयन्ति । यत्र क्रम-यौगपद्याऽयोगो न तस्य क्वचित् सामर्थ्यम्, अस्ति चाऽक्षणिकेषु स इति तेषां सामर्थ्यविरह-लक्षणाऽसत्त्वसिद्धौ ततो निवृत्तौ (?त्)सत्त्वमर्थक्रियासामर्थ्यलक्षणं क्षणिकेष्वेवावतिष्ठत इति सत्त्वस्य क्षणिकत्व-स्वभावतासिद्धिः । अनेन हि बाधकेन प्रमाणेन सत्त्वविरोध(?रुद्ध)मसत्त्व(वं) क्षणिकेष्व्वाकृष्यते । न च

यदि ऐसा माना जाय कि प्रथम क्षणे भाव का जन्म है तब स्थिति नहीं है, दूसरे क्षण में सीर्फ स्थिति 10 ही है जन्म नहीं किन्तु भाव में भेद नहीं तो यहाँ स्वभावभेद से स्वतः क्षणिकत्व प्रसक्त हुआ क्यों कि जन्म और जन्म का एवं स्थिति स्थितिमान् का अभेद होने से जन्म-स्थितिभेद प्रयुक्त जन्मी-स्थितिमान् का भी भेद ही प्रसक्त होगा ।

### [ निर्बाधरूप से अन्वय-व्यतिरेक निश्चय की उपपत्ति ]

तथा यह जो कहा कि प्रथम क्षण में जन्म है तब स्थिति नहीं है वह युक्तियुक्त नहीं, क्योंकि द्वितीयक्षण 15 में जन्म के विना स्थिति आयेगी कैसे ? यदि दूसरे क्षण में भी पुनः उसी भाव का जन्म भी मान लेंगे तो स्थिति नहीं रहेगी जैसे आपने कहा है कि प्रथम क्षण में जन्म है तब स्थिति नहीं । स्थिति तो जन्म के बाद द्वितीयादि क्षण में होती है, वह जन्म क्षण में कैसे हो सकेगी ? इस प्रकार उत्तरोत्तर तृतीयादिक्षणों में भी जन्म-जन्म की सन्तति चलेगी, स्थिति की नहीं, तो पुनः क्षणिकत्व प्रसक्त हो गया । तथा जन्म तो हेतुप्रयुक्त होता है — वही कृतकत्व है तो वह क्षणिकत्व के विना कैसे रहेगा ? फलतः अक्षणिकत्व 20 के साथ कृतकत्व का विरोध सिद्ध होगा, न कि अनैकान्तिकत्व । इस तरह गहराई से सोचने पर पता चलता है कि वस्तुसत्ता में (= वस्तु जन्म हेतुप्रयुक्त होने से) कृतकत्व को अन्तर्भूत न माने तो भी क्षणिकत्व के साथ उस की व्याप्ति प्रमाणसिद्ध हो जाने से अन्वय-व्यतिरेक निश्चय बेरोकटोक किया जा सकता है ।

### [ सत्त्व हेतु में विपक्षबाधकशंका का निवारण ]

कुछ अन्य विद्वानों का मतवर्णन ऐसा है — क्षणिकत्व का साधक सत्त्व हेतु में विपक्षवृत्तित्व की 25 शंका का निवारक प्रमाण है — सत्त्व हेतु का क्षणिकत्व के साथ तादात्म्य सम्बन्ध ।

जिस पदार्थ में क्रम-यौगपद्य उभय का वियोग होगा उस पदार्थ में कुछ भी कार्य करने का सामर्थ्य नहीं रह सकता । अक्षणिक माने हुए पदार्थों में क्रम-यौगपद्य उभय का वियोग है जो सिद्ध कर देता है कि अक्षणिक पदार्थ सामर्थ्य विहीन यानी असत् है । उस में अर्थक्रियासामर्थ्यरूप सत्त्व नहीं रह सकता । तो वह कहाँ रहेगा ? क्षणिक पदार्थों में ही आखिर उस को रहना पड़ेगा । इस ढंग से क्षणिक पदार्थ 30 में सत्त्व के तादात्म्य की यानी सत्त्वस्वभाव की सिद्धि होगी । यही एक प्रबल बाधक प्रमाण है जिससे अक्षणिकव्यावृत्त सत्त्व, अक्षणिकवृत्तिअसत्त्व के विरुद्ध होने से, क्षणिक पदार्थों की ओर आकृष्ट रहेगा ।

विरुद्धयोरेकत्र समवधानमिति ततो विरुद्धानैकान्तिकत्वे अपि नाशङ्कनीये।

अथ कथमर्थक्रियासामर्थ्यनिवृत्तिः क्रमयौगपद्यनिवृत्तिनिमित्ता, तयोस्तद्(?)द्व्यापकत्वात् ? अथात्रापि यदि व्याप्य-व्यापकभावो बाधकान्तरनिबन्धनस्तदा बाधकान्तरं तत्राप्यन्वेषणीयम् तथा तदन्यत्रापि इत्यनवस्थाप्रसक्ते-  
रप्रतिपत्तिः। असदेतत्— यतः क्रमयौगपद्याभ्यां सामर्थ्यस्य व्याप्तिः प्रकारान्तरऽसंभवतो निश्चितेति कुतोऽ-  
5 नवस्था ? प्रत्यक्षबलादेव च प्रकारान्तरासंभवो निश्चितः। 'प्रत्यक्षस्याऽभावविषयत्वविरोधात् न' इति चेत् ?  
न, भावमेव क्रमेणेतरेण वा कार्योदयलक्षणं प्रतिप(त्रा?)द्याध्यक्षेण द्वैराश्यव्यवस्थापनतः प्रकारान्तराभाव-  
साधनात्।

असत्त्व और सत्त्व परस्परविरुद्ध होने से, ऐसी शंका ही नहीं कर सकते कि क्षणिकत्वस्वभावभूत सत्त्व का विरोधी असत्त्व क्षणिक में रहता होगा। अथवा ऐसी भी शंका नहीं कर सकते कि क्षणिक में असत्त्व  
10 के साथ सत्त्व भी रहता होगा — क्योंकि दोनों परस्पर विरुद्ध होने से एकत्र नहीं रह सकते।

### [ अर्थक्रिया का व्यापकत्व क्रमादि में प्रश्नापन्न ]

प्रश्न :- क्रम-यौगपद्य अर्थक्रिया के व्यापक सिद्ध नहीं है, तो उन की निवृत्ति के बल पर अर्थक्रियासामर्थ्य की निवृत्ति किस तरह कही जा सकती है ?

उत्तर :- हमने जो अक्षणिक में अर्थक्रियायोग में बाधक प्रमाण दिखाया उस से सिद्ध होता है क्रम-  
15 यौगपद्य में अर्थक्रिया का व्यापकत्व।

प्रश्नकार :- उस बाधक प्रमाण में भी व्याप्य-व्यापकभाव दिखाना पड़ेगा, अन्यथा वह बाधकप्रमाण भी सिद्ध नहीं हो सकेगा। द्वितीय व्याप्य-व्यापकभाव की सिद्धि के लिये जो बाधक प्रमाण दिखायेंगे उस की सिद्धि के लिये और एक व्याप्य-व्यापकभाव.... इस तरह तो कल्पना का अन्त न होने से क्रम-यौगपद्य में अर्थक्रिया के व्यापकत्व की सिद्धि दुःस्वप्न बन जायेगी।

उत्तर :- यह कथन गलत है। क्रम और यौगपद्य के विना कार्य करने की और कोई पद्धति ही जब अस्तित्व में नहीं है तब अपने आप क्रम-यौगपद्य के साथ कार्यसामर्थ्य की व्याप्ति निश्चितरूप से गृहीत हो जाती है, फिर यहाँ अनवस्था दोष को अवकाश ही कहाँ है ? और कोई पद्धति का अस्तित्व नहीं — यह तथ्य तो प्रत्यक्षबल से ही निश्चित हो चुका है। यदि कहें कि — 'प्रत्यक्षत्व का अभावविषयत्व के साथ विरोध होने से अन्यपद्धति का अभाव प्रत्यक्ष से गृहीत नहीं हो सकता' — तो यह ठीक नहीं।  
25 प्रत्यक्ष क्रमशः कार्यकारित्व अथवा युगपत्कार्यकारित्व प्रकार से कार्योदय करनेवाले भाव को ग्रहण कर ही सकता है, वही प्रत्यक्ष क्रम और युगपत् प्रकारद्वयरूप दो राशि<sup>▼</sup> का जो प्रख्यापन करता है यही है अन्यपद्धति के अभाव का प्रख्यापन। (यानी यहाँ अभाव भावात्मकराशिद्वय का ही स्वरूपान्तर है इसलिये राशिद्वय के रूप में उस का ग्रहण शक्य है।)

▼. तत्त्वसंग्रहेऽन्यप्रकारेण द्वैराश्यमुपदिष्टम् - तद्यथा, कृतकाऽकृतकत्वेन द्वैराश्यं कैश्चिदिष्यते। क्षणिकाऽक्षणिकत्वेन भावनामपरैर्मतम्।। का.३.५२।। तथा तस्य पञ्जिकायामुक्तमित्थम्- 'इह हि नैयायिकादयः क्षणिकमेकमपि वस्तु नास्तीति मन्यमानाः कृतकाऽकृतकत्वेन भावानां द्वैराश्यमवस्थापयन्ति। अपरैस्तु वात्सीपुत्रीयादिभिः क्षणिकाऽक्षणिकत्वेनापि भावानां द्वैराश्यमिति"। (पञ्जिकायां पृष्ठ १३२ पंक्ति ५।७)

तथाहि— यथा क्रमेण यौगपद्येन वा स्वकार्यमुत्पादयन्तो भावाः अध्यक्षविषयतामवलम्बन्ते तदेतररूप-  
विवेकिनो ज्ञानात्मनि तथैव प्रतिभासन्ते, यतः स्वस्वभावव्यवस्थितयो नात्मानं परेण मिश्रयन्ते भावाः  
तस्यापरत्वप्रसङ्गात्, तथा च सर्वत्र सर्वस्योपयोगादिप्रसङ्गः। न चाऽसाधारणरूपाध्यासितेषु प्रतिभासमानेषु  
तेषु तत्राऽसतो रूपस्यावभासो युक्तः, अहेतुकतापत्तेः। एवं चाक्षसंविदां प्रतिनियतविषयता प्रमाणपरिदृष्टा  
हीयेत, अहेतुकत्वे प्रतिभासस्य विषयान्तरावभासनप्रसक्तेः। अक्षस्य नियामकत्वेऽप्यविद्यमानाऽनुकारणे(रेण) 5  
न संविद्वशादर्थात्म(1)नः स्वरूपमासादयेयुरिति नियतार्थाध्यवसायतः प्रवृत्तानां नार्थक्रियाप्राप्तिः स्यात्  
मरीचिकादिषु जलाद्य(?ध्य)वसायिनामिव। नापि सुख-दुःख-प्राप्ति-परित्यागौ स्यातामिति क्रमवत्कार्य-  
सामर्थ्यादीयमानमध्यक्षं तद्रूपमेवानुकुर्वत् इतररूप(1?)प्रतिभासविकृततया स्वसंवेदनेन संवेद्यमानं यथानुभवं  
पाश्चात्त्यं विकल्पद्वयं जनयति। तत एवं विभागः सम्पद्यते 'क्रमभावि तत् कार्यं नाक्रमम्' इति। तस्मात्

[ क्रम-यौगपद्य से अन्य प्रकार के अभाव की प्रसिद्धि ]

कैसे यह देखिये — जैसे: घटादि भाव क्रमशः या एकसाथ अपने अपने कार्य को उत्पन्न करते हुए  
प्रत्यक्षगोचर बनते हैं, वैसे: ही प्रत्यक्षज्ञान में वे ही घटादि स्वेतर पटादिभावव्यावृत्तरूप से भी प्रतिभासित  
होते ही हैं। स्वेतरभाव से मिश्रतया भावों का प्रतिभास कभी नहीं होता, अतः अपने स्वभाव में तन्मयीभूत  
भाव अपने को अन्य (व्यावृत्त) भाव से मिश्रतया भासित नहीं होने देते। अन्यथा, अन्य भाव से मिश्रण  
होगा तो (घटादि) भावों में पररूपता (पटादिसर्वरूपता) का अनुवेद्य प्रसक्त होगा। नतीजतन एक ही भाव 15  
सर्वभावरूप हो जाने पर सर्व कार्यों में उसी एक का ही उपयोग आदि प्रसक्त होगा। इस तरह सभी कार्यों  
के लिये सभी भाव कारण बन बैठेंगे। यह युक्तिसंगत भी नहीं है कि अपने असाधारणस्वरूप से आश्लिष्ट  
होकर प्रतिभासगोचर होनेवाले घटादि भावों में अन्य भावों (पटादि) के स्वरूप का भी, जो कि घटादि  
में असत् हैं, प्रतिभास किया जा सके। यदि ऐसा मान लेंगे तो असत् (पटादि) स्वरूप के प्रतिभास से  
आश्लिष्ट घटादिभाव प्रतिभास में निर्हेतुकता का प्रसञ्जन होगा, क्योंकि सर्वभावापन्नरूप से प्रतिभास की 20  
कोई कारण सामग्री नहीं होती। तब तो इन्द्रियकृतसाक्षात्कारों में जो प्रतिनियतविषयता प्रमाणसिद्ध है उस  
की हानि होगी। कारण, विना निमित्त ही सर्वप्रतिभास हो जाने पर स्व-पर सभी विषयों का अवबोध  
हो जाने से प्रतिनियत विषयता कैसे रहेगी ?

[ सर्वभाव स्व-पर सर्वस्वरूप मानने पर क्षतियाँ ]

यद्यपि जिस भाव से इन्द्रिय का संनिकर्ष होगा वही भाव संवेदित होगा ऐसा आपाततः नियामक 25  
मान लेने पर भी, सर्व भाव स्वपरसर्वरूप होने के कारण किस के साथ इन्द्रियसंनिकर्ष है किस के साथ  
नहीं — इस का स्पष्ट भानरूप अनुकार (= नियमन) के न होने से, संवेदन के आधार से अर्थस्वभावों  
का रूप निश्चित नहीं हो सकेगा। फलतः प्रमाता प्रतिनियत जलरूप अर्थ को दिमाग में रख कर पीने  
की कोशिश करेगा किन्तु जलमिश्रअग्निरूपता के कारण दाह प्रसक्त होने से तृषाशमनरूप अर्थक्रिया की  
उपलब्धि नहीं होगी। उदा० मरीचिका में जलप्रतिभास करनेवाले को जल की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार 30  
सुख हेतु के अध्यवसाय से न तो सुखप्राप्ति होगी, दुःखहेतु के अध्यवसाय से न तो दुःख का परित्याग  
हो सकेगा।



सर्वस्य तत्राऽप्रतिभासमानस्य 'यदेवं न भवति तत् क्रमभावि न भवति' इति सर्वस्ये(?स्यान्य)तरप्रकारतया व्यवस्थिते: सिद्ध एव तद्व्यतिरिक्तप्रकारान्तराभावः, अन्यथा तदन्यतया तस्य व्याप्त्यभावेऽस्वविषयव्यवच्छेदात् तद्रूपतापरिच्छेद एव तस्य न स्यात्।

- परिच्छेदो हि तदसाधारणरूपानुकरणमेव, तच्च नास्तीति, तत् (?) सद्भावे वा कथं न अतद्रूपव्यवच्छेदः ?
- 5 यतो नाकारान्तराऽसंसृष्टरूपानुकरण(न्यत्) तदन्यव्यवच्छेदनं नाम। ततः सर्वस्य तदतद्रूपतया व्यवस्थिते: प्रकारान्तराभावः कथं न सिद्धिमध्यास्ते ? एवमितरप्रकारप्रतिपत्तावपि ज्ञेयम्। क्रमश्च तदन्याऽसाहित्यमुक्तः स चैकक्षणभाविनाप्यध्यक्षेण वस्तुस्वरूपं गृह्यता तद्व्यतिरिक्तो गृहीत एवेत्यप्युक्तम्।

यदपि उपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वे प्रकारान्तरस्य देशादिनिषेध एव स्याद् नात्यन्ताभावः, अनुपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वे विप्रकर्षिणां नाऽभावनिश्चयः, इति कुतोऽध्यक्षतः प्रकारान्तराभावसिद्धिः ? इत्युक्तम्, (२२/१)

### 10 [ क्रम-यौगपद्य से अन्य प्रकार की असिद्धि ]

- इस लिये यही मानना होगा कि क्रमशः कार्यकारीभाव के सामर्थ्य से उदित होने वाला निर्विकल्प प्रत्यक्ष, उसी भावस्वरूप का ही अनुवर्तन = प्रतिपादन करता हुआ, अन्यभावप्रतिभासविभिन्न रूप से ही स्वसंवेदन के द्वारा संविदित करता हुआ दर्शन (= निर्विकल्पानुभव) के अनुरूप क्रम-यौगपद्य के विकल्पों को उत्पन्न करता है। उस से यह विभाजन ज्ञात होता है कि 'भाव का कार्य क्रमिक है अक्रमिक नहीं
- 15 है।' इस प्रकार वस्तुमात्र क्रम-यौगपद्य में से किसी भी एक प्रकार को धारण करती है यह निश्चित होने से अन्य (तृतीय) प्रकार का अभाव सिद्धिप्रासाद का आरोहण क्यों नहीं कर सकता ? अन्यप्रकार का अभाव असिद्ध मानेंगे तो उस के साथ सत्त्व की व्याप्ति न रहने पर उस से भिन्नरूप से अपने अतद्रूपतात्मक विषय का व्यवच्छेद यानी भिन्नतया अवगाहन न होगा, तो अपने स्वतन्त्र स्वरूप का भान ही नहीं होगा।

### [ असाधारणरूप परिच्छेद में अतद्रूपपरिच्छेद का अन्तर्भाव ]

- 20 वस्तु के असाधारणस्वरूप का अनुसरण करे वही परिच्छेद (= भान) कहा जाता है। यदि ऐसा परिच्छेद है, तो उस में अतद्रूप का व्यवच्छेद भी शामिल ही है। अस्वविषयव्यवच्छेद यानी तदन्यव्यवच्छेदन आखिर क्या है — अन्याकार से अनाश्लिष्ट वस्तुस्वरूप का अनुकरण यानी आकलन। यह सुनिश्चित है कि वस्तुमात्र का तद्रूप अथवा अतद्रूप किसी एक प्रकार होता है, तीसरा कोई प्रकार होता है या नहीं होता इस प्रश्न को फिर अवकाश ही कहाँ है ? तीसरा प्रकार नहीं होता — यह तथ्य जैसे सिद्ध हुआ तो उसी ढंग
- 25 से इतर प्रकारों की संभावना के लिये भी समझ लेना। (यानी दो से अतिरिक्त कोई भी प्रकार वस्तु में नहीं घटता। अक्रम प्रकार कैसे नहीं घटता — यह तो कहा जा चुका है — शेष रहा क्रम प्रकार) क्रम का मतलब है कि कालकृत साहित्य (यानी समकालीनता) का न होना। जब अध्यक्ष से वस्तुस्वरूप का ग्रहण होता है तो उस से भिन्न न होने से क्षणिक प्रत्यक्ष के द्वारा उक्तक्रम का भी ग्रहण हो ही जाता है — यह कहा जा चुका है।

### 30 [ प्रत्यक्ष से प्रकारान्तराभावसिद्धि कैसे ? प्रश्न का उत्तर ]

यह जो पहले विकल्पयुग्म कहा है (२२-१२) — "प्रकारान्तर के लिये दो विकल्प हैं — या तो वह उपलब्धिलक्षण प्राप्त (यानी प्रत्यक्षयोग्य) है या तो उपलब्धिलक्षण अप्राप्त है। प्रथम विकल्प में तो उस

तदप्युक्तोत्तरमेव । यतः कार्यान्तरासाहित्यं कैवल्यमङ्कुरादेः क्रमः, यौगपद्यमप्यपरैः बीजादिकार्यैस्तस्य साहित्याम्, प्रकारान्तरं च तदुभयावस्थाभावेऽप्यङ्कुरादेरन्यथाभवनमध्यक्ष(?क्षं) तस्यान्यसहितश्च(?स्य) केवलस्य चाङ्कुरादिस्वभावस्य भावस्य भाव उपलभ्यमान उपलब्धिलक्षणप्राप्त एव स्वभावः क्रम-यौगपद्यस्वभावबहिर्भूतो नोपलभ्यते उपलभ्यवस्तुनोऽपरसाहित्ये कैवल्ये वा अपनीते तद्विविक्तदेशाद्य(?ध्य)वसायिनोऽध्यक्षस्यानुभवादभावसिद्धेः ।

5

अङ्कुरादेस्तु स्य(?) कार्यस्य क्रमाऽक्रमभावव्यतिरेकेणाभावेऽन्यदाभावो न क्षतिमावहति । तस्मात् प्रत्यक्षत एव प्रकारान्तराभावसिद्धिः(द्धेः) क्रमयौगपद्ययोगेन कथं न सामर्थ्यस्य व्याप्तिर्भवेत् ? अत एव न्यायात् देश-कालविप्रकर्षिणो भावास्तथाविधं कार्यं ये विदधति क्रमेतराभ्यामन्यथा न ते कर्तुमर्हन्ति, अन्यथा तस्यैवासम्भवात् । तथाहि— यद्यपि देशादिविप्रकृष्टता तेषां तथापि कार्यस्य भावो दृष्टकार्यधर्मव्यतिरेकेण न सम्भवति कार्यमात्रस्य विशेषाभावात् । कार्यता हि 'कस्यचिद् भावे भवनम्' तच्च अन्यसहितस्य केवलस्य

10

का सर्वथा निषेध शक्य नहीं, सीर्फ किसी देश-काल में ही उस का निषेध शक्य है । दूसरे में, प्रकारान्तर स्वभावतः विप्रकृष्ट होने के कारण उस के अभाव का निश्चय तो शक्य ही नहीं, फिर प्रत्यक्ष से प्रकारान्तर के अभाव कि सिद्धि कैसे शक्य है ?" — इस का उत्तर दिया जा चुका है । देखिये — अङ्कुरादि से संलग्न जो क्रम है वह है क्या ? 'अन्य कार्य वैकल्य स्वरूप' कैवल्य (= एकाकिता) । प्रत्येक क्षण उत्तरोत्तर इस प्रकार की होती है । यौगपद्य क्या है ? अन्य अन्य बीजादि कार्यों के साथ अङ्कुर का साकल्य । क्या कहीं किसी को ऐसा प्रत्यक्ष होता है कि क्रम-यौगपद्य उभयावस्था से मुक्त अङ्कुरादि का (अन्यथा =) तीसरे किसी प्रकार का (भवन =) परिणमन हो रहा हो ? जो भी अङ्कुरादिस्वभावाश्लिष्ट भाव उपलब्ध होता है वह कैवल्य या अन्यसाकल्य से गर्भित ही उपलब्ध होता है । यानी वह अन्यतररूप से उपलब्धिलक्षण प्राप्त ही है । उस से विपरीत, क्रम-यौगपद्यस्वभावबहिष्कृत कोई अङ्कुरादि उपलब्ध ही नहीं है । जब उपलब्धिलक्षण प्राप्त वस्तु कैवल्य (= क्रम) या अन्य साकल्य (= यौगपद्य) से अनाश्लिष्ट रहेगी तब तो तथाविध वस्तु विकल सीर्फ भूतलादि देश-कालनिर्भासि प्रत्यक्ष ही अनुभवारूढ होता है जिस से सहजतया तृतीयप्रकार का अभाव निर्बाध सिद्ध होगा ।

15

20

### [ परोक्ष पदार्थों के लिये भी क्रम-यौगपद्य का निर्णय सरल ]

क्रमाक्रम भाव के विना अङ्कुरादि कार्य जब हो नहीं सकता तब अन्यदा(?था)भाव कुछ भी बिगाड नहीं सकता । अतः प्रत्यक्ष से ही प्रकारान्तर का अभाव सिद्ध होने पर कैसे कहते हैं कि क्रम-यौगपद्य के साथ सामर्थ्य की व्याप्ति नहीं है ? इसी न्याय से यह निष्कर्षफलित होता है कि देश-काल से विप्रकृष्ट (= दूरवर्ती) जितने भी भाव अपने कार्य का निर्माण करते हैं वे सब क्रमशः या युगपद् ही कर सकते हैं, अन्य किसी प्रकार से कार्य करने की उन में कोई क्षमता नहीं है । अन्यप्रकार से वे अगर कार्य करने जायेंगे तो कोई कार्य न कर सकने से अर्थक्रिया के विरह में अपने अस्तित्व को ही गँवा देंगे । कैसे यह देख लो — हालाँकि वे देश-काल विप्रकृष्ट (प्रत्यक्ष अगोचर) हैं फिर भी यह सोच सकते हैं कि प्रत्यक्षदृष्ट जो कार्यशैली है उस को छोड कर कोई भी कार्य निर्मित होना असम्भव है, क्योंकि दृष्ट और अदृष्ट में ऐसा कोई अन्तर (वैजात्य) नहीं है जिस से यह कल्पना की जा सके कि अदृष्ट कार्य दृष्ट कार्य की मर्यादाओं

25

30

वा, नान्यथा — इत्यत्र प्रत्यक्षाऽनुपलम्भतः सिद्धम्। यथा च प्रत्यक्षानुपलम्भ(त) स्तद(द्)भावभावित्वसिद्धेः कार्यतायामंकुरादेः, सर्वत्र तथैव तल्लक्षणव्यवस्थाविशेषाभावात्; तथा कार्यस्य भावोऽपि प्रकारद्वयेन सर्वत्र, नान्यथा — विशेषाभावाद् भवनमात्रस्य— इत्यनुपलब्धिलक्षणप्राप्तानामपि क्रम-यौगपद्याभ्यामर्थक्रियासामर्थ्यस्य व्याप्तिः।

- 5 अनुमानतोऽपि सर्वत्र प्रकारान्तराभावः सिध्यत्येव। तथाहि— अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणामेकनिषेधेनापरविधानात् तस्याऽपि प्रतिषेधे विधि-प्रतिषेधयोरेकत्र विरोधादुभयनिषेधात्मनः प्रकारान्तरस्य कुतः सम्भवः ? प्रयोगश्चात्र— यत्र यत्रकारव्यवच्छेदेन तदितरैकप्रकारव्यवस्थापनम् न तत्र प्रकारान्तरसम्भवः। तद्यथा— नीलप्रकारव्यवच्छेदेनानीलप्रकारव्यवस्थायां पीते। अस्ति च क्रमाऽक्रमयोरन्यतरप्रकारव्यवच्छेदेन तदितरप्रकारव्यवस्थापनम् व्यवच्छिद्यमानप्रकारविषयीकृते सर्वत्र कार्य-कारणरूपे भाव इति विरुद्धोपलब्धिः।
- 10 से अतीत होंगे। कार्यता का मतलब है किसी (कारणात्मक) भाव के होने पर उत्पन्न होना। या तो वह केवल ही (यानी क्रम से) उत्पन्न होगा, या फिर अन्य साकल्ययुक्त होगा, अन्यथा नहीं होगा — यह तथ्य तो प्रत्यक्ष और अनुपलम्भ (यानी प्रसंग और विपर्यय) से सिद्ध होता है। जिस तरह, प्रत्यक्ष-अनुपलम्भ से अंकुरादि कार्य मात्र को यह सिद्धान्त लागू होता है कि (कारण) भाव के होने पर ही कार्य हो सकता है, क्योंकि अनेकविध कार्यों के स्वरूप की व्यवस्था में कोई तफावत नहीं होता — तो इसी तरह कहीं
- 15 भी कार्य मात्र का भवन भी क्रम/यौगपद्य से ही होता है अन्य प्रकार से नहीं, क्योंकि उन के भवनमात्र में कोई तफावत नहीं है। फलित यह हुआ कि देश-काल विप्रकृष्ट अदृष्ट उपलब्धिलक्षणअप्राप्त कार्यों में भी क्रम/यौगपद्य के साथ ही अर्थक्रियासामर्थ्य की व्याप्ति होती है।

### [ प्रकारान्तराभाव की अनुमान से सिद्धि ]

- क्रम-यौगपद्य से अतिरिक्त प्रकार का अभाव अनुमान से भी अवश्य सिद्ध हो सकता है। प्रकाश और
- 20 अन्धकार की तरह अन्योन्य व्यवच्छेदस्वरूप भावों में से एक का निषेध करने पर दूसरे का विधान निर्बाध फलित होता है। वस्तु का निषेध कर के उसी वस्तु के विधि का भी निषेध करेंगे तो, एक ही वस्तु में विधि और प्रतिषेध उभय का विरोध स्पष्ट होने के कारण, उभय का निषेध यानी तृतीय प्रकार सम्भवित ही नहीं होगा। अनुमानप्रयोग को देख लो — जिस वस्तु में एक धर्मरूप प्रकार के निषेध के द्वारा तद्विरुद्ध अन्य प्रकार का प्रतिपादन किया जाता है वहाँ उन दो से अतिरिक्त प्रकार का सम्भव नहीं हो सकता।
- 25 उदा० पीतरूप में नीलात्मक एक प्रकार के निषेध के द्वारा अनील प्रकार का प्रतिपादन करने पर नील-अनील से अतिरिक्त प्रकार बचता नहीं। प्रस्तुत में भी, क्रम-यौगपद्य में से किसी एक का व्यवच्छेद करने पर दूसरे प्रकार की स्थापना, व्यवच्छेदविषयभूत प्रकार से सम्बन्ध न रखनेवाले सभी कार्यकारणरूप भाव में स्फुट ही है। यहाँ विरुद्ध हेतु की उपलब्धि (जैसे जल की उपलब्धि से अग्नि के अभाव की तरह) प्रकारान्तराभाव को सिद्ध करती है। व्यवच्छेदविषयीभूत प्रकार से अन्य प्रकार की स्थापना यही प्रकारान्तररूप
- 30 है, अथवा यह कहिये कि प्रकारान्तर का लक्षण है व्यवच्छिद्यमान प्रकार से बहिर्भूत भाव। यहाँ तथाभाव और अन्यथा भाव 'परस्परपरिहारेण अवस्थान' स्वरूप विरोधग्रस्त है अतः एकप्रकार के निषेध से दूसरे प्रकार का विधान प्रसक्त होने पर तृतीय प्रकार का अभाव अनुमानसिद्ध है।

व्यवच्छिद्यमानप्रकारेतरव्यवस्थापनं प्रकारान्तरत्वं प्रकारान्तरंश्च (?) ततो बहिर्भावलक्षणः इत्यनयोस्तथा-  
ऽन्यथारूपयोः परस्परपरिहारलक्षणत्वात्। न चात्रापि (२८-३) बाधकान्तराशंकयाऽनवस्थानमाशंकनीयम्  
(??) पूर्वप्रसिद्धस्य विरोधस्य स्मरणमात्रत्वविरुद्धोपलब्धिषु हि धर्मिणि सद्भावमुपदर्शिविरोधमेव बाधकं  
(??) तस्माद् विरुद्धयोरेकत्रासम्भवात् प्रतियोग्यभावनिश्चयः शीतोष्णस्पर्शयोरिव भावाभावयोरिव वेति  
कुतोऽनवस्था ?

5

अथ कथं क्रम-यौगपद्याऽयोगोऽक्षणिकेषु भावेषु ? — उच्यते ? न तावदक्षणिकाः क्रमेणार्थक्रियाकारिणः  
अकारकावस्थाविशेषात् प्रागेव द्वितीयादिक्षणभाविनः कार्यस्य क(1)रणप्रसंगाच्च तत्कारकस्वभावस्य प्रागेव  
सन्निधानात्। न च तदैव सन्निहितोपा(त्या)दकानां कार्याणामनुदयो युक्तः पक्षा(?श्चा)दपि तत्प्रसक्तेः। न  
च सहकारिक्रमात् कार्यक्रम इति वक्तव्यम् यतः <sup>a</sup>सहकारिणः किं विशेषाधायित्वेन तथा व्यपदिश्यन्ते  
आहोस्विद् <sup>b</sup>एककार्यप्रतिनियता(मा)च्चक्षुरादयः इवाक्षेपकारिणः स्वविज्ञाने ? तत्र यदि प्रथमो विकल्पः, 10

पहले जो (२८-१७) अनुमान की चर्चा में बाधक की शंका ऊठा कर, उस बाधक के निरसन के  
लिये किये जानेवाले अन्य अनुमान में पुनः बाधक शंका — इस तरह अनवस्था का प्रसञ्जन किया था  
वह निरवकाश है। जब पूर्वगृहीत विरोध का स्मरण पहले जाग्रत् हो जाने के बाद विरुद्धोपलब्धि हेतु  
प्रयोग किया जाता है तब साध्य धर्मी में साध्य उपदर्शक अनुमान हो जाता है तब उस अनुमान के विरोध  
से बाधक ही ठंडा हो जायेगा। कारण, विरुद्ध तत्त्वद्वय का एक वस्तु में समावेश संभव ही नहीं होने 15  
से, एक विरुद्ध की उपलब्धि हो जाने पर अन्य प्रतियोगी के अभाव का निश्चय स्वतः हो जायेगा, जैसे  
शीत-उष्ण स्पर्शद्वय अथवा भावअभावद्वय में, फिर बाधक की शंका ही नहीं रहेगी तो अनवस्था कैसे ?

### [ अक्षणिक भाव में क्रम/यौगपद्य की असंगति ]

प्रश्न :- तृतीयप्रकार का अभाव मान लिया, किन्तु अक्षणिक भावों में क्रमशः या युगपद् अर्थक्रियाकारित्व  
का मेल नहीं खाता — यह कैसे सिद्ध करेंगे ? 20

उत्तर :- अक्षणिक भाव क्रम से अर्थक्रियाकारी नहीं हो सकते क्योंकि द्वितीयादिक्षणभावि अर्थक्रिया  
का अकारकत्व जैसे प्रथम क्षण में है वैसे ही प्रथमक्षण की अर्थक्रिया के प्रति भी अकारकत्व तदवस्थ  
ही रहेगा। अथवा स्वभाव में तफावत न होने से पहले क्षण में जैसे प्रथमक्षणवाले कार्य का कारित्व है  
वैसे ही द्वितीयादिक्षणभावी कार्यों का भी सम्पादन प्रसक्त होगा, चूँकि द्वितीयादिक्षणकार्यकारकस्वभाव प्रथम  
क्षण में भी अक्षुण्ण है। जिन कार्यों के उत्पादक जिस क्षण में हाजीर हैं उन कार्यों का उस क्षण में उदय 25  
कोई रोक नहीं सकता। यदि उस वक्त कार्य नहीं होगा तो बाद में भी उदय नहीं होगा। (जो आज नहीं  
हो सकता वह कल भी नहीं हो सकेगा।)

यह मत कहना कि — ‘उपादानात्मक कारण हाजीर होने पर भी सहकारी कारणों का योगदान आगे  
पीछे यानी क्रमिक होने से कार्यवृन्द भी क्रमिक होता है।’ — ऐसा कहने पर तो और दो प्रश्न खड़े होंगे  
— <sup>a</sup>क्या कुछ विशेषता का कारण में आपादन करने के कारण वे सहकारी कहे जाते हैं ? <sup>b</sup> या चक्षु 30  
आदि जैसे अपने ज्ञानरूप एक कार्य के प्रति मिलकर नियतरूप से कार्यात्पादक होते हैं वैसे यहाँ एक  
कार्य के प्रति प्रतिबद्धता के जरिये वे सहकारी कहे जाते हैं ?

स न युक्तः 'अयमेव हि भेदो भेदहेतुर्वा विरुद्धधर्माध्यासः कारणभेदश्च' [ ]। ततश्चेन्न भेदो न क्वचिदप्ययं भवेत् अन्यनिमित्ताभावात्। 'प्रतिभासभेदात्' इति (चेत्) ननु प्रतिभासभेदोपीतेरतरप्रतिभासाभावरूपतया विरुद्धधर्माध्यासरूपतां नातिवर्तते, भेदे चातिशयस्य तदवस्थ एवासौ भाव इति पश्चादप्यकारकः पूर्वावस्थायामि(?ती)व। तस्मादेवातिशया(त्) कार्यस्योत्पत्तेस्तत्र भावे कारकव्यपदेशो विकल्परचित एव भवेत्।

- 5 ▼अथ द्वितीयो विकल्पोऽभ्युपगमविषयः सोऽपि न युक्तः, यतो न नित्यानामेकार्थं प्रतिनियमलक्षणं सहकारित्वमस्माभिरपह्नुयते किन्तु अक्षणिकत्वे प्राक् पश्चात् पृथग्भावसम्भवात् कार्यस्य तथा क्रियाप्रसंगेन 'सहैव कुर्वन्ति' इति सहकारित्वनियमो न युक्तिसंगतो भवेत्। यतो न ति(ते) साहित्येऽपि पररूपेणैव

### [ सहकारी द्वारा विशेषाधान के विकल्प का निरसन ]

- 10 प्रथम विकल्प युक्तियुक्त नहीं है। सहकारी यदि मूल कारण में किसी विशेष का आधान करेगा, तो उस से मूल कारण को कुछ भी लाभ होनेवाला नहीं, क्योंकि वह विशेष तो मूल कारण से सर्वथा भिन्न अर्थ है, मूल कारण का उद्भव हो गया, बाद में जो मूल कारण का पश्चाज्जात कोई स्वभावविशेष निपजेगा, स्व से अथवा अन्य हेतु से, वह मूल कारण का स्वभाव नहीं बन सकता। सुविदित न्यायोक्ति है कि — 'जो विरुद्धधर्माध्यास होता है वही तो भेद अथवा भेदापादक हेतु है, अथवा कारणभेद भेदापादक होता है।' — यहाँ कारणभेद अथवा विरुद्धधर्माध्यास स्पष्ट है — प्रथम क्षण में अविशेषस्वभाव और दूसरे 15 क्षण में विशेष स्वभाव। अथवा मूल कारण के उत्पादक भिन्न हैं और विशेष के उत्पादक सहकारी हैं। इस प्रकार भेद के निमित्त होते हुए भी अगर मूल कारण और विशेष का भेद नहीं मानेंगे तो, तीसरा कोई निमित्त न होने से कहीं भी भावों में भेद न रहने से अभेदवाद प्रसक्त होगा।

प्रश्न :- तीसरा निमित्त क्यों नहीं है ? है, प्रतिभासभेद से भी वस्तुभेद होता है (जो कि मूल कारण एवं विशेष में न होने से यहाँ भेदापादन नहीं हो सकता।)

- 20 उत्तर :- अरे ! प्रतिभासभेद क्या है ? अन्योन्य प्रतिभासाभाव यही है प्रतिभासभेद। वह परस्पर अभावरूप होने से विरुद्ध धर्माध्यासरूप ही तो हुआ। इस से मूल कारण और विशेष में प्रतिभासभेदप्रयुक्त भेद जब सिद्ध है तो भिन्न विशेषरूप अतिशय होने पर भी मूल कारण तो तदवस्थ (यानी निष्क्रिय) ही रह गया, तो जैसे सहकारीविरह में पहले वह अकारक था वैसे पीछे भी अकारक ही बना रहेगा। सारांश, सहकारीक्रमप्रयुक्त क्रम से अक्षणिक पदार्थ में विशेषाधानमूलक अर्थक्रिया करण शक्य नहीं। उपरांत 25 जिस अतिशय की प्रतीक्षा थी उस से ही कार्य सम्पन्न हो जाने पर, मूलकारणात्मक भाव में 'कारक' शब्द का प्रयोग कल्पनाकल्पित ही रह गया। दूसरा विकल्प है एक कार्य के प्रति प्रतिबद्धता के जरिये क्रम से कार्यकरण — वह भी युक्तियुक्त नहीं।

### [ एककार्यप्रतिबद्धतारूप सहकारित्व अघटित ]

- 30 दूसरा विकल्प था एककार्यप्रतिबद्धता का — वह भी युक्तिसंगत नहीं। देखिये — चक्षु आदि की तरह सहकारिवृन्द एककार्य करने के लिये बद्धकक्ष बन जाय यह नित्य भावों में सम्भव है, हम उस का अपलाप नहीं करते, किन्तु भावों के अक्षणिकत्व पक्ष में अनेक सहकारीयों में अन्योन्य पृथक्ता होने से कोई पहले ▼. सकलेयं चर्चा प्रमेयकमलमार्तण्डे पृष्ठ ४ मध्येऽनुसन्धेया।

कार्यकारिणः, स्वयमकारकाणामपरयोगेऽपि तत्कारित्वाऽसम्भवात्। सम्भवे वा (ऽपर एव) परमार्थतः कार्यनिर्वर्तको भवेत्, स्वात्मनि तु कारकत्वव्यपदेशो विकल्पनिर्मित एव भवेत्। एवं च नास्यानुपकारिणो भावं कार्यमपेक्षेतेति तद्विकलेभ्य एव सहकारिभ्यस्तत् समुत्पद्येत। अथवा तेभ्योऽपि न भवेत् स्वयं तेषामप्यकारकत्वात्, पररूपेणैव कर्तृत्वाभ्युपगमात्। अतः सर्वेषां स्वयम(प?)कर्तृकत्वा(त्) पररूपेणाप्यकर्तृत्वात् सर्वथा कर्तृत्वोच्छेदतो न कुतश्चित् किञ्चिदुत्पद्येत। तस्मात् स्वरूपेणैव कार्यस्वभावाः कर्तारः इति न कदाचित् तत्क्रियाविरतिरिति कुत एकार्थक्रियाप्रतिनियमस्वरूपमक्षणिकानां सहकारित्वम् ? 5

‘सामग्रीजन्यस्वभावतया कार्यस्य तस्याश्चापरापरप्रत्यययोगरूपतयाऽयोग(गे) प्रत्येकं तत्क्रियास्वभावत्वे-ऽप्यनुत्पत्तिः’ इति चेत् ? व्याहृतमेतत्, यतोऽयमेकोपि क्रमभाविकार्योत्पादने समर्थः ततः कथमेषां भिन्न-कालापरापरप्रत्ययप्रयोगलक्षणानेकसामग्रीजन्यस्वभावता ? एकेनापि तेन तज्जननसामर्थ्यं बिभ्राणेन तानि जनयतन्मानि (?जनयितव्यानि) न ह्यन्यथा केवलस्य तज्जननस्वभावता सिद्ध्यति, तस्याः प्रा(कार्यप्रा)दुर्भावा- 10

अपना कार्य कुछ अंश से करेगा, बाद में दूसरा — इस तरह तथाविध (भिन्न भिन्न) क्रिया प्रसङ्गत करनेवाले भी भिन्न भिन्न काल में अपने सिर पर आये हुए काम करेंगे — तब ‘साथ रह कर ही कार्य करते हैं’ इस प्रकार के सहकारिभाव का नियम युक्तियुक्त नहीं ठहरेगा। कारण, यदि समूह बनाकर कार्य करनेवाले भी अपने प्रातिस्विकरूप से ही कार्य करेंगे, न कि पररूप से। स्वयं अपने पाणि-पादादिस्वरूप से निष्क्रिय रह कर तो दूसरे के सहयोग से भी कोई कार्य कर सके यह असम्भव है। यदि सम्भवित मान ले, फिर भी पर व्यक्ति ही वस्तुतः कार्यसम्पादक ठहरा, मूल कारण में तब ‘कारक’ पन का निर्देश तो कल्पनाकल्पित ही हो गया। फलतः सिद्ध होगा कि कार्य किसी अनुपकारि भाव का मुहताज नहीं होता, क्योंकि उस से विरहित भी सहकारीवृन्द से कार्य तो निपजता है। अथवा तो यह कहिये कि सहकारीवृन्द से भी कार्य नहीं हो पायेगा, क्योंकि मूल कारक तो वे नहीं है, वे तो सीर्फ सहकारी हैं। सहकारी तो मूल कारण को सहकार करने से परतः यानी पररूपेण (अर्थात् गौण प्रकार से) ही कर्ता माने गये हैं। इस ढंग से सोचा जाय तो स्वयं भी स्वरूप से कर्ता नहीं, पर रूप से भी कर्ता नहीं, तो कर्तृत्व मात्र का उच्छेद हो जाने से कुछ भी किसी से उत्पन्न नहीं होगा, जगत् कार्यशून्य प्रसक्त होगा। अब यह फलित होता है — कर्तृत्वोच्छेद दोष से बचने के लिये वस्तु (कार्य) स्वभाव ऐसा स्वीकारना पड़ेगा कि सब स्वरूप से ही कर्ता होते हैं। स्वरूप से कर्ता यदि अक्षणिक होगा तो स्वतः सतत अपनी अपनी क्रिया करता रहेगा, फिर एक अर्थक्रिया प्रतिबद्धत्व कुछ अर्थ ही नहीं रखता, तो अक्षणिकों में सहकारित्व कैसे कहाँ रहेगा ? 25

### [ कार्य में सामग्रीजन्यस्वभावता का निरसन ]

**नित्यवादी** :- कार्य का स्वभाव है सामग्री से पैदा होना। सामग्री क्या है ? मूल (= प्रधान) कारण के साथ अन्य अन्य (सामग्रीअन्तर्गत) निमित्तों का संयोग। क्षणिकवाद में ऐसा संयोग शक्य नहीं है। अतः प्रत्येक ( सामग्री अन्तर्गत) निमित्त में तत्तत् क्रिया करणस्वभाव रहते हुए भी कार्योत्पत्ति कभी नहीं होगी। 30

**क्षणिकवादी** :- इस कथन में परस्पर विरोध है। देखिये — जब एक एक कारण या निमित्त में क्रमिककार्यजननक्रियास्वभावरूप सामर्थ्य मौजूद है तो वे अपना कार्य करके ही रहेंगे, क्यों उन्हें भिन्न भिन्न

- नुमीयमानस्वरूपत्वात् कार्याणि च कारणान्तराण्यपेक्षमाणानि कथमयमुपेक्षते ? अनादृत्य तानि हठादेव जनयेत् कार्याणि । यो हि यत्र जनयति नासौ तज्जननस्वभावः, न चायं केवलः कदाचिदप्युत्तरोत्तरकालभावीनि प्रत्ययान्तरापेक्षाणि कार्याणि जनयतीति (न) तत्स्वभावो भवेत् । अतत्स्वभावश्च प्रत्यया(न ?) न्तरसन्निधानेऽप्यत्यक्तरूपो नैव जनयेत् । स च केवलोऽपि तज्जननस्वभाव इति ततः केवलादुत्पत्तिं
- 5 ब्रु(ब्र)वीषि कार्याणि च सामग्रीजन्यस्वरूपतया सामग्र्यन्तराण्यपेक्षन्ते इति ततः केवलादनुत्पत्तिं वदसि । एते चोत्पत्ति-अनुत्पत्ती तज्जन्यत्वाऽतज्जन्य(त्व)स्वभावते विरुद्धे कथमेकत्र स्याताम् ?

### [ स्वभावभेदावतारवारणनिष्कलता ]

अथ कारणैः हेत्वन्तरापेक्षकार्यजननस्वभावोऽयमुत्पादित इति केवलो न जनयति, न च सहकारि-सहिताऽसहितावस्थयोरस्य स्वभावभेदः, प्रत्ययान्तरापेक्षस्वकार्यजननस्वभावतायाः सर्वदा भावात् । — असार-

- 10 कालवर्त्ती अन्य अन्य निमित्तसंयोगात्मकं अनेकरूप सामग्री पर निर्भर माना जाय ? कार्य को क्यों स्वजनकक्रियास्वभाववाले एक कारण से जन्य मान कर भी उक्त सामग्री से जन्य स्वभाववाला माना जाय ? एक भी व्यक्ति यदि स्वकार्यजननस्वभावात्मक सामर्थ्यशालि है तो उसे अपने अपने कार्यों का निर्माण करना ही पड़ेगा, यदि वे नहीं करेंगे तो अकेले तत्तद् व्यक्ति में स्वकार्यजननस्वभाव कैसे सिद्ध होगा ? कार्यजननस्वभाव तो कार्यप्रादुर्भाव के द्वारा ही अनुमितिगोचर होनेवाला है । प्रधान कारण समर्थ होने पर
- 15 भी यदि कार्यवृन्द अन्य कारणों की प्रतीक्षा करते हुए उत्पन्न होने से कतराते हैं तो समर्थ कारण उन अन्य कारणों की परवा न कर के जोर लगा कर कार्यों को उत्पन्न होने के लिये बाध्य करेंगे ही । यदि वह प्रधान समर्थ कारण स्वकार्य को उत्पन्न नहीं करता तो समझना चाहिये कि वह तत् कार्यजननस्वभावरूप यानी समर्थ नहीं है ।

### [ नित्य के कार्यजननस्वभाव वैचित्र्य की शंका - उत्तर ]

- 20 नित्यवादी :- अरे ! कारण का तज्जननस्वभाव ही ऐसा विचित्र है कि खुद अकेला नहीं किन्तु किसी भी समय उत्तरोत्तरकालसंप्राप्त अन्य अन्य निमित्तों से सहचरित हो कर ही कार्य निपजाता है — यही उस का स्वकार्यजननस्वभाव है । तब विरोध कैसे ?

- क्षणिकवादी :- इस का तो मतलब यही हुआ कि वह अकेला कार्यजननस्वभावी नहीं है । जब स्वयं बाँझ जैसा वह अकेला कार्यजननस्वभावी नहीं है, तो अन्य अन्य निमित्तों के समवधान में वह
- 25 अजननस्वभाव त्याग किये विना कार्योत्पत्ति कर ही नहीं सकता । एक ओर ऐसा कहें कि वह अकेला कार्योत्पत्तिसमर्थ है और दूसरी ओर ऐसा मानते हैं कि कार्य तो सामग्रीजन्यस्वभावाश्लिष्ट होने से अन्य अन्य कारण संहतिरूप सामग्री की अपेक्षा रखते हैं अतः अकेले एक से कार्योत्पत्ति नहीं हो सकती — तो यहाँ थोड़ा सोच लो कि उत्पत्ति/अनुत्पत्ति, तज्जन्यत्व/अतज्जन्यत्व स्वभाव, परस्पर विरुद्ध ये सब एक व्यक्ति में कैसे रहेंगे ?

- 30 [ नित्य पदार्थ में निमित्त सापेक्ष स्वभाव की शंका - उत्तर ]

नित्यवादी :- क्या करे ! स्थायी भाव जो अपने कारणों से तथास्वभाव ही पैदा हुआ है कि अन्यहेतुओं का सहयोगी होकर वह कार्योत्पत्ति करता है, अकेला नहीं करता । अतः वह सहकारीमुक्त हो या सहकारीयुक्त

मेतत्, यतः प्रत्ययान्तरसंनिधा(ने)पि स्वरूपेणैवास्य कार्यकारिता, तच्च प्रागप्यस्ति प्रत्ययान्तरापेक्षायाश्च ततो लभ्यस्यात्मातिशयस्याभावतोऽयोगात् उपकारलक्षणत्वादपेक्षायाः अन्यथाऽतिप्रसक्तेः। तत्संनिधानस्या-सन्निधानतुल्यत्वाच्च केवल एव कार्यं किं न करोति ? अकुर्वश्च केवलः सहितावस्थायां च कुर्वन् कथं न भिन्नस्वभावो भवेत् ?

अपि च, यदि सहकार्यपेक्षा कार्यजननस्वभावता तस्य सर्वदा अस्ति तदा सर्वदा कार्योत्पत्तिप्रसक्तिः। 5  
अथ सहकारिसन्निधान एव तत्स्वभावता कथं न स्वभावभेदा(त्) वस्तुभे(दं ?)दः, स्वभावस्यैव वस्तुत्वात्? तस्मात् सहितावस्थायाः स्वरूपेणोपकारकस्य प्रागपि तत्स्वभावत्वे कार्यक्रियाप्रसंगाद् नाऽक्षणिकस्य कार्य-क्रियासम्भव (इ)ति न क्रमयोगः। यौगपद्यमपि तस्याऽसङ्गतम् द्वितीयादिक्षणेषु तावत् एव कार्यकलापस्योदय-प्रसंगात्, हेतोस्तज्जननस्वभावस्याऽप्रच्युतेः। सन्निहितसकलकारणानां वा(?चा)नुदयोऽयुक्तः प्रथमक्षणेऽपि

हो, स्वभाव में कोई फर्क नहीं पडता, क्योंकि अन्य अन्य निमित्तसापेक्ष कार्यजननस्वभाव तो उस में सदाबहार 10 है।

**क्षणिकवादी :-** ये वचन निःसार है। कैसे यह देखिये — पररूप से तो कोई कार्यजनक नहीं होता, स्वरूप से ही होता है चाहे अन्यनिमित्तों का संनिधान कितना भी रहे। अगर पहले वह नहीं रहे तो भी स्वरूपतः कार्यकारित्व मौजूद ही है। फिर अन्यनिमित्तापेक्षा का योग ही नहीं घट सकता, क्योंकि उन निमित्तों से कोई अतिशयलाभ तो है नहीं। अपेक्षा का मतलब है अतिशय यानी उपकार, अन्य कोई अर्थ 15 मानने जाय तो बहुत प्रसंग-अतिप्रसंग की जाल खडी होगी। अन्य निमित्तों से जब कोई उपकार शक्य नहीं तब उन की अपेक्षा क्यों ? फिर उन का संनिधान हो (या न हो) न होने तुल्य ही है, तब वह अकेला कार्योत्पत्ति क्यों नहीं कर सकता ? यदि अकेला नहीं कर सकता (यह एक स्वभाव) और निमित्तयुक्तावस्था में करता है तब तो भिन्नस्वभावता का अवतार क्यों नहीं होगा ?

### [ अक्षणिक भाव में क्रमिक कार्यकारित्व अघटित ]

20

यह भी सोचना है — नित्य भाव में कार्योत्पत्ति के लिये यदि सहकारीसापेक्ष कार्यजननस्वभाव सदा विद्यमान है तब तो सदा ही उस स्वभाव से प्रेरित कार्योत्पत्ति चलती रहेगी। यदि सहकारीयों की उपस्थिति में ही तथास्वभावता का अस्तित्व स्वीकारेंगे, अन्य काल में नहीं, तब तो स्वभावभेद गले में आ पडा, उस से वस्तुभेद स्वीकारना पडेगा, क्योंकि आखिर वस्तु क्या है — अपना स्वभाव। इस से यह फलित होता है कि सहकारीयुक्त अवस्था में भी स्वरूप से ही जो उपकारक होता है, वह स्वरूप जब पूर्वकाल 25 में भी मौजूद है तब तो पूर्व काल में भी कार्यजननक्रिया हो कर रहेगी। यदि यह नहीं मानना है तो अक्षणिक में और कोई उपाय न होने से कार्यजननक्रिया का सम्भव नहीं रहेगा — इस प्रकार क्रमिक कार्यकारिता भी नहीं घटेगी।

### [ अक्षणिकभाव में युगपत् कार्यकारित्व अघटित ]

अक्षणिक भाव में एकसाथ कार्यजननक्रिया भी संभवित नहीं। कैसे यह देखिये — पहले क्षण में एक 30 साथ अपने सर्व कार्यों का निर्माण कर दिया, फिर दूसरे क्षण में भी उतने ही पुनः पुनः कार्यवृन्द का निर्माण चालु रहेगा, रुकेगा नहीं, क्योंकि द्वितीयादि क्षण में भी कारण में युगपत् कार्यजननस्वभाव अक्षुण्ण



तद्भावापत्तेरिति क्रम-यौगपद्याऽयोगादक्षणिकानामर्थ(1 ?) क्रियासामर्थ्यविरहलक्षणमसत्त्वमायातमिति सत्त्वलक्षणः स्वभावहेतुः क्षणिकतायां बाधकप्रमाणबलाद् निश्चिततादात्म्यो विशेषलक्षणभाक् कथं न प्रतीतः ?।

अथाऽक्षणिकानामिव क्षणक्षयिणामप्यर्थक्रियासामर्थ्यलक्षणं सत्त्वमनुपपन्नमेव, क्रमाऽयोगस्य तत्रापि तदवस्थत्वात्। अतो न क्षणिका अपि परैरनाधीयमानस्वरूपभेदाः सामर्थ्यक्रियाप्रक्रान्तप्रकारमुत्पादयितुं शक्ताः। न च प्रतिक्षणोदयं बिभ्राणाः परस्परतो विशेषमासादयन्ति भावभेदप्रसङ्गात्। तथाहि— असौ विशेषस्तेषां प्रागुत्पत्तेः पश्चाद्वा ? न तावत् प्राक्, तेषामेव तदाऽसत्त्वात्। पश्चात्तत्स्वरूपस्याऽकार्यत्वात् तदुपहितानुपहितक्षणानामविवेकादिति न सहकारिभिरुपकारः। ततो निर्विशेषाणां न क्रम-यौगपद्याभ्यामर्थक्रियासामर्थ्यलक्षणं सत्त्वम्। तदुक्तं च— ( )

है। पूर्व क्षण में यदि सकल कारणों का संमिलन सज्ज है तो उत्तर क्षण में कार्य का उदय न हो ऐसा मानना अयुक्त है। फिर भी ऐसा मानेंगे तो प्रथम क्षण में भी कार्य का उदय न मानने की विपदा गले पड़ेगी।

इस चर्चा का फलितार्थ यह है कि अक्षणिक भावों में क्रम/यौगपद्य की संगति अशक्य होने से अर्थक्रियासामर्थ्याभावरूप असत्त्व ही स्वीकारना पड़ेगा। तब सत्त्वरूप स्वभावहेतु का क्षणिकता के साथ ही मेल बैठने में कोई बाधक प्रमाण न बच पाने से क्षणिकता के साथ उस का तादात्म्य निश्चित हो जाता है। आपने पहले जो कहा था (५-१२) 'स्वभाव हेतु (सत्त्व) में विशेषलक्षण का निश्चय नहीं हो सकता' — वह मिथ्या हो गया क्योंकि विशेषलक्षणरूप तादात्म्य अब सुनिश्चित हो गया है।

### [ क्षणिकभाव में अर्थक्रियाकारित्व अशक्य - शंका ]

शंका :- आपने अक्षणिक में जो दोष बताया वह क्षणिक भावों में भी प्रविष्ट है, अर्थक्रियासामर्थ्यात्मकसत्त्व की यहाँ भी संगति नहीं बैठती। कारण, क्रमशः कार्यकारित्व का योग क्षणिक वस्तु में संगत नहीं है। क्षणिक भावों में अन्य सहकारी आदि द्वारा स्वरूपविशेष का आधान तो शक्य ही नहीं, अतः क्रियासामर्थ्य का जो प्रस्तुत प्रकार है (यानी क्रमशः अर्थक्रिया) उस का जनन कर नहीं सकता। क्षणिक भाव एवं कितने भी अन्य सहकारी, आखिर तो सब प्रत्येक क्षण में नये नये ही उदित होते हैं, वे कैसे एक-दूसरे को सहयोगरूप विशेष प्रदान करेंगे ? यदि करेंगे तो एक माने गये भाव में भी भेद प्रसक्त होगा। कैसे यह देखिये — यह जो विशेषाधान है वह भावोत्पत्ति के पहले होगा या बाद में ? पहले तो भाव स्वयं ही सत् न होने से विशेषाधान किस में होगा ? भावोत्पत्ति हो गयी, उस के बाद में तो उस भाव का स्वरूप (जो उत्पन्न हो ही चुका है वह) अन्य किसी का कार्यात्मक विशेष बन नहीं सकता। कारण, विशेषाधानयुक्त और विशेषाधानमुक्त वह मूल भाव तो विभिन्न नहीं है। अतः सहकारीयों के द्वारा क्षणिक भाव में कोई विशेषाधानरूप उपकार शक्य ही नहीं है। इस प्रकार क्षणिकभाव विशेषाधानविशिष्ट न होने से क्रम/यौगपद्य से अर्थक्रियाकारित्व रूप सत्त्व उस में घट नहीं सकता। कहा भी है — [हेतुबिन्दुटीका - पृ०१३१]

### [ क्षणिक भाव में सत्त्व हेतु अनैकान्तिक ]

(अक्षणिक में क्रम/यौगपद्य, अर्थक्रियाकारित्व, सत्त्व मेल नहीं खाता...) इत्यादि बोलनेवाला कौन शोभायुक्त बनेगा यदि वह निर्लज्ज नहीं अथवा अज्ञानी नहीं। (वैसे बोलनेवाला कोई नहीं शोभता) क्योंकि

कः शोभेत वदन्नेवं यदि न स्यादहीकता ।

अज्ञ(१)ता वा यतः सर्व क्षणिकेष्वपि तत्समम् ॥ [हेतुबिन्दुटीका — पृ०१३१]

विशेषहेतवस्तेषां प्रत्ययाः न कदाचन ।

नित्यानामिव युज्यन्ते क्षणानामविवेकता ॥ [हेतुबिन्दुटीका — पृ०१३१]

क्रमेण युगपच्चैव यतस्तेऽर्थक्रियाकृतः ।

न भवन्ति ततस्तेषां व्यर्थः क्षणिकताश्रमः ॥ इति ॥

5

तदयं सत्ताहेतुरसाधारणानैकान्तिकः क्षणिकाऽक्षणिकयोरभावात्, प्रकारान्तराभावाच्च न ताभ्यां व्यति-  
रिच्यत इति संशयहेतुस्तयोरिति ।

असदेतत्— यतो नैवमुपकारः क्षणिकानामभ्युपगम्यते । तथाहि— उपकारः समग्रकारणाधीन-  
विशेषान्तरविशिष्टक्षणान्तरजननम् तच्च कथमभिन्नकालेषु परस्परं क्षणिकेषु भावेषु भवेत् कार्य-कारणयोः 10  
परस्परकालपरिहारेणावस्था(नां?)नात् । ततः सामग्र्या एव जनकत्वात् एकस्य जनकत्वाऽविरोधादव्यवधान-  
देशाः समग्र (?) एव प्रत्येकमितरेतरसहकारिणः स्वं स्वं क्षणान्तरं विशिष्टमारभन्ते तदपि चोत्तरोत्तरं तथैव

क्षणिकों में भी वह सब समान है ॥ नित्य भावों की तरह क्षणिकों में विशेष (आधायक) हेतु एवं उन  
के निमित्त किसी भी तरह घट नहीं सकता, यह अविवेकता है ॥ क्षणिक भाव क्रम से या एक साथ  
अर्थक्रियाकारी नहीं बन सकते, अतः उन का (क्षणिकवादियों का) क्षणिकता (सिद्धि) के लिये परिश्रम व्यर्थ 15  
है ॥ — शंकाकार कहता है कि इस तरह क्षणिकतासाधक सत्त्व हेतु न तो क्षणिक भावों के साथ संगति  
रखता है, न अक्षणिक भावों से, अतः वह हेतु असाधारण अनैकान्तिक दोषग्रस्त है, अन्य तो कोई प्रकार  
न होने से क्षणिक-अक्षणिक को छोड़ कर अन्य स्वरूप तो कोई स्वतन्त्र भाव है नहीं — अतः भाव क्षणिक  
है या अक्षणिक इस संशय को खड़ा करने वाला ही सत्त्व हेतु ठहरता है ।

### [ सत्ता हेतु में अनैकान्तिक दोष का निरसन ]

20

शंका का उत्तर :- सत्ता हेतु में अनैकान्तिक दोष-प्रदर्शन गलत है । कारण, हम क्षणिकों में एक-  
दूसरे पर कोई उपकार का नाम निर्देश भी नहीं करते हैं । उपकार यानी क्या यह जान लो — समस्त  
कारणों पर निर्भर ऐसे विशिष्ट कार्य क्षण का जनन जिस में कुछ अन्य विशेष यानी नाविन्यादि का आश्लेष  
हो । ऐसा नाविन्यादि विशेष का सृजन समकालीन क्षणिक भाव एक-दूसरे में कैसे कर सकता है (क्योंकि  
वे तो अपने पूर्णस्वरूप से प्रथमतः एव आविर्भूत है) ? कार्य-कारण तो भिन्नकालीन ही होते हैं एकदूसरे 25  
के काल का परिहार कर के रहने वाले हैं अतः एक-दूसरे में समानकाल में कार्यात्पत्ति नहीं कर सकते ।  
(मतलब, कारणसमूह समकाल में एक-दूसरे के ऊपर किसी भी उपकार का सृजन नहीं कर सकते ।) इस  
प्रकार हमारे क्षणिकवाद में सामग्री ही कार्य जनक होने से उस के घटकी भूत एक एक अवयव में कारणता  
मान लेने में विरोध को अवकाश ही नहीं रहता । सामग्री भी वही कही जाती है किसी एक देश में अवयवों  
का अव्यवधानरूप से जो मिलन होता है यानी प्रत्येक अवयव मिल कर समग्र बनता है । वे सब परस्पर 30  
एक-दूसरे से मिल कर रहे हुए एक-दूसरे के सहकारी कहे जाते हैं । वे सब अपने अपने सन्तान में विशिष्ट  
क्षणान्तर का जनन करते हैं । वे भी उसी प्रकार उत्तरोत्तर विशिष्ट क्षणान्तर को, वे भी उसी प्रकार उत्तरोत्तर

तथैवान्यविशिष्टं कारणभेदाद् भेदसिद्धिः। यथा चक्षुरादयो बीजादयश्चा (त?) ऽकिंचित्करेभ्यः सन्निहितेभ्योऽपि न कार्यप्रभवस्तत्संनिधानस्याऽकिंचित्करत्वात्।

5 न च— परस्परसहकारित्वेऽप्यव्यवधानतः क्षणिकानां विशिष्टक्षणान्तरारम्भकत्वमयुक्तम् प्रथमक्षणोप-  
निपातिनां क्षित्यादीनां परस्परतः तथाभूतक्षणान्तरजननस्वभावातिशयलाभाभावाद् निर्विशेषाणां विशिष्ट-  
क्षणान्तरजननाऽयोगात् योगे वाध्यप्राणामपि तत्प्रसङ्गो विशेषाभावादिति वक्तव्यम्;

मा (?) यतः किं कार्योत्पादानुगुणविशेषविरहाद् निर्विशेषास्त(द्?) उच्यन्ते आहोस्वित् तदुत्पत्ति-  
निबन्धनविशेषवैकल्यात्, उत विशेषमात्राभावात् ? तत्र यद्याद्यः पक्षः स न युक्तः। यतो नास्मन्मते  
कारणस्थमेव कार्यं व्यक्तिमात्रमनुभवति यतस्तदभावे न स्यात्, अपि तु कारणं कार्यरूपविकलमेव कार्यमारभते  
सतः क्रियाविरोधात् भिन्नस्वभावत्वाच्च कारणात् कार्यस्य। द्वितीयपक्षाभ्युपगमोऽप्ययुक्तः, यतोऽव्यवहितः  
10 क्षित्यादिकारण(1?)कलापः कार्यो(त्)पादानुगुणविशेषजननसमर्थो हेतुस्तद्भा(2?)वस्तत्प्रत्यक्षानुप-

विशिष्ट क्षणान्तर को निपजाते रहते हैं। इस प्रकार भिन्न भिन्न कारणों से भिन्न भिन्न कार्य क्षणिकवाद में सिद्ध होते हैं। हाँ जो संनिहित (परस्पर मिलित) रहने पर भी सहकारी नहीं होते वे कार्य के प्रति अकिंचित्कर होते हैं जैसे चक्षुआदि और बीजादि संनिहित रहे फिर भी उन का संनिधान (सहकारीस्वरूप न होने से) अकिंचित्कर होने के कारण उन से कार्योत्पत्ति नहीं होती।

15 [ क्षणिक भावों में क्षणान्तरजनन अघटित - शंका ]

शंका :- क्षणिक भाव अन्तर के विना एक-दूसरे का सहारा बन कर भी नये विशिष्ट किसी भावक्षण को निपजा सके ऐसा कहना गलत ही है। किसी प्रथम एक क्षण में मान लो कि वे पृथ्वी आदि एक दूसरे के साथ अन्तर के विना मिल गये, फिर भी वहाँ विशिष्ट नये क्षण उत्पादक स्वभावात्मक अतिशय का लाभ जब तक नहीं हुआ, वे जैसे पहले थे वैसे ही यानी निर्विशेष (निष्क्रिय) रह जाने से विशिष्ट  
20 नये क्षण की निष्पत्ति का योग नहीं कर पायेंगे। यदि योग कर पायेंगे तो नूतन जात वस्तुमात्र में वैसा होने की विपदा खड़ी होगी क्योंकि विशेषशून्य क्षिति आदि और नूतन जात वस्तुमात्र में विशेषाभाव तो तुल्य ही है।

[ क्षणान्तरजनन अघटित नहीं - उत्तर ]

उत्तर :- बोलने जैसा नहीं। कारण, यहाँ तीन पक्ष (= विकल्प) खड़े होते हैं — ? आपने जो पृथ्वीआदि  
25 को विशेषशून्य होने का कहा वह क्या कार्योद्भव अनुकूल गुणविशेष का विरह होने से ? या — २ उसकी उत्पत्ति का हेतुभूत विशेष के न होने से ? या — ३ किसी भी प्रकार के विशेष के न होने से ?

प्रथम पक्ष का स्वीकार अनुचित है। कारण, हम सत्कार्यवादी नहीं है, कारण में पूर्वतः विद्यमान ही कार्य स्वोत्पत्तिअनुकूल गुण विशेष से व्यक्तभाव को प्राप्त करे ऐसा हम मानते नहीं, जिस से कहा जा सके कि तथाविध गुणविशेष के विरह से क्षणिकों में कार्यारम्भकत्व अघटित है। हम तो स्पष्ट कहते  
30 हैं कि सर्वथा कार्यत्वशून्य ही कारण कार्यजनन करता है (यहाँ गुण विशेष अनावश्यक ही है)। यदि पहले से ही कार्य कारण में सत् (= विद्यमान) है तो जननक्रिया के साथ विरोध प्राप्त होगा, तथा कार्य का स्वभाव कारण से भिन्न होता है यह तथ्य भी तूट पड़ेगा।

लम्बतः सिद्धः, केवलमत्र विवादः 'क्षित्यादयः किं क्षणिकास्तथाभूतविशेषारम्भकाः आहोस्विदक्षणिकाः' इति। तत्र च साहित्येऽपि न ते पररूपेण कर्तारः, स्वरूपं च तेषां प्रागपि तदेवेति कथं कदाचित् क्रियाविरामाः? इति क्षणिकतैव तेषामभ्युपगमनीया।

अथ तेषां समर्थहेतुत्वं कुतः ? परस्परपसर्पणाद्याश्रयप्रत्ययविशेषात् तदन्वय-व्यतिरेकानुविधानदर्शनात् तेषां च प्राक् पश्चात् (पृथग्)भावः कारणाभावादिति नान्यदोदयप्रसङ्ग(ः) प्रत्येकं चेति। 5

तृतीयपक्षोऽप्ययुक्तः, अपरापरप्रत्यययोगतः प्रतिक्षणं भिन्नशक्तीनां भावानां कुतश्चित् साम्यादेकताप्रति-पत्तावपि भिन्नस्वरूपत्वात्। न हि कारणानां भेदेऽप्येकरूपतैव भावस्याऽनिमित्तताप्रसङ्गात्। तथाहि— (??) यदि न कारण(भेदः)भेदादपि (ना?) भेदः... भेदस्वरूपं च कार्यम् तच्चेद् अहेतुकं विश्वस्य वैश्वरूप्यमहेतुकं भवेत्। न च कदाचित् किञ्चित्, एकमेव, वातातपशीतादीनां यथासम्भवं सर्वत्र भेदकारणानां भावात्।

द्वितीय पक्ष का अंगीकार भी अयुक्त है। कारण, यह तो प्रत्यक्ष-अनुपलम्भ (यानी अन्वय-व्यतिरेक) 10 से निर्विवाद सिद्ध ही है कि परस्पर अन्तरविहीन पृथ्वीआदि कारणसमूह कार्यजनन अनुकूल गुणविशेषाधान के लिये समर्थ होता है, क्योंकि हेतुओं का तथास्वभाव होता है। विवाद है तो इतना कि वे पृथ्वीआदि कारणसमूह जो कि तथाभूत गुणविशेषाधानकारक हैं। स्वयं क्षणिक है या अक्षणिक ? उस का निर्णय तो पहले हो चुका है कि (३४-७) वे मिलित होने पर भी पररूप से कर्त्ता नहीं होते, जिस रूप से कर्तृत्व होता है वह स्व-रूप तो नित्य में पहले भी सहकारि विरह में भी विद्यमान तदवस्थ ही है तो कभी कभी 15 (सहकारिविरह में) क्रियाविराम यानी निष्क्रियता कैसे ? निष्कर्ष, नित्य में यह अनुपपत्ति होने के कारण क्षणिकता का स्वीकार करना पड़ेगा।

प्रश्न :- क्षणिक भाव में समर्थ हेतुत्व कैसे सिद्ध होगा ?

उत्तर :- परस्पर अन्तरविहीनरूप से मिलन आदि संबन्धि विशिष्टप्रतीति के बल पर कार्य के साथ उन के अन्वय-व्यतिरेक का अनुगमन दिखाई देता है। क्षणिक भाव का वर्तमान क्षण को छोड़कर पूर्व- 20 पश्चाद् अस्तित्व होता नहीं, तब उस क्षणरूप कारण का अभाव होने से पूर्व या पश्चात् काल में कार्य का उदय नहीं होता। अकेला भी उत्पादक नहीं होता।

### [ भिन्न कारणों में एकरूपता के अभाव का विमर्श ]

तीसरा पक्ष— विशेषमात्र का अभाव, यह भी अयुक्त है। कारण, नये नये निमित्तों के सन्निधान से पल पल में जो भिन्न भिन्न शक्तिवाले भाव निपजते हैं, उन में आंशिक साम्य के जरिये एकत्व का भास 25 होने पर भी वे स्वरूपतः भिन्न यानी एकदूसरे से पृथग् विशेषता युक्त ही होते हैं। कारणों में भिन्नता होने पर भी एकरूपता का संभव हो नहीं सकता, फिर भी एकरूपता मानेंगे तो कारणों का कुछ महत्त्व न रहने से कार्यभावों में अहेतुकता का अतिप्रसंग आयेगा। कैसे यह देखो — कारणभेद होने पर भी कार्यों में भेद नहीं होगा तो अभेद प्रसक्त होगा। किन्तु कार्य तो भेदस्वरूप होता ही है। अतः अभेद नहीं हो सकता। यदि कार्यों में भेद मानेंगे तो समग्र विश्व में प्रसिद्ध वैविध्य निर्हेतुक मानना पड़ेगा। ऐसा कोई 30 क्षेत्र/काल है नहीं जहाँ सब एक ही हो, वायु-गर्मी-शैत्य जो कि सम्भवानुसार भेदप्रयोजक कारण है उन का सर्वत्र अस्तित्व है। इस प्रकार स्वभाव भेद सिद्ध है इसी लिये कभी कभी किसी एक कार्य के कुछ

ततः प्रतिक्षणं स्वभावभेदात् किञ्चिदेव कदाचित् कारणम् न सर्वं सर्वस्येति क्षणिकानामेवार्थ(क्रिया)-सामर्थ्यलक्षणं सत्त्वं सम्भवतीति नाऽसाधारणानैकान्तिकता सत्त्वस्य।

अथ क्षणिकानां क्षित्यादीनामेकैककार्यक्रियायां सर्वेषामभिन्नेनैवात्मना तत्रोपयोगोऽभ्युपगन्तव्यः। अन्यथा कारणभेदात् कार्यभेदप्रसक्तिः। स चैका(?षा)मेकभावेप्यस्ति। न च तदैकं कार्यं जनयति सर्वेषां भाव इति 5 (?) तत् कारणात् अतस्तस्य सामान्यात्मनः कदाचित् कार्यकारिणोप्यभेदादर्थक्रिया सामर्थ्यात् त्वसत्त्वम् इति अनैकान्तिकता हेतोः। असदेतत्, यतः किमिदं कारणं भवताऽभिप्रेतम् भेदो वा — यद्भेदात् कार्यस्यापि भेदः प्रतिपाद्यते ? यदि चक्षुरादिकं प्रत्येकं तदवस्थाभावि कारणम् भेदश्चानेकत्वात्, तदा नायं नियमः — अनेकस्माद् भवताऽनेकैर्नैव भवितव्यम् विपर्यये बाधकप्रमाणाभावात्। 'एकनैवैकं कर्तव्यम्' इत्यत्रापि न नियमकारणमुपलभ्यते।

10 किञ्च, 'एकमेकं करोति' इति कुतोऽवगतम् ?' तद्भावे तस्य(1?) भावात्' इति चेत् ? समानमेतदनेकत्र।

नियत ही कोई कारण होता है, एक से सर्व की या सर्व से एक की उत्पत्ति कभी नहीं होती — इस प्रकार स्वभावभेद से पल पल में वस्तुभेद सिद्ध होने पर अर्थक्रिया सामर्थ्यस्वरूप सत्त्व भी क्षणिक भावों का ही धर्म सम्भवित होता है। अब सत्त्व हेतु में असाधारण अनैकान्तिकता प्रसज्जन तनिक भी युक्त नहीं। \*

[ सामान्यरूप अभेदमूलक कारणसामग्री की जनकता शंका— उत्तर ]

15 शंका :- 'क्षणिक पृथ्वी आदि जब एक बार एक कार्यजननक्रिया में जुटते हैं तब अभिन्न एकरूप हो कर ही उपयुक्त बनते हैं' ऐसा तो मानना ही पड़ेगा। यदि अभिन्न एकरूप न माना जाय तो भिन्न कारणों से कार्य भी भिन्न भिन्न बन जायेंगे। अब जान लो कि उन में से एक एक भाव में भी वह अभिन्न एकरूप उपयोग विद्यमान है, फिर भी एक एक भाव से कार्यजनन नहीं होता सभी का वहाँ भाव हो तभी कार्य का करण होता है। अतः मानना होगा कि वे कारण सब एक सामान्यात्मक 20 अभेद से ही कभी कार्यकारी बनते हैं — यानी सामान्यात्मक अभेद में अर्थक्रियाकारित्व रहता है किन्तु सत्त्व नहीं रहता। इस प्रकार सत्त्व हेतु में अनैकान्तिकता दोष लगा रहेगा। (पाठ अशुद्धि के कारण सम्यक् विवेचन करना यहाँ मुश्किल है)

उत्तर :- शंका गलत है। प्रश्न यह है कि आप यहाँ 'कारण' पद से क्या समझते हैं ? अथवा कारण भेद पद से, जिस के आपादनबल से कार्य का भी भेद प्रसज्जित करते हैं ? यदि आप कहना 25 चाहते हैं कि चक्षु आदि तदवस्थाभावि एक एक तत्त्व (प्रत्यक्षकार्य के) कारणीभूत है और वे अनेक होने से उन में भेद भी हैं; तो समझ लो कि — यहाँ कोई ऐसा नियम नहीं है कि 'अनेक कारणों के होने पर (भेद के जरिये) कार्य भी अनेक ही होने चाहिये।' उस से विपरीत अनेक कारण से एक कार्य के होने में कोई बाधक प्रमाण नहीं है। तथा 'एक कारण से एक ही कार्य होना चाहिये' ऐसा नियम मानने में कोई भी आधार नहीं है।

30 (अनेक कारणों से एक कार्य की उत्पत्ति के लिये अब अभिन्न एकरूप का अंगीकार प्रसक्त नहीं हो सकता। एवं कारणभेद से कार्यभेद का आपादन भी शक्य नहीं।)

तथाहि— एकमङ्कुरादि कार्यमङ्गीकृत्य विशिष्टक्षणान्तरोत्पादनलक्षणेनाऽतिशयाधानेन क्षित्यादीनां प्रवृत्तिः । तत्र स्वहेतुपरिणामोपात्तधर्माणस्तदवस्थाप्राप्ताः तस्यैवैकस्य जनने समर्थाः समुत्पन्नाः (ना)न्यस्येति नापरं तद् जनयन्ति, न वाऽनेकोद्भूतं तद् अनेकमासज्यते । यतः 'न कारणमेव कार्यं भवति' इत्येतदस्माभिरभ्युपेयते येनानेकपरिणतेरनेकरूपत्वात् कार्यस्याप्यनेकत्वप्राप्तिः, किन्तु केषुचित् सत्त्वपूर्वमेव किञ्चित् प्रादुर्भवति तद्भावे एव भावात्, तत्कार्यमुच्यते इति नानेकताप्रसङ्गः ।

5

यदि त्वेष्वभिन्नं रूपं जनकं स्यात् तदा तस्यैकस्थितावपि भावात् तत्कार्यजननस्वभावत्वाच्च विशेषान्तरविक(ल्पा ?)लादपि ततः कार्योदयप्रसक्तिः अन्यस्त(?स)न्निधावपि तस्य विशेषाभावात् । तदवस्थायामपि वा न जनयेद् । अतो यद्भावाभावानुविधायि यद् दृष्टं तत् कार्यं त एव च विशेषाः तस्य जनका इति कुतोऽनेकान्तः ? अथ 'सामग्रीमाश्रित्य न कारणभेदात् कार्यभेदः स्याद्' इत्युच्यते, तदप्यसत्, सामग्रीभेदे

### [ अनेक कारणों से अनेककार्योत्पत्ति का निरसन ]

10

यह भी जवाब दो — 'एक कारण एक कार्य करता है' यह किस आधार पर कहेंगे ? यदि एककारण का सद्भाव होने पर एककार्य होता है यह देख कर कहेंगे, तो अनेक कारणों से होने वाले एक कार्य को देख कर अनेक कारणों से एक कार्योद्भव भी कह सकते हैं — दोनों का दर्शन होने से युक्ति समान है । देख लो — किसी एक कार्य अंकुरादि जनन के लिये क्षिति, बीज, जल आदि अनेक भावों (कारणों) की, विशिष्ट नये क्षण का उत्पादन रूप अतिशयाधान द्वारा प्रवृत्ति होती है, तब वे क्षिति आदि भाव अपने हेतुभूत परिणामविशेष से अतिशयाधानकारीधर्मानुविद्ध एवं कारणावस्था प्राप्त, ऐसे स्वरूप से इस तरह उत्पन्न हुए हैं जो एक ही कार्य के उत्पादन के लिये शक्ति धारण करते हैं, अन्य कार्योत्पादन के लिये नहीं । अतः वे न तो अन्य कार्य का निर्माण करते हैं, न तो उन (अनेक) से उत्पन्न कार्य अनेकता को धारण करता है । अनेकताप्रसक्ति होने का कारण यह मान्यता है कि कारण ही कार्य रूप में परिणत होता है (यानी अनेक कारण अनेक कार्यों में ही परिणत होगा ।) किन्तु हम क्षणिकवादियों की मान्यता ऐसी नहीं है जिस से कि अनेकपरिणति के अनेकरूप होने से कार्यों में अनेकताप्रसक्ति की जा सके । हमारी मान्यता है — कुछ तत्त्वों के रहते हुए नवीन ही कुछ तत्त्व जन्म लेता है । वहाँ अन्वय दीखता है उन के रहते हुए ही वह नवीन तत्त्व अस्तित्व में आता है । उस तत्त्व को ही कार्य कहा जाता है । अत एव अनेक से एक कार्य उत्पन्न हो सकता है वहाँ कोई अनेकताप्रसङ्ग का भय नहीं रहता ।

15

20

### [ अभिन्न तत्त्व में कारणता का स्वीकार दोषग्रस्त ]

25

यह सोचना चाहिये कि यदि क्षिति आदि कारणों में अवस्थित कोई एक अभिन्न (नित्य सामान्य) तत्त्व ही जनक माना जाय, तो अकेले उस अभिन्न तत्त्व से ही कार्योत्पाद हो जायेगा क्योंकि उस का आपने विवक्षित कार्यजनन स्वभाव भी मान लिया है, तब तो अनेक कोई विशेष (क्षिति आदि कारण) के न होने पर भी अकेले अभिन्न तत्त्व से (अंकुरादि) कार्योत्पत्ति का अतिप्रसंग होगा । कारण, उत्पत्ति तो सीर्फ सामान्य तत्त्व से ही होनेवाली है फिर क्षिति आदि कारणों का संनिधान रहने पर भी उस तत्त्व को कोई विशेष फर्क पडने वाला है नहीं । या तो ऐसा भी हो सकता है कि अन्यकारणसंनिधान-अनवस्था में भी वह अकेला पड जाने से कार्यजनन नहीं कर पायेगा ।

30

फलित यही होगा कि जो तत्त्व (कार्य) जिन विशेषों की उपस्थिति में जन्म लेता है, अनुपस्थिति

कार्यभेदस्येष्टत्वात् कार्यस्याप्यनेकसामग्रीजनितस्याऽनेकत्वात् तद्वैलक्षण्ये च तस्यापि विलक्षणत्वात् । तस्मात् न सत्तालक्षणस्य हेतोरनैकान्तिकता । नापि विशेषणलक्षणविरहः, प्रमाणनिश्चितस्य तन्मात्रानुबन्धस्य स्वभावहेतुलक्षणस्य सद्भावात् ।

यदप्युक्तम् (५-५) 'कार्यहेतुप्रतिपाद्योऽपि प्रतिक्षणं ध्वंसो न भवति, क्षणिकत्वेऽक्षदृशोऽप्रवृत्तेः, कार्य-कारणभावस्य च प्रत्यक्षानुपलम्भसाधनत्वात्' इति तदप्यसंगतम् । यतो यदि सर्वत्र प्रत्यक्षानुपलम्भसाधन एव कार्यकारणभावस्तदा चक्षुरादीनां स्वविज्ञानं प्रति कुतः कारणताप्रतिपत्तिः ? अथ तद्विज्ञानस्यान्येषु सत्स्वपि हेतुषु कादाचित्कतया तद्व्यतिरिक्तकारणान्तरसापेक्षत्वात् चक्षुरादीनां तत्र हेतुत्वमनुमीयते— स तर्हीहापि न्यायः समानः । तथाहि— विषयेन्द्रियादिवशात् प्रतिक्षणविशरारुणि क्रमवन्त्युपजायमानानि ज्ञानानि तथाविधकारणप्रभवत्वमात्मनः सूचयन्तीति कथं (न) कार्यहेतुः क्षणध्वंसितां चक्षुरादीनां प्रतिपादयेत् ?

10 में नहीं लेता, ऐसा भावाऽभावानुगामि दीखता है वह है कार्य । और वे विशेष (क्षिति आदि) हैं उस के कारण । जब कारण और कार्य का यह सिद्धस्वभाव है तब, सत् कारणों में सत्त्व हेतु से अर्थक्रियासामर्थ्य सिद्ध हो जाने से अनैकान्तिकता दोष है कहाँ ?

सामग्री को लेकर यदि उलटा ही कहा जाय — कि कारण भेद होने पर भी कार्यभेद नहीं होता-तो यह गलत है, क्योंकि कार्यभेद का आधार कारणभेद भले न हो, सामग्रीभेद तो इष्ट ही है । अनेक 15 (यानी भिन्न भिन्न) सामग्री से (उदा० मिट्टी-चक्रादि और तन्तु-वेमादि से) जो कार्य (घट-पट) उत्पन्न होंगे वे अनेक यानी भिन्न ही होंगे । कारण, सामग्री विलक्षण होने पर कार्य भी विलक्षण ही होना चाहिये । इन से स्पष्ट है कि सत्तात्मक हेतु में अनैकान्तिकता दोष निरवकाश है । अत एव पहले (३१८-१४) जो कहा था कि स्वभावहेतु में विशेषलक्षण (साध्य का तन्मात्र अनुबद्ध) संगत नहीं है — वह भी निषेधार्ह है क्योंकि स्वभावहेतु का तन्मात्रानुबन्धरूपलक्षण यहाँ सत्त्व हेतु में ऊपर चर्चित प्रमाण से 20 निश्चित है ।

### [ कार्य-कारणभाव सिद्धि का आधार कौन ? ]

पूर्वपक्षीने यह जो कहा था — (५-१८) कार्यहेतु से प्रसाधित प्रतिक्षणध्वंस की सिद्धि दुरुह है, क्योंकि क्षणिकभाव के प्रति इन्द्रियप्रत्यक्ष की प्रवृत्ति अशक्य है । प्रत्यक्षप्रवृत्ति नहीं होगी तो कार्य-कारणभाव ग्राहक प्रत्यक्ष/अनुपलम्भ प्रवृत्ति नहीं होगी । — यह भी गलत है । कारण, यदि कार्य-कारणभावग्राहक को प्रत्यक्ष/ 25 अनुपलम्भाधीन ही सर्वत्र माना जायेगा तो चक्षुइन्द्रियादि प्रत्यक्ष गोचर न होने से प्रत्यक्ष/अनुपलम्भ के द्वारा स्वजन्य विज्ञान (चाक्षुष प्रत्यक्ष) के प्रति कारणता ग्रहण कैसे होगा ? यदि अनुमान किया जाय — 'अन्य सामग्रीअवयव प्रकाशादि हेतुओं के रहते हुए भी कभी चाक्षुष प्रत्यक्ष का उदय कदाचित् न होने के कारण, प्रकाशादि के उपरांत भी किसी अन्य कारण की सापेक्षता सिद्ध हो जाने पर, अनुमान से चक्षु आदि (अतीन्द्रिय) की कारणता सिद्ध हो सकती है ।' तो हमारे पक्ष में भी यही न्याय समान है जिस 30 से क्षणिकता की या क्षणिक भाव के प्रति प्रत्यक्षप्रवृत्ति सिद्ध हो सकती है । कैसे यह देखो — विषय-इन्द्रियादि योग से पल पल में नये नये क्षणिक ज्ञान क्रमशः उत्पन्न होते हैं, वे सजातीय (यानी क्षणिक) कारणों से जन्म लेते हैं यह अर्थतः सूचित हो जाता है । यहाँ क्षणिक विज्ञानरूप कार्य हेतु से ही चक्षु

कार्यक्रमाद्धि कारणक्रमः प्रतीयमानः कथं कार्यहेतुश्चलप्रतीतिर्भवतीत्यलमतिनिर्बन्धेनाऽज्ञप्रलापेषु ।

यदप्युक्तम् (५-६) — ‘असतोऽजनकत्वाद् न क्षणविशरारोः कार्यप्रसवः’ इति, तदनभ्युपगमादेव निरस्तम् । यच्च (५-६) — ‘अविनष्टा(द्) द्वितीयक्षणव्यापारसमावेशवर्तिनः कार्यप्रभवाभ्युपगमे क्षणभङ्गभङ्गप्रसङ्गः’ इत्यभिहितम्— तदप्यसंगतम् यतो यदि व्यापारसमावेशाद् भावाः कार्यनिर्वर्तका भवेयुस्तदा कार्योत्पादने द्वितीयक्षणप्रतीक्षा(१?)या स्यादयो(१?) दोषा(१?) यावता प्रसवव्यापारसमावेशलक्षणो दोषो (१?) द्वितीयसमयप्रतीक्षाव्यतिरेकेणापि स्वमहिम्नैव कार्यक(१?)रणे प्रवर्तन्ते एव, अन्यथा द्वितीय-क्षणभाविव्यापारजननेऽप्यपरव्यापारसमावेशव्यतिरेकेणाऽप्रवृत्तेस्तत्रापि व्यापारान्तरसमावेशकल्पनातोऽनवस्थाप्रसक्तेः अपरापरव्यापारजननोपक्षीणशक्तित्वात् कदाचनपि कार्यं कुर्युः । अथापरव्यापारनिरपेक्षा एवैकं व्यापारं नि(र्)वर्तयन्ति, तथा सति कार्येण किमपराद्धं येनाद्यव्यापारनिरपेक्षास्तदेव न जनयन्ति ? परम्पर्यपरिश्रमा(१?)षामेवं परिहतो भवति ।

आदि की क्षणिकता का पता क्यों नहीं लग जाता ? जब कार्यो की क्रमिकता से कारणों की क्रमिकता स्पष्ट प्रतीत होती है, तब कार्यहेतु को चल यानी संशयग्रस्तप्रतीतिविषय कैसे कह सकते हैं ? आँख मुँद के कहते रहेंगे तो ऐसे अज्ञानीयों के प्रलापों के प्रति कुछ ध्यान देने की जरूर नहीं है ।

### [ क्षणिक भाव से व्यापार के विना कार्योत्पत्ति- शंका - उत्तर ]

यह जो कहा था — (५-२२) ‘असत् पदार्थ किसी का जनक नहीं होता, अतः क्षणभंगुर भाव से कार्यजन्म नहीं हो सकता ।’ — इस कथन का अस्वीकार ही निरसन है । क्षणिक भाव को हम असत् नहीं मानते । तथा यह जो कहा है — (५-२३) ‘क्षणिक भाव अविनष्ट रह कर दूसरे क्षण में व्यापाराविष्ट हो कर कार्य को जन्म दे सकता है ऐसा मानने पर तो वह द्वितीयक्षण में जीवंत रहने से क्षणिकवाद का भंग हो जायेगा’ — तो यह गलत है । यदि हम मानें कि भाव व्यापाराविष्ट हो कर ही कार्यजनन कर सकता है तो कार्योत्पत्ति के लिये द्वितीयक्षण प्रतीक्षादि दोष सावकाश हो सकते हैं, यावत् कार्यानुकूलव्यापाराविष्टतास्वरूप दोष भी हो सकता है । किन्तु हम मानते हैं कि व्यापारावेश विना भी क्षणिक भाव स्वप्रभाव से ही कार्य निपजाते हैं उस में द्वितीयक्षण की प्रतीक्षा नहीं करते । प्रतीक्षा को मानेंगे तो द्वितीयक्षण में व्यापारावेश (= व्यापारजनन) के लिये और एक व्यापारावेश — जिस के विना उक्त व्यापार-जन्म नहीं होगा — मानना पड़ेगा, एवं एक एक व्यापारावेश के लिये नये नये एक एक व्यापारावेश की कल्पना करेंगे तो अनवस्था दोष प्रसंग होगा । दुष्फल यह होगा कि एक कारण को अपने कार्य करने के लिये अवसर ही नहीं मिलेगा, क्योंकि वह व्यापार के व्यापार की परम्परा के उत्पादन में ही व्यग्र रहेगा, उस में ही उस की शक्ति क्षीण हो जायेगी । यदि कहें कि — ‘कार्योत्पादन के लिये कारण को सीर्फ एक ही व्यापार के जनन की आवश्यकता रहेगी, अन्य अन्य व्यापार की अपेक्षा नहीं होगी’ — तो यदि व्यापार के विना व्यापारोत्पत्ति हो सकती है तो कार्योत्पत्ति का क्या अपराध कि कारण आद्य व्यापार के विना उस को न कर सके । कारणों से अपने प्रभाव से कार्योत्पत्ति मान लेने पर व्यापारपरम्परा के सृजन का व्यर्थ परिश्रम भी टल जायेगा ।



पदार्थव्यतिरेकेण चोपलभ्य स्वभावं व्यापारमभ्युपगच्छतः प्रत्यक्षविरोधश्च । न च व्यापारमन्तरेणार्थक्रिया नोपपत्तिमतीति वक्तव्यम्, व्यापारेणैव व्यभिचारात् । तथा, व्यापारस्याप्यपरव्यापारमन्तरेणापि यदि कार्यं प्रवृत्तिः — अन्यथाऽत्राप्यनवस्थाप्रसंगात् कार्यानुत्पत्तिः स्यात् — तथा(?दा) व्यावृत्त(?पृत)पदार्थस्यापि तमन्तरेणैव सा भविष्यतीति व्यर्थं व्यापारपरिकल्पनम् । तत्स्वभावत एव स्वकार्यकारिणो भावा न व्यापारवशात्, ते च स्वहेतुभ्य एव तथाविधाः समुत्पन्नाः स्वसंनिधिमात्रै(?त्रेणै)व कार्यं नि(र)वर्त्तयति(न्तीति) कुतः 5 क्षणभङ्गभङ्गप्रसङ्गः ? न चाऽनष्टात् कारणादुपजायमाने कार्ये (?) कारणभावसम्भवात् तदभावश्चासतः प्रागसामर्थ्यात् सामर्थ्यकाले च कार्यनिष्पत्तेस्तत्त्वतः (तत्र त)स्याऽनुपयोगात् । तस्मात् पौर्वापर्येणैव कार्य-कारणभावः कारणसत्तानन्तरं च कार्यस्योत्पादने नष्टात् कारणात् कार्यप्रभ(1?)वानुषङ्गः तथाभ्युपगमे च

### [ कार्योत्पत्ति के लिये व्यापार कल्पना निरर्थक ]

10 अनवस्था निवारण के लिये पदार्थ से पृथग् माने गये व्यापार को पदार्थ का स्वभाव मानने जायेंगे तो प्रत्यक्ष विरोध होगा । (स्वभाव अभिन्न होता है, व्यापार भिन्न माना हुआ है — इस तरह विरोध स्पष्ट है ।) ऐसा नहीं कह सकते कि — ‘व्यापार के विना अर्थक्रिया का उपपादन हो नहीं सकता’ — यहाँ तो व्यभिचार दोष होगा कि आद्य व्यापाररूप अर्थक्रिया तो व्यापार के विना ही होती है ।

तदुपरांत, यदि आद्यव्यापार की प्रवृत्ति नये व्यापार के विना माननी पड़ेगी, क्योंकि नये व्यापार से 15 मानेंगे तो पूर्वोक्तरीत्या अनवस्था प्रसंग के कारण कार्योत्पत्ति ही रुक जायेगी — किन्तु तब आद्यव्यापारयुक्त माने गये कारण से आद्यव्यापार के विना ही कार्योत्पत्ति भी मानी जा सकेगी, फिर आद्यव्यापार की कल्पना भी निरर्थक ही ठहरती है । प्रत्येक भाव व्यापार के विना अपने तथास्वभाव से ही अपने कार्य को कर सकते हैं, क्योंकि वे अपने हेतुओं से तथाविधस्वभावयुक्त ही पैदा हुए हैं, अतः अपनी उपस्थिति मात्र से ही कार्य जनन कर सकते हैं — तो अब क्षणभंगवाद का भंगप्रसंग है कहाँ ?

### [ नष्ट कारण से कार्योत्पत्ति का असम्भव ]

क्षणिकवाद में नष्टकारण से कार्योत्पत्ति नहीं मानी जाती, अनष्टकारण से ही स्वप्रभाव से दूसरे क्षण में कार्योत्पत्ति होती है । अतः कारण-कार्य की एककालता प्रसक्त नहीं है । कारण-कार्य में आनन्तर्य यानी पौर्वापर्यभाव का नियम है । यदि दोनों को सहभावी मानेंगे तो कारण कौन — कार्य कौन, निश्चय के 25 विना कारण-कार्यभाव का सम्भव ही नहीं रहेगा । पूर्वकाल में कारण का अभाव होगा तो वह असत् होने से शक्तिहीन रहेगा, समर्थ होगा तो कार्योत्पत्ति हो कर ही रहेगी, वहाँ दोनों का सहभाव आवश्यक उपयोगी नहीं है । अतः दूसरे क्षण में कारण के अभाव में भी पूर्वक्षण के कारण से दूसरे क्षण में कार्योत्पत्ति हो सकती है — इस प्रकार क्षणिकवाद के भंग को अवकाश नहीं है । अतः मानना पड़ेगा कि कारण-कार्यभाव पौर्वापर्य से ही होता है । कारण सत्ताक्षण के अनन्तर क्षण में ही कार्योत्पत्ति होती है । यदि नष्ट कारण से कार्योत्पत्ति मानेंगे तो कार्य का उदय तीसरी क्षण में होने की अनिष्टापत्ति होगी । कैसे यह देखो — 30 पहले क्षण में कारणसत्ता, दूसरे क्षण में कारणध्वंस, बाद में तीसरे क्षण में कार्योत्पत्ति, तो कार्य में कारण

9. कार्यं स्वकारणेनैककालत्वमानन्तर्यनियमा यदि हि कार्य-कारणयोः सहितोत्पत्तिर्भवेत् तदास्यादयो यौगपद्यं च नास्ति सहभाविनोः कार्य-कारणभावसम्भवात् तदभात्तभावश्चासतः (इति पूर्वसम्पादिते वा० बा० आदर्शयोः पाठान्तरं निर्दिष्टं सम्पादकयुगलेन ।)

तृतीये क्षणे कार्योदयः स्यात् (??) यस्मात् प्रथमे क्षणे (कार्योदयः स्यात् (??) यस्मात् ?) प्रथमे क्षणे कारणसत्ता द्वितीये तद्विनाशः ततः कार्योत्पत्तिः तदनन्तरं भावः इति। ततो यथैव कारणविनाशस्तत्सत्तापूर्वको न नष्टाद् भवति तथा समानकालं कार्यं कार(ण)सत्तानन्तर्यान्नष्टादुपजायते।

अथ कारणसत्तापूर्वकत्वात् विनाशो हेतु(मान्) प्रसजति। न, नीरूपत्वात् तस्य तत्र हेतुव्यापाराभावात्। तथाहि— स एव हेतुव्यापारेण क्रियते तस्य कृतस्य किञ्चिद् रूपमुपलभ्येत, विनाशस्तु ना(?नी)रूप इति 5 न किञ्चित् कर्तव्यम्। दृष्टान्तत्वेन तु विनाशस्य उपन्यासा व्यवधायक-कालाऽसम्भवप्रदर्शनार्थः ततो द्वितीये क्षण(णे) कारणं नष्टं कार्यं चोपजाय(?त) मिति कुतस्तयोः सहभावप्रसक्तिः ? तदुक्तम्— [ ]

अनष्टाज्जायते कार्यं हेतुश्चान्येऽपि तत्क्षणम्।

क्षणिकत्वात् स्वभावेन तेन नास्ति सहस्थितिः।।

अत्र च ▼अध्यये (?य) नाऽविद्धकर्णोद्द्योतकरादिभिर्दुक्तम्— ‘यदि तुलान्तयोर्नामोत्रामवत् कार्योत्पत्तिकाल 10

का अनन्तरभाव नहीं रहेगा। फलितार्थः — जैसे कारण का ध्वंस कारणपूर्वक (अनन्तर क्षण में) होता है कारण विनाश से, तो ऐसे ही नष्ट कारण से कार्य का उदय नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि कारणनाशसमानकाल में ही कारण सत्ता के बाद नष्टकारणक्षण में कार्योत्पत्ति होती है। (पाठ अशुद्धि के कारण विवेचन में क्षति के लिये क्षमायाचना।)

[ विनाश के लिये हेतुव्यापार नहीं होता ] 15

शंका :- आपने कहा कि द्वितीयक्षणभाविनाश प्रथमक्षणवृत्ति कारणसत्तापूर्वक होता है, तो अब विनाश सहेतुक सिद्ध होगा।

उत्तर :- नहीं, विनाश नीरूप (स्वरूपशून्य) होता है, निरूप विनाश के प्रति किसी हेतुओं का कोई व्यापार नहीं होता। देखिये— जिस में कुछ रूप (= तत्त्व) उपलब्ध होता है ऐसे ही जन्य भाव के प्रति हेतु का व्यापार जनक बनता है। विनाश तो नीरूप (= स्वरूपशून्य, तत्त्वविहीन) होता है, उस के लिये 20 किसी को कुछ करना नहीं पडता। द्वितीयक्षण के उत्पाद के प्रति अनन्तर कारणता दिखाने के लिये जो उसका दृष्टान्त दिया था वह तो सिर्फ कारण-कार्य क्षणों के पौर्वापर्य दिखाते समय मध्य में एक भी क्षण का व्यवधान सम्भव नहीं — इतना प्रदर्शित करने हेतु दिया था। फलितार्थ यह है कि द्वितीय क्षण में कारणनाश हुआ और कार्य उत्पन्न हुआ तो यहाँ कारण-कार्य का सहभाव कैसे शक्य है ? कहा है [ ] (श्लोक में ‘हेतुश्चान्येऽपि’ पाठ अशुद्ध लगता है, ‘हेतुर्नश्येत’ ऐसा कुछ पाठ सम्भवित है।) 25

‘अनष्टभाव से कार्य निपजता है, उसी क्षण में स्वभावतः क्षणिकता होने के कारण हेतु नाश को प्राप्त होता है, तो यहाँ (उन दोनों कारण-कार्य का) सहावस्थान कैसे होगा ?’

[ अध्ययनादिमत प्रदर्शन - निरसन ]

नाश एवं कार्य के सहभाव के विषय में अध्ययन-अविद्धकर्ण-उद्द्योतकर वगैरह ने जो कहा है (वह भी निरस्त हो जाता है) — 30

▼. भूतपूर्वसम्पादकाभ्यामत्र सन्मति द्विं का० प्र० गाथाटीका - शास्त्रवार्ता० स्या० क० टीका- तत्त्वसंग्रहकारिका पञ्जिका - न्यायवा० सूत्रकृ० टीका- प्र० क० मार्तण्डादिभ्यो बहव उद्धृताः संदर्भाः विशेषार्थिभिः तत एवावसेयाः।

एव कारणविनाशः तदा कार्य-कारणभावो न भवेत् यतः (?? कारणस्य विनाशः कारणोत्पादः एव नाशः ??) इति वचनात्। एवं च कारणेन सह कार्यमुत्पन्नमिति प्राप्तम्। यदि च स एव नाशः प्रथमेऽपि क्षणे न सत्ता भावस्य स्याद् विनाशात्, तदैव लोके च भावनिवृत्तिर्विनाशः प्रतीतः न भाव एव। सर्वकालं च विनाशसम्भवात् सर्वदा भावस्य सत्त्वं स्यात्। अथ कारणोत्पादात् कारणविनाशो भिन्नः तदा कृतकत्वस्वभावत्वमनित्यत्वस्य न भवे(त्)। व्यतिरिक्ते च नाशे समुत्पन्ने न भावस्य निवृत्तिरिति कथं क्षणिकत्वम्” [ ] इति, तन्निरस्तम्। यतो द्विविधो विनाशः – सांव्यवहार्यः तात्त्विकश्च। भावनिवृत्तिरूपः प्रथमः भावरूपश्च द्वितीयः। ततो (? दो)त्पन्नो भावः कार्यं करोति, कार्यकाले च कारणनिवृत्तिरूपो विनाशो लोकप्रतीत एव, नायं भावस्वभाव इष्यते, नापि कारणोत्पादादभिन्नो वा, नीरूपत्वात्। भेदाभेदप्रतिषेध एव केवलस्य क्रियते। उक्तं च – [प्र० वा० ३-२७९]

10 भावे ह्येष विकल्पः स्याद् विधेर्वस्त्वनुरोधतः।।” इति ‘न व्यतिरिक्ते नाशे जाते क्षणरूपस्य भावस्य(1?)

‘तुला के दो ध्रुवों का अवनमन-उन्नमन जैसे समकालीन होते हैं वैसे यदि कारणविनाश एवं कार्योत्पत्ति एक ही काल में मान लेंगे तो कार्य-कारणभाव घट नहीं पायेगा। (पाठ अशुद्धि है – कारणविनाश एव कार्योत्पाद इति वचनात् ऐसे पाठ की कल्पना करे तो) ऐसा कहा गया है कि कारणनाश और कार्योत्पत्ति समकाल होने से एक ही है। (तब, विनाश अहेतुक होने से कार्य भी अहेतुक हो जायेगा।) कारणनाश से कार्योत्पत्ति मानने पर कारणनाशात्मक कारण और कार्य की समकालोत्पत्ति मानना होगा। यदि कार्योत्पाद को ही विनाशात्मक मानेंगे तो प्रत्येक क्षणिक भाव विनाशात्मक हो जाने से प्रथमक्षण में भी कारणरूप से किसी भाव की सत्ता न बन सकेगी (क्योंकि वह भी किसी का कार्य है।) जब कि लोक तो भाव को नहीं किन्तु भावनिवृत्ति को ही नाश प्रतीत करते हैं। तथा विनाश और भाव को एक मानने पर विनाश शाश्वत होने से भाव की सत्ता भी सदा काल प्रसक्त होगी।

20 यदि कहें कि कारणोत्पाद और कारणविनाश एक नहीं है, भिन्न हैं तो अनित्यत्व को कृतकत्वस्वभाव नहीं बोल सकते क्योंकि विनाश कृतक है अनित्य नहीं। तथा भावनाश को भाव से भिन्न स्वीकार करेंगे तो नाश का भाव के साथ (असत् का सत् के साथ) कोई सम्बन्ध न होने से नाश के द्वारा भाव की निवृत्ति नहीं होगी। अब क्षणिकत्व का क्या होगा ?”

यह कथन निरस्त हो जाता है। कारण सुनो ! विनाश की दो विधाएँ हैं – सांव्यवहार्य और तात्त्विक। 25 पहला है भावनिवृत्तिस्वरूप। दूसरा है भावात्मक। वास्तविकता यह है कि उत्पन्न भाव कार्योत्पत्ति करता है। कार्योत्पत्ति काल में उस कारणात्मक भाव की निवृत्तिस्वरूप भाव सारा जगत् देखता है। निवृत्तिस्वरूप विनाश भावात्मक नहीं माना जाता, कारणोत्पाद से अभिन्न भी नहीं माना जा सकता क्योंकि वह नीरूप (= तुच्छ) है। अतः केवल भाव निवृत्ति रूप विनाश न तो भाव से भिन्न (स्वतन्त्र वस्तु) है न तो भाव से अभिन्न है। प्रमाण वार्तिक (३-२७९ उत्तरार्द्ध) में कहा है –

30 [ विनाश का शब्दार्थ एकक्षणस्थायि भाव ]

‘विधि (यतः) वस्तु अधीन होती है (अतः) भाव के लिये ही (भेद/अभेद के) विकल्प हो सकते हैं”। अत एव,

निवृत्तिः' इत्यपास्तम् यतश्च द्वितीयक्षणोत्पत्तिकाल एव प्रथमक्षणनिवृत्तिः तेनैकक्षणस्थायी भावो 'विनाश' शब्देनोच्यते, अयं च भावरूपत्वात् साधनस्वभाव एव विनाशः, कार्योत्पत्तिकाले च निवर्तत इति कार्यभिन्नकालभावी। न च सर्वकालमस्य सद्भावः, भावस्याऽसत्त्वात्। यद्वा विनश्चरोऽयं भावः 'विनाशोऽस्य' इति द्वाभ्यां धर्मि-धर्मवाचकाभ्यामविनाशिव्यावृत्तस्यैवैकस्य भावस्य भेदान्तरप्रतिक्षेपाभ्यामभिधानाद् भाव एव नाश उच्यत इति। यत् पुनरिदमभिहितम् 'विधिरूपेण क्षणिकताऽत्र साधयितुं प्रस्तुतेति प्रतिषेधसाधिकाया 5 अनुपलब्धेरिहानधिकार इति,' तत्, लिङ्गव्यापारविषयानभिज्ञा(1?)ताख्यापनम्। यतो न लिङ्गं विधिमुखेन किञ्चित् प्रवर्तते, सर्वस्य समारोपव्यवच्छेदसाधकत्वे नैव व्यापारादिति कार्य-स्वभावहेत्वोरपि नानुपलब्धि-रूपताव्यतिक्रमः। तेन परमार्थतः अनुपलब्धिरेवैको हेतुरिति सुगतसुताभ्युपग(तः?)मः।

यदप्यभ्यधायि — (६-४) 'प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षावसितं भावानामक्षणिकत्वमिति क्षणध्वंसितापरिकल्पनमयुक्त'

यह जो भी कहा था — भिन्न नाश उत्पन्न होगा तो उस से भाव की निवृत्ति नहीं होगी — यह 10 अब निरस्त हो जाता है। कारण, नये क्षण के उत्पत्तिकाल में ही प्रथमक्षण निवृत्त होता है, अतः 'विनाश' का शब्दार्थ है एकक्षणस्थायी भाव। यह तो भावात्मक ही है अतः विनाश होने से साधनस्वभाव (यानी कारणस्वभाव) फलित होता है जो कि कार्योत्पत्तिकाल में निवृत्ति लेता है, अतः वह कार्य से भिन्नकाल भावी बन गया। इस प्रकार के (कारणात्मक) विनाश का अस्तित्व सर्वकालीन होने की आपत्ति कैसे होगी जब कि वह भाव ही दूसरे क्षण में असत् है। 15

अथवा, यह जो द्विविध प्रतीति होती है 'यह भाव विनाशी है' — 'इस का (यह) विनाश है' — इन में भाव धर्मातया और 'विनाश' धर्मतया प्रतीत होता है तो धर्मी (भाव) और धर्म विनाश के वाचक शब्दों के द्वारा आखिर तो अविनाशीव्यावृत्त एक ही भाव का भेदान्तर (= भाव विशेष) और उस के प्रतिक्षेप के द्वारा निरूपण किया जाता है उस से यही सिद्ध होता है कि प्रथमक्षण का भाव ही विनाश 20 कहा जाता है।

यह जो कहा था (६-९) — 'बौद्धमतवालों को यहाँ विधिरूप से क्षणिकता की आनुमानिक सिद्धि अभिप्रेत हैं, अतः अनुपलब्धि हेतु को यहाँ अवकाश नहीं। (स्वभावकार्य हेतु का निरसन तो पहले कर दिया था)' — यह तो लिङ्गसम्बन्धी व्यापार एवं विषय के अनभिज्ञता का ही प्रदर्शन है। कारण, सुगतपुत्रों का अभिमत ऐसा है कि कोई भी लिङ्ग (चाहे स्वभाव — कार्य या अनुपलब्धि) विधिमुख से साध्यसिद्धि के लिये कभी कुछ नहीं करते। लिङ्गमात्र का एक ही व्यापार है अक्षणिकत्व (यानी स्थायित्व) आदि 25 के समारोप के व्यवच्छेद को भासित करना। कार्य एवं स्वभाव हेतु भी इस प्रकार अनुपलब्धि स्वरूप के बहिर्वर्त्ती नहीं। सत्त्व की अक्षणिक में अनुपलब्धि ही वास्तव में सत्त्वहेतु का परमार्थ है। एवं अग्निशून्य स्थान में धूमानुपलब्धि ही धूम हेतु का परमार्थ है — वास्तव में अनुपलब्धि एकमात्र हेतु होता है — यह बुद्धपुत्रों का मत समझना।

[ अक्षणिकत्व की प्रत्यभिज्ञा में अनुमानबाध ] 30

यह जो कहा था (६-९७) — 'भावों का अक्षणिकत्व जब प्रत्यभिज्ञा-प्रत्यक्ष से गृहीत है तब क्षणध्वंस की कल्पना करना निष्फल है।' — यह भी संगत नहीं, प्रत्यभिज्ञा का प्रामाण्य असिद्ध होने से। देखिये—

इति, तदप्यसङ्गतम्, तस्याः प्रामाण्याऽसिद्धेः । तथाहि — प्रमाणस्येदं लक्षणं परेणाभ्यधायि 'तत्रापूर्वार्थविज्ञानम्' इत्यादिः । न च बाधकवर्जितत्वमस्याः संभवति प्राक्प्रतिपादितानुमानबाध्यत्वात् । अथ तथा बाधितत्वादानुमानस्य कथं बाधकत्वम् ? असदेतत्, अनिश्चितप्रामाण्यायाः अस्या बाधकत्वानुपपत्तेः । न चेतरेतराश्रयत्वं दोषः, यतो नानुमानस्य प्रामाण्यं प्रत्यभिज्ञाऽप्रामाण्याश्रितम् अपि तु स्वसाध्यप्रतिबन्ध्या(?बन्ध)तः स्य(?स) च

5 विपर्यये बाधकप्रमाणबलाद् निश्चित इति कथमितरेतराश्रयत्वलक्षणो दोषः ? न चानुमानविरोधमनुभवन्त्यपि प्रत्यभिज्ञा प्रमाणम् अन्यथाऽऽकारसाम्यदेवत्व(? म्यादेकत्व)मधिगच्छन्ती नीलेतर-कुसुम-सर्पादिवस्तुनः प्रमाणं भवेत्, यतो नात्रापि कुसुमादिकार्यदर्शनमनुमीयमानो भेदः (?) प्रत्यक्षप्रतीततामनुभवति । न चानुमानस्यात्र बाधकत्वं न इतरत्र, प्रमाणावगतसाध्यप्रतिबन्ध(बन्ध)-पक्षधर्मतात्मकतल्लक्षणसंज्ञिनोऽनुमानस्य प्रत्यभिज्ञा अन्यद्वा वत् (किञ्चित्) प्रमाणान्तरं बाधकं संभवति, विरोधात् ।

10 तथाहि— स्वसाध्यप्रतिबन्धे हि सति हेतुः स्वसाध्ये सत्येव तस्मिन् धर्मिणि भवति, बाधा तु तदभावनिमित्तैव कथं न विरोधः ? प्रत्यक्षादिकं च बाधकं तत्र धर्मिणि साध्याभावमवबोधयति, स्वसाध्याविनावैदिको ने कहा है 'तत्रापूर्वार्थविज्ञानं प्रमाणं बाधवर्जितम्' — अपूर्वार्थप्राहि बाधरहित विज्ञान प्रमाण है । प्रत्यभिज्ञा में बाधाविरह का सम्भव नहीं क्योंकि पूर्वदर्शित क्षणिकत्व के अनुमान से वह बाधित है । 'अरे ! वह अनुमान ही प्रत्यभिज्ञा से बाधित है उस से प्रत्यभिज्ञा का बाध कैसे होगा ?' — यह प्रश्न भी गलत

15 है । प्रत्यभिज्ञा का प्रामाण्य ही अब तक अनिश्चित है वह उस अनुमान का बाध कैसे करेगा ? यहाँ परस्पर बाध की कल्पना कर के अन्योन्याश्रय दोष का आपादन भी शक्य नहीं है, क्योंकि अनुमान का प्रामाण्य प्रत्यभिज्ञा के अप्रामाण्य की सिद्धि पर ही अवलम्बित नहीं है किन्तु हेतु में साध्य के प्रतिबन्ध पर अवलम्बित है, एवं वह प्रतिबन्ध भी विपक्षबाधकप्रमाण बल से निश्चित किया हुआ है, अतः अन्योन्याश्रय हो नहीं सकता ।

20 दूसरी और, सुनिश्चित स्वसाध्यप्रतिबन्धवाले अनुमान का विरोध देख कर भागनेवाली प्रत्यभिज्ञा प्रमाण कैसे मानी जाय ? विरोध की उपेक्षा कर के उसे प्रमाण मानेंगे तो नील-नीलेतर (यानी पीत), कुसुम, सर्प आदि पदार्थों में कुछ आकारसाम्य को देखकर उन के एकत्व का निश्चय कर लेनेवाली प्रत्यभिज्ञा को भी प्रमाण मानने की विपदा होगी, क्योंकि यहाँ भी एक सर्पादि पदार्थ में अन्य पुष्पादि के कार्य के अभेद का अनुमान करता हुआ बोध भेदप्रत्यक्षप्रतीति गोचरता का अनुभव नहीं करता है । यदि कहें कि

25 — 'यहाँ अभेद प्रत्यक्ष में भेद का अनुमान बाधक बनेगा किन्तु क्षणिकत्वानुमान अक्षणिकत्व प्रत्यभिज्ञा का बाधक नहीं होगा' — तो यह अयुक्त है, क्योंकि प्रमाण से जब स्वसाध्यप्रतिबन्ध और पक्षधर्मता का निश्चय है जो कि अनुमान का लक्षण है वह जब प्रत्यभिज्ञा का बाध करेगा तब और कोई प्रमाण नहीं है जो उस अनुमान का बाध करे, क्योंकि तब प्रमाण का प्रमाण के साथ विरोध प्रसक्त होगा ।

### [ सद्हेतु और साध्याभाव का स्पष्ट विरोध ]

30 देखिये — किसी एक धर्मी में कोई हेतु अपने साध्य की मौजूदगी में ही रहता है यदि उस का अपने साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध है । जब एक ओर हेतु के धर्मी में साध्य की सत्ता है, दूसरी ओर आप उस में प्रत्यक्ष के द्वारा बाध प्रयुक्त करते हैं जो कि साध्याभावमूलक होता है — तो यहाँ विरोध

भूतश्च हेतुस्तत्र प्रवर्तमानः स्वसाध्यसद्भावमिति भावानामस्वास्थ्यं भवेत्, अनुमानाप्रामाण्यप्रसंगश्चैवं स्यात्। तुल्यलक्षणे ह्येकत्र बाधकसद्भावो दृष्टः इति। अदृष्टबाधकेऽपि तदाशङ्का न निवर्ततेऽविशेषात्। न हि दृष्टप्रतियोगिनः प्रागितरेण कश्चिद् विशेषो लक्ष्यते। यतो न संभवद्बाधकानामपि सर्वदा तदुपलब्धिः। सातिशयप्रज्ञानां तु कदाचिद् बाधकोपलब्धिर्भविष्यतीति तन्न(न नि)श्चयो (?) बाधक(।?)भावाभावयोरित्यनिश्चिततल्लक्षणत्वादानुमानं न किञ्चिदपि प्रमाणं स्यात्।

5

कुतश्चाध्यक्षज्ञानमप्रमाणम् ? नानुमानतः। न हि प्रत्यक्षाऽनुमानयोः प्रमाणरूपतायां विशेषः— प्रत्यक्षेऽप्यर्थाव्यभिचार(। ?)ः प्रामाण्यनिबन्धनम् स च तस्मादात्मलाभः [?? अन्यतो भवतोऽभवतो वा भवतः तदा व्यभिचारनियमाभावात् स पा(।?)र्थात्मलाभः साक्षाद् ??] व्यवधानं तथाऽनुमानेऽपि तुल्यः। यदि प्रत्यक्षबाधान(।?)न्तरेण प्रत्यक्षज्ञानस्याऽप्रामाण्यं नाभ्युपगम्यते तदा वक्तव्यं किमिति शालीबीजमेव शाल्यङ्कुरजनकं (न) कोद्रवबीजम् ? अथ शालीबीजभावे तदङ्कुरभावमवगच्छताऽध्यक्षेण तस्यैव 10 तज्जनकत्वव्यवस्थापनाद् न कोद्रवबीजस्य कोद्रवबीजभावे (।?)शाल्यङ्कुरविक्रमदेशप्रतिभासवतोऽध्यक्षेण तस्याजनकत्वव्यवस्थापनाच्च। नन्वेवमन्वय-व्यतिरेकानुविधायि तत्कालकार्यमवगच्छदध्यक्षं कस्यचिद् वस्तुनः

क्यों नहीं होगा ? एक और प्रत्यक्षादिरूप बाधक उसी धर्मी में साध्याभाव घोषित करता है, दूसरी ओर अपने साध्य का अद्रोही हेतु वहाँ विद्यमान हो कर अपने साध्य की सत्ता को घोषित करता है — ऐसा विरोध यदि सर्वत्र चलता रहेगा तो किसी भी भाव (साध्य) का कहीं भी स्वस्थ निश्चय हो नहीं सकेगा। 15 ऐसा ही चलता रहेगा तो अनुमान का प्रामाण्य भी लुप्त होने का अनिष्ट प्रसक्त होगा।

जब दोनों पक्ष अपने अपने लक्षणों से तुल्य बलवत् बनते हैं तब यह देखा गया है कि किसी एक पक्ष में बाधक सीर उठाता ही है। कदाचित् बाधकदर्शन न भी हो फिर भी वहाँ उस की सम्भावना अक्षुण्ण बनी रहती है जो समानबल के कारण निवृत्त नहीं होती। जहाँ एक बार पूर्व में बाधकरूप प्रतियोगी दृष्टिगोचर बना है वहाँ दूसरी बार उस का उपलम्भ न रहे तो भी उस की सम्भावना में कोई फर्क नहीं 20 पडता, क्योंकि बाधक जहाँ सम्भावित है वहाँ सदैव उस की उपलब्धि हो ऐसा कोई नियम नहीं है। शक्य है कि वहाँ कभी किसी विशिष्टज्ञानी योगी को बाधक का उपलम्भ हो। इस प्रकार बाधकसत्ता या उस के अभाव का निश्चय न होने के कारण हेतु के लक्षण का निश्चय न होने से अनुमान कोई भी प्रमाण नहीं बन सकेगा (यदि अक्षणिकत्व की प्रत्यभिज्ञा में अनुमान का बाध न माना जाय।)

### [ प्रत्यक्षज्ञान के प्रामाण्य का आधार कौन ? प्रश्न ]

25

प्रत्यक्ष में यदि अनुमान का बाध नहीं माने, अर्थात् अनुमान को अर्किचित्कर मानेंगे तो प्रत्यक्ष का अप्रामाण्य कैसे सिद्ध करेंगे ? अनुमान से शक्य नहीं। कारण, तब प्रत्यक्ष में अनुमान का बाध स्वीकारना पडेगा। यानी अनुमान को प्रत्यक्षतुल्य प्रमाण मानना होगा, अनुमान और प्रत्यक्ष की प्रमाणता में कोई तरतमभाव नहीं होता। प्रामाण्य तो अर्थ के अव्यभिचारमूलक होता है, प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों में वह समकक्ष होता है। अर्थाव्यभिचार क्या है ? अर्थ से उत्पत्तिलाभ। (अन्यतो भवतो... व्यवधानं — यहाँ तक 30 पाठ शुद्धि न होने से उस का विवरण नहीं किया।) अर्थाव्यभिचार यानी अर्थ से उत्पत्तिलाभ साक्षात् या परम्परया प्रत्यक्षवत् अनुमान में भी तुल्य है।

- तदा तज्जननस्वभावतानु( ?मु)त्तरकालभाविनस्तत्कार्यस्य तदानीं तस्याऽजननस्वभावतां च किमिति न प्रत्येति ? तथा चोत्तरकाल(भा)विकार्यजननसमये प्रत्यभिज्ञाज्ञानं यदा 'स एवायम्' इति प्रत्येति तदा कथं प्रत्यक्षेण बाध्यते ? यतः 'अयम्' इत्युल्लेखवत् पुरोऽवस्थित(व?)तत्कालकार्यजनकं वस्तुनः परामृशति 'स एव' इत्युल्लेखवच्च प्राक्तनम् तदजनकश्च भावः तस्य संस्पृशति, तत् कथं पूर्वापरकालभावि कार्यजनक-
- 5 स्वभावव्यवस्थापकाऽक्षतप्रत्ययक्रान्ता बाधां प्रत्यभिज्ञाज्ञानमनुभवति ? तथा 'स एवायम्' यः प्रागेव तत्कालकार्याऽजनकस्वभावोऽध्यक्षेण व्यवस्थापितः स यदि न तर्ह्ययं यो जनकस्वभावतयेदानीं परामृष्टः अथायं जनकस्वभावो विरुद्धरूपमाभिभ्रतां द्विचन्द्रादिप्रत्ययानामिव तत्त्वव्यवस्थापकत्वाऽसम्भवादिति स्वप्रतीत्याववाप्यतेयं प्रत्यभिज्ञा। अतो बाधावर्जित(त)त्वमप्यस्यासङ्गतम्। ??)

यथा शुक्तिकायां रजताध्यवसायो दुष्टकारणप्रभवत्वेनाऽप्रमाणं तथा प्रतिक्षणविशरारुषु सदृशा-

### 10 [ प्रत्यभिज्ञा का बाधक अकेला प्रत्यक्ष नहीं ]

- यदि आपका ऐसा आग्रह है कि प्रत्यभिज्ञा में प्रत्यक्षबाध हो तभी अप्रामाण्य स्वीकारना, अन्यथा नहीं तो जवाब देना होगा कि शालीबीज ही शाली-अङ्कुरजनक क्यों ? कोदरव का बीज क्यों नहीं ? (प्रश्न का हार्द यह है कि बाधकार्य यदि सजातीय से ही होने का माना जाय तो अङ्कुरकार्य भी सजातीय अङ्कुर से ही मानना पड़ेगा।) यदि कहें की शालीबीज के रहने पर ही शालीअङ्कुर का सद्भाव प्रत्यक्ष
- 15 से ज्ञात होता है इसलिये शालीअङ्कुर की ही जनकता शालीबीज में प्रस्थापित की जाती है। कोदरव बीज की नहीं। कोदरव बीज जहाँ पडा है वह प्रदेश शालीअङ्कुर से रहित है ऐसा प्रतिभासित करनेवाला प्रत्यक्ष कोदरवबीज में शालीअङ्कुर अजनकत्व को प्रस्थापित करता है। [अब ननु... से... असङ्गतम् पर्यन्त जो पाठ है कुछ कुछ अंश उस के अशुद्ध है अतः स्पष्ट विवरण प्रायः शक्य नहीं, फिर भी कुछ प्रयास किया जाता है] तो यहाँ प्रश्न है कि — जो अध्यक्ष किसी वस्तु के अन्वयव्यतिरेकानुगामि तत्कालीन कार्य का
- 20 अवगम करता हुआ उस वस्तु की तज्जननस्वभावता को ग्रहण करता है — तो उत्तरकालभावि तत्कार्य में उस वस्तु की अतज्जननस्वभावता की प्रतीति क्यों नहीं करता ? अगर प्रत्यक्ष से ऐसी प्रतीति होगी तो प्रत्यभिज्ञान जब (पूर्वकालीन अर्थ ज्ञान के बाद) उत्तरकालभाविकार्यजननकाल में 'यह वही है' (= स एवायम्) ऐसी प्रतीति करता है उस का बाध प्रत्यक्ष कैसे करेगा ? कारण, 'अयम्' ऐसा आंशिक उल्लेखवाला प्रत्यभिज्ञाज्ञान वस्तु की संमुख अवस्थित तत्कालकार्यजनकता का परामर्श करता है और 'स एव' इस अंश
- 25 का उल्लेखवाला प्रत्यभिज्ञाज्ञान पूर्वकालीन अत एव उत्तरकालीन भाव का अजनक, उस का परामर्श करता है। तब यह प्रश्न होगा कि पूर्वापर काल भावि कार्यजनकस्वभावव्यवस्थापक अखंडताप्रतीतिआक्रान्त प्रत्यभिज्ञान में बाधा क्यों नहीं आयेगी ? तथा, जो पहले प्रत्यक्ष से तत्कालकार्यजननस्वभाववाला प्रस्थापित हुआ था 'वही है यह' वह अगर नहीं है तो जो अभी 'यह' इस रूप से जननस्वभावतया उल्लेखित किया जाता है तो यह जननस्वभाव विरोधिस्वभावप्रस्त बन जायेगा, फिर चन्द्रद्वयावगाहिभ्रान्तप्रतीतियाँ की तरह
- 30 तत्त्व की व्यवस्था उस से नहीं हो सकेगी। अतः उस की प्रतीति से ही प्रत्यभिज्ञा बाधित होगी। तो फिर प्रत्यभिज्ञा को आप बाधवर्जित कैसे सिद्ध करेंगे ?

परोत्पत्त्यादिविप्रलम्भहेतोरुपजायमानं प्रत्यभिज्ञानं दुष्टकारणारब्धत्वादेवाऽप्रमाणम्। न च प्रत्यभिज्ञानमेव स्वविषयस्य तत्त्वं व्यवस्थापयददुष्टकारणारब्ध(त्व)मात्मनो निष्ठा(?श्चा)पयति, इतरेतराश्रयत्वप्रसक्तेः — अदुष्टकारणारब्धत्वात् स्वविषयव्यवस्थापकत्वम् ततश्चादुष्टकारणारब्धत्वमिति कृत्वा। लूनपुनरुदितकेशादिषु चैकत्वाभावेऽप्यस्य दर्शनात् कुतः स्वविषयव्यवस्थापकत्वम् ? न च(1 ?) केशादिप्रत्यभिज्ञानस्यान्यत्वाद् नायं दोषः अन्यत्रापि नियामक (?) मन्तरेण व्यभिचारशङ्काऽनिवृत्तेः। न च— यो जनित्वा प्रध्वंसते 'नैतदेवम्' 5 इति स मिथ्याप्रत्ययः, वज्रोपलादिप्रत्यभिज्ञानं तु देशान्तरादौ न विपर्येत्यवितथम्— अनुमानस्यात्रापि विपर्ययव्यवस्थापकस्य प्रतिपादितत्वात्। तन्न अदुष्टकारणारब्धत्वमप्यत्र संभवति।

अर्थक्रियार्थो हि सर्वः प्रमाणमन्वेषते न व्यसनितयेत्यर्थक्रियासाधनविषयं प्रमाणमभ्युपगन्तव्यम्। न च प्रत्यभिज्ञानविषयेण स्थैर्यमनुभवताऽर्थक्रिया काचित् साध्यत इति तैमिरिकज्ञानवदपूर्वमर्थक्रियाऽक्षमं सामान्याद्यधिगच्छदपि न प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणाभावाद् न प्रत्यभिज्ञाप्रमाण(म)ध्यक्षम्। सता नित्येनार्थेन 10

### [ सदोषकारणजन्य होने से प्रत्यभिज्ञा अप्रमाण ]

जैसे छीप में रजत की कल्पना सदोष कारण से जन्य होती है इस लिये अप्रमाण होती है, उसी तरह पल पल में क्षणभंगुर तत्त्वों के प्रति समान अपर अपर तत्त्वों की उत्पत्ति आदि भ्रामक कारण से उत्पन्न होने वाली प्रत्यभिज्ञा भी दुष्ट कारण से जन्य होती है अतः अप्रमाण है। ऐसा नहीं है कि — 'प्रत्यभिज्ञा स्वतः अपने विषय की यथार्थता को प्रकाशित करती हुई अपने को निर्दोषकारणजन्य घोषित 15 करती है' — क्योंकि यहाँ अन्योन्याश्रय दोष है। अपने विषय की यथार्थता का आधार है निर्दोषकारणजन्यत्वसिद्धि और निर्दोषकारणजन्यत्व की सिद्धि का आधार है स्वविषययथार्थता की प्रसिद्धि। तथा, काटने के बाद पुनर्जात केशादि के स्थल में एकत्व न होने पर भी 'यह वही है' ऐसा दर्शन होता है, यहाँ प्रत्यभिज्ञा अपने विषय की यथार्थता को प्रकाशित करेगी कैसे — जब कि वह है ही नहीं ? यदि कहें कि — 'केशादिस्थल में होने वाली प्रत्यभिज्ञा आभासिक होने से भले अप्रमाण हो — उपलादि प्रत्यभिज्ञा वैसा न होने से दोष 20 नहीं।' — तो सोच लो कि उस में और इस में भेदघोषक कोई नियामक न मिले तब तक 'यह भी वैसी ही होगी' इस तरह होनेवाली व्यभिचार की शंका कैसे टलेगी ? यदि कहा जाय — नियामक यह है, जो उत्पन्न हो कर — 'यह यथार्थ नहीं' इस तरह विघटन का भोग बनता है वह बोध मिथ्या होता है। उपल या वज्रादि को अन्यदेश में फिराया जाय तो भी उस की प्रत्यभिज्ञा का विघटन नहीं होता अतः वह सत्य है।' नहीं, इस प्रत्यभिज्ञा का विघटनद्वारा वैपरीत्यघोषक अनुमान पहले दिखाया जा चुका है। 25 निष्कर्ष, उपल-वज्रादि की प्रत्यभिज्ञा भी निर्दोषकारणजन्य नहीं मानी जा सकती।

### [ अर्थक्रियासाधक न होने से प्रत्यभिज्ञा अप्रमाण ]

यह सोचिये कि 'प्रमाण' का आदर क्यों ? इसलिये कि हर कोइ प्रेक्षावान् अर्थक्रिया सिद्धि के लिये ही 'प्रमाण' ढूँढता है। 'व्यसन' के कारण, सिर्फ शौख के लिये नहीं। यानी ऐसा ज्ञान 'प्रमाण' माना जायेगा जो अर्थक्रिया के साधनीभूत विषय को प्रकाशित करे। स्थैर्य का अनुभव करानेवाली प्रत्यभिज्ञा के विषय 30 से कोई अर्थक्रिया सिद्ध नहीं होती। तिमिरदोषग्रस्त आदमी चन्द्रद्वय को देखता है किन्तु उस से कुछ प्रयोजनसिद्धि नहीं होती क्योंकि वह अप्रमाण है, उसी तरह अर्थक्रिया के लिये अशक्त सामान्यादि को ग्रहण करनेवाला प्रत्यभिज्ञादि ज्ञान 'प्रमाण' नहीं होता क्योंकि उसमें प्रमाण की व्याख्या घट नहीं सकती अतः



प्रत्यभिज्ञाजनकाभिमतेनेन्द्रियाणां सम्प्रयोगासिद्धेस्तद्व्यवस्थापकप्रमाणाभावः। भावे वा तत् एव तत्सिद्धेर्व्यर्थं प्रत्यभिज्ञा। न च सत्योदकाध्यक्षेष्वप्येतत् समानम् अर्थक्रियाज्ञानात् तेषां तथाभावसिद्धिः। न च बहिरर्थाभावेऽप्यर्थक्रियाज्ञानस्य भावात् तत्तथात्वसिद्धिः शून्यवादापत्तिप्रसङ्गात् तद्व्यतिरेकेणापरस्यार्थव्यवस्थापकस्याभावात्। न चैकत्वे संवादकं प्रमाणं किञ्चित् सिद्धमिति न प्रत्यक्षताऽपि प्रत्यभिज्ञानस्येति नातः स्थैर्याधिगतिः।

5 किञ्च, एकत्वाध्यवसायिन्यपि क्रमोदयमनुभवन्ती प्रत्यभिज्ञा स्वविषयस्य क्रमं सूचयति। न चाऽभेदे स्वात्मनस्य क्रमवत्प्रत्यभिज्ञोदयः सम्भवति। ततो येन स्वभावेनाद्यं प्रत्यभिज्ञानं तथात्मनस्त्वाभिमतः पदार्थं जनयति तेनैव यद्युत्तरकालभावीनि तदाद्यज्ञान काले एव सर्वेषामुदयप्रसक्तिः, सन्निहितकारणत्वात् आद्यज्ञानवत्। अनुदये वा तस्य तानि प्रत्य(य?) जनकत्वमेव। न हि यदा यद् यन्न जनयति तदा तद्(न? तज्जननस्वभावम्। पश्चादपि तत् तत्स्वभावमेव (इति) नैव तदापि जनयेत्। अथान्येन तदा स्वभावे(?)भेदात् कथं न

10 प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष प्रमाणरूप नहीं है। प्रत्यभिज्ञा के उत्पादक, आप को अभिमत जो नित्य सत् तत्त्व है उस से इन्द्रियों के संनिकर्ष का मेल नहीं बैठेगा (क्योंकि संनिकृष्टतारूप नया परिणाम मानने पर अनित्यता गले पड़ेगी) अतः उस का प्रत्यक्ष न होने से उस का (नित्य पदार्थ का) साधक प्रमाण असत् है। फिर भी नित्य वस्तु का प्रत्यक्षीकरण स्वीकारेंगे तो उस से ही नित्यता सिद्ध हो जाने से प्रत्यभिज्ञा तो निरर्थक बन जायेगी।

15 [ जलादि वास्तव बाह्यार्थ न मानने पर शून्यवादापत्ति ]

यदि कहा जाय — ‘ये सब तर्क वास्तव जल के प्रत्यक्ष को भी समानरूप से सम्बद्ध होने से, वह भी ‘प्रमाण’ नहीं हो पायेगा।’ यह गलत है क्योंकि वास्तव जल का प्रत्यक्ष होने पर जलसाध्य अर्थक्रिया मलधावनादि का ज्ञान सभी को होता है अतः उस के ज्ञान का प्रमाण में अन्तर्भाव करना पड़ेगा। यदि कहें — ‘अर्थक्रिया का ज्ञान तो स्वप्न की तरह बाह्यार्थ न होने पर भी हो सकता है अतः उस से प्रामाण्य

20 की सिद्धि नहीं है।’ — तब तो बाह्यार्थ ही सिद्ध न होने से शून्यवाद के गले पड़ने का खतरा होगा। कारण, अर्थक्रियाज्ञान के विना और कोई बाह्यार्थसाधक प्रमाण ही नहीं है। दूसरी बात यह है कि पूर्वापरक्षणवर्ती तत्त्वों में एकत्व की साक्षि पूरनेवाला कोई संवादी प्रमाण प्रसिद्ध नहीं है, अत एव प्रत्यभिज्ञाज्ञान की प्रत्यक्षता असिद्ध है, उस में स्थैर्य का अवबोध कैसे हो सकेगा ?

[ प्रत्यभिज्ञा और तद्विषय में भेदापादन ]

25 और एक बात :- प्रत्यभिज्ञा क्रमशः प्रथम-दूसरे क्षणों में उदित हो कर (अपने विषयों का ग्रहण कर के उन में) जब एकत्व का भान करती है तब अपने विषयों के क्रम का भी सूचन हो ही जाता है। यहाँ इतना तो स्पष्ट है कि यदि अपने विषयों में अभेद वास्तविक होगा तो क्रमशः प्रत्यभिज्ञोदय नहीं हो सकता। अब दो प्रश्न खड़ा होगा — ‘जिस स्वभाव से विषयभूत तथा स्वीकृत पदार्थ प्रथम क्षण के प्रत्यभिज्ञान को उत्पन्न करता है उसी स्वभाव से ही उत्तरकाल (क्षण)वर्ती प्रत्यभिज्ञा को उत्पन्न करेगा

30 तो (तादृश स्वभाव प्रथम क्षण में मौजूद होने से) आद्यज्ञानक्षण में ही सकल उत्तरोत्तरक्षण भावि प्रत्यभिज्ञाज्ञानों के उदय का अतिप्रसङ्ग लग जायेगा, क्योंकि तथास्वभावरूप कारण हाजिर है जो प्रथम क्षण के ज्ञानोत्पाद के वक्त था। अगर उन का उदय नहीं होता तो मानना पड़ेगा कि वह तथास्वभाव विषय उन के प्रति

प्रत्यभिज्ञाविषयस्य भेदा(?दः), स्वभावभेदनिबन्धनत्वादर्थभेदस्य ? अपि च सकलसहकारिसन्निधाने येन स्वभावेन तदालम्बनं प्रत्यभिज्ञानं जनयति स्व(?स) स्वभावस्तस्य तदैवोत्तर(?वोत) प्रागप्र(?गप्या)सीत् ?

यदि तदैव, कथं पूर्वस्मादभेदस्तस्य, प्रागसतः तदैव सत्ताभ्युपगमात् ? अथ अवस्थानां भेदः अवस्थातुश्चाभेदः । न, अवस्थातुरपि तदवस्थाभाविनो जनकाऽजनकस्वरूपतया भेदस्य ना(?न्या)यप्राप्तत्वात् । न चावस्थावा(न् अ)वस्थाव्यतिरिक्तोऽस्ति, उपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वे तस्याऽनुपलम्बेनाऽसत्त्वात् । अनुपलभ्यस्वभावत्वे च तस्य न प्रत्यभिज्ञाविषयत्वमिति नाभेदसिद्धिः । सहकारिप्रत्ययोपजनितस्य वा(चा)तिशयस्यालम्बनाद् (व्यतिरेके) व्यतिरेकपक्षभावी दोषो दुर्निवार इत्युक्तं प्राक् ।

अथ प्रागपि स स्वभाव आसीत् तदोत्तरकालभाविनी प्रत्यभिज्ञा(ि?) कार्याणि प्रागेवोदस्त(?)वति (?न्ति) स्युरिति क्रमवता प्रत्यभिज्ञानेन स्वसंवेदनेनोपलक्षितेनाऽभिन्नत्वेनोपलक्षितस्यापि व्या(?वा)ह्यालम्बनस्य

अजनक है। जो जब जिसे जन्म नहीं देता वह न तो तब उसके प्रति जननस्वभाववाला होता है, न तो पश्चात् भी उस के प्रति अजननस्वभाववाला होने के कारण उसे जन्म दे सकता है। यदि वह विषय अन्य स्वभाव से उत्पन्न करता है तो उस विषय में स्वभाव भेद के प्रसक्त होने के कारण उस प्रत्यभिज्ञाविषय का भी भेद क्यों प्रसक्त नहीं होगा ? अर्थभेद तो स्वभावभेदमूलक ही होता है।

### [ प्रत्यभिज्ञा नामक आलम्बन के स्वभाव की कालपृच्छा ]

और भी प्रश्नयुग्म खडा होगा — ? सकल सहकारियों की मौजूदगी रहने पर जिस स्वभाव से द्वितीयक्षण में वह आलम्बन (= विषय) प्रत्यभिज्ञान को जन्म देता है वह स्वभाव उस द्वितीयक्षण में ही है या पहले भी था ?

### [ अवस्था-अवस्थावात् में भेद असंगत ]

यदि दूसरे क्षण में ही वैसा स्वभाव है पहले क्षण में नहीं है तो पूर्वक्षण की वस्तु या उस के स्वभाव के साथ उस का अभेद कैसे ? जब कि आप पूर्व में नहीं किन्तु दूसरे क्षण में ही उस का तथास्वभाव मानते हैं। यदि कहें — 'यह तो अवस्थाभेद है वह भिन्न भिन्न क्षणों में अलग-थलग हो सकता है किन्तु अवस्थावान् तो एक ही है।' — नहीं, वह अवस्थावान् पूर्वावस्था में अजनक और उत्तरावस्था में जनक — इस तरह उस में भेदापत्ति न्यायोचित है। अवस्थावान् अवस्था से सर्वथा जुदा तो नहीं है। अगर, वह जुदा है और उपलब्धियोग्य है फिर भी अवस्था से पृथग् उस का उपलम्ब नहीं होता है, तो समझना होगा कि अवस्था से जुदा अवस्थावान् असत् है। यदि वह जुदा है किन्तु उपलब्धियोग्य नहीं है, तब तो वह प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष का विषय नहीं हो पायेगा, फिर अभेदसिद्धि होगी कैसे ? अगर, यहाँ सहकारियों के द्वारा उपलब्धि मानेंगे तो फिर सहकारीनिमित्त से उस वस्तु में उत्पन्न अतिशय को भी स्वीकारना पड़ेगा, वह भी यदि उस वस्तु से जुदा मानेंगे तो भिन्न अतिशय पक्ष में पहले जो दोष दिखाये हैं वे दुर्निवार हो जायेंगे — यह पहले कहा जा चुका है।

### [ क्रमिक प्रत्यभिज्ञा से विषय-क्रमिकता की सिद्धि ]

दूसरा विकल्प :- यदि वह स्वभाव पहले भी था, तो जो प्रत्यभिज्ञासाध्य उत्तरकालीन कार्य हैं वे पहले ही उदित हो कर रहते। अगर ऐसा नहीं होता तो यह फलित हो जाता है कि स्वसंवेदन से संविदित

क्रमः प्रदर्शित एव। अथ दर्शनाऽविशेषेऽपि प्रत्यभिज्ञाकार्यक्रमानुभवः किमिति सत्यत्वेन व्यवस्थाप्यते न पुनरभिन्नतदालम्बनानुभव(त?)ः — उच्यते, क्रमसंवेदने बाधकाभावादितरत्र तद्विपर्ययात्। यदि ह्यसतो ज्ञानक्रमस्य स्वसंवित्त्या विषयीकरणं भवेत् तदा तदभावे स्वसंवित्तेरपि तदव्यतिरिक्तायाः, तत्र( ?तद)भावाद् न केनचित् कस्यापि विषयीकरणं भवेदिति तत्क्रमानुभवः सत्यः बाह्यालम्बनाभेदानुभवस्तु लूनपुनर्जातकेशादिष्विव

5 बाधितत्वादसत्यः। यथा चानुसन्धानप्रत्यया बहिरेकत्वाद्यालम्बनाभावेऽप्यान्तरमेव(?का)कारं बहिर्वद् अव-  
भासमानाः प्रवर्तन्ते तथान्यत्र प्रतिपादितम्।

यत् पुनः परैरुच्यते— आलम्बनैकत्वाध्यवसायि प्रत्यभिज्ञाकार्यक्रमदर्शनं सहकारिप्रत्ययैरनाधेयाति—  
शयतामालम्बनस्य बाधनो( ?ते) कार्यस्यानुत्पादयौगपद्याभावाद्, न पुनरभेदम्, भेदावभासिनोऽनुभवस्याभावादिति  
— तदसङ्गतमेव, यतो यद्यालम्बनस्याभेदो न बाध्यते तर्हि सहकारिसन्निधावप्यप्रतीयमानातिशयानां

10 वज्रोपलादीनामनाधेयातिशयतापि कथं बाध्येत ? अथ कार्यानुत्पादयौगपद्याभावात् सा बाध्यते, नन्वे-  
वमनुपलभ्यमानोऽपि भेदस्तस्यामवस्थायामतिशयवत् किं नाभ्युपगम्यते ? यतोऽनतिशयानुभवस्याप्यनुमानत

प्रत्यभिज्ञाज्ञान से, पूर्वापर एकत्वेन गृहीत बाह्यविषय वास्तव में क्रमिक ही है। यदि आशंका हो — ‘प्रत्यभिज्ञा  
से कार्यों में जो क्रमानुभव होता है— उस को तो आप सत्य की मुहर लगा देते हैं, और प्रत्यभिज्ञा से  
जो अभिन्न (= एक) विषय का अनुभव होता है उस को आप जूठलाते हैं, हाँला कि उभय में अनुभव

15 (= प्रत्यक्ष) तो तुल्यरूप से प्रवृत्त है — तो ऐसा पक्षपात क्यों ?’ — उत्तर यह है कि एकत्व के अनुभव  
में बाधक सीर उठाता है जब कि क्रमसंवेदन में कोई बाधक नहीं है। यदि ज्ञानक्रम स्वयं असत् होता  
और स्वसंवेदन उस असत् ज्ञानक्रम को अपना विषय बनाता, तो ज्ञानक्रमाभाव से उस वक्त स्वसंवेदन  
भी अभिन्न होने से असत् ठहरेगा। स्वसंवेदन ही अब असत् ठहरा तो कोई भी संवेदन (स्वयं असत्  
ठहरने से) किसी को विषय ही नहीं बनायेगा, अतः इस आपत्ति के प्रतिकार में क्रमानुभव को सत्य ही

20 मानना पडेगा। इस के सामने बाह्यविषयएकत्वानुभव की बात करो तो पता लग जाता है कि पूर्वोदित  
केश को काटने के बाद नये ऊगते हैं तब देखनेवाले को वहाँ भले एकत्वानुभव हो किन्तु वह बाधित  
होने से असत्य सिद्ध होता है। हमने अन्य स्थान में यह स्पष्ट दिखाया है कि अनुसन्धान (= प्रत्यभिज्ञा)  
अनुभवों के बाह्य विषयों में वस्तुतः एकत्व नहीं होता, फिर भी आन्तरिक वासनाकल्पित एकत्व को बाह्य  
जैसा ही समझ कर वे अनुसन्धान अनुभव चल पडते हैं।

25 [ सातिशयता का स्वीकार, भेद का क्यों अस्वीकार ? ]

कुछ लोग जो यह कहते हैं — विषय के एकत्व का ग्राहक जो प्रत्यभिज्ञाकार्यों का क्रमदर्शन है वह  
‘विषय में सहकारीयों के निमित्त से कोई अतिशयाधान शक्य नहीं’ इस निवेदन का बाध जरूर करता  
है, क्योंकि कार्यों के उत्पादन अभाव अथवा यौगपद्य का अभाव सिद्ध न होने से। किन्तु अभेद का बाध  
नहीं करता, क्योंकि वहाँ भेदप्रकाशक अनुभव नहीं होता। — ऐसा कथन अयुक्त ही है। कारण, अगर

30 वह क्रमदर्शन आलम्बन (= विषय) के अभेद का बाध नहीं करता, तो वज्र-उपलादि जिन में सहकारीयों  
का संनिधान होने पर भी किसी अतिशय का उपलम्भ नहीं होता, फिर भी उन में अनाधेयातिशयता का  
बाध कैसे कर सकता है ? उत्तर दिया जाय कि ‘कार्य का अनुत्पाद एवं यौगपद्य के अभाव से ही

एवाऽप्रामाण्यं परोऽभ्युपगतवान् अन्यथा भेदानुभवमनादृत्य कथमतः सातिशयत्वं तस्यामवस्थायामभिमन्येत ? तथा, यद्यालम्बने भेदोऽप्यङ्गीक्रियते तदा को दोषो विशेषाभावादिति । क्रमत( ?व)त्प्रत्यभिज्ञालक्षणकार्यदर्शनात् तदालम्बनस्यापि क्रमः सिद्धः । तदुक्तम् [प्र.वा.१-४५] —

▼नाऽक्रमात् क्रमिणो भावो नाप्यपेक्षाऽविशेषिणः ।

क्रमाद् भवन्ती धीर्ज्ञेयात् क्रमं (समं?) तस्यापि (सत्स)सेत्स्यति ।। इति ।

5

तदेवं न बहिरवस्थितैकार्थसम्प्रयोगेणेन्द्रियेण जन्यते प्रत्यभिज्ञा तद(1?)भावाद् न प्रत्यक्षं नापि प्रमाण-मिति स्थितम् । तथा च 'न हि स्मरणतो यत्' (६-११) इति वचनं सिद्धसाधनमेव । यतो यदेवंभूतं तद् भव(वे)त् प्रत्यक्षम् न त्वेवं प्रत्यभिज्ञानम् इति का नो हानिः ? यतः पूर्वानुभूतधर्मारोपणाद् विना 'श(?स) एवायम्' इति ज्ञानं नोपजायते, तच्चाक्षजे प्रत्ययेऽसम्भवि ।

यदप्युक्तम्— देशादिभिन्नं सामान्याद्यालम्बनम् इति (७-२) — तदप्यसङ्गतम्, सामान्यादेरभिन्नस्य 10

अनाधेयातिशयता स्फुट बाधित होती है' अरे ! तब तो भेदावभास न होने पर भी उस अवस्था में अतिशयस्वीकार की तरह भेदस्वीकार क्यों न किया जाय ? आपने तो अनतिशयता के अनुभव में अनुमान से बाध यानी अप्रामाण्य मान लिया है, इस का इनकार करें तो फिर भेदानुभव का प्रतिषेध कर के उस अवस्था में सातिशयता को कैसे मान लिया ? तथा, सातिशयता की तरह आप आलम्बन (= विषय) भेद को भी स्वीकार लो, क्या हानि है ?! कोई फर्क तो है नहीं ।

15

सारांश, क्रमिक प्रत्यभिज्ञास्वरूपकार्य दिखता है इस लिये उस के आलम्बन में क्रम यानी भेद सिद्ध होता है । प्रमाणवार्तिक में कहा है — 'अक्रमिक (कारण) से क्रमिक भाव नहीं हो सकता । तथा अविशेषी (= अतिशयविशेषरहित) को किसी (सहकारी) की अपेक्षा नहीं होती (यानी सहकारीक्रममूलक क्रमभाविता भी नहीं हो सकती) । अतः ज्ञेय (= आलम्बन) से क्रमशः होने वाली बुद्धि उस के क्रम को सिद्ध करेगी' ।।१-४५ ।।

20

अत एव, उक्त प्रकार से, प्रत्यभिज्ञा बाह्य-एक अर्थ के सम्प्रयोग (= संनिकर्ष) विशिष्ट इन्द्रिय से उत्पन्न नहीं होती यह सिद्ध होता है, इन्द्रियजन्य न होने से वह न तो प्रत्यक्ष है न तो प्रमाण है यह निश्चित हुआ । ऐसा जब सिद्ध हो गया, तब पहले (७-११) श्लोकवार्तिक की कारिकाओं से जो यह कहा था कि 'स्मृति के पहले प्रत्यक्ष नहीं होता ऐसा कोई राजकीय या लौकिक आदेश नहीं है, तथा स्मृति के पश्चाद् भी इन्द्रियप्रवृत्ति (यानी प्रत्यक्ष) नहीं होती ऐसा भी नहीं...' इत्यादि वचन हमारे लिये तो मान्य होने से सिद्ध साधन ही है । कारण, उन कारिकाओं द्वारा जिस प्रकार के प्रत्यक्ष का निरूपण है वैसी प्रत्यभिज्ञा होती नहीं है — फिर हमें क्या क्षति है उस कारिकोक्त प्रत्यक्ष के स्वीकार में ? कारण, स्पष्ट है कि 'वदन्ति है यह' ऐसा ज्ञान पूर्वानुभूत धर्म के आरोपण के विना नहीं होता और इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष में किसी पूर्वानुभूत धर्म के आरोपण को स्थान नहीं होता ।

25

[ प्रत्यभिज्ञा में प्रमेयाधिक्य/ प्रामाण्य का असम्भव ]

30

यह जो पहले कहा था (७-१६) — 'भिन्न भिन्न अनेकदेशादि विशिष्ट सामान्य द्रव्यादि वस्तु प्रत्यभिज्ञा

▼. इस श्लोक के उत्तरार्ध में प्र.वा. में 'ज्ञेयात्' के बदले 'कायात्' और 'सत्सति' के स्थान में 'शंसति' पाठ है ।

तद्विषयस्याभावात् भावेऽप्यनेकप्रमाणगोचरत्वेन तत्र प्रवर्तमानस्य प्रत्यभिज्ञानस्याऽनधिगतार्थाधिगन्तृत्वाऽयोगात् भिन्नाभिन्नालम्बनत्वेऽपि च प्रत्यभिज्ञानस्य न प्रामाण्यम् अपूर्वप्रमेयाभावात्। न हि देशादयस्तत्र प्रत्यभिज्ञा(य)न्ते प्रागदर्शनात् तेषाम् पूर्वोपलब्धे तु सामान्यादौ न प्रमेयाधिक्यम्। न च 'पूर्वप्रसिद्धमेवाग्निसामान्यं देशादिविशिष्टतयाऽनुमानस्याधिगच्छति( ?तः) प्रमेयातिरेकानु( ?त्) यथा न प्रामाण्यव्याहतिः, तथा प्रागुप-  
 5 लब्धमेव सामान्यादि देशादि(ति?)विशिष्टतया प्रतिपद्यमानस्याप्यपूर्वप्रमेयसङ्गतेर्न प्रामाण्यक्षतिः' इति वक्तव्यम्, द्वितीयप्रत्यक्षत एव तत्प्रसिद्धिः, प्रत्यभिज्ञातस्यापूर्वप्रमेयाऽयोगात्। त व(?) (न च) पश्चादुपलब्धपूर्वदृष्टार्थभावोऽधिकः प्रत्यक्षानव(ग)तः प्रत्यभिज्ञानेन प्रतीयते इति अपूर्वप्रमेयसद्भावः, यतः पूर्वदृष्टार्थभावो न प्रत्यक्षद्वयगोचरातिरिक्त इति तस्य ततो( ?तः) सिद्धिः ? व्यतिरेक( ?के) वा कथं न मिथ्याप्रत्ययः 'स एव' इत्यभेदोल्लेखवान् ? अनुसन्धानं व (?च) 'योऽयमिदानीमुपलभ्यते प्रागप्येष मया

- 10 का अपूर्व प्रमेय है' — इत्यादि, वह अयुक्त है — क्योंकि अभिन्न सामान्यादि प्रत्यभिज्ञा का विषय ही असत् है। कदाचित् उस का अस्तित्व हो, तब भी वह अनेकप्रमाणगृहीत होने से, उस के ग्रहण में प्रवृत्त प्रत्यभिज्ञा में अगृहीतार्थग्राहकत्व का योग नहीं है। चाहे प्रत्यभिज्ञा का विषय एक हो या जुदा, प्रमेय नया न होने से वह प्रमाणभूत नहीं होती। तथा, अनेकदेशादिविशिष्ट सामान्य को उस का विषय दिखाया, किन्तु देशादि उस का विषय नहीं हो सकता क्योंकि पूर्वक्षण में सामान्य को देखते समय उन का दर्शन नहीं हुआ।  
 15 'हुआ था' ऐसा मत कहना क्योंकि तब तो सामान्यादि सब पूर्वदृष्ट होने से प्रमेय का आधिक्य (= अपूर्वत्व) रहेगा नहीं।

शंका :- 'अग्निसामान्य तो प्रत्यक्ष से पूर्व प्रसिद्ध ही होता है किन्तु सामान्यविषयक अनुमान पुनः देशादि (पर्वतादि) वृत्तितया उस का जब अधिगम करता है तो वहाँ प्रमेयाधिक्य (देशकालादिवृत्तिरूप) मान लिया जाता है अतः अनुमानप्रामाण्य का व्याघात नहीं होता। ठीक उसी तरह पूर्वोपलब्ध (= पूर्वदृष्ट)  
 20 सामान्यादि को भी पुनः देशादिविशिष्टतया ग्रहण करनेवाले प्रत्यभिज्ञाज्ञान में अपूर्वप्रमेयसंगति बैठ जाने से उस के प्रामाण्य की हानि नहीं हो सकती।'

उत्तर :- ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि प्रथमक्षण में प्रत्यक्ष से सामान्यादि के दर्शन के बाद द्वितीयक्षण में देशादि की प्रसिद्धि भी प्रत्यक्ष से ही होती है, अतः बाद में होने वाली प्रत्यभिज्ञा में कोई नया विषय नहीं होता।

### 25 [ पूर्वकालदृष्टार्थता का अपूर्वग्रहण असम्भव ]

ऐसा भी नहीं कह सकते — 'कि पूर्वोपलब्ध सामान्यादि/देशादि में, उस के प्रत्यक्ष से तत्कालदृष्टता का ग्रहण होगा, पूर्वकालदृष्टार्थता का ग्रहण नहीं होता, वह तो प्रत्यभिज्ञा में ही होता है, इस प्रकार अपूर्वप्रमेय की हस्ती अक्षुण्ण है।' — निषेध का कारण, जो पूर्वदृष्टार्थता है वह पूर्वकालीन प्रत्यक्षयुग्म के विषयभूत सामान्यादि से पृथक् नहीं है, तो उस का पूर्वप्रत्यक्ष से अग्रहण कैसे हो सकता है ? अगर, उस को (पूर्वदृष्टार्थता  
 30 को) आप अलग मानेंगे तब तो 'वही है यह' इसप्रकार अभेदोल्लेखकारी वह प्रत्यभिज्ञाज्ञान (भेद में अभेदोल्लेखी होने से) मिथ्या क्यों नहीं होगा ? लोगों का अनुसन्धान तो ऐसा ही (अभेदग्राही ही) होता है कि 'जो यह अभी दिख रहा है वह पहले भी मैंने देखा है — अतः वही है यह।' अगर यहाँ पूर्वदृष्टता

दृष्टः' इति लोकस्य प्रवर्तते अतः 'स एवायम्' इति। न हि पूर्वदृष्टतामस्मरतः 'स एवायम्' इत्यनुसन्धान-सम्भवः।

[?? तस्मात् स्मृतिरूपतां नातिक्रामति प्रत्यभिज्ञानं च। यथा वस्तुस्वरूपग्राहिणाऽध्यक्षेण तदव्यतिरिक्ते क्षणक्षयेऽधिगतेऽपि तत् निश्चितम् तन्निश्चितत्वा(द्) नानुमितिः प्रमाणम्। तथा च स्वव्यतिरिक्ते एकत्वे दर्शनद्वयगृहीतमपि तन्निश्चा(यकं) न प्रमाणमभिज्ञायते, अनुमितिः साध्याऽविनाभूतलिङ्गसमुद्भवा दर्शनमात्र- 5 निबन्धना न भवतीति प्रतिपन्नेऽप्यंशे समारोप्य व्यवच्छेदं कुर्वाणा प्रमाणम्। नन्वेवं प्रत्यभिज्ञा दर्शनबलात् तदुत्पत्तेः समारोपव्यवच्छेदविषया चैवं स्यात् न वस्तुग्राहिणी तथा चास्याः कुतः प्रत्यक्षता स्वतन्त्रायाः प्रामाण्यं वेति ? यदपि 'प्रमेयातिरेकाभावेऽपि सन्देहापाकरणात् प्रमाणं प्रत्यभिज्ञा' इत्यभ्यधायि (८-४)— तदप्यसङ्गतम्, स्मृतेरपि 'किं मया दृष्टमुत न' इति संशयव्यवच्छेदेन 'दृष्टम्' इत्युपजायमानायाः प्रामाण्यताप्रसक्ति( ?क्ते):।  
 ▼ आलोचनाज्ञानान्तरं विकल्पप्रत्यक्षाभ्युपगमात् (कालान्तरं सविकल्पप्रत्यक्षाभ्युपगमात्) कालान्तरादिभावोऽपि 10 तत एव निश्चित इति कुतो भवदभिप्रायेण सन्देहं( ?हः)। न हि निश्चयविषयीकृतमनिश्चितं नाम। न च कालान्तरादौ सद्भावः ततो व्यतिरिक्तः अन्यत्वप्रसङ्गात् इति प्रमेयाधिक्य(1?)मेव प्रामाण्यनिबन्धनमभिधातुमु(तुं (जो पूर्वगृहीत ही है) का स्मरण नहीं होता (यानी प्रत्यक्ष के बाद उस की प्रत्यभिज्ञा नहीं किन्तु स्मरण- नहीं होता) तो 'वही है यह' ऐसा अनुसन्धान सम्भव नहीं होता।

### [ प्रत्यभिज्ञा और स्मृति में अभेद की सिद्धि ]

15

उक्त चर्चा से फलित होता है कि प्रत्यभिज्ञा स्मृति से अलग नहीं है। जिस तरह, प्रत्यक्ष जब वस्तुस्वरूप को ग्रहण करता है तब वस्तु से अभिन्न क्षणिकत्व भी गृहीत हो जाता है अत एव बाद में विकल्प से वह निश्चित होता है, इस प्रकार क्षणिकत्व प्रत्यक्षगृहीत हो जाने से, विकल्प उस में प्रमाण नहीं माना जाता, न तो क्षणिकता की अनुमिति प्रमाण मानी जाती है (अत एव अक्षणिकता के समारोप की व्यवच्छेदकारी होने से ही अनुमिति प्रमाण मानी जाती है, उसी तरह पूर्वोत्तरक्षण में पदार्थ का एकत्व पदार्थ से अलग 20 न होने से पूर्वोत्तरक्षणभावि दर्शनद्वय से गृहीत होने के कारण उस का निश्चायक विकल्प प्रमाण रूप से स्वीकृत नहीं होता। दूसरी ओर अनुमिति प्रमाण इस लिये है कि वह सिर्फ प्रत्यक्षमूलक ही नहीं होती किन्तु साध्यविनाभूतलिङ्गजन्य भी होती है, अतः प्रत्यक्ष से गृहीत अंश में भी समारोप का व्यवच्छेद करती है। यदि आप भी इसी तरह दर्शन के बल से प्रत्यभिज्ञा-उत्पत्ति को मान कर दर्शनगृहीत अंश में प्रत्यभिज्ञा को समारोपव्यवच्छेद विषयक स्वीकार कर ले तो वह (अनुमिति की तरह प्रमाण होने पर 25 भी) वस्तुग्राहक तो न रही, तो कैसे वह प्रत्यक्ष कही जायेगी और स्वतन्त्ररूप से वह कैसे प्रमाण मानी जायेगी ?

यह जो कहा था (८-२२) 'प्रमेयाधिक्य के न होने पर भी सन्देह को दूर करने से प्रत्यभिज्ञा प्रमाण है' — यह भी अयुक्त है। जब आदमी को स्मरण होता है कि 'मैंने यह देखा है' तब स्मरण से पूर्वजात यह 'मैंने देखा है या नहीं' ऐसा संदेह टल जाता है तो अब नित्यवादी को मानना 30 पड़ेगा कि स्मृति भी प्रमाण है। तथा संदेह की बात है तो यह सोचो कि आलोचनाज्ञान अपरनाम

▼ अस्ति ह्यालोचनाज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम्। श्लो.वा. प्र.प.११२।।

युक्तम् अन्यथा \*निष्पादितक्रिये कर्मविशेषाधायि कथं साधनं स्यात् ? ??]

यत्तु — 'इदानींतनमस्तित्वं न हि पूर्वधिया गतम्' (श्लोकवार्तिक प्र० २३४ पू०) इत्युक्तम् (७-८)

— तद्युक्तमेव इदानीं(त)नत्वस्य भेदात्। अन्यथा प्राक्तनविकल्पबुद्ध्या वस्त्वव्यतिरेकि इदानींतन्ना(?ना)स्तित्वस्य कथमग्रहणम् ? यदि च सविकल्पकं प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षमर्थग्राहकमभ्युपगम्यते तदा सर्वात्मनाऽर्थस्य निश्चितत्वात्

5 प्रमाणान्तरप्रवृत्तेर्वैयर्थ्यप्रसक्तेरिति विचारितमन्यत्रेतीह न प्रतन्यते। यैस्तु निर्विकल्पकं प्रत्यभिज्ञाज्ञानं प्रमाणतयाऽभ्युपगतम् (८-८) तेषां तदुत्तरकालभाविसविकल्पकाध्यक्षप्रायो घटादिविषयः प्रमेयातिरेकाभावात् कथं प्रमाणतामश्नुवीत ? न च प्रमेयातिरेकमन्तरेणापि संदिग्धवस्तु-निश्चयनिबन्धनत्वा(त्) प्रमाणमसौ, निर्विकल्पक-सविकल्पकयोरक्षजप्रत्यययोनियतपौर्वापर्ययोरपान्तराले सन्देहाऽसम्भवात् तदपाकरणाभावाद् न निर्विकल्पप्रत्यक्षेण समाना [??प्रत्यभिज्ञानेनैकत्वमवगन्तुं शक्यम्। यतोऽर्थसाक्षात्कारि प्रत्यक्षं लोके प्रतीतम्

10 निर्विकल्प ज्ञान जो शुद्धवस्तरूप आलम्बन से जन्म लेता है, उस के बाद सविकल्पप्रत्यक्षज्ञान होता है (यहाँ कालान्तरं सविकल्पकप्रत्यक्षाभ्युपगमात् — इतना पाठ अधिक लिखित लगता है) उस से वस्तु के कालान्तर-देशान्तर भाव भी वस्तुनिश्चय के साथ निश्चित हुआ रहता है तो फिर वहाँ आप के मतानुसार उस का संदेह, उस के निरसन से प्रत्यभिज्ञा का प्रामाण्य कैसे हो सकता है। जो निश्चय से गृहीत हो चुका है उस विषय के बारे में कुछ भी अनिश्चित रह नहीं पाता, (वस्तु अगर कालान्तरवृत्ति 15 होगी तो) वस्तुग्रहण के साथ कालान्तरादिसद्भाव अव्यतिरिक्त होने से गृहीत हो जाता है — ऐसा नहीं मानेंगे तो वस्तु से कालान्तरादिसद्भाव का भेद प्रसक्त होगा। निष्कर्ष — संदेहनिरसन नहीं, प्रमेयाधिक्य ही प्रामाण्य का मूल कहा जा सकता है। अन्यथा अर्थक्रिया निष्पन्न हो जाने पर कर्म (क्रिया) विशेषाधानकारि को (प्रमा का) साधन (= करण) क्यों न माना जाय ? (तत्त्वसंग्रह का० ४५१ में कहा है —)

20 [ इदानींतन अस्तित्व का पूर्वबुद्धि से अग्रहण कैसे ? ]

यह जो कहा था (७-२०) अद्यतन अस्तित्व का ग्रहण तो पूर्वबुद्धि से नहीं हुआ था.... इत्यादि वह तो संगत ही है। क्यों कि वह पूर्वक्षणपदार्थ से भिन्न ही है। यदि वह पूर्वक्षणपदार्थ से अभिन्न होता तो पूर्वतनविकल्पबुद्धि से वर्तमानकालीन अस्तित्व का ग्रहण क्यों नहीं होता ? यदि सविकल्पक प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष को आप अर्थग्राहक प्रमाण मानते हैं तो उस से ही समस्तरूप से अर्थ का निश्चय हो जाने से

25 निर्विकल्पप्रत्यक्ष आदि अन्य प्रमाणों की प्रवृत्ति निरर्थक ठहरेगी। कुछ लोग तो निर्विकल्प प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष को भी प्रमाण मानते हैं (८-२९), उन के मत में, घटादिविषयक निर्विकल्पप्रत्यभिज्ञा-उत्तरकालभावि सविकल्पप्रत्यक्षतुल्यज्ञान प्रमाण कैसे बनेगा जब कि प्रमेय तो उस का कोई नया है नहीं ? ऐसा कहें कि — 'प्रमेय नया न होने पर भी संदिग्ध पदार्थ का निश्चय कारक होने से वह 'प्रमाण' बनेगा' — तो यह ठीक नहीं है क्योंकि एक तथ्य सुविदित है कि इन्द्रियजन्य निर्विकल्प — सविकल्प दो प्रत्यक्ष के बीच 30 में किसी संदेह का अस्तित्व ही नहीं होता जिस का निवारण करने से वह प्रत्यभिज्ञा निर्विकल्पप्रत्यक्ष की कक्षा में बैठ सके। (यहाँ से आगे ??प्रत्यभि०.... पाठ-अशुद्धि के कारण यथामति विवरण किया जाता

◆. निष्पादितक्रिये चार्थे प्रवृत्तेः स्मरणादिवत्। न प्रमाणमिदं युक्तं करणार्थविहानितः।। तत्त्वसं. ४५१।।

पूर्वापरसंवेदनाधिगतभावैकत्वग्राहकं च प्रत्यभिज्ञानम् तत् कत(?थ) मध्यक्षस्य स्वरूपम् ?

तथाहि— न तावत् प्रथमसंवेदस्तत्त्वग्रहणसम्भवः, तत्सम्भवे हि भावि समयादिग्रहणमिति तदैव स्तम्भादेरुदयम(ध्या?)स्तमयादिप्रतीतिप्रसक्तिः। न च भावि समय-वे(?दे)श-दशादर्शनादि न गृह(?ह्य)ते तत्सम्बन्धं(द्धं) तु रूपं पूर्वदर्शने प्रतिभात्येव, भाविकालाद्यग्रहे तत्सम्बन्धिरूपस्याप्यग्रहाद्। यदेव हि तद्देशाद्यनुव्यक्तं रूपं न तत्र प्रतिभातीति न तद्दर्शनावसेयम्। यदि तु भाविकालाद्यग्रहेऽपि तत्सम्बन्धिरूपग्रहस्तथा सति सर्वे भावाः समस्तकालदर्शनसम्बन्धिनः आद्यदर्शनाऽवसेयाः स्युः, एवं च सति सर्वे नित्या भवेयुः अ(थ) नैषां प्रथमदर्शनं(ने) सर्वकालस्थायिता प्रतिभातीति नैते तथाऽभ्युपेयन्ते तर्हि तत्र भाविदृगादिपरिष्वक्त-ताऽपि न प्रतिभातीति साऽपि न तत्र सती। न च तस्यैवोत्तरकालं प्रतीतेः भाविविज्ञानग्राह्यताद्य(?य)तः तस्यैवोपलब्धिः किं पूर्वदृशा, उत उत्तरकालभ(ि)विन्या ? यदि पूर्वदृशा तदा सोत्तरकालमसती कथं प्रतिपद्यते ? न ह्यसद् ग्राहकम् अतिप्रसंगात्। यदापि सा सती आसीत् तदा न पश्चाद् दर्शनादि संभवतीति 5 10

है) अत एव प्रत्यभिज्ञान से एकत्व-ग्रहण अशक्य है। कारण, लोक में यह तथ्य सुविदित है कि प्रत्यक्ष अर्थसाक्षात्काररूप होता है — प्रत्यभिज्ञा तो पूर्वापर संवेदनों से ज्ञात पदार्थों के एकत्व की ग्राहक होती है तो वह प्रत्यक्ष रूप कैसे हो सकती है ?

### [ पूर्वोत्तरभाव के एकत्व का ग्रहण कैसे ? ]

प्रथम संवेदन से, उत्तर भाव के साथ एकत्व का ग्रहण शक्य नहीं। शक्य होगा तो प्रथम संवेदन से ही भाविसमय-देशादि का भी ग्रहण भी शक्य हो जायेगा, फलतः प्रथमसंवेदन क्षण में ही स्तम्भादि पदार्थों का उदय से ले कर अस्त पर्यन्त का ग्रहण प्रसक्त होगा। यदि कहें कि — ‘जो प्रथम संवेदन है वह स्तम्भादि के भावि समय, देश, दशा-दर्शन आदि को ग्रहण नहीं कर सकता उस के स्वरूप का प्रतिभास प्रथम दर्शन में जरूर भासित होता ही है’ — तो यह गलत है क्योंकि भावि कालादि का ग्रहण न होने पर उस स्तम्भादिसम्बन्धि स्वरूप का भी ग्रहण नहीं हो सकेगा। यदि कोई स्वरूप देशादिअनुषक्त हो कर भासित नहीं होता वह स्वरूप मात्र दर्शन से प्रतिभासित नहीं हो सकता। यदि भाविकालादि का ग्रहण न होने पर भी किसी भावसम्बन्धि स्वरूप का भान मानेंगे तो सिर्फ एक ही संनिकृष्ट भाव का ही स्वरूप क्यों — विप्रकृष्ट समस्त काल, दर्शन देशादि सम्बन्धि सर्व भाव भी प्रथम दर्शन ग्राह्य बन जायेंगे, इस स्थिति में सिर्फ आकाशादि नहीं, पुष्पादि सभी भावों को नित्य मान लेना पड़ेगा। यदि कहें — ‘प्रथम दर्शन में सब भावों की सर्वकालावस्थिति भासित नहीं होती इस लिये सभी भावों को नित्य नहीं मानना पड़ेगा’ — तो उस भाव में प्रथम दर्शन के द्वारा भाविदर्शनादि का संग भी नहीं भासता, अतः उस भाव में उस को भी सत् नहीं मानेंगे। 15 20 25

यदि कहें कि — ‘उत्तरकाल में उसी की प्रतीति होती है अतः भावि विज्ञानग्राह्यता (यानी स्थायिता) मान सकते हैं’ — तो यह शक्य नहीं, क्योंकि दो विकल्प खड़े होंगे — ? क्या उस स्वरूप का उपलम्भ पूर्व दर्शन से होगा ? या उत्तरकालभावि दर्शन से ? यदि पूर्व दर्शन से, तो जो उत्तरकाल में नहीं है उस से किसी भी भावस्वरूप का ग्रहण कैसे होगा ? स्वयं असत् दूसरे का ग्रहण कैसे कर सकता है, 30



न तत्प्रतिभासिरूपग्रहः प्राक्। अथोत्तरकालभाविनी दृक् तस्योपलब्धिः (अ)युक्तमेतत्, यतो द्वितीयदृग्पि स्वप्रतिभासिनमेव पदार्थात्मानमवभासयतु न पुनस्तत्त्वम्। यतस्तत्त्वं दृश्यमानस्यार्थस्य पूर्वदेशादिपरिगतत्वम् (दृष्टता) वा ???]

- न तावदाद्यः पक्षः, पूर्वदेशादीनामसन्निधानेनाऽप्रतिभासने तत्सम्बद्धस्यापि रूपस्याऽग्रहणात्। प्रत्यक्षेण  
5 न चाऽसंनिहिता देशादयः प्रतिभान्ति दर्शनस्य निर्विषयत्वप्रसङ्गात्, सकलातीतभावपरम्परापरिच्छेदप्रसक्तेश्च कालत्रयप्रदर्शि प्रत्यक्षं भवेत्। न च तथाऽभ्युपगन्तुं युक्तम् अतीतादौ विशदप्रतिभासाभावात्, तमन्तरेण च प्रत्यक्षेणाऽग्रहणात्। न च पूर्वदेशादीनां तदा सन्निधानम्, सन्निधौ वा तद्दर्शने प्रतिभासनात् पूर्वरूपतात्यागः वर्तमानताप्राप्तेः। न हि तद्दर्शनप्रतिभासनमन्तरेणान्या वर्तमानता नीलादीनामपि। तथापि पूर्वरूपत्वे वर्तमानव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिः। न च पूर्वदेशादीनामप्रतिभासे तत्सम्बद्धरूपप्रतिभासः प्रत्यक्षतः सम्भवति,  
10 अन्यथा सर्वदेशकाल-दशापरिष्वक्तभावावगमात् सर्व एव व्यापिनो नित्याः सर्वाकारस्वभावाः प्रसजन्ति। न

करेगा तो सारे विश्व के ग्रहण का अतिप्रसंग सिर उठायेगा। जब वह प्रथम दर्शन मौजूद था तब पश्चाद् दर्शनादि की सत्ता ही नहीं थी फिर उस (पश्चाद् दर्शन) से गृहीत स्वरूप का पूर्व में ग्रहण प्रथम दर्शन से किस तरह हो सकेगा ? यदि कहें कि — 'उत्तर क्षण का दर्शन उस की उपलब्धि करेगा' — तो यह युक्त नहीं है, क्योंकि द्वितीयदर्शन भी स्व में भासमान पदार्थस्वरूप का ही प्रकाशन कर पायेगा, न कि  
15 उस के 'स एवायम्' यहाँ 'स' से निर्दिष्ट तत्त्व को। कारण, तत्त्व से क्या अभिप्रेत है ? — दृश्यमान अर्थ की पूर्वदेशादिसंलग्नता या सिर्फ दृष्टता (= अतीतदर्शनग्राह्यता) ?

पहला पक्ष तो ठीक नहीं है क्योंकि पूर्वदेशादि उत्तर दर्शन के लिये संनिहित न होने से उस का प्रतिभास शक्य नहीं है अतः उस से सम्बद्ध रूप का भी ग्रहण नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष असंनिहित देशादि में भासित नहीं हो सकते, क्योंकि तब दर्शन असत्ख्यातिरूप यानी निर्विषय हो जायेगा। अथवा भूतकालीन  
20 सकल भाव सन्तान के बोध की प्रसक्ति होगी, तुल्यरूप से भविष्यकालीन की, इस तरह प्रत्यक्ष में त्रिकालभावप्रकाशन की प्रसक्ति होगी। ऐसा तो कोई भी मानने को नहीं चाहेगा क्योंकि भूत आदि भावों का किसी को भी स्पष्ट प्रतिभास होता नहीं। स्फुट प्रतिभास के विना प्रत्यक्षग्रहण होता नहीं। उत्तरक्षण में पूर्वदेशादि का संनिधान शक्य नहीं, शक्य होगा तो उस का प्रत्यक्ष में प्रतिभास भी स्वीकारना होगा, (यतः प्रत्यक्ष वर्तमानग्राही ही होता है अतः) पूर्वदेशादि में पूर्वरूपता के त्याग और वर्तमानता की प्रसक्ति  
25 होगी। नीलादि भावों की भी वर्तमानता क्या है अपने दर्शन में प्रतिभास को छोड़ कर ? फिर भी पूर्वरूपता का आग्रह करेंगे तो प्रत्यक्ष में वर्तमानग्राहिता के व्यवहार के, या प्रत्यक्षविषय में वर्तमानता के व्यवहार के उच्छेद की आपत्ति होगी।

पूर्वदेशादि का प्रतिभास न होने पर पूर्वदेशादिसम्बद्ध भावस्वरूप का प्रत्यक्ष से भान सम्भव नहीं। अन्यथा सर्वदेश-काल-दशासम्बद्ध भावों का बोध हो जाने से, उन भावों की सर्वदेशकालादि सम्बन्धिता  
30 सिद्ध होने से उन भावों को विश्वव्यापक एवं कालव्यापक यानी नित्य एवं सर्वआकार-प्रकार से संयुक्त मानने का अनिष्ट खड़ा होगा।

**शंका :-** ऐसा अनिष्ट नहीं होगा, क्योंकि भावों की प्रतीति नियतदेशसंलग्नता से ही होती है।

च नियतदेशादिसंसर्गतया तेषां प्रतीतेर्नायं दोषः, पूर्वदेशादिसंसर्गतया सम्प्रति दर्शनेऽप्रतिभासमानवपुषः तथात्वाभावप्रसक्तेः। तन्न पूर्वदेशादिमत्त्वं दृश्यमानस्य तत्त्वम्।

अथ दृष्टता दृश्यमानस्य तत्त्वम्, स्या( ?सा) पि किं सम्प्रति दर्शने प्रतिभातता ? आहोस्वित् पूर्वदृशि ? यद्याद्यः पक्षः तदा वर्तमानतैव न पूर्वापरदृगव(ग)तैकत्वम्। अथ द्वितीयः तदा पूर्वदर्शनमपेतत्वादसत् कथं वर्तमानदर्शने प्रतिभासति ? तदप्रतिभासे च तद्ग्राह्यतापि प्रच्युतत्वाद् न प्रतिभाति, तद्ग्राह्यं तु रूपमधुनाऽसंनिहितत्वाद् वर्तमानदृगधिगम्यं (न) भविष्यति, पूर्वदर्शनस्याऽपरिच्छेदे तदधिगम्यस्यापि रूपस्याधिगमासंभवात्। यतो न वर्तमानं दर्शनं पूर्वदृशमगृह्णत् तदधिगम्यमधिगन्तुं क्षमम् तदि( ?दृ)शा ग्राह्यमधिगच्छतु पूर्वदृग्राह्यतां तु कथमधिगच्छेत् ? यदि तु पूर्वदृगम( ?न)वगमेऽपि तद्ग्राह्यता प्रतीयते तथा सति सक( ?)लातीत दृग्राह्यताऽपि प्रतीयताम्। न च पूर्वदृष्टता नाभाति पूर्वदृष्टरूपं ना( ?चा)भातीति पूर्वदृष्टताऽप्रतीतौ पूर्वदृष्टरूपाऽप्रतिपत्तेर्न हि नीलताऽप्रतिपत्तौ नीलोऽर्थोऽधिगतो भवति। स्ववेद्यतया च

उत्तर :- अरे ! तब तो वर्तमान दर्शन में पूर्वदेशसंलग्नतया जिन का देह भासमान नहीं होता उन भावों में पूर्वदेशसंलग्नता का अभाव सिद्ध हो जायेगा। सारांश, 'स एव' यहाँ स — पदार्थभूत तत्त्व पूर्वदेशादिवृत्तित्वरूप कतई नहीं है।

### [ पूर्वदृष्टपदार्थ का पुनः दर्शन अशक्य ]

दूसरा विकल्प :- दृश्यमान की दृष्टता यही है तत्त्व, यहाँ भी दो विकल्प खड़े होंगे — १ दृष्टता वर्तमान दर्शन में भासमानता है या २ पूर्व दर्शन में ? प्रथम पक्ष के स्वीकार में फलित होगा कि दृष्टता वर्तमानता ही है न कि पूर्वापर दर्शनोपलब्ध एकत्व। दूसरे पक्ष में, पूर्वदर्शन तो बीत चुका, वर्तमान में वह असत् है वह वर्तमान दर्शन में कैसे भासित होगा ? वर्तमान में प्रतिभास के न होने से वर्तमानदर्शनग्राह्यता भी शक्य नहीं है क्योंकि वह भी च्यवनग्रस्त है। अतः प्रच्युतदर्शनग्राह्य रूप वर्तमान में संनिहित न होने से वर्तमानदर्शनगृहीत हो नहीं सकता, क्योंकि पूर्वदर्शन के ग्रहण के विना उस के ग्राह्यरूप का भी अवबोध सम्भव नहीं है। कारण, वर्तमान दर्शन पूर्व दर्शन नहीं कर सकता अतः पूर्वदर्शनग्राह्य पदार्थ का भी ग्रहण नहीं कर सकता। वर्तमान दर्शन स्वग्राह्य का तो अवबोध कर सकता है लेकिन पूर्वदर्शनग्राह्यता का भान कैसे कर सकता है ? पूर्वदर्शन का ग्रहण न होने पर भी उस से ग्राह्य का द्वितीय दर्शन से ग्रहण होगा तो सिर्फ पूर्वक्षण का ही क्यों, भूतकालीन समस्त दर्शनों के ग्राह्यों का ग्रहण भी हो जाने दो ?!

### [ पूर्वदृष्ट रूप का द्वितीयविज्ञान से ग्रहण अशक्य ]

ऐसा नहीं हो सकता कि पूर्वदृष्टता का भान न होने पर भी पूर्वदृष्टरूप का भासन हो। पूर्वदृष्टता का भासन न होने पर पूर्वदृष्टरूप का भान शक्य नहीं। नीलता का भान न होने पर नील पदार्थ का भान नहीं हो सकता। जो दर्शन में स्वग्राह्यरूप से भासेगा वह स्व से ही वेद्य हो सकता है अन्य विज्ञानक्षण से वेद्य नहीं। दर्शन में न भासने वाले अर्थ को भी उस का वेद्य मानने पर अतिप्रसंग स्पष्ट है — सारे विश्व का वेदन और सर्व में सर्वात्मकता होने की आफत। (एक दर्शन ग्राह्य होने से सकल पदार्थों में एकत्व की प्रसक्ति स्पष्ट है।) यदि कहें कि — 'अर्थ स्थिर है किन्तु उस का ग्राहक पूर्व दर्शन क्षीण हो

प्रतिभासमानः स्ववेद्य एव नान्यवेद्यः, तत्राऽप्रतिभासमानरूपाभ्युपगमेऽतिप्रसङ्गात् सर्वस्य सर्वात्मकतापत्तेः । न पूर्वदृशापो(?शोऽपा) ये तत्कर्मता अर्थस्य प्रच्युतेति न भाति तद्गोचरः सर्वात्मना भात्येव तदपाये तदवगतत्वेनाऽप्रतिभासनाद्य(?द्) अन्यथातिप्रसङ्गः इत्युक्तेः । यदि च प्राग्दर्शनगोचरोऽर्थो वर्तमानदृशि प्रतिभाति पूर्वदृग्गोचरसकलपदार्थप्रतिभासप्रसङ्गः ।

- 5 न च भिन्नं पूर्वदृग्वगतं नावभाति अभिन्नं तु तत्रप्रतिभासविषयोऽवभासत एव नीलादेर्भिन्नस्यापि वर्तमानदर्शनप्रतिभासनात् पूर्वदृष्टत्वादेव तस्य न तत्र प्रतिभासः, तच्चाभिन्नेऽपि समानम् इति कुतस्तस्य प्रतिभासः ? न चाऽभिन्नस्य पूर्वदृग्गोचरस्य संनिहितत्वा(त्) प्रतिभासः नेतरस्य विपर्ययात् तत्संनिधेरेवाऽसिद्धेः । न च सम्प्रति दर्शनात् तत्संनिधिसिद्धिः, यतः किं तत् तस्य दर्शनम् उतान्यस्य ? यद्यन्यस्य कथं तत्संनिधि-सिद्धिः सर्वस्य तत्प्रवृत्तिः(?त्तेः) । न चाऽप्रतिभासाद् न सर्वस्य(1?) संनिधिः, इतरेतराश्रयदोषात्— तदप्रति-  
10 भासात् सर्वाऽसंनिधिः ततश्च सर्वाऽप्रतिभास इति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् । अथ तस्यैव दर्शनात् स(?त)

जाने के बाद उस अर्थ में उस की कर्मता (दृष्टता) भी क्षीण हो गयी अतः पूर्वदृष्टता का भान उत्तर दर्शन में भले न हो, किन्तु उस का भूतपूर्व विषय तो अपने पूर्ण स्वरूप से (नील अर्थ नीलरूप से) भासित हो सकता है। — यह सम्भव नहीं है। पूर्वदर्शन का भासन न होने से वह अर्थ पूर्वदृष्टत्वेन ज्ञात नहीं हो सकता, (तब 'वही है यह' ऐसा नहीं कह सकते,) फिर भी उस का भान मानेंगे तो पूर्वोक्त  
15 अतिप्रसंग होगा ही — यह पहले कह दिया है। यदि पूर्वदर्शनगृहीत विषय वर्तमान दर्शन में प्रतीत होगा तो पूर्वपूर्वदर्शनसंबन्धि भूतकालीन सकल पदार्थों के प्रतिभास की आफत खड़ी है।

### [ अभिन्न विषय के अवभास का निरूपण असंगत ]

- यदि कहें — 'उत्तर दर्शन ग्राह्य से भिन्न वस्तु का यदि पूर्व में भासन होता तो उत्तरदर्शन में उस का भान नहीं हो सकता — यह ठीक है किन्तु अभिन्न प्रतिभासविषय तो भासता ही है।' — तो यह गलत  
20 है क्योंकि पूर्वदर्शनविषय से भिन्न भी नीलादि वर्तमानदर्शन में भासता ही है अतः न भासने का मूल कारण भिन्नता नहीं किन्तु पूर्वदृष्टता ही है। अभिन्न में भी आप पूर्वदृष्टता तो समानरूप से मानेंगे ही, अतः उस का वर्तमानदर्शन में भान होगा कैसे ? यदि कहें — 'अभिन्न पूर्वदर्शनविषय उत्तरदर्शन में संनिहित होने के कारण गृहीत हो सकता है, भिन्न पदार्थ गृहीत नहीं हो सकता क्योंकि वर्तमान में उस का संनिधान नहीं है।' — तो कहना होगा कि पूर्वदर्शनविषय की वर्तमान में संनिधि ही नहीं है। 'वर्तमान में दिखता है अतः  
25 संनिधि सिद्ध है' — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि प्रश्न खड़ा होगा कि वर्तमान में उसी का (पूर्वदर्शनविषय का) ही दर्शन होता है या अन्य का ? यदि अन्य का, तो पूर्वविषय के संनिधान की सिद्धि कैसे होगी ? ऐसे तो सकल अतीत पदार्थ की संनिधि प्रवृत्त होगी। "सकल पदार्थों का प्रतिभास न होने से उन सभी की संनिधि सिद्ध नहीं होगी।" — ऐसा कहेंगे तो इतरेतराश्रय दोष गले पड़ेगा। उन सभी के अप्रतिभास का हेतु उन की असंनिधि, और उन की असंनिधि के कारण अप्रतिभास — तो स्पष्ट ही अन्योन्याश्रय है।  
30 यदि कहें कि — अन्य की नहीं किन्तु (दूसरे विकल्प में) उस के (पूर्वदृष्ट के दर्शन से ही उस की संनिधि मानेंगे — तो यह गलत है क्योंकि वर्तमानदर्शन पूर्वदर्शनगृहीत अर्थ का ही है यह कैसे जान लिया ? वर्तमान दर्शन से यह मालूम नहीं हो सकता क्योंकि वह तो संनिहित (= वर्तमान) पदार्थ के लिये ही ग्रहण-प्रवृत्त

त्सन्निधिः। असदेतत्— यतः पूर्वदर्शनावगतस्य वर्तमानदर्शनमिति (न?) कुतश्चिदवगम्यते ? न तावद् दर्शनात् सन्निहित एव तस्य वृत्तेः। न च पूर्वदृष्टसन्निहितयोरेकत्वाद् वर्तमानदर्शनवृत्तिः, इतरेतराश्रयत्वप्रसक्तेः— तयोरेकत्वाद् तद्दर्शनवृत्तिः तद्दृष्टेश्च तयोरेकत्वम् इतीतरेतराश्रयत्वम्।

अपि(?) च तद्दर्शनवृत्तेर्नायं दोषः, तदप्रच्युतौ प्रमाणाभावात्। न च प्रत्युत्पन्नदर्शनमेव तत्र प्रमाणम् इतरेतराश्रयदोषप्रसक्तेः। तथाहि— पूर्वदृष्टाऽप्रच्युतौ प्रवर्तमानं दर्शनं प्रमाणं सिध्यति तत्रामाण्यात्व(?) च 5 पूर्वदृष्टस्याऽप्रच्युतिरिति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम्। न च परिस्फुटप्रतिभासादेव वर्तमाना दृक् प्रमाणम्, काम-शोकाद्युपप्लुतविशददृशः प्रमाणताप्रसक्तेः। न च विसंवादात् सा अप्रमाणम् इयं तु विपर्ययात् प्रमाणम्, यतः संवाददृगपि पूर्वदृष्टेऽर्थे प्रवर्तमाना न प्रमाणतया सिद्धा अन्यत्राऽप्रवृत्ता (न?) संवादकृता, ततः पूर्वदृष्टार्थग्राहित्वे दृग् भ्रान्ता प्रसक्ता। अपि च उत्तरज्ञाने पूर्वदर्शनग्राह्यं किं तद्दृष्टेन रूपेण प्रतिभाति उत रूपान्तरेण ? यदि पूर्वदृष्टेन तथा सति पूर्वदृष्टरूपावभास एव न वर्तमानरूपपरिच्छेदः। अथ रूपान्तरेण, तत्रापि 10 वर्तमानदर्शनग्राह्यरूपतैव न पूर्वज्ञानग्राह्यता इति वर्तमानमेव तत्। न च ज्ञानद्वयावभासि रूपं तत्र रहता है। यदि पूर्वदृष्ट और वर्तमानसंनिहित एक होने के कारण वर्तमान दर्शन की उस में प्रवृत्ति होने का मानेंगे तो पुनः अन्योन्याश्रय प्रसक्त होगा, दोनों के एकत्व प्रसिद्ध होने पर वर्तमान दर्शन की प्रवृत्ति और उस की प्रवृत्ति सिद्ध होगी तभी उन का एकत्व सिद्ध होगा — यह इतरेतराश्रय स्पष्ट है।

### [ वर्तमानदर्शनवृत्ति-अप्रच्युति का अन्योन्याश्रय ]

15

यदि कहें कि — ‘वर्तमानदर्शनवृत्ति वास्तविक होने से अन्योन्याश्रय दोष नहीं होगा’ — तो यह भी ठीक नहीं है, क्यों कि वर्तमानदर्शनवृत्ति तो पूर्व विषय की वर्तमान में अप्रच्युति सिद्ध होने पर ही शक्य है, किन्तु प्रमाण के बिना वही सिद्ध नहीं है। वर्तमानदर्शन को ही यहाँ अप्रच्युति प्रति प्रमाण नहीं दिखा सकते क्योंकि अन्योन्याश्रय दोष होगा। देखिये — पूर्वदृष्ट विषय की अप्रच्युति सिद्ध होने पर वर्तमान दर्शन का प्रामाण्य सिद्ध होगा, और उस के प्रामाण्य की सिद्धि होने पर पूर्वदृष्ट विषय की अप्रच्युति 20 सिद्ध होगी। स्पष्ट ही अन्योन्याश्रय है। स्फुट प्रतिभासरूप है इस लिये वर्तमानदर्शन प्रमाण मान लेना अयुक्त है क्योंकि कामराग या गहरे शोकादि प्रसंग में भी अपने स्वजन का स्फुट प्रतिभास होता है किन्तु उन का दर्शन प्रमाण नहीं होता। ‘वह दर्शन तो विसंवादी होने से प्रमाण नहीं, पूर्वदृष्ट दर्शन तो संवादी होने से प्रमाण मान लेंगे’ — यह भी शक्य नहीं, क्योंकि संवाददर्शन भी पूर्वदृष्टार्थ ग्रहण में प्रवृत्त होने पर भी प्रमाणरूप से सिद्ध नहीं है। अन्य अर्थ में प्रवृत्त होगा तो वह यहाँ संवादकारक नहीं होगा। अतः 25 यदि वह उत्तर क्षण में असत् पूर्वदृष्ट अर्थ का ग्रहण करेगा तो भ्रान्त ठहरेगा।

### [ पूर्वदृष्ट रूप के लिये दो प्रश्न ]

तथा, यह भी प्रश्न खड़ा होगा — उत्तर दर्शन में पूर्वदर्शनदृष्ट अर्थ पूर्वदृष्टरूप से भासित होता है या अन्य स्वरूप से ? यदि पूर्वदृष्टरूप से, तो पूर्वदृष्टरूप का भासन तो होगा किन्तु वर्तमानरूप का भान नहीं होगा। यदि अन्य रूप से, तो वर्तमानदर्शनग्राह्यरूपता ही उस में सिद्ध होगी, न कि पूर्वज्ञानग्राह्यता। 30 मतलब कि वह वर्तमान ही भाव है, न कि भूत। ऐसा तो नहीं कह सकते कि — ‘पूर्वापरज्ञानद्वय में प्रतिबिम्बित रूप वहाँ दिखता है’ — क्योंकि वहाँ एक पल में दो ज्ञान की हस्ती ही नहीं है अतः

प्रतिभातीति वक्तुं शक्यम्, ज्ञानद्वयाभावे तदवभासिनो रूपस्याप्यभावात्। यदेव हि ज्ञानमस्ति भवतु तदवभास्येव तद्रूपम् यत् तु नष्टज्ञानं न तदवभासि युक्तम् अन्यथा सकलातीतज्ञानावभासिरूपप्रतिभासप्रसक्तिरित्युक्तम् तस्मादिदानीन्तनज्ञानावभासमेवैतद्युक्तम्।

- न च निर्विकल्पके वर्तमानग्रहणे सति प्राक्तनज्ञानावभासिभावपरिच्छेदः समस्ति, विकल्पद्वयानतिवृत्तेः  
 5 — यतः 'सः' इति पूर्वपरिच्छेदः 'अयम्' इति प्रतिभासानुप्रवेशेन प्रतिभाति उताननुप्रवेशेन ? यद्याद्यः पक्षः, तदा 'सः' (इ)ति वा परोक्षाकारः प्रतिभासः 'अयम्' इति वा वर्तमानमात्रावभासः। अथाननुप्रवेशेन प्रतिभासस्तदापि प्रतिभासद्वयं परस्परविविक्तमायातम्, तथा च तद्ग्राह्यस्यापि भेदः प्रतिभासभेदात्। न च तदवभासद्वयमेकाधिकरणम् परोक्षाऽपरोक्षरूपनिर्भासद्वयस्यैकाधिकरणत्वासिद्धेः, अन्यथा भिन्नाधिकरणसर्वसंविदामेकाधिकरणत्वापत्तेः। तन्नैककालम् भिन्नकालं वा प्रतिभासद्वयमेकार्थम् प्रतिभासभेदात्। न चात्र  
 10 प्रतिभास एव भिन्नो न प्रतिभास्यः, तद्भेदे तदभेदाऽसिद्धेः। तथाहि—

न स्वतः प्रतिभास्याऽभेदः सिद्धः, स्वसंविन्मात्रप्रसक्तेः। नापि प्रतिभासात्, तस्य भिन्नत्वादिति नैकत्वसिद्धिः। उत्तरकालभाविनोऽपि दर्शनात् सन्निहितमात्रस्यैव तत्र प्रतिभासात् पूर्वकालादीनां तत्र प्रतिभासने

- ज्ञानद्वयप्रतिबिम्बित कोई रूप भी नहीं है, जो वर्तमान ज्ञान है उस में प्रतिबिम्बित रूप तो मान सकते हैं किन्तु जो नष्ट ज्ञान है उस के विषय का वर्तमान में अवभास होना शक्य नहीं। अन्यथा, सकल भूतकालीन  
 15 ज्ञानाप्रतिबिम्बित रूपों की वर्तमान में उपलब्धि प्रसक्ति होगी। फलित यह होता है कि वर्तमानरूप वर्तमानज्ञानावभासि ही है।

### [ निर्विकल्प में पूर्वापर भावावभास के प्रति विकल्पद्वयी ]

- जो निर्विकल्प वर्तमान दर्शन है उस में पूर्वकालीनज्ञानभासित भाव का प्रतिभासन नहीं होता, होगा तो दो प्रश्न खड़े होंगे — १ 'वह' ऐसा जो पूर्वभाव का बोध है वह 'यह' इस प्रतिभासानुविद्ध होकर  
 20 भासित होता है ? २ या अननुविद्ध हो कर ? प्रथम पक्ष में, दो अनिष्ट गले पड़ेंगे। A या तो 'वह' इस प्रकार पूर्वभावबोध में परोक्षाकारता प्रसक्त होगी, B या तो 'यह' इस प्रकार वर्तमानमात्र का अवभास होगा। यदि २ अननुविद्ध हो कर — यह पक्ष माना जाय तो परस्पर असम्बद्ध दो प्रतिभास फलित हो गये। अत एव उन के ग्राह्य विषयों का भी प्रतिभासभेदमूलक भेद सिद्ध हो गया। 'पूर्वापर दो प्रतिभास होने पर भी एक ही अधिकरण (यानी विषय) में मग्न है' — ऐसा भी नहीं है क्योंकि पूर्वदर्शनगृहीत  
 25 रूप परोक्ष है वर्तमानगृहीत अपरोक्ष है तो उन के अवभासकद्वय ज्ञानों में एकाधिकरणता हो नहीं सकती। अन्यथा, जितने भी भिन्नाधिकरणक (= भिन्नविषयक) संवेदन हैं उन सभी में एकाधिकरणता प्रसक्त होगी। सारांश, समकालीन या भिन्नकालीन दो पृथक् प्रतिभास एकार्थग्राही नहीं हो सकते, क्योंकि ग्राहक अलग है। ऐसा नहीं कह सकते कि — 'यहाँ प्रतिभास ही भिन्न है प्रतिभासित अर्थों में भेद नहीं' — क्योंकि प्रतिभासभेद के रहते हुए प्रतिभासित अर्थों में अभेद हो नहीं सकता।

30

### [ प्रतिभास्यों के अभेद की सिद्धि का असम्भव ]

अगर प्रतिभास विषयों का अभेद है तो वह स्वतःसंविदितप्रमाणभूत नहीं हो सकता, क्योंकि तब

वर्तमानतापत्तेः, तदनवभासे च तत्परिकरितरूपस्याप्यपरिच्छेदः। न च तद्गतत्वेनाऽप्रतिभासेऽप्यत्रुट्यद्रूपतया प्रतिभासात् प्रतिभास्यैकत्वम्, यतो विद्युदादिष्वपि पूर्वरूपाऽप्रतिभासनं यदि त्रुट्यद्रूपत्वमङ्गीक्रियते तर्हि पूर्वदृष्टाऽप्रतिभासनं वर्तमानं (?) वरदृशः स्तम्भादावस्तीति कथं न त्रुट्यद्रूपप्रतिभासः स्तम्भादेर्भेदः ? अथ ग्राह्यस्याऽविरतमुपलब्धिरत्रुट्यद्रूपता, विद्युदादौ त्ववभासस्य विरतिरित्यत्रुट्यद्रूपता न युक्ता। नन्वविरतोपलब्धिरपि किं तस्य आहोस्विदन्यस्य इति वक्तव्यम्। यद्यन्यस्य कथमेकत्वम् ? अथ तस्यैव, सा न सिद्धा। न हि 5 पूर्वदृष्टस्य पुनरुपलब्धिरिति सिद्धम्।

यदपि— 'पूर्वदृष्टं पश्यामि' इति व्यवसायबलात् निर्विकल्पकं दर्शनं पूर्वापरैकत्वग्राहि— इत्युक्तम् (९-9) तदप्यसारम्, यतो न व्यवसायबलाद् ग्राहकं दर्शनं व्यवस्थाप्यते किन्तु प्रतिभासबलात्। अन्यथा अश्वविकल्पसमये गोदर्शनव्यवस्था न स्यात्। प्रतिभासश्च निराकृतपूर्वापरभावो वर्तमानार्थमारूढः परिस्फुटं

तो बाह्यपदार्थलोप हो कर स्वसंवेदनमात्र की हस्ती बचेगी। भिन्न प्रतिभास से भी अभेद सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि तब प्रतिभासभेद नहीं होगा, यहाँ तो प्रतिभास का भेद प्रसिद्ध है। अतः एकत्व की सिद्धि दुष्कर है। उत्तरक्षणवर्ती दर्शन से तो एकत्व का या पूर्वदृष्ट का नहीं सिर्फ संनिहितमात्र विषय का ही प्रतिभास होता है। यदि उस में अभेद मानने के लिये पूर्वक्षणादि का प्रतिभास स्वीकारेंगे तो पूर्वक्षणादि में वर्तमानता की आपत्ति होगी (संनिहित हो जाने से)। यदि पूर्वक्षणादि का प्रतिभास न माने तो पूर्वक्षणादिगर्भितरूप से पूर्वरूप का बोध होगा ही नहीं। (तो एकत्वभान कैसे होगा ?) 15

### [ अखंडरूप से पूर्वापर का प्रतिभास अशक्य ]

ऐसा नहीं कहना कि — 'पूर्वक्षणगर्भितरूप से प्रतिभास न होने पर भी उस पूर्वदृष्टरूप का प्रतिभास तो अस्खलित — अविच्छिन्नरूप से होता है इस लिये प्रतिभास भिन्न होने पर भी प्रतिभास्यों का एकत्व अक्षुण्ण रहेगा।' — क्योंकि विद्युद् (= बीजली) आदि में जब वह तेजोरेखा ऊपर से नीचे तक अखंड दिखती है यानी पूर्वरूपप्रतिभास है फिर भी वहाँ अखंडरूपता का स्वीकार नहीं करते हैं तो फिर स्तम्भादि 20 में वर्तमानग्राहिदर्शन पूर्वरूप प्रतिभासकारि भले दिखाई दे, क्यों न वहाँ स्खलितरूप प्रतिभास और उस के निमित्त से भेद न माना जाय ? यदि कहें कि — अस्खलित(अखंड)रूपता का तात्पर्य है विषय की निरंतर उपलब्धि, यहाँ बीजली आदि में तो भिन्न भिन्न गगनप्रदेश में प्रतिभास निरंतर नहीं होता, अतः उन में अखंडरूपता नहीं मानते, (स्तम्भादि में वैसा न होने से अखंडरूपता मानते हैं।) अरे ! स्तम्भादि के लिये भी समस्या है कि वहाँ जो निरंतर उपलब्धि होती है वह उसी एक व्यक्ति की होती है या अन्य 25 अन्य व्यक्ति सन्तान की ? 'उसी व्यक्ति की' होती है ऐसा तो अभी तक आप सिद्ध नहीं कर पाये हैं, क्योंकि पूर्वदृष्ट की पुनः पुनः उपलब्धि कहाँ सिद्ध है ?

### [ पूर्वदृष्ट के दर्शन का पूर्वकथन अयुक्त ]

यह जो कहा था (९-9३) 'मैं पूर्वदृष्ट को देखता हूँ — इस निश्चय के बल से सिद्ध होता है कि निर्विकल्पक (प्रथम) दर्शन पूर्वापरभावि विषयों का एकत्व ग्रहण करता है' — वह भी निःसार है, क्योंकि 30

सर्व एवाऽऽभाति । साक्षात्करणं हि परिस्फुटता । तच्च सन्निहितप्रतिभासनम् असंनिहितस्य साक्षात्कर्तुमशक्यत्वात् । पूर्वदृष्टं (?टम)सन्निहितं रूपमिति न तद्ग्रहः प्रत्यक्षस्वभावः । अथापि स्यात् नोत्तरप्रत्यक्षे पूर्वदृष्टं रूपमाभाति किन्तु धर्मिरूपं नीलादिलक्षणम् । असदेतत्— पूर्वापरदर्शनप्रतिभासिस्वरूपव्यतिरिक्तस्य नीलादित्वस्य धर्मिणः तद्भेदेऽप्यभिन्नस्याऽनुपलब्धेः । न हि पूर्वापरदृगवसेयं मुक्त्वा रूपमपरो नीलादिरूपो धर्मो प्रतिभाति, 5 अप्रतिभासमानस्य नित्यत्वसाधने न काचित् क्षतिः, प्रतिभासस्यैव सर्वस्याऽनित्यत्वसाधनात् । तत्र अध्यवसायवशादध्यक्षस्य ग्रहणव्यवस्था इत्येके ।

अपरे तु मन्यन्ते — यद्यपि नीलाध्यवसायात् नीलदर्शनस्य तद्ग्रहणं व्यवस्थाप्यते तथापि लून-पुनर्जातकेशादिषु 'पूर्वदृष्टं पश्यामि' इत्यध्यवसायस्यान्यथापि प्रवृत्त्युपलब्धेः कथं तद्रूपार्थग्राह्यनुभव-व्यवस्थापकत्वम् ? न च — विच्छेदाभिज्ञैस्तत्र भेदस्य ग्रहणादभेदग्राहिता मा भूद् अनुभवस्य तन्निबन्धना, 10 न पुनरिहैवं भेदावसायस्यैव कस्यचिदभावादि(ति) वक्तव्यम्, भेदावसाय एवात्र कस्यचिन्नास्तीत्यदर्शनमात्रादसिद्धेः ।

निश्चय के बल से यह सिद्ध नहीं होता कि दर्शन उस एकत्व का ग्राहक है, किन्तु दर्शन में जिस का प्रतिभास होता है उस के बल से दर्शन विषय का ग्राहक सिद्ध होता है । अन्यथा, एक और विकल्प (निश्चय) जब अश्वग्रहण करता है उसी समय संनिहित गो-संनिकर्ष होने पर दर्शन गौआ का ग्राहक सिद्ध नहीं हो पायेगा । सभी प्रतिभास पूर्वापरभाव का लोप करता हुआ वर्तमान अर्थ पर ही निर्भर होता है यह स्पष्ट 15 भासित होता है । स्पष्टता क्या है — साक्षात्कार । साक्षात्कार यानी संनिहित वस्तु का प्रकाशन । असंनिहित तत्त्व का साक्षात्कार होना असम्भव है । पूर्वदृष्ट रूप तो वर्तमान में असंनिहित है कैसे उस का प्रत्यक्षात्मक साक्षात् ग्रह होगा ?

यदि कहा जाय — 'उत्तरक्षण-दर्शन में हाँलाकि पूर्वदृष्ट रूप नहीं भासता किन्तु नीलादिस्वरूप (वही) धर्मो भासता है — अतः भेद नहीं रहेगा' — यह असार है । पूर्वापरदर्शनप्रकाशितस्वरूप से 20 अतिरिक्त कोई नीलादिक धर्मो से भिन्न नीलत्वादि अभिन्न एक सामान्य की उपलब्धि होती नहीं । जो पूर्वापरदर्शनग्राह्य व्यक्तिस्वरूप रूप भासता है उन से अतिरिक्त कोई नीलादि धर्मो का भान नहीं होता । जिन (असत् पदार्थों) का भान नहीं होता उन में नित्यत्व को सिद्ध करने पर आप सज्ज हैं तो उस में हमारा कोई नुकसान नहीं, हम तो सर्व प्रतिभासों (प्रतिभास्यों) के अनित्यत्व की सिद्धि कर रहे हैं । सारांश, अध्यवसाय (विकल्प) के बल से प्रत्यक्ष या उस के विषयग्रहण की सिद्धि दूरापास्त 25 है । — यह कुछ एक पक्ष के पंडितों का मन्तव्य दिखाया ।

### [ नील के अध्यवसाय से नीलग्रहण का प्रश्न — अन्यमत ]

कुछ लोग मानते हैं — हालाँकि नीलाध्यवसाय के बल से नीलदर्शन द्वारा नील का ग्रहण स्थापित किया जाता है — फिर भी काटने के बाद पुनः उग आने वाले केशादि में 'पूर्व में देखा था उसे देखता हूँ' इस प्रकार पूर्वदृष्ट के अभाव में भी उस के अध्यवसाय का प्रचार होता है, तब अध्यवसाय 30 के बल से अनुभव भी उसी अर्थ का ग्राहक है — ऐसी स्थापना कैसे ठीक हो सकती है ? — यदि यहाँ कहा जाय — 'जो लोग पूर्व केशविच्छेद को जानते हैं उन्हें वहाँ पूर्व केश और नवजात केशादि में भेद बुद्धि भलीभाँती होती है अतः जिस को विच्छेद का ज्ञान है उस का नवजात केश

अपि च अवगतविच्छेदानामपि प्रमातृणां समानवर्णसंस्थान-प्रमाणेषु केशादिषूपलम्भसमये न प्रत्यक्षनिबन्धनस्त-  
दन्येषामिवाऽन्यत्विनिश्चयः अपि त्वनुभूतविच्छेदेषु पूर्वरूपाऽसम्भवादेकाकारप्रत्ययगोचरेष्वनित्येष्वनुमाननिबन्धन  
एव, तच्चान्यत्रापि समानम् विकल्पवशाच्चायमनुभवस्य विषयव्यवस्थां कुर्वन्नन्यथापि विकल्पस्य सम्भवदर्शनात्  
समुपजातशङ्कः कथं सर्वत्र कुर्वीत ?

अथ— ‘बाधकप्रमाणबलेनाऽन्यथात्वस्य प्रतीतेः, अत्र च तदभावान्न शङ्कासम्भवः। तदुक्तम्— 5  
‘बाधाज्ञाने त्वनुत्पन्ने का शंका निष्प्रमाणका?’ ( ) इत्युच्यते — असारमेतत्। यतो यत्र  
बाधकप्रमाणनिवृत्तिस्तत्र विपर्ययाऽनिश्चय एव, न पुनर्बाधकनिबन्धना शंका युक्ता। सा हि तुल्यजातीये  
प्रतियोगिदर्शनाददृष्टप्रतियोगिष्वपि विशेषाऽदर्शनामुपजायत इत्युक्तमसकृत्। तन्नैकत्वाध्यवसायविकल्प-

का अनुभव भले ही पूर्वकेशमूलक न हो, किन्तु प्रस्तुत में नीलदर्शन में ऐसा कोई विच्छेदज्ञान नहीं  
है अतः यहाँ कोई भेदाध्यवसाय भी नहीं है।’ — तो यह कथन योग्य नहीं है। किसी को भेदाध्यवसाय 10  
नहीं है यह कथन दृष्टिसंगत नहीं है (क्यों कि सभी व्यक्ति का दर्शन किसी भी छद्मस्थ को नहीं  
हो सकता।) अतः ऐसा वचन ही असिद्ध है न कि भेदाध्यवसाय।

### [ भेद निश्चय अनुमानमूलक, अन्यत्र सुलभ ]

यह भी जान लो कि प्रमाताओं को विच्छेद ज्ञान होने पर भी, समानवर्ण-आकार-परिमाणयुक्त  
पदार्थों में (केशादि में) जो भेदाध्यवसाय होता है, वह अन्यो को जैसे प्रत्यक्षमूलक होता है वैसे 15  
विच्छेदज्ञाता प्रमाताओं को प्रत्यक्ष मूलक नहीं किन्तु अनुमानमूलक ही होता है। — देखिये केशादि  
विच्छेद का अनुभव कर लेने वाले को जब मालूम ही है कि पूर्वकेश का विच्छेद हो चुका है, नवजात  
केश में उन का (पूर्वकेशादि का) स्वरूप सम्भव ही नहीं है फिर भी जो एकाकार प्रतीति के विषय  
बनते हैं (नवजात केशादि) उन में यानी अनित्य विषयों में, अनुमान से ही भेदनिश्चय होता है।  
वहाँ पूर्वरूप असम्भव हेतु विधया अनुमानापादक है। नवजात केश में जब इस प्रकार अनुमान से 20  
ही भेदनिश्चय होता है न कि प्रत्यक्ष से, भेदाध्यवसाय (फलतः अनित्यत्व का निश्चय) क्यों नहीं  
हो सकता ?। जब प्रमाता को आखिर विकल्प के जोर से ही अनुभव के विषय की स्थापना करना  
है तो विकल्प तो विपरीत होने का सम्भव (लून-पुनर्जातकेशादि में) दृष्टिगोचर होने पर शंका जरूर  
होगी कि विकल्प के जोर से अनुभवविषय की स्थापना सच्ची होगी या नहीं ? ऐसी दशा में सर्व  
विषयों के बारे में वह क्या व्यवस्था करेगा ? 25

**आशंका :-** शंका वहाँ होगी जहाँ बाधक रहेगा, जहाँ बाधकप्रमाण के बल से ही वैपरीत्य का  
भान होता है। प्रस्तुत में (नीलादि अभेद भान में) बाधक प्रमाण न होने से शंका का सम्भव नहीं  
है। कहा है — ‘बाधा का ज्ञान उत्पन्न न होने पर शंका करना अप्रमाणिक है।’

**उत्तर :-** यह असारवचन है। बाधक प्रमाण का जहाँ अभाव होता है वहाँ वैपरीत्य का अनिश्चय  
ही होता है न बाधमूलक शंका। आप जो बाधज्ञान की उपस्थिति में शंका की बात करते हैं वह 30  
ठीक नहीं है। शंका वहाँ होती है जहाँ समानधर्मवाले एक भाव का दर्शन होने पर अन्य अदृष्टभावों  
में उस की भिन्नता का जिन्हें भान नहीं होता। कई बार यह तथ्य कहा जा चुका है।



बलाद् निर्विकल्पकप्रत्यभिज्ञानस्य पूर्वदृष्टार्थाधिगन्तृत्वं व्यवस्थापयितुं शक्यम्।

- यदपि कैश्चिदभ्युपगम्यते (८-८) — निर्विकल्पकं ज्ञानमेकत्वग्राहि तदनन्तरभावि च सविकल्पकं प्रमाणमिति — तदपि प्रतिविहितमेव, निर्विकल्पकेनैकत्रं (?त्वाऽ)परिच्छेदात् स्वरूपप्रतिभासनं च निर्विकल्पकमुच्यते। सन्निहितमेव च स्वरूपमाभाति। असन्निहितप्रतिभासस्य च वस्त्वसंनिधेर्भ्रान्तत्वात्, पूर्वदर्श-  
नादिसम्बन्धिता च तदा सन्निहिता नास्ति। तद् न तत्र दर्शन(1?)वृत्तिः स्मृतेरेव तत्र प्रवृत्तेः, पूर्वदर्शन-  
वृत्त्याद्यगतेः स्मरणमन्तरेण, पूर्वदृगादिकं स्मरत एव 'पूर्वदृष्टम्' इत्यध्यवसायोदयाद् विस्मरणे तदभावा(त्)  
स्मृतिविकलेन्द्रियजप्रतिभासस्य निर्विकल्पकत्वात्। [?? न ▲स्मृतिकृतदर्शनमविकल्पकज्ञानावसेयमेकत्वम्।  
अत एव कल्पनाज्ञानमप्येकत्वाध्यवसाये शुक्तिकायां रजतबुद्धि(वद)तत्त्वम्]। न च तत्र बाधकप्रवृत्तेर्भ्रान्तता  
सन्निहितविषये तु प्रत्यभिज्ञाने न कदाचिद् बाधावृत्तिरिति सत्यार्थता, यतस्तथापि यदि तत्त्वमधिकथं  
(?गतं) भवेत् प्रथमदर्शने एव प्रतिभासेत, अप्रतिभासनादसत्यम्।

**निष्कर्ष :-** एकत्व अध्यवसायी विकल्प के जोर से प्रत्यभिज्ञास्वरूप माने गये निर्विकल्प में पूर्वदृष्ट अर्थ की अवगाहकता का स्थापन नहीं किया जा सकता।

### [ एकत्वग्राही निर्विकल्प का निरसन ]

- यह जो पहले कुछ विद्वानों ने कहा था (८-२९) एकत्वग्राहि (प्रत्यभिज्ञात्मक) सिर्फ सविकल्प  
ही नहीं, निर्विकल्प भी एकत्वग्राहि (प्रत्यभिज्ञात्मक) प्रमाण होता है — उस की भी प्रतिक्रिया अब  
पूर्वाक्तकथन से सिद्ध हो गयी। कारण, निर्विकल्प से पूर्वोत्तरक्षणों के एकत्व का उपलम्भ नहीं होता।  
निर्विकल्प कहते हैं स्वरूप (अपने तत्त्व) के परिच्छेद को। निर्विकल्प से जो स्वतत्त्व संनिहित होता  
है वही उपलब्ध हो सकता है। असंनिहित (उत्तरक्षण) का प्रतिभास तो भ्रान्ति है क्योंकि पहले क्षण  
में उस का संनिधान नहीं है। उत्तरक्षण में भी पूर्वदर्शन का संनिधान शक्य नहीं, अतः उस में दर्शन  
का सम्बन्ध ही नहीं है। हाँ स्मृति में वस्तुसंनिधान जरूरी नहीं होने से स्मृति की पूर्वक्षण ग्रहण  
में प्रवृत्ति शक्य है। (किन्तु वह प्रमाण नहीं होती)। स्मृति के विना पूर्वदर्शन के सम्बन्ध का भान  
शक्य नहीं होता। अतः पूर्वदर्शन आदि याद करने वाले को ही 'पहले देखा हुआ' ऐसा अध्यवसाय  
उदित होता है, याद नहीं करनेवाले को नहीं होता। फलित यह हुआ कि स्मृति से अस्पष्ट इन्द्रियजन्य  
परिच्छेद ही निर्विकल्प होता है (जिस में पूर्वक्षण गृहीत नहीं होने से वह एकत्वग्राहि नहीं होता।)  
[अतः स्पष्ट है कि स्मृति से किया गया बोध अविकल्प दर्शन नहीं है, तथा एकत्व अविकल्पज्ञानग्राह्य  
नहीं है। अत एव एकत्वाध्यवसायि कल्पनाज्ञान छीप में रजताध्यवसायि ज्ञान की तरह अतत्त्वभूत  
यानी अप्रमाण ही होता है।] **आशंका :-** शुक्तिका में रजत का भान तो उत्तरकालीन बाधक उपस्थिति  
के कारण भ्रान्त कहलाता है, यहाँ प्रत्यभिज्ञान तो संनिहितविषयक होता है जिस में कोई बाधक  
का भय नहीं, अतः उसे सत्यार्थक मानना जरूरी है। **उत्तर :-** नहीं, बाध न होने पर भी संनिहित  
विषय में यदि अभेद या पूर्वकालता का अधिगम होता तो प्रथमक्षण दर्शन में ही उस का भासन

▲. पूर्वमुद्रित पाठान्तरमिदम् — स्मृतिकृतं दर्शनं विकल्पकमिति नाधिकल्पकल्पकज्ञानाव — वा० बा०। 'न स्मृतिकृतं दर्शनमविकल्पकम्  
नाऽविकल्पकज्ञानावसेयमेकत्वम्' — इति समीचीनपाठेन भवितव्यम् — इति प्रतिभाति।

अथ स्मृतिसहिताया दृशस्तत्त्वे व्यापाराद् न प्राक्तनदर्शने प्रतिभासनम्। असारमेतत्, यतः स्मरणसहायमपि दर्शनं नैकत्वग्रहणक्षमम् तस्य वर्तमानमात्र एव व्यापारात्। वर्तमानमेवाक्षप्रभवे ज्ञाने प्रतिभातीति तदेव तद्विषयो न तत्त्वम्। यच्च यदगोचरः तद् अन्यसद्भावेऽपि न तत्र प्रतिभाति यथा गन्धस्मृतावपि न दृशि परिमलः, दृग्विषयश्च पौर्वापर्यम्, तत्र स्मृतावपि तत् तत्र प्रतिभाति। तथा, स्मृतिरपि नैकत्वमवगच्छति, वर्तमानदृग्विषये तस्याः अप्रवृत्तेः। न हि वर्तमानदर्शनग्राह्यं रूपं स्मृतिः परामृशति परोक्षाकारतया तस्याः 5 प्रवृत्तेः। असंस्पर्शं च न स्वविषयस्य तेन सहैक्यमवगमयति।

न च दर्शनस्मरणयोरेकाधिकरणता तत्त्वम् तथाप्रतीत्यभावात् तयोः, स्फुटाऽस्फुटावाकारौ बिभ्राणे दर्शन-स्मरणे नैकाधिकरणतामश्नुवीयाताम् सर्वसंविदामेकाधिकरणतापत्तेः। न च तत्र प्रतिभासभेदाद् भिन्नार्थता,

हो जाता, नहीं होता है अत एव वह (प्रत्यभिज्ञान) असत्य है।

### [ स्मृतिसहकृत दर्शन से एकत्व का ग्रहण असम्भव ]

10

आशंका :- स्मृतिउपकृत दर्शन ही तत्त्व यानी एकत्व के ग्रहण में व्यापृत होता है अतः पूर्वक्षण के दर्शन में उस का प्रतिभास नहीं होता क्योंकि उस को स्मृति की सहायता नहीं मिलती।

समाधान :- यह कथन भी निःसार है। कारण, स्मृति उपकृत दर्शन भी एकत्व ग्रहण में सक्षम नहीं, क्योंकि दर्शन का व्यापार सिर्फ वर्तमान अर्थ ग्रहण पर्यन्त ही होता है। इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान में तो वर्तमान अर्थ ही भासता है इसलिये उस का विषय भी वर्तमान अर्थ ही होता है, तत्त्व 15 (= एकत्व) नहीं। जो जिस ज्ञान का विषय ही नहीं वह अन्य (स्मृति आदि) के रहते हुए भी उस ज्ञान में दृग्गोचर नहीं हो सकता, उदा० चक्षुदर्शन अगोचर परिमल गन्धस्मृति के रहते हुए भी चक्षुःप्रत्यक्ष में भासित नहीं होता। एकत्व या एक वस्तु में ही क्षणभेद से घट सके ऐसा पूर्वअपरभाव दर्शन में तो दिखता नहीं, जो अनुभव-विषय नहीं होता उस का स्मरण भी कैसे होगा ? स्मृति में भी पौर्वापर्य का भासन शक्य नहीं। उपरान्त, स्मृति एकत्व का परामर्श भी नहीं कर सकती क्योंकि 20 वर्तमान दर्शन के विषय को वह छूती नहीं। सच ही है कि वर्तमानदर्शनगोचर वस्तुस्वरूप का परामर्श स्मृति स्वयं प्रत्यक्ष नहीं है। जिस को वह छूती नहीं उस के साथ अपने विषय का ऐक्य कैसे वह ज्ञात करेगी ?

### [ एकाधिकरणतारूप अभेद की परिभाषा का प्रतिकार ]

तत्त्व यानी एकत्व या अभेद की ऐसी परिभाषा की जाय — दर्शन और स्मृति की एकाधिकरणता, 25 मतलब, दर्शन एवं स्मरण का विषय एक होता है। — तो यह परिभाषा प्रामाणिक नहीं है क्योंकि उसे सिद्ध करनेवाला कोई अनुभव नहीं होता। दूसरी बात यह है कि दर्शनाकार स्पष्ट होता है जब कि स्मरणाकार अस्फुट होता है अतः उन दोनों की समानविषयतारूप एकाधिकरणता संभव नहीं है। अन्यथा, आकारभेद रहते हुए भी दो ज्ञानों की एकाधिकरणता मान लेंगे तो सकल संवेदनों की एकाधिकरणता मान लेना पडेगा, चाहे उन में कितना भी भेद हो। यदि कहा जाय — दर्शन-स्मरण 30 में जो एकार्थता (एकविषयता) की प्रतीति न हो कर भिन्नार्थता प्रतीत होती है उस का कारण विषयभेद नहीं होता है। — तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि स्फुट और अस्फुट प्रतिभास भेद से दर्शनस्मरण

स्फुटेतरप्रतिभासभेदाद् दर्शन-स्मरणयोरपि भिन्नार्थताप्रसक्तेः—दर्शनं हि साक्षात्करणाकारम् स्मृतिश्च परोक्षाध्यवसायस्वभावेपि (?ति) कथं तयोः प्रतिभासभेदादि(?द)भिन्नार्थत्वम् ? तत्र ताभ्यामपि एकत्वप्रतिपत्तिः ।

नाप्यात्मा एकत्वं प्रतिपद्यते दर्शन-स्मरणाभावे स्वापादावर्थप्रतिपत्तेस्ततो ▲भावात् । दर्शन-स्मरणे च पूर्वापरार्थपरिहारेण प्रवर्तमाने न तयोरेकत्वमधिगच्छत इति न तद्द्वारेणात्मापि तत्त्वमवैति । न चात्मनोऽपि 5 पूर्वापरावस्थयोरेकत्वावगमः पूर्वबोधेन भाविविबोधसम्बन्धिता(न)नुभवात्, उत्तरानुभवेन पूर्ववित्सम्बन्धिता-ऽनवगमात् । अनुभवे वाऽनाद्यनन्तसकलजन्मपरम्परापरिच्छेदप्रसक्तिः । न च शुद्ध एवात्मा स्वसंवेदने प्रति-भाति दृशा परिगतः, तासामप्रतिभासे तद्गतत्वेन तस्याप्यप्रतिभासनादित्युक्तत्वात् । न च दर्शन-स्मरणव्यतिरेके-गान्योऽनुसन्धाता भाति, ते चाऽन्योन्यपरिहारेण स्थिते इति कथमेक आत्मा ? न च दृष्टुः स्वरूपं स्मर्तृरूपतया 'द्रष्टाहं स्मरामि' इति प्रतीतौ प्रतीतिः (?तेः)\* कथं नैक आत्मा ? यतो द्रष्टृस्वरूपं

10 में अर्थभेद भी सुप्रसक्त ही है। दर्शन होता है साक्षात्काररूप, स्मृति होती है परोक्षाध्यवसायस्वरूप, तो सिर्फ प्रतिभासभेद को ही अर्थभेदप्रयोजक कैसे माना जाय ? निष्कर्ष — दर्शन-स्मरण से एकत्व की उपलब्धि असंभव है।

### [ क्या आत्मा एकत्वबोध कर सकता है ? ]

'पूर्वक्षणदर्शन या सविकल्प या स्मृति तो एकत्व का बोध नहीं कर सकती किन्तु आत्मा 15 पूर्वोत्तरक्षणानुगत होने से एकत्वबोध कर लेगा' — ऐसा भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि निद्रादि अवस्था में जब दर्शनोदय नहीं होता, न तो कोई स्मृति होती है तब भी आत्मा मौजूद होने से अर्थभान होने का प्रसंग आयेगा। तथा यह भी नहीं कह सकते कि — 'आत्मा को निद्रादि में अर्थभान नहीं होगा क्योंकि दर्शन-स्मरण के द्वारा ही आत्मा अर्थभान कर सकता है' — क्योंकि दर्शन उत्तर अर्थ ग्रहण नहीं करता एवं स्मृति पूर्व अर्थ को स्पर्श नहीं करती, दोनों में से एक भी एकत्वबोध 20 करता नहीं तो उन के (एक-एक के) द्वारा आत्मा कैसे एकत्वबोध कर पायेगा ?! यदि कहें — 'आत्मा स्वयं पूर्वोत्तर अर्थों के (अवस्थाओं के) एकत्व का अवबोध कर लेगा' — तो यह भी अनुपपन्न है क्योंकि पूर्वक्षणबोध से आत्मा के साथ भाविक्षणबोधसम्बन्धिता का भान हो नहीं सकता, एवं उत्तरक्षणबोध के द्वारा पूर्वबोधसम्बन्धिता भान नहीं हो सकता तब आत्मा से एकत्वबोध होगा कैसे ? फिर भी आत्मा से एकत्वबोध यानी पूर्वापरक्षणसम्बन्धिता का भान मानेंगे, तो अनादिकालीन अनन्तकाल तक 25 की जन्मपरम्परा का भी अवबोध प्रसक्त होगा।

### [ अनेकदर्शनानुगत एक शुद्धात्मा की कल्पना असंगत ]

ऐसा मत कहना कि — 'अनेक दर्शनों में व्याप्त एक शुद्धात्मा ही स्वसंवेदन में भासित होता है अतः एकत्वग्रह संगत है' — क्योंकि अनेक दर्शनों का एक साथ प्रतिभास शक्य न होने के कारण उन में व्याप्त एक आत्मा का अवबोध भी शक्य नहीं है — यह कहा जा चुका है। वास्तव में 30 तो दर्शन और स्मरण के विना और कोई स्वतन्त्र अनुसन्धानकर्ता कभी भासित नहीं होता। दूसरी ओर, यह भी सिद्ध है कि दर्शन और स्मरण एक दूसरे से स्वरूपतः भिन्न भासित होते हैं, फिर

▲. ततोऽभावात् इति पूर्वमुद्रिते। \* . (प्रतीयत इति) इति कोष्ठगतः पाठः पूर्वमुद्रिते।

किं स्मर्तृस्वरूपानुप्रवेशेन<sup>a</sup> प्रतिभाति<sup>b</sup> उताननुप्रवेशेन ?<sup>c</sup> अद्यनुप्रवेशेन तदा द्रष्टृस्वरूपता (स्मर्तृस्वरूपता) वा एकस्य रूपस्येतरत्रानुप्रवेशात्।<sup>b</sup> अधाननुप्रवेशेन तदा द्रष्टृ-स्मर्तृरूपे अन्योन्यं भिन्ने स च नैक आत्मा। न च द्रष्टृ-स्मर्तृरूपो विकार एव भिद्यते नात्मेति, क्रमभाविविकारप्रतिपत्तौ तद्गतत्वेन तस्याप्य(स्यापि) प्रतिपत्तेः विकारव्यतिरेकेण तस्याऽनुपलब्धेरित्युक्तत्वाच्चेति नात्मनोऽप्येकत्वप्रतिपत्तिः।

न च स्मरणोत्तरकालभाविनी 'स एवायम्' इत्यनुसन्धानप्रतिपत्तिरक्षान्वय-व्यतिरेकानुविधायितया 5 प्रत्यक्षं प्रमाणम्; तस्याः प्रत्यक्षत्वानुपपत्तेः। यदि प्रत्यक्षप्रभवेयं भवेत् पौवापर्यं वृत्तिमती न स्यात् अक्षस्य वर्तमाने एव व्यापारात्। न च स्मरणोपदौकिते पूर्वापरभावेऽक्षस्य वृत्तेः तत्प्रभवायास्तस्या तत्र वृत्तिर्युक्ता, अक्षस्य स्मरणोपहितेऽपि पौर्वापर्येऽविषयत्वेनाऽप्रवृत्तेस्तदुद्भवायास्तस्या अपि प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। न ह्युत्पलरूपप्रवृत्तिमदक्षं स्मरणोपनीतेऽपि गन्धादौ प्रतिपत्तिजननम् <sup>▲</sup>(स्मरणम् ?) न च चक्षुषो गन्धाऽविषयत्वात्

अनुसन्धानप्रतीति में दृष्टा का स्वरूप ही यादकर्ता के रूप में भासित होने से, एक आत्मा क्यों न 10 माना जाय ?' — तो यह ठीक नहीं, क्योंकि दो प्रश्न खड़े होंगे — 'याद कर्ता के स्वरूप से अनुविद्ध दृष्टा का भास होता है या <sup>b</sup>अननुविद्ध ? पहले विकल्प के स्वीकार में दो नहीं कोई एक ही दृष्टारूपता या स्मर्तृरूपता शेष रहेगी क्योंकि अन्यरूपता तो एक में प्रविष्ट (अन्तर्हित-तिरोहित) हो गयी। यदि दूसरा विकल्प स्वीकारें तो सिद्ध होगा कि दृष्टा अलग है और स्मर्ता अलग है — तो एक आत्मा कैसे सिद्ध हुआ ? 15

यदि कहें — द्रष्टृ और स्मर्तृ यह तो एक ही आत्मा के दो भिन्न विकार (= अवस्था) है, विकार भेद से आत्मा का ऐक्य बाधित नहीं होता — यह ठीक नहीं है। दोनों विकार क्रमिक आविर्भूत होते हैं तो तद्गत आत्मा भी क्रमिकता से अस्पृष्ट कैसे रहेगी ? सच तो यह है कि अनुभव में विकार के अलावा स्वतन्त्र आत्मा का उपलम्भ तो होता नहीं — यह पहले कह दिया है, अतः आत्मा 20 के ऐक्य का स्वीकार असम्भव है।

### [ अभेदप्रत्यभिज्ञा से एकत्व सिद्धि की आशंका का उत्तर ]

आशंका :- आत्मा के एकत्व का साधक प्रत्यक्ष प्रमाण सुनिये — पूर्वदर्शन एवं उत्तरक्षण में स्मृति के उत्तरक्षण में होनेवाली 'वही है यह' ऐसी अभेदानुसन्धानकारक प्रतीति, इन्द्रिय के अन्वय-व्यतिरेक का अनुमान करनेवाली होने से प्रत्यक्ष प्रमाणरूप है।

उत्तर :- नहीं, उस प्रतीति में प्रत्यक्षत्व की संगति नहीं बैठती। यदि यह प्रतीति प्रत्यक्ष प्रमाण 25 जन्य होती तो पूर्वोत्तर का अनुसन्धान करने में प्रवृत्तिमत् नहीं हो सकती, क्योंकि प्रत्यक्ष में इन्द्रिय का व्यापार सिर्फ वर्तमान एक क्षण के लिये ही सीमित होता है, अतीतक्षण उस की पहुँच के बाहर है।

आशंका :- अतीत क्षण भले अविद्यमान है, किन्तु क्षणों का पूर्वापरभाव स्मृति के द्वारा इन्द्रिय को दौकित किया जाता है तब उस में भी इन्द्रिय-प्रवृत्ति घट सकती है, अतः इन्द्रियजन्य प्रतीति में पूर्वोत्तरभावप्रहणप्रवृत्ति घट सकती है। 30

उत्तर :- यह भी असंगत है। एक तथ्य सुनिश्चित है कि पूर्वोत्तरभाव इन्द्रियगोचर नहीं है सिर्फ

▲. 'प्रतिपत्तिजननसमर्थम्' इत्यनुमानं भूतपूर्वसम्पादकयुगलस्य।

न (च ?) तत्र लोचनसंवित्प्रसवः स्मरणोपनीतपौर्वापर्येऽप्यक्ष(1)विषयत्वस्य तुल्यत्वात्। अथ कथमक्षव्यापार-  
नन्तरं प्रत्यभिज्ञा उदयमासादयति यद्यक्षप्रभवा न भवेत् ? न, तत्र सति पुरोव्यवस्थितवस्तुदर्शने पूर्वदृष्टे  
स्मृतेरुदयात्। यथा, दूरव्यवस्थितचन्दनाद्यर्थदर्शनाद् गन्धस्मृतेः 'सुरभि चन्दनम्' इति प्रतिपत्तिः।

न च लोचनाऽविषयत्वाद् गन्धस्य तद्विशिष्टं(ष्ट)चन्दनप्रतिपत्तिस्तद्गत रूपदर्शनाल्लिंगप्रभवेति  
5 वक्तव्यम् — प्रकृतेऽपि समानत्वात्। तथाहि — वर्तमानदर्शनात् पूर्वकालाद्यनुस्मरणात् तद्विशिष्टपुरोव्य-  
वस्थितार्थप्रतिपत्तिरानुमानिकी पूर्वकालादिसम्बन्धितायास्तदा प्रत्यस्तमयतोऽक्षाऽगोचरत्वात् तामध्यवसन्ती  
प्रत्यभिज्ञा कथं प्रत्यक्षतामनुभवेत् ? अन्यथा परोक्षप्रतिपत्तेः सर्वस्याः प्रत्यक्षताप्रसक्तिः। अथ परोक्षाकारैव  
प्रतीतिरप्रत्यक्षा, प्रत्यभिज्ञा तु पूर्वदृग्गादियोगित्वे परोक्षाकारा वर्तमानत्वे प्रत्यक्षाकारेति स्मरणाध्यक्षरूपेण

वर्तमानक्षण ही इन्द्रियगोचर होता है।) अतः लाख बार स्मृति पूर्वोत्तरभाव का ढौकन करे उस से  
10 क्या ? इन्द्रिय की उस के ग्रहणार्थ प्रवृत्ति स्वीकारार्ह ही नहीं है, अतः इन्द्रियजन्य प्रतीति की भी  
पूर्वोत्तरभावग्रहणार्थ प्रवृत्ति संभव नहीं है। कमल के रूप के ग्रहण में प्रवृत्त इन्द्रिय सुगन्ध की उपलब्धि  
करने के लिये कभी सक्षम नहीं होती, चाहे वहाँ स्मरण से सुगन्ध की उपस्थिति रहे तो भी।

आशंका :- सुगन्ध चक्षु का गोचर नहीं है अतः चाक्षुषज्ञान उस का नहीं हो सकता।

उत्तर :- यह कथन इसलिये अनुचित है कि पौवापर्य के लिये भी यह दलील तुल्य है कि वह  
15 इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का गोचर नहीं है इसलिये प्रत्यक्ष से उस का भान असम्भव है, भले वह (=पौवापर्य)  
स्मृति से उपस्थित हो।

प्रश्न :- यदि प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य नहीं है तो इन्द्रिय व्यापार के बाद ही प्रत्यभिज्ञा  
का उदय क्यों होता है ?

उत्तर :- नहीं होता। वहाँ तो पुरोवर्ती विषय का दर्शन पहले होता है, बाद में प्रत्यभिज्ञा का  
20 नहीं किन्तु पूर्वदृष्ट क्षण का स्मरण उदित होता है। जैसे — पहले दूरवर्ती चन्दन आदि अर्थ का  
दर्शन होता है, बाद में सुगन्ध का स्मरण होता है तब 'सुगन्धि चन्दन' ऐसा अध्यवसाय होता है।

[ लिङ्गजन्य 'सुरभि चन्दन' प्रतीति की तुल्यता प्रत्यभिज्ञा में ]

ऐसा नहीं कहना — गन्ध नेत्र का विषय नहीं है अतः नेत्रप्रयोग के बाद 'सुगन्धि चन्दन'  
ऐसी बुद्धि जो होती है वह प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु चन्दनरूप को देखने के बाद सुगन्ध के साथ व्याप्ति  
25 के स्मरण से वहाँ रूपहेतुक सुगन्धानुमिति होती है। — इस के प्रतिकार का कारण यह है 'वही  
है यह' यह प्रतीति भी हेतुजन्य अनुमिति ही होती है, क्योंकि पूर्वापरभाव तो नेत्र का विषय नहीं  
है जिस से कि वह प्रत्यक्ष कहा जा सके। स्पष्ट देखिये — वर्तमान क्षण को देखने के बाद सादृश्यादि  
के कारण पूर्वक्षण की स्मृति झलक उठती है, तब पूर्वभावविशिष्ट वर्तमानपुरोवर्तीभाव का अनुमान  
बोध उदित हो जाता है, वहाँ फिर पूर्वकालादिसंसर्ग का अस्त हो जाने से इन्द्रियगोचरता न रह  
30 पाने से उस को अध्यवसित करने वाली प्रत्यभिज्ञा का उदय होता है किन्तु इन्द्रियजन्य न होने के  
कारण वह प्रत्यक्षात्मक क्यों मानी जाय ? यदि आग्रह करेंगे तो सकल परोक्ष ज्ञान को प्रत्यक्ष मानने  
का अनिष्ट खडा होगा।

एका प्रतीतिः। नैतदेवम् — आकारद्वयाऽयोगाद् एकवस्तुन आकारलक्षणत्वात् तद्भेदे ज्ञानस्यापि भेदात् अन्यथा परोक्षाऽपरोक्षाकारभेदेऽपि स्मरणदर्शनयोरभेदप्रसक्तिर्भवेदिति सर्वमपि ज्ञानं स्मृतिः प्रत्यक्षं वा भवेत् — प्रथमपक्षेऽस्पष्टप्रतिभासप्रसक्तिः। द्वितीये तु सर्वप्रतिभासो विशदः स्यात्। न च स्मरण-दर्शनयोर—स्पष्ट-स्पष्टप्रतिभासभेदाद् भेदः — प्रत्यभिज्ञानेऽपि 'स' इति पूर्वोल्लेखस्या(स्पष्ट)प्रतिभासतया 'अयम्' इति वर्तमानोल्लेखः(?)स्य) स्पष्टप्रतिभासभेदाद् भेदस्य न्यायप्राप्तत्वात्।

5

न च 'स एवायम्' इत्येकत्वाध्यवसायादेकत्वम्, यतः किं पूर्वापरध्यवसायस्यैकत्वम्, यद्वा अध्यवसाय-मानस्य ? न तावदाद्यः पक्षः, अन्योन्यरूपविवेकेन पूर्वापरयोरवभासनात्। तथाहि— 'सः' इति पूर्व-रूपाध्यवसायो वर्तमानरूपाध्यवसायविविक्तः प्रतिभाति, 'अयम्' इति च वर्तमानाकारावभासः पूर्वावभासभिन्नतनुराभाति, परस्पररूपानुप्रवेशे वा 'सः' इति वा प्रतिभासः स्यात् 'अयम्' इति वा, तथा

आशंका :- जो परोक्षाकार ही होती है वह प्रतीति परोक्ष होती है, प्रत्यभिज्ञा यदपि पूर्वदृष्टादि के योग से परोक्षाकार होने पर भी वर्तमानक्षणस्पर्शी भी होने से प्रत्यक्षाकार होती है, अत एव स्मरण-प्रत्यक्षरूप एक ही प्रत्यभिज्ञा है।

10

उत्तर :- बात ठीक नहीं है, आकार सिर्फ एक ही वस्तुरूप होता है (मतलब प्रत्येक वस्तु सिर्फ एकाकार होती है) अतः दो आकारवाली कोई वस्तु के न होने से यहाँ वस्तुभेद मानना पड़ेगा, फलतः ज्ञान भी भिन्न भिन्न मानना पड़ेगा। अगर आकारभेद (वस्तुभेद) रहने पर भी ज्ञान में भेद नहीं मानेंगे तो परोक्ष-अपरोक्ष आकारभेद के रहते हुए भी ज्ञान में भेद नहीं मानेंगे, तो दर्शन-स्मरण (मिश्र) भी एक अभिन्न प्रतीति मान लेनी पड़ेगी, फलतः दो तो नहीं रहेंगे अतः या तो स्मरण सत्ता बचेगी या दर्शन सत्ता रहेगी। यदि सिर्फ स्मरणसत्ता ही मानेंगे तो सर्वत्र अस्पष्टाकार प्रतिभास आ पड़ेगा, यदि दर्शनसत्ता मानेंगे तो सभी बोध स्पष्टाकार मानने का अनिष्ट प्रसक्त होगा।

15

यदि कहें कि — 'स्मरण-दर्शन में तो भेद स्वीकारते हैं क्योंकि एक अस्पष्टाकार है, दूसरा स्पष्टाकार है।' — तो यह न्याय नहीं है, क्योंकि प्रत्यभिज्ञा में भी तब प्रतिभासभेदमूलक भेद न्यायोचित मानना होगा, क्योंकि यहाँ 'वह' ऐसा पूर्वक्षणउल्लेख अस्पष्ट प्रतिभासरूप है और 'यह' ऐसा वर्तमानउल्लेख स्पष्ट प्रतिभास रूप है।

20

### [ एकत्वाध्यवसाय बल से प्रत्यभिज्ञा - एकत्वसिद्धि दुर्गम ]

आशंका :- प्रतिभासभेद के रहते हुए भी 'वही है यह' इस ढंग के एकत्वाध्यवसाय से ही दर्शन-स्मरणादि का एकत्व सिद्ध हो सकता है (यानी प्रत्यभिज्ञारूप एक ज्ञान सिद्ध होगा)।

25

उत्तर :- बात ठीक नहीं, आप किस के एकत्व को सिद्ध कर रहे हो ? Aपूर्वापर अध्यवसाय के एकत्व को या Bअध्यवसायकर्मभूत विषयों के एकत्व को ? Aपहला पक्ष गलत है क्योंकि पूर्व-अपर का एक-दूसरे से भिन्नतया अवभास होता है। कैसे यह देखिये — 'वही है यह' इस प्रतीति में 'वह' इस उल्लेख से पूर्वरूप-अध्यवसाय अपर यानी वर्तमानरूप अध्यवसाय से पृथग् ही भासित होता है। 'यह' ऐसे उल्लेख से वर्तमानरूप का अवबोध पूर्वरूप प्रतिभास से पृथग् ही लक्षित होता है। यदि उन दोनों का पूर्वोक्तकथनानुसार अन्योन्यानुविद्ध एक रूप से भान होता तो 'वह' इस ढंग

30

च कुतः 'स एव०' इत्येका प्रत्यभिज्ञा ? परस्परव्यतिरेके च परोक्षाऽपरोक्षप्रतिभासयोर्भेद एवेति कथमेका प्रत्यभिज्ञा ? नाप्यवसीयमानस्याऽभेदः, अवसायभेदे तदवसीयमानस्यापि भेदात्।

- न च 'स एवायम्' इति व्यवहारैकत्वादेकत्वम्, यतो व्यवहारो <sup>A</sup>ज्ञानम् <sup>B</sup>अभिधानम् <sup>C</sup>प्रवृत्तिर्वा ? तत्र यदि ज्ञानम् तत्राप्यविकल्पम् स्मृतिः कल्पना वा ? यदि <sup>a</sup>निर्विकल्पकम् तत् पूर्वापरकालभावि भिन्नमेव
- 5 — एककालमपि पूर्वापरार्थग्राहि प्रतिभासभेदाद् भिन्नम्। अथ <sup>b</sup>स्मृतिः, सापि दर्शनाद् भिन्नेव कथं तदर्थस्यैकत्वं साधयति ? न च पूर्वदर्शनविषयवृत्तिः स्मृतिः, तद्विषयत्वस्य तत्राऽसिद्धेः। तथाहि— न तावद् दर्शनात् स्मृतेः तद्विषयत्वं सिध्यति दर्शनकाले स्मृतेरभावात्, तदभावे च न तदर्थवेदनं ततः सिध्यति। नापि स्मृतेरेकार्थता वृत्तिः तत्काले दर्शनस्याभावात्, तद्भावे वा स्मृतेरयोगात्। न हि दर्शनावस्थायां स्मृतिरुदयवती उपयोगवती वा, दर्शनादेवार्थप्रतिपत्तेः। ततो दर्शनकालपरिहारेण प्रवर्तमाना
- 10 स्मृतिर्न दर्शनार्थविषयतामात्मनोऽधिगन्तुं समर्था। अस्पष्टप्रतिभासा च स्मृतिः कथं स्पष्टप्रतिभास-

- से अथवा 'यह' इस ढंग से, किसी एक रूप से ही अवबोध होता 'वही यह' ऐसे द्विविधरूप से नहीं। फिर 'वही है यह' ऐसी एकज्ञानात्मक प्रत्यभिज्ञा को अवकाश कहाँ है ? अन्योन्यानुबिद्धरूप से प्रतिभास को न मान कर परस्पर पृथग् रूप से ही मानेंगे तब तो स्पष्टास्पष्ट — प्रत्यक्ष/परोक्ष प्रतिभासों का भेद अनायास सिद्ध हो गया फिर प्रत्यभिज्ञा एक अखंड कैसे ? <sup>B</sup>अध्यवसायकर्मों का
- 15 अभेद मानेंगे तो वह भी गलत है क्योंकि जब उपरोक्त ढंग से अध्यवसायों का भेद सिद्ध हुआ तो उन के कर्मों का भेद ही प्रसिद्ध होगा।

### [ व्यवहार एकत्वबल से प्रत्यभिज्ञा एकत्वसिद्धि अशक्य ]

आशंका :- एकत्वाध्यवसाय को जाने दो व्यवहार-एकत्व के बल से हम 'वही है यह' इस व्यवहार से एकत्व की सिद्धि करेंगे।

- 20 उत्तर :- नहीं। व्यवहार क्या है ? <sup>A</sup>ज्ञान है ? <sup>B</sup>अभिधान है ? या <sup>C</sup>प्रवृत्तिरूप है ? <sup>A</sup>प्रथम विकल्प :- ज्ञान कौनसा ? <sup>a</sup>निर्विकल्प ? <sup>b</sup>स्मृति ? या <sup>c</sup>कल्पनारूप ? <sup>a</sup>यदि निर्विकल्प ज्ञान लेंगे तो पूर्वापरकालभावि निर्विकल्प तो पृथग् ही होता है। समानकाल भावि निर्विकल्प ज्ञान भी पूर्वापर अर्थग्राहक होगा तो प्रतिभासभेद से पृथक्-पृथक् सिद्ध होगा। <sup>a-2</sup>यदि स्मृतिरूप ज्ञान लिया जाय तो, यदि दर्शन से वह भिन्न है तो दर्शनविषय से स्मृतिविषय का एकत्व स्मृति के द्वारा कैसे सिद्ध
- 25 होगा ? स्मृति पूर्वक्षण के दर्शन के विषय को छूती नहीं है, क्योंकि स्मृति में दर्शनविषयविषयकत्व सिद्ध नहीं है। देखिये— दर्शन से तो यह सिद्ध नहीं हो सकता कि स्मृति दर्शनविषयविषयक है, क्योंकि दर्शनक्षण में स्मृति (धर्मी) मौजूद नहीं थी, उस के विरह में स्मृति रूप धर्मी में दर्शनविषयविषयकत्व धर्म, दर्शन से सिद्ध नहीं हो सकता। स्मृति दर्शनविषय के साथ अपने विषय की एकार्थता के ग्रहण में तत्पर नहीं हो सकती क्योंकि स्मृति क्षणकाल में दर्शन ही मौजूद नहीं, यदि उस क्षण में दर्शन
- 30 है तो स्मृति नहीं रहेगी। विदित है कि दर्शनावस्थाकाल में न तो स्मृति का उदय होता है, न तो उस का उपयोग, क्योंकि अर्थावबोध तो दर्शन से ही चरितार्थ है। निष्कर्ष :- दर्शन को छोड़कर भिन्नकाल में रहनेवाली स्मृति दर्शनग्राह्यअर्थविषयता का स्व में प्रकाश करने के लिये सक्षम नहीं है। यह भी

दृग्विषयमर्थमधिगच्छति ? इति न तदर्थविषया स्मृतिवृत्तिः सिद्धाः, प्रतिभासभेदस्य भेदकत्वात् अन्यथा भेदोच्छेदप्रसक्तिरित्युक्तत्वात् ।

न च कल्पनाप्येका व्यवहृतिः, यतः पूर्वापरवभासा ('स एव) अयम्' इत्युल्लेखवती सापि भिन्नैवेत्युक्तम् ।<sup>B</sup>अभिधानमपि 'सः' इति 'अयम्' अपि च भिन्नम् भिन्नार्थं च प्रतिभाति, एकार्थत्वे पर्यायताप्रसक्तेः । तत्र अभिधाप्येका व्यवहृतिः । प्रवृत्तिस्तु क्रियारूपत्वात् पूर्वापरभाविनी भिन्नैवेति कुतो 5 व्यवहारैकत्वादप्येकत्वम् ?

अथैकत्वाध्यवसायः 'स एवायम्' इति, संवादश्च तत्र विद्यते एवेति कथं न तत्र प्रत्यभिज्ञा प्रमाणम् ? उच्यते, प्रतिभास एवाध्यवसाय-संवादौ प्रतिसच्चन्ये (प्रतिभासान्यत्वे) वा सकल एक निरस्तपूर्वापरभावः स्वावधिकमर्थं वेत्ति भिन्नकालावधेस्तस्य संवेदनाऽसम्भवात् । तथाहि — संवेद्यमानरूपसद्भावे वस्तु संवेद्यते वेदनकाल एव च संवेद्यमानं रूपमस्ति, कालान्तरे तस्य सद्भावाभ्युपगमे स्वत एव संवेदनत्वप्राप्तेः (?) 10

सोचिये कि अस्पष्ट अर्थभासवाली स्मृति स्पष्ट प्रतिभासवाले दर्शन के विषयभूत अर्थ को छूने का साहस कैसे कर सकती है ? निगमन :- दर्शनग्राह्यअर्थविषयतारूप तत्परता स्मृति में सिद्ध नहीं है क्योंकि प्रतिभासभेद ही ग्राह्य विषय के भेद को सूचित कर देता है। ऐसा नहीं मानेंगे तो भेदकथा को उच्छेद का संकट होगा यह पहले कहा जा चुका है।

a-3कल्पनाज्ञान भी एक व्यवहारात्मक नहीं है। कारण, वह भी 'वही है यह' इस तरह पूर्वापर 15 की अवभासक होने से स्मृति की तरह एकात्मक नहीं किन्तु स्मृति की तरह भिन्न भिन्न प्रतिभासरूप ही हो सकती है।

bव्यवहार को यदि एक अभिधान (नामनिक्षेप) रूप माना जाय तो वह संभव नहीं क्योंकि 'सः' पद और 'अयम्' पद दोनों पृथग् एवं अलग अर्थवाले भासित होते हैं। उन्हें यदि एक माना जाय तो पर्यायशब्द बन जाने का प्रसंग होगा। अतः अभिधानरूप व्यवहार भी एकात्मक नहीं है। प्रवृत्ति 20 तो पूर्वापरभाविनी पृथक् पृथक् क्रिया स्वरूप होने से एक नहीं हो सकती, भिन्न ही हो सकती है। आखिर यह प्रश्न तदवस्थ रह गया कि व्यवहार के एकत्व से प्रत्यभिज्ञा का एकत्व कैसे ?

### [ एकत्वग्रहण और संवाद से प्रत्यभिज्ञा प्रमाण - आशंका ]

आशंका :- 'वही है यह' यह तो एकत्वग्राहि अध्यवसाय ही है, उपरांत एक वस्तु की प्राप्तिरूप संवाद भी उस का समर्थक है तो फिर एकत्वसिद्धिकारक यह अध्यवसाय यानी प्रत्यभिज्ञा प्रमाण क्यों 25 नहीं ?

उत्तर :- ये अध्यवसाय और संवाद सिर्फ प्रतिभासमात्र है, सभी प्रतिभास प्रमाण नहीं होते। यदि यह मिथ्याप्रतिभास से भिन्न है तो वैसा सम्पूर्ण अध्यवसाय पूर्वापरभाव को न छूता हुआ सिर्फ स्वसंनिहित अर्थ को ही ग्रहण कर सकता है, भिन्नकालीन असंनिहित अर्थ का संवेदन उस से संभव नहीं। देखिये— संवेदन में भासनेवाली वस्तु वर्तमान में सद्भूत होने पर ही उस का वेदन होगा, 30 अथवा जिस काल में वस्तु का दर्शनात्मक संवेदन होता है उसी काल में उस वस्तुरूप की सत्ता संगत होगी। अन्य काल में उस का संवेदन मानने पर तो अपने आप फलित होगा कि वह मिथ्या



तत्त्वसंवेदनसमयाध्यासितमेव सर्वमाभाति नान्यसमयादियोगि अन्यकालादियोगिनोऽपि तदा प्रतिभासने तदैव प्रकाशरूपसद्भावः इति वर्तमानैव पूर्वकालादियोगतो भवेत् नातीता। प्रकाशमानरूपविरहे च न तदा पूर्वकालादियोगितायाः प्रतिभासनमित्येकत्वस्यानुपलब्धेर्न प्रत्यभिज्ञा कथंचिदपि सम्भविनी। न च संवादेऽप्येकत्वे सिद्धः, स हि तदर्थज्ञा(?)न्तरवृत्तिः म(न)रैकत्वे पुनः ज्ञानवृत्तिः इत्युक्तम्। तज्जातीये तु पुनर्दर्शनं प्रवर्तते तदैव च संवादात् समभिमानो लोकस्य तत्त्वाध्यवसायात्।

तथाहि — ‘स एवायम्’ इति तदर्थक्रियाकारी अयं भावः इत्युच्यते तदर्थकारित्वं च भिन्नस्याप्युपलब्धम् यथा चक्षुरादेस्तज्ज्ञानजननम् तत्रैव च ‘स एवायम्’ इति भेदेऽप्येकत्वव्यवहारः अथवा पूर्वापरदर्शनाभ्यां परस्परपरिहारेण प्रवृत्ताभ्यामेकत्वलक्षणस्य तदर्थस्य बाधितत्वादनादिकाला भ्रान्तिरेव प्रत्यभिज्ञा। तत्र क्षणिकाभिव्यक्तिषु शब्दमात्रासु निर्विकल्पकप्रत्यभिज्ञावसितं स्थैर्यम् निर्विकल्पकस्य सविकल्पकस्य वा

- 10 संवेदन है, क्योंकि वस्तुमात्र स्वतत्त्वसंवेदनकालनिष्ठ ही भासित होती है, अन्यकालसंयोगी हो कर नहीं, क्योंकि अन्यकालादिसंयोगिरूप से यदि विवक्षितकाल में वह उद्भासित होगी तो वह सिर्फ अन्यकाल में ही प्रकाशात्मना सद्भूत मानी जायेगी, तब तो वह अन्यकालादिसंयोग ही वर्तमानता हो कर रहेगी, न की अतीतता।

### [ पूर्वकालयोगिता- एकत्व-प्रत्यभिज्ञा बेबुनियाद ]

- 15 अगर कहें कि अन्यकालादिसंयोग में कोई प्रकाशमानरूप (वर्तमानता) नहीं है, तो प्रकाशविरह के कारण पूर्वकालादियोगिता का प्रतिभासन भी नहीं हो सकता, फलतः एकत्व का उपलम्भ भी न होने से प्रत्यभिज्ञा का आविर्भाव भी क्यों कर संभव होगा ? एकत्व की सिद्धि संवाद से होने की बात भी असिद्ध है। (स हि तदर्थान्तरवृत्ति एकत्वं पुनः ज्ञानवृत्तिः इत्युक्तम् — ऐसी पाठकल्पना करने से कुछ संगति बैठेगी) संवाद तो अन्य अर्थ में प्रवृत्तिशील है और एकत्व तो ज्ञानवृत्ति है, तो अन्यार्थवृत्ति
- 20 संवाद एकत्व का समर्थन क्यों कर करेगा ? दर्शन भी पुनः पुनः एक ही अर्थ में प्रवृत्त नहीं होता, वह तो तज्जातीय अन्य अर्थ में जब प्रवृत्त होता है, उसी समय तज्जातीय-रूपता में संवाद होने से दृष्टा लोग को ऐसा अभिमान होता है कि मैं पूर्वदृष्ट (तत्त्व) को अध्यवसित करता हूँ। देखिये — ‘स एवायम्’ ऐसी जो बुद्धि तज्जातीय विषय में होती है उस का मतलब है कि तदर्थसाध्यार्थक्रियासाधक यह (वर्तमान) अर्थ है। तद् (पूर्वकालीन) अर्थसाध्य क्रिया ‘तत्’ (पूर्वकालीन) अर्थ से ही सिद्ध हो
- 25 ऐसा कोई नियम नहीं है, तज्जातीय अन्य अर्थ से भी वह सिद्ध हो सकती है — यह अनुभवगोचर है। जैसे :- तदर्थ के अलावा चक्षु आदि भी तदर्थजन्य ज्ञान के उत्पादनकारी होते हैं। तब ज्ञानोत्पादक होने से वहाँ चक्षु और अर्थ में भेद के रहते हुए भी ‘वही है यह’ ऐसा एकत्व व्यवहार यथा- तथा प्रवृत्त होता है जो यथार्थ नहीं होता। अथवा यह भी ध्यान देने पात्र है कि पूर्व-अपर दर्शन अन्योन्य विषय के परिहार करते हुए ही प्रवृत्त होते हैं, अन्योन्य विषय को छूते ही नहीं, तो फिर
- 30 एकत्वरूप अर्थ में प्रवृत्ति स्पष्टतया बाधित होने से यही फलित होता है कि एकत्वाध्यवसायिनी अनादिकालीनवासनाजन्य प्रत्यभिज्ञा भ्रान्ति के अलावा कुछ नहीं है।

अतः यह सिद्ध होता है कि क्षणमात्रप्रकाशी शब्दतत्त्वों में कतई स्थैर्य नहीं है जो कि

प्रत्यभिज्ञानस्य प्रामाण्याऽसिद्धितत्त्वस्याऽसाधकत्वात्। तन्न प्रत्यक्षविरोधमनुभवन्ति क्षणभङ्गवादिनः।

यदपि 'नाशस्य कारणाधीनत्वादसंनिहिते (त) कारणस्य घटादिषु अनुदयात् विनाशकारणात् प्रागग्नि-  
वृत्तरूपा एव घटादयः' (१०-११) तदपि प्रतिक्षणध्वंसिताभावे सर्वसामर्थ्याभावलक्षणस्याऽसत्त्वस्य भावात्  
स्वरसविनाशितया [?नापि संयोगाद् विनाशमनुभवन्ती(ध्व?न्ध)नादय इति ??] प्रतिविहितमेव। तथापि  
किंचिद् उच्यते— तत्रेन्धनादीनामग्निसंयोगावस्थायां त्रितयमुपलभ्यते तदेवेन्धनादि, कश्चिद् विकारः, तुच्छ- 5  
रूपस्वभावः कल्पनाज्ञानप्रतिभासी। तत्राग्न्यादीनां क्व व्यापार इति वक्तव्यम्। न तावद् इन्धनादिजन्मनि,  
स्वहेतुत एवैषामुत्पत्तेः। नाप्यङ्गारादौ, विवादाभावात्, अग्न्यादिभ्यश्चाङ्गाराद्युत्पत्ताविन्धनादेरनिवृत्तत्वात्  
तथैवोपलब्ध्यादिप्रसङ्गः। न चाङ्गारादिभ्यः काष्ठादेर्ध्वसान्नायं दोषः, ततो वस्तुरूपापरध्वंसोपगमेऽपि  
काष्ठादेस्तदवस्थात् पुनरपि स्वार्थक्रियानिवृत्तेर्वन्नक(?)प्रसक्तिः। ततोऽप्यपरतथाभूतध्वंसोत्पत्त्यभ्युपगमेऽप्य-  
नवस्था वाच्या। 10

निर्विकल्पप्रत्यभिज्ञा से गृहीत होने का दावा किया जाता है। सच यही है कि प्रत्यभिज्ञा का प्रामाण्य  
सिद्ध नहीं होता, चाहे वह निर्विकल्प मानी जाय या सविकल्प, क्योंकि प्रत्यभिज्ञा एकत्व की स्थैर्य  
की सिद्धि करने में सक्षम नहीं है।

निष्कर्ष, क्षणभङ्गवाद को प्रत्यक्षविरोध का कोई स्पर्श नहीं है।

### [ नाश की सहेतुकता का निरसन ]

यह जो पहले कहा था (१०-३०) — 'विनाश सहेतुक ही होता है, नाशकारण जब तक सम्पर्क  
में नहीं आते तब तक घटादि में नाश का उदय नहीं होता, अतः नाशकारणोपस्थिति के पूर्व में  
घटादि कुछ काल तक अवस्थित रहते हैं।' — वह भी निरस्त हो जाता है, क्योंकि (पाठ तो अशुद्ध  
है फिर भी कुछ संगति कर के पढना) इन्धनादि को प्रतिपल विनाशी नहीं मानेंगे तो उन में  
सर्वशक्तिशून्यतारूप असत्त्व प्रसक्त होगा, क्योंकि असत् का प्रतिपल विनाश नहीं होता है — सत् का 20  
होता है। तात्पर्य, सभी भाव स्वरसपूर्वक यानी निसर्गतः प्रतिपलविनाशी होते हैं, अग्नि के संयोग  
से इन्धनादि का नाश होता है यह गलत है। पहले बहुत कह चुके हैं, कुछ यहाँ भी कहते हैं—

अग्निसंयोग के काल में इन्धनादि की संभवित कल्पना से तीन अवस्था हो सकती हैं —

१ — इन्धनादि तदवस्थ ही रहे। २ — कुछ विकार प्राप्त करें। ३ — कल्पनाज्ञान से कल्पित  
तुच्छदशापन्नस्वभाव। अब बोलिये कि अग्नि आदि (तथाकथित नाशकारणों) का यहाँ कौनसा योगदान 25  
(= व्यापार) है ? १ — क्या वे इन्धनादि की उत्पत्ति करेंगे ? नहीं, इन्धनादि की तो अपने हेतुसमुदाय  
से ही उत्पत्ति होती है। २ — अग्निसंयोग से अंगारादि विकार का सृजन होने में तो कोई विवाद  
ही नहीं। दूसरी बात, अंगारादिविकार की उत्पत्तिकाल में यदि इन्धनादि की निवृत्ति मानेंगे या नहीं  
मानेंगे ? अगर नहीं मानेंगे तो काष्ठादि सद् रूप से तदवस्थ उपलब्ध हो सकेंगे। यदि कहें कि  
— 'हम अंगारादि से काष्ठादि की निवृत्ति (ध्वंस) मानेंगे तब कोई दोष नहीं लगेगा।' — तो भी 30  
गलत है क्योंकि उस ध्वंस को वस्तुरूप मानेंगे तो अग्नि से एक स्वतन्त्र कार्यरूप वस्तुस्वरूप ध्वंस  
भले उत्पन्न हो, काष्ठादि को क्या ? वे तो तदवस्थ ही रहेंगे और पुनः पुनः अपना कार्य करते

अथ भावान्तरमेव प्रध्वंसाभावः नापरः तत् कथं काष्ठादेस्तथोपलब्ध्यादिप्रसङ्गः ? नैतदेवम्— यतः  
 'काष्ठादेरङ्गारादिरेव ध्वंसो नाऽपरः' इत्यत्र किञ्चिन्निबन्धनं वाच्यम्। 'तस्मिन् सति तन्निवृत्तिरिति चेत् ?  
 न, तुच्छस्वभावनिवृत्त्यनङ्गीकरणेऽङ्गारादिकमेवार्थान्तरं निवृत्तिशब्देनोक्तम्। ततश्चायं वाक्यार्थः— अङ्गा-  
 रादिभावभावात् काष्ठादेरङ्गारादिकं ध्वंस इति। न चाङ्गारादिभावेऽङ्गारादिभावः<sup>▲</sup> स्वात्मनि हेतुत्वविरोधात्  
 5 अप्रस्तुताभिधानं च प्रसक्तम् अस्त्या(?न्या)दिभ्यस्तदुत्पादाभिधानात्। काष्ठादीनां निवृत्तो प्रस्तुतायामर्थान्तरविधाने  
 तेषामनिवर्तनात्।

यदप्यभ्यधायि (११-८) 'बुद्धिप्रदीपादयो येऽप्यनु(प)जातविकारा ध्वंसमासादयन्ति तेऽप्यात्माऽ-  
 व्यक्तरूपा(पतां) विकारान्तरमेव ध्वंसमनुभवन्ति' इति, तदप्यसङ्गतम्, बुद्ध्यादीनामात्मरूपविकारापत्तौ  
 प्रमाणाभावात्, आत्मनश्चाऽसत्त्वात् कथं तद्वृत्ता बुद्ध्यादीनां विकारः ? 'न च परिणामः सम्भवति'  
 10 इति प्राक् प्रतिपादितम्। प्रदीपादेस्तु अव्यक्तभावः कार्यदर्शनानुमेयः तस्यातीन्द्रियत्वात्। न च ध्वस्तस्य  
 रहेंगे यह प्रसंग अनिष्ट होगा। पुनः पुनः अग्नि आदि से नये नये ध्वंस की उत्पत्ति चलती रहेगी  
 तो अनवस्था दोष होगा।

यदि कहें — 'काष्ठादि का ध्वंस तुच्छ नहीं किन्तु उत्तरभाव (भस्मादि) रूप हैं, अतः भस्मादि  
 ही उपलब्ध होंगे, काष्ठादिउपलब्धि तदवस्थ होने का प्रसंग कैसे होगा ?' — यह भी यथार्थ नहीं  
 15 है। कारणः काष्ठादि का ध्वंस अंगारादिस्वरूप ही है अन्यस्वरूप नहीं — ऐसा मानने के लिये कोई  
 आधार कहना चाहिये। यदि 'काष्ठादि के रहने पर अंगारादि निष्पन्न होते हैं' ऐसा अन्वयप्रसंग दिखायेंगे  
 तो वह ठीक नहीं है क्योंकि निवृत्ति या ध्वंस को तुच्छस्वरूप न मान कर आपने तो अर्थान्तर रूप  
 अंगारादि (या भस्मादि) को ही निवृत्तिशब्द से स्वीकार लिया। फलस्वरूप वाक्यार्थ यह हुआ — काष्ठादि  
 के रहने पर ही अंगारादिभाव का भाव (सत्ता) होने के कारण अंगारादि ही उस का ध्वंस है। 'अंगारादि  
 20 भाव से ही अंगारादिभाव का उद्भव' नहीं हो सकता क्योंकि स्व-उद्भव के लिये तब स्व में ही  
 उत्पादनानुकूल क्रिया मानने में हेतुत्व के साथ स्पष्ट विरोध प्रसक्त होगा। तथा ऐसा कहना यहाँ बिनजरूरी  
 होने से अप्रस्तुतता भी होगी। कैसे यह देखो — अग्निआदि से उस का उद्भव कह देने के बाद  
 काष्ठादि की निवृत्ति की बात प्रस्तुत में चल रही है तब आप अंगारादि के उद्भव की बात पर  
 चल गये तो काष्ठादिनिवृत्ति तो रुक जायेगी।

25 [ आत्मा के अव्यक्तविकाररूप बुद्धिध्वंस अमान्य ]

यह जो कहा था— (११-२६) 'जिन का ध्वंस भस्मादिव्यक्तविकारप्रदर्शक नहीं होता ऐसे बुद्धि  
 अथवा दीपकादि पदार्थ का जो ध्वंस होता है उन का व्यक्त नहीं किन्तु अव्यक्त भी विकार तो होता  
 है जो आत्मा से अभिन्न ही होता है।' — वह तो गलत ही है। बुद्धि आदि का स्वअभिन्न विकार  
 होता है इस कथन में कोई समर्थक प्रमाण नहीं। आत्मा भी सत् नहीं है तो बुद्धि आदि का आत्मा  
 30 से अभिन्न विकार की तो कथा ही क्या ? आत्मा न होने से उस के परिणाम की कथा भी व्यर्थ  
 है — यह पहले कहा जा चुका है। बुद्धि की तरह प्रदीप का अव्यक्तभावरूप ध्वंस भी अघटित ही

▲. पूर्वमुद्रितपुस्तके द्वाविंशतिटीप्पणगतं पाठान्तरं स्वीकृतमत्र।

प्रदीपादेः किञ्चित् कार्यमुपलभ्यते यतस्तदव्यक्तभावानुमितिः स्यात्। तत्र भावान्तरं प्रध्वंसाभावः। भावान्तरस्य च प्रध्वंसत्वे तद्विनाशाद् घटाद्युन्मज्जनप्रसक्तिः। न च कपालादेर्भावरूपतैव ध्वस्ता नाभावात्मकतेति नायं दोषः, भावान्तररूपस्याभावस्य तदभावे प्रच्युतत्वात्।

न च कृतकस्याभावस्याऽविनाशितायामनित्यत्वेन कृतकत्वस्य व्याप्तिः सिध्येत्, अकृतकत्वे त्वभ्युपगम्यमाने भावान्तरकार्यात्मकध्वंसो न भवेत्। प्रध्वंसाभावविनाशे तु सर्वदा प्रध्वंस(स)द्भावात् घटादीनां सत्ता न 5 भवेत्। ततो यथा कारणस्वरूपः प्रागभावः कार्योदये कारणनिवृत्तौ निवर्तते— अन्यथा तदात्मकत्वाऽयोगात् — तथा कार्यात्मा ध्वंसाभावोऽपीति नष्टैर्घटादिभिः पुनर्मक्तव्यमेव। न च यथा हेतुबन्धे देवदत्तस्य न पुनः प्रादुर्भावः तथेहापीति वक्तव्यम्, देवदत्तहेतुर्वेददत्तमरणाऽरूपत्वात् तस्य दण्डादिकल्पत्वात्। तत्र कपालादिरूपं भावान्तरं घटादेर्ध्वंसः, तत्र कारकव्यापाराऽसम्भवात् क्रियाप्रतिषेधमात्रप्राप्तेः, अकारकस्य

है। अगर वह है तो वह उस के कार्य को देखने पर अनुमानगम्य ही होगा, क्योंकि वह अतीन्द्रिय 10 होगा — एक बार नष्ट हो जाने पर प्रदीपादि का कुछ भी कार्य उपलब्ध नहीं होता कि जिस के प्रदीपादि के अव्यक्तभाव का अनुमान किया जा सके। फलित हुआ कि प्रध्वंसाभाव भावान्तररूप नहीं है। यदि घटादि वस्तु का ध्वंस कपालादि अन्य वस्तुरूप होगा तो उस अन्य वस्तु के ध्वंस होने पर पूर्व वस्तु घटादि के पुनरुद्गम होने की आपत्ति अवश्य होगी। यदि कहें कि — ‘घटादि का ध्वंस कपालरूप है और कपालादि भाव का ध्वंस होने पर उस की भावरूपता का ही ध्वंस होता 15 है न कि अभावरूपता का, अतः घटादि के पुनरुद्गम का अनिष्ट प्रसंग नहीं होगा।’ — तो यह गलत है क्योंकि नष्ट भावरूप अभावरूप से अभिन्न होने से भावरूप के नष्ट होने पर अभावरूप का भी नाश अवश्य होगा अतः घटादि के पुनरुद्गम का अनिष्ट तदवस्थ रहेगा।

### [ प्रध्वंसाभाव कृतक या अकृतक — विकल्पनिरसन ]

यह भी सोचिये — अभाव को कृतक (हेतुजन्य) मानेंगे या अकृतक ? यदि कृतक मान कर, 20 भाव के पुनरुद्गम को रोकने के लिये कृतक अभाव को अविनाशी मानेंगे तो कृतकत्व-अनित्यत्व की व्याप्ति का भंग प्रसक्त होगा। यदि अभाव को अकृतक मानेंगे तो अन्यभावकार्यात्मक ध्वंस का (यानी भाव कार्यात्मक अभाव का) ध्वंस नहीं होगा, क्योंकि वह तो अकृतकअभावरूप है। अकृतक तो अविनाशी होता है (गगनवत्)। तथा उक्त ढंग से प्रध्वंसाभाव को अविनाशी मानने पर घटादिध्वंस त्रैकालिक बन जाने से घटादि की सत्ता कहाँ रहेगी ? फलतः जैसे कार्य उद्गम होने पर कारणीभूत 25 प्रागभाव की निवृत्ति होती है — अगर नहीं होगी तो वह कारणीभूत अभावरूप नहीं रहेगा — उसी तरह कार्यात्मक (यानी सहेतुक) ध्वंसाभाव भी अभावरूप नहीं रहेगा, अतः घटादि के पुनरुद्गम का दोष लगा रहेगा। यदि कहें कि — ‘देवदत्त के खूनी का खून हो जाने पर देवदत्त का पुनर्जन्म नहीं होता तो ध्वस्त घटादि का कैसे होगा ?’ यह प्रश्न भी गलत है, देवदत्त का खूनी देवदत्त के मरण (ध्वंस) रूप नहीं है जब कि घटादि की निवृत्ति को घटादिध्वंसरूप होती है। जैसे वह दण्डादि से 30 होता है किन्तु वह घटादिध्वंस दण्डादिरूप नहीं होता। निष्कर्ष :- भावान्तरभूत कपालादि के लिये कारकव्यापार अपेक्षित होता है, ध्वंस के लिये नहीं। तब ध्वंस के लिये प्रयुक्त ‘अभाव’ शब्द में

वाऽहेतुकत्वाद्हेतुमत्त्वाऽभ्युपगमोऽभावस्य विरुध्येत। हेतुमत्त्वेऽभावस्य कार्यत्वाद् अभावरूपताप्रच्युति-  
प्रसङ्गः, भावस्य कार्यलक्षणत्वात्।

- तथाहि— यत् स्वकारणसद्भावे भवति तदभावे च न भवति तत् कार्यमुच्यते, भवनधर्मा च कथं  
न भावः ? यतो 'भवति' इति भावः उच्यते इति। अङ्कुरादेरपि भावशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं नापरमुपलभ्यते,  
5 तच्चेदभावेऽप्यस्ति कथमसौ न भावः ? न चार्थक्रियासामर्थ्यं भावशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम् तथा(?तच्च) भावे  
नास्तीति वक्तव्यम्, सर्वसामर्थ्यविकलस्य तस्य प्रतीतिविषयताऽभावात् कथं हेतुमत्त्वावगतिः ? प्रतीतिजनकत्वे  
वा कथं न सामर्थ्ययोग्यता ? अथ कार्यत्वे सत्यपि यथा घट-पटादिनां भेदः प्रतिनियतविज्ञानविषयतया,  
तथा भावाऽभावयोः समानेऽपि कार्यत्वे सत्प्रत्ययविषयस्य भावता असत्प्रत्ययविषयस्य चाऽभावरूपतेति।  
— असदेतत्, असत्प्रत्ययविषयत्वे कार्यताऽप्यस्य दूरोत्सारितैव। अथ स्वहेतुभावे भावात् कार्यताऽस्य

- 10 प्रयुक्त 'नञ्' से सिर्फ भावक्रिया का निषेध ही निरूपित होगा, न कि भावान्तर। अथवा यहाँ दण्डादि  
किसी भावान्तर का कारक नहीं सिद्ध होगा, फलतः अभाव अपने आप अहेतुक सिद्ध होगा, क्योंकि  
जो अकारक होता है वह अहेतुक भी होता है, अत एव अभाव में हेतुप्रयुक्तत्व का स्वीकार विरोधग्रस्त  
हो जायेगा।

### [ अभाव में भावत्व का अनिष्टापादन ]

- कैसे यह देखिये — अपने कारणों के हाजिर रहने पर जो हाजिर होता है और उन के अभाव  
15 के होने पर जो नहीं होता — उसे कार्य कहते हैं। कारणों के जरिये जो भवनधर्मवाला (यानी अस्तित्व  
धारण करनेवाला) होता है उसे 'भाव' क्यों न कहा जाय ? (यदि अपने कारणों से प्रध्वंसाभाव  
का भवन होता है तो वह अभाव नहीं, भाव ही हो सकता है — यह कथनतात्पर्य समझिये)। 'भाव'  
कहते हैं होनेवाले पदार्थ को, अङ्कुरादि के लिये भी 'भाव' शब्दप्रयोग का निमित्त यही है, और कोई  
नहीं, यही निमित्त अभाव को भी लागु होता है तो वह भी 'भाव' क्यों न कहा जाय ?

- 20 शंका :- भावशब्दप्रयोग का निमित्त है अर्थक्रियासामर्थ्य, अभाव में वह है नहीं, तो उसे भाव  
क्यों कहा जाय ?

- उत्तर :- ऐसा मत बोलना, जो सर्वशक्तिविकल है उस में प्रतीतिविषयता का अन्वय भी जब  
शक्य नहीं तब हेतुमत्त्व (यानी किसी का कार्यत्व) भी कैसे हो सकता है ? अगर प्रतीतिविषयता  
का अन्वय भी जब शक्य नहीं तब हेतुमत्त्व (यानी किसी का कार्यत्व) भी कैसे हो सकता है ?  
25 अगर प्रतीतिविषयता जो कि तज्जनकता ही है, उस में मानी जाय तो सर्वशक्तिवैकल्य कैसे होगा ?

शंका :- कार्यता के रहते हुए भी जैसे घट-पटादि में भेद होता है वैसे भाव-अभाव दोनों में  
नियतप्रतीतिविषयता के जरिये कार्यत्व तुल्यतया होने पर भी जिस में 'सत्' आकारप्रतीतिविषयता  
रहती है वह 'भाव' होता है, तथा असत्-आकारप्रतीतिविषयता होती है वह 'अभाव' होता है।

- उत्तर :- यह भी गलत शंका है। असत्-आकारप्रतीतिविषयता अभाव में स्वीकारने पर तो कार्यता  
30 त्वरित वहाँ से भाग जायेगी। यदि अपने हेतुओं उस का (अभाव का) आविर्भाव होने के कारण  
उसे 'भाव' मानेंगे तो सत्-आकार प्रत्ययविषयता बलात् गले में आ पड़ेगी। अभाव को भावात्मक

— तर्हि कथं न सत्प्रत्ययविषयता ?

तथाहि— यद्यसौ 'भवति' इति प्रतीयते 'सन्' इत्यपि प्रतीयेत। न हि 'अस्ति-भवति-सद्भावः' इति शब्दानां कश्चिदर्थभेदो विद्वद्भिरिष्यते। अथ वा(चाऽ)भावात्मकतयैवासौ भवति। न, व्याहतत्वात्। यतो 'न भवति' इत्यभाव उच्यते स कथं 'भवति' इति ? 'स्वग्राहिणि ज्ञाने प्रतिनियतेन रूपेणाऽप्रतिभासनात् 5 'अभावः' इत्येतदपि न वक्तव्यम्' — अत्यन्तपरोक्षचक्षुरादीनामप्यभावताप्रसक्तेः। न वाऽभावस्य भवितृषु पर्युदासात् प्रसज्यप्रतिषेधो भिद्यते। न वाऽसद्रूपत्वस्य विधानात् स पर्युदासात् भिद्यते असद्रूपस्य भवनविरोधात्। 'भवति' इति हि भूत्या सत्तयाऽभिसम्बध्यते, एवं कथमसद्रूपस्य विधानम् ? विधिः(धेः) सर्वदा प्राधान्यात् नञर्थश्च पर्युदास एवैको भवेत्। यतो यदि कुतश्चित् किञ्चिन्निरवर्त्तत तदा तत्पर्युदासेन तद्व्यतिरेकि परामृश्येत, न चैकं भवतिनिर्वृत्तिर्भवतीत्युक्ते, अर्थान्तरस्यैव कस्यचित् सर्वत्र विधानात्। एवं वस्वन्तरमेवोक्तं स्यात्, न तयोर्विवेकः, अविवेके च न पर्युदासः। 10

मान कर सहेतुक मान सकते हैं, अभावात्मक मान कर नहीं।

### [ अभाव और भवति का परस्परविरोध ]

देखिये — यदि अभाव 'भवति (होता है)' इस प्रकार प्रतीत होता है तो 'सत्' स्वरूप से भी प्रतीत होना चाहिये। अस्ति-भवति-सद्भाव इन शब्दोंमें विद्वानों को कोई अर्थभेद प्रतीत नहीं होता — एक ही अर्थ भासता है। फिर भी वह अभावस्वरूप ही होने का पकड़ रखेंगे तो अभाव और 15 भवति का परस्पर विरोध होने से वह उचित नहीं होगा। कारण, 'न भवति' (= नहीं होता) यह अभावसूचक है तो फिर वहाँ 'भवति' (= होता है) कैसे संगत होगा ? ऐसा मत बोलना कि — 'अपने ग्राहक ज्ञान में वह भासित होता है किन्तु किसी नियताकार से नहीं — इस लिये उसे 'अभाव' कहते हैं — निषेधकारण यह है कि यहाँ अत्यन्त परोक्ष नेत्रादि के लिये भी 'अभाव' व्यवहार प्रसक्त होगा, क्योंकि उन का भी (परोक्ष होने से) नियताकार भासन नहीं होता। 20

### [ पर्युदास नकार से अर्थान्तरविधान का विमर्श ]

यह भी विचारणीय है कि 'न भवति' अथवा 'अभाव' में जो 'नञ्' (= निषेधवाचक नकार) है वह भवनशील पदार्थ के विषय में चाहे पर्युदास नञ् हो या प्रसज्य नञ् हो, कुछ तफावत नहीं। आखिर तो भवनक्रिया का निषेध ही होता है तो साथ में अभाव का भवन भी विहित हो जाता है। भवन-विधान के बदले अगर असद्रूपता का विधान माने तो पर्युदास से वह पृथक् नहीं हो सकता क्योंकि 25 असद्रूप का भवन के साथ विरोध है — इस तरह कि 'भवति' स्थल में भूति के साथ सत्ता का अन्वय न किया जाता है — तो वहाँ असद्रूपता का विधान कैसे ? विधि (= विधान) का तो हमेशा प्राधान्य होने से नकार का अर्थ पर्युदासात्मक एक ही होगा। कारण, एक पदार्थ जब दूसरे से जुदाई रखता है तब उसे के पर्युदासात्मक निषेध के द्वारा उसके असमान पदार्थ का परामर्श करता है। तब एकत्व वहाँ सावकाश नहीं है। 'निवृत्तिः भवति (= होती है)' ऐसा कहने पर किसी अन्य अर्थ का विधान 30 सर्वत्र होता है। इस प्रकार 'अभाव' पद से किसी अर्थान्तर का ही निरूपण होता है, न कि उस का

▲. 'चैवं' इति पूर्वमुद्दिने पाठः। अस्माभिस्तु तत्रैव अधोनिर्दिष्टं पाठान्तरं गृहीतमिति।

अपि च, यद्यग्न्यादिभ्योऽभावो भवेत् तद्भावे काष्ठादयः किमिति नोपलभ्यन्ते ? न ह्यग्न्यादिभ्यो ध्वंससद्भावेऽपि काष्ठादयो निवृत्ताः ध्वंसोत्पादन एव अग्न्यादीनां चरितार्थत्वात्। 'काष्ठोपमर्दनं ध्वंसस्योत्पत्तेः न तेषामुपलब्धिरिति चेत् ? कुतः पुनस्तदुपमर्दः ? न तावत् प्रध्वंसाभावात्, काष्ठादिसत्ताकाले तस्याभावात्। नाग्न्यादिभ्यः, ध्वंसाविर्भाविन (वन) एव तेषां व्यापारात्। न चोत्पन्नः प्रध्वंसाभावः काष्ठादीनुपमर्दयति, तद्यौगपद्यप्रसङ्गात् तथा च सत्यविरोधप्राप्तिः। ध्वंसेन च काष्ठादेर्विनाशने विकल्पत्रयस्य (७९-५) तदवस्थत्वात् तदवस्थानवस्था। न च ध्वंसेनावृत्तत्वात् काष्ठादेरनुपलम्भः, तदवस्थे तस्मिन्नावरणाऽयोगात्। ततो विकारभावे वा पुनरपि विकल्पत्रयानतिवृत्तिः।

किञ्च, यदि हेतुमान् विनाशः, तदा हेतुभेदात् म(? स) भेदं किं नानुभवेत् ? कार्यात्म(1)नो हि घटादयः कारणभेदात् भेदमनुभवन्तोऽध्यक्षत एवावसीयन्ते, नैवमनासादितभावान्तरसम्बन्धः प्रच्युतिमात्रस्वभावो

10 विवेक — यानी शून्यतत्त्व। यदि शून्यत्व का निरूपण मानेंगे तो पर्युदास नहीं चलेगा।

[ अभाव (ध्वंस) काल में काष्ठानुपलब्धि की संगति कैसे ? ]

यह भी विचारना है कि अगर अग्निआदि से (काष्ठादि का) अभाव होता है, भले हो, लेकिन तब (अभाव के रहते हुए) काष्ठादि का उपलम्भ क्यों नहीं होता ? अग्निआदि से ध्वंसोत्पत्ति होने पर भी काष्ठादि की निवृत्ति क्यों ? अग्नि आदि तो सिर्फ ध्वंस को उत्पन्न कर के सार्थक बन गये — उस से काष्ठादि पर कौन सा प्रभाव पडा कि वे नहीं दिखाई देते ? यदि कहें कि — 'ध्वंस काष्ठादि का उपमर्दन करता हुआ ही स्वयमुत्पन्न होता है — इस लिये काष्ठादि नहीं दिखते।' — तो यहाँ प्रश्न है — काष्ठ का उपमर्दन किया किसने ? काष्ठ की सत्ता के काल में प्रध्वंस तो था नहीं तो प्रध्वंस उपमर्दन हो नहीं सकता। क्या अग्निआदि ने किया ? नहीं — वे तो ध्वंस का आविर्भाव करने में व्यग्र हैं। प्रध्वंस उत्पन्न हो कर काष्ठ का उपमर्दन करे यह शक्य नहीं क्योंकि तब प्रध्वंसक्षण में भी काष्ठ की सत्ता स्वीकारनी पड़ेगी — जो अनिष्ट है। तथा, दोनों की एक कालीनता मानने पर वास्तविकता से विरोध आयेगा। तथापि ध्वंस से काष्ठादि का विनाश मानेंगे तो पुनः पूर्वोक्त तीन विकल्प (७९-२३) — अग्निसंयोग होने पर इन्धनादि तदवस्थ रहते हैं ? कुछ विकार होता है ? क्या तुच्छ स्वभावप्राप्ति होती है ? — ये तीन विकल्प 'अग्निसंयोग' शब्द के बदले ध्वंसशब्दप्रयोग कर के पुनः खडे होंगे। उपरोक्त प्रकार से उन का उत्तर देने में पुनः ये तीन विकल्प खडे होंगे — आखिर अनवस्थादोष लगेगा। यदि कहें कि — 'ध्वंस से आवृत्त होने के कारण काष्ठादि का उपलम्भ नहीं होता' — तो कहना होगा कि प्रथम विकल्प में जब काष्ठादि तदवस्थ (अनावृत्त) ही हैं तो उन का आवरण हो नहीं सकेगा। यदि कहें कि — 'ध्वंस से काष्ठादि को विकार प्राप्त होगा' — तो यहाँ भी ध्वंस से विकारावस्था में काष्ठादि का क्या होता है ? तदवस्थ रहते हैं... इत्यादि तीन विकल्प पीछा नहीं छोड़ेंगे।

30

[ सहेतुक विनाश में वैविध्य की आपत्ति ]

यह भी विचारणीय है — विनाश यदि सहेतुक है तो हेतुभेद से विनाश में भी भेद यानी वैविध्य होना चाहिये। प्रत्यक्ष से दिखता है कि कपालादि एवं तन्तुआदि कारण-भेद रहने पर घट-

ध्वंसः, तस्याग्न्यभिघातादिहेतुभेदेऽपि तु(स्व)च्छरूपतया सर्वत्र विकल्पज्ञानेऽवभासनात्। न हि 'अभावोऽभावः' इति तुच्छरूपतामपहायापरं तस्य किञ्चिद् रूपमीक्ष्यते। हेतुमत्त्वे च तदवस्थस्तस्य विनाशप्रसङ्गः। अथ विनाशस्य विनाशहेतुः न दृष्टः — इति नासौ विनश्यति। तदुक्तम् — [ ]

घटादिषु यथा (दृष्टाः) हेतवो ध्वंसकारिणः। नैवं नाशस्य सो हेतुस्तस्य सज्जायते कथम् ?।। इति। नन्वेवं बुद्ध्यादीनामप्यविनाशिताप्रसक्तिः विनाशहेत्वदर्शनात्। अथाऽदृष्टोऽपि ध्वंसहेतुः कल्प्यते 5 अहेतुकविनाशानुपपत्तेः अन्यत्र तस्य हेतुमत्त्वदर्शनात्, बुद्ध्यादीनां चोत्तरकालं स्वरूपाऽसंवेदनात् अवस्थितरूपत्वे च तेषां तदयोगात् इति — असदेतत्, स्वसंविदितत्वानभ्युपगमे बुद्ध्यादीनामस्य प्रलापमात्रत्वात्। तथाहि— यथा घटादयो भावा न सर्वदैव ज्ञानविषयतामुपगच्छन्ति तथा बुद्ध्यादयोऽपि ज्ञानान्तरसंवेद्याः सन्तोऽपि नावश्यमनुभवपथमुपास्यन्तीति कुतस्तेषामनुपलम्भादभावनिश्चयः ? न चैकदोषलब्धानामन्यथा(?) - 10 त्यन्तानुपलम्भादसत्त्वनिश्चयो युक्तः। यतः उपलम्भः प्रमेयकार्यम्, न च कार्यनिवृत्तिः कारणाभावं गमयति 10

पटादि में भेद की उपलब्धि होती है। ध्वंस यदि सिर्फ प्रच्युतिमात्रस्वरूप है तो भावान्तर के साथ उस का कोई सम्बन्ध ही नहीं है, उस में तो वैसा (वैविध्य) है ही नहीं। ध्वंस तो उसके जनक अग्निअभिघात (संयोगविशेष) आदि विभिन्न हेतु से जन्य होने पर भी सभी विकल्पों में एकमात्र तुच्छस्वरूप से ही अवभासित होता है। 'अभाव... अभाव' इस प्रकार तुच्छस्वरूपता को छोड़ कर अन्य किसी स्वरूप से अभाव का दर्शन नहीं होता। तथा, जो सहेतुक है वह विनाशी होता है इस व्याप्ति के 15 जोर पर सहेतुक विनाश के ध्वंस की विपदा तो तदवस्थ ही है।

### [ नाश के नाश की अथवा बुद्धि आदि अविनाश की आपत्ति ]

यदि कहें — 'व्याप्ति होने पर भी जब विनाश के विनाश का हेतु ही अस्तित्व से बाहर है तो विनाश के विनाश का अनिष्ट नहीं रहता। — किसी विद्वान् ने कहा है — घटादि भावों के जैसे विनाशक हेतु हैं वैसे नाश का वह कोई हेतु नहीं है। फिर उस का नाश होगा कैसे?' — 20 तो सहेतुकवादी को ऐसी आपत्ति होगी कि (के अतीन्द्रिय होने के कारण) बुद्धि आदि का भी कोई विनाशहेतु दृष्टिगोचर न होने से बुद्धि आदि अविनाशी हो जायेंगे। यदि — "दृष्टिपथ में न आने पर भी उन के नाशहेतु की कल्पना करनी पड़ेगी क्योंकि नाश विना हेतु नहीं होता। अन्य स्थलों में भाव का नाश एवं उस की सहेतुकता सर्वमान्य है — बुद्धि आदि का स्वरूप स्वउत्तरकाल में संविदित भी नहीं होता, यदि उत्तरकाल में वें उपस्थित होते तो उन का असंवेदन संगत नहीं होगा 25 — आखिर बुद्धि आदि का नाश तो मानना ही पड़ेगा।" — ऐसा कहें तो यह गलत है क्योंकि यह सब वचन प्रलापमात्र रह जाता है यदि बुद्धि आदि को स्वसंविदित न माना जाय।

### [ बुद्धि को स्वसंविदित न मानने पर अविनाशप्रसंग ]

प्रलाप क्यों — यह देखिये, घटादि पदार्थ जैसे सर्वदा ज्ञानविषय नहीं बने रहते वैसे बुद्धि आदि पदार्थ (स्वसंविदित यदि नहीं मानेंगे तो) ज्ञानान्तरवेद्य होते हुए भी अवश्य अनुभवविषय बनते रहे 30 — ऐसा कोई नियम नहीं है, अत एव उन के अनुपलम्भ से उन के अभाव का निर्णय आप नहीं कर सकेंगे। एक समय जो उपलब्ध हो चुके हैं — अन्य काल में उन के अनुपलम्भमात्र से उन के



— ‘न हि अवश्यं कारणानि फलवन्ति’ [ ] इति न्यायात् केवलमनुपलभ्यमाना बुद्ध्यादय उपलम्भ-  
प्रत्ययान्तरविकला न ‘असन्त एव’ इति निश्चयः। येषां त्वर्थापत्तिसमधिगम्या बुद्धिः तेषां चक्षुरादीनामिव  
कार्याऽनारम्भेऽपि कुतोऽस्या प्रभ(अभा)वो भवेत् ?

- अथवा एकैवावस्थितरूपा बुद्धिस्तान् तान् पदार्थान् क्रमेणोपलभन्ते, न ह्यस्या घटादीनामिव  
5 विनाशकारणमुत्पश्यामः। ततोऽदृष्टोऽपि यथाऽस्या विनाशहेतुः कल्प्यते विनाशस्यापि तथैव कल्प्यताम्।  
ततो विनाशेनापि स्वविषयज्ञानजननसामर्थ्यं बिभ्राणेन विनष्टव्यमिति घटादीनां पुनरप्युन्मज्जनप्रसङ्गः।  
य(त)तोऽयमहेतुः निःस्वभावोऽभ्युपगन्तव्यः। अग्निसंयोगादयस्तु काष्ठादिष्वङ्गारादिकमेव जनयन्ति।  
काष्ठादयस्तु स्वरसत एव निरुध्य(न्)ते इत्यनवद्यम्। लोकश्चाकिञ्चिद्रूपतामेव नाशस्य प्रतिपद्यते तत्त्वमपि  
(?) वा(चा) सतोऽकिञ्चिद्रूपतैव, यतोऽवैपरीत्यं तत्त्वमुच्यते। न चैतद् विपरीतं यत् ‘अकिञ्चिद्रूपो ध्वंसः’  
10 इति। ततो यद्यपि ‘सदसती तत्त्वम्’ इति व्यपदेशस्तथापि नासतो वस्तुता। तेन विनाशकाले — ‘न  
असत्त्व का निश्चय कर लेना उचित नहीं। क्योंकि उपलम्भ तो प्रमेय (विषय) का कार्य है, कार्य  
के अभाव से कारण के अभाव का अनुमान शक्य नहीं। यह नियम नहीं है कि कारण विद्यमान  
होते हुए भी कार्य का जनन करे ही — यह न्यायसंगत है। अत एव बुद्धि आदि जब उपलम्भ —  
या अन्य किसी प्रतीति से शून्य होते हैं तब उन्हें सिर्फ अनुपलभ्यमान ही कह सकते हैं किन्तु ‘ये  
15 असत् हैं’ ऐसा निश्चय नहीं होता।

### [ बुद्धिनाश की तरह विनाश के विनाश की आपत्ति ]

- अथवा स्थिरवाद में ऐसा भी क्यों न माना जाय कि — बुद्धि सदा (दर्पण की तरह) अवस्थित  
रहती है और (दर्पण में पडनेवाले क्रमिक प्रतिबिम्बों की तरह) क्रमशः तत्तत् पदार्थों का ग्रहण करती  
है। घटादि के विनाश के दृश्यमान कारणों की तरह बुद्धि का कोई नाशहेतु दृष्टिगोचर नहीं होता।  
20 आप ऐसा मानने के बदले आप अदृष्ट नाशहेतु की कल्पना जब करते हैं तो विनाश के अदृष्ट  
विनाश की भी कल्पना कर लो। फलतः मानना ही पडेगा कि स्वविषयज्ञानजनक सामर्थ्य रखनेवाले  
अभाव (ध्वंस) को भी ध्वस्त हुए विना नहीं चलेगा। जैसे ही ध्वंस का ध्वंस हुआ, प्रतियोगी घटादि  
पुनः सिर उठायेंगे ही। आप को स्वीकारना होगा कि ध्वंस अहेतुक निःस्वभाव होता है। प्रश्न :-  
नाश स्वयं होता है तो अग्नि आदि का काम क्या ? उत्तर :- अग्निसंयोगादि नाश के लिये निरूपयोगी  
25 है किन्तु काष्ठादि के अंगार या भस्म की उत्पत्ति के लिये उपयोगी है। अग्नि से काष्ठादि का नाश  
नहीं होता, काष्ठादि का निरोध स्वस्वभाव से ही होता है — इस कल्पना में दोष नहीं है।

### [ लोक में भी विनाश की तुच्छता की मान्यता ]

- लौकिक न्याय से देखें तो — नाश तुच्छ निःस्वभाव अकिञ्चिद्रूप ही लोक में माना जाता है।  
नाश का मूल तत्त्व (तद्भाव) भी यही है — असत् होने से अकिञ्चिद्रूपता। यह भी इस लिये कि  
30 पदार्थमात्र का अपने स्वभाव से अनन्यथापन यही उस का तत्त्व कहा जाता है। ‘ध्वंस अकिञ्चिद्रूप  
है’ यह निरूपण विपरीत नहीं है। हालाँकि लोक में ऐसा व्यवहार भी होता है कि तत्त्व सत् और  
असत् द्विविध है। किन्तु सच यह है कि असत् पदार्थ वस्तुरूप कभी नहीं होता। अत एव प्रमाणवार्तिक

तस्य किंचिद् भवति, न भवत्येव केवलम्, (प्र० वा० ३-२७९ पू०) अन्यथा कस्यचिद् विधाने न भावो निवर्त्तितः स्यात्' इत्यप्रस्तुताभिधानं भवेत्।

यदपि — 'कृतकोऽपि विनाशो नित्यः, अकृतकोऽपि प्रागभावो विनाशी' इत्यभिधानम् तदपि न न्यायानुगतम्। अथ भावानां कृतकाऽकृतकानां ध्वंसिता-स्थैर्यलक्षणो धर्म एकात्मिकः। न च भावधर्मो-ऽभावेऽध्यारोपयितुं युक्तः। कुतः पुनरयमेकात्मिको भावधर्म इत्यवसितम् ? 'अन्यथाभावस्यानुपलम्भाद्' 5 इति चेत् ? नन्वनुपलम्भोऽयं भवन्नप्यात्मादेः सत्ताया अनिवर्त्तकोऽन्यत्र कथमन्यथाभावं निवर्त्तयेत् ? न चात्मनोऽनुमानेनोपलम्भाद् इति वाच्यम्, यतोऽनुमानेऽनुपलम्भ एव हेतोः विपक्षवृत्तिं कथं निवर्त्तयति ? अथ कृतकाऽकृतकानां पदार्थानां हेतुकृतविनाशेतरस्वभावदर्शनादव्यभिचारः, यद्येवं यस्यैव घटादेः कृतकस्य

का यह कहना — विनाश काल में 'वस्तु का कुछ होता नहीं है — इतना ही कहना चाहिये कि वस्तु नहीं होती।' यदि एक को नष्ट होने पर अन्य का विधान किया जाय तब तो भाव की निवृत्ति 10 नहीं होगी।" — यह कथन अप्रस्तुत ठहरता है।

### [ कृतकविनाश की नित्यता युक्तियुक्त नहीं ]

किसी का यह कथन — 'जैसे अकृतक होने पर भी प्रागभाव विनाशी होता है वैसे कृतक होने पर भी नाश नित्य हो सकता है' — न्यायसंगत नहीं है। अब ऐसा कहें कि — 'ध्वंसशीलता एवं स्थैर्य ये क्रमशः कृतक और अकृतक भाव के ही धर्म हैं यह सुनिश्चित तथ्य है। आप ध्वंसरूप 15 अभाव में कृतकत्व के बल से जो भावधर्मात्मक नाश का आरोप करते हैं वह उक्त रीति से अनुचित है (कृतकत्व नाशप्रयोजक नहीं है किन्तु कृतकभावत्व नाशप्रयोजक है।)' — तो यहाँ प्रश्न है — नाश कृतकभाव का ही धर्म है यह कैसे सुनिश्चित तथ्यरूप मान लिया ? उत्तर में कहा जाय कि भावेतर पदार्थ के धर्मरूप में नाश (यानी अन्यथाभाव) का अनुपलम्भ ही उस के भावधर्मता का साक्षि है — तो यहाँ आत्मा के दृष्टान्त से आप के कथन की अतथ्यता को जान लो — आत्मादि तत्त्वों 20 का उपलम्भ नहीं होता, फिर यहाँ अनुपलम्भ से आत्मसत्ता की निवृत्ति नहीं मानी जाती, तो फिर भाव में ध्वंस का उपलम्भ, अभाव में उस का अनुपलम्भ — इतने मात्र से अभाव की नाशधर्मितारूप वैपरीत्य (अन्यथाभाव) की निवृत्ति कैसे मानी जाय ?

### [ अनुपलम्भ मात्र से वस्तु अभाव की सिद्धि अशक्य ]

यहाँ ऐसा मत कहना कि — 'आत्मा की अनुमान से उपलब्धि होती है अतः अनुपलम्भ से 25 आत्मसत्ता की निवृत्ति नहीं हो सकती (यहाँ अभाव की नाशधर्मिता की उपलब्धि नहीं होती अतः उस की सत्ता अभाव (ध्वंस) में कैसे मानी जाय ?)' — इस कथन के निषेध का कारण यह प्रश्न है कि अनुमान के संदर्भ में (विपक्ष में हेतु न देखने मात्र से) अनुपलम्भ मात्र हेतुसत्ता को विपक्ष से व्यावृत्त कैसे कर सकता है ? यदि कहा जाय कि — 'घटादि कृतक पदार्थ (यानी भाव) हेतुजन्य विनाशस्वभाववाले होते हैं तथा गगनादि अकृतक भाव तथास्वभाववाले नहीं होते — (भाव के लिये 30 ऐसा दिखता है, अभाव के लिये नहीं) इस से, अभाव में नाशधर्मिता के अनुपलम्भ से उस का अव्यभिचार यानी धर्मिता का अभाव मान सकते हैं।' — तो यदि ऐसा ही मानेंगे तो ऐसा भी मान

विनाशकारणवशाद् विनाशो दृष्टः स एव ततस्तथा निश्चीयताम् नान्य कृतकत्वसाधर्म्यमात्रेण । न हि वस्त्रे रागस्य एव स्वहेतुसंनिधिसापेक्षस्याऽवश्यम्भाविना (?ता) तद्धेतुसंनिधेरप्यपरहेतुसंनिधिसापेक्षत्वात्, 'न चावश्यं हेतवः फलवन्तः' (८६-९) इत्युक्तम् ।

- अथ सापेक्षोऽपि वाससि रागः सर्वत्र यद्युपलभ्यते किमित्यवश्यंभावी न भवेत् ? न च तथोपलभ्यते
- 5 अन्यथापि तस्य ग्रहणात् । एवं यदि नाशस्याप्यन्यथापि भाव उपलभ्यते तदाऽसापेक्षत्वान्नावश्यंभाविता भवेत् । न चैवं सर्वत्र (??कृतके (ना)शस्योपलब्धेरिति । असदेतत्, भवतु समस्तवस्तुव्यापिज्ञानाभावात् भावेऽनुमानवृत्तेर्न(?)वैफल्यापत्तिः ??) हेतुबलादुपजातध्वंसस्य कस्यचिद् दर्शनेऽपि कारणप्रतिबद्धजन्मनामन्यथापि दर्शनात् उपजातशङ्को देशादिविप्रकृष्टेषु भावेषु कथं तथाभावं निश्चिन्यात् ? यद्यपि वा(?चा)कृतकानां विनाशं(?शो) नोपलब्धः, तथापि कालान्तरे तदा वाऽसौ हेतुनिमित्तो न सम्भवीति कुतो निश्चयः ?

- 10 सकते हैं कि जिन घटादि भावों का नाशकारणसांनिध्य से नाश दिखता है उन का ही नाशकारणजनित नाश स्वीकृत किया जाय, केवल कृतकत्व साधर्म्य से सभी कृतक भावों का नाश मानने की जरूर नहीं। — देखिये, वस्त्र में रंग के कारणों के सांनिध्य से रंग उत्पत्ति होने पर भी, यह नहीं कह सकते कि सभी वस्त्रों में रंग की उत्पत्ति अवश्य होगी ही, क्योंकि कारणों का सांनिध्य भी अन्य कारणों पर निर्भर रहता है। अत एव हमने पहले कहा है (८६-९२) हेतु फलवन्त ही हो — ऐसा
- 15 नियम नहीं है। (समग्र कथन का तात्पर्य यह है कि यदि अभाव का नाश नहीं मानेंगे और उस की सहेतुक उत्पत्ति मानेंगे — वह भी सिर्फ उपरोक्त युक्तियों के आधार पर, तो उन्हीं युक्तियों के आधार पर कृतक भावों के अहेतुकत्व अथवा हेतुसंनिधि होने पर भी अनुत्पत्ति आदि की आपत्ति प्रसक्त होगी।)

### [ वस्त्र के रंग की अवश्यंभाविता अनिश्चित ]

- 20 अब दलील की जाय कि — 'वस्त्र में परद्रव्यकृत राग यद्यपि अवश्य हेतुसापेक्ष है, (उस का मतलब यह नहीं कि हेतु के रहते हुए भी वह अवश्य उत्पन्न न भी हो) फिर भी यदि सभी वस्त्रों में कोई परद्रव्यकृत रंग दिखता है तो उसे सहेतुक अवश्यंभावी क्यों न माना जाय ? हाँ, सच है कि सभी वस्त्रों में वह (परद्रव्यकृत रंग) दिखता नहीं परद्रव्यसंयोग के विना भी वह दिखता है। यदि इस तरह कृतक का नाश भी विना हेतु के उपलब्ध होता तो हेतु-असापेक्ष हो जाने से उस
- 25 की अवश्यंभाविता बच नहीं पाती। किन्तु वैसा कहीं भी नहीं दिखता कि नाश विना हेतु के होता हो, कृतक सभी का नाश दिखता है।' —

- यद दलील गलत है क्योंकि सभी कृतक का नाश बोल नहीं सकते जब तक हमें समस्तवस्तुव्यापि ज्ञान (सर्वज्ञता) नहीं है। — यदि होता तो अनुमान निष्फल होने की विपदा प्रसक्त होगी। किसी भाव का ध्वंस हेतु के प्रभाव से दिखाई देने पर भी सहेतुकोत्पन्न दृष्टिगोचर कुछ भावों का ऐसा
- 30 भी नाश दिखता है जहाँ कोई कारण नहीं दिखता। तब जो दृष्टिमर्यादा बाहर रहे हुए देश-कालदूरवर्ति भाव हैं उन में सहेतुकता का निश्चय ही कैसे होगा, जब तक पूर्वोक्त रीति से दृष्ट भाव के नाश के कारण भी शंकाप्रस्त हैं ? अकृतक के लिये भी प्रश्न होगा कि यद्यपि आज-कल उस का नाश

न वा(चा)कृतको प्रागभावः तदविनाशो वा सम्भवतीति प्रतिपादितम् । ततोऽसमर्थो विनाशहेतुरिति स्थितम् व्यर्थश्च ।

तथाहि— <sup>A</sup>यदि स्वभावतो नश्वरो भावः न किञ्चिद् विनाशहेतुभिः तत्स्वभावतयैव तस्य स्वयं नाशतः— न हि स्वयं पतति पातप्रयासः फलवान् । <sup>B</sup>अथाऽनश्वरस्तदा तत्स्वभावस्यान्यथाकर्तुमशक्यत्वाद् व्यर्थो नाशहेतुः । न च व(च)लरूपतायां तदुपयोगः, यतो नाऽस्माभिः कार्ये भावानां व्यापारः प्रतिक्षिप्यते 5 किन्त्वचलरूपतैव । ततो भावानामुद्भूता[??भावस्य भावपूर्वस्तु पूर्वको प्रच्युत एवेति तथोपलब्ध्यादिप्रसङ्गः??] यश्च विनाशहेतोरस्थिरस्वभावो घटादेर्भवति कथं स स(?त)स्य स्वभावः तस्मिन्निष्पन्ने भिन्नहेतुकः ? यतो न तत्स्वभावो युक्तः । न च स्वहेतुभिरेव नियमितस्वभावोऽयं कालान्तरस्थायी पदार्थानां हेतुभिर्जनित इत्युत्पादानन्तरं न विनष्टः, स तस्मिन्नेव स्वभावे व्यवस्थितः कथमन्तेऽपि नश्येत् ?

अनुपलब्ध है, किन्तु जब आप नाश सहेतुक ही मानने पर तुले हैं तो ऐसा निश्चय किस तरह 10 होगा कि कालान्तर में अकृतक का नाशहेतु कोई न आने से नाश नहीं ही होगा ? यह भी कैसे कह सकते हैं कि प्रागभाव निहेतुक ही है ? पहले हमने कहा ही है कि प्रागभाव न तो अकृतक है न तो अविनाशी है। निष्कर्ष :- नाश स्वयं ही होता है, नाश के लिये अन्य कोई समर्थ हेतु नहीं होता, अगर होगा तो भी निरर्थक, क्योंकि उस के विना भी नाश तो होनहार ही है।

### [ नश्वर/अनश्वर स्वभाव विकल्पों में अनुपपत्तियाँ ]

नाश स्वयंभू है वह समझ लो — भाव का स्वभाव <sup>A</sup>नश्वर है या <sup>B</sup>अनश्वर — दो विकल्प हैं। पहला :- <sup>A</sup>यदि भाव स्वभाव नश्वर है तो विनाशहेतु बेकार है क्योंकि स्वभावतः यानी स्वतः ही नाश होने वाला है। जो अपने आप गिरनेवाला है (बारीश आदि), उस को गिरने का प्रयत्न सफल नहीं कहा जाता। (स्वयं पतनशील ताडवृक्ष के ऊपर कौआ बैठ जाने के बाद उस का पतन हो जाय तब कौए को दोष देना बेकार है)। <sup>B</sup>दूसरा :- यदि भाव अनश्वरस्वभावी है तब हेतुप्रयोग 20 से उस के परिवर्तन के लिये यानी नाश के लिये कुछ भी करना अशक्य होने से नाशहेतु की कल्पना व्यर्थ है। यदि कहें कि — ‘भाव में चलरूपता (नश्वरता) के आपादन के लिये नाशहेतु उपयोगी बनेगा’ — तो यहाँ हम इतना ही कहना चाहते हैं कि किसी भी कार्य को लक्ष में रख कर कोई कुछ भी प्रयोग (= व्यापार) कर सकता है जिस का हम इनकार नहीं करते, किन्तु हम भावों की स्वतः चलरूपता का स्वीकार करते हैं और अचलरूपता का निषेध करते आये हैं, करते रहेंगे। (यहाँ 25 ततो भावा... प्रसङ्ग.. इतना पाठ अशुद्ध होने से उस का विवरण नहीं किया) ऐसा कहें कि — ‘घटादि भाव विनाशहेतुसापेक्षस्थिरस्वभावयुक्त होते हैं’ — तो प्रश्न है कि जो अन्य सापेक्ष है उस को ‘स्वभाव’ कैसे कहेंगे ? भाव तो जब उत्पन्न होगा तब अपने पूर्ण स्वभाव से उत्पन्न होगा, फिर उस में स्वभिन्न हेतु सापेक्ष नया स्वभाव कैसे प्रवेश करेगा ? अरे ! वह उस का स्वभाव हो ही नहीं सकता। ऐसा नहीं हो सकता कि — ‘अपने हेतुओं से ही जो नियतप्रकार के स्वभाववाला है 30 ऐसे भाव अपने हेतुओं से कालान्तर स्थायी ही उत्पन्न होता है — अतः त्वरित नष्ट नहीं होता’ — यदि ऐसा भाव अपने कालान्तरस्थायित्व स्वभाव में ही अवस्थित रहेगा तो ऐसी क्षण ही कभी

तथाहि— उदयकाले यः स्वभावः स्थिरः तत्स्वभाव एवायमन्तेऽपीति पुनस्तावन्तमेव कालं तिष्ठेत् । तथा तदन्तेऽपि तावन्तमपरम् कालान्तरस्थितिरूपस्योदयकालभाविनः स्वभावस्य तदन्तेऽपि भावात् । न ह्यन्तेऽपि रूपान्तरसम्भवः तस्यैकस्वभावत्वाद् अकिञ्चित्करस्य च विरोधित्वाऽयोगात् । तत्कथं तदपेक्षोऽयं निवर्त्तते ? दण्डादिप्रपातसमयेऽस्य प्रच्युतिलक्षणः स्वभावः स किं प्रागा(?ग्ना)सीत् येनाऽसौ न निवृत्तः ?

5 न हि तद्भावेऽपि पररूपेणायं निवर्त्तते, स्वरूपं च तदेवास्य प्रागपि कथं न निवृत्तिः ? हेतवश्चानुपकार्यापेक्षायां नियुञ्जानाः स्वकार्यमात्मनोऽस्थानपक्षपातित्वमाविष्कुर्युः ।

न च भवतामप्यकिञ्चित्करमपि मुद्गरादिकमपेक्ष्य कथं प्रवाहो निवर्त्तते इति वाच्यम्— न च विशारारुक्षणव्यतिरेकोऽपरः प्रवाहो विद्यते यो निवृत्तावकिञ्चित्करं मुद्गरादिकमपेक्षते किन्तु परस्परविविक्ताः पूर्वापरक्षणा एव, ते च स्वरसत एव वि(? नि)रुध्यन्ते इति न क्वचिदकिञ्चित्करापेक्षा निवृत्तिः ।

10 नहीं आयेगी जब उस स्वभाव का विरह होने पर उस का नाश हो ।

[ अन्तकाल में स्वभाव तदवस्थ होने से नाश अयोग ]

स्पष्टता :- अक्षणिकवादी के मत में यदि उत्पत्ति काल में वस्तु कियत्काल-स्थिरस्वभावी है तो अन्तकाल में भी वह मौजूद होने से तथोक्त अन्तकाल में भी वह कियत्काल स्थिर रहेगी । पुनः जब अन्तकाल आयेगा तब भी उक्त स्वभाव मौजूद होने से वस्तु पुनः कियत्काल अवस्थित रहेगी, क्योंकि

15 उत्पत्तिकालीन जो कियत्कालावस्थानरूप स्वभाव है वह तथाकथित अन्तकाल में हाजिर है । अन्तकाल में वह स्वभाव बदल जाय ऐसा तो कह नहीं सकते क्योंकि वस्तु का स्वभाव आदि-अन्त तक एक अपरिवर्त्य होता है । कदाचित् आंशिक परिवर्तन के रूप में नये स्वभाव को मान ले, किन्तु वह करेगा क्या ? कुछ कर नहीं पायेगा तब पूर्वस्वभाव का विरोध भी नहीं कर सकेगा, तो उस नये स्वभाव से पूर्वस्वभाव का निवर्त्तन कैसे होगा ? यह भी प्रश्न है कि वस्तु में दण्ड-अभिघातकालीननाशस्वभाव

20 जो आप स्वीकारते हैं वह उत्पत्तिकाल में पहले नहीं था जिस से उस काल में घटादि नष्ट न हुए ? यदि कहें कि — ‘वह स्वभाव पहले था इसी लिये तो अन्यरूप से उस का निवर्त्तन (यानी भेद) जारी रहा’ — तो पूछना है कि अगर पररूपनिवृत्ति के साथ स्वरूप (= दण्डाभिघातजन्यनाशस्वभाव) भी तदवस्थ ही है तब तो स्वरूप से भी निवृत्ति होनी चाहिये । यदि उस काल में नाशहेतु स्वभाव तदवस्थ है फिर भी वह अनुपकारिदशा में होने से (अकिञ्चित्कर होने से) स्वरूप से नाश नहीं कर

25 सकते — तो ध्यान दिजिये कि वह दशा भी स्वभावान्तर्गत होने से अन्तकाल तक तदवस्थ ही रहेगी, और उस अवस्था के रहते हुए भी वह स्वभावादि हेतु नाश कार्य नियोजित करेगा तो विद्वान लोग समझेंगे कि आप के नाश हेतुओं का यह केवल अनुचित आग्रह यानी जिद्द ही है कि कैसे भी घटादि का नाश कर दो । इस में न्याय कहाँ रहेगा ?

[ मोगरादि की निवृत्ति प्रति सापेक्षता प्रश्नगत ]

30 क्षणिकवादी के प्रति यदि कहा जाय कि — ‘आप तो मुद्गर को अकिञ्चित्कर ही मानते हैं, तो फिर घटप्रवाह की निवृत्ति (= नाश) मुद्गरप्रहारसापेक्ष ही क्यों होती है’ — तो यह कथन ठीक नहीं है — हमारे यहाँ प्रवाह जैसी कोई चीज ही नहीं है । जो कुछ है वह नाशवंतक्षण ही है जो

अतो मुद्गरादिरहिता सामग्री अविभक्तं कार्यं सम्पादयन्ती तत्सन्निधाने विभक्तं कार्यान्तरं जनयति न तु मुद्गरादयः कारणसामर्थ्यं खण्डयन्ति, विकल्पत्रयस्याऽत्रापि पूर्वोदितस्य (७९-५) प्रसङ्गात्।

अतो यदुक्तम् [ ] 'स्वभावोऽपि स तस्येत्यं येनापेक्ष(?) निवर्तते। विरोधिनं यथान्येषां प्रवाहा मुद्गरादिकम्।।' तदपि प्रतिक्षिप्तं दृष्टव्यम्।

अथायं विकल्पः (८९-३) सर्वत्रगत्वादसारः। तथाहि— उत्पादेऽप्येवं शक्यते वक्तुम्— <sup>A</sup>स्वभावतो 5  
ह्युत्पत्तिस्वभावस्य न किञ्चिदुत्पत्तिहेतुभिः, तत्स्वभावतयैव स्वयमुत्पादात्। <sup>B</sup>अनुत्पत्तिस्वभावस्य तु स्वभावतो  
व्यर्था उत्पत्तिहेतवः तद्भावान्यथात्वस्य कर्तुमशक्यत्वात् इति। नैतत् सारम्, यतो यदुत्पत्तिरभूत्वा भवन-  
लक्षणैव — अन्यथा तदयोगाद् — स्वभावो यस्य स तथोच्यते तदा सिद्धसाधनमेव। यस्य ह्यभूत्वा

स्वयं नष्ट होते हैं। अतः निवृत्ति (= नाश) के लिये मुद्गरादि की अपेक्षा की गन्ध ही नहीं है।  
कहना है तो कह सकते हैं कि परस्पर असम्बद्ध पूर्वोत्तर क्षण ही प्रवाह है, ये प्रवाहसंज्ञक पूर्वोत्तरक्षण 10  
तो अपने आप ही निवृत्त (= नष्ट) हो जाते हैं। अतः निवृत्ति को किसी अकिञ्चित्कर (मोगरादि)  
की अपेक्षा होने की सम्भावना नहीं है। यह स्पष्टता सुन लो — मोगरशून्य पूर्व पूर्व क्षणसामग्री सदृश  
उत्तरोत्तर क्षणात्मक कार्य घटादि को निपजाती है। पुनः मोगरसंयुक्त पूर्व-पूर्व क्षण सामग्री विसदृश उत्तरोत्तर  
क्षणात्मक कपालादि कार्य को निपजाती है। (इस तरह मोगर तो कपालादि कार्य का जनक है सर्वथा  
अकिञ्चित्कर नहीं) अत एव यह कहना अयुक्त है कि मोगरादि से घटादि के जनक कारणों के सामर्थ्य 15  
का विनाश होता है। यदि ऐसा मानेंगे तो पूर्वोक्त तीन विकल्पों (इन्धन — कुछ विकार — तुच्छ) की  
पुनरावृत्ति प्रसक्त होगी (७९-२३)।

अत एव यह जो किसी ने कहा है — (श्लोकार्थः) — 'भाव का स्वभाव ऐसा ही है कि (किसी  
की अपेक्षा से ही) निवृत्त (= नाश) होता है, जैसे अन्यो के मत में विरोधी मोगरादि से प्रवाहों 20  
की निवृत्ति होती है।' — वह भी निरस्त हो जाता है।

### [ नाश की तरह उत्पत्ति के विकल्पों का आपादन ]

शंका :- ऐसा विकल्प (८९-१६) में नश्वर/अनश्वर स्वभाव के विकल्प) तो वस्तुमात्र के लिये  
शक्य होने से, (व्यवस्थानाशक होने से) असार है। उदा० उत्पत्ति के लिये भी देखिये— यह कह  
सकते हैं कि पदार्थ स्वभावतः <sup>A</sup>उत्पत्तिशील है या <sup>B</sup>अनुत्पत्तिशील ? <sup>A</sup>यदि स्वभावतः उत्पत्तिशील  
है तो तथास्वभाव के जरिये स्वयं उत्पन्न हो जायेंगे अतः उत्पत्ति-हेतुओं की जरूर नहीं है। <sup>B</sup>यदि 25  
पदार्थ स्वभावतः अनुत्पत्तिशील है तो उत्पादक हेतु बेकार हो जायेंगे क्योंकि हेतुसामग्री में ऐसी शक्ति  
नहीं है कि वह स्वभाव में फेरबदल कर सके।

उत्तर :- यह कथन अच्छा नहीं है। कारण, उत्पत्ति क्या है अन्य कोई प्रकार न होने से अभावानन्तर  
भाव, यह है स्वभाव जिस का वह उत्पत्तिस्वभाव कहा जाय तो सिद्धसाधन ही होगा। जिस पदार्थ  
का अभावानन्तरभाव हो गया स्वभावतः हो गया, वहाँ उत्पादक हेतु का कोई योगदान न होना यह 30  
हमें मान्य ही है, क्योंकि स्वतः सत् है उस का निर्माण अशक्य है। सत् का भी निर्माण स्वकालीन  
दूसरे सत् से मानेंगे तो कार्य-कारण का सहभाव हो जायेगा जो किसी को मान्य नहीं है। यदि उत्पत्तिस्वभाव

भवत् (? भावः) सम्पन्नः तत्रोत्पादहेतूनां व्यापाराभावस्याभीष्टत्वात्, सतो निवर्त्तयितुमशक्यत्वात्, कार्य-कारणयोः सहभावेनाऽ(नि)वृत्तेः। अथोत्पत्तौ स्वभाव आभिमुख्यलक्षणो यस्य सन्निहितसर्वकारणकलापान्तर-भाविनः — इत्यभिधातुमभिधेयं(ध्येयम्) तदा कथमस्योत्पत्तिहेतूनां वैयर्थ्यम् ? न हि तथाभूतकारणवशात् तथाव्यपदेशेन हेतोर्व्यर्थता युक्ता।

- 5 <sup>B</sup>अथ द्वितीयो विकल्पः, सोप्यनुपपन्नः। यतोऽनुत्पत्तिर्भावप्रतिषेधमात्रं स्वभावः सर्वसामर्थ्यविरह-लक्षणस्याभावस्य तत्र चानभ्युपगमाद्धेतुव्यापारस्य सिद्धसाध्यतैव। न ह्युत्पत्तिहेतवोऽभावं भावीकुर्वन्ति। भावेष्वपि परिणामस्तावदयं न सम्भवति (कि)मुत् नीरूपेऽभावे ? नत्वे(न्वे)वं कथमसदुत्पद्यत इत्युच्यते ? कारणानन्तरं यः सद्भावः स प्रागसन्नित्ययमत्रार्थः न पुनरभावो भावत्वमापद्यते इति न कश्चिद्दोषः। अन्यथानुपपत्तावनन्तरभावाभावे(?वो) धर्मो यस्याऽसंनिहित कारणस्य च स एवमभीष्टः तदापि तत्राऽसत्त्वादेव
- 10 कारणानां व्यापारो न भवतीति न काचित् क्षतिः, लोके चोत्पत्तिधर्माऽनागत एवोच्यते। न च तस्य शशविषाणस्येव तीक्ष्णतादिगोचराणामिव भावाश्रयाणां विकल्पानां सम्भवः।

- के समास का विग्रह ऐसा करे कि उत्पत्ति के प्रति अभिमुखासाज्ञक स्वभाव है जिस का — वह उत्पत्तिस्वभाव, अर्थात् समुदित सर्व कारण समूह के उत्तरक्षण में भावि हो वह उत्पत्तिस्वभाव ऐसा कहने की अभिध्या = तात्पर्य हो तब तो स्वभाव अन्तर्गत ही कारणसमूह-अनन्तरभाविता प्रविष्ट है
- 15 फिर उत्पत्ति हेतुओं की व्यर्थता कैसे ? जब तथाविध कारणसामग्री के बल पर ही उत्पत्ति का व्यवहार सम्पन्न होता है तो फिर हेतु को व्यर्थ बताना किसी तरह युक्तियुक्त नहीं।

### [ अनुत्पत्तिस्वभाव के स्वीकार में इष्टापत्ति ]

- <sup>B</sup>दूसरा विकल्प है अनुत्पत्तिस्वभाव, वह भी अयुक्त है। अनुत्पत्ति का मतलब है सिर्फ भाव का निषेधात्मक स्वभाव। यहाँ हम सर्वसामर्थ्यशून्यात्मक अभाव को तथा उस के लिये किसी हेतुप्रयोग
- 20 को नहीं मानते। अतः इस विकल्प को स्वीकार लेने में सिद्धसाध्यता = इष्टापत्ति ही है। हम ऐसा नहीं मानते कि उत्पत्ति का हेतुवृन्द अभाव को भाव में परिवर्तित करता है। जब भाव में परिवर्तनरूप परिणाम का हमें स्वीकार नहीं है तो तुच्छ अभाव के भावात्मक परिवर्तन या परिणाम के स्वीकार की बात ही कहाँ ? यदि पूछे कि — ‘अभाव का भावपरिणाम अस्वीकार्य है तब कैसे कहते आये हैं कि असत् उत्पन्न होता है ?’ — उत्तर है कि जो कहते आये हैं उस का तात्पर्य है कि कारणप्रयोग
- 25 के उत्तरक्षण में जो सद्भूत भाव है वह पूर्वक्षण में नहीं था, अभाव का भाव बनता है ऐसा नहीं मानते अतः कोई दोष नहीं है। यदि अनुत्पत्ति का यह अर्थ हो कि कारण के विना जिस की उपपत्ति (या उत्पत्ति) शक्य नहीं — और उस का यह तात्पर्य अभिमत हो कि जिस के कारण उपस्थित नहीं हैं उस के कारण अनन्तर भाव का अभाव, तो यहाँ भी निष्कर्ष यही हुआ — कारण हाजिर न होने से उन का प्रयोग भी हाजिर नहीं है — ऐसा मानने में हमारा कोई नुकसान नहीं। लोक में
- 30 भी इस बारे में यही कहा जाता है — जो उत्पत्तिधर्मवाला (न कि उत्पन्न) है वह ‘अनागत’ है। अनागत तो वर्तमान में शशशृंगवत् असत् (तुच्छ) होता है। अतः उस के ऊपर जैसे तीक्ष्ण है या कुण्ठ ये विकल्प निरवकाश हैं उसी तरह भावसम्बन्धि कोई भी विकल्प ‘अनागत’ के ऊपर सावकाश नहीं।

न च यदि निर्हेतुको भावस्य विनाशः उत्पादोऽपि तथैवास्तु, भाव(1)भावधर्मत्वाऽविशेषात्। यतो न विनाशो नामान्य एव कश्चिदुदयापवर्णिणो भावात्, भावश्च स्वहेतोरेव तथाभूत उत्पन्नो न कश्चिद्धर्मोऽस्यान्नि(?नि)मित्तः केवलं तमस्य स्वभावं पश्यन्नपि मन्दबुद्धिर्न विवेचयति दर्शनपाटवाऽभावात्। यदा तु विसदृशकपालादिविधुरप्रत्ययोपनिपाताद् उत्पद्यते तदा भ्रान्तिकारणविगमात् प्रत्यक्षनिबन्धनो निश्चय उत्पद्यते, अनुमानतो भावानां सुविदुषां प्रागपि भवत्येव। यथा विषस्वरूपदर्शनेऽप्यतत्कारिपदार्थसाधर्म्यवि- 5 प्रलब्धो न मारणशक्तिं नि(श्चि)नोति प्राक्, पश्चात्तु विकारदर्शनात् तन्निश्चयः। न च शक्तिमतः शक्यतो भेदमनुभवन्ति इति प्रतिपादितं सौगतैः। जातस्य च स्वभावस्य विनश्चरत्वेऽन्यानपेक्षणाद् निर्हेतुको विनाश उच्यते— इति स्थितमेतद् यथोक्तप्रकारेणानुमानतो भावानां क्षणक्षयो सिद्धः। प्रत्यक्षतोऽपि क्षणक्षयाधिगमे तद्व्यवहारसाधनानुमानं साफल्यमनुभवतीत्यपरे प्रतिपन्नाः।

तदेवं प्रत्यक्षतः अनुमानतश्च क्षणिकत्वव्यवस्थितेः स्थितमेव(?)तद् मूलाधारः पर्यायनयस्य ऋजुसूत्र- 10

### [ भावधर्म और अभावधर्म तुल्य नहीं होते ]

ऐसा मत सोचो कि — ‘भाव का विनाश निर्हेतुक है तो उत्पाद भी निर्हेतुक होने दो’ — क्योंकि तब भावधर्म और अभाव धर्म तुल्य हो जायेंगे। कारण, उत्पत्ति-विनाश शाली भाव से अतिरिक्त कोई विनाश होता नहीं है। भाव तो अपने हेतुओं से क्षणभंगुर ही उत्पन्न होता है। कोई भी भाव का धर्म (उत्पत्ति आदि) अनिमित्त नहीं होता। विशेषता सिर्फ यही है कि मन्दबुद्धि भाव के इस स्वभाव 15 को देखने पर भी, देखने में सतर्कता न होने के कारण, उस का निर्णय नहीं कर पाता है। (अतः प्रतिक्षण उत्पत्ति का भान नहीं होता — सादृश्य यहाँ भ्रान्ति का बीज होता है।) किन्तु जब विसदृश कपालादि से व्याप्त प्रतीति उद्भूत होती है तब वहाँ भ्रान्तिबीज सादृश्यदर्शन का प्रलय हो जाने से प्रत्यक्षमूलक ही उत्पत्ति-निश्चय उदित होता है। अनुमान से तो उत्पत्ति के पहले भी अच्छे पंडितों को भावि भावोत्पत्ति का निश्चय होता है। उदा० विष को देखने पर भी मृत्युअकारकअन्नादिपदार्थसादृश्यमूलक 20 वञ्चना के कारण मारणशक्ति का निश्चय पहले नहीं होता, किन्तु किसीने थोड़ा खा लिया, फिर तज्जन्य विकार (मस्तकभ्रमि आदि) को देखने पर मारणशक्ति का निश्चय उदित होता है। बौद्ध विद्वान् ऐसा नहीं कहते कि (मारण) शक्ति और शक्तिमत (विषादि) में भेद होता है। (अतः अभ्यस्त पट्ट दृष्टा को विष के दर्शन में मारणशक्ति का भी भान हो ही जाता है।)

निष्कर्ष यह है कि अपने हेतुओं से विनश्चरस्वभावयुक्त ही उत्पन्न होनेवाले भाव को नष्ट होने 25 के लिये ओर किसी हेतुओं की अपेक्षा नहीं रहती अतः विनाश निर्हेतुक होता है, अत एव उत्पत्ति अनन्तर ही द्वितीयक्षण में विनाश का उदय होने से पदार्थों की क्षणिकता निर्बाध अनुमानसिद्ध हो जाती है। कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि क्षणक्षयिता जो भावधर्म है वह भाव के प्रत्यक्षदर्शन में विषयभूत बनती है अतः प्रत्यक्षसिद्ध भी है — फिर क्षणिकता के व्यवहार की प्रसिद्धि के लिये ही अनुमान सार्थक बनता है। 30

### [ ऋजुसूत्र पर्यायनय का विस्तार शब्द-समभिरूढ-एवंभूतनय ]

उपरोक्त प्रकार से, प्रत्यक्ष और अनुमान से क्षणिकता का निश्चय हो जाने से, पाँचवी मूल



वचनविच्छेदः इति। तस्य = ऋजुसूत्रतरोः तु अवधारणार्थः तेन तस्यैव न द्रव्यास्तिकस्य शब्दादयः शब्दादर्थं गमयन्तः शब्दनयत्वेन प्रतीताः शब्द-समभिरूढैवंभूतास्त्रयो नयाः शाखा-प्रशाखाः इव स्थूल-सूक्ष्म-(-सूक्ष्म)तरदर्शित्वात् सूक्ष्मो भेदो = विशेषो येषां ते तथा। यथा हि तरोः स्थूलाः शाखाः, सूक्ष्मास्तत्प्रशाखाः प्रतिशाखा अति(?)पि सूक्ष्मतराः — एवम् ऋजुसूत्रतरोः स्थूल-सूक्ष्म-सूक्ष्मतराः शाखा(ः) प्रशाखा(ः) प्रतिशाखारूपा अशुद्ध(ः) शुद्ध(-शुद्ध)तरपर्यायास्तिकरूपाः शब्द-समभिरूढै-वंभूतास्त्रयो नयाः दृष्टव्याः।

तथाहि— ऋजुसूत्राभ्युपगतं क्षणमात्रवृत्ति वस्तु दिं(?)लिं)गादिभेदाद् भिन्नं शब्दो वृक्षाच्छाखामिव सूक्ष्ममभिमन्यते एकसंज्ञाम्, समभिरूढः शब्दाभिमतं वस्तु संज्ञाभेदादपि भिद्यमानं शाखातः प्रशाखामिव सूक्ष्मतरमध्यवस्यति, तदेव समभिरूढाभिमतं वस्तु शब्दप्रतिपाद्यक्रियासमावेशसमय एवं स्थिति(तिं) भूत

कारिका में जो कहा था कि पर्यायनय का मूलाधार ऋजुसूत्रवचनविशेष है यह भी निर्णीत हो जाता है। पाँचवी कारिका का शब्दार्थ इस प्रकार है — तस्य (= उस का) यानी ऋजुसूत्रवृक्ष का, 'तु' अव्यय अवधारण अर्थ में है, अतः 'उस के ही न कि द्रव्यास्तिक नय के' ऐसा निर्दिष्ट होता है। 'शब्दादिक' यानी शब्द के मुताबिक अर्थ का भान करानेवाले 'शब्दनय' संज्ञा से प्रसिद्ध तीन नय १शब्द, २समभिरूढ, ३एवंभूत नय। ('शब्दादिक' यह उद्देश है, अब विधेय का निर्देश करते हैं —) ये तीन नय पर्यायनय की (यानी ऋजुसूत्रनयवृक्ष के) शाखा-प्रशाखाएँ हैं, क्योंकि स्थूल-सूक्ष्म और सूक्ष्मतर (अर्थ के) प्रदर्शक हैं। मूल पाँचवी कारिका में जो 'सुहुमभेया' (= सूक्ष्मभेदाः) पद है वह 'सूक्ष्म है भेद यानी विशेष जिन के' इस प्रकार के विग्रहवाले बहुव्रीही समास गर्भित है।

जैसे वृक्ष की पहले स्थूल शाखाएँ निकलती हैं, फिर कुछ पतली (सूक्ष्म) प्रशाखाएँ निकलती हैं, फिर उन से भी पतली (सूक्ष्मतर) प्रतिशाखाएँ निकल आती है — इसी तरह ऋजुसूत्रनयवृक्ष की स्थूल-सूक्ष्म-सूक्ष्मतर शाखा-प्रशाखा-प्रतिशाखा स्थानीय अशुद्ध-शुद्ध-शुद्धतर पर्यायास्तिकनयस्वरूप शब्द-समभिरूढ-एवंभूत ये तीन नय जान लेना।

**स्पष्टता :-** सब से पहले पर्यायनयवृक्षस्वरूप ऋजुसूत्रनय ने क्षणमात्रजीवि वस्तु का निर्देश किया। मतलब कि वस्तु क्षणभेद से भिन्न होती है यह दिखाया। साथ में, यह नय भिन्न भिन्न लिंगवाले शब्दों के अर्थ में लिंगभेद से भिन्नता का निर्देश नहीं करता। इन्द्रदेव (पु०) कहो या इन्द्रदेवता (स्त्री.) कहो बात एक ही है। शब्दनय यहाँ सूक्ष्म दृष्टिपात कर के निर्देश करता है कि इन्द्रदेव पुल्लिंगशब्द का अर्थ एवं इन्द्रदेवता स्त्रीलिंगशब्द का अर्थ पृथक् पृथक् है। वृक्ष की अपेक्षा जैसे शाखा पतली (सूक्ष्म) होती है वैसे 'शब्द' नय भी ऋजुसूत्र की अपेक्षा अपने को 'सूक्ष्मदृष्टि' समझता है। साथ में वह मानता है कि इन्द्र-शक्र-पुरंदर ये सब एकसंज्ञक होते हैं — मतलब एकार्थ संज्ञापक-सूचक होते हैं, पर्यायवाचिशब्दों का भेद होने पर भी अर्थभेद नहीं है। यहाँ समभिरूढ नय शाखा से आगे प्रशाखा की तरह सूक्ष्मतरदृष्टिपात करता हुआ कहता है कि शब्दनयमान्य यह एकार्थकता ठीक नहीं है। संज्ञाभेद से वस्तु भिन्न होती है। इन्दन (ऐश्वर्यभोग) कारक इन्द्र होता है और शक्तिप्रदर्शक शक्र होता है। पुर का दारण (भेदन) करनेवाला पुरंदर होता है। ज्ञातव्य है कि जैसे पाक क्रिया करते समय पाचक

एवंभूतः क्रियाभेदाद् भिन्नं प्रशाखातः प्रतिशाखामिव सूक्ष्मतममधिगच्छति, एवं बाह्यार्थभ्युपगमपरः शब्द-समभिरूढैवंभूतभेदवानवगन्तव्यः।

[ ऋजुसूत्रव्याख्यान्तरे विज्ञप्तिवादसिद्धये प्रथमं पूर्वपक्षः ]

अथवा 'ऋजु = बाह्यापेक्षया ग्राहक-संवित्तिभेदविकलमविभागं बुद्धिस्वरूपम् अकुटिलं सूत्रयति' इति ऋजुसूत्रः शुद्धः पर्यायास्तिकः।

5

ननु <sup>A</sup>किमविभागबुद्धिस्वरूपावेदकप्रमाणसद्भावतो विज्ञप्तिमात्रमभ्युपगम्यते, <sup>B</sup>आहोस्विदर्थसद्भाव-बाधकप्रमाणसङ्गतेरिति वक्तव्यम्। तत्र <sup>A</sup>यद्याद्यः पक्षः स न युक्तः, यतस्तथाभूतविज्ञप्तिमात्रोपग्राहकं प्रत्यक्षं वा तद् भवेत् अनुमानं वा ? प्रमाणान्तरस्य सौगतैरनभ्युपगमात्। तत्र न तावत् प्रत्यक्षं 'अर्थ-संस्पर्शरहितं विज्ञप्तिमात्रमेव' इत्यधिगन्तुं समर्थम् अर्थाभावनिश्चयमन्तरेण 'विज्ञप्तिमात्रमेव' इत्यवधार-

कहा जानेवाला कभी सो गया हो तब भी समभिरूढ को वह पाचकतया मान्य है, ऐश्वर्यभोगस्वरूप इन्दन न करने वाला भी इन्द्रतया मान्य है।

अब एवंभूत नय का अभिप्रायः — प्रशाखा से आगे प्रतिशाखा की तरह अतिसूक्ष्मदृष्टिपात करता हुआ कहता है — इन्द्रशब्दसूचित इन्दनक्रिया-अनुभव के काल में ही 'एवं' (यानी) शब्दसूचितक्रियास्थिति में 'भूत' यानी आविष्ट हो तभी 'इन्द्र' कहा जायेगा। वर्ना 'इन्द्र' नहीं। इस प्रकार एवंभूत नय क्रियाभेद से, अर्थात् क्रियावेशस्थिति — क्रियावेशाभावस्थिति में भी वस्तुभेद स्वीकारता है।

15

पर्यायनय की इस प्रकार व्याख्या करने पर ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरूढ-एवंभूत चारों नयों में इतना साम्य लक्षित होता है कि पर्यायनय स्वरूप ऋजुसूत्र के उपभेद शब्दादि तीनों नय बाह्य अर्थ का स्वीकार करके चलनेवाले हैं।

[ ऋजुसूत्र की अन्य व्याख्या — विज्ञप्तिवाद के सामने पूर्वपक्ष ]

व्याख्याकार श्री अभयदेवसूरिजीने ऋजुसूत्र की प्रथम व्याख्या के द्वारा पर्यायनयमान्य क्षणिक बाह्यार्थ का समर्थन किया। अब दूसरी व्याख्या से विज्ञप्तिमात्रवाद का समर्थन करनेवाले हैं। यहाँ पहले द्वितीयव्याख्या प्रस्तुत करने के बाद विज्ञप्तिवाद के सामने पूर्वपक्षनिरूपण करेंगे—

ऋजु यानी अकुटिल-सरल-अवक्र। बाह्यार्थ मानने पर ग्राहक-संवेदन इत्यादि भेदों की कुटिल मायाजाल खडी होती है जो वक्रतारूप ही है, ऐसी वक्रता की झंझट को छोड़ कर निर्विभाग एकमात्र बुद्धिस्वरूप विज्ञान का ही सूत्रण = निरूपण करता है वह है ऋजुसूत्र जो शुद्ध पर्यायास्तिक (= क्षणिक ज्ञान पर्यायवादी) है।

25

अब यहाँ बाह्यार्थवादी पर्यनुयोग प्रस्तुत करते हैं —

**बाह्यार्थवादी** :- विज्ञानमात्र के अंगीकार का मूलाधार क्या है ? <sup>A</sup>निर्विभागबुद्धिस्वरूप का निवेदक कोई प्रमाण है ? या <sup>B</sup>अर्थसत्ताबाधक प्रमाण का योग है ?

<sup>A</sup>पहला पक्ष अयुक्त है। पूछते हैं कि बुद्धिस्वरूप विज्ञानमात्र का निवेदक प्रमाण प्रत्यक्ष है या अनुमान ? अन्य किसी प्रमाण को बौद्ध तो स्वीकारते नहीं।

णाधिगमानुपपत्तेः। उक्तं च— (श्लो०वा०अभा०श्लो०१५)

‘अयमेवेति यो ह्येष भावे भवति निर्णयः। नैष वस्त्वन्तराभावसंवित्त्वनुगमादृते।।’

न चार्थाभावोऽध्यक्षसमधिगम्यः, अर्थविभासकत्वेन तस्योत्पत्तेः। न च तत्रावभासेऽपि तस्याभावः, विज्ञप्तेरप्यभावप्रसक्तेः। न च तैमिरिकाक्षजप्रतिभासे चकासदिन्दुद्वयं यथाऽसत्यत्वमनुभवति तथा शुद्धदृक्प्रति-  
5 भासविषयस्यापि स्तम्भादेरपि वितथत्वम्— यतस्तिमिरपरिकरितदृग्विषयस्यार्थस्य बाध्यमानप्रत्ययविषयत्वादसत्त्वं युक्तम् न पुनः शुद्धदृगवसेयस्य, तत्र बाध्यत्वाऽयोगात्। यद्वा तैमिरिकावभासिनोऽपीन्दुद्वयादेरवैतथ्यमस्तु। न च बाधप्रत्ययावसेयस्य कथमवितथत्वमिति वक्तव्यम् बाध्यत्वाऽयोगात्।

तथाहि—<sup>a</sup>दर्शनं वा बाध्येत, <sup>b</sup>तत्रावभासमानो वाऽर्थः <sup>c</sup>प्रयोजनं वा ? <sup>d</sup>न तावदाद्यः पक्षः, दर्शनस्योत्पन्नत्वात्। <sup>e</sup>नाप्यर्थो बाध्यः प्रतिभासमानेन रूपेण तस्य सत्त्वात् अन्यथा प्रतीयमानताऽयोगात्।  
10 न च ‘प्रतिभासोऽस्ति किन्तु तन्निर्भासि रूपमसत्यम्’ इति वक्तव्यम् प्रतिभासमानं रूपं विभ्रतोऽप्यसत्त्वे

<sup>A</sup>अर्थस्पर्शरहित हो ऐसे विज्ञानमात्र के बोध कराने में समर्थ कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। कारण, जब तक प्रत्यक्ष स्वयं बाह्यार्थाभाव का निश्चय नहीं करेगा तब तक ‘विज्ञानमात्र ही है’ ऐसा भारपूर्वक बोधन करा नहीं सकता। श्लो० वार्तिक (अभाव श्लो०१५) में कहा है — ‘भाव के विषय में ‘यही है’ ऐसा (भारपूर्वक) निर्णय जो होता है वह अन्य किसी वस्तु के अभाव के संवेदन के  
15 विना शक्य नहीं।’

### [ अर्थाभाव प्रत्यक्ष का विषय नहीं होता ]

प्रत्यक्ष से अर्थाभाव का अधिगम हो नहीं सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष तो अर्थमात्रप्रकाशकस्वभाव ले कर ही उदित होता है। प्रत्यक्ष में स्तम्भादि अर्थ भासित हो जाय तब तो उस का अभाव सिद्ध ही नहीं होगा, अन्यथा प्रत्यक्ष में भासित होने वाले विज्ञान का भी अभाव प्रसक्त होगा। यदि कहा  
20 जाय — ‘तिमिरोगग्रस्त व्यक्ति के इन्द्रियजन्य प्रतिभास में चन्द्रयुगल हालाँकि भासित होता है किन्तु जैसे वह असत्य माना जाता है वैसे शुद्धदर्शनप्रतिभासविषयभूत स्तम्भादि भी असत्य माना जाय।’ — तो यह मिथ्या है क्योंकि तिमिरग्रस्तदृष्टि विषयभूत चन्द्रयुगलरूप अर्थ तो आखिर बाधितप्रतीति का विषय होने से असत्य माना जाय यह उचित है, किन्तु शुद्ध अबाधित दृष्टि ग्राह्य अर्थ स्तम्भादि असत्य नहीं होता, क्योंकि अबाधित दर्शन बाधग्रस्त नहीं होता। अथवा हम तो यही कहेंगे कि तिमिरग्रस्त  
25 व्यक्ति से गृहीत चन्द्रयुगल भी मिथ्या नहीं है। यदि पूछेंगे कि बाधित प्रतीति ग्राह्य विषय असत्य क्यों नहीं होगा तो उत्तर यह है कि उसकी प्रतीति में बाधवैशिष्ट्य ही नहीं है।

### [ बाध है तो किस को ? - तीन विकल्प ]

स्पष्टता :- बाध यदि है तो किस को है ? <sup>a</sup>दर्शन को है ? <sup>b</sup>दर्शन में भासित होनेवाले अर्थ को है ? या <sup>c</sup>प्रयोजन को ? <sup>d</sup>पहला पक्ष अनुचित है क्योंकि दर्शन तो होनहार हो चुका है  
30 उसको कौन सा बाध होगा ? <sup>e</sup>अर्थ को बाध नहीं पहुँचेगा क्योंकि जिस स्वरूप से वह दर्शन में भासता है उस स्वरूप से वह ‘सत्’ है, सत् नहीं होता तो प्रतीतिविषयता न होती। ऐसा मत कहना कि — ‘प्रतिभास यद्यपि हो सकता है किन्तु प्रतिभासप्रदर्शित रूप असत्य है।’ — क्योंकि प्रतिभासमान

संविदोऽपि तथात्वप्रसक्तेः। अथार्थक्रियाविरहाद् भ्रान्तज्ञानावभासिनो हिमकरादेवैतथ्यम्। अयुक्तमेतत्, यतो यद्यर्थक्रिया तत्र नोदिता तथापि पूर्वज्ञानावभासिनः कथं वैतथ्यम् ? न ह्यन्याभावादन्याभावः अतिप्रसङ्गात्। न चार्थक्रियानिबन्धनं भावानां सत्त्वमिति यत्र सा नोदेति तत् प्रतिभासमानमपि न सत्तामनुभवतीति वाच्यम्— यतो यदि भावाः प्रयोजनमुपजनयन्तः सत्तामनुभवन्ति तदा साऽप्यर्थक्रियाजननात् सत्तासंगता स्यात् साप्यपरार्थक्रियाजननाद् इत्यनवस्थाप्रसक्तिः। अथ अर्थक्रिया प्रतिभासविषयत्वात् सती— पदार्थमात्रा 5 अपि तथैव सत्यः स्युरिति व्यर्थाऽर्थक्रिया।

अत एव तैमिरिकावभासिनः केशादयोपि सत्याः प्रतिभासविषयत्वात्। न च बाधकवशात् तेषां वैतथ्यव्यवस्था, बाधकस्यैवानुपपत्तेः। यतस्तैमिरिकोपलब्धकेशादेः दर्शनानन्तरं यदि बाधकं तदा वक्तव्यम्— एककालं भिन्नकालं वा ? यदि भिन्नकालं बाधकमाश्रीयते तदा पूर्वदर्शनकाले नाऽपरम् अपरदर्शनसमये च न पूर्वमिति परस्परकालपरिहारेण प्रवर्तमानयोः कथं बाध्य-बाधकता ? अथैककालं तद् बाधकम् 10 तचा(?दा) त्रापि वक्तव्यम्— एकविषयम् भिन्नविषयं वा ? न तावदेकविषयम् तस्य सुतरां तत्साधकतोपपत्तेः।

रूप को धारण करने पर भी यदि अर्थ असत् है तो विज्ञान भी तथैव असत् ठहरेगा।

यदि अर्थक्रियाकारि न होने से भ्रमज्ञानभासित चन्द्रयुगल को मिथ्या बताया जाय तो वह गलत है, भले ही उस से अर्थक्रिया-उदय नहीं हुआ, फिर भी तथाकथित बाधज्ञान के पूर्व जात ज्ञान में अवभासि चन्द्रयुगल का मिथ्यात्व कैसे ? एक चीज (अर्थक्रिया) के न होने मात्र से अन्य चीज (चन्द्रयुगल) 15 का अभाव कैसे हो गया ? ऐसा मानने पर तो घट का अभाव होने पर पट में मिथ्यात्वापत्ति प्रसक्त होगी। यदि कहा जाय — 'पदार्थों की सत्ता अर्थक्रियामूलक होती है अतः जिस से उस का उद्भव नहीं होता वह प्रतिभासमान होने पर भी सत्तालाभ नहीं कर पाता' — तो यह गलत है, क्योंकि यदि पदार्थ अपने प्रयोजनभूत अर्थक्रिया के उद्भव द्वारा ही सत्तालाभ करेंगे अर्थक्रिया भी स्वप्रयोजनभूत नूतन अर्थक्रिया के उद्भवद्वारा ही सत्तालाभ कर पायेगी, वह नूतन अर्थक्रिया भी नूतनतर अर्थक्रिया 20 के उद्भव द्वारा.... इस प्रकार अनवस्थादोष लगेगा। यदि प्रतिभासविषय होने के कारण अर्थक्रिया की सत्ता को मानेंगे तो पदार्थमात्राएँ भी प्रतिभासित होने की वजह सत्तावती क्यों न मानी जाय — फिर अर्थक्रिया की जरूर क्या ? वह तो व्यर्थ ही ठहरेगी।

### [ बाधकतत्त्व से बाध की अनुपपत्ति ]

अर्थक्रिया सत्ता की बुनियाद नहीं हो सकती इसी लिये तिमिररोगी के ज्ञान में भासमान केशादि 25 भी सत्य ही है क्योंकि प्रतिभासमान है। बाधकबल से उस को मिथ्या मानना शक्य नहीं है क्योंकि वहाँ कोई बाधकसत्ता ही नहीं। कारण, तिमिररोगी के दृष्ट केशादि के दर्शन के बाद अगर बाधक खडा हुआ तो दो प्रश्न खडे होंगे। दर्शन और बाधक एककालीन है या भिन्नकालीन ? यदि भिन्नकालीन है तो स्थिति यह होगी कि पूर्व दर्शनकाल में बाधक नहीं है और उत्तरकालीन बाधकदर्शन के वक्त पूर्व दर्शन नहीं — इस प्रकार एक-दूसरे के काल में एक-दूसरे से दूर रहनेवाले दोनों में अन्योन्य 30 बाधक-बाध्य भाव कैसे बनेगा ? यदि समकालीन मानें तो ये दो प्रश्न खडे होंगे — दोनों समानविषयक हैं या भिन्नविषयक ? समानविषयक होंगे तो बाध करने के बजाय संवादी होने के कारण साधक

न ह्येकविषयं संविदन्तरं तद्विषयस्यैव संविदन्तरस्य बाधकमुपलब्धम् । भिन्नविषयं संविदन्तरं स्वविषयमेव भासयितुं समर्थम् न पुनर्विषयान्तरसंवेदनमुपदलयितुमलम् । न हि स्वविषयमवतरन्ती नीलसंवित् पीतदृश-म(मु)पहन्तुं समर्था ।

- न च दर्शनानन्तरं पूर्वदर्शनाधिगतमर्थमसत्यमधिगच्छत् तस्य बाधकम् । यतस्तदपि दर्शनं स्वविषयीकृतं
- 5 वा अस्वविषयीकृतं वा पूर्वदर्शनाधिगतमर्थमसत्यमधिगच्छत्तस्य बाधकं स्यात् ? प्रथमपक्षे पूर्वदर्शनाधिगतोऽर्थ उत्तरकालभाविनि दर्शने परिस्फुटमवभासमानः सुतरां सत्यः स्यात् न वितथः इति कथं तत् 'तदसत्यम्' इत्यावेदयति ? अथ द्वितीयः पक्षोऽङ्गीक्रियते तदाऽत्रापि बाध्यदर्शने प्रतिभासमानस्यार्थस्य बाधकसंविदि प्रतिभासाभावात् कथं तस्य ततो वैतथ्यावगतिः ? न च विषयान्तरस्य शुक्तिकादेस्तत्रावभासनात् रजतादेरिन्नकालावभासिनः किमिति
- 10 वैतथ्यं भवेत्, सर्वस्य वैतथ्यप्रसक्तेः ?

अथानुपलम्भो बाधकं प्रमाणमुच्यते तदात्रापि वक्तव्यम्— एककालः भिन्नकालो वा ? तत्र च

वन जायेगा। समानविषयक एक ज्ञान समानविषयक अन्य ज्ञान का बाधक हो — कहीं देखा नहीं गया। यदि बाधकदर्शन समकालीन एवं भिन्नविषयक है तब तो वह सिर्फ अपने विषय के प्रकाशन में ही शक्तिप्रयोग करने में व्यस्त होगा, वह बेचारा अन्यविषयक संवेदन का उपमर्दन काहे को करेगा ?

- 15 अपने विषय के प्रकाशन में व्यस्त नीलज्ञान पीतदर्शन का उपघात नहीं कर सकता।

### [ बाधक ज्ञान की बाधकता पर दो प्रश्न ]

- दर्शन के बाद पूर्वदर्शनगृहीत अर्थ को मिथ्यारूप से प्रसिद्ध करनेवाला कोई बाधक प्रसिद्ध नहीं है। कारण, कल्पित बाधक के प्रति दो प्रश्न हैं — १—पूर्वदर्शनगृहीत अर्थ को मिथ्या दिखानेवाला दर्शन उस अर्थ को अपना विषय करता हुआ बाधक बनेगा या २—अपना विषय न करता हुआ
- 20 ? पहले पक्ष में, पूर्वदर्शनगृहीत अर्थ जब उत्तरकालीन (कल्पित बाधकरूप) दर्शन में स्पष्टतया भासित होता है तब तो उस की सत्यता अधिक निखर आयेगी, मिथ्यात्व तो प्रतिक्षिप्त हो गया, तो फिर वह उत्तरदर्शन पूर्वगृहीत अर्थ को 'असत्य' कैसे करार देगा ? दूसरा पक्ष माना जाय तो यहाँ सोचिये कि कल्पित बाध्य (पूर्व) दर्शन में जिस अर्थ का प्रतिभास हुआ है उस का कल्पित बाधकज्ञान में प्रतिभास ही नहीं हुआ, जो स्व में प्रतिभासित नहीं है उस को वह ज्ञान मिथ्या कैसे विदित या
- 25 घोषित करेगा ? यदि कहें कि — 'रजत के बदले जब उत्तरकालीन बाधकज्ञान में विषयान्तररूप छीप का प्रतिभास होता है (पूर्वगृहीत रजत का नहीं) तो फलित होता है कि पूर्वगृहीत रजत जूठा है।' — ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि कल्पित बाधक ज्ञान में यदि छीप अपने स्वरूप से भासित होती है तो भले भासित हो किन्तु इतने मात्र से भिन्नकाल में (यानी) पूर्वकाल में भासित रजत मिथ्या कैसे हो गया ? यदि रजत मिथ्या हो जाय तो पूर्वकालीन सभी दर्शनों के सभी विषयों का मिथ्यात्व
- 30 प्रसक्त होगा।

### [ अनुपलम्भ बाधक प्रमाण हो नहीं सकता ]

यदि बाह्यार्थ के प्रति अनुपलम्भ को बाधक कहा जाय तो यहाँ दो प्रश्न होंगे — समानकालीन

यद्येककालः सोऽसिद्धः स्वप्रतिभाससमये रजतस्यानुपलम्भाऽयोगात्। कालान्तरभावी रजतानुपलम्भः तदैव तस्याऽसत्त्वम् न पूर्वकालम्। न च भाविकाले पूर्वदर्शनप्रत्यस्तमयात् स्वदर्शनकालावधेरर्थस्याभावः, अतिप्रसङ्गात्। तदेवं विशददर्शनावभासि सत्यं बहिरर्थस्वरूपम् यथा स्वसंवित्प्रतिभासमानं विज्ञप्तिस्वरूपम् तथा च तैमिरिकदर्शनावभासीन्दुद्वयमिति स्वभावहेतुः, असतः प्रतिभासाऽयोगात्।

अथेन्दुद्वयादेर्बाहिः सत्त्वे किमिति शुद्धदृशि न प्रतिभासः ? यत्र हि बहिरर्थोऽस्ति तत्र योग्यदेशादितः 5 सकलसामग्रीप्रभवसमस्तजनसंविदि प्रतिभासमाधत्ते यथा नीलादिः, न चेन्दुद्वयं नरान्तरविशददृशि प्रतिभाति तदेशव्यवस्थितपुरुषान्तरसंविदि एकेन्दुमण्डलस्य प्रतिभासनात्। ततो ज्ञानाकार एवेन्दुद्वयम् न बाह्यम्।

असदेतत्— यतो न बहिरर्थाः संनिधिमात्रेण ज्ञाने प्रतिभासमादधति किन्तु सामग्रीवशात्। अन्यथा अत्वा(न्धा)दिदृशि प्रतिभासमादध्युः। अथ लोचनाद्यभावात् नान्धादिदृशि तत्प्रतिभासः, नन्वेवं तिमि- 10 रादिसामग्र्यभावात् शुद्धदृशि हिमकरद्वयादेरप्रतिभासमानस्व(त्व)म्।

अनुपलम्भ या भिन्नकालीन ? वहाँ यदि समानकालीन अनुपलम्भ को बाधक दर्शाया जाय तो वह असिद्ध है क्योंकि रजतादिअर्थप्रतिभास-काल में रजतादि का उपलम्भ ही होता है न कि अनुपलम्भ। यदि भिन्नकालीन अर्थात् अन्यकाल भावी रजतादि का अनुपलम्भ बाधक माना जाय तो वैसा अनुपलम्भ अपने काल में ही रजत का असत्त्व सिद्ध करेगा, पूर्वकालीन रजत के अस्तित्व को बाध नहीं कर सकता। यदि भावि (उत्तर) काल में पूर्वदर्शन लुप्त हो जाता है तो उस से अपने पूर्व दर्शनकालखंड 15 में अर्थ का अभाव सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि तब तो पूर्व पूर्व सभी दर्शनों के विषयों को तत्तद् दर्शनकाल में असत् मानने का अनिष्ट प्रसङ्ग आयेगा। अब यह अनुमानप्रयोग सरल है — स्पष्टदर्शन में प्रतिभासमान होने से बाह्यार्थस्वरूप सत्य है, उदा० अपने संवेदन में भासमान विज्ञानस्वरूप। यहाँ तैमिरिकदर्शन में प्रतिभासमान होने से चन्द्रयुगल भी सत्य सिद्ध होता है — इस प्रयोग में प्रतिभासमानत्व बाह्यार्थ का स्वभाव ही है जो हेतुतया प्रयुक्त है। असत् पदार्थ कभी प्रतिभासमान नहीं होता। 20

प्रश्न :- चन्द्रयुगल जो तिमिररोगी को भासता है वह यदि सत्य है तो शुद्धदृष्टिवाले को क्यों नहीं भासता ? विशेष :- जहाँ बाह्यार्थ सत्य होता है वहाँ योग्यदेशादिअवस्थान इत्यादि सम्पूर्ण सामग्री बल से निपजनेवाले जनसाधारण के संवेदन में वह नियमतः भासित होता है जैसे नीलादि। तिमिररोगी के अलावा अन्य मनुष्यों के शुद्ध दर्शन में चन्द्रयुगल कहाँ भासता है ? उस देश में रहे हुए अन्य मानवों को तो एक ही चन्द्रमंडल दिखता है। फलित होता है कि चन्द्रयुगल सिर्फ ज्ञानाकार के अलावा 25 और कुछ बाह्यार्थरूप नहीं है।

### [ शुद्धदर्शन में चन्द्रयुगल न भासने का कारण ]

उत्तर :- ज्ञानाकारवादी का यह कथन गलत है। कारण, संनिधानमात्र से बाह्यार्थ, ज्ञान में स्वप्रतिभास आधान कर दे ऐसा नहीं है, किन्तु सामग्री के बल से जरूर करते हैं। विना सामग्री कर दे तो अन्धपुरुष के ज्ञान में भी प्रतिभासाधान कर देंगे। यदि कहें कि — नेत्रादि न होने से अन्धपुरुष 30 के ज्ञान में अर्थ प्रतिभास नहीं होता — तो प्रस्तुत में भी जान लो कि तिमिररोगादि सामग्रीविरह कारण से शुद्धदृष्टिवाले ज्ञान में चन्द्रयुगल (तथा रजत) आदि का प्रतिभास नहीं होता।

न च स्वसामग्रीवशात् क्षपाकरयुगलं संविदि भासमानं ज्ञानस्वरूपमेव, बहिर्ग्राह्याकारतया प्रतिभासमानस्य इन्दुद्वयस्यान्तर्ग्राहकाकारतयाऽप्रतिभासनात्, ज्ञानरूपत्वाऽयोगात्, तद्रूपत्वे वा ग्राहकाकारतया प्रतिभासमानज्ञानस्यापि तथाऽप्रतिभासमानस्यार्थरूपताप्रसङ्गः। तत्र(त्र) बहिर्ग्राह्याकारतया प्रतिभासमानस्येन्दुद्वयादेर्विज्ञप्तिरूपता। परिशुद्धविशदवृगवसेयस्य तु स्तम्भादेः सुतरां ज्ञानरूपतानुपपत्तिः। तत्र अध्यक्षं

5 बहिरर्थावभासि तदभावं गमयति। न चाध्यक्षमभावग्राहि, तस्य तुच्छतया तद्विषयत्वाऽयोगात्। न च वस्तुत्वादसदंशः प्रत्यक्षग्राह्यः इन्द्रियसम्बन्धाभावेन तस्यापि प्रत्यक्षत्वाऽयोगात्, तदसम्बन्धस्तु योग्यताऽभावात् इन्द्रियस्य। उक्तं च (श्लो०वा०अभाव०श्लो०१८) 'न तावदिन्द्रियेणैषा नास्तीत्युत्पाद्यते मतिः। भावांशेनैव संयोगे योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि।।' तन्नोभयरूपोऽप्यर्थाभावोऽध्यक्षवेद्यः।

नाप्यनुमानं बाह्याभावमावेदयति, प्रत्यक्षाभावे तस्याऽयोगात्। न च प्रत्यक्षविरोधेऽनुमानस्य प्रामाण्यं

10 सम्भवति 'प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्षः' [ ] इति वचनात्। न च बाह्यार्थावेदकस्याध्यक्षस्य भ्रान्तत्वाद् न

### [ चन्द्रयुगल सिर्फ ज्ञानाकार होने का कथन गलत ]

अपनी तिमिरादिसामग्री के बल से संवेदन में भासमान चन्द्रयुगल मात्र ज्ञानस्वरूप नहीं है। चन्द्रयुगल वहाँ बाह्यविषयाकार रूप से भासित होता है, अन्तरंगविषयाकाररूप से भासित होता नहीं, अतः वह ज्ञानस्वरूप नहीं है। अन्तरंगरूप से न भासने पर भी यदि उस को ज्ञानस्वरूप मानेंगे

15 तो अन्तरंगस्वरूप भासनेवाले ग्राहकाकार से ही अनुभवगोचर ज्ञान बहिरंगस्वरूप न भासने पर भी बाह्यार्थाकार मानने का अनिष्ट होगा। सारांश, जब बहिरंग विषयाकार स्वरूप से भासनेवाला चन्द्रयुगल भी विज्ञानरूप नहीं है, तो विशुद्ध स्पष्ट दृष्टि में भासनेवाले स्तम्भादि में तो सुतरां विज्ञानरूपता का व्यवच्छेद हो जाता है।

पहले जो कहा था (९६-३) अभाव प्रत्यक्षगोचर नहीं होता — वह अब निश्चित हो जाता

20 है कि प्रत्यक्ष बाह्यार्थावभासि होता है किन्तु उसके अभाव को विषय नहीं कर सकता। बात भी सच है कि प्रत्यक्ष अभावग्राहक नहीं होता क्योंकि अभाव तुच्छ (निःसार) होने से प्रत्यक्षविषयता यानी प्रत्यक्ष की पहुँच वहाँ नहीं होती। यदि कहें कि — 'अभाव तुच्छ नहीं है, वस्तु का ही एक नकारात्मक अंश है अतः प्रत्यक्ष से ग्राह्य होगा' — तो यह शक्य नहीं क्योंकि नकारांश के साथ इन्द्रियसम्पर्क शक्य न होने से चाहे उसे वस्तु-अंश माना जाय फिर भी उस का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। इन्द्रियसम्पर्क

25 न होने का कारण इन्द्रिय की असदंश के साथ सम्बन्ध लगाने की योग्यता (= शक्ति) ही नहीं है। श्लोकवार्तिक (अभाव० श्लो०१८) में कहा है — 'नहीं है' ऐसी यह बुद्धि इन्द्रिय से तो उत्पन्न नहीं होती। कारण, भावांश के साथ संयोग करने में ही इन्द्रिय की योग्यता होती है। — निष्कर्ष, चाहे असत् हो या वस्तु-अंश हो किसी भी प्रकार का अर्थाभाव प्रत्यक्षगोचर नहीं है यह सिद्ध होता है।

### [ अनुमान से भी बाह्याभावसिद्धि दुःशक्य ]

30 प्रत्यक्ष की तरह अनुमान भी बाह्याभाव को आवेदित नहीं कर सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष के विरह में अनुमान भी योजन कर नहीं सकता। जिस विषय में (अर्थाभाव के प्रति) प्रत्यक्ष का विरोध हो उस विषय में अनुमान प्रमाण सम्भव नहीं, क्योंकि 'अनुमान के लिये पक्ष चाहिये और वह भी प्रत्यक्ष

तेनाऽनुमानबाधेति वक्तव्यम्— इतरेतराश्रयप्रसक्तेः। तथाहि— अर्थाभावे सिद्धे तद्ग्राहि अध्यक्षं भ्रान्तं सिद्ध्येत् — अन्यथा कथमवितथार्थग्राहिणो भ्रान्तता— भ्रान्तत्वे च तस्य सिद्धे अर्थाभावानुमानस्ये(स्य)न तेन बाध्यते(ति) व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम्। न च तद् अध्यक्षमेव न भवति अनुमानेन बाधनादिति वक्तव्यम्, अनुमानेष्यस्य पर्यनुयोगस्य समानत्वात्। [?तथाहि— बाह्याभावग्राह्यस्य भ्रान्तत्वात् तेनानुमानबाधेति वक्तव्यम् इतरेतराश्रयदोषप्रसक्तेः। तथाहि— अर्थाभावे सिद्धे बलादनुमान(?नं) प्रमाणमिति दर्शनाभावेऽप्यर्थाभाव- 5 सिद्धिः तत्प्रतिबन्धसिद्धेः अध्यक्षमिति तत्त्वात् अन्यथा अनवस्थापत्तेरिति नानुमानवेद्योऽप्यर्थाभावः ??।

अपि च, तदनुमानं किं कार्यलिङ्गप्रभवम् स्वभावहेतुसमुत्थं वा, उतानुपलब्धिप्रसूतम् ? इति विकल्प- त्रयम्। न तावत् प्रथम-द्वितीयपक्षौ कार्य-स्वभावहेत्वोर्विधिसाधकत्वाभ्युपगमात् 'अत्रे(त्र) द्वौ(द्वौ) वस्तुसाधनौ'▲ (न्या०बि०२-१९) इधि(?ति) वचनात्। नापि अनुपलब्धिप्रसूतमिति पक्षः अनुपलब्धेरसिद्ध(त्वा)त्, बहिरर्थस्य प्रतिभासनात्। उपलब्धानुपलब्धिस्वा(?स्त्व)भाव(।?)साधनी, सा च नियतदेश-कालमेवार्थाभावं गमयति न 10

से अनिराकृत होना चाहिये' यह आप्तवचन है। ऐसा नहीं कहना कि बाह्यार्थप्रदर्शक प्रत्यक्ष भ्रान्त होने के कारण उस भ्रान्त प्रत्यक्ष से अनुमान को बाधा नहीं पहुँच सकती, क्योंकि तब अन्योन्याश्रय दोष लगेगा। स्पष्ट है कि बाह्यार्थाभाव सिद्ध होने पर बाह्यार्थ का ग्राहक प्रत्यक्ष भ्रान्त सिद्ध होगा, हाँ अर्थाभाव असिद्ध होता तब तो बाह्य अर्थग्राहि प्रत्यक्ष भ्रान्त कैसे होता ? तथा प्रत्यक्ष भ्रान्त सिद्ध होगा तभी अर्थाभावानुमान को उस से बाध पहुँचता नहीं अपि तु निर्बाध अपने साध्य अर्थाभाव 15 को सिद्ध करता। यदि कहें कि — अर्थाभावसाधक अनुमान का बाध होने से बाह्यार्थग्राहि प्रत्यक्ष प्रमाण ही नहीं हो सकता — तो यह ठीक नहीं, अनुमान के लिये भी वैसा प्रश्न होगा कि बाह्यार्थसाधक प्रत्यक्ष का बाध होने से अर्थाभावग्राहि अनुमान प्रमाण कैसे हो सकेगा ? (सूचना — यहाँ कौंस में रही हुई पंक्तियाँ अशुद्ध होने से उस का विवेचन करना दुःशक्य है। कुछ भावार्थ ऐसा निकाल सकते हैं कि — बाह्यभावग्राहि अनुमान भ्रान्त होने से बाह्यार्थग्राहि प्रत्यक्ष को अनुमानबाधा नहीं होगी। 20 ऐसा कहेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा — कैसे यह देखिये.... अनवस्था दोष होने से अनुमानग्राह्य बाह्यभाव नहीं हो सकता।)

### [ अनुमान से अर्थाभावसिद्धि अशक्य ]

और भी प्रश्न यहाँ खड़े हैं — अर्थाभावग्राहि अनुमान यदि होगा तो कार्यलिङ्ग से होगा — स्वभावहेतु से होगा या अनुपलब्धिजनित होगा ? पहला या दूसरा विकल्प तो आप (बौद्ध) को भी 25 स्वीकार्य नहीं है क्योंकि आप तो कार्य-स्वभाव हेतु को विधिसाधक ही मानते हैं जैसे कि आप के धर्मकीर्ति विद्वान ने कहा है (न्या०बि० २-१९ में) कि 'यहाँ पहले दो (हेतु) वस्तु (= भाव) के साधक हैं'। तीसरा पक्ष :- अनुपलब्धिवाला भी निष्फल है क्योंकि (अर्थ की) अनुपलब्धि ही असिद्ध है, स्पष्टतया ज्ञान में बाह्यार्थ भासित होता है। स्मरण में रहे कि यत्तत् अनुपलब्धि अभावसाधक नहीं होती किन्तु उपलब्धियोग्य वस्तु की अनुपलब्धि अभावसाधक होती है। वह भी सर्वदेश-सर्वकाल 30 में अभाव की स्थापना कर नहीं सकती किन्तु किसी नियतदेश — नियतकाल में ही अभाव सिद्ध

▲. अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ एकः प्रतिषेधहेतुः।।१९।। न्यायविन्दुप्र० इति पूर्वमुद्रिते।



सर्वत्र सर्वदेति न ततोऽपि सर्वथा अभावसिद्धिः।

- अथापि स्यात् नार्थाभावद्वारेण विज्ञानमात्रं साध्यते अपि त्वर्थ-संविदोस्सहोपलम्भनियमादभेदः चन्द्रद्वयादिवदिति वि(धि)मुखेनैव साध्यते इति न पूर्वोक्तो दोषः। — असदेतत्, अभेदस्य प्रत्यक्षेण बाधनात्। यतः पुरःस्थस्फुटवपुर्नीलादि प्रतिभाति हृदि रूपग्राहकाकारं बिभ्राणा संविच्चकास्तीति कुतो ध्वान्त (कुतोऽर्थ-तत्)संविदोरभेदः साधयितुं शक्यः शब्देऽश्रावण(त्व)वत् पक्षस्य प्रत्यक्षेण निराकृतेः ? न वाऽभेदेऽपि प्रत्यक्षं भेदाधिगन्तुपलब्धमिन्दुद्वयादिवत् इति न तेव(?न) बाधा। यतो द्विचन्द्रादौ बाधादर्शनात् तस्य भ्रान्तत्वमस्तु स्तम्भादौ त्वर्थक्रियाकारिरूपोपलब्धि(ब्धेः) तदभावास्त(?त्स)त्यता ततो नील-बुद्ध्योर्भेद एव। असिद्धश्चायं हेतुः मीमांसकमतेन विज्ञानव्यतिरेकेण बाह्यार्थस्यैवोपलम्भात् प्रत्यक्षार्थव्यतिरिक्तस्य तदा कर सकती है। अतः विज्ञानवादी जो सर्व देश-काल को ले कर अर्थ के अभाव की अनुमान (अनुपलब्धि) से सिद्ध करना चाहते हैं वह शक्य नहीं है। सारांश, भावबाधक कोई प्रमाण न होने से अर्थाभावसिद्धि के द्वारा विज्ञानमात्र की सिद्धि की आशा व्यर्थ है।

### [ सहोपलम्भहेतुक अभेदानुमान में बाध-असिद्धि दोष ]

- वि०वादी** :- हम सिर्फ अर्थाभाव के आधार पर ही विज्ञानमात्र की सिद्धि नहीं चाहते, (यहाँ प्रत्यक्ष से अभाव ग्रह हो न हो इस चर्चा का अन्त नहीं है) किन्तु दो चन्द्र की उपलब्धि की तरह सहोपलम्भ के आधार पर (यानी अर्थ और संवेदन का पृथक् पृथक् उपलम्भ नहीं होता, जब भी अर्थापलम्भ होता है तब विज्ञान के साथ ही होता है — सहोपलम्भनियमादभेदो नील-तद्विद्यः) नील अर्थ और उस के संवेदन का विधिमुख से यानी हकारात्मकरूप से (न कि अभावरूप या निषेधरूप से) सिद्ध करते हैं — इस में तो कोई दोष नहीं है।

- अर्थवादी** :- यह गलत है। उन दोनों का अभेद तो प्रत्यक्ष से बाधित है, कैसे सिद्ध करेंगे ? सुनिये — बाह्य देश में अपने संमुख ही नीलादि पिण्ड का स्फुट भासन होता है, दूसरी ओर रूपादिग्राहकाकार को धारण करता हुआ संवेदन अपने भीतर में भासित होता है — तो यहाँ अर्थ और उस के विज्ञान में अभेद की सिद्धि कैसे कर सकते है ? जैसे शब्द में अश्रावणत्वसिद्धि का उपक्रम करने जाय तो शब्द रूप पक्ष श्रावण (प्रत्यक्ष) होने के कारण प्रत्यक्षतः बाधित हो जाता है वैसा यहाँ समझ लो।

- विज्ञानवादी** :- आप प्रत्यक्षबाध की बात करते हैं तो जान लो जैसे चन्द्र का स्व में अभेद के रहते हुए भी प्रत्यक्ष से चन्द्रयुगल में (द्वित्व यानी) भेद की उपलब्धि होती है तो ऐसे, प्रत्यक्ष से हमारे सहोपलम्भहेतुक अभेदानुमान में बाधा कैसे होगी ?

- अर्थवादी** :- ऐसा कथन योग्य नहीं। कारण, मान लिया कि चन्द्रयुगल के बारे में बाध-उपलम्भ के कारण वह प्रत्यक्ष भ्रान्त होगा, किन्तु स्तम्भादि प्रत्यक्ष में बाध तो है नहीं, उपरांत वहाँ भारवहनादि अर्थक्रियाकारी रूप भी उपलब्ध होता है अतः वह सत्य ही है, उस से सिद्ध होता है कि नील और नीलविज्ञान का भेद है। दूसरा दोष है हेतु-असिद्धि, मीमांसक के मत में विज्ञान प्रत्यक्षगोचर नहीं है ज्ञाततालिंगक अनुमान-गोचर है। अतः उस के सामने विज्ञान के विना भी केवल नीलादि बाह्यार्थ

ज्ञानस्यानुपलक्षणात् ।

न चान्तःसुखाज्ञा (?द्या)कारज्ञानोपलम्भात् सिद्धो हेतुः इति वक्तव्यम्, सुखादेर्बाह्य(1?)संवेदनं प्रति व्यापाराऽसंवेदनात् । न हि सुखादयः स्वरूपनिग्नतया प्रतिभासमानास्तदैवार्थग्राहितया प्रतीयन्ते । न च समकालप्रतिभासनात् व्यापारमन्तरेणापि नीलादिग्राहकाः, तेषामपि तद्ग्राहकतापत्तेः । यदि च नीला(दी)नां सुखादिकं ग्राहकं तथा सति तदभावे नीलादीनां ग्रहणं न स्यात् । न हि यद् यद्ग्राह्यं तत् तदभावे 5 प्रतिभाति चक्षुरभाव इव रूपम्, चक्षुःसमवधाने च सुखाभावेपि नीलमाभाति [?? नापि तस्य तद्ग्राहकम् । यदि च सुखादिरूपैव संविद् नान्या एवं सति सुखाद्यभावेपि नीलादिकस्य स्फुटतया प्रतिभासात् तदा मानसस्य च सुखादेर्नीलावभासा(भा)वेप्यवभासनत्वाऽसिद्धो नीलादीनां ग्रहणं न स्यात् नहि यद् यद्ग्राह्यं तत् तदभा(व)द्धियोः सहोपलम्भनियमः नियतकादाचित्कसहोपलम्भतो (त)योर्नियमो युक्तः, नीलपीतयोरपि

का उपलम्भ होने से सहोपलम्भ हेतु असिद्ध है, उस के मत में बाह्यार्थ के सिवा प्रत्यक्ष में ज्ञान 10 का वेदन होता नहीं है ।

[ सहोपलम्भनियम हेतु की सिद्धि के प्रयास का निरसन ]

विज्ञानवादी :- नीलादि को देख कर भीतरी सुख-दुःखादि आकार ज्ञान का बाह्यार्थ संकलितरूप से उपलम्भ होता है इस से ही नीलादि सुख-ज्ञान का अभेदसाधक सहोपलम्भ हेतु सिद्ध होता है ।

अर्थवादी :- ऐसा नहीं है, सुख या सुखाकार ज्ञान बाह्यार्थ संवेदन के लिये व्यापृत नहीं होते । 15 सुखादि तो अपने स्वरूप में मग्न होते हुए भासित होते हैं, बाह्यार्थग्राहकरूप से वे कभी प्रतीत नहीं होते ।

विज्ञानवादी :- विना व्यापार भी नील और ज्ञान समानकाल में भासते होने से संवेदनों को नीलादिग्राहक मानना होगा ।

अर्थवादी :- हम भी कहेंगे कि विना व्यापार भी नीलादि बाह्य पदार्थ अपने सुखादिरूप संवेदनों 20 के ग्राहक बनेंगे चूँकि समकाल में भासित होते हैं । यदि आप सुखादि को (सुखाभिन्नसंवेदन को) नीलादि के ग्राहक मानेंगे तो यह विपदा होगी कि सुखादि के विरह में कभी भी नीलादि का ग्रहण नहीं होगा । नियम देखिये — जो जिस से ग्राह्य बनता है वह उस के अभाव में गृहीत नहीं होता जैसे नेत्र के विरह में रूप । दूसरी ओर हकीकत है कि सुख के विरह में भी नेत्रसन्निधान में नील का भान होता है । [यहाँ कौंस में रहा हुआ पाठ अशुद्ध है, यद्यपि अशुद्ध पाठ का विवेचन अशक्य 25 है, फिर भी शुद्ध पाठ की कल्पना कर के संभवित भावार्थ लिखने का प्रयास है — वास्तव में तो सुखादि नीलादि का ग्राहक ही नहीं है, विज्ञान यदि सुखादिरूप ही होता, भिन्न नहीं — तो ऐसा मानने पर सुखादि के विरह में नीलादि का स्फुटरूप से प्रतिभास होता है वह नहीं होता । तथा नीलादि अवभास न होने पर भी मानसिक सुखादि अवभास होता है वह असिद्ध हो जाने से नीलादि का ग्रहण नहीं होगा । जो जिस से अग्राह्य होता है वह उस के विना भी भासित होता है अतः 30 नील और विज्ञान का सहोपलम्भनियम नहीं रहा । अनियत एवं कादाचित्क सहोपलम्भ के आधार पर अभेद का नियम युक्तियुक्त नहीं । अन्यथा, कदाचित नील-पीत उभय का सहोपलम्भ होने पर उन का

तथाभावप्रसङ्गात् ततः सुखादिरूपा न बुद्धिः ? ?] नापि नीलोपलम्भकाले प्रतिभाति केवलस्य नीलस्यैव तदा प्रतिभासात् (पश्चात्) त्वर्थप्रत्यक्षताऽन्यथानुपपत्त्या गम्यते।

अन्ये तु मन्यन्ते— पश्चादपि प्रत्यक्षत एव बुद्धिः प्रतीयते न पुनः सा सर्वदा परोक्षा इत्यसिद्ध एव सहोपलम्भनियमः, क्रमेण नीलतद्धियोः प्रतिभासात्। अथ नीलप्रतिभासकाले तद्बुद्धिः प्रत्यक्षा भवेत् तथापि सहोपलम्भश्च भवेत् भेदश्चेति नात्र विरोधः, तथापि (?हि)—रूपालोकयोर्भिन्नयोरपि सहोपलम्भात् कथं सहोपलम्भनियमस्य भेदेन सह विरोधसिद्धिः ? न च कार्य-कारणभावप्रतिबन्धतो ग्राह्यलक्षणत्वाच्च रूपालोकयोर्भेदेपि सहोपलम्भः, नील-तद्धियोरपि प्रतिबन्धादेव सहोपलम्भसम्भवात्। न च तयोस्तुल्यकालत्वात् प्रतिबन्ध एव न सम्भवतीति वाच्यम् एकसामग्र्यधीनतालक्षणस्य प्रतिबन्धस्य प्रत्यक्षनीलतद्बुद्धयोः सम्भवात्। ततः सहोपलम्भेऽपि नाभेदो भवेत्। न चाऽभेदेन व्याप्तः सहोपलम्भः सिद्धः येन ततस्तत्सिद्धिः स्यात्।

10 भी अभेद प्रसक्त होगा। फलितार्थ — बुद्धि भी सुखादिरूप नहीं (भले सुखादिविषयक हो।] तथा नीलोपलब्धिकाल में मीमांसक मतानुसार बुद्धि भासित नहीं होती, उस वक्त सिर्फ नील का ही प्रतिभास होता है, बाद में अर्थप्रत्यक्षता (ज्ञातता) की अन्यथा अनुपपत्ति से बुद्धि की आनुमानिक प्रतीति होती है।

[ बुद्धि प्रत्यक्ष है, सहोपलम्भ के साथ भेद सत्ता — नैयायिक ]

दूसरे लोग (नैयायिकादि) कहते हैं — बाद में भी प्रत्यक्ष से ही बुद्धि भासित होती है (न 15 कि ज्ञातता लिंगक अनुमिति से, किन्तु अनुव्यवसायात्मक प्रत्यक्ष से भासित होती है)। बुद्धि मीमांसक की तरह सदा के लिये परोक्ष होती है ऐसा नहीं है अतः अर्थ एवं बुद्धि का सहोपलम्भ नियम यहाँ खण्डित हो जाता है। पहले व्यवसाय से नीलादि, बाद में अनुव्यवसाय प्रत्यक्ष से बुद्धि इस तरह क्रमशः उन का अवभास होता है। कदाचित् मान ले कि (स्वप्रकाशवादीमतानुसार) बुद्धि नीलप्रतिभासकाल में प्रत्यक्ष भासती है, तथापि यानी सहोपलम्भ के रहते हुए भी भेद हो सकता 20 है नील एवं बुद्धि का इस में कोई विरोध नहीं। कैसे यह देखिये — रूप और आलोक का नेत्र द्वारा एक साथ उपलम्भ होता है किन्तु वे दोनों भिन्न है, तो सहोपलम्भनियम के साथ भेद का विरोध कैसे सिद्ध होगा ? अगर कहा जाय कि (एक) आलोककारण है, रूपदर्शन कार्य है इस प्रकार यहाँ कारण-कार्यभाव सम्बन्ध है तथा (दो) दोनों ही ग्राह्यस्वरूप है, अतः वहाँ सहोपलम्भ होने पर भी भेद घटता है — अहो ! तब तो यहाँ भी नील एवं उस की बुद्धि में कारण-कार्य सम्बन्ध है, दोनों 25 ही ग्राह्य है, तो सहोपलम्भ हो सकता है और भेद भी।

[ प्रतिबन्धमूलकभेद दोनों ओर समान ]

यदि कहें कि — 'नील और नीलबुद्धि दोनों समकालीन होने से कार्यकारण भाव सम्बन्ध ही नहीं है' — तो यह कथन निषेधपात्र है क्योंकि समकालीन मानने पर भी एकसामग्रीजन्यत्वस्वरूप सम्बन्ध तो दोनों में मौजूद रहेगा प्रत्यक्ष नील एवं नीलबुद्धि दोनों में। तब यहाँ सहोपलम्भ होने 30 पर भी अभेद सिद्ध नहीं होगा। जहाँ जहाँ सहोपलम्भ है वहाँ वहाँ अभेद है — ऐसी व्याप्ति नहीं है जिससे कि अभेद की सिद्धि सहोपलम्भ से हो सके। यदि कहा जाय — 'चन्द्रयुगल में अभेद के साथ सहोपलम्भ दिखता है, इस आधार पर अन्य स्थानों में भी अभेद मानेंगे' — तो यह असार

अथ द्विचन्द्रादावभेदे सहोपलम्भदर्शनादन्यत्रापि ततोऽभेदः। नैतत् सारम्, दृष्टान्तमात्रात् साध्यसिद्धेरयोगात् अन्यथा हेतुवैयर्थ्यप्रसक्तेः। न चाऽभेदव्याप्तः कश्चिद्धेतुरस्ति। न च दृष्टान्तोऽपि सिद्धः चन्द्रद्वयादेरपि ज्ञानाद् भिन्नत्वेन प्रतिपादितत्वात् (१००-२)।

अनैकान्तिकश्चायं हेतुः, सर्वज्ञज्ञानस्य पृथग्जनचित्तस्य सहोपलम्भेऽपि भेदाभ्युपगमात्। न च सर्वज्ञज्ञानसंवेदनं विनापि पृथग्जनचित्तसंवेदनसम्भवात् न तत्र सहोपलम्भनियमः इति वाच्यम्, यतः परदृशं 5 विनापि तद्ग्राह्यं नीलादि पृथग् नरान्तराण्युपलभन्त इति तद्दर्शनात् तदपि भिन्नमस्तु। अपि च, सह शिष्येण पण्डितः' इति 'सह' शब्दो भेद एवोपलब्धः ततो हेतुर्विरुद्धो भवेत् सहभावविवक्षायां भेदेन व्याप्तत्वात्। अथ 'सह' शब्दो नैव सहभावार्थवृत्तिः किन्तु एकार्थवृत्तिः, ततः 'एकोपलम्भात्' इति हेतुर्विवक्षितः, न चासौ विरुद्धः। असदेतत्— एकोपलम्भस्याऽसिद्धत्वात्, तदसिद्धत्वं च नील-तद्धियोर्भेदोपलम्भात्। तथाहि— बहिर्गतत्वेन देशकालादिभिन्नतया ग्राह्यतया नीलं भिन्नमाभाति—अन्तर्गतत्वेन 10 सुखादिरूपतया ग्राहकरूपापन्ना बुद्धिराभातीति न तयोरेकोपलम्भः सिद्धः।

है क्योंकि केवलदृष्टान्त से साध्यसिद्धि युक्त नहीं है, क्योंकि तब तो सर्वत्र हेतु निरर्थक सिद्ध होगा। अभेद के साथ व्याप्ति धारण करनेवाला कोई हेतु यहाँ नहीं है। तथा दृष्टान्त भी असिद्ध है क्योंकि पहले यह कह दिया है (१००-१६) कि चन्द्रयुगलआदि भी ज्ञानभिन्न है।

### [ सहोपलम्भ हेतु में अनैकान्तिक या विरुद्ध या असिद्धि दोष ]

15

अभेदानुमान के लिये प्रयुक्त सहोपलम्भ हेतु साध्यद्रोही भी है, सर्वज्ञ को अपना ज्ञान और सामान्यजन का चित्त दोनों का एकसाथ ही उपलम्भ होने का नियम है फिर भी उन दोनों में भेद स्वीकृत है। ऐसा नहीं कहना कि — 'किसी किसी को सर्वज्ञज्ञानसंवेदन नहीं है किन्तु सामान्यजन के चित्त का संवेदन होता है यहाँ सहोपलम्भनियम हेतु नहीं है अभेद भी नहीं है तो हेतु असिद्ध कैसे ?' — क्योंकि अन्य व्यक्ति के दर्शन या संवेदन के ग्रहण के विना भी उस के दर्शन का ग्राह्यविषय नीलादि 20 अन्य सामान्यजनों को उपलब्ध होता है यह दिखता है अतः वहाँ भी (बुद्धि और नील में) भेद रहने दो। और एक बात, 'सह' शब्द का अर्थ सोचिये — 'शिष्य के साथ पंडित घुमता है' यहाँ पंडित और शिष्य के भेद के रहते ही 'सह' शब्दप्रयोग किया जाता है (अभेद हो तब नहीं), अतः अभेद से विरुद्ध भेद का साधक होने से सहोपलम्भ हेतु विरुद्ध ठहरा, क्योंकि 'सह' शब्दार्थ जो सहभाव है उस की तो भेद के साथ व्याप्ति है। यदि कहें कि — 'सह' शब्द सहभाव अर्थ में वाच्यत्व 25 सम्बन्ध से वृत्ति नहीं है, किन्तु 'एक अर्थ' में वृत्ति है। अब सहोपलम्भ शब्द से एकोपलम्भ तो अभिन्न ही होता है।' — तो यह गलत है। प्रस्तुत में नील-नीलबुद्धि स्थल में एकोपलम्भ (यद्यपि विरुद्ध या अनैकान्तिक हो — न हो) असिद्ध है। असिद्धि इस तरह :- नील और नीलबुद्धि में तो भेद का ही उपलम्भ है (एकोपलम्भ नहीं!) स्पष्टता :- नील पदार्थ बाह्यरूप से, देश-कालादि भेद से भिन्न एवं ग्राह्यरूप से भासित होता है, उस से विपरीत :- नीलबुद्धि आन्तरिकस्वरूप से, सुखादिआत्मक 30 तथा ग्राहकरूप से विदित होती है। अतः उन दोनों का एकोपलम्भ सिद्ध नहीं है।

- किञ्च, एकस्यैवोपलम्भो <sup>a</sup>ज्ञानस्य <sup>b</sup>अर्थस्य वा ? यदि <sup>a</sup>ज्ञानस्यैव तदा हेतुरसिद्धः। न हि परं प्रति ज्ञानस्यैवोपलब्धिः सिद्धा, अर्थस्याप्युपलब्धेः। न च तस्याभावात् अनुपलब्धिः इतरेतराश्रयदोषात्। तथाहि— अर्थाभावे सिद्धे ज्ञानस्यैवैकस्योपलम्भः सिद्धो भवति तदुपलम्भसिद्धौ चार्थाभाव इतीतरेतराश्रयत्वम्। न चैकस्य ज्ञानस्योपलम्भः एवेति हेत्वर्थो युक्तः, नीलादेरुपलम्भाऽनिराकरणात्। एवं च
- 5 कथमर्थाभावसिद्धिः इत्यनैकान्तिक एव हेतुः। अथ <sup>b</sup>अर्थस्यैवैकस्योपलम्भः एवमपि नार्थाभावसिद्धिः। न च 'तथासंवेदनात्' इत्ययमपि हेतुः असिद्धत्वात्। तथाहि— यादृग्भूतं ज्ञाने संवेदनं (न) तादृगर्थं, स्वप्रकाशरूपत्वात्) ज्ञानस्य, इतरस्य च तद्विपर्ययात्। अर्थस्य हि ज्ञानाधीनः प्रकाशो जडत्वात् न त्व(?स्व)यम्। ततो यदि स्वप्रकाशनं तथासंवेदनं हेत्वर्थः तदाऽसिद्ध(?द्धिः) तदर्थस्य।
- 10 अथ संवेदनसामान्यं स्व-परसंविदो हेतुः। तस्य प्रतिबन्धो वाच्यः, यतः साधारणं सत् तदर्थ-ज्ञानयोः ज्ञानात्मतामेव साधयति। अथापि— 'संवेदन'शब्दो हेतुः सोपि प्रतिबन्धाभावादेव न साध्यं साधयति।

### [ ज्ञानमात्र का या अर्थ का एकोपलम्भ हेतु सदोष ]

- उपरांत, हेतु जो है 'एक का उपलम्भ' — इस में एक का यानी किस का ?<sup>a</sup> ज्ञान का या <sup>a</sup>अर्थ का ? <sup>b</sup>यदि ज्ञान का — तो हेतु असिद्ध है। अन्य वादी (अर्थवादी) के प्रति, उपलम्भ सिर्फ ज्ञान का ही नहीं होता अर्थ का भी होता है। यदि अर्थ न होने से उस का उपलम्भ न होने का
- 15 कहा जाय (असत् बताया जाय) तो इतरेतराश्रय दोष प्रसक्त होगा। स्पष्ट है — अर्थाभाव सिद्ध होता तभी अकेले ज्ञानमात्र का उपलम्भ (हेतु) प्रसिद्ध बनेगा, तथा अकेले ज्ञानमात्र का उपलम्भ सिद्ध होने पर ही अर्थाभाव सिद्ध होगा — यह अन्योन्याश्रय है। यदि एकोपलम्भ हेतु का अर्थ किया जाय 'एक ज्ञान का उपलम्भ ही' तो यह भी अयुक्त है क्योंकि इस अर्थ में, अर्थ का यानी नीलादि का व्यवच्छेद तो नहीं हुआ (अतः उस का भी उपलम्भ मान लेने पर 'एक ज्ञान का उपलम्भ' ऐसा अर्थ असंगत
- 20 हो गया।) तब अर्थाभाव की सिद्धि कैसे होगी ? इस प्रकार एकोपलम्भ हेतु अर्थ के साथ भी रह जाने से अनैकान्तिक दोष आया। <sup>b</sup>यदि एको० हेतु का अर्थ किया जाय एक यानी अर्थ का उपलम्भ, तब तो बाह्यार्थ की सुतरां सिद्धि हो जाने से अर्थाभाव की सिद्धि तो दूर रह गयी।

### [ अभेदसाधक तथासंवेदन हेतु में दोषप्रसङ्ग ]

- सहोपलम्भ के बदले ज्ञान-अर्थ के अभेद की सिद्धि के लिये 'तथा संवेदन' हेतु किया जाय तो यहाँ
- 25 उसे असिद्धि दोष लगेगा। स्पष्टता :- तथासंवेदन का अर्थ क्या है ? ज्ञान का जैसा संवेदन होता है वैसा ही अर्थ का ? तो यह गलत है क्योंकि ज्ञान का संवेदन स्वप्रकाशरूप से होता है जब कि अर्थ का संवेदन परप्रकाशरूप से होता है। अर्थ का प्रकाशन स्वतः नहीं किन्तु ज्ञानाधीन होता है क्योंकि वह जड है। तब यदि तथासंवेदन हेतु का मतलब 'स्वप्रकाशन' ऐसा हो तो ऐसा अर्थ (अर्थ पक्ष में) असिद्ध है।

### [ साधारण संवेदनरूप हेतु में दोषपरम्परा ]

- 30 विज्ञानवादी कहें कि स्व-परसंवेदन (विशेष नहीं किन्तु) साधारण संवेदनसामान्य को हेतु करेंगे। तो — यहाँ कौन सा व्याप्तिसम्बन्ध है यह दिखाओ जिस से कि वह साधारण होते हुए अर्थ और ज्ञान की ज्ञानात्मकता सिद्ध कर सके। कदाचित् 'संवेदन' शब्द मात्र को ही हेतु किया जाय, किन्तु

किञ्च, तदा(था)संवेदनं नीलादीनामभावसाधनत्वेनोपन्यस्यते उत ज्ञानात्मकताप्रसाधकत्वेन ? यद्याद्यः पक्षः स न युक्तः हेतोर्विरुद्धत्वप्रसक्तेः, उपलब्धेः सत्तया व्याप्तत्वात्। न ह्यसदुपलभ्यते तथाभ्युपगमे वा ज्ञप्तावप्यसत्त्वप्रसक्तिः। न चाऽसतोऽनुपलम्भे द्विचन्द्रादेरनुपलब्धिप्रसक्तिः, तस्यापि सत्तायोगित्वप्रतिपादनात्। यदि वा संवेदनं सति ज्ञानेऽसति च चन्द्रद्वये उपलब्धिमित्यनैकान्तिकमस्तु। अथ ज्ञानात्मकता तथा-संवेदनात् साध्यते, तत्रापि वक्तव्यम्— किं ज्ञानात्मकत्वेन नीलादेः संवेदनम् उत व्यतिरिक्ततया ? प्रथमपक्षे 5 ज्ञानात्मकं संवेदनं नीलादेर्हेतुः स चाध्यक्षसिद्धोऽभ्युपगन्तव्यः इति नापरं साध्यमस्ति यदर्थं हेतुः स्यात्। द्वितीयपक्षेऽपि हेतुर्विरुद्धः भिन्नरूपं हि संवेदनं भेदमेव साधयति नैकत्वम् अन्यथा भेदोपरतिप्रसक्तेः। तदयमपि हेतुः न युक्तः। इति न कुतश्चित् विज्ञप्तिमात्रसिद्धिः। (पूर्वपक्ष समाप्त)

[ विज्ञानवादियोगाचारमतेन विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः :- उत्तरपक्षः ]

अत्र प्रतिविदधति :- यत् तावदुक्तम् (९६-३) — ‘कथं प्रत्यक्षप्रतीतवपुषां नीलादीनामभावः साध्यितुं 10

व्याप्तिसम्बन्ध के विरह में वह भी साध्यसिद्धि के लिये सक्षम नहीं। उपरांत, पहले जो तथासंवेदन को हेतु कहा है वह क्या है ? नीलादि के अभाव की सिद्धि के लिये हेतुरूप से उस को पेश किया है या ज्ञानात्मकताप्रसाधक के रूप में ? पहला पक्ष युक्त नहीं, क्योंकि हेतु में विरोध दोष है। तथासंवेदन तो नीलाभाव के बदले नीलादि को ही सिद्ध करते हैं, क्योंकि नीलादि की उपलब्धि होती है। हमेशा वस्तु की उपलब्धि वस्तु की सत्ता से व्याप्त होती है, असत् की कभी उपलब्धि नहीं होती। यदि असत् 15 की उपलब्धि होती हो तो विज्ञान की उपलब्धि होती है इस लिये विज्ञान को भी असत् मानना होगा। यदि कहें कि — ‘असत् का उपलम्भ नहीं मानेंगे तो असत् चन्द्रयुगल की उपलब्धि नहीं हो पायेगी’ — तो सुन लो कि हमने तो पहले उसमें भी सत्तायोग का समर्थन कर दिखाया है। अथवा संवेदन हेतु में अनैकान्तिक दोष का स्वीकार कर लो क्योंकि संवेदन तो अब आप के मत से ज्ञानादि सत् और चन्द्रयुगल असत् दोनों का समानरूप से होता है, तब सिर्फ अर्थाभाव या ज्ञानात्मकता की सिद्धि 20 कैसे करेंगे ? दूसरा विकल्प :- तथा संवेदन हेतु से ज्ञानात्मकता की सिद्धि करेंगे — तो यहाँ प्रश्न होगा कि नीलादि का ज्ञानात्मकरूप से संवेदन (हेतु) मानेंगे या नीलादिभिन्नरूप से मानेंगे ? प्रथम पक्ष में ज्ञानात्मक संवेदन ही हेतु है जो प्रत्यक्षसिद्ध है और ज्ञानात्मकता से अन्य कोई साध्य नहीं है जिस के लिये हेतुप्रयोग की जरूर बचे। द्वितीय पक्ष में, हेतु में विरोध दोष आयेगा — नीलादि का भिन्नरूप से संवेदन यह हेतु अभिन्नरूपता साध्य को कैसे सिद्ध करेगा ? भेद को ही सिद्ध कर 25 सकता है एकत्व को नहीं, अन्यथा भिन्नरूप से संवेदन सर्वत्र एकत्व को ही सिद्ध करता रहेगा तब भेदवार्ता का ही लोप हो जायेगा। सारांश, तथासंवेदन या संवेदनसामान्य कोई भी हेतु निर्दोष नहीं है तो विज्ञानमात्र की सिद्धि कैसे होगी ? (विज्ञानवाद के विरुद्ध पूर्वपक्ष समाप्त)।

[ बाह्यार्थवादी के सामने विज्ञानवादी का उत्तरपक्ष ]

बाह्यार्थवादीने अपना पक्ष प्रस्तुत किया, अब उस के प्रति विज्ञानवादी विस्तार से प्रत्युत्तर करते 30 हैं —

बाह्यार्थवादीने जो यह कहा था (९६-१७) — प्रत्यक्षदृष्ट पिण्डात्मक नीलादि बाह्यार्थ का अभाव

शक्यते' इति तत्र प्रत्यक्षेणाऽर्थपरिच्छेदाऽसम्भवात् कथं नीलादीनां प्रत्यक्षपरिच्छेद्यता ? तथाहि— प्रत्यक्षमर्थ  
<sup>A</sup>तुल्यकालं वा प्रकाशयति, <sup>B</sup>भिन्नकालं वा ? तुल्यकालमपि <sup>A1</sup>प्रत्यक्षं <sup>A2</sup>परोक्षं वा ? <sup>A1</sup>यदि प्रत्यक्षं  
 ज्ञानमर्थात्मानं तुल्यकालमवभासयति तथा सति यदैव ज्ञानमवभासतेऽध्यक्षतया तदैव नीलादिस्वरूपमपि  
 परिस्फुटमाभाति स्वरूपनिष्ठयोर्द्वयोरपि प्रतिभासनात् कथं ग्राह्य-ग्राहकभावः ? तथाहि— ज्ञानं नीलाकारविविक्तं  
 5 स्वरूपनिमग्नं हृदि सन्धीयते अर्थस्तु तद्ग्राह्यपरिहारे(ण) बहिः स्फुटवपुः प्रतिभाति । न च दर्शनप्रतिभासकाले  
 नीलं स्वरूपनिष्ठं प्रतिभातीति तद्ग्राह्यं युक्तम्, ज्ञानस्यापि नीलावभासकाले प्रतिभासनात् तद्ग्राह्यतापत्तेः ।  
 न च दर्शनं बहिरर्थसंविदं प्रति ग्रहणक्रियामुपरचयतीति तद् ग्राहकम् नीलं तु तत्प्रतिबद्धप्रकाशतया  
 ग्राह्यमिति वक्तव्यम्, नील-दर्शनव्यतिरिक्ताया ग्रहणक्रियाया अभावात्, यतो न तथाभूततद्द्वयव्यतिरिक्ता  
 ग्रहणक्रिया प्रतिभाति । न च तामन्तरेण कर्तृ-कर्मते नील-बोधयोर्युक्ते अतिप्रसङ्गात् ।

10 भवतु वा तद्व्यतिरिक्ताऽपरा क्रिया, तथापि परोक्षायां तस्यां नीलादेः कर्मसम्(त्वं) बन्धोतस्य  
 कैसे सिद्ध हो सकता है ? — यहाँ विज्ञानवादी पूछते हैं — जब प्रत्यक्ष से अर्थबोध का सम्भव  
 ही नहीं तब बाह्यार्थ का प्रत्यक्षबोध कैसे हो सकता है ? स्पष्ट सुनो ! प्रत्यक्ष अपने <sup>A</sup>समानकाल  
 में अर्थप्रकाशन करेगा या <sup>B</sup>भिन्नकाल में ? समानकाल में भी <sup>A1</sup>प्रत्यक्षज्ञान ही अर्थप्रकाशन करेगा  
 या <sup>A2</sup>परोक्ष ज्ञान भी ? <sup>A1</sup>अगर प्रत्यक्षज्ञान समानकाल में अर्थभासन करेगा तो उस स्थिति में जब  
 15 ही ज्ञान भासित होता है तभी नीलादि (उस ज्ञान का ही) स्वरूप स्पष्ट भासित होता है, इस प्रकार  
 अपने अपने पृथक् स्वरूप में लीन और भासमान दोनों में ग्राह्य-ग्राहक भाव कैसे मेल खायेगा ?  
 स्पष्ट समझो — नीलाकारविनिर्मुक्त सिर्फ अपने संवेदन में मस्त ज्ञान भीतर में संवेदित होता है,  
 अर्थ तो आन्तरस्वरूप से मुक्त सिर्फ बाह्यपिण्डाकार स्फुट प्रतीत होता है । ऐसा कहना कि — 'दर्शनप्रतिभास  
 समानकाल में नील भी अपने स्वरूप में अवस्थित प्रकार से भासित होता है — इस लिये वह ग्राह्य  
 20 बन गया' — उचित नहीं, क्योंकि नीलप्रतिभासकाल में ज्ञान भी स्वरूपतः भासित होता है तो ज्ञान  
 भी ग्राह्य बन जायेगा ।

यदि कहें कि — 'ग्रहण क्रिया करने वाला ग्राहक बनता है और गृहीत होने वाला ग्राह्य बनता  
 है, प्रस्तुत में दर्शन बाह्यार्थ संवेदन के लिये ग्रहणक्रियाकारक होने से ग्राहक कहा जाता है और नील  
 पदार्थ का प्रकाशन दर्शन को अधीन होने से वह ग्राह्य कहा जाता है' — यह कथन अयुक्त है क्योंकि  
 25 दर्शन या नील से भिन्न स्वतन्त्र कोई ग्रहण क्रिया है नहीं जिस के अवलम्ब से एक ग्राहक और  
 दूसरा ग्राह्य ऐसा विभाग किया जा सके । स्वरूपावस्थित दर्शन एवं नील से विभिन्न किसी 'ग्रहणक्रिया'  
 का अनुभव नहीं होता । जब ग्रहणक्रिया की सत्ता शंकाप्रस्त है तब उस के विना कर्तृत्व और कर्मत्व  
 भी क्रमशः दर्शन और नील में मानना अयुक्त है, क्योंकि तब ग्रहण क्रिया की असिद्धि में नील ग्राहक  
 और दर्शन ग्राह्य मानने का भी अनिष्ट खतरा हो सकता है ।

30 [ व्यतिरिक्त ग्रहणक्रियापक्ष में विकल्पद्वय की सदोषता ]

अथवा मान लो कि क्रिया दर्शन-नील दोनों से पृथक् है, उस को परोक्ष मानेंगे या प्रत्यक्ष में  
 भासमान ? परोक्ष मानेंगे तो उस के आधार पर यह विभागीकरण नहीं हो सकेगा कि नीलादि कर्म

(?बोधस्य) च कर्तृत्वमतिप्रसङ्गतोऽयुक्तमिति प्रतिभास(मा)न(1?)तनुरभ्युपगन्तव्या, तथाभ्युपगमेऽपि च किञ्चित् (?किंस्वित्)<sup>a</sup> सा स्वरूपेण प्रतिभाति उत<sup>b</sup> तद्ग्राह्यतयेति वक्तव्यम्। <sup>a</sup>प्रथमपक्षे क्रिया स्वरूपनिर्गमना प्रतिभातीति नीलम् बोधः ग्रहणक्रिया चेति त्रितयं स्वतन्त्रमाभातीति न कर्म-कर्तृ-क्रियाव्यवहतिर्युक्तिमती। न च परस्परस्वरूपविविक्तनिर्भासादेव कर्म-कर्तृक्रियाव्यवहारः, स्तम्भादेरपि तथा परस्परव्यवहारप्रसक्तेः। <sup>b</sup>अथ ग्राह्यतया क्रिया प्रतिभाति तदा तस्या अप्यपरक्रियाविषयीक्रियमाणायाः कर्मतेति निरवधिः क्रिया- 5 परम्परा प्रसज्येत। अथ क्रियान्तरमन्तरेण ग्रहणक्रियाया ग्राह्यता, नन्वेवं नीलादेरपि ग्रहणक्रियाव्यतिरेकेण स्वप्रकाशवपुषो ग्राह्यता समस्तु। तथा च नीलादीनां स्वरूपमेव प्रकाशात्मकमिति विज्ञप्तिमात्रमेव सर्वं भवेत्।

अपि च बोध (क?)काले यदि संवेदनक्रिया विद्यमाना तदा समानकालतया प्रतिभासनात् कथं ज्ञानस्य संवित्क्रियां प्रति कर्तृता ? न हि समानकालयोः सव्येतरगोविषाणयोरिव हेतु-फलभावः। अथ 10 बोधोत्तरकालभाविनी क्रिया तथापि यदा ज्ञानसत्ता न तदा संवित्क्रिया यदा तु संवेदनक्रिया प्रतिभाति न तदा ज्ञानप्रतिभासः इति कथं हेतु-फलभावः ? न च पूर्वं स्वरूपेण बोधः प्रतिभातः पश्चाद् नयनादि-

और बोध कर्ता है, क्योंकि परोक्ष ग्रहण क्रिया इस से उलटी भी हो सकती है नीलादि कर्ता और बोध उस का कर्म — तो यह अनिष्ट प्रसक्त होगा। अतः ग्रहणक्रिया को यदि प्रत्यक्ष में स्फुरायमान मानेंगे तो यहाँ दो विकल्प — <sup>a</sup>वह स्वरूप से स्फुरायमान होगी या <sup>b</sup>ग्राह्यरूप से ? प्रथम पक्ष में तो अब 15 स्वतन्त्र स्वरूप से तीन पदार्थों का भासन होगा — नील, बोध और ग्रहण क्रिया, मतलब कि स्वतन्त्र भासमान तीनों में यह कर्ता यह कर्म और यह क्रिया ऐसा व्यवहार अयुक्त फलित होगा। जहाँ अनेक पदार्थ परस्पर पृथक् पृथक् स्वरूप से भासित होते हैं वहाँ कर्म-कर्ता-क्रिया का व्यवहार युक्तियुक्त नहीं है। युक्तियुक्त मानेंगे तो स्वतन्त्र पृथक् भासमान स्तम्भ-कुम्भादि में भी वैसा व्यवहार प्रसक्त होगा।

<sup>b</sup>यदि स्वरूप से नहीं, ग्राह्यरूप से क्रिया भासित होने का मानेंगे तो ग्राह्य होने से वह भी 20 अन्य क्रिया का विषय बनती हुयी कर्मतापन्न हो जायेगी। वह दूसरी क्रिया भी ग्राह्यरूप से भासित होगी, अतः वह भी अन्य क्रिया का विषय बनती हुई कर्मतापन्न होगी — इस प्रकार अन्य अन्य क्रियाओं की कल्पना का अन्त ही नहीं होगा। यदि अनवस्था से बचने के लिये अन्यक्रिया से निरपेक्ष ही प्रथम ग्रहणक्रिया की ग्राह्यता (यानी स्वतः प्रकाशता) मान लेंगे तब तो उसी प्रकार नीलादि को भी ग्रहणक्रिया से निरपेक्ष ग्राह्यता यानी स्वप्रकाश पिण्डात्मक मान लो, अतः स्पष्ट फलित हो जायेगा 25 कि नीलादि पदार्थ भी प्रकाशात्मक स्वरूप ही है अतः वस्तुमात्र विज्ञप्तिस्वरूप सिद्ध हुई।

### [ बोध एवं संवेदनक्रिया में कारण-कार्यभाव असंगत ]

यह भी सोचना चाहिये कि ज्ञान समानकाल में यदि संवेदनक्रिया (= ग्रहणक्रिया) सत्ता में है तो समानकाल में ही उस का प्रतिभास होने से, ऐसा कैसे हो सकता है कि ज्ञान संवेदन क्रिया का कर्तृ बने ? दायें-बायें गोशृंग समानकालीन होते हैं तो उन में कारण-कार्यभाव नहीं होता। कदाचित् 30 ज्ञान के उत्तरकाल में ज्ञानजन्य संवेदनक्रिया सत्ता में हो, फिर भी जब ज्ञान की सत्ता है उस क्षण में संवेदन क्रिया भासित नहीं होती, जब संवेदन क्रिया है तब ज्ञान का प्रतिभास नहीं होता —



सामग्रीवशात् संवेदनक्रियायुक्तो भातीति कर्त्ताऽसाविति वक्तव्यम्, यतो यदा संविक्रियायुक्तो बोधः प्रतीयते न तदा तत्पूर्वदशावगमः, यदा च तदवगमः न तदा संविद्युक्तावस्थाधिगतिरिति न पूर्वापरकालावगतिस्तयोरवस्थयोः, तदभावे च कथं बोधस्य ग्रहणं प्रति कर्तृताप्रतीतिः ?

- अथ नीलानुभवसमये पूर्वदशां स्मरन् बोधस्यानुभवं प्रति कर्तृतां प्रतिपद्यते। अयुक्तमेतत्— नीलपरिच्छेद-  
 5 काले बोध-ग्रहणयोः परस्परऽसंस्कृतयोः समानकालयोः प्रतिभासनात् कर्तृतावगमासम्भवात्। न च बोधस्य पूर्वावस्थां अध्यवस्था(स्य)दपि स्मरणं ग्रहणावस्थां प्रतिपद्यते, इति कथं तत् कर्तृतामुद्घोतयितुं प्रभु ? न च बोधात्मैवात्मानमुपलभत इति कर्तृतावगतिः, यतो यदा नीलग्राहकमात्मानं बोधः प्रतिप(1?)द्यते न तदा पूर्वसत्तामनुभवकर्त्री प्रतिपद्यत इति कथं ग्रहणं प्रति जनकतामात्मनोऽसावधिगच्छति ? न च प्राक्तनीमग्रहणावस्थं(i) नीलाऽवभासकालेऽसावध्यवसा( ?स्य)ति, प्रतिभासयोः युगपद्विरुद्धयोरपत्तेः। तस्मात्  
 10 समानकालो बोधो न ग्रहणक्रियामुपजनयितुं समर्थ इत्यग्राहक एव।

- तो उन दोनों में कारण-कार्यभाव कैसे जमेगा ? यदि कहा जाय — ‘पहले क्षण में ज्ञान स्वरूपतः (निर्विशेषण शुद्धरूप) से प्रकट हुआ, दूसरे क्षण में नेत्रादिसामग्रीप्रभाव से संवेदनक्रियाविशिष्ट ज्ञान भासित होता है, इसलिये ज्ञान को ‘कर्त्ता’ कह सकते हैं।’ — तो यह ठीक नहीं, क्योंकि जिस क्षण में ज्ञान संवेदनक्रियायुक्त भासित होता है तब पूर्वदशा(शुद्धदशा)वाला ज्ञान तो भासित नहीं होता  
 15 (तब कैसे कह सकते हैं कि विशिष्ट ज्ञान पूर्वकालीनज्ञान का अभिन्न विशिष्ट रूप है?) तथा जब पूर्वदशापन्न बोध पूर्व क्षण में जीवित है तब संवेदनक्रियायुक्त ज्ञान भासित नहीं होता — इस तरह किसी भी क्षण में दोनों अवस्थावाले एक ज्ञान का पूर्व-पश्चात् काल का बोध तो है नहीं — तब फिर उस के विरह में ग्रहणक्रिया के प्रति ज्ञान के कर्तृत्व की प्रतीति कैसे होगी ?

### [ समकालीन बोध ग्रहणक्रिया के लिये असमर्थ ]

- 20 आशंका की जाय — ‘नीलदर्शनकाल में बोध की पूर्वावस्था का स्मरण करनेवाला उस अनुभव के प्रति ग्रहणकर्तृत्व का भी भान कर लेता है’ — तो यह गलत है क्योंकि नीलदर्शनकाल में बोध और ग्रहण का परस्परसंकलित नहीं किन्तु समानकालीन फिर भी परस्पर असंकलित ही प्रतिभास होता है अतः पृथक् कर्तृत्व का बोध सम्भव नहीं। मान ले कि बोध पूर्वावस्था का स्मरण करता है फिर भी ग्रहणावस्था का तो भान नहीं करता, फिर कैसे वह कर्तृता का ग्रहण करने के लिये सक्षम बनेगा ?  
 25 यदि कहें कि — ‘बोधात्मा स्वयं अपने आत्मरूप का उपलम्भ करता है (उस में कर्तृत्व का भी हो जायेगा)। अतः कर्तृता भासित हो सकेगी’ — तो यह ठीक नहीं है — क्योंकि जब बोध स्वयं नीलग्राहकतया स्व को देखता है तब अनुभव करने वाली (खुद की) पूर्वसत्ता को देखता नहीं है, फिर कैसे ग्रहणकारकरूप में स्व का भान कर सकेगा ? यदि कहें कि — ‘बोध नील भासनकाल में पूर्वतन ग्रहणावस्था का निर्णय करता है’ — तो यहाँ एक साथ अन्योन्य विरुद्ध दो प्रतिभासों की सत्ता का अनिष्ट प्रसंग  
 30 आयेगा क्योंकि नीलदर्शनरूप एक वर्तमान प्रतिभास और ग्रहणावस्थारूप पूर्वतन का प्रतिभास, ये दोनों एक काल में विरुद्ध है। अतः सिद्ध होता है कि समकालीन बोध ग्रहणक्रिया के व्यापार में समर्थ न होने से अग्राहक ही है।

किञ्च, यदि बोधो व्यतिरिक्तां ग्रहणक्रियामुपरचयति नीलस्य किमायातं येन तद् ग्राह्यं भवेत् विज्ञानं तद्ग्राहकमिति। न च संविदुत्पत्तावपरोक्षतया नीलमाभातीति ग्राह्यम्, संविदुत्पादेऽपि तस्याऽप्रकाशात्मकस्य प्रतिभासाऽयोगात्। तथाहि— नीलादिरर्थो जडरूपत्वात् न स्वयं प्रतिपत्तिगोचरतामवतरतीति दर्शनं प्रकाशकमस्याऽभ्युपगतम्। यदि पुनः स्वप्रकाशात्मकं नीलं स्यात् तदा 'विज्ञप्तिरूपं नीलम्' इति परवाद एवाभ्युपगतो भवेत्। यच्चाऽप्रकाशात्मकं वस्तु तत् प्रकाशसद्भावेऽपि नैव प्रकाशते। यतो न प्रकाशात्मा 5 नीलं संक्रामति भेदप्रतिहतिप्रसङ्गात्। न चार्थाकारकार्यतया प्रकाशस्यार्थस्य प्रकाशता, यतोऽपरोक्षाकाररूपत्वे तस्य प्रत्यक्षता युक्ता यथा नीलस्वभावतायां नीलस्य नीलरूपता, न तु प्रकाशात्मनं(?नः) कार्यस्योद्भूतेः, अर्थकार्यतया हि तत्सम्बन्धिता प्रकाशस्य संगता, यथा नयनकार्यतया तत्सम्बन्धिता, न तु तत्स्वरूपं प्रकाशः।

अर्थेन्द्रियाणां ज्ञाने स्वरूपाऽनर्पणाद(प्रत्य)क्षता, अर्थस्य तु तत्र स्वरूपपरिच्छेदात् प्रत्यक्षता। असदेतत्, 10 अर्थस्य प्रत्यक्षस्वरूपाऽसम्भवात्, यतो न नीलादेः स्वरूपम् बहिरुन्मुखताऽप्रतीतिः(तेः)। अथाप्यपरा बहिरुन्मुखता तत्रास्ति तथापि स्वरूपमात्रनिमग्ना प्रतिभासमानमूर्तिः सा तृतीया सिद्धेति न तद्वशाद् बोधस्य

### [ भिन्न ग्रहणक्रिया की उत्पत्ति का नील से क्या सम्बन्ध ? ]

और एक बात :- बोध जब नील (या बोध) से भिन्न (तृतीय) ग्रहणक्रिया का सर्जन करता है, तो इस में नील को क्या लाभ हुआ कि जिस से नील को ग्राह्य बना दिया और बोध को 15 ग्राहक ? ऐसा नहीं है कि संवेदन की उत्पत्तिकाल में नील (जड) अपरोक्षरूप से भासित होने के कारण ग्राह्य बन जाय, संवेदनोत्पत्तिकाल में भी अप्रकाशात्मक (= जड) नील का प्रतिभासित होना सम्यक् नहीं है। स्पष्ट है कि नीलादि भाव जडरूप होने से स्वयं ग्रहणगोचर नहीं बन सकता, इसीलिये तो आप उस के प्रकाशकरूप में दर्शन को स्वीकारते हैं। यदि नील स्वयं प्रकाशात्मक होने का मानेंगे तो 'नीलादि विज्ञानमय हैं' — इस परकीय मत को ही स्वीकारना पड़ेगा। यह नियम है कि वस्तु 20 यदि अप्रकाशात्मक होगी तो अन्यप्रकाश के योग से भी वह स्फुरित नहीं हो सकती। कारण, प्रकाशपिंड नील स्वरूप में परिणत हो नहीं सकता, यदि होगा तो जड वाद में नील एवं प्रकाश का भेद लुप्त हो जायेगा। प्रकाश की अर्थाकाररूपता अर्थ पर निर्भर है इस लिये अर्थ की प्रकाशता स्वीकाराई नहीं बन जाती। कारण, यदि वह अर्थाकारता अपरोक्षाकारता है तो उस की प्रत्यक्षमयता भी माननी पड़ेगी जैसे नीलस्वभावता के होने पर नील में नीलरूपता। यह भी ठीक नहीं है कि 'अर्थ से प्रकाशात्मक 25 कार्य की उत्पत्ति होती है इस लिये अर्थकार्य होने की वजह प्रकाश में अर्थसंसर्गता की संगति बन जाय, जैसे कि नयनकार्यता से प्रत्यक्ष में नयन संसर्गता (नहीं होती)। प्रकाश कभी नयनस्वरूप नहीं होता।

### [ अर्थ की प्रत्यक्षता का तथा कर्मादित्रितयप्रतीति का निषेध ]

शंका :- नयन या इन्द्रिय का प्रकाश न होने का कारण है ज्ञान में अपने आकार का अनर्पण, 30 जब कि अर्थ तो अपने आकारमय स्वरूप का समर्पण करता है इस लिये उस का भान होने से अर्थ में प्रत्यक्षता होती है।

ग्राहकता सिद्धा । तन्न नील-संविदोस्तुल्यकालं प्रतिभासनादपरव्यापाराभावतः स्वस्वरूपनिमग्नयोर्वेद्य-वेदक(ता) । न च नील-तत्संवेदनद्वयस्य स्वरूपनिमग्नस्य स्वतन्त्रतयाऽवभासने तदुत्तरकालभावी कर्मकर्त्रभिनिवेशी 'नीलमहं वेद्मि' इत्यवसायो न स्यात्, न हि पीतदर्शने नीलोल्लेख उपजायमानः संलक्ष्यते, भवति च तथाध्यवसायी विकल्प इति तयोर्ग्राह्य-ग्राहकतेति वाच्यम्, मिथ्यारूपकल्पनया ग्राह्य-ग्राहकरूपतायाः परिच्छेदाऽसंभवात् । तथाहि— 'नीलम्' इति प्रतीतिः पुरोवर्त्ति नीलमुल्लिखन्ती वर्त्तमानदर्शनानुसारिणी भिन्ना लक्ष्यते, 'अहम्' इत्यात्मानं व्यवस्यन्ती स्वानुभवायत्तालक्ष्यपरा प्रतीयते, 'वेद्मि' इति प्रतीतिरप्यपरैव क्रियाव्यवसितिरूपा परस्परऽव्यतिमिश्रसंवित्रितय(1?)मेतत् । नातः कर्म-कर्तृ-क्रियाव्यवस्था ।

भवतु वैकेयं कल्पनाप्रतीतिः कर्म-कर्तृ-क्रियाव्यवसायिनी, तथापि नातो ग्राह्य-ग्राहकता सत्या, मृग-तृष्णिकासु जलाध्यवसायाज्जलसत्यताप्रसक्तेः । न चात्र बाधातोऽसत्यता, प्रकृतेऽप्यस्य समानत्वात् । तथाहि—

10 उत्तर :- शंका गलत है क्योंकि अर्थ प्रत्यक्ष स्वरूप नहीं हो सकता । कारण :- नीलादि अर्थ का स्वरूप अन्तर्मुखतागर्भित नहीं किन्तु बहिर्मुखतागर्भित प्रतीत होता है । यदि कहें कि बहिर्मुखता भी एक अतिरिक्त आकार है जो प्रतीत होती है तो यह भी समझ लो कि उस का पिण्ड स्वरूपमात्र निष्ठतया ही भासित होता है, फलतः ज्ञानाकार, अर्थाकार और यह तीसरी बहिर्मुखता यह त्रिक सिद्ध होगा किन्तु उस के बल से बोध में ग्राहकता सिद्ध नहीं हो सकती । सारांश, अपने स्वरूप में निष्ठ

15 ऐसे नील और संवेदन का समकाल में भासित होना यही एक व्यापार है, अन्य कोई व्यापार उन दोनों का न होने से उन में ग्राह्यता-ग्राहकता सिद्ध नहीं होती ।

आशंका :- स्वरूपनिष्ठ नील और उस का संवेदन ग्राह्य-ग्राहकरूप से भासित न हो कर सिर्फ स्वतन्त्ररूप से ही भासित होंगे तो उत्तरकाल में कर्म-कर्ता निर्देशक 'मैं (कर्ता) नील (कर्म) को वेदता हूँ' ऐसा निश्चय कैसे साकार होगा ? ऐसा कभी नहीं दिखता कि पीत का दर्शन होने के बाद

20 नील का उल्लेख लक्षित हो । इस स्थिति में — कर्म-कर्तृ का निर्देशक विकल्प होता है अतः उन दोनों में ग्राह्यता-ग्राहकता सिद्ध हो जाती है ।

उत्तर :- ऐसा कथन निषेधार्ह है क्योंकि नील और संवेदन का ग्राह्यता-ग्राहकता ऐसा कोई स्वरूप नहीं होने से उन की कल्पना करना मिथ्या है, ऐसी मिथ्या कल्पना कर लेने से, वास्तव में ग्राह्यता और ग्राहकता का परिबोध हो नहीं सकता । क्यों — यह देखिये — 'नील को' यह प्रतीति संमुखवर्त्ती

25 नील का उल्लेख करती हुई वर्त्तमानकालीन दर्शनानुगामिनी भिन्नतया ही लक्षित होती है, जब कि 'मैं' यह प्रतीति स्व का अवबोध करती हुयी स्वानुभवाधीनतालक्षी अपर (= भिन्ना) ही प्रतीत होती है, तथा 'वेदता हूँ' ऐसी क्रियावबोधरूप प्रतीति भी भिन्न ही होती है, यानी अन्योन्य असंश्लिष्ट तीन संवेदन ही यहाँ स्फुरित होते हैं । अतः कर्म-कर्ता-क्रिया ऐसी कोई व्यवस्था शक्य नहीं । अतः नील भी एक संवेदनमात्र है, बाह्यार्थरूप नहीं ।

30 [ त्रितयावगाहि एक कल्पना से ग्राह्यग्राहकभावसिद्धि दुष्कर ]

अथवा, चलो एक बार मान लिया कि नील-आत्मा-क्रिया त्रितयविषयक कल्पनारूप प्रतीति एक है । फिर भी इस से ग्राह्यता या ग्राहकता की सत्यता सिद्ध नहीं होती, अन्यथा मृगतृष्णाजल में जलबुद्धि

कल्पनोल्लिख्यमानस्य कर्म-कर्तृभावस्य नीलसंविदोः स्वतन्त्रतया निर्भासोऽस्त्येव बाधक इति कथं न ग्राह्य-ग्राहकभावोऽसत्यः ? किञ्च, भ्रान्तेऽपि प्रत्यये ग्राह्य-ग्राहकतोल्लेखो दृश्यते, न च तदुल्लेखमात्रभ्रान्तदर्शनाव-भासिनः केशादेः सत्यता। अथ तत्र बाधकसद्भावादसत्यता, न, बाधाऽयोगादित्यभिधानात्। [??न च बहिरर्थाभावेऽपि कथं ग्राह्यताऽध्यवसायादयः वितथदर्शनावसेये केशकलापाध्यवसेये केशकलापाध्यवसाये-ऽप्य(स्य) समानत्वात्। अथात्र सत्यकेशग्राह्यताऽध्यारोप्यते वितथकेशाभावे अर्थाभावे तु सर्वसंविदां न 5 क्वचित् पूर्वदर्शनदृष्टा ग्राह्यता वर्तमानदर्शनेऽध्यारोप्यते तत्राप्यपरपूर्वदर्शनदृष्टा तत्राप्येवमित्यनादिरध्यारोप-परम्परा बहिरर्थाभावेऽपि व्यवहारनिबन्धनं युक्तैवेति ??]

अपि च, तुल्यकालं प्रकाशमानवपुर्नीलमुद्भासयन्तीं प्रतीतिमभ्युपतै(?)त्य व्यापाराभावाद् ग्राह्यग्राहकभावः प्रतिक्षिप्तः सैव प्रतीतिर्विचार्यमाणा न सङ्गच्छते कुत एवार्थग्राहिणी स्यात् ? तथाहि— अनुभूयमानमर्थाकारं विहाय नान्या प्रतिय(?)सवि)दाभाति। यतः प्रकाशमानं नीलादिकं बहिः अन्तश्च सुखादि स्वसंविदितं 10

यद्यपि होती है, उस में भी सत्यता प्रसक्त होगी। ऐसा कहना कि वहाँ तो बाध होने से सत्यता नहीं होती — तो प्रस्तुत में भी वह समान है। स्पष्टता :- नील और संवेदन का स्वतन्त्र निर्भास होता है यही बाधक है कल्पना से उल्लिखित कर्म-कर्तृभाव का, तो ग्राह्य-ग्राहकभाव असत्य क्यों नहीं ? और एक तथ्य है कि ग्राह्य-ग्राहकभाव तो केशोण्डुक की भ्रमप्रतीति में भी दिखता है, वहाँ ग्राह्य-ग्राहकभावप्रदर्शक भ्रान्त दर्शन से निर्दिष्ट केशादि में सत्यता नहीं होती। ऐसा कहें कि — उस में 15 बाधक की सत्ता होने से केशादि माना जाता है — गलत है क्योंकि वहाँ उत्तरकाल में केशाभावग्राहक कोई बाधक ज्ञान का उदय नहीं होता।

[ आगे अब पाठ अशुद्धि के कारण सम्यक् विवेचन करना दुष्कर है, यथामति प्रयास करते हैं — प्रतिवादी पूछता है कि बाह्यार्थ का अस्वीकार करे तो भी ग्राह्यतादि का जो प्रतिभास होता है वह कैसे संगत होगा ? वादी उत्तर में कहता है कि जैसे केशादि के न होने पर भी मिथ्यादर्शनगोचर 20 केशवृन्दाध्यवसाय में समानतया ग्राह्यताबुद्धि होती है। प्रतिवादी :- मिथ्या केश स्थल में यद्यपि केश का अभाव है, फिर भी वहाँ सत्यकेशगत ग्राह्यता का आरोप होता है, विज्ञानवादी के मत में तो अर्थ ही नहीं है, किसी भी संवेदन या पूर्व-पूर्वदर्शन में अर्थ की ग्राह्यता नहीं है जो कि वर्तमानकालीन दर्शन में आरोपित की जा सके — अतः ग्राह्यता प्रतिभास कैसे संगत करेंगे ? वादी :- यद्यपि बाह्यार्थ नहीं है, फिर भी मिथ्या केश के भ्रान्त दर्शन में वासनाप्रेरित पूर्वकालीन भ्रान्त केशदर्शनदृष्ट ग्राह्यता 25 के प्रभाव से ग्राह्यता का अध्यवसाय होता है, उस में पूर्वकालीन दर्शनदृष्ट ग्राह्यता का, उस में भी... इस तरह अध्यारोपपरम्परा मूलक ही ग्राह्यताव्यवहार युक्त है, भले बाह्यार्थ का स्वीकार न हो।)

### [ तुल्यकालीन नीलोद्भासक प्रतीति की अनुपपत्ति ]

यह भी ध्यान में लिये — समानकाल में स्फुरायमाणपिण्डवाले नील को उद्भासित करनेवाली प्रतीति भी स्वीकारार्ह नहीं है, हमने तो अभ्युपगमवाद से उस के ग्राह्यग्राहकभाव का प्रतिक्षेप किया 30 है, क्योंकि उस प्रतीति का कोई ग्रहणादि व्यापार सद्भूत नहीं है। वास्तव में जाँच करे तो पता चलेगा कि वैसी प्रतीति ही युक्तिसंगत नहीं है जो बाह्यार्थप्रकाशित करे। स्पष्टता :- अनुभवगोचर

विरह्य नान्या संवित् सता( ?ती) कदाचित् प्रतिभातीत्यसती सा कथमर्थग्राहिणी भवेत् ? न च सुखादिकमेवाहंकारास्पदं(स्य ?स) तं( ?त्) हृदि परिवर्तमानं नीलादेर्ग्राहकम्, उत्पादे: (?सुखादे:) प्रतिभासमानवपुषो ग्राहकत्वाऽनुपपत्तेः। तथाहि— सुखादयः स्वसंविदिता हृदि प्रकाशन्ते नीलादयस्तु बहिस्तथाभूता एवाभान्ति, न च परस्पराऽसंसृष्टवपुषोस्तयोः समानकालयोर्वेद्यवेदकता, तुल्यकाल(त)या प्रकाशमाननील-पीतयोरपि परस्परतस्तद्भावापत्तेः।

न च सुखादिराकारः स्वपरप्रकाशतया प्रतिभासमानो नीलादेर्वेदकः सवितृप्रकाश इव घटादीनाम्। यतो दर्शनात्मनः प्रकाश एव किं बहिरर्थावभासः आहोस्विद् दर्शनकाले तेषां प्रकाशात्मता ?

आद्ये विकल्पे ज्ञानात्मनः प्रकाशः स्वसंविद्वृषोऽनुभवः तत् ज्ञानस्य रूपं न बाह्यार्थात्मनाम्, अन्यथा प्रत्यक्षात्मतया तयोरभेदप्रसङ्गः। तन्न दर्शनानुभवः एव नीलानुभवः। अथ दर्शनसमये प्रत्यक्षं नीलादि-स्वरूपं तेषामनुभवः, नन्वत्रापि दर्शनोदयसमये यदि पदार्थप्रत्यक्षता तथा सति सामग्रीवशात् प्रत्यक्षाकारं नीलमुत्पादितमिति दर्शनवत् तत् स्वसंविदितं प्रसक्तम्। अत एव दृष्टान्तोऽपि अत्राऽसङ्गतः, तथाहि— सवितृप्रकाशः स्वरूपनिमग्न एवाभाति घटादिरपि स्वात्मनिष्ठ एव भासत इति नानयोरपि परस्परं प्रकाश्य-

अर्थाकार (नीलाद्याकार) को छोड़ कर अन्य कोई संवेदन अनुभवसिद्ध है नहीं। कारण, बाह्यरूप से भासमान नीलादि और आन्तररूप से स्फुरायमाण सुखादि दोनों स्वसंविदित, इन के अलावा और कोई संवेदन कभी सद्भूत नहीं होता, फिर भी किसी को वैसा भासे तो वह मिथ्या ही है, मिथ्या संवेदन को अर्थग्राहि कैसे माना जाय ? यदि कहें कि — 'वह जो हृदय में स्फुरायमाण अहंरूप से वेद्यमान सुखादि है वही नीलादि का ग्राहक है' — तो यह मिथ्या है क्योंकि प्रकाशमानपिण्डस्वरूप सुखादि में किसी भी प्रकार से ग्राहकता का मेल नहीं बैठता। स्पष्टता :- हृदय में जैसे स्वसंविदित सुखादि अनुभूत होते हैं वैसे ही बाह्यकार नीलादि भी स्वसंविदित (यानी ज्ञानमय) भासित होते हैं, परस्पर समकालीन उन दोनों पिण्डों में कोई मेल ही नहीं है जिस से कि ग्राह्य-ग्राहकता बन सके, अन्यथा समकाल में भासमान नील और पीत दो पिण्डों में भी परस्पर ग्राह्यग्राहक भाव गले पड़ेगा।

प्रतिवादी :- जैसे सूर्यप्रकाश अपना एवं घटादि अर्थान्तर का प्रकाश करता है वैसे ही सुखादि आकार (ज्ञान) भी स्व-पर प्रकाशक होने से भासमान नीलादि का वेदक होता है।

वादी :- यह भी निषेधार्ह है क्योंकि दो प्रश्न खड़े होते हैं — १ दर्शनात्मा का स्वप्रकाश ही बाह्यार्थावभासरूप है या २ दर्शनकाल में बाह्यार्थों की स्वतन्त्र प्रकाशरूपता स्फुरित होती है ?

### [ बाह्यार्थ एवं संवेदन के अभेदप्रसंग से विज्ञप्तिमात्रसिद्धि ]

प्रथम विकल्प :- ज्ञानात्मा का प्रकाश तो स्वसंवेदनात्मक अनुभवस्वरूप होता है जो ज्ञान का ही स्वभाव है बाह्यार्थपिण्डों का नहीं, यदि तथाकथित बाह्यार्थ का भी यही स्वभाव है तब तो वे खुद प्रत्यक्षात्मक होने से ज्ञान और अर्थ का अभेद प्रसक्त होगा (जो प्रतिवादी को अनिष्ट है)। तात्पर्य, दर्शनानुभव और नीलानुभव एक नहीं हो सकता। दूसरा विकल्प :- दर्शनकाल में यदि प्रत्यक्ष नीलादि-स्वरूप होता है तो यहाँ भी दर्शानोत्पत्तिकाल में यदि पदार्थप्रत्यक्षत्व माना जाय तो मतलब उस का यह होगा कि सामग्री के विचित्र प्रभाव से प्रत्यक्षाकार नील को उत्पन्न किया गया, फलतः यहाँ नील

प्रकाशकभावः। अपि च, आलोकाद् घटादिः प्रकाशरूपः प्रादुर्भवतीत्यालोकः प्रकाशकः स्यात् उपकारा-  
भावे व्यतिरिक्तोपकारप्रादुर्भावे वा घटादीनां प्रकाशयोगात्। न चात्राऽहंकारास्पदनं (?मं) तर्द(दर्श)नं बहिः  
परोक्षाकारमर्थं जनयति, तुल्यकालतया हेतुफलभावाऽयोगात्। उपकार्योपकारकभावमन्तरेण बाह्यार्थाना-  
मन्तर्दृशां च त(?वे)द्य-वेदकभावानुपपत्तेः सर्वं वस्तु स्वं(?सं)विन्मात्रकमेवेति स्थितम्।

[?? न च नीलादिव्यतिरिक्तबोधानभ्युपगमे नीलस्वरूपः प्रकाशः पीतस्य प्रकाशः न नीलप्रकाश 5  
एव पीतस्य प्रकाशोऽभ्युपगम्यते ??] तयोर्भेदेन प्रतिपत्तेः। न हि नीलप्रकाशः पीतप्रकाशानुगामितया  
प्रतिभाति, नापि पीतात्मानुभवो नील(?)स्वरूपानुभवप्रविष्टः प्रकाशत इति कथं नील-पीतयोरनुभवः ?  
तथाभ्युपगमे वा सर्वपदार्थसाङ्कर्यप्रसक्तिः। न च 'अनुभवः...अनुभवः' इत्येकरूपतयोत्पत्तेरनुभवस्यैकता,  
प्रतिपदार्थ 'स्वरूपम्...स्वरूपम्' इत्येकत्वाध्यवसायोत्पत्तेः सर्वपदार्थानां स्वरूपस्यैकताप्रसक्तेः।

भी दर्शन की तरह स्वसंविदित मान लेना पडेगा। यही कारण है कि आप का सूर्यप्रकाश — घटादिवाला 10  
उदाहरण भी असङ्गत है। स्पष्टता :- उस वक्त एक तो दिखता है सूर्यप्रकाश जो स्वभाववत्क होता  
है, तथा घटादि भी स्वभावनिष्ठ भासित होता है, दोनों अपने में मस्त होते हैं, न तो अन्योन्य  
कोई प्रकाशक होता है न प्रकाश्य। यदि आलोक को वहाँ प्रकाशक मानेंगे तो कैसे — आलोक द्वारा  
प्रकाशमय घटादि का प्रादुर्भाव हुआ इस लिये ? यदि आलोक का कोई उपकार नहीं होगा, अथवा  
घट से भिन्न ही उपकार का प्रादुर्भाव मानेंगे तो उस से घटादि कोई उपकृत न हो सकने से उस 15  
का प्रकाश भी नहीं हो सकेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि अहंकारमय आन्तर्दर्शन परोक्षाकार बहिरर्थ  
को समकाल में निपजा दे, क्योंकि समकालीन भावों में कभी जन्य-जनकभाव नहीं होता। अत एव  
उन में उपकार्य-उपकारकभाव के भी न होने से बाह्यार्थ और अन्तर्दर्शन में वेद्य-वेदकभाव भी घट  
नहीं सकता।। निष्कर्ष, वस्तुमात्र संवेदनमय ही होती है।

### [ नीलदर्शन-पीतदर्शन की ऐक्यापत्ति का निरसन ]

20

[ ??न च...गम्यते पाठ अशुद्धि के कारण, सिर्फ यहाँ भावार्थ लिखते हैं — ]

प्रतिवादी :- नील वस्तु से भिन्न नीलबोध का स्वीकार न करे तो नीलस्वरूप एवं पीतस्वरूप  
प्रकाशद्वय में भेद कैसे होगा ? (बाह्य नील-पीत के आधार से ही प्रकाशद्वय में भेद हो सकता है।)

वादी :- नील प्रकाश का स्वरूप और पीतप्रकाश का स्वरूप एक नहीं मानते हैं, क्योंकि दोनों  
का भान भिन्न भिन्न रूप से होता है। नील प्रकाश कभी पीतप्रकाशानुबिद्धतया भासित नहीं होता, 25  
एवं पीतप्रकाशानुभव कभी नीलप्रकाशगर्भित हो ऐसा अवभास नहीं होता — फिर नील और पीत  
दोनों के एक अनुभव का अनिष्ट कैसे हो सकता है ? यदि किसी प्रकार से साम्य को ले कर  
उन के एकानुभव का आपादन करेंगे तो पदार्थमात्र में परस्पर संकीर्णरूपता की आपत्ति आयेगी। कारण  
:- अनुभव... अनुभव... इस प्रकार एक प्रकार की प्रतीति की उत्पत्ति के बल पर सभी अनुभवों  
की एकरूपता नहीं मानी जा सकती। अन्यथा प्रत्येक पदार्थ में 'स्वरूप... स्वरूप' इस प्रकार एकत्व 30  
की प्रतीति की जा सकती है, फलतः सभी पदार्थों के स्वरूप में भिन्नता के लोप की या ऐक्य की  
प्रसक्ति होगी।

[?? अथ प्रत्यक्ष एव पदार्थस्वरूपऽप्रत्यक्षं तद्रूपत्वे ग्रहणरहितस्यैव तस्य प्रतिभासप्रसंगः। अथ व्यतिरिक्तं प्रत्यक्षस्वरूपम् एवं सति सामग्रीबलादुपजातं तदेकत्वभासनम् नीलादेस्तु परोक्षत्वात् स्वरूपेण परिच्छेदाऽसम्भवः। न चाध्यक्षावभासमानरूपोदय(?) नीलमध्यक्षीभवति भिन्नाऽभिन्नविकल्पप्रसङ्गतोऽनुपपत्तेः ??]

- 5 अथाध्यक्षं नीलमपरोक्षस्वभावं जनयतीति ग्राहकं नीलादेस्त्वध्यक्षरूपतया जन्यमानत्वाद् ग्राह्यता। असदेतत्— एककालत्वे नील-दर्शनयोर्जन्य-जनकभावाऽयोगात् भिन्नकालत्वे दर्शनबलादध्यक्षरूपतयोपजायमानं स्वप्रकाशकमिति कथं ग्राह्यता भवेत् ? अपि च, यदि प्रकाशविकलं नीलं सिध्यति तदा प्रकाशरहितस्य नीलस्य प्रकाशमाविर्भावयन्ती बुद्धिर्भवेद् वेदिका। न च दर्शनविकलस्य परिच्छेदः सम्भवति, तस्य दर्शनेनैव परिच्छेदात्। यदा तु दर्शनमुत्पद्यते तदा तत्कालीनमेवार्थमवभासयितुमलम् पूर्वसत्तां तु
- 10 तस्य कथमधिगच्छति ? न च प्रत्यक्षमपरं प्राग्भावमर्थस्य वेत्ति तत्राप्यपरापरप्रत्यक्षाभ्युपगमादनवस्थापत्तेः।

[ ?? अथ प्रत्यक्ष...नुपपत्तेः ?? — पाठ अशुद्धि के कारण सम्यक् विवेचन दुष्कर है, यथामति स्थानाशून्यार्थ लिखते हैं ] — यदि कहें कि — पदार्थस्वरूप ही प्रत्यक्ष है तब तो स्वसंविदित होने से उस के ग्रहण के विना ही उस का प्रतिभास प्रसक्त होगा। यदि प्रत्यक्षस्वरूप पदार्थ से भिन्न है, अपनी सामग्री से ऐक्य प्रतीति उत्पन्न होती है, नीलादि तो परोक्ष है अतः उस का स्वरूप से बोध

15 होगा ही नहीं। यदि कहें कि नील परोक्ष तो है ही लेकिन जब उस में प्रत्यक्षसंनिधि से भासमान रूप का उदय होता है तब नील का अध्यक्ष होता है — तो यहाँ दो विकल्प अनुत्तीर्ण रहेंगे कि वह उदित रूप नील से भिन्न है या अभिन्न।

### [ जन्य-जनकभावप्रेरित ग्राह्य-ग्राहकभाव असत् ]

यदि कहें कि — 'प्रत्यक्ष नील के रूप को नहीं किन्तु अपरोक्षस्वभाववाले नील को ही उत्पन्न

20 करता है अतः जनक होने से प्रत्यक्ष ग्राहक बनेगा, नीलादि ग्राह्य बनेगा क्योंकि वह प्रत्यक्षरूप से जन्यमान है।' — तो यह गलत है, नील और दर्शन एककालीन होंगे तो उन में जन्य-जनकभाव घटेगा नहीं, भिन्नकालीन होंगे तो दर्शन के जोर से प्रत्यक्षात्मक उपजात नील स्वप्रकाशक ही होगा, फिर उस को ग्राह्य कैसे कहेंगे ? और भी एक बात :- यदि अप्रकाश नील पदार्थ सिद्ध है तो अप्रकाश नील को प्रकाशित करती हुयी बुद्धि उस की वेदक कही जा सकती है। कारण, दर्शन के

25 विना तो बोध संभवित नहीं, दर्शन से ही बोध होता है। जब भी दर्शन उत्पन्न होगा, वह समकालीन अर्थ का अवबोधन कराने के लिये सक्षम होगा, अर्थ की पूर्वसत्ता का बोध वह कैसे करा सकता है। उस के लिये अन्य प्रत्यक्ष पूर्वसत्ता का वेदन नहीं कर सकता। यदि करेगा तो उस के प्राग्भाव के वेदन के लिये और एक प्रत्यक्ष, उस के भी प्राग्भाव के वेदन के लिये अन्य एक प्रत्यक्ष... इस तरह अनवस्था दोष प्रसक्त होगा। यदि कहें कि — 'प्राग्भाव के विना अर्थ की प्रत्यक्षता संगत न

30 होने से, अनुमान से प्राग्भाव सिद्ध करेंगे' — तो यह निषेधार्ह है क्योंकि प्रत्यक्ष न होने पर कभी भी अनुमान-प्रवृत्ति शक्य नहीं होती। स्पष्टता :- पहले प्रत्यक्ष से अर्थ का प्राग्भाव सिद्ध रहेगा तभी

न चार्थस्य प्राग्भावमन्तरेण प्रत्यक्षतानुपपत्तेस्तस्य प्राग्भावोऽनुमानेन साध्यते, प्रत्यक्ष(1)भावेऽनुमानस्या-  
प्रवृत्तेः। यदि प्राग्भावोऽर्थस्य प्रत्यक्षतः सिद्धः स्यात् तदा तत्प्रतिबद्धोत्तरकालभाविप्रत्यक्षादनुमीयते, न  
चाध्यक्षोदयवेलायाः प्रागर्थसत्ता सिद्धेति तत्प्रतिबद्धतया दर्शनलक्षणस्य लिङ्गस्याप्रतिपत्तेः न ततोऽप्यर्थ-  
प्राग्भावः सिध्यति।

न च प्रागर्थस्य प्राग्भावः सिध्यति, न च प्रागर्थसद्भावमन्तरेण नियतदेश-काल-दशापरिगतदर्शनानुदय- 5  
प्रसक्तिः, स्वप्नादौ तथाभूतार्थाभावेऽपि कुतश्चिद् वासनादेर्निमित्तम् (?त्तात्) प्रतिनियताकारदर्शनोदयानुभवात्  
अर्थस्य च नियताकारदर्शनाहेतुता। जाग्रदशायामपि प्राग्भाविता न सिद्धा। न च प्रागर्थसत्ताविरहे भवतोऽपि  
किं प्रमाणम् इति क(?व)क्तव्यम्, यतो यथा नीलविविक्ततया नीलाकारस्य परिच्छेदात् तत्र नीलरूपता-  
ऽभावः तथा परिस्फुटप्रतिभासस्य नीलाकारस्य वर्तमानतया प्रतिभासनात् तस्य पूर्वरूपताविरहः, यदि  
हि तत् तद्रूपं स्यात् तदा तथैवावभासेत, न ह्यन्यरूपमन्यरूपेण प्रतिभाति दर्शनस्य वैत(थ्य)प्रसंगात्। 10  
न च वर्तमानप्रतिभासं नीलं पूर्वरूपतया प्रतिभातीति पूर्वरूपताविरहस्तस्य सिद्धः। यथा च पूर्वरूपतां  
न किञ्चिज्ज्ञानमावेदयति तथा क्षणभङ्गं साध्यद्भिः प्रतिपादितमिति नेहोच्यते। तदेवं दर्शनकाले एव  
नीलादेरवभासनाद् न ग्राह्यता।

बाद में अर्थ से सम्बद्ध उत्तरकालीन प्रत्यक्ष से प्राग्भाव की अनुमिति शक्य बनती, खेद है कि प्रत्यक्षोदयवेला  
के पहले अर्थसत्ता ही सिद्ध नहीं होने से उस से संबद्धतया दर्शनात्मक लिंग की लिंगरूप से प्रतीति 15  
नहीं हो सकती, अतः उस से अर्थ के प्राग्भाव की सिद्धि शक्य नहीं।

### [ प्राग्भाव के विना भी नियतदेशादि की उपपत्ति ]

अर्थ के पूर्वकाल में अर्थ का प्राग्भाव (= अस्तित्व) किसी तरह सिद्ध नहीं। अर्थ के प्राग्भाव  
के विना नियतदेशीय-नियतकालीन-नियतअवस्थागर्भित दर्शन का उदय कैसे होगा ऐसा आक्षेप उचित  
नहीं है, स्वप्नदशा में तात्त्विक अर्थ के विरह में भी पूर्व पूर्व वासना आदि किसी भी निमित्त से 20  
प्रतिनियत देशादि गर्भिताकारवाले दर्शन का अनुभव सिद्ध होने से फलित होता है कि अर्थ नियताकारदर्शन  
का हेतु नहीं है। ऐसा मत बोलना कि जाग्रदशा में तो अर्थ-हेतुता है, क्योंकि यहाँ भी अर्थ की  
पूर्वसत्ता असिद्ध है। ऐसा बोलने का अनुचित है कि आप के मतानुसार अर्थ की पूर्वसत्ता के निषेध  
में कौन सा प्रमाण है ? — क्योंकि जैसे नील से पृथक् नीलाकार के बोध से माना जाता है कि  
बोध में नीलरूपता नहीं है, वैसे ही अतिस्फुटतया भासमान नीलाकार में वर्तमानता के भासित होने 25  
से उस की पूर्वसत्ता का निषेध फलित हो जाता है। यदि नीलाकार में पूर्वरूपता विद्यमान होती तो  
उस रूप से उस का भान जरूर होता। कोई भी एक स्वरूप वस्तु अन्यरूप से दर्शन में ज्ञात नहीं  
हो सकती, यदि ज्ञात होगी तो वह दर्शन मिथ्या जाहीर होगा। वर्तमानरूप से भासमान नील में  
पूर्वरूपता का भान नहीं होता है इस से सिद्ध होता है कि नील में पूर्वरूपता नहीं है। पूर्वरूपता  
को सिद्ध करनेवाला एक भी प्रमाण नहीं है — इस तथ्य का प्रतिपादन क्षणिकवाद की सिद्धि के 30  
प्रस्ताव में किया जा चुका है इसलिये यहाँ पुनरावृत्ति नहीं की जाती। तात्पर्य, दर्शनक्षण में नीलादि  
का ही अवभास होता है, ग्राह्य-ग्राहकभाव का नहीं, अतः ग्राह्यता सत्य नहीं है।



[?न च तद्दर्शनोपरतावपि परदृशि नीलादेरवभासनात् साधारणतया ग्राह्यता दर्शनं पुनरसाधारणतया न स्वसन्तानान्तर इति ग्राहकम्, साधारणतया पदार्थपरिच्छेदासंभवात्। तथाहि— स्वदर्शने वस्तु प्रतिभातीति स्व-स्वदृष्टतया प्रतीयताम् नरान्तरदर्शनपरिच्छेदमन्तरेण तद्दृष्टतया कथं तत्परिकल्पना ? न हि परदृग्-मनन्त(?मवगमान्त)रेण तदेव(?दव)गम्यता (न च?) तस्य प्रत्येतुं शक्या। यतः (ऽ)साधारणतया स्वसन्तावेव प्रतिभाति न सन्तानान्तरं प्रति साधारणमर्थस्य प्रकाशयति। अन्वयबलेनानुमानस्य प्रवृत्तेः तस्य च साधारण एव परिच्छेदात्, नानुमानं 'अ(न्य)दृष्टमेवायमर्थमवगच्छति' इति एवं साधारणतां वस्तुनः प्रतिपादयति। यथा च साधारणमा(?ता)यां न किञ्चित् प्रमाणं प्रवर्तते तथा प्रतिपादितमद्वैतं निराकृर्वद्भिः। (२८५-६)। ततोऽसाधारणतया बोधवन्नीलादिकमपि हृदिता ??]

न च समानकालप्रतिभास(1)विशेषेपि चिद्रूपतया बोधो ग्राहकः, अर्थस्त्वचिद्रूपत्वाद् ग्राह्यः। यतो दर्शनस्यापरोक्षात्मतैव चिद्रूपता, अपरोक्षता व्यतिरिक्तायाः चिद्रूपतायाः केनचिदप्रतिपत्तेः। सा च नीलादेरपि स्वरूपभासमानमूर्त्तैरस्तीति कथं न बोधात्मकता ? न च नीलादेर्बहीरूपतया प्रकाशनाद् ग्राह्यता, संविदोऽपि

प्रतिवादी :- (न च...हृदिता तक पाठ अशुद्ध होने से शुद्ध विवेचन दुष्कर है) एक व्यक्ति का नील संबन्धि दर्शन क्षीण हो जाने पर भी अन्यव्यक्ति के दर्शन में वही नीलादि स्फुरित होने से मानना होगा कि नीलादि स्व-परउभयदर्शनगोचर यानी साधारण होने से उस में ग्राह्यता स्थापित होगी, तथा एक व्यक्ति का दर्शन अन्यसन्तान में स्फुरित न होने से, अर्थात् असाधारण होने से वह ग्राहक बनेगा।

वादी :- नहीं, नीलादि पदार्थों का अन्यव्यक्ति साधारण बोध का उदय संभव नहीं है। स्पष्टता :- हर एक व्यक्ति को अपने अपने दर्शन में ही वस्तु भासित होती है, अतः सभी को स्वदृष्टतया ही प्रतीति हो सकती है। फिर अन्यव्यक्तिदर्शन के भान विना अन्यव्यक्तिदृष्टतया साधारणता की कल्पना कैसे हो सकती है ? स्वदर्शन के द्वारा अन्यदर्शन के अवबोध के विना अर्थ की परदृष्टता का भान कैसे हो सकता है ? स्वसन्तान में जो वस्तु असाधारणतया ही भासित होती है उस वस्तु की अन्यसन्तान के प्रति साधारणता कैसे प्रकाशित होगी ? यदि कहें कि अनुमान से, तो जान लो कि अनुमान की प्रवृत्ति अन्वय के बल से ही होती है उस से तो साधारण यानी सामान्य (अवस्तु) का ही भान होता है स्वलक्षण का नहीं। अनुमान कभी 'अन्य से दृष्ट ही यह दृष्टा देखता है' इस तरह की साधारणता का प्रतिपादन नहीं कर सकता। दूसरे खण्ड में, साधारणता को सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण है नहीं — इस तथ्य का निदर्शन, अद्वैतवादनिरसन के प्रस्ताव में किया जा चुका है — (२८५-६) अतः बोध की तरह नीलादि की प्रतीति भी असाधारणरूप से ही स्वीकारनी पड़ेगी।

प्रतिवादी :- बोध और अर्थ दोनों का प्रतिभास समकालीन होने पर भी चिदात्मक होने से बोध ग्राहक, जड होने से अर्थ ग्राह्य होता है।

वादी :- नहीं, चिद्रूपता ग्राहकतारूप नहीं है किन्तु दर्शन की अपरोक्षतास्वरूप है, अपरोक्षता को छोड़ कर चिद्रूपता की प्रतीति किसी को भी नहीं होती। नीलादि पिण्ड भी स्वरूपतः अपरोक्षतया भासमान है, क्यों उसे भी चिदात्मक न मानें ?

नीलादिकमपि(मिव) हृदि प्रतिभास(मा)नाया बहीरूपतासद्भावाद् ग्राह्यताप्रसक्तेः। [??अथ संविदो ग्राहकत्वं बाह्योन्मुखतया प्रकाशता। असदेतत्, संविदाकारव्यतिरेकेण तत्र तस्य भेदप्रतीतेर्नैकता एवं तर्हि पदार्थानुभवोप्यध्यक्षतो भिन्नः प्रतिभातीति कथमेकत्वाध्यवसायेऽपि न तस्य भिन्नता ??] ततो नीलात्मैवाऽपरोक्षरूपः प्रतिभाति तद्व्यतिरिक्तस्यानुभवात्मनो नीलग्राहकस्याऽदर्शनात् स्वरूपेणाऽप्रतिभासमानस्य चार्थव्यवस्थापकत्वाऽसंभवात् स्वसंवेदनरूपा नीलादयः सिद्धाः।

5

अथ प्रकाशमाननीलव्यतिरिक्तप्रकाशाभावात्(त्) 'नीलस्य प्रकाश' इति भेदप्रतीतिर्न स्यात्। असदेतत्, भेदाभावेऽपि 'शिलापुत्रकस्य शरीरम्' इति भेदाध्यवसायदर्शनात्। अथात्र प्रत्यक्षता(?त्वा)द् भेदा(?दो) वाच्य(?बाध्य)ते। ननु नील-तद्धियोरपि भेदोल्लेखः कल्पनारचितोऽविनिर्भागावभासाद् बाध्यत एव। [??अध्य(?त्य)क्षतः परोक्षा संविदुपगम्यते तेनाऽपरोक्षनीलावभासतद्बुद्धेरपि परिच्छेदपुरिसच्छि(प्रसक्ति)रिति न दूषणावकाशः। परोक्षैव बुद्धिरर्थमुद्भासयति ??] अर्थस्तु बहिर्देशसम्बद्धः प्रत्यक्षमनुभूयते। आह च 10

प्रतिवादी :- नीलादि प्रकाशमान है किन्तु बहिर्मुखस्वरूप से, अतः वह ग्राह्य माना जाय।

वादी :- नहीं, हृदय में भासमान नील की बाह्यता की तरह हृदय में भासमान बोध में भी तथाविध बाह्यता सद्भूत होने से बोध में भी ग्राह्यता प्रसक्त होगी। [अथ संविदो...भिन्नता — पाठ अशुद्धि के कारण सम्यग् विवेचन दुष्कर है। प्रयास किया जाता है — 'नीलादि बाह्यरूप से प्रकाशित होता है (अतः वह ग्राह्य है) जब कि संवेदन बहिर्मुखतारूप से प्रकाशित होता है यही उस की ग्राहकता 15 है।' — तो यह गलत है, (बहिर्मुखता और बाह्यरूपता में कोई भेद नहीं है।) यदि कहें कि — 'बोध संविदाकार प्रतीत होता है जब कि नीलादि अर्थ संविदाकार से पृथक् ही हृदय में बोध से भिन्न प्रतीत होता है अतः दोनों में ऐक्य नहीं है।' — अरे ऐसे तो पदार्थानुभव भी प्रत्यक्ष से भिन्न होने का भास होता है, फलतः अनुभव और प्रत्यक्ष के ऐक्य के निश्चय के रहते हुए भी उन दोनों में भेद क्यों न माना जाय ? ] निष्कर्ष, अपरोक्षाकार से जो भासता है वह नीलस्वरूप ही है, उस 20 से भिन्न कोई नीलग्राहक अनुभवस्वरूप दिखता नहीं। जो (नीलादि) अपने असाधारणरूप से स्फुरित नहीं होता वह स्वभूत अर्थ स्वस्वरूप की व्यवस्था भी कर नहीं सकता, इस लिये नीलादि स्वसंवेदनरूप ही सिद्ध होते हैं।

### [ विज्ञानवाद में 'नील का प्रकाश' भेदबुद्धि की संगति ]

प्रतिवादी :- आप के मत में स्फुरायमान नील से विभिन्न कोई ज्ञानप्रकाश नहीं है तो 'नील 25 का प्रकाश' यह सर्वमान्य भेदबुद्धि कैसे संगत होगी।

वादी :- शंका गलत है, भेद न होने पर भी जैसे 'शिलाखण्ड का पिण्ड' ऐसी भेदकल्पना दिखती है उसी तरह भेद न रहने पर भी 'नील का प्रकाश' यह बुद्धि हो सकती है।

प्रतिवादी :- शिलाखण्ड-पिण्डस्थल में अभेद के प्रत्यक्ष से भेदबुद्धि का बाध होता है, 'नील का प्रकाश' इस बुद्धि में बाध कहाँ है ? 30

वादी :- अरे ! नील और उस की बुद्धि में जो भेदनिर्देश होता है वह तो कल्पनाप्रेरित है, नील और उस की बुद्धि के अपृथग्भावप्रतिभास से भेद बाधित होता ही है।

भाष्यकारः— 'स हि बहिर्देशसम्बन्धः(?बुद्धः) प्रत्यक्षमुपलभ्यते'<sup>▲</sup> [मीमां० द० ७/२३] इति। असदेतत्— बुद्ध्यध्यक्षतामन्तरेण नीलादेस्तद्ग्राह्यत्वाऽयोगात्। यदि ह्यपरोक्षा बुद्धिर्नीलप्रतिभासकाले भवेत् तदा युज्येत वक्तुम्— 'बुद्धिरर्थान् गृह्णाति' इति, यदा तु बुद्धिस्तदा न प्रतिभाति तदा नीलादेरपरोक्षस्याऽप्रादुर्भाव एवोक्तः स्यात् न ग्राह्यता।

5 किञ्च, यथा परोक्षाऽर्थसद्भावात् तदवभासिनी बुद्धिरनुमीयते तथात्मानो व्यापाराध्यक्षतया प्रतिभासनात् सा तदवभासिन्यप्यनुमीयताम्। न चात्मनोऽपि ग्राहिका 'अहम्' इति बुद्धिरस्त्येव इति वक्तव्यम्, परोक्षत्वे तस्याग्राहकत्व(1)योगात् स्वरूपेण वात्मा प्रतिभातीति स्वसंवेद(?द्य) एव युक्तः। [?? न चात्मा सत्तादिरूपेण ग्राह्यः(?ग्राहकः) तत्पक्षरूपेण ग्राह्य इति ग्राह्य-ग्राहकयोर्भेदोऽस्तीति वक्तव्यम्, सत्तादिपरिच्छेदे आत्मपरिच्छेदात्। यदि हि सत्ताबोधपरिच्छेदेन तदा आत्मसत्तादिपरिच्छेदोऽन्यथा सत्तादेः सर्वत्र भावाद्

10 **मीमांसक** :- अतीन्द्रिय होने के कारण संवेदन को परोक्ष ही मानना चाहिये। अतः अपरोक्षनीलावभास की तरह उस की बुद्धि का भी भान प्रसक्त होने का दूषण सावकाश नहीं है। परोक्ष ही बुद्धि अर्थ का प्रकाशन करती है ] अर्थ तो बहिर्देशसंलग्न प्रत्यक्ष अनुभूत होता है। जैसा कि (श्लो०वा०शून्य०श्लो० ७९ में) — शाबरभाष्यकार कहते हैं — 'बाह्यदेशसंलग्न अर्थ प्रत्यक्ष उपलब्ध होता है।' — विज्ञानवादी कहता है, यह सब गलत है। बुद्धि प्रत्यक्ष न होने पर नीलादि कभी बुद्धिग्राह्य हो नहीं सकता।  
15 नीलावभासकाल में यदि बुद्धि अपरोक्ष होगी तभी 'बुद्धि अर्थों का ग्रहण करती है' ऐसा कथन उचित ठहरेगा, बुद्धि ही जब भासित नहीं होगी तो नीलादि अपरोक्ष अर्थ का प्रादुर्भाव ही रुक जायेगा, ग्राह्यता कैसे घटेगी ?

### [ आत्मप्रकाशन बुद्धि की भी परोक्षता की आपत्ति ]

यह भी ध्यान में लेना — जैसे, परोक्ष बुद्धि अर्थसत्ता के जरिये उस की प्रकाशता बन कर  
20 अनुमानसिद्ध होती है, वैसे आत्मा के व्यापार का प्रत्यक्षतया प्रतिभास होने के बल से उस की अवभासक बुद्धि भी अनुमित कर लो। यदि कहें कि — हाँ 'अहम्' इस प्रकार आत्मा की ग्राहिका बुद्धि होती ही है — ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि वह बुद्धि परोक्ष होगी तो ग्राहक नहीं हो सकती। अथवा यही कह दो कि आत्मा स्वयं स्वरूप से भासित होता है अतः स्वसंवेद्य ही है न कि बुद्धि द्वारा प्रकाश्य। (यहाँ पाठ अशुद्धि के कारण सम्यक् विवेचन दुष्कर है अतः सिर्फ भावार्थ लिखते हैं। 'न  
25 चात्मा...प्रकाशनात्') — ऐसा नहीं कहना कि — 'सत्त्वादिरूप से आत्मा ग्राहक है किन्तु सत्तापक्ष यानी सत्ताश्रय के रूप में वह ग्राह्य है इस प्रकार ग्राह्य-ग्राहक भेद यहाँ भी है' — क्योंकि सत्ता और आत्मा एक होने से सत्त्व के भान से आत्मा का भी बोध मानना पड़ेगा। यदि कहें कि सत्ताबोधप्रकाश से आत्मसत्ता का भान होता है। अन्यथा सत्ता सर्वत्र मौजूद होने से आत्मसत्ता का भान कहने का मानने पर तो आत्मा की अप्रत्यक्षता बोधात्मक ही ठहरेगी क्योंकि बोध के अलावा आत्मा का अन्य  
30 कोई स्वरूप नहीं है। 'आत्मा बोधरूप ही है और वह अन्य प्रतीति से प्रकाशित होती है' — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि वह स्वयं ही बोधात्मक यानी प्रकाशस्वरूप ही है। (यहाँ एक पाठान्तर पूर्वमुद्रित

▲. स बहिर्देशसम्बन्धः इत्यनेन निरूप्यते।। (श्लो०वा०शून्य० श्लो० ७९) इति पूर्वमुद्रिते।

वात्मसत्ता परिच्छेत्तुर्बोधरूप(१)एवात्मनोऽप्रत्यक्षतैव भवेत् तस्यान्यरूपाभावात् न च बोधरूप (ए)वात्मा प्रत्ययान्तरेण प्रकाशयते तस्य प्रकाशरूपत्वात्। यो ह्यप्रकाशात्मप्रकाशात्मकः स्वरूपेणैव तस्य प्रकाशनात् ?] यदात्मा प्रकाशयते तदा स्वसंवेदनरूप एवाऽवगन्तव्यः। यथा चात्मा अपरप्रकाशाभावात् स्वप्रकाशः, नीलादयोऽपि तथैवाऽभ्युपगन्तव्यास्तेषामप्यपरप्रकाशाऽसंवेदनात्।

यदप्युक्तम् 'बुद्धिः परोक्षा' इति, अत्रापि बुद्धेः प्रत्यक्षतापत्तिः। [?? तथाहि— अर्थ(१?)प्रत्यक्षता 5 बुद्धिसत्ता तत् तस्यैवाव्यक्तं स्वरूपम्, यदि पदार्थस्वरूपाया (तथा सर्वार्थाना) प्रत्यक्षतेति सर्व सर्वदर्शी भवेत्। अथैतदोषपरिजिहीर्षायां द्वया(मिन्द्रिया)दिसामग्र्यन्तर्गतः प्रतिनियत एवार्थः कस्यचिदध्यक्षीभवतीत्युपगम्यते; नन्वेवं सामग्रीवशात् कस्यचिदर्थस्य प्रत्यक्षं स्वरूपमुपजातमिति स्वसंविदितमेवार्थस्वरूपमायातम्। अथ दर्शनसत्ता(?त्या) पूर्वस्य प्रत्यक्षता तर्हि परोक्षतया तस्या अप्रतिभासने तदव्यतिरिक्तपदार्थप्रत्यक्षताया अप्य- प्रतिभासनादर्थः प्रत्यक्षो न भवेत्। न च प्रत्यक्षतायमा(एवायम)र्थः न तु तस्यां विदितायामिति वक्तव्यम्, 10 तस्या अवेदने प्रत्यक्षीभूतार्थाऽवेदनात्। यतश्चक्षुरादिसामग्रीतः प्रादुर्भूताऽर्थप्रत्यक्षता(१?)या एव भाति तदार्थः

में है — यो ह्यप्रकाशात्मकः स व्यतिरिक्तं स्वप्र(का)शमपेक्षते ननु(?तु) यः प्रकाशात्मकः वा० बा० आदर्शयोः — इस पाठ के आधार से विवेचन ऐसा होगा कि —) जो अप्रकाशरूप होता है वह अतिरिक्त प्रकाश की अपेक्षा रखता है न कि जो प्रकाशरूप होता है, क्योंकि वह तो स्वरूप से ही अपने को प्रकाशित करता है। सारांश, यदि आत्मा प्रकाशित होती है तो उसे स्वसंवेदनात्मक ही स्वीकारनी चाहिये। 15 निष्कर्षः- जैसे आत्मा अन्यप्रकाश के विना स्वप्रकाश ही होती है वैसे नीलादि भी स्वप्रकाश माना जाय, क्योंकि अन्य प्रकाश से उस का संवेदन संभवित नहीं है।

### [ बुद्धि परोक्षतावादी मीमांसक के मत की समीक्षा ]

मीमांसक ने जो यह कहा था — 'बुद्धि परोक्ष है' यहाँ तो उल्टे बुद्धि में प्रत्यक्षता की आपत्ति आयेगी। [स्पष्टता :- बुद्धिसत्ता यदि अर्थप्रत्यक्षतारूप है तो वह अर्थ का ही अव्यक्तस्वरूप हो गया। 20 (मतलब कि अर्थ प्रत्यक्ष होगा तो बुद्धि भी प्रत्यक्ष होगी) यदि पदार्थ स्वरूप है तब तो सभी अर्थों में प्रत्यक्षता रह जाने से सभी ज्ञाता (कोशिश करने पर) सर्वदर्शी बन जायेगा। यदि उन दोषों से छूटने के लिये इन्द्रियादिसामग्री के अन्तर्भूत नियत कोई अर्थ नियत किसी व्यक्ति को ही प्रत्यक्ष होता है — ऐसा मानेंगे तो यह भी कह सकते हैं कि इन्द्रियादिसामग्री से किसी अर्थ में प्रत्यक्षस्वरूपता का आविर्भाव होता है — इस प्रकार से तो यही फलित हुआ कि अर्थस्वरूप स्वसंविदित ही होता 25 है। यदि ऐसा मानेंगे कि प्रत्यक्षता परोक्ष होने से, उस का प्रतिभास शक्य न होने पर, उस से अनतिरिक्त पदार्थ-प्रत्यक्षता का भी प्रतिभास न हो सकने से अर्थ भी प्रत्यक्ष नहीं हो पायेगा। ऐसा नहीं कहना कि — 'प्रत्यक्षता ज्ञात होने की जरूर नहीं, अर्थ ही प्रत्यक्ष होता है' — क्योंकि प्रत्यक्षता विदित न होने पर प्रत्यक्षीभूत अर्थ का भी वेदन शक्य नहीं है। कारण :- चक्षुआदि सामग्री से जब अर्थ प्रत्यक्षरूप से स्फुरता है तभी प्रत्यक्षताविशिष्ट अर्थ ही प्रत्यक्ष होता हुआ विदित होता है। 30 यदि प्रत्यक्षता का अवगम नहीं होगा तो तदन्तर्भूत अर्थात्मा का भी अवगम नहीं होगा, फिर कैसे

तद्विशिष्टतया प्रत्यक्षीभवन् विदितो भवेत्, प्रत्यक्षताऽनवगमात् तत्परिगतो वात्मानवगत इति कथमसा-  
वध्यक्षः ? यदि हि प्रत्यक्षाकारतया प्रतिभाति तदा प्रत्यक्षोऽर्थः यथा नीलं नीलाकारतया परिच्छिन्नं  
नीलमिति व्यवस्थाप्यते नान्यथा। न चार्थः प्रत्यक्षतया प्रतिता(?भा)तीति दर्शनगोचरातिक्रान्तत्वादव्यति-  
रिक्तविषयसंविदोऽप्यप्रकाशनाया(?द्या)यातमान्यत्यनव(मज्ञातत्वम)शेषस्य जगतः। ??]

- 5 न च पूर्वमर्थावभासः पश्चाद् दर्शनान्तरेण बुद्धेः, अनवस्थाप्रसक्तेः। यदि पुनरर्थस्य प्रत्यक्षता  
अपरोक्षा बुद्धिस्तु परोक्षा(?)वगमात् तर्हि चक्षुरादिसामग्रीबलादुपजायमाना सैवार्थस्य प्रत्यक्षता प्रकाशमाना  
प्रतिपुरुषं भेदमासादयन्ती बुद्धिरस्तु तदुदयेऽर्थपरिच्छेदादिव्यवहारपरिसमाप्तेः व्यर्थाऽपरा बुद्धिः। नार्थप्रत्य-  
क्षतानिबन्धनमपरा बुद्धिरभ्युपगन्तव्या, तत्र तस्याः सामर्थ्यादर्शनात्। यतश्चक्षुरादिसामग्रीसद्भावे प्रत्यक्षतोदेति  
तदभावे नोत्पद्यते इति तन्मात्रदृष्टस्य कल्पना सैवार्थस्य प्रत्यक्षता प्रकाशमाना प्रति पुरुषं भेद(प्र)संगात्।  
10 ततो बुद्धिः प्रत्यक्षा अभ्युपगन्तव्या। तदभ्युपगमे च तदव्यतिरिक्तार्थानामप्रतिभासनात् निरस्तार्थसद्भावात्  
पक्षतावा(?प्रत्यक्षतैव) बुद्धेरेवास्तु।

ननु यदि बुद्धिरेव नीलाद्याकारः तथा सति ग्राह्य-ग्राहकाकारद्वयस्य संवेदनमेकं ज्ञानं भवेत्। न

मानेंगे कि अर्थ प्रत्यक्ष कहा जायेगा, जैसे नीलाकारतया स्फुरायमाण हो तभी नील प्रत्यक्ष कहा जाता  
है, अन्यथा नहीं। यदि अर्थ प्रत्यक्षतया भासित नहीं होगा तो दर्शनविषयताक्षेत्र से बाहर हो जाने  
15 के कारण यही आया कि सारा जगत् अज्ञात = अप्रत्यक्ष है।)

### [ अर्थप्रत्यक्षता ही बुद्धि, पृथगर्थकल्पना का निरसन ]

- यदि कहा जाय — पहले अर्थावभास होगा, बाद में अन्य दर्शन से बुद्धि का प्रतिभास होगा  
— तो यहाँ उस अन्यदर्शन के प्रतिभास के लिये अन्य दर्शन, उस के लिये और एक दर्शन... इस  
तरह अनवस्था चलेगी। यदि आप अर्थ की प्रत्यक्षता को अपरोक्ष मानते हो और अस्पष्ट अवगम  
20 के कारण बुद्धि को परोक्ष कहते हो, तो उस के बदले ऐसा ही मानों कि नेत्रादिसामग्रीबल से उदित  
होनेवाली एवं स्फुरायमाण वही अर्थप्रत्यक्षता भिन्न भिन्न पुरुषों के प्रति भेद धारण करती हुई बुद्धि  
ही है, क्योंकि उस के उदय में अर्थाकलनादि व्यवहार सार्थक हो जाता है। फिर तथाविध प्रत्यक्षता  
से पृथक् बुद्धि का अंगीकार व्यर्थ है। अर्थ-प्रत्यक्षता के लिये उत्तरोत्तर नयी नयी बुद्धि के स्वीकार  
की जरूर नहीं, क्योंकि उस के लिये उस की सक्षमता दिखती नहीं। कारणः- नेत्रादि सामग्री के रहने  
25 पर ही प्रत्यक्षता उदित होती है, सामग्री के विरह में उदित नहीं होती, अतः इस अन्वय-व्यतिरेक  
के द्वारा दृष्ट की ही कल्पना करे तो वही अर्थ-प्रत्यक्षता पुरुषभेद से भिन्न होने के कारण प्रत्यक्ष  
बुद्धि स्वरूप ही स्वीकृत की जाय। वैसा स्वीकार लेने पर, यह भी सोचा जाय कि बुद्धि से भिन्न  
अर्थ का प्रतिभास नहीं होने से, अर्थसत्ता का त्याग कर के अर्थप्रत्यक्षतास्वरूप बुद्धि को ही सिद्ध  
होने दो।

### 30 [ ग्राह्य-ग्राहक दो आकार युक्त एक ज्ञान असत् ]

आशंका :- यदि नीलादिआकार बुद्धिस्वरूप ही है तो एक ही संवेदनात्मक ज्ञान ग्राह्याकार-ग्राहकाकार  
उभय कैसे हो सकता है ? दो आकार तो भासते भी नहीं, भासता है सिर्फ एक नीलादि आकार ?

चाकारद्वयमाभाति नीलादेरेवाकारस्य भासनात्। नैतदेवम्— दृश्य-दर्शनयोरेक(द्?) निर्भासादेवाकार-  
द्वयप्रतिभासाभावात्। यदि पुनर्ग्राह्याकारो ग्राहकाकारश्च पृथक् प्रतिभातस्ततो भेदप्रतिभासात् ज्ञानाद्वैतमेव  
न भवेत्। तस्मात् दृश्यदर्शनयोरेकाकारोपलम्भादेकत्वं व्यवस्थितमिति भ्रान्तज्ञानावसेय इव रजताकारः  
सत्यदर्शनाधिगम्योऽप्यसौ ज्ञानस्वभाव एव।

[ ?? न च बहीरूपतया प्रतिभासनाद् भ्रान्तसंविदवभासिनोऽपि रजतासिद्धात्तसंविद्वृपता सिद्धा, तस्य 5  
बाह्यार्थत्वेप्यवहारो भेदप्रसक्तेः। न च सत्यासत्ययोर्लौकिकतराभ्यां व्यवहारभेदः वितथाज्ञानावभासिनस्तस्या-  
ऽलौकिकत्वपरिज्ञानाभावाद्। न तावदस्याऽलौकिकत्वं तज्ज्ञानादेव, तत्र तस्याऽप्रतिभासना(द्)। यदि तु  
तत्र प्रतिभासेत तदर्थक्रियार्थिनस्तत्र वृत्तिर्न भवेत्। अथालौकिकोपि रजतादिलौकिकतया तत्र अवभासत  
इति प्रवृत्तिर(स)त्वेवमलौकिकतया तत्र भातीति विपरीतख्यातिरिति न सर्वेषां प्रतिभासमानानां सत्यता।  
किञ्च अलौकिके लौकिकं रूपं तस्य सिद्ध्यत् किं सत्यम् उताऽसत्यं (असत्यं?) कथमवभाति ? अथ 10  
सत्यम् न व्यवहारभेदः। यदि पुनरलौकिके यल्लौकिकं रूपमाभाति तदा लौकिकरूपतया सत्यम्, नन्वत्राप्यलौकिके

उत्तर :- वैसा है ही नहीं, दृश्य और दर्शन दोनों का एकरूप ही निर्भास होता है अतः दो  
आकार प्रतिभास है ही नहीं। हाँ, यदि ग्राह्याकार और ग्राहकाकार ऐसा पृथक् प्रतिभास होता तब  
तो भेदप्रतिभास के कारण ज्ञानाद्वैत सिद्ध नहीं होता। अतः दृश्य और दर्शन के एकाकार उपलम्भ  
के बल से एकत्व ही स्थापित होता है। निष्कर्ष, जैसे भ्रमज्ञान में रजताकार सत्य नहीं होता वह 15  
सिर्फ ज्ञानरूप ही होता है, वैसे ही सत्यदर्शन में भासनेवाला नीलाकार भी वास्तव में सत्य नहीं  
किन्तु वह भी ज्ञानस्वभावरूप ही होता है — यह सिद्ध हो गया।

### [ भ्रमज्ञान के रजताकार की तरह सब ज्ञानमय ]

(वाचकगण सावधान — न च बहीरूपतया... से लेकर विज्ञानवादसमाप्ति — ‘.....भेद ऋजुसूत्रः  
(१३८-८)’ पर्यन्त, पूरा लेख भूतपूर्वसम्पादकों के अभिप्राय से अशुद्धिबहुल है। इस कारण से यद्यपि 20  
उस का विवेचन लिखना उचित नहीं, स्थानाशून्यार्थ ही यथामति यह लेखनप्रयास समझा जाय।)

‘बाह्यरूप से भासित होने के कारण भ्रान्तज्ञान में प्रतिबिम्बित रजत भले ज्ञानाकाररूप हो, सत्यज्ञान  
में भासमान रजत की संवेदनरूपता सिद्ध नहीं होती’ ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि सत्यरजत बाह्यार्थरूप  
होवे फिर भी सत्य-मिथ्या रजत का बाह्य व्यवहार में सादृश्य यानी अभेद प्रसक्त होगा। यदि कहें  
कि — ‘एक सत्य होने से लोकसिद्ध है और दूसरा मिथ्या होने से लोकबाह्य, इस प्रकार व्यवहार 25  
का भेद होता रहेगा’ — तो यह सही नहीं क्योंकि मिथ्याज्ञान में भासनेवाले रजत में लोकबाह्यता  
का ज्ञान करने के लिये उस वक्त कोई उपाय नहीं होता। मिथ्यारजतज्ञान से ही रजत में लोकबाह्यता  
का भान शक्य नहीं है क्योंकि मिथ्याज्ञान में लोकबाह्यता का प्रतिभास नहीं होता। यदि भ्रमज्ञान  
में लोकबाह्यता का प्रतिभास माना जाय तो रजत क्रियार्थियों कि एक बार जो वहाँ ग्रहणार्थ प्रवृत्ति  
हो जाती है वह होगी ही नहीं। यदि कहें — ‘लोकबाह्य भी रजत वहाँ लौकिकरूप से ज्ञात होता 30  
है इस लिये उस के ग्रहणार्थ प्रवृत्ति हो सकती है’ — तो भले वहाँ अलौकिकरूप से भान होता  
हो, वह तो अन्यथाख्याति ही हुई, अतः इतना तो मानना पड़ेगा कि जो भी प्रतिभासित होते हैं

यल्लौकिकं प्रतिभातं तत् किं सत्यतया उताऽसत्यतया ? यद्यसत्यतया कथं प्रवृत्तिः ? अथ सत्यतया, कथमलौकिकं रूपं तस्य सिध्येत् ? किंच, यद्यलौकिकं रूपं प्रतिभातं स्वरूपेण न गृह्यते किं वा लौकिकत्वं परेणाऽलौकिकेतररूपेण गृह्यते तदप्यपरेणेति निरवसाना लौकिकपरम्परा समासज्येत ?]

- [ ??यदि पुनर्वितथदर्शनं विपरीतख्यातिरभ्युपेयते, तत्रापि वक्तव्यम्— किं<sup>A</sup> विपरीता ख्यातिः
- 5 आहोस्विद् विपरीतस्य वस्तुनो विपरीताकारेण ख्यातिर्विपरीतख्यातिः ? तत्र <sup>A</sup>प्रथमे विकल्पे किं <sup>A1</sup>स्वरूपापेक्षया विपरीतख्यातिः ? <sup>A2</sup>आहोस्विद् ख्यात्यन्तरापेक्षया सर्वैव ख्यातिः विपरीतख्यातिः ? आहो(?द्यः) ? तदात्रापि वक्तव्यम् किं <sup>A1a</sup>तदैव <sup>A1b</sup>उत्तरकालं (वा) ? यदि<sup>A1a</sup> तदैव तदा विरोधः। तथाहि— यदि तदा ख्यातिः कथं स्वरूपविरहलक्षणा विपरीतता ? अथ स्वरूपप्रच्युतिः कथं (किं?) सा ख्यातिः ? <sup>A1b</sup>अथोत्तरकालं ख्यातेरभावस्तथापि कथं विपरीता— (सर्वासां) ख्यातीनामुत्तरकालप्रच्युतेर्विपरीतख्याति-
- 10 प्रसक्तेः। अथ <sup>B</sup>द्वितीयो विकल्पः, तत्रापि ख्यात्यन्तरापेक्षया सर्वैव ख्यातिर्विपरीतख्यातिरिति सर्वख्याते-  
वे सब सत्य नहीं होते।

### [ रजत का लौकिकरूप से ग्रहण में अनवस्था प्रसंग ]

- और एक बात :- अलौकिक रजतादि लौकिकरूप से सिद्ध होने का बताया, वह लौकिक रूप सत्य है या असत्य ? असत्य है तो भासित कैसे होता है ? सत्य है तब तो व्यवहार से कोई
- 15 भेद न रहा (सत्य और भ्रमज्ञान के रजत में )। यदि कहें कि — अलौकिक होते हुए भी लौकिक रूप भासित होता है तब लौकिकरूप से उस को सत्य मानेंगे। — अरे यहाँ भी वे ही प्रश्न ऊठेंगे कि अलौकिक में लौकिकरूप से भासित होनेवाला रजत सत्यत्वेन दिखता है या असत्यत्वेन ? यदि असत्यत्वेन दिखेगा तो ग्रहणार्थ प्रवृत्ति कैसे होती है ? यदि सत्यत्वेन दिखेगा तो फिर उस के अलौकिकरूप की सत्ता कैसे मान्य होगी ? और भी एक दोष — अनवस्थारूप लगेगा। अलौकिकरूप प्रतीत होता
- 20 है तो स्वरूप से गृहीत क्यों नहीं हुआ ? यद्वा — अलौकिकरूप में प्रतिवादी लौकिकत्व को लौकिकरूप से गृहीत करने का दिखायेगा तो उस लौकिकरूप का भी नये लौकिकरूप से ग्रहण करना पड़ेगा, उस का भी नये लौकिकरूप से... इस तरह अन्त ही नहीं होगा, अनन्त काल तक यही लौकिक परम्परा प्रसक्त होती रहेगी।

- यदि आप मिथ्या दर्शन को 'विपरीत (अन्यथा) ख्याति' कहते हैं तो यहाँ दो विकल्प हैं —
- 25 <sup>A</sup>विपर्ययभूता ख्याति (= ज्ञान), <sup>B</sup>अथवा विपरीत वस्तु की विपरीताकार से प्रतीति—विपरीतख्याति। <sup>A</sup>प्रथम विकल्प में दो प्रश्न हैं — <sup>B1</sup>स्वरूपापेक्षया विपरीत भान ? या <sup>B2</sup>अन्य अन्य ख्यातियों की अपेक्षया प्रत्येक ख्याति विपरीतख्याति ? पहले प्रश्न के ओर भी दो उपप्रश्न — <sup>A1a</sup>स्वरूपापेक्षया उसी काल में विपरीत ख्याति या <sup>A2b</sup>स्वरूपापेक्षया उत्तरकाल में विपरीत ख्याति ? <sup>A1a</sup>उसी काल में विपरीत मानने में विरोध आयेगा। देखिये — यदि विपरीत का अर्थ है स्वरूपशून्यता, तो एक
- 30 ओर स्वरूपापेक्षया ख्याति है तो दूसरी ओर उसी काल में स्वरूपशून्यतारूप विपरीतता कैसे रहेगी ? अथवा यदि उसी काल में स्वरूपशून्यता है तो वहाँ ख्याति की सत्ता कैसे होगी ? <sup>A1b</sup>यदि उत्तरकाल में स्वरूपशून्यता को विपरीत ख्याति कहेंगे तो भी विपरीतता किस तरह ? ऐसे तो सभी ख्यातियाँ

वैपरीत्यप्रयु( ?स)क्तिः । यदि पुनर्वैपरीत्यं शुक्तिकादि रजताद्याकारेण विपरीतेन ख्यातीति विपरीतख्यातिरित्यथ पक्षाभ्युपगमः, सोप्ययुक्तः अन्यरूपेणान्यस्य परिच्छेदाऽयोगात् । तथाहि—

किं रूपद्वयनिर्भासेऽध्यारोपः कल्प्यते, उतैकरूपनिर्भासे ? यदि प्रथमः पक्षः— तदा द्वयं शुक्तिका रजतस्वरूपं चाऽऽत्मस्वरूपेण(?पा)पेक्षया सर्वै(?त्यै)व ख्यातिः । अथैकं रूपं तत्र चकास्ति तत्रापि यदि रजतमेकं स्वरूपेण भाति, कथमध्यारोपो?ऽन्याकारपरिहारेण तस्यैवैकस्य प्रतिभासनात् ? अथ शुक्तिका 5 स्वरूपेण प्रतिभाति, तत्रापि न विपरीतख्यातिः, अन्यरूपविविक्त्यायास्तस्या एव परिच्छेदाद् । अन्यस्यान्याकारेण प्रतिभासना(?न)मन्तरेण ना रजतदृग्ग्राह्यो, परिमलादेरपि रूपदृग्ग्राह्यताप्रसक्तेः । किञ्च, यद्यपरोक्षतया 'रजतम्' रजतसंविदवभासयति कथमस्या विपरीतख्यातित्वम् ? न चान्यदेव देशादिमद् रजतमन्यदेशादितयाऽभासयतीति विपरीतख्यातिः, यतो देशान्तरादिमत्ता रजतादेः किं तेनैव दर्शनेन गृह्यते ? आहोस्वित् पूर्वदर्शनेन ? तत्र न तावत्तेनैव, तत्र वर्तमानदेशादिमत्तया रजतादेरवभासनात्, तद्धि तद्देशादिमत्तयैव तावद् गृह्यताति 10

उत्तरक्षण में तो स्वरूपच्युत होती ही है तो ख्यातिमात्र को विपरीतख्याति मानेंगे ?

Bदूसरा विकल्प :- (विपरीत वस्तु की विपरीताकारतया ख्याति) यहाँ तो सर्व ख्यातियाँ विपरीतख्याति बन बैठेगी क्योंकि अन्य-अन्य ख्यातियों की अपेक्षया विपरीत ही होती है। यदि वैपरीत्य का तात्पर्य ऐसा हो कि 'सीप आदि स्वीय आकार से नहीं किन्तु रजतादि अन्य आकार से ज्ञात होना' यह है विपरीत ख्याति — इस पक्ष का स्वीकार भी अयुक्त है, क्योंकि एक वस्तु का अन्यरूप से भान सम्भवित नहीं है। 15

### [ सीप और रजत का भान सत्य है या विपरीत ? ]

स्पष्टता :- अन्यथाख्यातिवादी जो अन्यरूप का आरोप मानते हैं वह दो रूपों का निर्भास होने पर या एक रूप का — ये दो प्रश्न हैं। प्रथम पक्ष में यदि सीप और रजत दोनों का निर्भास अपने अपने स्वरूप से होता है तो वह अपने अपने स्वरूप की अपेक्षा से सत्य ख्याति ही हुयी। यदि एक ही रूप का, वह भी रजत का ही निर्भास होता है तो यहाँ आरोप का प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि अन्यरूप को 20 छोड़ कर एक सिर्फ रजत ही वहाँ भासित होता है। यदि रजत नहीं सिर्फ सीप ही वहाँ अपने स्वरूप से दिखती है तो वहाँ भी विपरीत ख्याति नहीं है, अन्यरूप से विनिर्मुक्त सिर्फ सीप का ही वहाँ भान होता है। (यहाँ अन्यस्यान्या... मन्तरेण इस पाठ के बाद तस्या अभावात्, न हि सीपाकारो रजतदृग्ग्राह्यो — ऐसा पाठ मान कर विवेचन करना है) एक वस्तु का अन्यआकार से प्रतिभास के विना विपरीत ख्याति होती नहीं। वस्तुतः सीपाकार कभी भी रजतदर्शन का ग्राह्य नहीं होता (एवं रजताकार सीपदर्शन ग्राह्य 25 नहीं होता)। यदि ऐसा मानेंगे तो परिमलादि भी रूपदर्शन का ग्राह्य बन जायेगा।

### [ अन्यथाख्याति की गहराई से समालोचना ]

और एक बात :- यदि रजतसंवेदन में अपरोक्षरूप से 'रजत' ऐसा अवभास होता है तो उसे विपरीतख्याति क्यों कर कहा जाय ? यदि कहें — 'अन्य अन्य देश-कालादिगत रजत स्वदेश-कालादिवृत्ति रूप से भासित होता है इस लिये हम उसे विपरीतख्याति कहेंगे।' तो यहाँ दो प्रश्न :- क्या रजतादि 30 की देशान्तरवृत्तित्ता उसी रजतदर्शन से दिखती है या पूर्वदर्शन से ? यहाँ, उसी दर्शन से तो नहीं दिख सकती क्योंकि उस दर्शन से तो रजतादि की वर्तमान (पुरोवर्त्ति) देशादिवृत्ति का ही भासित



न पूर्वादिमत्तया। अथ पूर्वकालादिमत्त्वं रजतादेरवभासयति, ननु तदपि तद्देशादिमत्त्वमेव तस्याऽवभासयति (न) तदानीन्तनदेशादिमत्त्वं, तदनवभासने च कथं भ्रान्तदर्शनावसेयस्य रजतादेस्तेन पूर्वदेशादिमत्तावगते(तिः? न च) 'तत्रान्यदेशादि(नादि?)मानर्थोऽन्यदेशादितया वितथदर्शने प्रतिभाती'ति वक्तव्यम्, न च बाधकप्रमाणं भ्रान्तदृगवगतरजतादेरन्यत्र देशादितामावेदयति यतो बाधकप्रतीतिरपि रजतादिकमलीकतयाऽऽवेदयति 5 नत्वन्यदेशादितया, न हि सा 'अन्यदेशादि रजतम्' इत्यवगच्छति किन्तु 'नेदं रजतम्' इति।

यदि च भ्रान्तदृशि प्रतिभासमानो रजतादिस्तद्देशादौ नास्ति तर्हि ज्ञानस्यैवाभा(?)सा)वाकारो नार्थस्येति कथं न ज्ञानस्य निरालम्बनता ? निरालम्बनत्वं ह्यर्थसंनिधिनिरपेक्षस्य ज्ञानस्य जन्म। तच्चोपरतप्रमेयाणा-मर्थसंनिधिनिरपेक्षत्वात् स्वप्नादिप्रत्ययानामस्तीति न दृष्टान्तासिद्धिः। यदि च स्वप्नादिदर्शनं विशदावभास्य-प्यन्यदेशाद्यर्थविषयम् परिशुद्धदर्शनमपि यथाप्रतिभासमानं पूर्वदृष्टाना(लं)बनं किं नाभ्युपेयते ? अथ 10 परित्यागो भवेत्। अथ बाधकेऽपरबो(?)बा)धकान्तराभावात् तस्य वर्तमानावभासकत्वम्, ननु बाधकाभाव-प्रत्ययेऽभावप्रत्ययावतारात् पूर्वदृशा(?)ष्टा)र्थग्राहिता। ननु बाधकवित्तेरपि पूर्वपरिज्ञातय(?)र)जताद्यभाववेदित्वं

होती है। वह रजतदर्शन तो रजत को तद्देश (संमुखीनदेश) वृत्तिरूप से ही प्रदर्शित करता है न कि पूर्वादिवृत्तिरूप से। यदि कहा जाय — 'भ्रान्त रजतदर्शन पूर्वकालादिवृत्तित्व को भासित करता ही है' — नहीं, पूर्वकालादिवृत्ति का ग्रहण शक्य न होने से संमुखदेश-कालादिवृत्ति का ही वहाँ ग्रहण 15 हो सकता है, न पूर्वदेश-कालादिवृत्ति का। जब वर्तमान में संमुखदेश में उस का ग्रहण ही शक्य नहीं है तब तथाकथित भ्रान्तदर्शन का ज्ञेय रजतादि की पूर्वदेशादिवृत्ति का भान उस दर्शन से होगा ही कैसे ? इसी लिये ऐसा कहना निषिद्ध है कि — 'वहाँ एक देशादिगत रजतादि अर्थ अन्यदेशादिवृत्तितया विपरीतदर्शन में भासता है।' कारण :- ऐसा कोई बाधक प्रमाण नहीं है जो तथाकथित भ्रान्तदर्शनगृहीत रजतादि को अन्यदेशादिवृत्तितया प्रकाशित कर सके। यह भी इस लिये कि बाधक प्रतीति भी रजतादि 20 को 'इस दर्शन में भासमान रजत अलीक = असत्य है इतना ही प्रकाशित करती है न कि अन्यदेशादिवृत्ति को। बाधक प्रतीति 'यह रजत अन्यदेशादिवृत्ति है' ऐसा अवगाहन नहीं करती किन्तु 'यह रजत नहीं है' ऐसा अवगाहन जरूर करती है।

### [ ज्ञान की निरालम्बनता का उपपादन ]

निरालम्बनज्ञानवादी कहता है — भ्रमज्ञान में प्रतिभासमान रजतादि संमुखदेश में नहीं है तब 25 तो उस का मतलब यह हुआ कि वह रजतादि आकार अर्थ का नहीं ज्ञान का ही है, फिर ज्ञान को निरालम्बन मानने में क्या हानि है ? निरालम्बनता यही है — अर्थसंनिधि के विना ज्ञान का उद्भव। यहाँ दृष्टान्त कोई नहीं है ऐसा मत कहना, प्रमेयों का क्षय हो जाने पर भी अर्थनिरपेक्ष स्वप्नादिप्रतीति होती है यह दृष्टान्त है। जब आप (अन्यथाख्यातिवादी) स्पष्टावभासि स्वप्नादि दर्शन को अन्यदेशकालादिअतीतार्थविषयक मानने को तैयार है तो उस के बदले परिशुद्धदर्शन को जैसा कि 30 वह प्रतिभासित होता है तदनुसार पूर्वदृष्टालम्बन से रहित ही क्यों नहीं मान लेते ? हाँ, अर्थ का त्याग हो सकता है। — 'बाधक के बारे में अन्य कोई बाधक का अवतार न होने से, बाधक प्रत्यय को वर्तमानार्थप्रदर्शक ही मानना पड़ेगा। यदि बाधक अभाव प्रतीति के बारे में अभावप्रतीति का प्रादुर्भाव

भवेत्। न हि कश्चिद् विशेषो वर्तमानानुभवं प्रति बाधक-दर्शनयोः यतो रजतदर्शनमतीतविषयग्राहि बाधकं तु वर्तमानार्थस्वरूपावेदकमिति विभागो भवेत्। अथ बाधकेऽपरबाधकान्तराभावात्तस्य वर्तमानावभासकत्वम् न तु बाधकावभासप्रत्ययेऽभावप्रतीतिः पूर्वमभावप्रतीतिः किं नोपेयते ? न चापरबाधकाभावात् तत्रापि वर्तमानार्थग्राहित्वमिति वक्तव्यम्, तत्रापि तत्पर्यनुयोगादनवस्थाप्रसक्तेः।

न च सत्यर्द(दर्श)ने संवादे(?दा)त् साम्प्रतिकार्थग्राहित्वम् भ्रान्तज्ञाने तु विपर्ययात्, पूर्वदृष्टावभासित- 5 संवादस्यैवाऽयोगात्। तथाहि- <sup>A</sup>किमुत्तरज्ञानोदयः संवादः <sup>B</sup>उत्तार्थक्रियाप्रसूतिः ? <sup>अ</sup>यद्युत्तरज्ञानोदयः, <sup>अ</sup>स किमेकविषयः, <sup>ब</sup>भिन्नविषयो वा ? <sup>अ</sup>यद्येकविषयः तदा तैमिरिकस्य <sup>अ</sup>केशोण्डुकादिविषयो ज्ञानान्तरोदयः

होगा तो वहाँ पूर्वदृष्टार्थग्राहिता माननी पडेगी।' — ऐसा माने तब तो वहाँ बाधक प्रतीति में पूर्वदृष्टरजतादि के अभाव का वेदन भी मानना पडेगा। बाधक प्रतीति या दर्शन दोनों में वर्तमानार्थ अनुभव के बारे में कोई तफावत नहीं है, जिस से कि ऐसा विभाग बन सके कि रजतदर्शन है वह अतीतार्थविषयग्राहि 10 हो और बाधक है वह वर्तमानार्थप्रदर्शक हो। यदि बाधक के प्रति और कोई बाधकान्तर के न होने से उस को वर्तमानार्थप्रदर्शक माना जाय, बाधकप्रदर्शकप्रतीति में अभावप्रतीति का निषेध किया जाय तो उस के पहले ही अभावप्रतीति का स्वीकार क्यों न किया जाय ? ऐसा मत कहना कि — उस काल में अन्य बाधक के न होने से वहाँ भी वर्तमानार्थग्राहिता ही होती है — ऐसा कहने पर तो इस में पुनः पुनः प्रश्न खडे होते रहने से अनवस्था दोष आयेगा। 15

### [ संवादप्रेरित अर्थग्राहितासाधन का निरसन ]

यह कहना कि — सत्यदर्शन में संवाद के बल से वर्तमानार्थग्राहिता मानते हैं, भ्रान्तज्ञान में नहीं मानते क्योंकि वहाँ संवाद के बदले प्रवृत्ति का विसंवाद होता है। — ठीक नहीं है, क्योंकि पूर्वदृष्ट का पुनरवभास करावे ऐसा कोई संवाद सत् नहीं है। स्पष्टता :- संवाद क्या है — <sup>A</sup>उत्तरज्ञान उदय, या <sup>B</sup>अर्थक्रिया का जन्म ? <sup>A</sup> उत्तरज्ञानोदय भी <sup>अ</sup>एक विषयक या <sup>ब</sup> भिन्नविषयक ? यदि <sup>अ</sup>एक 20 विषयक उत्तरज्ञानोदय को संवाद कहेंगे तो तिमिररोगी को एक के बाद एक — केशोण्डुक सम्बन्धि अन्य अन्य ज्ञान की शृंखला चलती ही रहती है तो उस के संवाद से उस के ज्ञान को सत्य मानना पडेगा। (केशोण्डुक = नेत्र के संमुख दिखने वाले केश जैसे गोल-गोल मिथ्या तन्तु-समूह।)<sup>ब</sup> यदि भिन्नविषयक उत्तरज्ञानोदय को संवाद कहेंगे तो वहाँ भी प्रश्न है कि यदि अन्यविषयकदर्शन उदित हुआ इतने मात्र से पूर्वदर्शन को क्या लाभ हुआ ? ऐसे तो फिर भ्रान्तरजतदर्शन के बाद भिन्नविषयक 25 सीपज्ञान का उदय होगा तो क्या भ्रान्तरजतदर्शन को सत्य मानेंगे ?

### [ अर्थ के विना भी स्वप्नादि में अर्थक्रियानिष्पत्ति ]

<sup>B</sup>यदि अर्थक्रियाकारित्व को संवाद कहेंगे तो प्रश्न यह है कि पूर्वदृष्ट जल से ही अर्थक्रियाजन्म ▲. यथा चिरकालीनाध्ययनादिखिन्नस्योत्थितस्य नीललोहितादिगुणविशिष्टः केशोण्डुकाख्यः कश्चिन्नयनाग्रे परिस्फुरति, अथवा करसंमुदितलोचनरश्मिषु येयं केशपिण्डावस्था स केशोण्डुकः-१-१-५ शास्त्रदीपिका० युक्तिस्नेहप्रपूर्णी सिद्धान्त० पृ०१९ पं०७। इति भूतपूर्वसम्पादकटीप्पणी।

केशोण्डुकं यथा मिथ्या गृह्यते तिमिरेर्जनैः- (लंकाव. सू. पृ.२७४।)

केशोण्डुका नाम पक्षिणो ये केशमलान्यत्पाटयन्ति — शिखासप्त प १०।

- संवादः स्यात्।<sup>b</sup>अथ भिन्नविषयस्तदुदयः संवादः, तत्रापि यदि नाम विषयदर्शनान्तरमुदयमासादयति पूर्व-  
दृशस्तु सत्यत्वे किमायातम् ? अन्यथा रजतज्ञानस्य शुक्तिकाज्ञानोदयात् सत्यत्वप्रसक्तिः।<sup>B</sup>अथार्थक्रिया-  
प्रसूतिः संवादः नन्वर्थक्रियापि पूर्वानुभूतादेवोदकादेः किं नाभ्युपेयते ? अथाऽविद्यमानं पूर्वानुभूतं जलादि  
न पानाद्यर्थक्रियामुपजनयितुं समर्थम्, तर्हि स्वप्नादिदर्शनमपि तदविद्यमानं कथं जनयितुमलम् ? न  
5 ह्यविद्यमानस्य तत्रापि कारणत्वं युक्तम् चिरतरातीतस्यापि तत्राप्येव। न चार्थक्रिया-ज्ञानयोः कश्चिद् विशेषो  
यतो ज्ञानमर्थमासादयति। नार्थक्रिया अर्थाभावेन दृष्टेति संनिहितार्थ(। ?)जन्मा ननु तथाभूतार्थाभावेऽपि  
स्वप्नदशायामर्थक्रियोपलभ्यते एवं जाग्रदशायामपि पित्तोपहततनोर्मलयजरसादिसंस्पर्शो दहन्निवासा (? दाहावभासः)  
कथं ? नार्थक्रियान्यथा दृष्टान्तसंवादः इति सर्वं वासनाप्रतिबद्धं दर्शनं बाह्यार्थसविधान(?र्थ)क्रियमिति  
स्वरूपप्रतिभासाः सर्वत्र प्रत्यया न बाह्यार्थावभासिन इति व्यवस्थितम्।[??] तेन नार्थाभावः प्रत्यक्षवेद्यः  
10 तत्र बहिरर्थप्रतिभासनात्' (९६-३) इति निरस्तम् बहिरर्थप्रतिभासनस्योक्तन्यायेनाऽसिद्धत्वात्।

- [??न च प्रत्यक्षतोऽर्थाभावः साध्यते यतः प्रत्यक्षविरोधो दोषः पक्षस्य स्यात्। अपि तु प्रकाशरूपता  
नीलादीनां साध्या, सा तु यथोक्तप्रकारेण प्रत्यक्षसिद्धैवेति कथं न विज्ञप्तिमात्रता ?! प्रत्यक्षप्रतीते च  
ज्ञानमात्रे न किंचिदनुमानेनेति। न च तद्भावां(वि) दोषावकाशोऽस्माकम्। न च 'सहोपलम्भनियमाद्'  
क्यों नहीं मानते हैं ? यदि कहें कि — 'पूर्वदृष्ट जलादि अविद्यमान होने पर पान आदि अर्थक्रिया  
15 निपजाने को सक्षम नहीं होता' — तो प्रश्न दूसरा — स्वप्नादिदृष्ट पदार्थ उसकाल में सत् न होने  
पर भी अर्थक्रिया निपजाने को कैसे सक्षम होगा ? उस काल में जो सत् नहीं उस में कारणता  
मानना अयुक्त है, क्योंकि तब तो युगों पूर्व अतीत पदार्थ भी अर्थक्रिया सम्पन्न कर देगा। ज्ञान कहो  
या अर्थक्रिया, कोई फर्क नहीं है, क्योंकि ज्ञान ही अर्थ यानी प्रयोजन सिद्ध करता है। यदि कहें  
कि — अर्थ विरह में अर्थक्रिया नहीं होती, संनिहित अर्थ से ही वह उत्पन्न होती है — तो बताओ  
20 कि तथाविध अर्थ के न रहने पर भी स्वप्नदशा में अर्थक्रिया होती है वह कैसे ? अरे ! जागृतिदशा  
में भी जिस के देह में प्रचण्ड पित्तप्रकोप हुआ है और चन्दन का विलेपन भी किया गया है उसे  
जलन का अनुभव कैसे ? वास्तव में तो अर्थक्रिया के बिना आप का दृष्टान्त भी संवादयुक्त नहीं  
होगा। निष्कर्ष :- दर्शनमात्र (अर्थ न होते हुए भी) ही वासनाप्रेरित अर्थाकारगर्भित होता है अत  
एव बाह्यार्थसदृश ही क्रियासम्पादक होता है, इस लिये सिद्ध होता है कि ज्ञानमात्र स्वरूपभासक ही  
25 होता है न कि बाह्यार्थावगाहि। अत एव — 'प्रत्यक्ष से अर्थाभावग्रहण नहीं होता क्योंकि प्रत्यक्ष में  
सिर्फ अर्थ का ही प्रतिभासन होता है' — यह विधान (९६-१७) निरस्त हो जाता है, क्योंकि उपरोक्त  
विचार-विमर्श से तो अर्थ का प्रतिभासन भी न्यायसिद्ध नहीं ठहरता।

[ नील-नीलबुद्धि का अभेद प्रत्यक्षसिद्ध-अनुमान से व्यवहारसिद्धि ]

- विज्ञानवादी :- हम नीलादिअर्थाभाव प्रत्यक्ष से सिद्ध होने का मानते ही नहीं जिस से कि हमारे  
30 पक्ष में उक्त प्रकार से प्रत्यक्षविरोध दोष प्रसक्त हो सके। हम तो इतना सिद्ध करते हैं कि नीलादि  
(स्वतन्त्र बाह्य वस्तु नहीं है किन्तु) प्रकाश (= ज्ञान)मय हैं, नीलादि की ज्ञानमयता तो उपरोक्त प्रकार  
से जब प्रत्यक्षसिद्ध है तो विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि क्यों नहीं होगी ? जब ज्ञानमात्रता प्रत्यक्षसिद्ध है तो

इति हेतूपन्यासो व्यर्थ इति वक्तव्यम्, परं प्रति व्यवहारसाधनाय तस्योपन्यासात्। यो हि नील-तः(?तत्) संविदोरप्रतीयमानमपि प्रत्यक्षतो भेदं 'नीलस्य संविदि'ति कल्पनावशात् पारमार्थिकं भेदमिच्छति तस्य नील-तद्धियोः पृथगनुपलम्भात् पृथक्त्वं न युक्तमिति प्रतिपाद्यते, उपलब्धिर्हि सत्त्वम्, न च नील-तद्धियोः क्रमेण युगपद् वा भेदोपलब्धिः संख्य(?सत्त्व)व्यतिरेकेण तत्संविद इत्यनुपलब्ध्येर्नीलव्यतिरेकेण तत्संविद इत्यनुपलब्धिभेदं तयोर्निराकरोति न नील-तद्धियोरभेदः प्रत्यक्षविरुद्ध इति निराकृतं दृष्टव्यम्। 5

न च नील-तद्धियोरभेदे प्रत्यक्षसिद्धे किमनुमानप्रसाध्यम्, अभेदव्यवहारयोग्यताया इ(?ए)व साध्यत्वादित्युक्तत्वात्। न च सहोपलम्भनियमोऽसिद्धः, नीलप्रत्यक्षताव्यतिरिक्तसंविदो निराकृतत्वात् यतो न बोधरूपता बौद्धैस्तद्व्यतिरिक्तरूपेष्ठा येन तदनुपलम्भात् सहोपलम्भनियमोऽसिद्धः स्यात्। अपि तु सुखादि-नीलादिप्रत्यक्षतैव संवित् तन्मात्रं च सर्वव्यवहारपरिसमाप्तैश्वरादिव्यापारस्य तत्रैवोपलम्भात् सा च सर्वेषां परिस्फुटमाभाति तदवेदने प्रत्यक्षार्थाऽवेदनोवशे(?नमवेदने चाशे)षस्य जगतः समायातः मात्प(?मान्द्य)मिति 10

हमें अनुमान की भी क्या जरूर है ? अत एव हमारे पक्ष में, अनुमान में होनेवाले दोषों को भी वास्तव अवकाश नहीं है। हम निषेध करते हैं ऐसा बोलने का कि 'सहोपलम्भहेतु तो फिर निरर्थक हो गया' — निषेध का कारण इतना ही है कि अन्य वादियों के प्रति 'नीलादि ज्ञानाभिन्नरूप से व्यवहर्तव्य हैं' ऐसे व्यवहार के प्रवर्तनहेतु ही सहोपलम्भ हेतु को प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे भी वादी हैं — नील और उसके संवेदन का भेद प्रत्यक्ष से ज्ञात न होने पर भी 'नील का संवेदन' 15 ऐसी कल्पना के बल से उन दोनों का भेद — मानते हैं, उन वादियों को हम यह सिखाना चाहते हैं कि नील और उस की बुद्धि का भिन्नतया उपलम्भ नहीं होने से उन का भेद मानना गलत है। उपलब्धि क्या है — सत्ता है। नील और उस की बुद्धि का एक साथ या क्रमशः भेदेन उपलम्भ होता नहीं, क्योंकि सत्ता के अलावा नील संवेदन की उपलब्धि होती नहीं, अतः नील से पृथक् नील संवेदन का अनुपलम्भ नील-नीलबुद्धि के भेद का छेद कर देता है। अतः नील और नीलबुद्धि का 20 अभेद प्रत्यक्ष बाधित होने का कथन निरस्त समझ लेना।

**[ अभेद प्रत्यक्षसिद्ध है तो अनुमान का प्रयोजन क्यों ? ]**

ऐसा भी नहीं कहना कि नील और नीलबुद्धि का अभेद यदि प्रत्यक्षसिद्ध है तो अनुमान से किस का प्रसाधन करेंगे ? हम अभेदव्यवहार योग्यता ही सिद्ध करते हैं न कि अभेद को — यह पहले कह दिया है। साध्य जैसे अबाधित है, हेतु सहोपलम्भ नियम भी असिद्ध नहीं है, क्योंकि 25 हमने नीलप्रत्यक्षता से पृथक् संवेदन की सम्भावना का छेद कर दिया है। बौद्धमत में बोधरूपता का नीलप्रत्यक्षता से पृथक् स्वीकार इष्ट ही नहीं है जिस से कि उन की अनुपलब्धि के द्वारा सहोपलम्भ की असिद्धि दिखाई जा सके। हमारा मत है कि सुखादिप्रत्यक्षता या नीलादिप्रत्यक्षता ही संवेदन है, इतना मात्र मान लेने पर सभी व्यवहार सार्थक यानी उपपन्न हो जाते हैं, अन्य लोग जो परमेश्वर का इस विषय में हस्तक्षेप मानते हैं उस की भी उपलब्धि तो व्यवहारसिद्धि के लिये ही मानी जाती 30 है। नीलादिप्रत्यक्षतारूप संवेदन का तो सभी को स्पष्ट भान होता है, यदि उस का वेदन नहीं होगा

प्रतीतत्वात् नील-तद्धियोः कथं (न) सिद्धः सहोपलम्भनियमः ?

[??मीमांसकमतमपि नीलं प्रत्यक्षं बुद्धिस्तु तद्धेतुभूता प्रवेश(तद्देश?)प्रत्यक्षान्यथाऽनुपपत्त्या पश्चात् प्रतीयते (१०४-१) इति सहोपलम्भतोऽसिद्ध इति प्राग् दि(?)रस्तमेव । यदि(त्) तेनोक्तम्— पश्चादुपलभ्यते बुद्धिः (१०४-३) इति, तत्रापि बुद्धिप्रतीतिकाले यद्यर्थस्यापि प्रतीतिस्तदा द्वयोर्युगपदुपलम्भः स्यात् । न चैतदिष्टम् इष्टो वा हेतुर्न सिद्धः । न च युगपदुपलभ्यमानयोः ग्राह्य-ग्राहकभावः सम्भवतीति ज्ञानमिति न सिद्धो(दृध्येत्) । यदि तु तदा नार्थप्रतिभासः तथापि केवलायास्तस्याः प्रतिभासनात् 'अर्थस्य बुद्धिः' इति न युक्तं भवेत्— इत्यादेः प्राक् प्रतिपादितत्वाद् नासिद्धो हेतुः ।

नाप्यनैकान्तिकः सर्वज्ञज्ञानस्य पृथगुपलम्भाद् भेदः, यत सर्व(ज्ञ)ज्ञानं पृथग्जनचित्ता(त्) पृथग् भाति पृथग्जनस्यापि स्वचित्तं सर्वविद्विज्ञानं विनापि भातीति भेदः, नील-तद्धियोस्तु न कदाचित् पृथगुपलम्भः एकलोकी(ली)भावेन सर्वदोपलम्भात् । न हि नीलव्यतिरिक्ता या प्रत्यक्षता भाति तद्व्यतिरिक्तं वा नीलम्

तो प्रत्यक्षार्थों का भान नहीं होगा, अर्थों का प्रत्यक्ष वेदन न होने पर सारे जगत् को अन्धापन आयेगा । सारांश, नील और नीलबुद्धि का अभेद सुप्रतीत है तब सहोपलम्भनियम कैसे असिद्ध होगा ?

### [ बुद्धिपरोक्षतावादी मीमांसक मत का निरसन ]

मीमांसकों का मत भी निरस्त हो जाता है । उन का जो यह मत है कि नीलादि अर्थ प्रत्यक्ष होता है किन्तु उस की हेतुभूत वह प्रत्यक्षबुद्धि खुद परोक्ष होती है जो तद्देशीय अर्थ की प्रत्यक्षता की अन्यथाअनुपपत्ति के द्वारा बाद में ज्ञात (= अनुमित) होती है । (१०४-१२) । अतः सहोपलम्भनियम असत् है । — इस मत का निरसन पहले (१०४-१४) हो चुका है । यह जो उसने कहा कि 'बुद्धि का उपलम्भ बाद में होता है' यहाँ भी आपत्ति यह है कि बाद में बुद्धि का जब उपलम्भ होता है तब यदि अर्थ का भी उपलम्भ होता है तब तो दोनों का सहोपलम्भ सिद्ध हो गया । आप को तो यह इष्ट नहीं, अथवा पश्चादुपलम्भस्वरूप आप का इष्ट हेतु सिद्ध नहीं हुआ । तथा, एक साथ उपलब्ध होनेवाले नील और बुद्धि का ग्राह्य-ग्राहकभाव भी सम्भवित नहीं अतः बाद में भी ज्ञान सिद्ध नहीं होगा । यदि बुद्धि-उपलम्भ समान काल में अर्थ प्रतिभास न होकर केवल बुद्धि का ही प्रतिभास मानेंगे — तो 'अर्थ की बुद्धि' ऐसा मानना अयुक्त हो जायेगा — इत्यादि पहले कई बार कह दिया है अतः सहोपलम्भनियम हेतु असिद्ध नहीं है ।

25 [ हेतु में अनैकान्तिकता या संदिग्धविपक्षव्यावृत्ति दोषों का उद्धार ]

हेतु तथा अनैकान्तिक (= साध्यद्रोही) भी नहीं है । यदि कहें कि — 'आमजनता के चित्त का ग्रहण सर्वज्ञ ज्ञान से होता है वहाँ सर्वज्ञ ज्ञान और चित्त का भेद स्पष्ट है अतः आप का हेतु अभेद विरुद्ध भेदवत् सर्वज्ञज्ञान में रह जाने से साध्यद्रोही हो गया' — तो यह ठीक नहीं, आपने बताया वहाँ तो ज्ञान-ज्ञान में भेद है क्योंकि सर्वज्ञ ज्ञान आमजनता के चित्त (= ज्ञान) से पृथक् ही प्रतीत होता है (यानी वहाँ सहोपलम्भ ही नहीं है) । आमजनता का चित्त भी सर्वज्ञज्ञान के विना भी प्रतीत होता है, जब कि नील और नीलबुद्धि का तो कभी भी पृथग् उपलम्भ नहीं होता किन्तु एकरस भाव से ही उनका सदाकाल उपलम्भ होता है । नील और बुद्धि एक ही होते हैं इसीलिये

एवं स्वै रूपोपलम्भाच्चैकत्वव्यवहारः, अन्यथा तदयोगात्। सर्वे चात्र नीलादयोऽभिन्नरूपोपलम्भा एकत्र-  
(?त्व)व्यवहारे साध्ये स्वरूप(पा)पेक्षया दृष्टान्तीभवन्तीति दृष्टान्तसिद्धिरपि न प्रेरणीया। न च  
संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिरयं हेतुः अभिन्नोपलम्भेपि भेदे सर्वत्राभेदोच्छेदप्रसक्तेः।

यदपि 'भेदेष्वेकसामग्र्यधीनतया नील-तद्धियोः सहोपलम्भः' इत्युक्तम् (१०४-८) (तदपि निरस्तं)  
दृष्टव्यम् भेदानवभासनेन तस्याभावात्। यदपि 'रूपालोकयोः सहोपलम्भेऽपि भेदः' इत्युक्तम् (१०४-५) 5  
तदप्यसम्यक्, यतो रूपालोकयोर्ययोरपृथगुपलम्भः भेदोऽपि तयोर्न सम्भवत्येव। यतो न नीलमालोको वा  
तद(1)पि निर्भागावर्त्ती पृथगभ्युपगम्यते प्रकाशात्मनो नीलस्यैवोत्पादात्। ययोः पुनर्भेदस्तयोरपृथगुपलम्भो  
नास्तीति नीलादिभिन्नस्याऽप्रत्यक्षरूपस्य तस्यानुपलम्भात्। यदप्युक्तम् 'सह'शब्ददृष्टत्वाद् विरुद्धो हेतुः'  
इति (१०५-८) तत्रापि विकल्पारूढं भेदमाश्रित्य 'सह'शब्दः प्रयुक्तः परमार्थतस्तदभावेऽपि। अथ यदि  
भेदो विकल्पैरुल्लिख्यते किमिति सत्यो न ? वस्तुरूपाऽसंस्पर्शित्वात्। (न?) तत्र (?तच्च) नील- 10

प्रत्यक्षता नीलादि से पृथग् भासित् नहीं होती, यद्वा, नीलादि प्रत्यक्षता से पृथग् भासित नहीं होता।  
इस तरह दोनों ही अपने अपने एकरूप से उपलब्ध होते हैं अतः उन का व्यवहार सम्भवित नहीं  
हो सकता। हमारा साध्य यही एकत्व-व्यवहार है और उस की सिद्धि के लिये अपृथग्रूप से उपलब्ध  
होनेवाले सभी नीलादि अपने अभिन्नरूप से दृष्टान्त बन सकते हैं अतः यहाँ दृष्टान्त असिद्धि की  
शंका भी नहीं करना। 15

तथा सहोपलम्भनियम हेतु में संदिग्धविपक्षव्यावृत्ति की भी शंका नहीं करना, क्योंकि अभेद का  
स्पष्ट उपलम्भ होने पर भी आप विपक्ष भेद की शंका करेंगे तो सुप्रसिद्ध अभेदोपलम्भवाले नील एवं  
नीलस्वरूप इत्यादि सभी स्थल में भी सर्वत्र भेद की (विपक्ष की) शंका करते रहने पर अभेद की  
कथा का ही उच्छेद सर्वत्र प्रसक्त होगा।

### [ सहोपलम्भ में भेद साधकता प्रयुक्त विरुद्धदोष का निरसन ] 20

यह जो कहा था कि (१०४-२९) — 'भिन्न होने पर भी नील और बुद्धि दोनों एकसामग्रीनिष्पन्न  
होने से सहोपलम्भ होता है' — यह निरस्त समझ लेना। (क्यों कि हमने अभी हेतु की अनैकान्तिकता  
का निरसन कर दिया है।) भेद का अवभास ही नहीं है तो भेद कैसे होगा ? यह जो कहा था  
— (१०४-२४) 'रूप और आलोक का सहोपलम्भ होने पर भी भेद ही होता है' — यह भी युक्त 25  
नहीं है, क्योंकि जिन नील रूप और आलोक का अपृथग् उपलम्भ होता है उन का भेद सम्भवित  
भी नहीं ही होता। कारण, उस वक्त भी अपृथगवर्त्ती नीलरूप और आलोक पृथक् पृथक् होने का  
हम नहीं मानते, वहाँ तो झीलमिल तेजोरूप चमकीले ही नील का जन्म मानते हैं। जहाँ नील और  
आलोक का भेद होता है वहाँ तो उन का अपृथग् उपलम्भ होता ही नहीं। कारण, वहाँ नीलादिभिन्न  
आलोक अप्रत्यक्ष होने से उस का उपलम्भ ही नहीं होता। यह जो कहा था — 'भेद में 'सह' शब्दप्रयोग  
होता है अतः सहोपलम्भ अभेद के बदले भेद का साधक होने से विरुद्ध हेतुदोष आया। (१०५- 30  
२०)' — वहाँ (सहोपलम्भ हेतु पर) ध्यान देने पर पता चलेगा कि दर्शनगृहीत नहीं किन्तु विकल्प  
(जो कि मिथ्या होता है) उद्भासित भेद के लिये ही 'सह' शब्द प्रयुक्त किया गया है, परमार्थ से

तद्धियोरभेदे एकरूपोपलम्भात् (न) सिध्यत्येव। तथा, संवेदनादप्यभेदः सिद्धः। नीलादीनां प्रत्यक्षं च स्वरूपं संवेदनमुच्यते, विज्ञानस्यापि ह्यपरोक्ष(ता) तद्भेदात् तदर्थस्य 'सह' शब्दस्यावृत्तिर्युक्ता परमार्थतोऽभेदेऽपि।??]

- यद्वा एकस्मिन्नप्यर्थे सहशब्दो दृष्ट एव यथा 'सहदेशोऽयमस्माकम्' इत्येकरूपोपलब्धिरेकत्वेन व्याप्ता  
5 प्रत्यक्षत एव ते गता। ततो न विरुद्धत्वम् विपर्ययव्याप्तेरभावात्। यदप्युक्तम् (१०६-१) — 'एकरूपोप-  
लब्धिर्विज्ञानस्यार्थस्य, वा प्रथमपक्षेऽपि बौद्धं प्रति...' इति तदपि निराकृतमेव, नीलतद्बुद्धचरोकोपलम्भस्य  
प्रतिपादितत्वात्, विवादश्च तयोर्भेदाभेदौ प्रति न स्वरूपं प्रति, तस्य सिद्धत्वात्। न चैकरूपोपलम्भस्तयो-  
रध्यक्षसिद्धो वचनमात्रादेवासिद्धो भवति। तस्मात्नीलतद्धियोरभेद एकरूपोपलम्भात् सिध्यत्येव। {तथा  
संवेदनादप्यभेदः सिद्धः। नीलादीनां प्रत्यक्षं च स्वरूपं संवेदनमुच्यते। विज्ञानस्यापि(ह्यभेदः सिद्धः  
10 नीलादीनां प्रत्यक्षं च स्वरूपं संवेदनमुच्यते)ऽ(?)विज्ञानस्यापि ह्यपरोक्षमेव स्वरूपं संवेदनतद्व्यतिरिक्तस्य

तो अभेद ही है। यदि पूछा जाय कि भले भेद विकल्पारूढ हो विकल्प उल्लिखित हो, सत्य क्यों नहीं? उत्तर यह है कि विकल्प वास्तवस्वरूपस्पर्शी नहीं होता। वास्तव में तो नील और बुद्धि का अभेद होने से एक ही तत्त्व का उपलम्भ होने के कारण भेद सिद्ध ही नहीं है।

- तदुपरांत, संवेदन से भी अभेद सिद्ध होता है, नीलादि का प्रत्यक्ष स्वरूप ही 'संवेदन' कहा  
15 जाता है, एवं विज्ञान अपरोक्षरूप होता है, इन दो में (वास्तव में अभेद होने पर भी विकल्पकृत)  
भेद होने से 'सह' शब्द की आवृत्ति (यानी प्रयोग) करना अयुक्त नहीं, यद्यपि वहाँ वास्तव में तो  
अभेद ही जीवंत है।

### [ एक अर्थ में 'सह' शब्दप्रयोग की संगति ]

- अथवा दूसरा समाधान :- एक ही अर्थ में भी 'सह' शब्दप्रयोग दिखता ही है। जैसे, 'यह हमारा  
20 सह-देश है' — इस का मतलब है 'यह हम सभी का एक ही देश है'। इस प्रकार एकत्व अविनाभाविवि  
एकरूप की उपलब्धि प्रत्यक्ष से ही आप को ज्ञात होती है। अतः सहशब्दगर्भित हेतु में विरुद्धत्वदोष  
सम्भव नहीं है क्योंकि हेतु विपर्यय (यानी भेद) से व्याप्त नहीं।

- यह जो कहा था (३५३-१२) — 'एकरूपोपलब्धि किस की? विज्ञान की या अर्थ की? पहले  
पक्ष में बौद्ध के प्रति ... (यानी बौद्ध के प्रतिवादी के प्रति हेतु-असिद्धि होगी क्योंकि वह अर्थ की  
25 भी उपलब्धि मानता है... इत्यादि,') यह सब निरस्त हो जाता है — क्योंकि पूर्वपरिच्छेदों में हमने  
नील और उस की बुद्धि के एक उपलम्भ का प्रदर्शन कर दिया है। विवाद एकोपलम्भस्वरूप का नहीं  
है, किन्तु एकोपलब्धिवाले नील और ज्ञान के भेद या अभेद का है, एकउपलम्भ स्वरूप तो दोनों  
का सिद्ध ही है। नील और बुद्धि का एक उपलम्भ प्रत्यक्ष सिद्ध है तब 'असिद्ध' ऐसे आरोपमात्र  
से वह असिद्ध नहीं हो सकता। अतः नील और बुद्धि का अभेद एकरूप उपलम्भ हेतु से सिद्ध होता है।

### [ संवेदनस्वरूप होने से दोनों में अभेद सिद्ध ]

(तथा संवेदना... विज्ञानस्यापि — यह पाठ पूर्वपरिच्छेद में आ चुका है उस का यहाँ पुनरावर्तन  
लगता है, तथा विज्ञानस्यापि... के बाद लगता है कि फिर से नीलादीनां ... विज्ञानस्यापि... पुनर्मुद्रण

तस्यायोगात् अतो न नील-तद्धियोः संवेदनभेदः अन्योन्यस्य संवेदनाऽयोगात्। यदप्युक्तम् — 'संविदो भिन्नमभिन्नं वा नीलस्य संवेदनं भेद( ?दे) हेतुविरुद्धः अभेदश्चासिद्धः।' इति तदप्यसंगतमेव, नीलादीनामपरोक्ष आत्मा संविद् इति प्रतिपादितत्वात् तथा च ज्ञानव्यवहारयोगात् साध्यते परपरिकल्पितबोधवत् अन्यथा बोध-व्यवहारोच्छेदप्रसङ्गात्।

ननु कः सहोपलम्भनियमादस्य भेदः ? एकोपलम्भ एव तस्याप्यर्थः अत्रापि स एव। नैतत्, सहोप- 5  
लम्भेन पृथग्भावनिराकरणात् तद्द्वारेण संविद्वृत्ता नीलादयः प्रसाध्यन्ते, अनेन तु त एव बोधरूपा  
विधिरूपेणेति। द्वयोरपि हेत्वोर्व्यापारभेदोऽस्त्येव, परमार्थतस्तु न कश्चिद् भेदः। तच्चाद्बो(बो)धव्यतिरिक्त-  
मभ्युपगम्य सहोपलम्भनियमात्रीलादेः संविद्वृत्ता साध्यते। न हि सकृदुपलभ्यमानयोग्राह्य-ग्राहकभावो नील-  
बोधयोर्युक्तस्तदन्यक्रियाविरहात् चन्द्रद्वयस्येव परस्परं बोधेन सहेति प्राक् प्रतिपादितम् ग्राह्य-ग्राहकभावाभावे  
स्वसंविद्वृत्ताः सिद्धा एव नीलादयः तेन नील-तद्धियोः स्वरूपभेदेऽपि चन्द्रद्वयादेरिव परस्परं बोधरूपतया- 10

हुआ है जिस में अवग्रह भी अनुचित है) एकोपलम्भ उपरांत संवेदन से भी अभेद सिद्ध होता है:-  
नीलादि का स्वरूप प्रत्यक्ष संवेदनात्मक है तो विज्ञान का भी स्वरूप अपरोक्ष संवेदनरूप ही है, संवेदन  
से भिन्न दोनों का कोई स्वरूप नहीं है; अतः नील और नीलबुद्धि में कोई संवेदनभेद नहीं है, परस्पर  
भिन्न संवेदन होता नहीं। यह भी जो कहा था — नील का संवेदन विज्ञान से भिन्न हो या अभिन्न ?  
भेद मानेंगे तो हेतु विरुद्धदोषान्वित बनेगा, अभेद तो असिद्ध है... इत्यादि, वह भी असंगत है क्योंकि 15  
नीलादि का जो अपरोक्ष स्वरूप है वही संवेदन है यह कई बार बोल दिया है। (पृ०१०६ पं०६  
से पृ०१०७ पं०८ तक पूर्वपक्ष का वक्तव्य देख सकते हैं)। ज्ञान के व्यवहार-साधन से भी वही सिद्ध  
होता है जैसे पूर्वपक्षकल्पित बोध तथाविध व्यवहार से सिद्ध किया जाता है। ऐसा न मानने पर  
तो बोधव्यवहार का ही उच्छेद प्रसक्त होगा।

### [ सहोपलम्भनियम और तथासंवेदन दो हेतु में भेद ]

20

प्रश्न :- सहोपलम्भनियम हेतु और तथा संवेदन हेतु दोनों में भेद क्या है ? सहोपलम्भ का  
जो अर्थ है एकोपलम्भ, तथा संवेदन का भी यहाँ वही अर्थ है।

उत्तर :- ऐसा नहीं है, सहोपलम्भ हेतु से पृथग्भाव का निरसन होता है जिस के द्वारा नीलादि  
संवेदनमय सिद्ध किया जाता है। तथा संवेदन इस हेतु से वे ही नीलादि की विधिरूप से बोधरूपता  
सिद्ध की जाती है, इस प्रकार दोनों हेतुओं की कारवाई अलग अलग हैं, हाँ यहाँ व्यवहारभेद है, 25  
परमार्थ से कोई भेद नहीं है। दोनों हेतु स्वभावहेतु होने से नील एवं संवेदन को अबोधभिन्न मान  
कर सहोपलम्भनियम से नीलादि में बोधरूपता सिद्ध की जाती है। एक बार (यानी एक साथ) उपलब्ध  
नील-बोध में ग्राह्य-ग्राहकभाव मानना योग्य नहीं, क्योंकि उन दोनों से अतिरिक्त कोई ग्रहणक्रिया है  
ही नहीं। चन्द्रद्वय में जैसे अन्योन्य भेद नहीं होता वैसे नीलादि का भी बोध से भेद नहीं है यह  
पहले कहा जा चुका है। ग्रहणक्रियानिषेध से ग्राह्य-ग्राहकभाव का निषेध फलित होने से नीलादि 30  
स्वसंविदितस्वरूप ही सिद्ध होते हैं। अतः जैसे चन्द्रद्वय में द्वित्व (यानी भेद दिखने पर भी अभेद)  
होता है वैसे ही नील और बुद्धि में परस्पर स्वरूपभेद दिखता हो फिर भी बोधात्मक होने से,



ऽभेदः सहोपलम्भनियमात् ।

अयं चार्थः स्वयमेव शास्त्रकृता स्पष्टीकृतः— “न हि भिन्नावभासित्वेऽप्यर्थान्तरमेव रूपं नीलस्यानुभवात्” [ ] इत्यनेन प्रतिभासभेदात् स्वरूपभेदेऽपि नीलस्यानुभवादर्थान्तरं जडतया विजातीयमेव रूपं न भवतीति यावत् स्वरूपभेदेऽपि प्रकाशरूपत्वात् । यदि तु सर्वात्मनील-तद्धियोरभेदः साध्यः तथा सति एवकारो न युक्तः, नार्थान्तरमेवमिदं वाच्यं स्यात्, प्रत्यक्षबाधश्च दुर्निवारो नीलादेः सुखादिरूपस्य बोधस्य भेदे साध्ये । यदा तु तयोर्भेदेऽपि साम्यं बोधरूपतया साध्यते तदा न कश्चिद् दोषः । रूपालोकयोरपि परस्परं न प्रकाश्य-प्रकाशकभावः सहोपलम्भनियमादेव । चित्त(1?)चैतानामपि स्वसंविद्रूपतैवेति न तैरपि व्यभिचारः, सर्वविदोऽपि स्वसंवेदन(1?)मेव स्वसत्त्वं परचित्त(2?)वेदनं तु व्यवहारमात्रेण । विद्वताव(3?)व्यभिचारिता) दूरोत्सादितैव अस्मिन् व्याख्याने स्वरूपैकत्वाऽसाधनादेवाऽसिद्ध इति नैव सुखादेरतन्नी(रन्तनी)लादेर्बहि-  
 10 श्चावभासनात् तयोरेव ग्राह्य-ग्राहकभावाभावतः सहोपलम्भनियमात् स्वप्रकाशरूपता साध्यते व्यतिरिक्तस्य सहोपलम्भनियममूलक अभेद सिद्ध होता है ।

[ भेदावभास के होने पर भी संवेदन से अभेद ]

शास्त्रकार ने (?) स्वयं इस अर्थ का स्पष्टीकरण किया है — ‘नील का स्वरूप अनुभव से भिन्न नहीं है यद्यपि वह भिन्नतया भासित होता है।’ [ ] इस से फलित होता है कि प्रतिभासभेदमूलक  
 15 स्वरूप भेद के रहते हुए भी नील का स्वानुभव से भेद तथा जडता के जरिये वैजात्य होता नहीं, क्योंकि स्वरूपभेद होने पर भी प्रकाशरूपता अखंडित रहती है। यदि नील और उस की बुद्धि में सर्वात्मना अभेद सिद्ध करने जायेंगे तो वाक्य में ‘एवकार’ प्रयोग करना पड़ेगा, किन्तु वह युक्त नहीं है, (क्योंकि ‘एवकार’ से फिर व्यवच्छेद किस का करेंगे ?) जकार के बिना इतना ही कहना चाहिये कि बुद्धि और नील अर्थान्तर नहीं है। दूसरी ओर, नीलादि और सुखादिबोध में सर्वथा भेद को  
 20 सिद्ध करने जायेंगे तो प्रत्यक्षबाधा दुर्निवार रहेगी। हाँ, उन दोनों में भेद के रहते हुए भी बोधरूपतया साम्य की सिद्धि करेंगे तो कोई दोष नहीं होगा।

[ चित्त-चैतादि स्थल में व्यभिचार का वारण ]

रूप-आलोक का दृष्टान्त दिया जाता है (भेदसिद्धि के लिये किन्तु वहाँ भी सहोपलम्भनियम के कारण परस्पर प्रकाश्य-प्रकाशकभाव सिद्ध नहीं हो सकता (तो भेदसिद्धि कैसे होगी ?)। चित्त एवं  
 25 चैत (= चित्त में प्रतिबिम्बित अर्थ) स्थल में भी सहोपलम्भ हेतु को साध्यब्रह्म दोष नहीं है, क्योंकि वे दोनों संवित्स्वरूप ही है। ‘सर्वज्ञ के ज्ञान में अन्य संवेदनों का सहोपलम्भ होने पर भी भेद है’ ऐसी बात नहीं है क्योंकि मुख्यतया सर्वज्ञ भी स्वसंवेदन का ही वेदन करते हैं (स्वसंवेदन में प्रतिबिम्बित परकीय संवेदनों का स्वसंवेदान्तगत रूप से ही वेदन करते हैं) स्वतन्त्रतया परचित्त का वेदन करते हैं ऐसा प्रवाद व्यवहारमात्र है अतः इस स्थल में व्यभिचारिता दोष निरस्त हो जाता है। इस व्याख्यान  
 30 में (स्वरूपतः भेद, संवेदनतः अभेद), सुखादि अन्तस्तत्त्वरूप से और नीलादि बहिस्तत्त्वरूप से भिन्न भासित होने के कारण सहोपलम्भनियम हेतु को असिद्ध नहीं कह सकते क्योंकि हमें संवेदनतः अभेद ही साध्य है न कि स्वरूपतः भेद, स्वरूपतः एकत्व तो हम मानते ही हैं। सुखादि नीलादि में ग्राह्य-

बोधोऽग्राहकोऽप्रतीतेरेव ।

अथवा परोक्षो बोधः पुरोव्यवस्थितार्थान् प्रतिपद्यत इति परेषामभ्युपगमः, तदभ्युपगमात्रीलकालो बोधात्मा भवतु प्रत्यक्षस्तथापि न तयोर्वेद्यवेदकभावः सहोपलम्भनियमादिति प्रतिपाद्यते तेनायमदोषः । संवेदनं तु प्रत्यक्षरूपं बोधरूपतां नीलसुखादेर्वस्तुस्थित्यैव साधयति, बोधव्यवहारस्य तत्रैव सिद्धेः अन्यथाभूतस्यानुपलब्ध्येस्तस्याऽभावात् ततो नीलादेः सुखादेश्चात्मैवानुभवः चक्षुरादिव्यापारात् परोपि तदा स 5 स्यात् । न च चक्षुरादिव्यापारादेव नीलादयोऽनुभवरूपा जायन्ते यतश्चक्षुरादयोऽपि नानु(भव)व्यतिरिक्ताः सत्य(सन्त्य)र्थवादप्रसक्तेः । नैतदेवम् (?न चेदेवम्—)स्वप्नदशावज्जाग्रदशायामपि वासनावशादेव नियतावभासोदयो भविष्यतीति न कार्यव्यतिरेकादप्यर्थवादकल्पना युक्तिमतीति सर्वत्र विज्ञप्तिमात्रतैव।[??]

[??ननु यदि विज्ञप्तिमात्रतैवाभ्युपेया तथा सति मेय-मानमिति व्यवहारविलोपः, तस्य भेदपूर्वकत्वात्— अर्थो हि प्रमितिक्रियया व्याप्यमानत्वात् प्रमेयम्, कर्मणि कृत्यविधानात् । तथा नीलादयो यदि बोधः 10 स्यात् तदाऽसौ स्वतन्त्रो नीलदृशं प्रतीत्य प्रमाता भवेत् चक्षुरादयश्च करणतया मानं भवेयु अर्थमिनिस्तु(फलम्)

ग्राहकभाव नहीं है अतः उन में सहोपलम्भनियम से स्वप्रकाशरूपता सिद्ध कर सकते हैं क्योंकि बोध अतिरिक्त अर्थ का कोई ग्राहक नहीं है क्योंकि वैसी प्रतीति नहीं होती ।

### [ अभ्युपगमवाद से मीमांसकमतानुसार भी विज्ञानमात्रता ]

अथवा मीमांसक मतानुसार, संमुखवर्ती अर्थों का बोध परोक्ष माना गया है, तो अभ्युपगमवाद 15 से हम कहते हैं कि बोध नील समानकालीन मान लेंगे, किन्तु उन का वेद्य-वेदकभाव प्रत्यक्ष नहीं है, सहोपलम्भनियम के आधार पर ऐसा कह सकते हैं — इस में तो कोई दोष नहीं है । प्रत्यक्षात्मक जो अर्थसंवेदन है उसी से नीलादि-सुखादि की बोधरूपता वस्तुमर्यादानुसार सिद्ध हो जायेगी क्योंकि नीलादि-सुखादि में ही बोधव्यवहार-प्रवृत्ति प्रसिद्ध है । नीलादिभिन्न में तादृश व्यवहार अनुपलब्ध है, इस लिये उस का असत्पन फलित होता है । अतः नीलादि एवं सुखादि का आत्म स्वरूप ही अनुभव 20 है जो कि उस समय चक्षुआदि व्यापार का अगोचर हो सकता है । ऐसा नहीं है कि — नेत्रादिव्यापार से ही नीलादि अनुभवदशापन्न बनते हैं — क्योंकि विज्ञानवाद में नेत्रादि भी क्या है ? आखिर एक प्रकार का अनुभव । उस से भिन्न मानेंगे तो अर्थवाद प्रसक्त होगा । (यहाँ 'नैतदेवम्' के बदले 'न चेदेवम्' ऐसा पाठ ठीक लगता है — मतलब) नेत्रादि को अनुभवात्मक न माने, असत् ही माने, तब तो स्वप्न दशा में जैसे नेत्रादि के विना वासनावश नियत अनुभव होता है वैसे जाग्रद दशा 25 में भी वासनावश नियत अनुभव का उदय हो जायेगा । निष्कर्ष, ठोस कार्य की साक्षि के विना सिर्फ कल्पना से अर्थवाद का स्वीकार युक्तिसंगत नहीं है । सारांश, विज्ञानमात्रस्वरूप पूरा जगत् है।[??]

### [ विज्ञानवाद में प्रमेयादिव्यवस्था शंका-समाधान ]

पूर्वपक्ष :- अगर विज्ञप्तिमात्रता ही मान्य करेंगे तो मान-मेयादि का व्यवहार कैसे घटेगा -- उसका तो लोप प्रसक्त होगा, क्योंकि वह तो भेदमूलक ही होता है । देखिये — प्रमितिक्रिया से व्याप्यमान 30 होने के कारण नीलादि अर्थ 'प्रमेय' होता है, 'प्रमेय' शब्द में 'य' प्रत्यय कृत्यप्रत्यय है उस का विधान कर्म (= व्याप्य) में किया गया है । नीलादि यदि बोधरूप होंगे तो स्वतन्त्र होने से वह

उपलम्भसाध्यत्वात् स्यात् तदभावे तु न नीलादयः संविद्रूपाः सिद्ध्यन्ति सिद्धः (?द्धेः) प्रमाणनिबन्धनत्वात्। न च स्वसंवेदनमेव प्रमाणं व्यवस्थाकारि, तत्र दृष्टान्ताऽसिद्धेः। प्रदीपादयोऽपि हि परप्रकाश्या एव। च (न च) तेनैवात्मना स एवाधिगन्तुं शक्यम्। न ह्यंगुल्यग्रेण तेनैव तदेवांगुल्यग्रं स्पृश्यते<sup>▲</sup> इति। असदेतत्, यतो यथा बाह्यार्थवादे सुखादीनामा(?न्या)त्म(। ?)विषये प्रमाणम् तेषामेव वेदनं = वित्तिः

5 फलं सुखादयश्च मेयम्, य(?त)थैवापरेषामात्माऽपरोक्षो मेयः तस्य च प्रकाशरूपता मानम् तत्रप्रतिभासः फलम् तदन्यग्राहक(।?)भावेऽप्यनवस्थाप्राप्तेर्मतनि(?मि)यमेव मेय-मान-फलानां व्यवस्था सर्वत्र नीलादौ योजनीया विज्ञानवादे।

अथ नीलादीनां जडत्वाद् न संविदस्ति, सुखादेरात्मनश्च प्रकाशरूपत्वात् संविदिति अत्रोच्यते— तत्रापि ज्ञानवादेऽनुभवात्मकत्वात् प्रकाशरूपत्वापत्तेः नीलादयः स्वात्मनः संविदि कर्त्तव्यायां योग्याः। न

10 हि ते तत्र दर्शने जडरूपाः, संविदस्तथाऽयोगादित्युक्तेरिति। तस्मात् सा नीलादीनां प्रकाशाख्याभेदोल्लेखः। नीलादि नीलदर्शन के प्रति प्रमितिक्रिया का कर्ता यानी प्रमाता बन जायेगा। तथा नेत्रादि प्रमितिकरण होने से प्रमाण बनता है, उपलम्भसाध्य होने से अर्थमिति (= प्रमिति) फल है, यहाँ नेत्रादि करण या नीलादि अर्थ के न होने पर नीलादि संवेदनरूप खुद ही उक्त व्यवस्थाकारक प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि स्वयं अपनी व्यवस्था करनेवाला कोई दृष्टान्त नहीं है, उस से उलटे ही दृष्टान्त है — प्रदीपादि

15 भी पर(=स्वज्ञान से) प्रकाश ही है। स्वयं अपनी व्यवस्था (= प्रकाश) नहीं करते हैं। अपने ही द्वारा कोई स्व का अधिगम कर नहीं सकता। अंगुलि का अग्रभाग अपने ही द्वारा स्व (= अंगुलीअग्र) का स्पर्श नहीं कर सकता।

उत्तरपक्ष :- यह सब गलत है। बाह्यार्थवादियों के मत में जैसे सुखादि अर्थ (प्रमेय हो कर भी) स्वविषय में प्रमाण होता है और उन का वेदन यही वित्ति यानी फल (= प्रमिति) होता है

20 (यथैवा. के बदले तथैवा. पाठ होना चाहिये) उसी प्रकार हमारे मत में बोधात्मा अपरोक्ष मेय (= प्रमेय) हो कर स्वविषय में प्रकाशरूप होने से प्रमाणरूप भी होता है, और उस का प्रतिभास ही फल, यह मत है। यदि उस के बदले, स्व को स्व का ग्राहक न मान कर अन्य को ग्राहक न मान कर अन्य को ग्राहक मानेंगे तो उस का भी अन्यग्राहक उस का भी अन्य... इस प्रकार अनवस्थादोष आयेगा। सुखादि भाँति ही नीलादि सर्व वस्तु के लिये विज्ञानवाद में यही मेय-मान-फल की व्यवस्था

25 समझ लेना जिस से कि अनवस्था दोष को टाला जा सके।

### [ नीलादि अनुभवस्वरूप है - विज्ञानवादी ]

आशंका :- नीलादि तो जड होने से संविद् रूप नहीं है, आत्मा और सुखादि प्रकाशरूप होने से संवेदनमय होते हैं।

उत्तर :- यहाँ विज्ञानवाद में तो नीलादि भी अनुभवात्मक होने से प्रकाशरूपता को प्राप्त होने

30 से, अपने स्वरूप के संवेदन को करने के लिये योग्य, यानी समर्थ ही हैं। विज्ञानवाद के मत में कहा

▲. अत्रार्थे 'स्वात्मनि क्रियाविरोधः, न हि सुशिक्षितोपि नटबटुः स्वस्कन्धमारोढुं शक्नोति' इत्यादयः बहवो न्यायाः प्रसिद्धाः। विशेषसन्दर्भाधिना तु भूतपूर्वसम्पादने तृतीयखण्डे पृष्ठ ३६६ मध्ये तृतीयाटीप्पणी दृष्टव्या।

यथा स्वरूपमेयं स्वसंविद् फलमित्यस्ति प्रमाणादिव्यवस्थेत्यर्थः श्लोकद्वयस्य । [ ]

तत्रात्मनि सुखादीनां यथा वित्तिः फलं तरं । तथा सर्वत्र संयोज्या मान-मेय-फलस्थितिः ॥

अत्राप्यनुभवात्मत्वाद् योग्यास्ताः संविदः इति । सा योग्यता मानं मेयं रूपं फलं स्ववि(संविदि) त्याचार्योक्तस्य यदि तर्हि नीलादीनां स्वप्रकाशो वित्तिश्च कथं 'नीलमहं वेद्मि' इति कर्तृ-कर्म-क्रियाभेदोल्लेखः ? यथात्मनि सुखादौ चामा(त्मादेर)त्राप्यहमात्मानं वेद्मि सुखादीनि वासौ दृष्ट एव । अथान्यग्राहकाभावात् 5 तत्रासौ मिथ्योल्लेखस्तर्हि नीलादावपि व्यतिरिक्तप्रकाशाभावात् (अ)भेदोऽवसेयः कर्तृ-कर्मादितया मिथ्यो(थ्यै)वाऽपरोक्षस्य नीलादेरेव प्रकाशनात् ।

अथाऽस्याः कर्म-कर्तृ-क्रियाभेदाध्यवसितेर्बीजं वक्तव्यम्, निर्बीजं (क्)वाऽन्य(प्य)योगात् । नैव, तत् क्वचिदपि कर्त्रादिभेदस्य वास्तवस्यानुपलब्धेवा(र्वे)ति परम्परामात्रं अनादिवासनाप्रभवप्रधानादिविकल्पवदसाव-भ्युपगन्तव्यः । यदपि विरोधान्न संवेदनं भवत्यङ्गुल्यग्रवत् (१३६-३) — इत्युक्तम्— तदसारम्, यतोऽपरोक्षं 10 स्वरूपं स्वानुभवः तत् कुतोऽत्र विरोधः ? तथा, 'अङ्गुल्यग्रमपि तेनैवाङ्गुल्यग्रेण न संस्पृश्यते' इत्यत्रापि

योग्या है कि नीलादि जडरूप नहीं है, क्योंकि संवेदनरूप होता है वह जड नहीं होता । अत एव ऐसा जो भेदोल्लेख होता है कि वह संविद् 'नीलादि का प्रकाश' ऐसी संज्ञायुक्त है, वह जैसे 'स्वसंविद् का यह मेयस्वरूप' ऐसा भेदोल्लेख होता है तथा यह मेय है यह फल है इत्यादि । इस तरह विज्ञानवाद में प्रमाणादि व्यवस्था होती है । शास्त्रकारोक्त दो श्लोकों का यह भावार्थ है । उन में से एक श्लोक 15 का अर्थ :- 'यहाँ (विज्ञानवाद में) आत्मा में सुखादि का वेदन फल-परक है वैसे सभी (नीलादि) में मान-मेय-फल की व्यवस्था जोड़ लेना ॥' यहाँ एक ही संविद में मान-मेयादि की व्यवस्था का मूल है उन संविदों की योग्यता (= यानी सामर्थ्य) क्योंकि संविद् अनुभवात्मक होती है । 'यह जो योग्यता है वह मानादि की अभेदभाव से व्यवस्था करती है' — ऐसा तात्पर्य यदि आचार्यकथन का माना जाय तो प्रश्न खड़ा होगा कि नीलादि का स्वप्रकाश ही वेदन स्वरूप है तो 'मैं नील को जानता हूँ' — 20 इस प्रकार कर्तृ(= मैं) — कर्म(= नील) — क्रिया (= जानता हूँ) भेदोल्लेख कैसे संगत होगा ? — इस का उत्तर है जैसे सुखादि और आत्मा में होता है वैसे यहाँ (मैं नील को जानता हूँ) भी होगा । 'मैं आत्मा को जानता हूँ' यहाँ, तथा 'सुखादि मैं भोगता हूँ' यहाँ एक ही आत्मा या एक ही सुखादि के बारे में कर्तृ-कर्म-क्रियाओं का भेदोल्लेख दृष्ट ही है । यदि कहा जाय — 'आत्मादि स्थल में तो अन्य कोई ग्राहक न होने से भेदोल्लेख होने पर भी अभेद मानते हैं' — तो फिर नीलादिस्थल में भी पृथक्प्रकाश 25 न होने से, भेदोल्लेख होने पर भी अभेद समझ लेना । कर्तृ-कर्मादिरूप से जो वहाँ भेदोल्लेख होता है वह मिथ्या ही है क्योंकि वहाँ अपरोक्षरूप से नीलादि का ही प्रकाशन होता है ।

### [ कर्तृआदि भेदविकल्प का मूल अनादि वासना ]

**पूर्वपक्ष :-** यह जो कर्तृ-कर्म-क्रिया का भेदाध्यवसाय होता है, (चाहे वह सत्य हो या न हो) किन्तु उस का कोई मूल तो होगा ही, क्योंकि कोई भी चीज निर्मूल नहीं होती । (तात्पर्य, जो भी 30 मूल होगा वह संवेदन से भिन्न सिद्ध हो जायेगा ।)

**उत्तरपक्ष :-** यह बात सिर्फ परम्परागत अतिरेक ही है क्योंकि कर्तृ आदि का भेद कहीं भी वास्तविक नहीं है । जैसे सांख्यादि को अनादिवासनामूलक प्रधान-महत्-अहंकारादि के अध्यवसाय होते

- किं यथानित्या(?थान्येना)ङ्गुल्यग्रेणाङ्गुल्यग्रं न संस्पृश्यते उत (यथा) तेनैव ? तत्राद्ये पक्षे सिद्धसाध्यता, न हि यथाऽन्येनाङ्गुल्यग्रेणाऽन्यदङ्गुल्यग्रं संस्पृश्यते तत्संस्पर्शः संभवी। अथ द्वितीयः पक्षः सोऽप्यनुपपन्नः, तेन तत्संस्पर्श(स्य) न्यायप्राप्तत्वात्। न हि स्वरूपव्यतिरेकेणाङ्गुल्यग्रसम्भवः। न च स्वरूपमात्मानं न संस्पृशति तथाभ्युपगमे स्वरूपहानिप्रसक्तेः, नीलादीनां त्वपरोक्षप्रकाशस्वभावता स्वरूपमेव अन्यथा तेषां
- 5 (अ)परोक्षताऽभावप्रसङ्गादिति प्रतिपादितत्वात्। तत् व्यवस्थितमेतत् नीलादयोऽपरोक्षस्वभावाः प्रकाशन्त इति विज्ञप्तिमात्रकमेवेदं बहिरर्थसंस्पर्शरहितम्। तदपि विज्ञप्तिमात्रं पूर्वापरस्वभावविविक्तमध्यक्षणरूपं स्वसंवेदनाध्यक्षतः तथैव प्रतिपत्तेः, पौर्वापर्यं प्रमाणा(त् ?)ऽप्रवृत्तेः प्रतिपादनादिति क्षणिकविज्ञप्तिमात्रावलम्बी शुद्धपर्यायास्ति(क)भेद ऋजुसूत्रः ??]

[ ऋजुसूत्रनयान्यव्याख्याया शून्यवादनिरूपणम् ]

- 10 [??यद्वा एकत्वानेकत्वसमस्तधर्मकलापविकलतया तदपि विज्ञानं शून्यरूपम् = ऋजु सूत्रयतीति रहते हैं वैसा यहाँ भी अनादिवासनामूलक भेदविकल्प जान लेना। यह जो कहा था — ‘विरोध के कारण संवेदन अभेदसाधन नहीं कर सकता — (स्वात्मनि क्रियाविरोध होता है)। उंगलीअग्रभाग स्वयं स्व का स्पर्श नहीं कर सकता। (१३६-१६) तो यह असार है क्योंकि यहाँ अनुभव का अपना स्वरूप ही अपरोक्षता है, उस के लिये कोई क्रिया की नहीं जाती फिर उस में विरोध कैसे ? तथा विरोध
- 15 के खातिर जो दृष्टान्त दिया है उंगलीअग्रभाग का उंगलीअग्रभाग से स्पर्श नहीं हो सकता। उस पर प्रश्न हैं कि अन्य अंगुलीअग्र से स्पर्श नहीं होता या उसी अंगुलीअग्र से ? प्रथम पक्ष में सिद्ध को ही आप साध्य कर रहे हैं जो दोष है क्योंकि जैसे एक अंगुलीअग्र से अन्यअंगुलीअग्र का स्पर्श नहीं होता, वैसा संस्पर्श संभव ही नहीं है। दूसरे पक्ष में भी असंगति है क्योंकि स्व से स्व का स्पर्श युक्तिसंगत है — कैसे यह देख लो — अंगुलीअग्र तो अंगुली का स्वरूप ही है उस से भिन्न नहीं
- 20 है। वस्तु है और वह अपने स्वरूप को स्पर्श न कर सके ऐसा कभी नहीं हो सकता। अगर वैसा मानेंगे तो अपने स्वरूप के स्पर्श से (यानी स्वरूप से) रहित वस्तु अपने स्वरूप को ही खो बैठेगी। नीलादि का स्वरूप है अपरोक्ष प्रकाशस्वभावता, अगर इस को स्वरूप नहीं मानेंगे तो नीलादि में अपरोक्षप्रकाशस्वभावता का अभाव ही प्रसक्त होगा, यह पहले कहा जा चुका है।

[ शुद्धपर्यायास्तिकप्रकारभूत ऋजुसूत्र नय विज्ञानमात्रग्राही ]

- 25 **निष्कर्ष** :- नीलादि अपरोक्षस्वभावरूप से प्रकाशशील हैं अतः यह पूरा विश्व बाह्यार्थवार्त्तामुक्त विज्ञानमात्रस्वरूप ही है। यह जो विज्ञान है वह भी अस्थायि यानी पूर्वोत्तरक्षणस्वभाव से अस्पृष्ट मध्यक्षणमात्रवृत्ति है क्योंकि स्वसंवेदनअध्यक्ष से वैसा ही संविदित होता है। किसी भी संवेदन क्षण को पूर्व या उत्तर क्षण का संसर्ग प्रमाणसिद्ध नहीं ऐसा हम कई बार कह चुके हैं — इस समग्र विज्ञानवादचर्चा से फलित होता है शुद्धपर्यायास्तिक का प्रकाररूप ऋजुसूत्रनय केवल क्षणिक विज्ञानमात्रस्पर्शी होता है।

- 30 [ अन्यप्रकार से व्याख्या के द्वारा ऋजुसूत्रनय का शून्यवादसमर्थन ]

व्याख्याकार अभयदेवसूरिजी कहते हैं कि — ऋजु का सूत्रण करे वह ऋजुसूत्रनय। यहाँ ऋजु की व्याख्या ऐसी कर सकते हैं → एकत्व-अनेकत्वादि सर्वगुणधर्मों से शून्य होने के कारण वह विज्ञान

ऋजुसूत्रः। स हि माध्यमिकदर्शनावलम्बी सर्वभावनैवात्मा(नैरात्म्य)प्रतिपादनाय प्रमाणयति— यद् विशददर्शनावभासि न तत् परमार्थसह्य(?द्व्य)वहतिमवतरति यथा तिमिरपरिकरितदृगवभासि इन्दुद्वयम् विशददर्शनावभासिनश्च स्तम्भ-कुम्भादयः, प्रतिभासाऽविशेषात्। अथापि युक्तं यत् तैमिरिकावभासिनश्चन्द्रद्वयादयो न परमार्थसन्तः, तत्र कारणदोषाद्वा बाधोदयाद्वा। परिशुद्धदृगविशेषा(?भासा)स्त्वेकेन्दुमण्डलादयो न वितथाः, तत्र कारणदोषविरहाद् बाधाभावात्वे(?द्वे) त्यसिद्धः प्रतिभासाऽविशेषा(?ः)। असदेतत्, बाध्यत्वायोगात्। तथाहि न विज्ञानस्य 5 तत्कालभाविस्वरूपं वाच्य(?बाध्य)ते, तदानीं तस्य स्वरूपेण प्रतिभासनात्। नाप्युत्तरकालम्, क्षणिकत्वेन तस्य स्वयमेवोत्तरकाल(म)भावात्। नापि प्रमेयं प्रतिभासमानेन रूपेण बाध्यते, तस्य विशदप्रतिभासादे- वाभावाऽसिद्धेः। नाप्यप्रतिभासमानरूपत्वात्, तस्याप्यभावे वारिणा स्पर्शादिलक्षणेन प्रतिभासनारूपात् तस्यान्यत्वात्। न चान्याभावेऽन्यस्याभावोऽतिप्रसङ्गात्।

नापि प्रवृत्तिरुत्पन्ना बाध्यते, उत्पन्नत्वादेवाऽसत्तायोगात् तस्याः। नाप्यनुत्पन्ना, स्वत एवाऽसत्त्वात्। 10

भी शून्यरूप ही है। इसी को कहते हैं ऋजु)। ऐसा एक बौद्धमत में वादी है जो मध्यमप्रतिपादामत का अवलम्बन कर के सर्वभावों की निःस्वरूपता (= नैरात्म्य) का निरूपण — स्थापन करने के लिये प्रमाण प्रस्तुत करता है —

जो स्पष्टदर्शन से भासमान होता है वह परमार्थतः 'सत्' (= यह सत्य है) ऐसे व्यवहार का पात्र नहीं होता। उदा० तिमिररोगग्रस्तदृष्टि से भासमान चन्द्रयुगल। स्तम्भ-कुम्भादि भी स्पष्टदर्शनावभासी 15 हैं, चन्द्रयुगलावभास और स्तम्भादि के अवभास में कोई फर्क नहीं है।

**पूर्वपक्षी** :- तिमिररोगग्रस्तनेत्र से भासमान चन्द्रयुगलादि परमार्थ सत् नहीं है — यह तो युक्त ही है। कारण :- वहाँ सदोष कारण होते हैं या तो बाधबुद्धि का आक्रमण होता है। किन्तु शुद्ध निर्दोषदृष्टि से भासमान एक चन्द्रमण्डलादि पदार्थ मिथ्या नहीं होते, क्योंकि न तो वहाँ कारण दूषित हैं न तो बाध है। अतः 'प्रतिभास में फर्क नहीं' यह निवेदन अयुक्त है। 20

**उत्तरपक्षी** :- यह कथन गलत है। चन्द्रयुगलदर्शन में कोई बाध को अवकाश नहीं। बोलिये कि बाध कैसे होता है ? — क्या चन्द्रयुगल विज्ञान का स्वकालवर्तिस्वरूप बाधित होता है ? नहीं, अरे वह तो अपने स्पष्ट स्वरूप से ही भासित होता है। क्या स्वोत्तरकाल में बाध उदित होता है ? नहीं, क्षणिक विज्ञान स्वयमेव उत्तरकाल में नहीं रहा, फिर बाध किस का ? क्या जिस रूप से वह भासित होता है उस रूप से उस का प्रमेय (= विषय) बाध का शिकार बनता है ? नहीं, उस 25 रूप से तो उस प्रमेय का स्पष्ट अवभास होता है, अतः उस का अभाव असिद्ध है। यदि अप्रतिभासमानरूप से उस का अभाव मानेंगे तो वारि (? वायु) का स्पर्शादि रूप से, जो कि वायु के स्व स्वरूप से अन्य है, उस रूप से प्रतिभास न होने से उस का भी बाध मानना पडेगा। कभी ऐसा नहीं देखा कि एक रूप से जो सत् नहीं होता वह अन्य रूप से भी असत् ही हो। अन्यथा अग्नि का जलत्वरूप से प्रतिभास न होने पर, अग्नित्वरूप से भी अभाव — अतिप्रसंग होगा। 30

[ मिथ्याज्ञानोत्पन्न प्रवृत्ति का बाध असम्भव ]

प्रवृत्ति जो उत्पन्न हो गयी उस का बाध भी नहीं हो सकता, जो एक बार उत्पन्न हो गया

नाप्यर्थक्रिया उत्पत्ति-क्षययोर्बाध्यत्वाऽयोगात्। न च तस्या (अ)भावेऽर्थस्याऽसत्त्वम् तस्यास्ततोऽन्यत्वात्। न चार्थक्रियासद्भावादर्थस्य सत्त्वम् अर्थक्रियाया अपि सत्ताऽसिद्धेः। नाप्यपराार्थक्रियाऽभावात् तस्याः सत्त्वम् अनवस्थाप्रसक्तेः। नाप्यर्थजन्यत्वादर्थक्रियासत्त्वम् इतरेतराश्रयप्रसङ्गात्। न च सत्तासम्बन्धात् भावान्(i) सत्त्वम् सत्ता-तत्सम्बन्धयोर्निषेधात्। नाप्युत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययोगात्, विरोधाद्यनेकदूषणाघ्रातत्वात्।

5 बाधकसद्भावाद् बाध्यत्वं (चेद् भिन्नसन्तानमेकसन्तानं वा न भिन्न)सन्तानमतिप्रसङ्गात्। नाप्येक-सन्तानमेककालमेक(तानैकं ?)कालाविकल्पदर्शनद्वयाऽयोगात्। नापि भिन्नकालमेकार्थम् घटज्ञानान-न्तरभाविनस(स्त)ज्ज्ञानस्य बाधकतापत्तेः। नापि भिन्नार्थम् पटज्ञानबाधकतापत्तेः।

नाप्यनुपलब्धिर्बाध्यज्ञानसमानकाला तद्बाधिका तस्या असिद्धेः। नाप्युत्तरकालभावितयान्यज्ञानैकार्थ-विषया एकविषयस्य तदर्थसाधकत्वेन बाधकत्वानुपपत्तेः। नापि भिन्नविषया(णा?)यास्तस्यास्तदानीं

10 स्वविषयसाधकत्वेन पूर्वबाध्यज्ञानविषयाभावप्रतिपादकत्वानुपपत्तेरन्यथातिप्रसक्तेः। न च दुष्टकारणप्रभवत्वे-

उस का असत्त्व कौन कर सकता है ? अर्थक्रिया का बाध भी नहीं हो सकता, क्योंकि न तो कोई उस की उत्पत्ति को, न विनाश को रोक सकता है। तथा, अर्थक्रिया के विरह से अर्थ सत्ता का विरह मानना अनुचित है, क्योंकि वह उस से भिन्न है। यदि अर्थक्रिया की सत्ता पर किसी की (अर्थ की) सत्ता निर्भर होती तब तो अर्थक्रिया द्वारा अन्यअर्थक्रिया न होने से अर्थक्रिया का ही असत्त्व प्रसक्त होगा। अन्य अर्थक्रिया होने पर अर्थक्रिया की सत्ता मान लेंगे तो उस की सत्ता के लिये भी और एक अर्थक्रिया के सत्त्व से अर्थ का सत्त्व, ऐसा मानेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष लगेगा। वस्तु का सत्त्व 'सत्त्व' (जाति) के योग से भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि पहले हमने सत्ता (जाति) एवं उस के सम्बन्ध (समवाय) का निषेध कर दिखाया है। 'उत्पत्ति-स्थैर्य-विलय' के योग से भी अर्थ की सत्ता मानना उचित नहीं है क्योंकि एक वस्तु में सम काल में इन तीनों के होने में स्पष्ट ही विरोध है और भी (सांकर्यादि) अनेक दोष लग जायेंगे।

### [ बाधक के सामर्थ्य से बाध्यता की अनुपपत्ति ]

(विज्ञान की बाध्यता की कसौटी चल रही है यह भूलना नहीं।) बाधक की सत्ता से विज्ञान की बाध्यता नहीं घट सकती, क्योंकि विकल्प खड़े हैं — भिन्नसन्तानगत बाधक से बाध होगा या एकसन्तानगत ? पहले विकल्प में समस्त विज्ञानों का भिन्नसन्तानीय बाधक से बाध अति प्रसक्त होगा।

25 एकसन्तानगत एककालीन बाधक से बाध अशक्य है क्योंकि समकाल में एकसन्तान में निर्विकल्प दो दर्शन (बाध्य और बाधक दर्शन) का संभव नहीं। यदि भिन्नसन्तानगत भिन्नकालीन बाधक दर्शन से बाध मानेंगे तो वह भिन्नविषयक है या एकविषयक ? यदि भिन्नकालीन एकविषयक बाधक मानेंगे तो पूर्वघटदर्शन के बाद द्वितीय उत्तरकालीन घटदर्शन से पूर्वघटदर्शन का बाध प्रसक्त होगा। भिन्नविषयक भिन्नकालीन बाधक से बाध मानेंगे तो घट ज्ञान के बाद भिन्न सन्तान में भिन्नकाल में पटविषयक

30 ज्ञान से बाध प्रसक्त होगा।

### [ अर्थानुपलब्धि से बाध की अनुपपत्ति ]

यदि बाध्यज्ञान समानकालीन अर्थानुपलब्धि से बाध मानेंगे — तो वह भी शक्य नहीं क्योंकि

नेन्दुद्वयावभासज्ञानस्याऽसत्यार्थविषयतया तत्प्रभवत्वं ज्ञातुमशक्ते(रती)न्द्रियत्वेन तद्गतदोषस्याप्यध्यक्षणा-  
 ऽप्रतिपत्तेः। नाप्यनुमानात् कारणदोषावगतिः अध्यक्षाभावेऽनुमानस्याऽप्रवृत्तेः। न च नरान्तरस्येन्दुद्वया-  
 देरप्रतिभासनाद् दुष्टकारणजनितविज्ञानविषयत्व(1?)मस्य(1 स)त्यत्वं वा स्वग्राहिज्ञाने परिस्फुटतया प्रतिभासनात्।  
 न च समानसामग्रीकस्य नरान्तरस्य तदप्रतिभासः, यावत् तिमिरं तावत् तस्यावभासनात्। न च परिन्ना  
 (?परस्य भिन्न)सामग्रीकस्यानवभासनात् तदभावः, सत्कारणानामेव तद्ग्रहणं प्रति सामर्थ्याऽविरहात् दुष्टत्व- 5  
 सिद्धे(ः) ??]

[??न च सत्यदर्शित्वात् तस्य कारणदुष्टतानुपपत्तिः, कारणाऽदुष्टत्वे सत्यार्थदर्शितत्वम् तद्दर्शित्वाच्च  
 कारणाऽदोषः इतीतरेतराश्रयदोषापत्तेः। न च तदवभासिविज्ञानस्य मिथ्यारूपत्वात् दोषवत्कारण(1?)-  
 जन्यत्वम् अत्रापीतरेतराश्रयदोषस्य तदवस्थानात्। न च विसंवादिज्ञानविषयत्वात् इन्दुद्वयादेरपारमार्थिकत्वम्

बाध्य माने गये ज्ञान से जब अर्थोपलब्धि सिद्ध है तब समानकाल में अनुपलब्धि खुद ही असिद्ध 10  
 है। यदि भिन्न (उत्तर) कालीन एकार्थविषयक अनुपलब्धि से बाध मानेंगे तो वह सम्भव नहीं है क्योंकि  
 उस का विषय जब एक (वही) अर्थ है तब तो वह उस की साधक बन जाने से बाधकभाव नहीं  
 घट सकता। यदि भिन्नविषयक अनुपलब्धि को बाधक मानेंगे तो वह भी असम्भव है क्योंकि वह  
 अनुपलब्धि तो उस समय (बाध्यज्ञानीयविषय से भिन्न) अपने विषय के ग्रहण में व्यग्र होगी, फिर  
 वह पूर्वकालीन बाध्यज्ञान के विषय के असत्यत्व के प्रतिपादन का काम कैसे करेगी ? यदि किसी 15  
 तरह करेगी, तो सारे सम-विषमकालीन सभी ज्ञानविषयों का बाध होने का अतिप्रसंग शिर उठायेगा।  
 तो क्या सदोषकारणजन्य होने से इन्दुयुगलावभासि ज्ञान की असत्यार्थविषयता घोषित करेंगे ? नहीं,  
 क्योंकि नेत्रादि इन्द्रिय अतीन्द्रिय होने से उस के दोष का प्रत्यक्षग्रहण शक्य न होने से, सदोषकारणजन्यत्व  
 का ज्ञान शक्य नहीं है।

अनुमान से भी नेत्रादि इन्द्रियरूप कारणों के दोष का भान शक्य नहीं है क्योंकि जिस विषय 20  
 का प्रत्यक्ष नहीं होता उस के ग्रहण में अनुमान साहस नहीं कर सकता। यदि कहें — ‘अन्य लोगों  
 को दो चन्द्र भासते नहीं है इस लिये दुष्टकारणजन्यविज्ञानविषयत्व रूप असत्यत्व सिद्ध होता है’  
 — तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि (अन्य मनुष्य के नेत्र की दुर्बलतादि को दो चन्द्र अति स्पष्टरूप  
 से भासित होते हैं। यदि वे अन्य लोग समानरूप से चन्द्रयुगलदर्शनसामग्री के धनी होंगे तो वे भी  
 तिमिरग्रस्त होने से जब तक उन को तिमिर रहेगा, जरूर दो चन्द्र का प्रतिभास उन को भी होगा। 25  
 यदि वे अन्य लोग भिन्नसामग्री के धनी हैं और उन को दो चन्द्र नहीं दिखते, इतने मात्र से चन्द्रयुगल  
 का बाध नहीं हो जाता, यदि उन लोगों के पास चन्द्रद्वयदर्शन सामग्री सत् होगी तो वह सामग्री  
 चन्द्रद्वयग्रहणसामर्थ्य से वंचित भी नहीं होगी, अतः सदोषकारणजन्यत्व असिद्ध है।

### [ सत्यदर्शिता – कारणदोषाभाव में अन्योन्याश्रय दोष ]

यदि कारण सत्यज्ञान में कारणदोषाभाव परिपूर्णसामग्रीमूलक न मानकर सत्यदर्शितामूलक ही 30  
 मानेंगे, तो इतरेतराश्रयदोष :- ‘कारणों की निर्दोषता होने पर सत्यदर्शिता होगी और सत्यदर्शिता सिद्ध  
 होने पर कारणनिर्दोषता सिद्ध होगी’ — होगा। एवं चन्द्रयुगलावभासि विज्ञान में मिथ्यारूपतामूलक



विसंवादस्यैवाऽसिद्धेः। न तावत् समानजातीयतद्विज्ञानानुत्पत्तिविसंवादः, यावत् तिमिरं तावत् तस्योदय-सद्भावेन तदनुत्पत्तेरसिद्धत्वात्। नापि विजातीयविज्ञानसंवादादिन्दुद्वयादेर्वैतथ्यम् सत्यज्ञानावभासिस्तम्भा-देरपि तत्सद्भावेन वैतथ्यप्रसक्तेः। न च स्तम्भादेरवितथत्वं तदवभासिज्ञानबाधाभावाद् इति वक्तव्यम्, बाधाभावस्य तदवैतथ्याऽप्रसाधकत्वात्।

5 तथाहि— न तावत् तत्कालो बाधाभावः भावसद्भावं अ(व)गमयति, इन्दुद्वयावभासिज्ञानेऽपि तत्सद्भावात् क्षपाकरयुगलस्य सद्भावप्रसक्तेः। नाप्युत्तरकालभावी तदभावः पूर्वकताल्प(?काल)मर्थसत्तां साधयति तत्कालपरिहारेण प्रवृत्तेः, तथापि तत्साधकत्वे भ्रान्तदृगवसेयस्य रजतादेरुत्तरकालभाविबाधाभावतो भावप्रसक्तिर्भवेत्। नाप्युत्तरकालं भावमसौ साधयति, भ्रान्तदृग(वग)तरजतेनैव व्यभिचारात्। नापि समान-कालं तमेव गमयति, समानकालावभासिनोऽर्थस्य भ्रान्तज्ञानावभासिरजतस्यैव ततः सद्भावसिद्धेः।

10 न च बाधाभावः प्रसज्यरूपस्तुच्छरूपतयार्थसत्त्वस्य व्यवस्थापकः, तद्भावे तुच्छत्वाऽयोगात्। न सदोषकारणजन्यता मानेंगे तो यहाँ भी अन्योन्याश्रय दोष उक्त रीते से तदवस्थ रहेगा। यदि कहें — ‘चन्द्रयुगल की मिथ्यारूपता को सदोषकारणमूलक नहीं किन्तु विसंवादिज्ञानविषयतामूलक मानेंगे (अतः अन्योन्याश्रय नहीं होगा)’ — तो यह भी निषेधार्ह है क्योंकि यहाँ विसंवाद ही असिद्ध है। समानजातीयज्ञानानुत्पत्ति को आप विसंवाद नहीं बता सकते, क्योंकि जब लग यहाँ तिमिर सत्ता  
15 है तब लग समानजातीयविज्ञान की उत्पत्ति सिद्ध होने से उसकी अनुत्पत्ति(रूप विसंवाद) असिद्ध है। यदि कहें — ‘एकचन्द्रज्ञानरूप विजातीयविज्ञानसंवाद के आधार पर चन्द्रयुगल का मिथ्यापन सिद्ध किया जायेगा’ — तो इस तरह अनेकस्तम्भावभासिविजातीयज्ञानरूप संवाद के बल से एकस्तम्भावभासिसत्यज्ञानविषयभूत एक स्तम्भादि के स्थल में भी मिथ्यात्व की आपदा आयेगी। यदि कहें कि — ‘उक्त संवादबल से नहीं किन्तु स्तम्भादिभासकज्ञान के प्रति बाधाभाव रहने से स्तम्भादि का सत्यत्व मानेंगे’ — तो ऐसा  
20 कहना गलत है, क्योंकि बाधाभाव कभी सत्यत्व का साधक नहीं होता।

### [ बाधाभाव भावसत्ता का प्रसाधक नहीं ]

कैसे, यह विस्तार से सुनिये — समकालीन बाधाभाव भावसत्ता का भान नहीं करायेगा क्योंकि चन्द्रयुगलावभासिज्ञान के प्रति समकालीन बाधाभाव के रहने से इन्दुद्वय की सत्ता सिद्ध हो जायेगी। उत्तरकालवर्ति बाधाभाव पूर्वकालीन अर्थसत्ता का साधन नहीं कर सकता क्योंकि पूर्वकाल से अस्पृष्ट  
25 रह कर ही वह उदित हुआ है। फिर भी उस को उस का साधक मानेंगे तो भ्रान्तदर्शनविषयभूत रजतादि के प्रति जब उत्तरकाल में बाधक नहीं रहेगा तब उस रजतादि की सत्ता प्रसक्त होगी। बाधाभाव अपने उत्तरक्षण में भाव की सिद्धि कर दिखावे ऐसा भी सम्भव नहीं है, क्योंकि भ्रान्तदर्शनविषयभूत रजत के स्थल में व्यभिचार है, मतलब, उत्तरकाल में पूर्वकालीनबाधाभाव से रजतसिद्धि नहीं होती। बाधाभाव समानकाल में भी भावसत्ता की सिद्धि कर नहीं सकता, यदि करेगा तो समानकाल में  
30 भासमान भ्रान्तज्ञानावभासित रजतरूप अर्थ की ही उस से सिद्धि हो जायेगी।

### [ प्रसज्यनञर्थ तुच्छस्वरूप बाधाभाव अकिंचित्कर ]

यहाँ दो प्रश्न हैं — बाधाभाव प्रसज्यनञर्थ स्वरूप यानी तुच्छ है या पर्युदास नञर्थरूप यानी

वाऽसावज्ञातः तद्व्यवस्थितः(तये) स्यात् परस्परस्थापक(त्वाऽ)योगात्। नानाम( ?यम)पि ज्ञातः स्वसंवेदनं तत्र ज्ञान(1?)सम्भवात् स्वसंविद्रूपतां बिभ्राणस्य भावस्वरूपतापत्तेः। नाप्यनुपलब्धितस्तज्ज्ञप्तिः, तस्या अप्यज्ञाताया (अ)योगाद् अन्यायो(?या) ज्ञापकत्वाऽयोगाद्। अन्यानुपलब्ध्येस्तुच्छरूपायास्तज्ज्ञप्तौ तत्पर्य- नुयोगतोऽनवस्थाप्रसक्तेः। न च पर्युदासरूपायास्ततस्तत्सिद्धिः, भावविषयत्वेन तस्यास्तदवगमहेतुत्वाऽयोगात्। न च बहिर्बाधकविषयगोचराऽनुपलब्धिर्बाधकाभावमवगमयति, अन्यथा देवदत्तनीलज्ञानावभासिनीलगोचरा(त्) 5 प्रतिपत्तिर्नीलदृशमपाकुर्यात् तत्पीतप्रतिपत्तिर(?म)पाकुर्यात्। न च बाधकप्रत्ययो 'नास्ति' इत्युल्लेखव- दभाव(नाज् ?)ज्ञानं तदभावमवगमयति, वस्तुन्तरग्रहणे प्रतियोगिस्मरणे च प्रतियोग्यभावविषयत्वेन परैस्तस्याभ्युपगमात्। उक्तं च (श्लो०वा०अभा०श्लो० २७) -

गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनम्। ... इत्यादि।

अन्यार्थ(भाव)सूचक है ? (दूसरे प्रश्न की चर्चा बाद में की जायेगी, अभी प्रथम प्रश्न की विस्तृत 10 चर्चा शुरु होती है -) बाधाभाव यदि तुच्छस्वरूप है तो वह अर्थसत्ता की स्थापना कर नहीं सकता, अगर अर्थसत्ता की स्थापना करेगा तो वह तुच्छरूप नहीं होगा। उपरांत बाधाभाव अज्ञात रहेगा या ज्ञात ? अज्ञात तुच्छरूप बाधाभाव कोई व्यवस्था नहीं कर सकता। अज्ञात बाधाभाव की व्यवस्था कौन करेगा ? अर्थसत्ता ? तो अन्योन्याश्रय होने से परस्परस्थापकता नहीं घट सकती। ज्ञात बाधाभाव भी स्वसंवेदन के बिना स्थापक नहीं हो सकता, और तुच्छ होने से स्वसंवेदन ज्ञान भी शक्य नहीं। 15 यदि वह स्वसंवेदित माना जायेगा तो उस की अभावरूपता का भंग और भावरूपता की प्रसक्ति होगी।

अर्थसत्ता का भान बाध की अनुपलब्धि से भी शक्य नहीं। स्वयं वह अज्ञात रह कर अन्य का ज्ञापक बन नहीं सकती। अन्य किसी प्रकार बाध अनुपलब्धि से प्रस्तुत अनुपलब्धि का भान भी शक्य नहीं क्योंकि इस प्रकार अज्ञात-ज्ञात प्रश्नमाला चलने पर तुच्छ स्वरूप अन्य अन्य अनुपलब्धि 20 मानते चलेंगे तो अनवस्था दोष होगा। पर्युदासस्वरूप अनुपलब्धि से बाधाभाव का ज्ञान शक्य नहीं, क्योंकि पर्युदासस्वरूप अनुपलब्धि हर हमेशा भाव विषयक होती है अभाव (बाधाभाव) उस का विषय नहीं, अतः वह उस की अवबोधक नहीं हो सकती।

बाधकाभाव से बाधाभाव का ज्ञान मानेंगे तो पहले बाह्य बाधकविषयसम्बन्धि अनुपलब्धि के लिये प्रथम बाधक को जान कर बाद में बाधकाभाव ज्ञान करना पडेगा, किन्तु यह सम्भव नहीं, 25 क्योंकि जो बाधक को जानती है वह बाधकाभाव की बोधक कैसे होगी ? देवदत्त की नीलज्ञानावभासी नीलविषयक प्रतीति कभी नीलदर्शन का तिरस्कार नहीं कर सकती। भिन्नविषयक अनुपलब्धि भी उस का अवबोध नहीं करा सकती, अन्यथा देवदत्तीय नील प्रतीति देवदत्तीय पीतदर्शन का तिरस्कार कर देगी।

'नास्ति = नहीं है' इस प्रकार उल्लेखशालि अभावज्ञानरूप बाधकप्रत्यय भी अभाव के प्रकाशन में समर्थ नहीं है, क्योंकि मीमांसकादि विद्वानों का मत अभावग्रहण के बारे में इस तरह है - प्रतियोगि 30 (घटादि) से भिन्न (भूतलादि) का ग्रहण एवं प्रतियोगी का स्मरण हो तभी अनुपलब्धि प्रतियोगिअभावविषयक मानी जाती है। श्लोकवार्तिक (अभाव० श्लो०२७) में कहा है - वस्तु सत्ता को ग्रहण कर के एवं

वस्त्वन्तरस्य च प्रतियोगिसंसृष्टस्याध्यक्षेण ग्रहणे न ततस्तद्भा(?द्भा)वसिद्धिः। असंसृष्टग्रहणे चाध्यक्षत एवाभावसिद्धेर्व्यर्थमभावाख्यं प्रमाणम्। न चाऽभावप्रमाणादेव प्रतियोग्यसंसृष्टता वस्त्वन्तरस्य प्रतीता, तस्यापि प्रतियोग्यसंसृष्टवस्त्वन्तरग्रहणमन्तरेणाऽप्रवृत्तेः, तदभ्युपगमे चानवस्थाप्रसक्तेः। तथा, प्रतियोगिनोऽपि यदि वस्त्वन्तरसंसृष्टस्य स्मरणं, कथमभावः ? अथाऽसंसृष्टग्रहणे सति प्रवर्तते असंसृष्टता-  
5 ग्रहणं च यदि प्रत्यक्षादभावप्रमाणवैयर्थ्यम्। अभावप्रमाणत्वे तदपि वस्त्वन्तरसंसृष्टप्रतियोगिस्मरणे सति प्रवर्तते तत् स्मरणमपि तथाभूतवस्तुग्रहणे, तदप्यभावप्रमाणादित्यनवस्थाप्रसक्तिः।

न चभास(?चाभाव)प्रमा(णा)दभावप्रतिपत्तावपि प्रतियोगिनो निवृत्तिसिद्धिः, अन्यप्रतिपत्तावन्य-  
निवृत्त्यसिद्धेः। न च तन्निवृत्तिप्रतिपत्तौ प्रतियोगिनिवृत्तिसिद्धिः, अनवस्थाप्रसक्तेः, प्रतियोगिस्वरूपा(ः?)ऽ-  
संस्पर्शिरूपाऽपरापरनिवृत्तिप्रतिपत्त्यपरिसमाप्तेः। न चाभावप्रत्यये प्रतियोगिस्वरूपानुवृत्तौ तत्प्रतिषेधः, तस्य

10 प्रतियोगि का स्मरण कर के... (प्रतियोगि के अभाव का ज्ञान अनुपलब्धि से होता है।) इत्यादि।

### [ मीमांसककथितरूप से अभावग्रहण में अनवस्थाप्रसंग ]

इस प्रकार से अभाव का ग्रहण करने जायेंगे तो अभावप्रमाण से अभाव की सिद्धि ही नहीं हो सकेगी, क्योंकि अन्यवस्तु (भूतलादि) तब प्रतियोगिविशिष्टरूप से गृहीत रहेगी, अथवा प्रतियोगिअविशिष्ट रूप से प्रत्यक्षतः ग्रहण होगा तो प्रत्यक्ष से अभाव गृहीत हो चुका है। यदि कहें कि — ‘अन्यवस्तु  
15 में प्रतियोगिअविशिष्टता का ग्रहण भी हम प्रत्यक्ष से नहीं किन्तु अभावप्रमाण से ही मानेंगे’ — तब तो उसके लिये पुनः प्रतियोगिअविशिष्ट अन्यवस्तु का ग्रहण अनिवार्य हो जायेगा क्योंकि उस के बिना प्रथम अभावप्रमाण की प्रतियोगिअविशिष्ट अन्य वस्तु के ग्रहण में प्रवृत्ति ही कैसे होगी ? फलतः अनवस्था गले पड़ेगी। तथा, यदि अन्यवस्तुविशिष्टतया प्रतियोगि का स्मरण (यानी एक प्रकार से ग्रहण) चालु है तब प्रतियोगी का उस (अन्य) वस्तु में अभाव क्यों कर रहेगा ? यदि कहें कि — ‘अन्य  
20 वस्तु प्रतियोगिअविशिष्टतया ही गृहीत होती है — तब अभाव प्रमाण प्रवृत्त होता है’ — तो दो प्रश्न, एक — अविशिष्टता प्रत्यक्ष से ज्ञात होगी ? या दो — अभावप्रमाण से ? प्रत्यक्ष से ज्ञात रहेगी तो प्रत्यक्ष से ही अभाव तदन्तर्गत रूप से सिद्ध हो गया, अभावप्रमाण तो बेकार रहा। यदि अभावप्रमाण से, तो उस की प्रवृत्ति के लिये पुनः अन्यवस्तु अविशिष्ट प्रतियोगी का स्मरण करना पड़ेगा, वह स्मरण भी प्रतियोगिअविशिष्ट अन्यवस्तु के ग्रहण होने पर ही होगा तो वह नये अभावप्रमाण से  
25 ही हो सकता है, पुनश्च अनवस्थाप्रसङ्ग आ पड़ेगा।

### [ अभावप्रमाण से प्रतियोगिनिवृत्ति असंभव ]

कदाचित् अभावप्रमाण से अभाव का ज्ञान हो भी जाय, उस से भाव की (प्रतियोगी की) निवृत्ति यानी निषेध शक्य नहीं है क्योंकि एक वस्तु के ज्ञान से उस वस्तु का विधान हो सकता है, अन्य का निषेध नहीं है। कारण :- जिन में प्रतियोगिस्वरूप का संस्पर्श ही नहीं ऐसी निवृत्ति के ग्रहण  
30 में पुनः पुनः अन्य अन्य निवृत्तियों का भान स्वीकारने में अन्त ही नहीं होगा।

तथा, प्रश्न ये हैं — अभाव की प्रतीति में प्रतियोगीस्वरूप की झाँखी होती है या नहीं ?

तत्र प्रतिभासनात्। अननुवृत्ता(व)पि नाभावः अप्रतिभास(1)त्। न च तद्विविक्तत्वात् तद(भा)व(1?)प्रति-  
पत्तिः, तदवभासे तद्विविक्तताऽप्रतिपत्तेः। न स्मृतौ प्रतियोगिप्रतिभासात् तद्विविक्ततावगतिः, यथाप्रतिभास-  
मवभासाऽसिद्धेः। यथा(?दा) च न प्रतिभासस्तथापि निषेधाऽयोगात्। इत्यभावाकारस्य प्रतियोग्यभेदे  
तत्प्रतिभासे न तन्निराकृतिः भेदेपि न प्रतियोगिप्रतिषेध इति न बाधाभावावगमः। अपि च बाधाभावप्रतीतिरपि  
यदि अपरबाधाऽप्रतीते(ः) श(?स)न्या तदानवस्थाप्रसक्तिः। नापि सत्यविषयप्रतिभासा तत्प्रतीतिः सत्या, 5  
इतरेतराश्रयदोषात्। तद् न प्रसज्यरूपो बाधाभावो भाव(त)स्तद्भावव्यवस्थापकः ??]

[?? नापि पर्युदासरूपो बाधकाभावस्तद्व्यवस्थापकः तस्य विषयोपलम्भस्वभावत्वात्। स च यथा  
न प्राक्कालभावी अर्थतथाभावव्यवस्थापकः तथोत्तरकालभाव्यपि, प्रतिभासाऽविशेषात्। पुनरप्युत्तरकालभा-  
विपर्युदासरूपबाधाभावात्मन्यव्यवस्थायां चोद्यपरिहारानवस्थाप्रसक्तिरिति न बाधाभावादर्थतथात्वसिद्धिः। न  
च स्तम्भादीनां परमार्थतत्त्वत्वं सम्बन्धस्य प्रतिभास(1)विषयत्वात्। अप्रतिभासविषयत्वे कथं न तदभावः 10

यदि होती है तो उस का प्रतिषेध नहीं हो सकता क्योंकि उसमें वह भासता है। यदि नहीं होती,  
उसी हेतु से, यानी नहीं होती झाँखी इतने मात्र से उस का निषेध नहीं हो सकता। यदि कहें कि  
— ‘अभाव की प्रतीति में प्रतियोगी उस से सर्वथा अलिप्त ही होने से प्रतियोगी के अभाव की प्रतीति  
हो सकती है’ — तो सुन लो कि कैसे भी प्रतियोगी यदि भासता है तो उस में अलिप्तता ही  
नहीं सकती। यदि कहें कि — ‘प्रतियोगी का अवभास अभाव की प्रतीति में नहीं किन्तु स्मृति में 15  
होता है अतः अभाव की अलिप्तता प्रतियोगी में भासित हो सकती है’ — तो यह भी निषेधार्ह  
है क्योंकि आपने जैसा कहा वैसा अवभास ही असिद्ध है। आप के कथनानुसार अवभास यदि नहीं  
होता तो प्रतियोगी का निषेध भी नहीं हो सकता। तदुपरांत, यदि अभावाकार प्रतियोगि से भिन्न  
नहीं है प्रतियोगिरूप ही है तब तो उस का प्रतिभास अभाव के साथ होने से उसका निषेध अशक्य  
है। यदि भेद है, तब तो अभावप्रतीति से अभावभिन्न प्रतियोगी का निषेध कैसे हो सकता है ? 20  
सारांश, किसी भी तरह बाधाभाव अथवा बाधकाभाव का भान शक्य नहीं है।

यदि बाधाभाव की प्रतीति भी उस में अन्य बाधकाभाव से ही सत्य मानेंगे तो उस अन्य बाधकाभाव  
की प्रतीति भी अन्य अन्य बाधकाभाव से ही सत्य माननी पड़ेगी — तब अनवस्था दोष गले पड़ेगा।  
यदि सत्य प्रतीति का आधार सत्य विषय के प्रतिभास से मानेंगे तो सत्यविषय प्रतिभास का आधार  
भी सत्य प्रतीति को मानना पड़ेगा फलतः अन्योन्याश्रयदोष घुस जायेगा। निष्कर्ष :- प्रसज्यनजरूप 25  
बाधाभाव (या बाधकाभाव) तत्त्वतः किसी भाव का स्थापक नहीं हो सकता।

### [ पर्युदासरूप बाधकाभाव से अर्थतथात्वव्यवस्था अशक्य ]

पर्युदासरूप बाधकाभाव अर्थतथाभाव की स्थापना नहीं कर सकता, क्योंकि उस का स्वभाव है  
भावात्मक विषय का उपलम्भ मात्र जैसे पूर्वकालीन बाधकाभाव अर्थतथाभावस्थापक नहीं होता (यह  
तो स्पष्ट ही है) वैसे उत्तरकाल भावी भी नहीं हो सकता क्योंकि दोनों तुल्य प्रतिभासरूप है। यदि 30  
उत्तरकाल भावि बाधाभाव से प्रतिभासतुल्यता के रहते हुए भी अर्थतथात्वव्यवस्था का स्वीकार करेंगे  
तो उत्तरकालभावी बाधाभाव के लिये पुनः वे ही प्रश्न खड़े होंगे, उन के वे ही उत्तर करते रहेंगे

अप्रतिभासविषयस्याऽतत्त्वरूपत्वात् ?! न च संवादित्वादपि स्तम्भादेः सत्यत्वम्, समानजातीयोत्तरकाल-  
भाविज्ञानवृत्तिलक्षणस्य संवादस्य यावत्तिमिरं तावदिन्दुद्वयादावपि भावात्। नापि भिन्नजातीयाद् ज्ञानसंवादात्,  
भ्रान्तज्ञानावभासिनो रजतादेः शुद्धि(?क्ति)काज्ञानसंवादात् सत्यत्वप्रसक्तेः। न चैकार्थाद् भिन्नजातीयज्ञान-  
संवादात्, एकार्थत्वे पूर्वापरज्ञानयोरविशेषात् संवादज्ञानवत् संवादस्यापि सत्यत्वव्यवस्थापकत्वाऽयोगात्।

5 न च रूप-स्पर्शज्ञानयोर्विजातीययोरेकार्थविषयत्वम् रूप-स्पर्शयोरभेदात्। न च रूप-स्पर्शाधिकरणमेकं  
द्रव्यं तयोर्विषयः, एकत्वे प्रमाणाऽवृत्तेः प्रतिपादितत्वात्। नापि भिन्नविषयात् संवादप्रत्ययात् (संवादे?)  
सत्त्वसिद्धिः, शुद्धि(?क्ति)कादर्शनात् भ्रान्तदृगवगतरजतादेः प्र(?स)त्यताप्रसङ्गात्। न च स्पर्शज्ञानमर्था-  
भावे नोपलब्धं सर्वसत्यप्रतिभासमानस्य दशायां तदभावेऽपि तदुदयोपलब्धेः। न च स्वप्न-जाग्रदशाभाविनोर्ज्ञानयोः  
कश्चिद्विशेष इति न संवादादपि सत्यता। न च जाग्रदशायामिव स्वप्नदशायामपि यदव(भास)ति तत्

10 तो अन्त न होने से अनवस्थाप्रसंग गले पड़ेगा। अत एव बाधाभाव से अर्थतथात्वसिद्धि शक्य नहीं।  
वास्तव में तो स्तम्भादि का कोई वास्तविक तथात्व (या तत्त्व) है ही नहीं। कारण, तथात्व  
का वह सम्बन्ध प्रतिभासविषय ही नहीं है। जब वह प्रतिभासविषय नहीं, तब तथात्व का अभाव  
क्यों नहीं होगा ? जो प्रतिभासित नहीं होता वह तत्त्वरूप भी नहीं होता।

संवादित्व भी स्तम्भादि की सत्यता का मूलाधार नहीं बन सकता। कारण :- समानजातीय  
15 उत्तरकालभावि ज्ञानप्रवृत्ति ही संवाद का लक्षण है, ऐसा संवाद तो जब तक तिमिरग्रस्तता है तब  
तक चन्द्रयुगलस्थल में विद्यमान है, किन्तु उसे कोई सत्य नहीं मानता। भिन्नजातीय उत्तरकालभाविज्ञानरूपसंवाद  
से भी स्तम्भादि की सत्यता सिद्ध नहीं होती। कारण :- वैसा संवाद यानी शुक्तिज्ञानरूप संवाद तो  
भ्रान्तज्ञानावभासि रजतादिस्थल में भी सुलभ है, तो भ्रान्तज्ञानावभासि रजतादि को भी सत्य मानना  
पड़ेगा। यदि कहें कि 'भिन्नजातीय सही, किन्तु ज्ञानरूप संवाद एकार्थक भी होना चाहिये यहाँ रजत  
20 शुक्तिभिन्न अर्थ है, शुक्तिज्ञानसंवाद भिन्नार्थक है' — तो यह सम्भव नहीं, क्योंकि तब पूर्वापर संवाद्य-  
संवादक ज्ञान में कोई भेद ही नहीं है, इस स्थिति में जैसे संवाद्यज्ञान किसी रजतादि का व्यवस्थापक  
नहीं है तो उत्तरकालीन समान — या भिन्न जातीय संवादकज्ञान भी रजतादि के सत्यत्व की व्यवस्था  
क्यों कर सकेगा ?

### [ स्वप्नदशावत् जागृति में भी द्रव्यादि की असिद्धि ]

25 रजतादि बाह्यार्थ की सत्यता द्रव्यादि की सिद्धि पर अवलंबित है, किन्तु वही दुर्गम है। रूप  
और स्पर्श का एक अधिकरणभूत द्रव्य किसी प्रमाण का विषय नहीं है न तो बाधाभाव से सिद्ध  
है, रूप-स्पर्शउभय एक भी प्रतीति का विषय नहीं है। एक अधिकरण द्रव्य के ग्रहणार्थ कोई प्रमाणवृत्ति  
तैयार नहीं है यह पहले कहा जा चुका है। भिन्नविषयक संवाद प्रतीति से भी द्रव्यसत्ता सिद्ध नहीं  
होती, क्योंकि भिन्न विषयक संवाद के रहते हुए वस्तु सिद्ध होने का मानने पर तो शुक्ति के दर्शन  
30 के बाद भ्रान्तदर्शनगृहीत रजतादि में भी सत्यता प्रसक्त होगी। अर्थ (द्रव्य) के बिना स्पर्श ज्ञान नहीं  
उपलब्ध होगा, ऐसा नहीं है, क्योंकि सभी को स्वप्न में सत्यरूप से भासमान अर्थज्ञान उस दशा  
में अर्थ के न होने पर भी उदित होता है यह दिखता है। स्वप्नज्ञान जाग्रदशाज्ञान इन दोनों में

सर्वं (?र्वम)सत्यम् प्रतिभासमानस्याऽसत्ताऽयोगात्। दृष्टान्तासिद्धितो न सर्वभावाभावः, प्रतिभासमानस्य स्तम्भादेरे-कानेकरूपतयाऽव्यवस्थितेः। तथाहि —

(न) कालभेदाद् भिन्नोऽध्यक्षतः प्रतिपत्तुं शक्यम्(?)— सन्निहिते एव तस्य वृत्तेः। न हि मृत्पिण्डस्वरूप-ग्राह्यध्यक्षं तदाऽसंनिहितं घटमुपलभते, तदनुपलम्भे च न तदपेक्षया तेन स्वविषयस्य भेदोऽधिगन्तुं शक्यः, प्रति(पादि?)योगिग्रहणमन्तरेण ततो भिन्नमि(त्य)नधिगतेः। नापि घटस्वरूपग्राहिणा तेन मृत्पिण्डात् भेदोऽधिगम्यते, तत्स्वरूपाऽग्रहणे तस्याऽप्रवृत्तेः। न च स्मरणमपि भेदाऽधिगमे प्रभु, अध्यक्षे(क्ष)गृहीते एवार्थे तस्य व्यावृत्तेः(?पृतेः)। न वाध्यक्षमेतद्ग्रहणक्षमम् इति प्रतिपादितत्वात्। न स्मरणमर्थग्रहणे प्रभवति, तस्य स्वरूपमात्रपर्यवसितत्वात्। तत एव स्मरणसहायमप्यवा(?ध्य)क्षं न भेदग्रहणे पटु। न पूर्वरूपाऽग्रहणमेव ततो भेदवेदनम् तद्ग्रहणस्य व्यवस्थापयितुमशक्तेः। न च तत्स्वरूपमेव भेद इति तद्ग्रहणात् सोपि गृहीतः,

कोई विशेष फर्क नहीं है, जिस से कि एक का विषय सत्य, दूसरे का असत्य माना जा सके। मतलब, 10 संवाद से भी अर्थ की सत्यता फलित नहीं होती। जागृति दशा में जो प्रतिभासित होता है उस को सत्य माना जाय तो स्वप्नदशा में जो अनुभूत होता है उन सभी को असत्य मानना उचित नहीं है, क्योंकि जो प्रतिभासित या अनुभूत होता है उस में असत्ता को अवकाश नहीं रहता। (मतलब, जागृतिदशा में भासमान अर्थ भी स्वप्नदशावत् असत् ही मानना चाहिये, उस को असत् मानने में) कोई दृष्टान्त नहीं है ऐसा नहीं है, (स्वप्नदशा का दृष्टान्त है।) अतः अर्थवादी के माने हुए स्तम्भादि 15 सभी भाव का अभाव ही फलित होता है, क्योंकि प्रतिभासमान स्तम्भादि एक है या अनेक, यानी भिन्न है या अभिन्न — एक भी विकल्प से उस की कोई व्यवस्था शक्य नहीं है — यानी कोई आधार नहीं है। क्यों ? सुनिये —

### [ अर्थों में कालभेदप्रयुक्त भेद सम्भव नहीं ]

अब शून्यतावादी शून्यता सिद्धि के लिये प्रथम सर्वप्रकार के भेद का उन्मूलन करता है — कालभेद 20 प्रयुक्त अर्थभेद (अर्थों का अन्योन्य भेद) प्रत्यक्ष प्रमाण से जानना शक्य नहीं है, क्योंकि संनिहित पदार्थ में ही प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति होती है (अर्थ में तदितरभेद तिरोहित होता है।) मिट्टीपिण्ड का ग्राहक प्रत्यक्ष उस वक्त दूरवर्ती घट को जान नहीं सकता। जब उस का ज्ञान शक्य नहीं, तो घट की अपेक्षा प्रत्यक्ष के द्वारा अपने विषय में घटभेद का अवबोध नहीं हो सकता। मिट्टीपिण्डग्राहि प्रत्यक्ष से भेदप्रतियोगी घट का ग्रहण न होने से मिट्टीपिण्ड घट से भिन्न है ऐसा भान अशक्य है। तथैव, घटस्वरूपग्राहि प्रत्यक्ष 25 से मृत्पिण्डप्रतियोगिक भेद का ग्रहण भी शक्य नहीं है, मिट्टीपिण्डस्वरूप के अग्राहक प्रत्यक्ष की उस के भेद के ग्रहणार्थ प्रवृत्ति नहीं हो सकती। स्मरण भी इस भेद के ग्रहण में सक्षम नहीं, क्योंकि प्रत्यक्षागृहीत विषय में स्मरण की प्रवृत्ति (= व्यापार) नहीं होती, प्रत्यक्ष तो उस के ग्रहण में समर्थ नहीं यह तो अभी कह दिया है। प्रत्यक्ष निरपेक्ष स्मरण स्वयं अर्थ (या भेद) का ग्रहण करने लग जाय यह भी सम्भव नहीं, क्योंकि स्मरण तो अपने स्वरूपग्रहण में ही तत्पर रहता है न कि अर्थ 30 ग्रहण में। इसी लिये तो (स्मरण अर्थग्राहक न होने के कारण) स्मरणसहकृत प्रत्यक्ष भी भेदग्रहण में सक्षम हो नहीं पाता।

न, अपेक्षया भेदव्यवस्थितेः, अन्यथा स्वरूपापेक्षयापि भेदप्रसक्तिरिति न कालभेदाद् भेदः प्रमाणगोचरः।

नापि देशभेदाद्; (देशभेदाद्) भावभेदे भे(?)देशस्याप्यपरदेशभेदाद् भेद(प्र)श(?स)क्तितोऽनवस्था-  
प्राप्तेः। न चान्यभेदोऽन्यत्रानुविशतीति न देशभेदादपि तद्भेदः। नापि स्वरूपभेदाद् भावभेदः। न हि  
समानकालमुद्भासमानयोर्घट-पटयोर्भिन्नं संवेदनं भेदमवस्थापयति प्रकाशमाननील-सुखादिव्यतिरेकेण  
5 तस्याऽनुपलम्भतोऽसत्त्वात्। सत्त्वेऽपि समानकालस्य भिन्नकालस्य वाऽध्यक्षस्य परोक्षस्य वा ग्रहणक्रिया-  
सहितस्य तद्विकल(।?)स्य वा तस्यार्थग्राहकत्वे(?त्वा)नुपपत्तेरिति ज्ञाननयप्रस्तावप्रतिपादितत्वात् न भेद-  
ग्राहकत्वम्। न च तस्य स्वयमर्थात् भेदेनाऽप्रतीतस्य भेदग्राहकत्वम् अन्यथा खरविषाणादेरपि तत्प्रतिश-

यदि कहें कि — ‘प्रत्यक्ष स्वकालीन संनिहित अर्थ का ग्रहण करता है पूर्वकालीन रूप का नहीं, यहाँ प्रत्यक्ष का जो पूर्वरूपअग्रहण है यही पूर्वरूपभेद का संवेदन है।’ — तो यह व्यर्थ है क्योंकि  
10 पूर्वरूपअग्रहण (= ग्रहणाभाव तुच्छ होने) से भेद के वेदन (= ग्रहण) की स्थापना शक्य नहीं। यदि  
कहें कि — ‘पूर्वरूपभेदवेदन पूर्वरूप अग्रहण का स्वरूप ही है अतः जो पूर्वरूप अग्रहण है यही  
पूर्वरूपभेदवेदन है।’ — नहीं, किसी प्रतियोगी घटादि की अपेक्षा से ही भेद का स्वरूप निश्चित होता  
है, यदि एवमेव भेदस्वरूप निश्चित होगा तो स्व (मिट्टीपिंड) रूप की अपेक्षा से भी स्व में स्व का  
भेद प्रसक्त होगा। सारांश, काल भेद से अर्थों का भेद प्रमाणसिद्ध नहीं है।

### [ देशादिभेदप्रयुक्त भावभेद का असम्भव ]

15 देशभेदमूलक अर्थभेद मानना भी अयुक्त है, क्योंकि देशभेद कैसे (किंमूलक) मानेंगे, अन्यदेशभेद  
से मानेंगे तो अनवस्था दोषप्रसंग आयेगा। तथा, एक पदार्थभेद कभी अन्यपदार्थ में घुस नहीं सकता,  
मतलब देशभेद घट-पटादि में घुस कर उन में भेद खडा करे यह असम्भव है, अतः अर्थों का भेद  
देशभेदमूलक नहीं सिद्ध होता।

भावों का भेदस्वरूपमूलक भी नहीं होता। कारण :- एककाल में भासित होनेवाले घट या पट  
20 का संवेदन पृथक् पृथक् होने से वे भेद का निश्चय करा सकता नहीं। मतलब, प्रकाशमान (यानी  
ज्ञानमय) नील एवं सुखादि (या घट-पटादि) से पृथग्रूप से भेदसंवेदन प्रतीत न होने से उस का  
सत्त्व सिद्ध नहीं होता। कदाचित् किसी प्रकार भेद संवेदन मान लिया जाय, फिर भी उस से स्वप्रतियोगिरूप  
से अर्थग्रहण की उपपत्ति नहीं हो सकेगी, चाहे वह अर्थ का समकालीन हो या भिन्नकालीन, चाहे  
वह भेद संवेदन प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, चाहे वह भेद संवेदन ग्रहणक्रियाअनुविद्ध हो या ग्रहणक्रियाविकल  
25 हो। ज्ञाननय (अद्वैतज्ञानप्रतिपादकनयविशेष) की प्ररूपणा के प्रस्ताव में इस तथ्य का प्रतिपादन किया  
जा चुका है, अतः कोई भी संवेदन भेदग्राहक सिद्ध नहीं हो सकता।

यदि कहें कि — ‘अर्थ संवेदन स्वयं भिन्नरूप से अर्थग्रहण के साथ साथ भेदग्राहक बनेगा —  
तो यह ठीक नहीं क्योंकि स्वयं भिन्नरूप से वह प्रतीत नहीं होता, केवल अर्थरूप से ही भासित  
होता है। स्वयं भिन्नरूप से भेदग्राहक बनेगा तो गधेसींग के भेद का भी ग्राहक बन जाने का दोषप्रसंग  
30 आयेगा। ज्ञान के ज्ञान से (अनुव्यवसाय से) भी अर्थों का भेद गृहीत नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञान  
का ज्ञान भी जब तक भेदग्रहण नहीं करता तब तक वह भेदव्यवस्थापक नहीं बन सकता। अगर

(?प्रस)क्तेः। न च तस्य भेदो ज्ञाता(?न)ज्ञानादवसीयते, तस्याप्यप्रतिपन्नभेदस्य तद्भेदाऽव्यवस्थापकत्वादि-  
त्याद्यनवस्थाप्रसक्तेः। न च स्वसंवेदनत एव तद्भेदः सिध्यति, तथाभ्युपगमे स्वस्वरूपमात्रपर्यवसितत्वात्  
तस्य नीलादिभेदव्यवस्थापकत्वानुपपत्तेः।

न च स्वत एव स्तम्भादयो भिन्नरूपाः प्रथन्ते तथाभ्युपगमे स्वसंवेदनरूपतया तेषां अ(स्व)रूप-  
वेदनपर्यवसितत्वेनाऽन्यत्राऽप्रवृत्तेः, परस्परऽसंवेदनतः कुतः स्वरूपतोऽपि भेदसंवित्तिर्भवेत् ? द्वयरूपाऽसंवेदने 5  
तन्निष्ठस्याप्यप्रतिपत्तेः<sup>▲</sup>। न चाऽपरोक्षे नीलस्वरूप(?पे) पीतमपरमाभाति। तथा (? न चा)पराऽप्रतिभास-  
नमेव भेदवेदनम् यतो नीलस्वरूपस्वसंविदितत्व(।?)प्रतिभासनं पीतमस्ति नास्ति वा न शक्यमधिगन्तुम्।  
नास्तित्वाऽवेदने च कुतः स्वरूपमात्रप्रतिभासनाद् भेदसिद्धिः ? अपि च, स्तम्भादेः स्थूलादवभासिनोऽ-  
नेकदिकसम्बन्धाद् भेदः परमाणुपर्यन्तः पुनस्तत्परमाणूनामपि भेददिकषट्कसम्बन्धाद् भेदः तत्राप्येवम् इत्यनव-  
स्थानात् न भेदव्यवस्थिते(तिः) एका(?क)रूपाऽव्यवस्थितौ तद्विपर्ययेण भेदव्यवस्थितेरयोगात्।?? ] 10

उस के लिये एक और ज्ञान-ज्ञान का ज्ञान लायेंगे तो अनवस्था दोषप्रसंग होगा। स्वसंवेदन से भी  
अर्थों का भेद सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वैसा मान लेने पर भी वह स्वरूपमात्रसंवेदनतत्पर होने  
के कारण नीलादिअर्थों के भेद की व्यवस्था अनुपपन्न रहेगी।

### [ स्वयं नीलादि के भेद का अवभास अशक्य ]

ऐसा नहीं है कि स्तम्भादि स्वयमेव भेदसहित भासित हो जाय। अगर ऐसा मानेंगे तो वे भी 15  
स्वसंवेदनरूप ही बन जायेंगे, फलतः अपने स्वरूपवेदन में व्यग्र रहनेवाले उन की अन्य (भेदादि)  
के लिये कोई प्रवृत्ति ही नहीं हो सकेगी। उपरांत, एक नीलादि संवेदन या पीतादि एकसंवेदन परस्पर  
एक-दूसरे का वेदन ही नहीं करते, तब स्वरूप से भी भेदसंवेदन की कथा ही कहाँ ? द्वन्द्व का  
भान न होने पर उन दोनों के साधारण धर्म का भी प्रवेदन नहीं हो सकता। न तो अपरोक्ष नीलस्वरूप  
में अपररूप से पीत भासता है (न पीतसंवेदन में अपररूप से नील।) ऐसा नहीं कि अपर का असंवेदन 20  
ही भेदवेदनरूप मान लिया जाय। कारण :- नीलस्वरूप का जब स्वसंविदितत्वप्रतिभास होता है उस  
वक्त 'पीत है या नहीं' ऐसा अन्वेषण शक्य नहीं है। जब नास्तित्व का वेदन ही नहीं है। सिर्फ  
नील के अपने स्वरूपमात्र के प्रतिभास से भेद की सिद्धि क्यों कर होगी ?

### [ एक - स्थूल स्तम्भादि का भी निश्चय अशक्य ]

उपरांत, एक और स्थूल दिखनेवाले स्तम्भादि वास्तव में एक और स्थूल नहीं होते, छ या दश 25  
दिशाओं के संयोगभेद से उन के अनेक खण्ड स्वीकारने होंगे। एक एक खण्ड के भी विभिन्न दिक्संयोग  
से अनेक भेद मानने पडेगे। (तर्क यह है कि एक में विरुद्धदिक संयोग घट नहीं सकता।) इस  
प्रकार खण्डोपखण्डभेद की शृंखला चलेगी तो आखिर परमाणु ही बचेगा। अरे वह भी नहीं बचेगा,  
क्योंकि उस में विरुद्ध अनेकदिकसंयोग से भिन्न भिन्न खण्ड, इस से भी आगे भेद...भेद... अनवस्था  
चलती रहेगी, तब भेद का ही निश्चय लुप्त हो जायेगा। एक स्तम्भादि के या एक परमाणु का 30  
भी निश्चय न हो सकेगा तो तद्व्यावृत्तिरूप से भेद का निश्चय कैसे शक्य होगा ?

▲. द्विष्टसम्बन्धसंवित्तिः नैकरूपप्रवेदनात्। इति स्मर्त्तव्यम्



[नन्वनेन न्यायेन यद्यत्प(?ध्य)क्षावभासिनो नीलादेर्न भेदः, अभेदस्तु तदा न्यायप्राप्त इत्यद्वैतापत्तेर्न शून्यता। अन्तर्बहिश्च प्रतिभासमानयोः सुखनीलाद्योरपहनोतुमशक्यत्वात् 'प्रतिभासतोऽध्यक्षतः' [ ] इति वचनात्। नैतत् सारम्, यतो नास्माभिरवभासमानस्य नीलादेरवभासशून्यताऽभिधीयते प्रतिभासविरतिलक्षणायास्तस्याः कथञ्चिदप्रतीतेः, अपि तु प्रतिभासोपमत्वं सर्वधर्माणां शून्यत्वम्। उक्तं च— 'प्रतिभासोपमाः सर्वे धर्माः' [▲ ] इति। प्रतिभासश्च सर्वो भेदाभेदशून्यः। न हि नीलस्वरूपं सुखाद्यात्मकतयाऽभेदरूपमुपलभ्यते, तद्रूपताऽनुपलम्भे च कथमेकं भवितुं युक्तम् ? न च तस्य भेदाऽवेदनमेवैकत्ववेम(?वे)दनम् एकतो स्वस्वरूपाऽवेदनस्यापि भेदत्वेनाभिधातुं शक्यत्वात्, इति न विशेषः कश्चित् स्व-परपक्षयोः। परस्परपरिहारेण देशास्व(?द्य)भासान्नैकत्वं देशकालाकारैर्जगतः।

न चैकत्ववादिनोऽन्योन्यपरिहारेण देशादीनामुपलम्भोऽसिद्धः परस्परानुप्रवेशोपलम्भस्यापि तेषामसिद्धेः।  
10 न च प्रतिभास(1?)स्तावदयमस्तीत्यदै(?द्वै)तमस्तु नीलादेर्विचित्रस्य प्रतिभासा(ज्)जगतो विचित्रताप्राप्तेः।

### [ भेद की असिद्धि से अभेद का साधन अनुचित ]

पूर्वपक्ष :- भवदीय तर्कों के अनुसार प्रत्यक्ष प्रतिभासमान नीलादि में भेद नहीं है, तो उस से विपरीत उन का अभेद न्यायसिद्ध हो गया — क्योंकि भेद-अभेद के अलावा तीसरा कोई विकल्प नहीं, फलतः अद्वैत का ही समर्थन हुआ, न कि शून्यता का। शून्यता मानी जाय तो भीतर में भासमान सुखादि और बाहर में भासमान नीलादि का निषेध करना पड़ेगा जो अनुचित है। एक आप्त वचन है कि 'प्रत्यक्ष से प्रतिभास होने से' — जिस का यह तात्पर्य है कि सभी धर्मों का प्रत्यक्ष से प्रतिभास होता है। उत्तरपक्ष :- कथन असार है, हमारा शून्यतावाद ऐसा नहीं कहता कि अवभासमान नीलादि का अवभास शून्य है (यानी होता ही नहीं), कभी भी प्रतिभासनास्तित्व रूप शून्यता की प्रतीति नहीं होती। किन्तु हमारे कथन का भाव यह है कि सर्व धर्म प्रतिभास सदृश होते हैं — यही शून्यता है। एक आप्तवचन में कहा है — 'सभी धर्म प्रतिभासतुल्य हैं।' शून्यता इस लिये कि प्रतिभास, भेद या अभेद से नितान्तशून्य होता है। देखिये — नील पदार्थ सुखादिआत्मक पदार्थ से अभिन्नतया संविदित नहीं होता। अभिन्नतया संविदित न होने पर कैसे वे दोनों अभिन्न = एक हो सकते हैं ? 'अभिन्नतया यानी एकत्वरूप से संवेदन का मतलब 'भेद का अवेदन' ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि तब उस\*से उलटा, यानी अपने एकत्व = अभेदस्वरूप का अवेदन यही भेद का वेदन' ऐसा भी कहना युक्त मानना होगा। आप के और हमारे दोनों कथन में कोई फर्क दिखानेवाला तर्क नहीं है। तथा, एक-दूसरे का त्याग कर के (एक-दूसरे का अवगाहन न कर के) देश-कालादि का भी अवभास न होने से, विश्वपदार्थों का देश-काल-आकारों के द्वारा एकत्व निषिद्ध हो जाता है।

### [ नैसर्गिक शुद्ध ज्योति की परमार्थसत्ता का निषेध ]

ऐसा नहीं कहना कि हमारे एकत्व (= अद्वैत)वाद में परस्परविमुक्ततया देशादि का उपलम्भ असिद्ध है। अरे ! आप के मत से तो उन के परस्परव्यतिषङ्ग का उपलम्भ भी कहाँ सिद्ध है ? यदि कहेँ

▲. भूतपूर्वसम्पादकयुगलेनात्र महायानसूत्रालंकार-शास्त्रवार्त्तासमुच्चय-स्याद्वादकल्पलताटीकाग्रन्थयुगलादनेकवचनसंदर्भा उद्धृतास्तत एव ज्ञातव्याः। (पृ० ३७१ मध्ये तृतीयखण्डे)

न च बहिर्नीलादेरेकानेक(1?)रूपतया युक्ता(?क्त्या)नुपपत्तेः प्रकृतिपरिशुद्धं ज्योतिर्मात्रं परमार्थसदस्तु, तथाभूतज्योतिर्मात्रस्य कदाचनाप्यप्रतिपत्तेरसत्त्वात् सर्वधर्मशून्यतैव सिद्धिमा(स)साद (पि नगमान्?)। यदि प्रतिभासनाद् ज्योतेरवगम्यमाननीलादिवद् ग्राह्योल्लेखभूतेपि सत्यसत्यात्वनीलादेरपि मधावभासितेः सत्यत्वप्रशक्तित्वात्। न च विद्याविरचितप्रतिभासविषयत्वाज्ज्योतिषः सत्येतरस्य तु विपर्ययादसत्यतेति वाच्यम्, कल्पना(?न)याऽस्यापि रचयितुं शक्यत्वात्।

5

यदि प्रतिभाससत्या(?उ)च्यते इति न्यायात् प्रतिभासवपुषां नीलादीनां कथमसत्यं(त्य?त्वम्)क्तम् तत्रापि प्रतिभासात् सत्यत्वं स्वप्नप्रतिभासिनोऽपि तस्य सत्यत्वप्रसक्तिः। न च स्वप्नदशायामपि ज्ञानस्वरूपतया नीलादेः सत्यत्वाद् जाग्रदशायामपि तथैव सत्येति विज्ञप्तिमात्रं न शून्यतेति वक्तव्यम् ज्ञानरूपतया प्रसक्ते-नीलादेरप्रतिभासनात्। न ह्यन्यतरस्यापि दशायां प्रकृतिपरिशुद्धान्तस्तत्त्वज्ञानरूपतया तेषां सर्वदावभासनात्। न च बहीरूपतयाऽवकाशादन्तस्तत्त्वं भवितुमर्हति अन्तरारूपतया सुखादेव भासमानबहीरूपतया प्रसक्तेः।

10

कि - 'आखिर प्रतिभास तो सत् है अतः शून्यता नहीं प्रतिभासाद्वैत मान लो !' - नहीं नीलादि प्रतिभास कोई एक किस्म का नहीं होता, वह भी चित्रविचित्र होता है, अगर प्रतिभास मानेंगे तो विचित्रताहेतु जगद्वैचित्र्य भी गले पड़ेगा। यदि कहा जाय - 'बाह्य नीलादि जगत् युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि वह एक है या अनेक - एक भी विकल्प घटता नहीं, अत एव नैसर्गिक विशुद्ध ज्योतिर्मय वस्तु ही पारमार्थिक सत् माना जाय' - नहीं, भवत्कथित ज्योतिर्मय वस्तु का कभी अनुभव न होने से वह असत् है, फलतः सर्वधर्मशून्यता ही सिद्धिसदन आरोहण कर सकती है, (सिद्धिमासादपिऽनकामात् पाठ अशुद्ध है, सिद्धिमासादयत्यनागमाद्यप्रतिभासनाज्ज्योतेः - ऐसा कोई पाठ हो सकता है।) क्योंकि ज्योति न तो आगमगम्य है न प्रतिभासित होती है। ज्ञायमान नीलादि की तरह वहाँ ग्राह्य पदार्थ का उल्लेख यद्यपि होता है किन्तु (सत्यासत्यत्व के बदले 'असत्य' पाठ हो सकता है।) असत्य नीलादि का भी मध्यमावभासन के जरिये नीलादि में भी सत्यत्व की प्रसक्ति होगी। यह कहना कि - 'नीलादि तो अविद्याप्रयुक्त प्रतिभास का विषय होने से असत्य है, जब कि ज्योति तो विद्याप्रयुक्त प्रतिभास का विषय होने से सत्य है' - ठीक नहीं, ज्योति भी अविद्या यानी कल्पना से प्रयुक्त प्रतिभास का ही विषय है। ज्योतिप्रतिभास की रचना के लिये अविद्या शक्तिशाली है।

15

20

### [ विज्ञानवाद तत्त्वभूत नहीं है ]

यदि आप प्रतिभास को सत्य कहेंगे तो प्रतिभासारूढ पिण्डात्मक नीलादि को असत्य क्यों कर कहेंगे ? यदि उन्हें भी सत्य मानेंगे तो स्वप्न में प्रतिभासी नीलादि को भी सत्य मानना पड़ेगा। ऐसा कहना - 'स्वप्नदशादृष्ट नीलादि बाह्यरूपता से नहीं किन्तु ज्ञानरूपता से ही सत्य मानेंगे, एवं जागृति में भी ज्ञानरूपता से ही नीलादि को सत्य मानते हैं। मतलब, विज्ञानमात्र वस्तु सिद्ध होती है, शून्यता नहीं' - निषेधार्ह है, क्योंकि नीलादि भी ज्ञानरूपतापन्न बन जाने पर बाह्यरूप नीलादि का प्रतिभास ही लुप्त हो जायेगा। जो बाह्यरूपता से प्रतीत होते हैं उन को अन्तस्तत्त्वस्वरूप मानना अयुक्त है, अन्यथा अन्तस्तत्त्वता से भासमान सुखादि को बाह्यरूपतापन्न मानने की मुसीबत आयेगी।

25

30

तत्र बहिरुद्द्योतमानो नीलादिरन्तस्तब्धस्याकाराभ्युपगन्तव्य इति न विज्ञानवादो ज्यायान् ??)

- [?? न च बहीरूपतया प्रतिभास(1)नीलादेस्तथैव सत्यता, वा(?भ्रा)न्तरजतादौ तद्रूपाभावेऽपि तथा-  
प्रतिभासोपलब्धेः। अथापि स्यात्— शुक्तिकायां प्रतिभासमानस्य रजतस्य वाऽसत्यता, पूर्वदृष्टस्यैव तत्र  
तस्य स्मृतेरनुभूतरजतस्य स्मृतेरनुकारदर्शनेऽपि रजतस्याऽप्रतिभासात् पूर्वप्रतिभातं च रजतं ततस्तब्ध-  
5 स्याकारोऽभ्युपगन्तव्यः (सं)विदसत्यतयाऽऽपत्तिदर्शनं(?ने) शून्यवादिनो भवेत्। — असदेतत्, यतो यत्  
शुक्तिकायां पूर्वदृष्टं रजतरूपं सत्यं तस्य प्रतिभासे स्मर्यमाणतया प्रतिपत्तिर्न भवेत्, यच्च वर्तमानमिदानींतन-  
दर्शनाद् विपरीतख्यातिः स्याद् न स्मृतिप्रमोषः। तथाहि— स्मृतिरभावः तदा तदभावे कथं पूर्वदृष्टरजततद-  
भावप्रतीतिः स्यात्। नाप्यन्यदर्शनं स्मृतिप्रमोषस्तद्भावे परिस्फुटवपुरन्यदर्शनमेव प्रतिभातीति कथं रजते  
स्मृतिप्रमोषः ? सर्वदर्शनस्य स्मृतिप्रमोषतापत्तेः। नापि (वि)परीताकारवेदित्वं स्मृतेः प्रमोषः विपरीतख्या-  
10 तित्वप्रसक्तेः। यदेव प्रत्यक्षाकारणं स्मृतेरभावनः आकारस्तदासौ प्रत्यक्षस्य रूपं न स्मृतेः इति कथं तेन  
रूपेण स्मृतिः प्रतिभाति ?

निष्कर्ष — बाह्यरूपता से भासित होनेवाले नीलादि अन्तस्तत्त्वाकार मानना युक्तिसंगत नहीं होने से विज्ञानवाद तनिक भी प्रशस्त नहीं है।

### [ बाह्यरूपता से नीलादि की सत्यता का निषेध ]

- 15 यदि बाह्यरूपता से भासमान नीलादि की बाह्यरूप से ही सत्यता स्वीकारेंगे तो भ्रान्तरजतस्थल में बाह्यरूपता से भासित होनेवाले रजतादि बाह्यरूपता के न होने पर भी बाह्यरूप से सत्यता माननी पड़ेगी। यदि यह कहा जाय — ‘सीप में भासित होनेवाले रजत को सत्य नहीं मानेंगे क्योंकि वहाँ पूर्वदृष्ट रजत का ही स्मरण होता है। यद्यपि पूर्वानुभूत रजत का स्मृति में अनुकार (यानी रजत का आकार) जरूर दिखता है किन्तु रजत स्वयं वहाँ नहीं दिखता। रजत तो पूर्वदर्शन में देख लिया  
20 था। अतः यही मानना चाहिये कि रजत से संसृष्ट आकार ही वहाँ भासता है। अतः शून्यवादी के मत में ही ज्ञान की सत्यता की आपत्ति आयेगी।’ — यह कथन गलत है, कारण :- सीप में पूर्वदृष्ट रजत सत्य है उस का प्रतिभास होगा तो स्मृतिविषयतारूप से उस का भान नहीं हो सकता। तथा भूतकालीन होने पर भी वर्तमानकालतारूप से जो वर्तमान में रजतज्ञान है वह तो विपरीतख्याति हुई तो विज्ञानवाद में वहाँ स्मृति का प्रमोष (स्मृतिरूप से भ्रान्तज्ञान का अभासन) नहीं होगा। देखिये—  
25 स्मृति का प्रमोष यानी अभाव माना जाय तो उस वक्त प्रमोषकाल में स्मृति न होने पर पूर्वदृष्ट रजत और उस के अभाव की प्रतीति कैसे होगी ? स्मृति प्रमोष यदि अन्यार्थ का दर्शन रूप है तो प्रमोषकाल में स्पष्ट मूर्तरूप अन्यदर्शन ही भासित होगा, फिर रजत के साथ स्मृतिप्रमोष का नाता क्या ? सभी चीज एक-दूसरे से अन्य होने के कारण दर्शनमात्र स्मृतिप्रमोषरूप बन कर रहेगा। स्मृति प्रमोष यदि विपरीताकारवेदनरूप कहा जाय तो अन्यथाख्याति की आपत्ति होगी। ऐसा कहा जाय कि  
30 जो (रजतादि आकार) प्रत्यक्ष का विषयविधया कारण न हो कर, स्मृति का न हो ऐसा आकार प्रत्यक्ष में दिखता है वह तो स्मृति का नहीं प्रत्यक्ष का ही रूप हुआ, फिर उस रूप से स्मृति का भान कैसे होगा ? (स्मृतेरभावनः आकारः यह पाठ अशुद्ध लगता है, शुद्ध पाठ ध्यान में नहीं आया।)

अथ प्रत्यक्ष(म)भावाकारतया प्रतिभाति तर्हि तदेव रूपं न तस्याः सदस्तु न स्मृतिरूपता तस्या-  
स्तत्राप्रतिभासना(त्) वा बाधक प्रत्ययो रजतमसदेव प्रतिभास(मानम् ?) इत्युल्लेखेन प्रवर्तमानो रजता-  
भावमेवावग(च्छ)ति(ः?), न भ्रान्तेः स्मृतिरूपतामिति न रजताभावसमये नापि बाधकप्रत्ययप्रवृत्तिकाले  
चान्तरदृष्टां स्मृतिरूपता-प्रतिपत्तिः। प्रतिपत्तिप्रमोषकल्पना। सर्वत्राप्येतद्वोषपरिजिहीर्षया विपरीतख्यातेरभ्यु-  
पगमः (न) श्रेयान्। यतो न ताव(त्स्मृ)तेर्विपरीतत्वं तदैवाभावः ख्यातेरभावादप्रतिभासः न तर्हि 5  
ख्यातेरभावे विपरीतख्यातिः यतो यदन्यप्रतिपत्तिः पूर्वदर्शनं तु कथं विपरीतख्यातिः ? न ह्यन्यदर्शनात्  
अना(?न्य)द् विपरीतं भवत्यतिप्रसङ्गात्। नापि विपरीताकारदर्शित्वं विपरीतख्यातिः यतोऽत्रापि यदि  
विपरीतमर्थं दर्शनं गृह्णाति कथं तदा तद् भ्रान्तं भवेत् ? अन्यथा, नीलदर्शनस्यापि पीतदर्शनविपरीतार्थ-  
ग्राहिणो भ्रान्तताप्रसक्तिः।

न च भिन्नदेशादावभिन्नदेशादितया प्रति तद्वि (?प्रतीत्या) विपरीतख्यातिः, यतो देशादयः तत्र दर्शने 10  
प्रतिभासमानाः यदि सन्तः प्रतिभान्ति तदा कथञ्चित् विपरीतख्यातिः। अथाऽसन्तस्तदाप्यसत्ख्यातिप्रसक्तिः

### [ भ्रान्तरजतस्थल में स्मृतिप्रमोष का निषेध ]

यदि प्रत्यक्षतः अभावाकार भ्रान्तरजतस्थल में दिखता है तो प्रत्यक्ष का वही अभावाकार सत्  
रूप स्वीकार किया जाय, न स्मृतिरूपता, क्योंकि स्मृतिरूपता उस में प्रतीत नहीं होती। 'रजत असत् 15  
ही प्रतिभासता है' — इस तरह के उल्लेखपूर्वक प्रवर्तमान बाधक प्रत्यय भी रजत के अभावाकार  
को ही बोधित करता है, न कि भ्रान्ति की स्मृतिरूपता को। फलतः रजताभास क्षण में या बाधकप्रतीतिकाल  
में आन्तररूप से अदृष्ट स्मृतिरूपता की प्रतिपत्ति के प्रमोष की कल्पना नहीं करना चाहिये। तथा  
स्मृतिप्रमोषकल्पना के बदले सर्वत्र ही उक्त दोष के परिहारार्थ (यदि असत् ख्याति नहीं मानना है  
तो) आखिर अन्यथाख्याति का स्वीकार भी श्रेयस्कर नहीं है। यदि कहें कि — 'स्मृति का वैपरीत्य  
उसी काल में अभावात्मक ही है, मतलब ख्याति ही नहीं है — अप्रतिभास है' — तब तो ख्याति 20  
के विरह में विपरीतख्याति फलित नहीं हुयी। प्रश्न अब यह है कि यदि अन्य किसी काल में ख्याति  
का वैपरीत्य यानी अभाव है तो इस से प्रस्तुत में क्या फल आया ?

यदि कहें कि (प्रस्तुत विषय से) भिन्न विषय की ख्याति ही विपरीत ख्याति है तो वह तो  
पूर्वदर्शन रूप ही है, यहाँ विपरीत ख्याति कैसे हुयी ? एक चीज के देखने पर अन्य चीज का वैपरीत्य  
नहीं हो जाता। 25

ऐसा कहें कि विपरीतख्याति का मतलब है कि विपरीत आकार का प्रदर्शकत्व, तो मतलब हुआ  
कि जो अर्थ विपरीत है उसको उस रूप से दर्शन ग्रहण करता है, इसमें वह भ्रान्त कैसे हो गया ?  
अरे ! ऐसे तो फिर पीतदर्शन से विपरीत नीलार्थग्राहि नीलदर्शन में भी भ्रान्तता प्रसक्त होगी।

### [ एकदेशीय पदार्थ में अन्यदेशादिवृत्तित्व का भान अशक्य ]

यदि कहें कि — 'भिन्नदेशादि(गत) पदार्थ अभिन्नदेशादि (वर्तमान में दृश्यमान देशादिगत) तथा 30  
प्रतीति होती है वह है विपरीतख्याति — यह उचित व्याख्या है।' — तो यह ठीक नहीं है क्योंकि  
उस दर्शन में प्रतिभासमान देशादि यदि सत् है तो किसी भी तरह वह विपरीतख्याति नहीं है। यदि

सतां देशादीनां तत्राऽख्यातेः। न च तद्देशादिसम्बन्धग्रहणाद् विपरीतख्यातिः, यतस्तत्सम्बन्धोऽपि यदि सन् प्रतिभाति तदा सदर्थग्रहणाद् विपरीतख्यातिः। अथासंस्तदाप्यसत्ख्यातिर(स्त ?)सदर्थग्रहणात्। अन्यदेशादित्वं च भ्रान्तदृगवसेय(स्यै)वार्थस्य कल्पने (लप्यते) नान्यस्य, न तर्हि स्वप्नदृशो भ्रान्तत्वं तदवभासिनोऽन्यदेशादित्वाभावात्। तथापि तत्त्वे सर्वदृशां विपरीतख्यातित्वप्रसक्तिः। अथ भ्रान्तदृगवसेयस्यैवान्यदेशादितयाऽन्यदेशस्यापि ग्रहणमिति विपरीतख्यातिस्तत् तर्हि तस्यान्यदेशादित्वं भ्रान्तदृशाऽवसीयते उत पूर्वदर्शनेन ? तदपि यदीदानीन्तनस्यान्यदेशत्वावगतः(मः) तदाऽसंगतम् पूर्वदर्शनस्येदानी(न्तना)नामशक्यत्वादर्थ(न)तश्चातिप्रसङ्गतो ग्राहकत्वानुपपत्तेः। नापि पूर्वमिदानीन्तनभ्रान्तदृगवसेयस्य तेन पूर्वदेशादिगतिः, इदानीन्तनज्ञानावसेयस्य पूर्वमभावात्।

न चैकमेव पूर्वापरदर्शनावसेयं वस्त्विति न दोषः, पूर्वापरदृग्भावयोरेकत्वाऽसिद्धेः। पूर्वदर्शनेन 10 वर्त्तमानदेशादिपरिहारेण पूर्वदेशादितयैव तस्यावगतेर्नदानीन्तनस्य पूर्वादिताऽवगतिः। न च पूर्वदेशादिरे- (?देरि)व वर्त्तमानादेरपि ग्राहकमिति तेनैव पूर्वापरदेशादिना तथाऽवसीयते पूर्वदर्शनकाले वर्त्तमानदेशादेर-

असत् ही प्रतिभासित होते हैं तो असत्ख्याति ही माननी पडेगी क्योंकि उस में सद्भूत देशादि का तो भान नहीं होता। यदि कहें — ‘वही (पूर्वदृष्ट)देशादि सत् हो कर वहाँ भासित नहीं होते किन्तु उस का सम्बन्ध (जो अब यहाँ नहीं है और) भासित होता है — यही है विपरीतख्याति’ — तो 15 यहाँ भी वे प्रश्न हैं — वह सम्बन्ध सत् है और भासता है या असत् ? यदि सत् है तो सदर्थग्रहण होने के कारण विपरीतख्याति हो नहीं सकती। यदि सम्बन्ध असत् है तो असदर्थग्रहण होने के कारण असत्ख्याति हो गयी। यदि भ्रान्तदर्शनवेद्य अर्थ की अन्यदेशादिता भासने के कारण ही आप उस दर्शन को भ्रान्त कहेंगे — तो कभी भी स्वप्नदर्शन को भ्रान्त नहीं कह सकेंगे, क्योंकि उस में दृश्यमान अर्थों में अन्यदेशादित्व है ही नहीं। फिर भी स्वप्नदर्शन को भ्रान्त कहेंगे तो दर्शनमात्र को भ्रान्त 20 (विपरीतख्यातिरूप) मानने की विपदा आयेगी। यदि कहें कि — ‘सर्व दर्शनों के विषयों में नहीं किन्तु जो भ्रान्तदर्शनगृहीत अर्थ है उस में ही स्वदेशवृत्तित्व के बदले अन्यदेशवृत्तित्तरूप से जो ग्रहण होता है वह विपरीत ख्याति — ऐसी व्याख्या करेंगे’ — तो यहाँ प्रश्न हैं कि वह अन्यदेशादिवृत्तित्व उसी भ्रान्तदर्शन से ज्ञात होता है या पूर्वदर्शन से ? वह पूर्वदर्शन भी यदि वर्त्तमान भ्रान्तदर्शन के अन्यदेशादित्व का ग्राहक मानेंगे तो संगत नहीं है क्योंकि वर्त्तमान दर्शन के अन्यदेशादि पूर्वदर्शन का विषय बन 25 नहीं सकते, अतः उस का दर्शन शक्य नहीं है, फिर भी शक्य मानेंगे तो सभी दर्शनों से सभी अन्यदेशादि का ग्रहणरूप अतिप्रसंग होने से अन्यदेशादित्व का ग्राहकत्व भ्रान्तदर्शन में अनुपपन्न है। (?) वर्त्तमान भ्रान्त दर्शन से अन्यदेशादि (यानी पूर्वदेशादि) का बोध शक्य नहीं है क्योंकि उस काल में यानी पहले वर्त्तमानदर्शनग्राह्य देशादि विद्यमान ही नहीं थे।

### [ पूर्वदेशादि वर्त्तमानदेशादिता के ऐक्य का निषेध ]

30 यदि कहें कि — ‘पूर्वापरदर्शनग्राह्य वस्तु एक ही है अतः उपरोक्त दोष निरवकाश है’ — नहीं, पूर्वापरदर्शन ग्राह्य विषयों में एकत्व सिद्ध नहीं है। पूर्वदर्शन से जो गृहीत हुआ है वह वर्त्तमानदेशादि का स्पर्श न कर के पूर्व(तत्काल)देशादितारूप से ही गृहीत होता है, अतः वर्त्तमानकालीन वस्तु में

भावेन तत्सम्बन्धित्वस्य तेन तत्र प्रतिपत्तुमशक्तेः, भावे वा वर्त्तमानदेशादेः पूर्वदेशादिरूपतैव न इदानींतन-  
देशादितेति तदनुषक्तार्थावगतौ पूर्वदर्शने कथमिदानींतनस्य पूर्वादितावगतिः ? न च पूर्वदेशादिरेव वर्त्तमान-  
देशादिः प्रत्यभिज्ञानादवसितस्य परिगतार्थस्याप्येकतापत्तेः स्वप्नादिप्रत्ययस्य पूर्वप्रत्ययवदभ्रान्तताप्रसक्तेः  
एकविषयत्वात् ।

न च प्रत्यभिज्ञानात् पूर्वापरदेशादीनां तद्दर्शनकाले सत्त्वेनाऽप्रतिभासनात् तत्सम्बन्धित्वस्याऽप्य- 5  
प्रतिपत्तेरसतामपि देशादीनां तत्सम्बन्धित्वस्य वा तत्र प्रतिभासे दर्शनमस(त्)ख्यातिः स्यात् । अथ  
तद्देशा(दय)दयस्तत्सम्बन्धित्वं वा सत् तत्र प्रतिभाति तथा सति विद्यमानार्थग्राहित्वात् न भ्रान्तं भवेत् ।  
पूर्वदेशादिमद्वस्तुप्रतिभासे च य(त्)दवभास एव न वर्त्तमानरूपतावगतिरिति न विपरीतख्यातिः, अपास्त-  
वर्त्तमानावभासस्य पूर्वरूपग्राहिणः स्मृतिस्तद्वि(?)रूपस्य) विपरीत(स्या?)ख्यातित्वायोगात् । न च पूर्वकाल-

पूर्वदेशादिरूपता का भान शक्य नहीं। ऐसा कहें कि — ‘पूर्वदर्शन पूर्वदेशादि की तरह वर्त्तमानादि 10  
का भी ग्राहक होता है अतः उसी से पूर्वापरदेशादिअवगाहितया वर्त्तमानादि का ज्ञान होता है।’ —  
यह ठीक नहीं, क्योंकि पूर्वदर्शनकाल में वर्त्तमानदेशादि की सत्ता न होने से, वर्त्तमानदेशादिसम्बन्धिता  
का वहाँ उस से ग्रहण शक्य नहीं है। यदि फिर भी शक्य मानेंगे तो वर्त्तमानदेशादि में भी पूर्वादेशादिरूपता  
ही प्रसक्त होगी न कि वर्त्तमानदेशादिता, तब उस से अनुपक्त अर्थ का बोध पूर्वदर्शन से ही हो  
जाने पर पूर्वदर्शन में वर्त्तमान (काल या वस्तु) में पूर्वादि(काल)ता का भान होगा कैसे ? यदि पूर्वदेशादि 15  
और वर्त्तमानदेशादि को एक ही मानेंगे तो प्रत्यभिज्ञा से अवभासित परिगत यानी तुल्य अर्थ का  
भी ऐक्य प्रसक्त होगा। फलतः पूर्वप्रतीति की तरह स्वप्नादि प्रतीति में भी जाग्रदशागृहीत अर्थों की  
एकविषयता के कारण अभ्रान्तता की आपत्ति होगी, क्योंकि वहाँ भी ‘वही है यह’ ऐसी प्रत्यभिज्ञा  
होती है।

### [ असद् भासित होने पर असत्ख्याति की आपत्ति ]

20

प्रत्यभिज्ञान से पूर्वापरदेशादि का ऐक्य सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि एकदेशादि दर्शन काल में  
अन्यदेशादि (या) पूर्वदेशादि का सत्त्वरूप से प्रतिभास नहीं होता, न तो उन के सम्बन्धित्व का भान  
होता है। यदि एकदेशादि के दर्शन काल में अन्यदेशादि या उन का सम्बन्धित्व असत् होने पर भी  
भासित होने का मानेंगे तो वहाँ दर्शन को असत् ख्याति रूप मानना पड़ेगा। यदि कहें कि — ‘दर्शन 25  
में भासमान तद्देशादि अथवा तत्सम्बन्धित्व सत् होते हैं’ — तब तो सद्भूतार्थग्राहि होने से वह दर्शन  
भ्रान्त नहीं होगा। जब पूर्वदेशादियुक्तवस्तु का प्रतिभास होता है तो उसी वस्तु का अवभास मानना  
चाहिये, वर्त्तमानरूपता का भान नहीं मानना चाहिये, फलतः विपरीतख्याति मानने की जरूर नहीं रहेगी।  
फिर भी मानेंगे तो जहाँ स्मृतिप्रत्यय में पूर्वरूप का ही ग्रहण है, वर्त्तमान का अवभास दूरापास्त  
है, उस में भी विपरीतख्यातित्व का अनिष्ट हो जायेगा। यदि कहें कि — ‘भ्रान्तरजतस्थल में पूर्वकाल  
वर्त्तमानकालादितया भासित होने से भ्रान्तावभास के कारण उस को विपरीतख्याति मानेंगे’ — तो यह 30  
निषेधाहर्ह है क्योंकि वर्त्तमानदेश वहाँ प्रतिभासित नहीं होने से रजत में पूर्वरूपता का अभाव प्रसक्त  
होगा। कारण :- संनिकट हो कर जो रूप भासता है वही सत् हो सकता है, पूर्वदेशादित्व न तो

वर्तमानकालादितया भ्रान्तावभासनात् तत्र तद्विपरीता(?)ख्यातित्वमिदानीन्तनदेशाऽप्रतिभासमान(त्) तत्र जखादेः (?रजतादेः) पूर्वरूपताऽभावप्रसक्तेः। यतो यदेव तत्र संनिहितरूपमाभाति तदेव सदसत्तु(दस्तु) पूर्वदेशादित्वं न च भासमानं न चाभ्युपगमविषयः अन्यथा पीतादेव प्रतिभासमानस्य नीलादेः सत्त्वापत्तेः, सर्वस्य पू(?स)र्वात्मकतापत्तेः।

- 5 न च सर्व सर्वे(?सर्वस्य) सर्वात्मकतापत्ते(तिरभ्युप)गम्यते एव, प्रत्यक्षेण तथाऽप्रतिपत्तेः। न चानुमानमपि सर्वस्य सर्वात्मकतामवगमयति, प्रत्यक्ष(1)नवतारे तत्रानुमानस्यापा(?प्य)नव(तारा)त्। अनुमानं च सर्वात्मकत्वसाधकत्वे प्रवृत्तो(त्तौ) प्रतिनियतरूप(1?)ग्राह्यवा(?ध्य)क्षमशेषं विपरीतख्यातितामनुभवेत्। न वाऽभेदग्राह्यनुमानमागमो वाऽवितथो (वितथो ?)व्यक्तं तु भेदावभासिनमस्तं (?न च तद्) वितथमित्यद्वैतापत्तिः अध्यक्षा(नु)मते भेदे अनुमानागमयोरभेदग्राहिणोः वैतथ्यापत्तेः, प्रत्यक्षतोऽवगतभेदे वस्तुन्यभेदग्राहिणोस्त-
- 10 योरग्र(?न्य)थाग्रहणलक्षणस्य वैपरीत्यस्य भावात्। न चानुमाना(व?)गमबाधितत्वाद्भेदग्राह्यध्यक्षस्य चैतन्यं(?चाऽतत्त्वं), तद्बाधितत्वेन तयोरेक(?व)चैतन्यं(?चाऽतत्त्व)प्रसक्तेः। न च तत्त्वात् तस्य तद्बाधकत्व-प्रसक्तेः। न चानुमान(गम)योरभेदप्रतिपादकत्वं तयोर्भेदप्रतिपादक(त्व)योः ततः प्रतिभासाऽविशेषात्। विपरीतख्यात्यभ्युपगमे सर्वासद्विपरीतख्यातिर्भवेत्। न च यदविसंवादि तत्र विपरीतख्यातिरिति वक्तव्यम् अविसंवादित्वस्याऽसिद्धेरित्यसकृत् प्रतिपादनात्।

- 15 भासता है न स्वीकृत किया जाता है। एक वस्तु के भासने पर अन्य वस्तु को सत् मानेंगे तो भासमान एक पीत से ही नीलादि की सत्ता मान लेनी पड़ेगी, फलतः पीतादि-नीलादि में भेद न रहने से भासमान सभी वस्तु में सर्वरूपता की आपत्ति होगी।

- सभी में सर्वात्मकत्व की प्राप्ति का स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष से ऐसा अवबोध नहीं होता। तथा, अनुमान भी सभी में सर्वात्मकता का बोधक नहीं है, प्रत्यक्ष अगृहीत वस्तु के लिये अनुमान की पहुँच नहीं होती। यदि अनुमान वस्तु में सर्वात्मकता-साधन में सफल प्रवृत्ति करेगा, तो सर्वरूपता के बदले प्रतिनियतरूपग्राहि सफल प्रत्यक्ष विपरीतख्यातिरूप बन जायेगा। तथा, कोई भी अनुमान या आगम अभेदग्राहक प्रसिद्ध नहीं है। उलटे, अविपरीत (= सत्य) आगम (अनुमान) तो व्यक्तरूप से भेदावभासी है। 'अनुमान (या आगम) असत्य हो तो अद्वैतवाद प्राप्त हो जायेगा'- ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्यक्ष से अनुज्ञात भेद के रहते हुए अभेदग्राहि अनुमान और आगम
- 25 में मिथ्यात्व की आपत्ति होगी। कारण :- भेद जब प्रत्यक्षसिद्ध है तब, वस्तुमात्र में अभेदग्राहि अनुमान और आगम में अन्यथाग्रहणरूप वैपरीत्य का भाव स्पष्ट है। यदि कहें कि - '(अ?)भेदग्राहि प्रत्यक्ष अनुमान-आगम दोनों से अबाधित होने से अतत्त्व हो गया' - तो यह मिथ्या है, क्योंकि प्रत्यक्षबाधित होने से अनुमान और आगम में ही अतत्त्व प्रसक्त होगा। यदि अनुमान और आगम भी तत्त्वयुक्त(भेदग्राहि) होंगे तो प्रत्यक्षबाधक नहीं होंगे। वस्तुतः अनुमान और आगम में अभेदप्रतिपादकत्व है नहीं। यदि
- 30 वे दोनों भेदप्रतिपादक होने पर भी अभेदप्रतिपादक ही माने जाय तो नील-पीतादिग्राहि किसी भी प्रतिभास में फर्क ही नहीं रहेगा। यदि आप भेदग्राहि प्रत्यक्ष को विपरीतख्याति कहेंगे तो सर्व प्रत्यक्ष असत् हो जाने से विपरीतख्याति प्रसक्त होगी। 'नहीं, जो अविसंवादी है उस में विपरीतख्याति नहीं होगी।' -

[?? अपि च, पूर्वदृगवगतस्य रूपस्य पुनरवगमोऽविसंवादः। न च पूर्वदृगवगत(पुनरवगम)योर-  
भेदप्रतिपादकत्वम्, पूर्वदृशः प्रच्युतत्वेन तत्राऽप्रतिभासे तदवगतस्यापि रूपस्याऽप्रतिभास(मा?)नात्। न च  
पूर्वप्रतिभास्येवे(वोत्तर)दर्शनावभासिरूपमित्येकत्वात् न पूर्व प्रतिभासते स्यनमसत्वामेकत्वस्यैवाऽसिद्धेः। तथाहि—  
दर्शने प्रतिभासमानं रूपं तद्दर्शनग्राह्यमस्तु पूर्वं न ग्राह्यं तु तत् कथमवगतं ? न तावत् स(?पूर्व)दर्शनेन,  
उत्तरकालं तस्याभावात्। यदापि तदासीत् न तदा वर्तमानं दर्शनं तदभावेन तदवसेयरूपावगतिः तदवसायाऽनधिगमे 5  
तदवसेयरूपाऽनवगमात् अन्यथा सकलसन्तानदृगवसेयत्वप्रतिपत्तिप्रसक्तेः सर्वः(ः) सर्वविद् भवेत्। न च  
तद्दर्शनेन तदवसायाऽव्यतिरिक्तभाविदृगवगतरूपपरिच्छेदः न पुनः तद्व्यतिरिक्तरूपपरिच्छेदा(दो) भेदादेवेति  
वक्तव्यम्, यतो भाविदृगवगमस्य भेदतद(न)वसेयत्वादेवाध्यक्षस्याप्यप्रवृत्तिर्न पुनर्भेदात्। भिन्नेऽपि संनिहिते  
पक्षभूतेरुत्पत्तेरुपलम्भात् तच्चाभिज्ञे(त्रे)ऽपि भाविदर्शनाग्राह्यत्वमस्ति इति न तत्राध्यक्षवृत्तिः।

ऐसा नहीं कहना क्योंकि पहले अनेक बार कह चुके हैं कि अविसंवादिता ही असिद्ध है। 10

### [ अविसंवाद का निर्वचन दूषित है ]

एक और बात :- अविसंवाद से ऐक्य मानने के लिये उस का ऐसा निर्वचन कि 'पूर्वदर्शनगृहीत  
पदार्थ का पुनर्ग्रहण' — यह वास्तविक नहीं है, क्योंकि उन दोनों में अभेदनिरूपकत्व शक्य नहीं।  
पूर्वदर्शन के नष्ट हो जाने पर, पुनरवगम काल में उस का प्रतिभास न होने से, नष्ट दर्शन से  
गृहीत रूप (= विषय) का पुनः प्रतिभास भी शक्य नहीं है। ऐसा नहीं कहना कि — 'एकत्व सिद्ध 15  
होने से ही पूर्वप्रतिभासि रूप ही उत्तरदर्शनावभासि रूप है जुदा नहीं।' — क्योंकि पहले तो उन दोनों  
का एकत्व ही सिद्ध नहीं है। कैसे यह देखिये — जो रूप दर्शन में भासित हो वही दर्शनग्राह्य रूप  
होता है, जब दर्शन उत्पन्न होता है उस काल में उस में 'पूर्वता' नहीं होती तो वह उस दर्शन  
का ग्राह्य भी कैसे होगा ? तथा उत्तर काल भी किसी दर्शन (पूर्वदर्शन) से गृहीत नहीं हो सकता  
(क्योंकि किसी भी दर्शन काल में उत्तरता नहीं होती।) जब भी तथाकथित उत्तरदर्शन सत्ता में होगा 20  
उस वक्त उस में वर्तमानता होगी, उत्तरता नहीं, तो उस के ज्ञेय रूप उत्तरता का बोध कैसा होगा ?  
जब तक बोध नहीं होगा, तो उत्तरतारूप के बोध का पता भी कैसे चलेगा, उस के ज्ञेयरूप का  
पता भी कैसे चलेगा ? यदि जैसे तैसे उन सभी का बोध मान लेंगे तो सकलसन्तान के दर्शनों  
में या उन के ग्राह्यपदार्थों में एकव्यक्तिनिरूपित ज्ञेयत्व प्रसक्त होने पर सब लोग सर्वज्ञ है ऐसा मानने  
का संकट आयेगा। 25

यदि कहा जाय — एक दर्शन से, स्वअभिन्न जो भाविदर्शन का ग्राह्यरूप होगा, उस का ही  
भान होगा, न कि स्वभिन्नरूप का भान, क्योंकि वह भिन्न ही है अतः सब सर्वज्ञ नहीं होंगे। —  
तो ऐसा कहना उचित नहीं, क्योंकि 'भेद के कारण एक दर्शन की भाविदर्शनग्राह्यरूप के ग्रहण में  
प्रवृत्ति नहीं होती' ऐसा कथन गलत है, वास्तव में तो भाविदर्शनग्राह्यरूप भी पूर्व दर्शन ग्राह्यरूप  
से सर्वथा अभिन्न न होने के कारण ही प्रत्यक्ष की उस के ग्रहण में प्रवृत्ति नहीं होती। भेद होने 30  
पर भी यदि ग्राह्यरूप संनिहित होता है तो पक्षभूति (? प्रत्यक्ष) की उत्पत्ति होती दिखती है, दूसरी  
ओर अभेद होने पर भी असंनिहित होने से भाविदर्शनरूप की अग्राह्यता होने से उस में प्रत्यक्षप्रवृत्ति



न च भिन्नं भाविज्ञानावसेयसंनिहितत्वात् न तदवसेयमभिन्नं तु विपर्ययात् तदधिगम्यमिति वक्तव्यम् भाविदृगसंनिधाने तदवभास्यस्याप्यसंनिहितत्वात्। यदि च भाविज्ञानदृशं तत् परिगतं चार्थं पूर्वदर्शनमवभासयति तदाऽसदर्थग्राहित्वात् भ्रान्तं तदासज्येत। तत्र प्रथमदर्शनेन भाविज्ञाने ग्राह्यरूपपरिच्छेदः तत्परिहारेण पूर्वकालताप्रतिभासोदयात् तत् प्रतिगतमेव रूपं तद्विषयोऽभ्युपगन्तव्यः। नापि वर्तमानं दर्शनं दृश्य मानस्य 5 पूर्वदृगवभासिरूपमावेदयति तस्यापि स्वकालभाव(?) विरूपावभासकत्वेनोदयात् पूर्वदृशोऽप्रतिभासे तदवगतस्यापि रूपस्य तेनाऽग्रहणात् <sup>A</sup>पूर्वदृशोऽनवगमेऽपि (त)दवगतरूपपरिच्छेदाभ्युपगमात् पूर्वपूर्वज्ञानावभासिरूप-परिच्छेदापत्तिरित्युक्तत्वात्। अपि च, <sup>A</sup>पूर्वज्ञानावभासि रूपं वर्तमानावभासितया वा गृह्यते, <sup>B</sup>वर्तमानदर्शनावगम्यं वा पूर्वज्ञानावभासितया ? <sup>C</sup>द्वयं वा परस्परसंसक्तमिति विकल्पाः।

<sup>A</sup>आद्ये विकल्पे वर्तमानदृगवभासिरूपाधिगतिरेव न पूर्वज्ञानावगतरूपाधिगमः। <sup>B</sup>द्वितीयेऽपि प्राक्तन- 10 ज्ञानावगतरूपाधिगतिरेव पूर्वदृगवगतं च रूपमसदिति तद्ग्राहि वर्तमानं ज्ञानं भ्रान्तं भवेत्। पूर्वावभासप्रच्युते(ः) तद्ग्राह्यताया अपि प्रच्युतेः। न हि तस्मिन् विनष्टे तत्प्रतिभासमानं रूपं संभवति प्रतिभासनप्रसङ्गात्। <sup>C</sup>नापि तृतीयः पक्षः तत्र हीदानीन्तनदृगवभासि पूर्वावभासाधिगम्यं च परस्परं संसक्तं रूपद्वयमाभातीति नैकतावगमः, इति न पूर्वदर्शनावगतेन रूपेण दृश्यमानरूपावगमो युक्तः। न च रूपान्तरेण दृश्यमानावगमो युक्तः, रूपान्तरावगमात् पूर्वज्ञानावभासिरूपानवगमात्। यतः अन्यरूपपरिच्छेदे नान्यत् परिच्छिन्नं भवति।

15 नहीं होती।

### [ पूर्वदर्शन-उत्तरदर्शन विषयों का ऐक्य असम्भव ]

यदि कहा जाय — ‘भाविज्ञानज्ञेय से संनिहित होने के कारण भिन्न वस्तु दर्शनविषय नहीं होती किन्तु अभिन्न दर्शनग्राह्य विषय तो दर्शनविषय होने के कारण उस का ग्राह्य हो सकता है।’ — यह बोलने लायक नहीं, क्योंकि भाविदर्शन संनिहित न होने पर उस से प्रतिपाद्य विषय भी संनिहित 20 नहीं हो सकता। यदि पूर्वदर्शन भाविज्ञानदृग् तथा उस से परिगत (ग्राह्य) अर्थ का द्योतन करने लगेगा तो पूर्वदर्शन काल में भाविदर्शन और उस का ग्राह्य असत् होने से, असदर्थग्राहि बन जाने के कारण वह भ्रान्त प्रसक्त होगा। सारांश, प्रथमदर्शन के द्वारा भाविज्ञान के ग्राह्यरूप का भान शक्य नहीं। अतः उस से दूर रह कर पूर्वकालता के प्रतिभास का उदय होने से उस प्रतिभास से व्याप्त रूप ही उस का विषय मानना चाहिये।

25 तथा, वर्तमान दर्शन दृश्यमान वस्तु को पूर्वदर्शनभासितरूपयुक्त नहीं दिखाता है, क्योंकि वह भी स्वकालविद्यमानरूप का प्रतिभासक के स्वरूप से ही उदित होता है। पूर्वदर्शन के प्रतिभासाभाव में उस से गृहीत रूप का भी वर्तमान दर्शन से ग्रहण नहीं हो सकता। यदि पूर्वदर्शन का ग्रहण न हो कर सिर्फ उसके ग्राह्यरूप का ही भान वर्तमानदर्शन में स्वीकार करेंगे तब तो पूर्वपूर्वदर्शनगृहीत सकल रूपों का वर्तमान दर्शन में भान हो जाने का अनिष्ट आयेगा — पहले कह दिया है।

30 वहाँ ये दो प्रश्न भी खड़े होंगे — वर्तमानदर्शन में पूर्वज्ञानगृहीत रूप यदि भासेगा तो किस प्रकार से ? <sup>A</sup>वर्तमानअवभासिरूप से, या <sup>B</sup>वर्तमानदर्शनगृहीत रूप पूर्वदर्शनावभासिरूप से भासता है ? <sup>C</sup>अथवा दोनों ही परस्परसंसक्त अपने और अन्य के यानी दोनों रूप से ?

न च वर्तमानदर्शनात् पूर्वदर्शनग्राह्यरूपपरिच्छेदः अभेदादेवेति वक्तव्यम् यतोऽभेदसिद्धौ पूर्वदृगवगतस्वरूप-  
स्यावगत(?म)सिद्धिः तत्सिद्धौ चाभेदसिद्धिरितीतरेतराश्रयदोषप्रसक्तिः। तस्मान्न गृहीतस्य पुनर्ग्रहणसम्भव  
इति न संवादः। तदभावे च भ्रान्ताभ्रान्तज्ञानयोर्विशेषाभावात् विपरीतख्यातिसंभवः ??]

नाप्यलौकिकत्वं भ्रान्तज्ञानावभासिनोऽर्थस्यात् एव न्यायात्। तथाहि— न तावल्लौ(?दलौ)किकत्वा(1?)प्रति-  
पत्तिः, यतो—म(?ऽ)भावस्य निःस्वभावतया केनचिदाकारेण परिच्छेत्तुमशक्यत्वात्, परिच्छेदे वा (व)स्तुत्वापत्तेः 5  
पुनरप्यलौकिकत्वाशंकाऽनिवृत्तेरनवस्थाप्रसक्तिः। न च लौकिकत्वादन्यच्च(?न्य)त्वमलौकिकत्वम्, यतो यदि  
तत् तदैव गृह्यते तदा भ्रान्तदृशोऽप्रवृत्तिर्भवेत्। न ह्यर्थक्रियार्थिनोऽलौकिकत्वपरिच्छेदप्रवृत्तियुक्तिमती

### [ पूर्वरूप-उत्तररूप ऐक्य के तीन पक्षों का निरसन ]

प्रथम विकल्प :- पूर्वरूप यदि वर्तमानावभासिरूप से गृहीत होगा तो वही वास्तव होगा न कि  
पूर्वज्ञानगृहीतरूपविषयक भान। Bदूसरा विकल्प :- पूर्वज्ञानगृहीतरूप का भान ही वास्तव है, किन्तु 10  
वर्तमानदर्शन अब असत्ख्याति हो जायेगा, क्योंकि वर्तमान दर्शन के वक्त पूर्वरूप असत् है, अतः उस  
का ग्राहक ज्ञान भ्रान्त हो गया। जब पूर्वावभास च्युत हो गया तो पूर्वदर्शन के नष्ट होने पर उस में  
प्रतिभासित रूप भी जिन्दा नहीं रह सकता, अगर वह जिन्दा रहेगा तो उस के अवभास की आपत्ति होगी।  
Cतीसरा पक्ष :- भी गलत है क्योंकि उस पक्ष में वर्तमानदर्शनावभासि रूप और पूर्वदर्शनावभासि रूप दोनों  
परस्पर मिले-जुले होने से एक के बदले दो रूप भासित होगा, तब ऐक्य का भान कैसे कहा जायेगा ? 15  
सार :- पूर्वदर्शनावभासि रूप का वर्तमानदर्शनावभासि रूप के साथ ऐक्य का भान शक्य नहीं।

पूर्वदर्शन में दृश्यमान रूप का ही अन्य प्रकार से (अथवा वर्तमानदर्शन में पूर्वरूप का ही अन्य  
प्रकार से) अवबोध मान लेना अयुक्त है, क्योंकि तब अन्य प्रकार का ही अवबोध सत्ता में रहेगा,  
पूर्वज्ञानावभासिरूप का अवबोध नहीं रह पायेगा। कारण :- एक क्षण में एक रूप का जब भान रहेगा 20  
तब अन्य किसी भी प्रकार या रूप का बोध नहीं रह सकता। ऐसा उच्चार — ‘अभेद के कारण  
ही वर्तमान दर्शन से पूर्वदर्शनग्राह्य रूप का भान पूर्णतः सम्भव है’ — नहीं करना, क्योंकि अभेद  
सिद्ध होने पर पूर्वदर्शनगृहीतरूप का वर्तमानदर्शन में अवबोध सिद्ध होगा और इस के सिद्ध होने  
पर अभेद सिद्ध होगा — इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष प्रसक्त होगा। फलतः, एक बार पूर्वगृहीत वस्तु  
का पुनः पुनः ग्रहण जब संभव नहीं है तब संवाद की बात ही कहाँ ? इस स्थिति में भ्रान्त-अभ्रान्त  
ज्ञानों में कुछ भी भेद न होने से विपरीतख्याति का भी संभव नहीं है। 25

### [ भ्रान्तज्ञानविषय अलौकिक नहीं होता ]

यदि कहें कि — ‘भ्रान्तज्ञानगृहीत अर्थ वस्तुतः असत् नहीं किन्तु अलौकिक होता है, ज्ञान भ्रान्त  
नहीं होता’ — तो यह निषेधार्ह है। उपरोक्त युक्तियाँ ही इस के विरुद्ध हैं। देखिये — अलौकिकत्व  
का भान संभव नहीं है। कारण :- अलौकिक कहा जाने वाला भाव वस्तुतः स्वभावविहीन ही होता  
है अतः किसी भी आकार-प्रकार से उस का बोध अशक्य है। यदि शक्य हो तब तो वह ‘वस्तु’ 30  
ही है, अलौकिक नहीं क्योंकि उस का संवेदन होता है। अब यदि उस को अलौकिक वस्तु कहेंगे  
तो पुनः पुनः उस के अलौकिकत्व के बारे में शंकाएँ ऊठती रहेगी, पुनः उत्तर, पुनः शंका... अनवस्था  
प्रसक्त होगी। कारण :- अलौकिकत्व का शब्दार्थ है लौकिक से जुदा। यदि वह अर्थ जब गृहीत होता

न्याय्य(?नाय्य)न्यादाऽलौकिकत्वप्रतिपत्तिः, यतः 'नेदं रजतम्' इति कालान्तरेऽभावप्रतीतिस्तव जायते नाऽलौकिकत्वावगतिः। तदेवं प्रतिभासाऽविशेषात् प्रतिभासमानं केशोन्दुकादिवत् सर्वं निःस्वभावम्।

तथाहि— नावभासमानो नीलादिरवयवी, देशादिभिन्नस्थूलस्य तस्यैकत्वानुपपत्तेः। न ह्यनेकदेशसम्बन्ध-  
विरुद्धधर्माध्यासवत् एकत्वं युक्तम् तथाप्येकत्वे घट-पट(व?यो)रपि न भेदो भवेत् विरुद्धधर्माध्यासादन्य-  
5 स्याऽभेदकत्वात्। न च देशादिभेदेऽप्येकत्वप्रतिभासादेकता, देशादिभेदेन व्यवस्थितानामवयवानां प्रतिभासभेदादेव  
भेदात्। न ह्यव(ि?)म-मध्यो(र्द्ध्वा)दिभागा ए(क)रूपतया प्रतिभा(न्)ति, पिण्डस्याणुमात्रतापत्तेः। न च  
तद्व्यतिरिक्तो ग्राह्याकारतां बहिर्बिभ्राणोऽवयवी प्रतिभाति। न च समानदेशतयाऽवयवेभ्यः पृथक्त्वस्याऽप्रतिभासो  
यतः समानदेशा अपि वातातपादयो भावाः पृथगवभासमाना लक्ष्यन्ते। न चैवमवयवनिर्भास इति नासौ  
तद्व्यवहारविषयः। न च 'एको घटः' इति प्रतीतेरवयवो(?वी) अवयवव्यतिरिक्तम(?सम)स्ति।

10 है उसी वक्त यह अलौकिकत्व भी गृहीत होता है — तब तो भ्रान्तदृष्टि स्वयं समझ जायेगा कि  
यह तो मेरे काम का नहीं (क्योंकि लौकिक नहीं है) अतः भ्रान्तदृष्टा की मरीचिजल में होने वाली  
प्रवृत्ति अनुपपन्न हो जायेगी। कारण :- जो तृष्णाशमनरूप अर्थक्रिया का अर्थी है उस की अलौकिकत्व  
ज्ञान से मरीचिजल में प्रवृत्ति का होना युक्तिसंगत नहीं है। यदि उसी वक्त नहीं किन्तु अन्य काल  
में अलौकिकत्व का पता चलेगा ऐसा कहा जाय तो वह भी स्वीकारार्ह नहीं। कारण :- आपने तो  
15 कालान्तर में अलौकिकत्व का नहीं किन्तु 'यह रजत नहीं है' इस ढंग के अभाव — की प्रतीति का  
स्वीकार किया है। इस प्रकार, तथाकथित भ्रान्त ज्ञान (जिस की किसी तरह न्यायतः उपपत्ति शक्य  
नहीं) एवं अभ्रान्त ज्ञान में कोई खास फर्क न होने से, केशोण्डुक की तरह ज्ञायमान वस्तुमात्र स्वभावविहीन  
है यह सिद्ध होता है।

### [ अवयवी की सत्ता की सिद्धि अशक्य ]

20 सर्व शून्यवादी के विरोध में अवयवी की सत्ता प्रदर्शित की जाय तो वह भी परीक्षासह नहीं  
है। देखिये — भासमान नीलादि कोई स्थूल अवयवी नहीं है। उस में अवयवादि देशभेद-कालभेदादि  
के कारण एकत्व घटेगा नहीं। एक में अनेकदेशसम्बन्धरूप धर्म विरुद्ध है। विरुद्धधर्माध्यासप्रस्त हो  
उस में एकत्व नहीं हो सकता। फिर भी मानेंगे तो देशादिभेद से घट-पटादि का भेद भी लुप्त हो  
जायेगा, विरुद्धधर्माध्यास के अलावा और कोई वस्तु का भेदक नहीं होता। यदि देशादिभेद के रहने  
25 पर भी एकत्व-प्रतिभास से अवयवी-एकत्व स्वीकारेंगे तो यह शक्य नहीं, क्योंकि फिर तो देशादिभेद  
से अवस्थित अवयवों में भी प्रदेशभेद के बदले प्रतिभासभेद (चाहे वह सत्य हो या मिथ्या,) से  
ही भेद स्वीकारना पड़ेगा। आप जानते हैं कि अधोभाग-मध्यभाग-ऊर्ध्वभाग ये एकरूप से भासित नहीं  
होते, अगर इन की एकता मानेंगे तो सभी पिण्डों में परमाणुपर्यन्त अवयवों की एकता प्रसक्त होगी,  
मतलब एकमात्र परमाणु अवयव ही शेष रहेगा। वास्तव में, अवयव से पृथक् ग्राह्याकार धारण करता  
30 हुआ बाह्य अवयवी कोई दिखता नहीं। यदि कहें कि — 'अवयवी पृथक् है, किन्तु अवयव-अवयवी  
की प्रदेश-समानता के कारण अवयवी की अवयवों से पृथक्ता लक्ष में नहीं आती।' — ठीक नहीं  
है, क्योंकि वायु-सूर्यकिरणादि भावों में प्रदेशसमानता के रहने पर भी वे भाव पृथक् पृथक् ज्ञायमान

यतो घटावसायेऽपि तदवयवानाममुल्लेखश्चावसीयते नापरोऽवयवी ▼वर्णाकृत्यक्षराकारशून्यस्य तस्य केनचिदप्य(न)नुभवाद् न कल्पनाऽवसेयोऽप्यवयवी सत्तामासादयति।

अनादिवासनासमुत्थं व्यवहारमात्रकमेवेदं मिथ्यार्थं ज्ञानम्। न च व्यवहारमात्रादेव बहिरेकं वस्तु सिद्धयति 'नीलादीनां स्वभावः' इत्यत्रापि व्यवहारैकत्वात् स्वभावस्यैकताप्राप्तेः। अथ तत्र प्रतिभासभेदादेकत्वं बाध्यते तर्हि अत्रापि मध्योर्ध्वादिनिर्भासभेदात् घटादेरेकत्वं बाध्यत एवेति न बाह्योर्थोस्त्यवयविरूपः। नापि 5 परमाणुस्वभावः मध्योर्ध्वादिविभागप्रतिभासेऽप्यणूनामप्रतिभासमानात्। स्थूलरूपो हि नीलाद्यवभासः संवेद्यते, न च परमाणुषु प्रत्येकं स्थूलरूपसम्भवः, तथात्वे परमाणुत्वाऽयोगात्। नापि तेषु समुदितेषु स्थूलरूपसंगतिः, तथावस्थाभाविनामप्यणूनां स्वरूपतः सूक्ष्मत्वात्। न च तद्व्यतिरिक्तः समुदायः, तथात्वे द्रव्यवादप्रसङ्गात्

होते दिखते ही हैं। इसी प्रकार अवयवी से पृथक् अवयवों का (प्रदेश समानता होने पर भी) निर्भास नहीं होता अतः 'अवयवी' नाम से कोई व्यवहारमात्र विषय नहीं है। 10

यदि कहें — 'घट एक है' इस प्रतीति से अवयवों से पृथक् अवयवी की सत्ता है' — तो गलत है, क्योंकि घट की ज्ञायमान दशा में भी उस के अवयवों (अग्र-पश्चादादि भाग) का ही दर्शन एवं उल्लेख लक्ष में आता है, अवयवों से पृथक् कोई अवयवी नहीं, क्योंकि वर्ण-आकृति-अक्षर-आकार (देखिये भा०२ पृ० १६९/१४) से शून्य अवयवी का अनुभव किसी को नहीं होता। मतलब, विकल्पग्राह्य होने पर भी अवयवी स्वतन्त्र सत्तालाभ वंचित है। 15

### [ व्यवहार के बल पर बहिरर्थसिद्धि अशक्य ]

प्रश्न :- अर्थ मिथ्या है तो उस का ज्ञान कैसे ?

उत्तर :- वह तो सिर्फ एक व्यवहारमात्र है जो अनादिकालीन वासना से जन्म लेता है। व्यवहार मात्र से वास्तव में कोई बाह्य वस्तुसिद्धि नहीं होती। अन्यथा जब ऐसा व्यवहार होता है कि 'नीलादि का स्वभाव एक ही है' तब इस एकत्वसूचक व्यवहार से नीलादि स्वभाव के भेद का उच्छेद, एकत्व 20 की आपत्ति होगी। यदि वहाँ प्रतिभासभेद होने से एकत्व का बाध मानेंगे तो यहाँ मध्य-ऊर्ध्वादि भागों के प्रतिभासभेद से घटादि का एकत्व बाधग्रस्त ही है, अतः सिद्ध होता है की अवयवीरूप कोई बाह्यार्थ नहीं है।

तो क्या परमाणुस्वभाव भी असिद्ध है ? हाँ, घटादि के मध्य-ऊर्ध्वादि खण्डों का जैसे प्रतिभास होता है वैसे परमाणुओं का प्रतिभास कभी नहीं होता। नीलादिप्रतिभास स्थूलरूप से ही संविदित 25 होता है, एक एक परमाणु में स्थूल रूप का अवभास नहीं होता, यदि होगा तो उसे परमाणु कौन कहेगा ? समुच्चयरूप परमाणु (परमाणुपुञ्ज) में भी स्थूलता संगत नहीं होती, क्योंकि हजारो परमाणु इकट्ठे होने पर भी स्वरूपतः जो उन में सूक्ष्मता है वह दूर नहीं हो जाती। परमाणुओं से पृथक् तो कोई समुच्चय होता नहीं है। मानेंगे तो विज्ञानवादी आदि को 'द्रव्य'सत्ता मान लेना पड़ेगा। वहाँ भी कैसे दोष लगते हैं यह पहले कहा जा चुका है। सारांश, परमाणुओं में (प्रत्येक या समुदाय) 30

▼. वर्णाकृत्यक्षराकारशून्यं गोत्वं हि वर्ण्यते १४७।। वर्णो = नीलादिः, आकृतिः = संस्थानं, अक्षरं = गवादिशब्दः, तेषामाकारो यथाप्रतीतः तेन शून्यं गोत्वं हि सामान्यवादिभिर्वर्ण्यते। (प्र० वा० १४७ द्वि० परिच्छेद-पृष्ठ १४५)

तस्य चोक्तदोषत्वात्। ततो न परमाणुषु कथञ्चित् स्थूलरूपतासम्भवः। न चान्यादृगवभासोऽन्यादृशस्यार्थस्य ग्राहकः नीलदृशोऽपि पीतग्राहकतापत्तेः नियतव्यवस्थाविलोपश्चैवं प्रसज्यते।

- अपि च, नानादिक्सम्बन्धात् परमाणोरप्येकता असंगतैव। आह चाचार्यः — षट्केन युगपद्युगोगात् परमाणोः षडंशता। [ ] इति। तदंशानामपि नानादिक्सम्बन्धात् पुनः सांशतापत्तेरनवस्थाप्रसक्तिः इति न परमाणुसद्भावः। न चार्थाभावे नियतदेश-कालाकारः प्रतिभासो न भवेत्; वासनाबलेन तथाभूतप्रतिभासस्य स्वप्नदशायामुपलब्धेः जाग्रदशायामपि तद्बलेनैव तदुदयसद्भावात् अर्थस्तु स्वरूपेण न क्वचित् सिद्धः। नापि प्रतिभासनियामकत्वेनेति नार्थवादो युक्तिसंगतः। न च वासनाबलान्नियताकारं ज्ञानमेव सदस्तु न शून्यतेति वक्तव्यम् यतो नीलादिरूपं ज्ञानमप्येकानेकरूपमयुक्तम्। तथाहि— तस्यापि दिग्भेदान्नैकता अर्थवत् युक्ता प्रतिभासभेदाच्च। नापि नीलादिज्ञानं परमाणुरूपम् ज्ञानपरमाणूनामपि दिक्षट्कयोगात् सांशता-पत्तेरनेकप्रतिपत्तेरयोगाच्चोक्तप्रायम्। न च बहिरवभासमानो नीलादिर्वितथः बोधस्तु परिशुद्धोऽवितथ इति

किसी भी तरह स्थूलता का सम्भव नहीं है। कभी एक प्रकार का दर्शनावभास अन्य प्रकार के अर्थ का ग्राहक नहीं हो सकता, अन्यथा नीलग्राहि दर्शन में पीतग्राहकता की आपत्ति होगी, परिणामतः प्रतिनियत (यह पीतग्राहि है यह नीलग्राहि ऐसी) व्यवस्था भंगापन्न हो जायेगी।

### [ परमाणु में षड्दिवसंयोग से सांशता आपत्ति ]

- और एक बातः — विविध दिशासम्बन्ध के कारण परमाणु में भी एकत्व संगत नहीं है। आचार्य ने कहा है — ‘एक साथ छः दिशा के संयोग से परमाणु में छ अंशभाव (प्रसक्त है)।’ तथा उन छ अंशों में भी छ दिशासम्बन्ध से पुनः पुनः सांशत्व प्रसक्त होने से आखिर अनवस्था दोष होगा। अतः परमाणुसत्ता असिद्ध है।

- प्रश्न :- अर्थ के बिना नियतदेश नियतकालीनता नियताकार प्रतिभास कैसे होगा ? उत्तर :- स्वप्नदशा में अर्थ के बिना भी वासना के प्रभाव से नियताकार प्रतिभास दिखता है, तो वासना के ही प्रभाव से नियताकार प्रतिभास का जागृति दशा में भी उदय हो सकता है, कहीं भी स्वरूप से अर्थ की सिद्धि नहीं होती।

प्रश्न :- अर्थ नहीं होगा तो प्रतिभास का नियम कैसे सिद्ध होगा ?

- उत्तर :- वह भी वासनाबल से संभवित है, अतः अर्थवाद युक्तिसंगत नहीं है। यदि कहें कि — ‘आखिर वासनाबल से नियताकार ज्ञान की तो सत्ता माननी होगी, तो शून्यता कैसे सिद्ध होगी?’ — ऐसा नहीं है, क्योंकि अवयवी जैसे सिद्ध नहीं होता वैसे एकानेक विकल्पों के प्रहारभय से नीलादिस्वरूप ज्ञान भी युक्तिसिद्ध नहीं होता। देखिये— ज्ञान में भी अर्थ की तरह दिशाभेद के कारण षडंशता प्रसक्त होने से तथा प्रतिभासभेद के कारण एकत्व सिद्ध नहीं हो सकता। नीलादि ज्ञानपरमाणु की मान्यता भी जूठी है क्योंकि ज्ञानपरमाणुओं में भी दिशाभेद से सांशता आपत्ति खड़ी है, तथा अनेकरूपता भी भासित नहीं हो सकती यह करीब पहले कह दिया था।

### [ अर्थ की तरह बोध भी असत् है ]

ऐसा मत कहना कि — ‘बाह्य प्रतिभासमान अर्थ भले मिथ्या हो, परिशुद्ध भासमान बोध तो

वक्तव्यम्, तस्यानुपलब्धेरेवाभावनिश्चयात्। न च वासनाप्रतिबद्धत्वमनुभवस्य निश्चेतुं शक्यम् प्रत्यक्षस्य पौवापर्येऽप्रवृत्तेर्नान्वयव्यतिरेकेनिश्चायकत्वम् तदनिश्चये च न हेतु-फलभावावगतिरध्यक्षात्। नाप्यनुमानम् प्रत्यक्षाभावे तस्याप्यप्रवृत्तेर्न हेतुफलभावः क्वचिदपि सिद्धिमासादयति।

किञ्च, यदि वासनाप्रबोधप्रभवं नील-सुखादिव्यतिरिक्तं प्रतिपुरुषनियतं संवेदनमनुभूयेत तदा विज्ञानवादो युक्तिसंगतः स्यात्, न च तत्कदाचनाप्युपलब्धिगोचरः। नील-सुखादेस्त्वेकानेकस्वभावाऽयोगात् वासनाजन्यस्यापि 5 परमार्थतोऽसम्भवात् सर्वधर्मशून्यतैव वस्तुबलायात्। नीलाद्यवभासस्य वासनाप्रतिबद्धत्वं संवृत्या शून्यत्वमुच्यते न सर्वसंवेदनाभावः तस्य कदाचिदप्यननुभवात्। न च प्रतिभासे सति कथं शून्यत्वमिति वक्तव्यम् तस्यैकानेकस्वभावाऽयोगतः शून्यतेतिप्रतिपादनात्। उक्तं चाचार्येण (प्र०वा०२-३६०) —

▼‘भावा येन निरूप्यन्ते तद्रूपं नास्ति तत्त्वतः। यस्मादेकमनेकं वा रूपं तेषां न विद्यते।।’ इति।

भगवद्भिरप्युक्तम्— ‘मायोपमाः सर्वे धर्माः’ [ ] इति।

10

तदखिलमेतत् यत् प्रतिभाति तद् द्विचन्द्रादिवत् सकलमसत्यम्।

सत्य है’ — क्योंकि तथाकथित बोध की उपलब्धि न होने से उस का अभाव ही निश्चित होता है। उपरांत, बोध यानी अनुभव में वासना की मिलावट भी (यानी अशुद्धि भी) प्रत्यक्ष या अनुमान से निश्चित करना अशक्य है। पूर्व में वासना, उत्तर में ज्ञान — यहाँ इन का पूर्वापरभाव प्रत्यक्ष से गृहीत न होने से ज्ञान के साथ वासना का अन्वय-व्यतिरेक गृहीत हो नहीं सकता। उस का निश्चय 15 (ग्रहण) न होने पर वासना-ज्ञान के कारण-कार्यभाव का भी प्रत्यक्ष से भान नहीं हो सकता। तथा, अनुमान तो प्रत्यक्ष के बिना प्रवर्तन के लिये पंगु है, अतः किसी भी तरह वासना-ज्ञान का कारण-कार्यभाव सिद्ध नहीं होता।

### [ सर्व धर्म मायाजाल है ]

उपरांत, विज्ञानवाद को तब युक्ति संगत मान लेते यदि वासनाप्रबोधप्रेरित तत्तत् पुरुष के साथ 20 नियत नील-सुखादि से पृथक् (स्वतन्त्र) कोई संवेदन अनुभवसिद्ध होता, अरे ! वह तो कभी भी उपलब्धिगोचर होता नहीं। बाह्य नील-सुखादि में अथवा नील-सुखादिप्रतिभास में एकता-अनेकता के स्वभावविकल्पों में एक भी घट नहीं सकता, वासनाजन्य माने फिर भी परमार्थ से उस की संभावना शक्य नहीं, अतः वास्तविक प्रमाणबल से तो सर्व धर्मों की शून्यता ही फलित होती है। इस शून्यता का मतलब सर्वसंवेदनाभाव नहीं है किन्तु वासनागर्भित नीलादिअवभास काल्पनिक होने से शून्यता 25 कही गयी है। सर्वसंवेदना का अभावरूप इस लिए नहीं कि उस का कभी अनुभव नहीं होता। ऐसा मत कहना कि ‘प्रतिभास होता है तो शून्यता कैसे ?’ — प्रतिभास में एकस्वभाव/अनेक स्वभाव की संगति नहीं होती इस लिये शून्यता का निरूपण किया जाता है। धर्मकीर्ति आचार्य ने (प्र०वा० ३६०) कहा है — ‘जिस रूप से भावों का प्रतिभास होता है वह तात्त्विक नहीं, क्योंकि उन का एक या

▼. प्रमाणवार्तिक-मनोरथनन्दिटीकायाम् — तस्माद् भावा ग्राह्यादयो येन रूपेण ग्राह्यत्वादिना निरूप्यन्ते = अनुभूयन्ते तद्रूपं तत्त्वतस्तेषां नास्ति। यस्मादेकं रूपमनेकञ्च रूपं तेषां न विद्यते। वस्तु भवदेकमनेकं वा स्यात्। न च ग्राह्याद्यभाव एकोऽनेको वा युक्तः। तस्मादुपप्लव एवायम्।।

न चात्रैतत् प्रेरणीयम् — दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकभेदाभावे द्विचन्द्रादिनिदर्शनेन नीलाद्यवभासस्याऽसत्यता न साध्यितुं शक्या। न ह्यसतो निदर्शनसंगतिः। भेदे वा नाऽसत्यता भवेद् भावानाम्। पक्षदृष्टान्तयोर्हि भेदः सत्यत्वे सति भवति, असतः शश-विषाणादेरिव भेदानुपपत्तेः। तथा, साधनस्यास्तित्वे न शून्यता, नास्तित्वे न साध्यप्रतिपत्तिः। एवं वादि-प्रतिवादिप्राश्निकानामभावे न वादः सम्भवी। तत्सद्भावे च न शून्यता। आह च भट्टः — (श्लो० वा० निरा० श्लो० १२८-१२९)

‘सर्वदा सदुपायानां वादमार्गः प्रवर्तते।। अधिकारोऽनुपायत्वात् न वादे शून्यवादिनः।। इति’

— यतो यदि पारमार्थिकदृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकादिभेदाद् वादमार्गप्रवृत्तिः, परस्याप्यसौ कथं भवेत् ? न हि परमार्थतो भावभेदः प्रत्यक्षतोऽधिगन्तुं शक्यस्तदभावात्, नानुमानादपीति प्रतिपादितम्। न च परस्याभ्युपगमात् साधनादिभेदसिद्धेः तत्प्रवृत्तिः, अप्रमाणकाभ्युपगममात्रादर्थसिद्धेः कल्पितात् साधनादिप्रविभागाद्

10 अनेक रूप विद्यमान नहीं।’ भगवन्त ने भी कहा है — सभी धर्म मायाजाल है।’ अतः जो कुछ सब यह भासित होता है वह चन्द्रयुगल की भाँति सब मिथ्या है।

### [ साधनादि उपायविहीन शून्यवादी का वाद में अनधिकार — पूर्वपक्ष ]

यहाँ ऐसा प्रतिवाद नहीं उठाना :- भेद को जब आप (शून्यतावादी) असत् कहते हैं, तब तो दृष्टान्त - दृष्टान्तसाध्य दोनों का भेद न होने से, चन्द्रयुगल के दृष्टान्त से नीलादिप्रतिभास की असत्यता 15 की सिद्धि अशक्य है। असत् को दृष्टान्त नहीं किया जाता। यदि भेद सिद्ध मानें तो भावों की असत्यता प्रसिद्ध नहीं हो सकती। सत्यता होने पर ही पक्ष और दृष्टान्त का भेद संगत हो सकता है। शशशुंगादि की तरह वे यदि असत् हैं तो उन में भेदसंगति नहीं हो सकती। तदुपरांत, शून्यता की सिद्धि जिस साधन से की जाती है वह यदि सत् है तो शून्यता कैसे ? यदि असत् है तब उस से शून्यता-साध्य की सिद्धि नहीं होगी। एवमेव वादी-प्रतिवादी-सभासद् आदि कुछ नहीं है तो 20 शून्यतासाधक वाद भी सम्भवित नहीं। यदि वादी... सब सत् हैं तो शून्यता कैसे ? श्लोकवार्तिक (निरा० श्लो० १२८-१२९ उक्त०) में कुमारिलभट्ट कहते हैं —

‘सद्भूत उपाय (हेतु आदि) के होने पर वादमार्ग प्रवृत्त होता है, शून्यवादी के पास कोई (सद्भूत) उपाय न होने से उन का वाद में अधिकार ही नहीं है।’

### [ साधनादिउपायवाले अर्थवादी का अनधिकार — उत्तरपक्ष ]

25 अर्थवादी के उपरोक्त प्रतिवाद का निषेध करते हुए शून्यवादी अर्थवादी को पूछता है कि (अब तक आप का अर्थवाद भेदादि सिद्ध नहीं हुआ — इस स्थिति में) वास्तव दृष्टान्त एवं पक्ष के भेद का अवलम्ब लेकर आप की भी वादमार्ग में प्रवृत्ति कैसे सुसंगत हो सकती है ? पहले जो हमने कहा है — परमार्थ से तो, कोई भावभेद प्रत्यक्ष से सिद्ध करना शक्य है, क्योंकि तथाविध प्रत्यक्ष की सत्ता नहीं है, न अनुमान से सिद्ध है। (जब भावभेद असिद्ध है तो साधनादि भी असिद्ध होने 30 से अर्थवादी कैसे वाद करेगा ?) यदि कहें कि — ‘शून्यवादी अनेक बार साधनादि का प्रयोग करते हैं, अन्य लोग (विज्ञानवादी आदि) भी करते हैं, अतः करिबन अन्य सब लोगों को उस में सम्मति होने से साधनादिभेद सिद्ध हो जाता है, अतः वादप्रवृत्ति निर्बाध शक्य है।’ — तो यह गलत है,

बाह्यार्थव्यवस्थार्थवादिनो युक्तिमती, शून्यवादिनोऽपि तत्प्रसिद्धेनैव तेन शून्यताव्यवस्थाया न्यायप्राप्तत्वात्। तथाहि— तस्यापि साधनादिभेदव्यवहारो लोकप्रसिद्धः प्रागासीत्, तेन यदि शून्यता व्यवस्थाप्यते न तेन कश्चिद् दोषः 'गतोदके कः खलु सेतुबन्धः' [ ] इति न्यायात्। उक्तं चाचार्येण 'सर्व एवायमनुमानानुमेयव्यवहारः सांवृतः'। [ ] इत्यादि। ततः सांवृता अनुमानगम्या शून्यता।

यद्वा नीलादीनां प्रतिभासमानानां यत् कल्पितमेकत्वादिरूपं तस्याऽप्रतिभासादेव निषेधः। न हि 5  
व्यवहारबलादप्रतिभासमानमेकत्वादिकं रूपं कल्पयितुं युक्तम् प्रतिभासव्यतिरेकेण व्यवहारस्याप्ययोगात्। ततो बाह्यमाध्यत्मिकं वा रूपं न तत्त्वम् किन्तु सांवृतमेव। सांवृतिश्च त्रिधा सुगतसुतप्रसिद्धा — (१) लोकसंवृति-  
मरीचिकादिषु जलभ्रान्तिरेका, (२) तत्त्वसंवृतिः सत्यनीलादिप्रतीतिद्वितीया, (३) अभिसमयसंवृतियोगिप्रति-  
पत्तिस्तृतीया, योगिप्रतीतेरपि ग्राह्य-ग्राहकाकारतायाः प्रवृत्तेः। उक्तं च भगवद्भिः — 'कतमत् संवृतसत्त्वं

अन्यलोगों के अप्रामाणिकमत मात्र के आधार से कोई अर्थसिद्धि शक्य नहीं। यदि अर्थवादी को कल्पित 10  
साधनादि भेद से बाह्यार्थव्यवस्था करना इष्ट है तो हम उसे न्यायोचित मानते हैं और तब हमारे शून्यवादीयों की ओर से भी कल्पित साधनादि से शून्यता की सिद्धि न्यायोचित ही है। देखिये — शून्यवादीमत से भी, परापूर्व से जो लोकप्रसिद्ध (किन्तु कल्पित) साधनादिभेद व्यवहार चलता था चलता आया है उसी का उपयोग कर के यदि शून्यता की सिद्धि की जाती है तो इस में कोई दोष नहीं है। 15

जान लिजिये कि एक बार शून्यता सिद्ध हो जाने पर, उत्तरकाल में आप के युक्तिप्रहार से साधनादि भेद समाप्त हो जाय तो हमें कोई आपत्ति नहीं है (अपि तु इष्टापत्ति है) क्योंकि वह तो पानी बह जाने पर पालीबन्ध करने की चेष्टा है। (यानी अर्थवादारूप जल बह जाने पर आप शून्यवादभंगरूप पाली बन्ध करते ही रहिये। तकलीफ नहीं। हमारे आचार्य ने यही कहा है — 'पूरा ही अनुमान-अनुमेय व्यवहार जूठा है।' इत्यादि। अत एव अनुमानसिद्ध शून्यता को भी आप अर्थ 20 की तरह काल्पनिक कहें तो मंजूर है।

### [ शुद्धतर पर्यायवादी ऋजुसूत्र मत से सर्व शून्यम् ]

अथवा, इस तरह शून्यता जान सकते हैं — प्रतिभासमान नीलादि का एकत्वादिरूप कल्पित है उस का प्रतिभास नहीं होने से वह निषेधपात्र है। अप्रतिभासमान एकत्वादि रूप, सिर्फ एकत्वादिव्यवहार के आधार पर सत्य मान लेना उचित नहीं। प्रतिभास के न होने पर व्यवहार भी अर्किचित्कर है। 25 सारांश, बाह्य अथवा अभ्यन्तर नीलादि या सुखादि कोई भी रूप तात्त्विक नहीं है, सांवृत यानी अविद्या = कल्पना (= संवृति) शिल्प है। बुद्धमतानुयायीओं में संवृति के तीन प्रकार कहे गये हैं - (१) लोकसंवृति जिस से मरुमरीचिका में जलभ्रान्ति होती है। (२) तत्त्वसंवृति जिस से नीलादि बाह्य में सत्यत्व प्रतीति होती है, (३) अभिसमय संवृति जिस से योगीगण को आध्यात्मिक (= अभ्यन्तर) अनुभूतियाँ होती है, लेकिन वह भी कल्पनाशिल्प इस लिये है कि उन की अनुभूतियाँ ग्राह्य-ग्राहकाकार 30 से प्रवृत्त रहती है, ग्राह्य-ग्राहकभाव आकार सत्य नहीं है। भगवन्तोंने 'संवृतिसत्त्व कितने हैं ?' इस प्रश्न के उत्तर में कहा है कि लौकिकव्यवहार पर्यन्त (सब काल्पनिक है।)। इस तरह निश्चित हुआ



यावल्लोकव्यवहारः' [ ] इति व्यवस्थितं सर्वधर्मविरहः शून्यतेति शुद्धतरपर्यायास्तिकमतावलम्बी ऋजुसूत्र एवं व्यवस्थितः।

[ सौत्रान्तिकादिचतुष्कस्य ऋजुसूत्रादिचतुष्केऽवतारः ]

5 अथवा, सौत्रान्तिक-वैभाषिकौ बाह्यार्थमाश्रितौ, ऋजुसूत्र-शब्दौ यथाक्रमम् वैभाषिकेण नित्यानित्यशब्द-  
वाच्यस्य पुद्गलस्याभ्युपगमात् शब्दनयेऽनुप्रवेशस्तस्य। बाह्यार्थप्रतिक्षेपेण विज्ञानमात्रं समभिरूढो योगा-  
चारः। एकानेकधर्मविकलतया विज्ञानमात्रस्याप्यभावः इत्येवं भूतो = व्यवस्थितः एवम्भूतो माध्यमिकः।  
इति व्यवस्थितमेतत् 'तस्य तु शब्दादयः शाखा-प्रशाखाः सूक्ष्मभेदा इति॥५॥ (प्रथमकाण्डे पञ्चमगाथा-  
व्याख्या समाप्ता)।

[ निक्षेपेषु द्रव्य-पर्यायनययुगलावतारः ]

10 'नयानुयोगद्वारवत् शेषानुयोगद्वारेष्वपि द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकौ मूलव्याकरणिनौ' इति दर्शयन्त्य (?)

किं सर्वधर्मनास्तित्वं शून्यता है। ऐसी शून्यता का अतिशुद्ध पर्यायास्तिक मतावलम्बी ऋजुसूत्र नय स्वागत करता है। (अतिशुद्ध कैसे ? - पर्यायास्तिक होने से पहले 'द्रव्य' को असत् ठहराया, ओर गहराई में जा कर बाह्य पर्यायों को भी असत् ठहराया, फिर नील-सुखादि ज्ञान (सविषयक ज्ञान) पर्यायों को भी असत् ठहराया, इस तरह सर्वधर्मों को असत् ठहराया और शून्यता स्वरूप अतिशुद्ध मध्यम प्रतिपद का स्वीकार किया, इस लिये यह अतिशुद्ध पर्यायवादी ऋजुसूत्रमत है।)

[ ऋजुसूत्रादि चार नयों में सौत्रान्तिकादि चार मतों का प्रवेश ]

पाँचवी मूल कारिका में सूत्रकार सिद्धसेन दिवाकरसूरि ने कहा है कि शब्दादि तीन नय ऋजुसूत्र की ही शाखा-प्रशाखारूप हैं - इस का स्पष्टीकरण व्याख्याकार अभयदेवसूरि दूसरे प्रकार से करते हैं अथवा - क्षणिकवादी सौत्रान्तिक बाह्यार्थ मानने के कारण ऋजुसूत्र स्वरूप है। वैभाषिक भी बाह्यार्थ को इस तरह मानता है कि पुद्गल शब्दवाच्य है चाहे वह शब्द नित्य हो या अनित्य। (मतलब कि इस में अनित्य पुद्गलरूप बाह्यार्थ को अनित्य शब्द से अपोहात्मकरूप से वाच्य माननेवाले) वैभाषिक का भी शब्दनय में समावेश हुआ - (एवं पुद्गल को नित्यशब्दवाच्य माननेवाले मीमांसक के मत का भी शब्दनय में प्रवेश समझ लेना - यह प्रासंगिक बात है।) योगाचार यानी विज्ञानवादी बाह्यार्थ का विरोधी बन कर विज्ञानमात्र के ऊपर अपने मत का आक्रमक ढंग से आरोहण करने के कारण समभिरूढनय में प्रविष्ट है। तथा माध्यमिक, एवं = एकानेकधर्मों की संगति शक्य न होने से विज्ञान का भी अभाव है इस प्रकार, भूत = निश्चय कारी होने से एवम्भूतनय में माध्यमिक का प्रवेश है। निष्कर्ष (या निगमन) यह सुनिश्चित हो गया कि शब्दादि तीन नय ऋजुसूत्रनय के सूक्ष्मभेदरूप शाखाप्रशाखातुल्य हैं॥५॥ (पहले काण्ड की पंचमकारिका की विस्तृत व्याख्या समाप्ता।) श्री परमेश्वराय नमः॥

[ निक्षेपों में द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक का अवतार ]

30 श्री दिवाकर सूरिजीने पाँचवी गाथा के द्वारा ऋजुसूत्रादि चार नयों का प्रदर्शन किया - अब छठी गाथा की अवतरणिका व्याख्याकार दो प्रकार से दिखा रहे हैं -

(9) नयस्वरूप अनुयोगद्वारों की तरह शेष (निक्षेपरूप) अनुयोगद्वारों में भी द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक

यन्न)नयोर्व्यापकताम्—

[ मूलम् ] नामं ठवणा दविएत्ति एस दव्वट्टियस्स निक्खेवो।

भावो उ पज्जवट्टिअस्स परूवणा, एस परमत्थो।।६।।

इत्यनया गाथया दर्शयत्याचार्यः।

अथवा वस्तुनिबन्धनाध्यवसायनिमित्तव्यवहारमूलकारणतामनयोः प्रतिपाद्य, अधुना अध्यारोपिताऽ-  
नध्यारोपितनाम-स्थापना-द्रव्य-भावनिबन्धनव्यवहारनिबन्धनतामनयोरेव प्रतिपाद्यत्राहाचार्यः नामं ठवणा  
इत्यादि।

अस्याश्च समुदायार्थः — नाम स्थापना द्रव्यम् इति एष द्रव्यार्थिकस्य निक्षेपः। भावस्तु पर्यायार्थिक-  
निरूपणाया निक्षेपः इति एष परमार्थः।

[ नामनिक्षेपः- व्याख्या-संकेत-विषयाः ]

तत्र यस्य कस्यचिद् वस्तुनो व्यवहारार्थमभिधानं निमित्तसव्यपेक्षमनपेक्षं वा यत् संकेत्यते तद् नाम।  
संकेतकरणात् (णं तु) क्वचिदभेदेन यथा 'अयं घटः' इति, क्वचिद् भेदेन यथा "अस्य चायं 'घट'-  
शब्दो वाचकः" इति भेदेन। एतच्च समानाऽसमानाकारपरिणत्यात्मकेऽपि वस्तुनि समानाकारप्रतिपादनायैव  
नियोज्यते तस्यानुगतत्वेन तत्र संकेतकरणसौकर्यात्। असमानपरिणतेष्वननुगमात् आनन्त्याच्च न तत्र

नय कैसे मूलव्याकरणी हैं यह छट्टी गाथा से दिखाते हुए, उसी गाथा से द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक की  
व्यापकता आचार्य सिद्धसेनसूरि प्रकट करते हैं —

(२) अथवा वस्तुमूलक अध्यवसाय और वस्तु निमित्तक व्यवहारों का मूल कारण उक्त दो नय  
हैं यह दिखा कर, अब अध्यारोपित, या वास्तव नाम-स्थापना-द्रव्य निक्षेप एवं भावनिक्षेप मूलक व्यवहार  
की नींव भी ये ही दो नय हैं — ऐसा आचार्य सिद्धसेनसूरि दिखा रहे हैं —

गाथार्थ :- नाम-स्थापना-द्रव्य ये द्रव्यार्थिक के निक्षेप हैं, 'भाव' पर्यायार्थिक की प्ररूपणा है —  
यह परमार्थ है।।६।।

व्याख्यार्थ :- गाथा का समुदित अर्थ है — नाम-स्थापना एवं द्रव्य ये तीन द्रव्यार्थिक के (मान्य)  
निक्षेप हैं, भाव तो पर्यायार्थिक निरूपण का (मान्य) निक्षेप है — यह परमार्थ है।

[ नामनिक्षेप के विषय-संकेत-और व्याख्या ]

यहाँ — जिस किसी भी वस्तु के व्यवहार को चलाने के लिये जिस अभिधान का यानी जिस  
शब्द के प्रयोग का संकेत यानी निर्धारण किया जाता है उस शब्द को नाम (निक्षेप) कहा जाता  
है, चाहे वह (गो-इत्यादि) शब्द संकेत वस्तुगत (गमनक्रियादि) निमित्त से निरपेक्ष हो या सापेक्ष।  
[यहाँ नाम आदि को 'निक्षेप' इस लिये कहा जाता है कि एक बार एक वस्तु के लिये जो नाम-  
निर्धारण हुआ है, उस नाम का संकेत किसी एक ही पदार्थ में हो यह जरूरी नहीं, नाममात्र अनेकार्थक  
होता है। तब प्रतिनियत देश-काल-संदर्भ के अनुसार वह नाम किस अर्थ में प्रयुक्त है उस का अन्वेषण  
कर के नियत अर्थ के साथ उस नाम का सम्बन्धग्रहण किया जाता है — इस निर्धारण को ही निक्षेपण  
या निक्षेप कहा जाता है और निक्षेपण के आधारभूत (नामार्थ, स्थापना, द्रव्य भाव रूप) विषयों को

संकेतः कर्तुं शक्यः। शब्दव्यापाराच्च वस्तुगतसदृशपरिणतेरेव प्रतिभासता(?सनात्), स एव शब्दार्थः यः शाब्द्यां प्रतीतौ प्रतिभातीति नाऽसदृशपरिणामोऽन्यन्तविलक्षणः तस्यार्थ इति वस्तुस्थितिः।

[ शब्दब्रह्मवादिभर्तृहरिमत्पूर्वपक्षो द्रव्यार्थिकानुगामी ]

▼अत्र च द्रव्यार्थिकमतवलम्बी शब्दब्रह्मवाद्याह भर्तृहरिः- (वा० पदी०१-१)

5 \*अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

अत्र आदिः = उत्पादः, निधनं = विनाशः, तदभावाद् 'अनादिनिधनम्', अक्षरम् इति अकाराद्यक्षरस्य निमित्तत्वात्, अनेन च विवर्तोऽभिधानरूपतया निदर्शितः, 'अर्थभावेन' इत्यादिना त्वभिधेयो विवर्तः, 'प्रक्रिया' इति भेदानामेव संकीर्तनम्। 'ब्रह्म' इति पूर्वापरादिदिग्विभागरहितम् अनुत्पन्नम् अविनाशि यच्छब्दमयं ब्रह्म तच्च(?स्या)यं रूपादिभावग्रामपरिणाम इति श्लोकार्थः।

10 भी प्रचुरतया निक्षेप कहा जाता है। 'पदवृत्तिग्रहणानुकूलव्यापारः निक्षेपः' यह उस की सरल व्याख्या है और उस व्यापार के विषयभूत नामादि चार को प्रचुरतया निक्षेप कहा जाता है।)

उपरोक्त संकेतग्रहण कभी अभेदभाव से किया जाता है - जैसे 'यह घट है', यहाँ कम्बुग्रीवादिमान् पदार्थ को अभिन्नरूप से घट-शब्द के साथ निर्दिष्ट किया जाता है। कभी संकेतग्रहण भिन्नरूप से भी होता है जैसे - 'इस वस्तु का (घट का) घटशब्द वाचक है।' यहाँ घट अर्थ और घट शब्द का भेदनिर्देश है। (नाम निक्षेप की व्याख्या और संकेत का स्पष्टीकरण हुआ, अब विषयभूत सामान्य का निर्देश करते हैं -) निक्षेप का यानी शब्दप्रयोग का विषय है सामान्य। (यानी नामोच्चार के द्वारा निर्देश किया जाता है वस्तुसामान्य का, वस्तुविशेष यानी व्यक्ति का नहीं। (मीमांसक और बौद्ध के मत से नाम जाति का वाचक होता है, नैयायिक के मत से जातिविशिष्ट व्यक्ति का वाचक होता है।) व्याख्याकार कहते हैं कि वस्तुमात्र तुल्याकारपरिणामरूप होती है। नाम का प्रयोग तुल्याकार 20 परिणाम (सामान्य या जाति) को ही निर्दिष्ट कर सकता है क्योंकि वह अनेक व्यक्तियों में व्याप्त रहता है, फलतः उस में संकेत करना बहुत सरल बन जाता है। असमानपरिणाम (यानी भेद अथवा विशेष अथवा व्यक्ति) के प्रति संकेत करना शक्य नहीं क्योंकि कोई भी व्यक्ति अन्य व्यक्तियों में व्याप्त नहीं होती, व्यक्तियाँ अनन्त हो सकती है, एक एक व्यक्ति को पकड कर संकेत करना शक्य नहीं। यह सर्वविदित है कि शब्दप्रयोग से वस्तुनिष्ठ तुल्याकार परिणाम ही भासित होता है, शब्दार्थ 25 वही होता है जो शाब्दिक प्रतीति में भासता है। अतुल्याकारपरिणाम (= विशेष) ऐसा विलक्षण है कि शब्दप्रयोग से नहीं भासता अतः वह नाम का वाच्य अर्थ नहीं होता - यह है वास्तविकता।

[ द्रव्यार्थिकसदृश शब्दब्रह्मवादी भर्तृहरिमत्- पूर्वपक्ष ]

दो नय के संदर्भ में नामनिक्षेप प्रकरण में, भर्तृहरि पंडित का शब्दब्रह्मवाद कुछ अंश में द्रव्यार्थिकनय का अनुसरण करने वाला है - व्याख्याकार विस्तार से उस के मत का निरूपण करते हैं - (वाक्यपदीय 30 ग्रन्थ में 'अनादि... जगतो यतः' श्लोक है) अनादि... 'शब्दस्वरूप ही ब्रह्म है, वह अनादि-अनन्त है,

▼. सम्पूर्णाऽयं शब्दब्रह्मपक्षः अविक्लतया तत्त्वसंग्रहपञ्जिकायां पृ.६ कारिका १२८ तः पृ.७५ कारिका १५२ मध्ये दृष्टव्यः। (इति भूतपूर्वसम्पादकौ) \* श्लोकोऽयं वाक्यपदीय- तत्त्वसंग्रहपञ्जिका - द्वादशारनयचक्र-प्रमेयकमलमार्तण्ड-स्याद्वादरत्नाकर-स्याद्वादकल्पलता-नयोपदेश- टीकाद्यनेकग्रन्थेषु दृश्यते। (भूतपूर्वसम्पादकौ)

एतच्च शब्दस्वभावात्मकं ब्रह्म प्रणवस्वरूपम् स च सर्वेषां शब्दानाम् समस्तार्थानां च प्रकृतिः। अयं च वर्ण-क्रमरूपो वेदस्तदधिगमोपायः प्रतिच्छन्दकन्यायेन तस्यावस्थितत्वात्। तच्च परमं ब्रह्म अभ्युदय-निःश्रेयसकलधर्मानुगृहीतान्तःकरणैरवगम्यते। अत्र च प्रयोगः — ये यदाकारानुस्यूतास्ते तन्मयाः यथा घट-शरावोदञ्चनादयो मृद्विकारानुगता मृण्मयत्वेन प्रसिद्धाः, शब्दाकारानुस्यूताश्च सर्वे भावा इति स्वभावहेतुः। प्रत्यक्षत एव शब्दाकारानुगमोऽनुभूयते। तथाहि— अर्थेऽनुभूयमाने शब्दोल्लेखानुगता एव सर्वे प्रत्यया 5 विभाव्यन्ते। उक्तं च — (वाक्यप० १-१२४)

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।। इति।

न च वाग्रूपताननुवेधे बोधस्य प्रकाशरूपतापि भवेत् तस्याऽपरामर्शरूपत्वात् तदभावे तु तस्याऽभावात् बोधस्याप्यभावः, परामर्शाभावे च प्रवृत्त(?त्या)दिव्यवहारोऽपि विशीर्येत इति। आह च (वाक्यप० १-११५)

अक्षर है, उसी के अर्थतादात्म्यभाव से इस जगत की प्रक्रिया विवर्तमान है।' इस श्लोक का शब्दार्थ 10 — आदि = उत्पाद, निधन = विनाश, दोनों के न होने से अनादि-निधन। अक्षर = अकारादि अक्षरों का निमित्त, निमित्तभाव से यहाँ शब्दात्मक स्वरूप से उस के विवर्त का निर्देश किया है। 'अर्थभावेन' (= अर्थतादात्म्यभाव से) इस पद से शब्दप्रतिपाद्य विवर्त का निर्देश किया है। (विवर्त का मतलब है जो किसी के प्रपञ्च के रूप में भासमान होता है।) 'प्रक्रिया' पद से शब्द और अर्थ के विवर्त के अनेक भेदों का निर्देश है। ब्रह्मपद से — पूर्व-पश्चिमादिदिशाभेदशून्य अनुत्पन्न अविनाशि शब्दमय 15 ब्रह्म सूचित किया है। यह जगत् उसी का विवर्तरूप है, मतलब कि रूपादिभावसमुदायात्मक परिणामरूप है। श्लोकार्थ पूरा हुआ।

यह शब्दात्मकस्वभावरूप ब्रह्म प्रणव (यानी ॐकार) स्वरूप है, वही एक समस्त शब्द और सम्पूर्ण अर्थसमुदाय की प्रकृति यानी मूल उपादान या उद्गमस्थली है। शब्दब्रह्म की पहचान कराने वाला वेद है जो कि क्रमिक वर्णसमुदायात्मक है, वेद में ही शब्दब्रह्म प्रतिबिम्बन्यास से अवस्थित होने के कारण 20 उस को शब्दब्रह्मज्ञान का उपाय दिखलाया गया है। परमब्रह्मतत्त्व का विशुद्ध बोध उन्हीं को होता है जिन का हृदय अभ्युदय-निःश्रेयस फलक धर्मतत्त्व से आप्लावित रहता है। इस को समझने के लिये एक प्रयोगः — 'जिस आकार से जो भाव आप्लावित होते हैं वे भाव तन्मय (तदाकार) होते हैं, उदा. घट-शराव-उदञ्चन आदि भाव मिट्टी के परिणामों से आप्लावित होते हैं वे मिट्टीमय ही होते हैं — यह प्रसिद्ध है। सभी भाव शब्दाकार से आप्लावित होते हैं (इस लिये शब्दतादात्म्यापन्न होते 25 हैं।)' यह स्वभावहेतुक प्रयोग है। समस्त भाव शब्दाकारानुविद्ध हैं यह तो प्रत्यक्षानुभवसिद्ध है। देखिये — जब भी अर्थानुभव होता है तब शब्दोल्लेख से अनुवासित ही सभी अनुभव भावित होते हैं। कहा भी है — (वाक्यपदीय में)

### [ ज्ञानमात्र शब्दानुविद्ध, प्रकाश की वाग्रूपता ]

'शब्दानुवेध से वंचित हो ऐसा कोई बोध ही नहीं है, समस्त ज्ञान शब्द से मिला-जुला ही 30 प्रतीत होता है।'

अरे ! वाङ्मयता के बिना ज्ञान की प्रकाशरूपता भी घट नहीं सकती। प्रकाशरूपता के बिना

वाग्रूपता चेद् व्युत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती। न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी।। इति।

ज्ञानाकारनिबन्धना च वस्तुनां प्रज्ञप्तिरिति नैषां शब्दाकारानुस्यूतत्वमसिद्धम्, तत्सिद्धेश्च तन्मात्रभावित्वात् तन्मयत्वस्य तन्मयत्वमपि सिद्धमेव। अत एव 'अयं घटः' इत्यभेदेन शब्दार्थ-सम्बन्धो वैयाकरणैः — 'सोयमित्यभिसम्बन्धाद् रूपमेकीकृतम्' इत्यादिनाऽभिजल्पस्वरूपं दर्शयद्भिः प्रतिपादितः।

5 अत्र च पर्यायास्तिकमतेन प्रतिज्ञादोष उद्भाव्यते—

किमत्र जगतः शब्दपरिणामरूपत्वाच्छब्दमयत्वं साध्यते, उत शब्दात्तस्योत्पत्तेः शब्दमयत्वं यथा 'अन्नमयाः प्राणाः' इति हेतौ 'मयट्' विधानात् ? न तावदाद्यः पक्षः परिणामानुपपत्तेः। तथाहि — शब्दात्मकं ब्रह्म रूपाद्यात्मकतां प्रतिपद्यमानं स्वरूपत्यागेन वा प्रपद्यते ? अपरित्यागेन वा ? यदि परित्यागेनेति पक्ष आश्रीयते तदाऽनादिनिधनमित्यनेन यदविनाशित्वमभ्युपगतम् तस्य हानिप्रसक्तिः

10 ज्ञान परामर्शविहीन ही रह जायेगा अतः परामर्शरूपता के बिना बोध का भी अस्तित्व नहीं रहेगा। तथा परामर्शरूपता न होने से प्रवृत्ति आदि लोकव्यवहार भी नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। वाक्यपदीय में कहा है —

“ज्ञान की वाङ्मयता शाश्वती है वह यदि (ज्ञान को) छोड़ जायेगी तो ज्ञान की प्रकाशता भी चली जायेगी क्योंकि वही परामर्शकारक है।”

15 वस्तु का निरूपण ज्ञानाकारमूलक होता है अतः ये वस्तु भी ज्ञान की शब्दाकारता से अनुवासित हो तो इस में कोई असिद्धता नहीं है। ज्ञान की शब्दाकारता सिद्ध होने पर ज्ञानमात्र पर आधारित होने के कारण वस्तुमात्र की ज्ञानमयता की सिद्धि से शब्दमयता भी सिद्ध हो जाती है। इसी लिये, 'यह वही है' इस प्रकार के अन्योन्य अभिमुख सम्बन्ध के आधार पर (अर्थ और शब्दों के) रूप का एकीकरण करते हुए व्याकरणपंडितों ने 'अभिजल्प का स्वरूप निर्देश करते हुए साथ में 'यह घट 20 है' इस तरह अभेदभाव से शब्द-अर्थ का सम्बन्ध, प्रदर्शित किया है।

द्रव्यार्थिक नय का हाथ पकड़ कर शब्दब्रह्मवादी ने शब्द, ज्ञान और अर्थों के तन्मयत्व का निदर्शन समाप्त किया।

### [ पर्यायास्तिक नय से विश्व-वाङ्मयता प्रति दोषापादान ]

द्रव्यार्थिकनयाधारित शब्दब्रह्मवादी मत के ऊपर अब पर्यायास्तिकनय से दोष-प्रदर्शन किया जाता है — प्रश्न — जगत् की शब्दमयता कैसे सिद्ध करते हो - <sup>A</sup>शब्दपरिणामरूपता होने से या <sup>B</sup>जगत् शब्दहेतुक होने से ? उदा० प्राण अन्नमय हैं' यहाँ मयट् प्रत्यय हेतु अर्थ में है, शब्दमय में भी ऐसा ही समझना ? मतलब, जगत् की उत्पत्ति शब्दमूलक होने से ? <sup>A</sup>प्रथम पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि परिणामवाद घट नहीं सकता। कैसे यह देखिये —

शब्दमय ब्रह्म <sup>a</sup>अपने स्वरूप को छोड़ कर रूपादिपरिणामपरिणत होते हैं या <sup>b</sup>न छोड़ते हुए ? 30 यदि पहले 'छोड़ कर' पक्ष का स्वीकार है तो वाक्यपदीय श्लोक में जो शब्दब्रह्म को 'अनादि-निधन' शब्दप्रयोग से 'अविनाशि' कहा गया है उस का भंग होगा क्योंकि शब्द के अपने पूर्वस्वरूप (शब्दता)

▼. अभिजल्पो = वाचकशब्दोल्लेखः (प्र.वा.२/२४९ टीका)

पौरस्त्यस्वभावध्वंसात्। अथाऽपरित्यागेनेति पक्षः, तदा रूपसंवेदनसमये बधिरस्य शब्दसंवेदनप्रसङ्गः तदव्यतिरेकात् नीलादिवत्। तथाहि— यत् यदव्यतिरिक्तं तत् तत्संवेदने संवेद्यते, यथा तत्स्वरूपम्, रूपाद्यव्यतिरिक्तश्च शब्दात्मेति स्वभावहेतुः। अन्यथा भिन्नयोगक्षेमत्वात् तद-तदात्मकमेव न स्यादिति विपर्यये बाधकं प्रमाणम्। अथ तत्समये न तत्संवेदनमिष्यते तदा रूपादेरप्यसंवेदनप्रसंगः एकस्वभावत्वात्। भिन्नधर्मत्वे वा शब्द-रूपादेरत्यन्तभेद एव। न ह्येकप्रमात्रपेक्षयैकस्यैव ग्रहणमग्रहणं वा एकत्वहानिप्रसंगात्। 5

यदि पुनर्विरुद्धधर्माध्यासेऽप्यभेदः घट-पटादिव्यक्तीनामपि कल्पितभेदानामभेदप्रसक्तिः। परेणाभ्युपगतश्च घटादिव्यक्तीनां भेदः, यतः स्वात्मनि व्यवस्थितस्य ब्रह्मणो नास्ति भेदः अविकारविषयत्वादस्येति परसिद्धान्तः। न हि घटाद्यात्मना तस्यानादिनिधनत्वम् किन्तु परमात्मापेक्षया। घटादयश्च परिदृश्यमानोदय-व्ययाः परिच्छिन्नदेशादयश्चोपलभ्यन्त एव। अयं चोपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वे ब्रह्मणो दोष उक्तः। अतिसूक्ष्मतयाऽतीन्द्रियत्वे तु तस्य तत्स्वरूपवन्नीलादीनामप्यग्रहणप्रसक्तिर्दोषः। तेन 'उदय-व्ययवतीमेवार्थमात्रामपरदर्शनाः प्रतियन्ति' 10

का नाश प्रसक्त होगा। यदि 'न छोडते हुए' इस दूसरे पक्ष का स्वीकार हो, तब शब्द और रूप का तादात्म्य हो जाने से, बधिर नर को रूपसंवेदनकाल में शब्द का भी संवेदन प्रसङ्ग प्राप्त होगा, जैसे अभेद के कारण रूप तादात्म्यापन्न नील का सहसंवेदन होता है। व्याप्ति देख लो — जो जिस से जुड़ा नहीं वह उस के संवेदन में संविदित होता है जैसे वस्तु और उस का स्वरूप। शब्दपदार्थ भी आपने रूपादिअभिन्न मान्य किया है। यह है स्वभावहेतुप्रयोग। यदि इस के विपरीत माना जाय 15 तो बाध क्या ? ऐसा पूछा जाय तो कहेंगे कि भिन्न योगक्षेम होने से, मतलब एक का संवेदन किन्तु तदभिन्न अन्य का नहीं ऐसा भिन्न प्रस्थान होने पर वह रूपादि, नील तादात्म्यापन्न नहीं रहेगा। यही विपक्षबाधक प्रमाण व्याप्तिसाधक है। यदि कहें कि रूपादिसंवेदन होने पर भी नील-पीत का संवेदन न हो तो क्या बाध ? अरे ! नील/पीतादि का संवेदन न होने पर तो उन से अभिन्न रूपादि का भी संवेदन लुप्त हो जायेगा, क्योंकि रूप और नील एक ही स्वभाव के हैं। एक स्वभाव के बदले 20 उन दोनों को भिन्न धर्मवाले मानेंगे तो यहाँ नील और रूपादि में भी भिन्नधर्मता के जरिये अत्यन्तभेद प्रसक्त होगा। एक ही ज्ञाता एक एवं अभिन्न पदार्थों में से एक को ग्रहण करे अन्य को नहीं ऐसा तो हो नहीं सकता, अन्यथा एकत्व लुप्त हो जायेगा।

### [ शब्दमयता पक्ष में घट-पटादि में अभेदप्रसंग ]

ग्रहण-अग्रहण ऐसे विरुद्धधर्माध्यास हो वहाँ भेद मान लेना चाहिये, उस के बदले बलात् अभेद 25 का आग्रह रखा जाय तो जिन घट-पटादि में भेद सुविदित है (क्योंकि वे अन्योन्य घटत्व-पटत्वादि विरुद्धधर्माध्यासित है,) उन में भी अभेदप्रसंग का अनिष्ट होगा। शब्दमयता वादी घट-पटादि का भेद नहीं मानता है ऐसा नहीं है। उस का सिद्धान्त तो यह है कि (विकारों में भेद होता है किन्तु) ब्रह्म विकारग्रस्त न होने से, अपने स्वरूप में लीन ब्रह्म में भेद नहीं होता। ब्रह्म की अनादिनिधनता भी घटादिस्वरूपतः नहीं है किन्तु सिर्फ स्व-आत्मा की अपेक्षा से ही अनादिनिधनता होती है। घटादि 30 में तो उत्पत्ति-विनाश दिखते हैं और मर्यादितदेशादिसम्बन्धिता भी उपलब्ध होती है। फिर भी जब शब्द ब्रह्म से अभेद मानने का आग्रह है तो ब्रह्म उपलब्धि योग्य होने से शब्दब्रह्म की उपलब्धि

इत्युक्तमेवाभिधानम् । न च यथा नीलत्वाऽव्यतिरिक्तमपि क्षणिकत्वं तत्संवेदने न संवेद्यते तद्वच्छब्दरूपमपीति वक्तव्यम् भ्रान्तिकारणवशात्रिर्विकल्पकेन गृहीतमपि (न) निश्चीयते इत्यनुभवापेक्षया तद्ग्रहणे तदपि गृहीतमेव निश्चयापेक्षया त्वगृहीतमिति ज्ञानभेदाद् गृहीतत्वमगृहीतत्वं चैकस्याऽविरुद्धमेव ।

- न चैवं शब्दब्रह्मणो भवन्मतेन ग्रहणाऽग्रहणे, सविकल्पकत्वाभ्युपगमात् सर्वसंविदाम्, सविकल्पकत्वेन  
5 च सर्वात्मना शब्दस्य निश्चितत्वादगृहीतस्वभावान्तरानुपपत्तेः... निश्चयैः । यत्र निश्चीयते रूपं तत् तेषां विषयः कथम् ।। (त.सं.पंजिकायामुद्धृतः) इति प्रतिपादनात् । न चाऽविकल्पकस्यापि ज्ञानस्याभ्युपगमादयं न दोषः, 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके'... (वाक्य.१-१२४) इत्यादेर्विरुद्धत्वप्रसक्तेः, 'शब्दाकारानुस्यूतत्वात्'

- के साथ घटादि की उपलब्धि के अतिप्रसंग का दोष, अथवा रूपादि की उपलब्धि होने पर बधिर मनुष्य को शब्दोपलब्धि का दोष अनिवार्य है। यदि कहें कि — 'शब्दब्रह्म अतिसूक्ष्म अत एव अतीन्द्रिय होने से रूपादिउपलब्धिकाल में शब्दसंवेदन की विपदा नहीं होगी' — तो यहाँ भी यह दोष होगा कि ब्रह्म-अभिन्न होने से जैसे ब्रह्मस्वरूप अतिसूक्ष्मतादि के कारण उपलब्ध नहीं हो सकता वैसे ही अतिसूक्ष्मादि ब्रह्म से अभिन्न नीलादि पदार्थों का भी ग्रहण न होने का अतिप्रसंग सिर उठायेगा।

### [ क्षणिकत्व की तरह शब्दमयता के असंविदितत्व की अनुपपत्ति ]

- अतः ब्रह्मवादी जो कहते हैं कि — 'परतत्त्वदर्शी (ब्रह्मतत्त्वदृष्टा) जो नहीं है वे तो उत्पत्ति-  
15 विनाशशाली अर्थों का ही ज्ञान कर सकते हैं' — यह कथन अयुक्त ही है। ऐसा नहीं बोलना कि — 'जैसे बौद्ध मत में (पर्यायार्थिकनयानुसार) नील के संवेदन में नीलत्व ही भासता है, यद्यपि क्षणिकत्व भी अभिन्न रूप से नील में है लेकिन वह नहीं भासता, इसी तरह रूपप्रतिभासकाल में अभिन्न होने पर भी शब्द नहीं भासता, दोष क्या है ?' — निषेध का कारण :— हमारे मत में नील संवेदन में क्षणिकत्व संविदित नहीं होता ऐसा नहीं है, किन्तु निर्विकल्पगृहीत होने पर भी भ्रान्तिकारणों के  
20 जरिये विकल्प से निश्चित नहीं होता, इस लिये अनुभव (संवेदन) की अपेक्षा से क्षणिकत्व का ग्रहण होने पर भी निश्चय (सविकल्प) की अपेक्षा क्षणिकत्व का अग्रहण न्यायसंगत है। इस प्रकार निर्विकल्प-सविकल्प ज्ञान भेद से एक ही नीलादि में (नीलत्व का) ग्रहण और (क्षणिकत्व का) अग्रहण मानने में कोई विरोध नहीं है।

### [ शब्दब्रह्म में ग्रहण-अग्रहण उभय की अनुपपत्ति ]

- नीलत्व-क्षणिकत्व का उदाहरण ले कर आप ऐसा नहीं कह सकते कि — 'हमारे मत में भी रूपादि का ग्रहण — शब्दब्रह्म का अग्रहण संगत होगा' — क्योंकि बौद्धमत में क्षणिकत्व का ग्राहक है निर्विकल्प, अग्राहक है सविकल्प, आप के मत में तो सभी ज्ञान सविकल्प ही होता है, और सविकल्परूप होने से उस से शब्द का सर्वप्रकार से ग्रहण हो जाता है फिर कैसे शब्द में अगृहीतत्वरूप स्वभावान्तर संगत होगा ? आप के मत में ऐसा ही कहा गया है — 'निश्चयों से जिस रूप का भान नहीं  
30 होता वह उन का विषय कैसे हो सकता है ?' इस से भी उपरोक्त वार्त्ता का समर्थन हो जाता है। यदि क्षणिकत्वनिर्विकल्प की तरह शब्दब्रह्म के निर्विकल्प का स्वीकार कर के आप दोष टालने की कोशिश करेंगे तो वाक्यपदीय के — 'ऐसी कोई प्रतीति नहीं जो शब्दानुगम से रहित हो' —

इति हेतोरसिद्धिप्रसक्तिश्च। न च यथा प्रमाणान्तरतः क्षणिकत्वप्रसिद्धेः 'अध्यक्षतोऽनुभूतमपि तन्न निश्चीयते' इति व्यपदिश्यते तथा शब्दात्मता भावानां व्यपदेशमासादयति, तत्प्रसाधकप्रमाणान्तरस्याऽप्रसिद्धेः।

किं तु (च)-शब्दात्मा घटादिरूपतया परिणमन् प्रति पदार्थं भिद्यते न वेति वक्तव्यम्।

यद्याद्यः पक्षः तदा शब्दब्रह्मणोऽनेकत्वप्रसक्तिः, विभिन्नानेकभावात्मकत्वात् तत्स्वरूपवत्। एकं च परैर्ब्रह्मोप्यते इत्यभ्युपगमापगमः। अथ यदि द्वितीयः पक्षस्तदा एकदेश-कालाकाररूपतापत्तिर्जगत इत्येकरूपः 5 प्रतिभासो भवेत्, नीलादेरेकब्रह्मरूपाऽव्यतिरेकात्। अपि च, नित्यशब्दमयत्वे जगतः शब्दस्वरूपवत् सर्वभावानां नित्यत्वप्रसक्तिः इति तेन सहसर्वदोषलब्धेः परिणामाऽसिद्धिः कृशयति परिणामप्रतीतेः (?तिम्)। तन्न परिणामकृतं शब्दमयत्वं भावानाम्।

<sup>B</sup>नापि हेतुकृतम्, (१७०-४) शब्दस्य नित्यत्वेन अविकारित्वात् ततः कार्योदयाऽसम्भवात्। नाप्यक्र- 10 माच्छब्दब्रह्मणः क्रमवत्कार्योदयो युक्तः। कारणवैकल्याद्धि कार्याणि उदयं प्रति सविलम्बानि भवन्ति,

इस कथन के साथ विरोध प्रसंग आयेगा और — सर्व भाव शब्दाकारानुस्यूत है — यह स्वभाव हेतुप्रयोग है — ऐसा जो पहले आपने कहा है (१७०) वह हेतु असिद्ध हो जायेगा। यदि कहा जाय — क्षणिकत्व की सिद्धि अनुमानरूप अन्य प्रमाण से करनी पडती है तब ऐसा व्यपदेश किया जाता है कि क्षणिकत्व प्रत्यक्षदृष्ट होने पर भी निश्चयविषय नहीं बनता, उसी प्रकार भावों की शब्दात्मकता के लिये भी 15 तथा व्यपदेश किया जाता है। — तो यह ठीक नहीं क्योंकि क्षणिकत्व जैसे प्रमाणान्तरसिद्ध है वैसे भावों की शब्दात्मकता प्रमाणान्तरसिद्ध नहीं है।

### [ शब्दात्मक घटादि में भेदाभेदभाव की अनुपपत्ति ]

उपरांत, यह स्पष्ट बोल दो कि घट-पटादिरूप से परिणामों में ढलनेवाला शब्दब्रह्म व्यक्ति-व्यक्ति से यानी व्यक्तिभेद से <sup>B</sup>भिन्न होता है या <sup>B</sup>नहीं ? प्रथम पक्ष में, <sup>A</sup>शब्दब्रह्म में अनेकता (भेद) की विपदा होगी, क्योंकि वह भिन्न भिन्न अनेक व्यक्तियों से अभेद रखता है जैसे उन व्यक्तियों का स्वरूप। 20 दूसरी ओर परपक्षी तो ब्रह्म को 'एक' ही मानता है, उस का विलोपन होगा। <sup>B</sup>दूसरे पक्ष में पूरे विश्व में एकदेशीयता, समकालीनता और एकाकारता की प्राप्ति होने से प्रतिभास भी एकाकार ही प्रसक्त होगा क्योंकि नीलादि व्यक्तियों से एक ब्रह्म अभेदभाव रखता है। तथा, जैसे नित्यशब्दअभिन्न उस का स्वरूप भी नित्य होता है वैसे जगत् को नित्यशब्दमय मानने पर सभी पदार्थों में नित्यत्व का अतिप्रसंग होगा। तथा, नित्य शब्द की उपलब्धिकाल में तदभिन्न भावों की भी सदैव उपलब्धि 25 चलती रहेगी तो शब्दों से पृथक् उन के परिणामों की सिद्धि ही न होने से परिणामों की प्रतीति का भी लोप प्रसक्त होगा। निष्कर्ष, भावों में परिणामप्रेरित शब्दमयता संगत नहीं है। (मूल प्रथम विकल्प पूरा हुआ, अब हेतुकृत दूसरे विकल्प का निषेध प्रारम्भ होता है।)

### [ शब्द से जगत् की उत्पत्ति वाला दूसरा 'हेतुकृत' विकल्प ]

<sup>B</sup>शब्द से उत्पन्न होने के कारण जगत् का शब्दमय होना — यह दूसरा पक्ष, (शब्दहेतुक जगत् 30 शब्दमय है) यह भी असंगत है। शब्द नित्य है, नित्य पदार्थ अविकारी होता है, अविकारी नित्य हेतु से कार्य का उदय असंभव है अतः जगत् शब्दजन्य नहीं होने से शब्दमय नहीं हो सकता।



शब्दाख्यं चेत् कारणमविलम्बम् अपरस्यापेक्षणीयस्याभावात् किं न तानि युगपदुदयमनुभवेयुः ? अपि च, एकस्वभावाच्छब्दब्रह्मणोऽन्यस्य भावान्तरस्योत्पत्तिर्यद्यङ्गीक्रियते तदा 'अर्थरूपेण तद् ब्रह्म विवृत्तम्' (१६८-६) इत्येतद् न सिद्धिमासादयेत्। न ततोऽर्थान्तरोत्पादे तत्स्वभावमनासादयतोऽन्यस्य तादृच्येण विवर्तो युक्तिसंगत इति सर्वथापि प्रतिज्ञार्थो न घटते। 'शब्दानुस्यूतत्वात्' इति हेतुश्चासिद्धः, न यतः

5 परमार्थनैकरूपानुगमो भावानां सम्भवति, स्वस्वभावव्यवस्थिततया सजातीयव्यावृत्तस्वरूपत्वात्तेषाम्। विजातीयव्यावृत्तिकृतं त्वेकाकारानुस्यूतत्वं कल्पनाशिल्पिनिर्मितमेषाम् घट-शरावोदञ्चनादिषु परमार्थतो भिन्नेष्वपि अमृदात्मकपदार्थव्यावृत्तिकृतमृदूपानुस्यूतवत्। न च नीलादिनां कल्पनाविरचितमपि शब्दाकारानुस्यूतत्वमस्ति, नील-पीतादिषु प्रतिभासं विभ्राणेषु शब्दानुस्यूतत्वस्य कल्पनयाप्यनुल्लेखात्। तत् कथं नासिद्धो हेतुः ?

[ अविभक्तब्रह्मतत्त्वोपपादनं तत्प्रतिविधानं च ]

10 अथाऽविभक्तमेव सदा ब्रह्मात्मकं तत्त्वम् न तस्य परमार्थतः परिणामः येनैकदेशत्वं नीलादेरेकाकारं घट-पटादि कार्यो का उदय एक साथ नहीं, क्रमिक होता है यह सुप्रसिद्ध है, शब्दब्रह्म में तो नित्य होने से क्रम ही नहीं है तब उस से क्रमिक कार्यो की उत्पत्ति की आशा कैसे रखी जाय ? कार्यो की उत्पत्ति में जो विलम्ब होता है उस का मूल है कारणों की विकलता। शब्दरूप कारण की विकलता तो है नहीं, अतः उस की उपस्थिति में विलम्ब भी संभव नहीं, फिर अन्य किसी की अपेक्षा भी

15 नहीं है तो प्रश्न खडा होगा कि उस के सभी कार्य एक साथ क्यों उदयापन्न नहीं होंगे ?

उपरान्त एक ही स्वभाव वाले शब्दब्रह्म से अन्य अन्य भावों की उत्पत्ति मानी जायेगी तो पहले जो वाक्यपदीय (१-१) का उद्धरण दे कर कहा था कि 'शब्दब्रह्म अर्थरूप से विवर्त्तापन्न होता है' यह संगत नहीं होगा। कारण :- अन्य अन्य भावों की ब्रह्म से व्यावृत्ति मानेंगे तो प्रत्येक में स्वभाव भेद भी मानना पडेगा, तब अन्यभाव के उत्पादकाल में ब्रह्मस्वभाव को प्राप्त न होनेवाला अन्य भाव

20 का तादृच्यप्रयुक्त विवर्त्त युक्तियुक्त नहीं हो सकता। अतः 'जगत् शब्दमय है' यह प्रतिज्ञा लेशमात्र संगत नहीं है।

[ शब्दाकारानुविद्धत्व हेतु में असिद्धि दोष ]

पहले अनुमानप्रयोग में जो 'शब्दाकारानुविद्धत्व' हेतु (१६९-२५) कहा था वह भी असिद्ध है। कारण :- पदार्थों में वस्तुतः किसी एक (शब्द या सामान्य) की अनुवृत्ति सम्भवित नहीं है क्योंकि

25 सभी भाव अपने अपने स्वभाव में स्वतः ही तन्निष्ठ होने से सजातीयों से भी स्वतः ही व्यावृत्त स्वरूपवाले हैं। तथा उन भावों में विजातीयव्यावृत्तिप्रयुक्त एकाकारानुवृत्ति तो कल्पना स्थपति रचित है (वास्तव नहीं है) जैसे कि परमार्थ से भिन्न भिन्न घट-शराव-उदंच आदि में (बौद्धमत से) अमृद्व्यावृत्तिप्रयुक्त मिट्टीरूपता की अनुवृत्ति। (अतद्व्यावृत्तिरूप सामान्य तुच्छ है इस लिये)। जब नीलादि बाह्यभावों में उक्त ढंग से एकाकारानुवृत्ति घटती नहीं, तो कल्पनारचित शब्दाकारानुवृत्ति के घटने की

30 तो बात ही कहाँ ! अरे ! दर्शन में भासित होनेवाले नील-पीतादि में कल्पनातरंग से भी शब्दाकार की अनुवृत्ति का उल्लेख प्रतीत नहीं होता, तब 'शब्दाकारानुविद्धत्व' हेतु असिद्ध क्यों नहीं होगा ?

ब्रह्मवादी :- ब्रह्मात्मक तत्त्व सदैव अविभक्त (एक-अखंड) ही रहता है, उस का कोई वास्तविक परिणाम

वा संवेदनं भवेदिति प्रेर्यते। तच्चाऽविद्योपहतबुद्धयो नीलादिभेदेन विविक्तमिव (विचित्रमिव) मन्यन्ते।  
यदुक्तम् - [ ]

यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपप्लुतो मनः। संकीर्णमिव मात्राभिश्चित्राभिरभिमन्यते।।

तदेव(? थेद)ममृतं (तथेदममलं) ब्रह्म निर्विकारमविद्यया। कलुषत्वमिवापन्नं भेदरूपं विवर्तते।। इति।

न हि नीलादीनामवस्तरूपत्वादेकदेशत्वप्रसंगः, नापि संवेदनस्याऽभेदः अविद्यारचितत्वात् तद्भेदस्येति 5  
श्लोकद्वयाभिप्रायः।

अत्र प्रतिविधीयते— प्रमाणाधीना हि प्रमेयव्यवस्था। न चैवंभूतब्रह्मसिद्धये प्रमाणमुपलभ्यते किञ्चित्।  
तथाहि— न तावत् प्रत्यक्षं तथावस्थितब्रह्मस्वरूपावेदकम् नीलादिव्यतिरेकेण तत्रापरस्य ब्रह्मस्वरूपस्या-  
ऽप्रतिभासनात्। अथ ज्ञानात्मरूपवत् स्वसंवेदनस्याध्यक्षत एव शब्दब्रह्म सिद्धम् ज्योतिस्तदेव शब्दात्म-  
त्वाच्चैतन्यरूपत्वाच्चेति प्रतिपाद्यते। असदेतत्— स्वसंवेदनविरुद्धत्वात्। तथाहि— अन्यत्र गतचित्तोऽपि 10  
रूपं चक्षुषा वीक्षमाणोऽभिलापाऽसंसृष्टमेव नीलादिप्रत्ययमनुभवतीति विस्तरेण प्रतिपादितमेव सौगतैः नेह  
प्रदर्शयते ग्रन्थगौरवभयात्। तेन 'वाग्रूपता चेद् व्युत्क्रामेत्' इत्यादि(ना ?)(वाक्य० १-१२५) तथा न  
'सोऽस्ति प्रत्ययो लोके' इति च (वाक्य० १-१२४) प्रत्युक्तं द्रष्टव्यम्। तत्राध्यक्षतो बाह्येन्द्रियजात्

नहीं होता, जिस से कि परिणामरूप नीलादिअभेद से एकदेशीयता की, अथवा नीलादि सभी भावों की  
ब्रह्माभेदप्रयुक्त एकाकार संवेदन की आपत्ति दी जा सके। हाँ, अविद्या के उपघात से बुद्धिमंत लोग नील- 15  
पितादि भेद से ब्रह्म खंडों में विविक्त हो - विभक्त हो ऐसा मान लेते हैं। कहा गया है ( ) -

'तिमिरोगप्रस्त लोगों को विशुद्ध आकाश भी विचित्र मात्राओं (रेखाओं) से हरा-भरा दिखता  
है - इसी प्रकार निर्मल अमृततुल्य निर्विकार ब्रह्म अविद्या के कारण मलिनताग्रस्त एवं भेदग्रस्त विवर्तन  
करता है।'

दोनों श्लोकों का तात्पर्य है कि नीलादि कोई वस्तरूप ही नहीं है अत एकदेशता की आपत्ति 20  
नहीं है, संवेदन (ब्रह्म) का नीलादि से अभेद भी नहीं है क्योंकि उस का भेद भी कल्पनारचित है।

### [ ब्रह्मसिद्धि के लिये प्रमाणपृच्छा ]

ब्रह्मवादप्रतिविधान :- प्रमेय की व्यवस्था प्रमाणाधीन होती है। ब्रह्मवादीस्वीकृत ब्रह्मतत्त्व की सिद्धि  
के लिये कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। देखिये - प्रत्यक्ष और परोक्ष दो ही प्रमाण है। उन में  
ब्रह्म के सदैव अविभक्तस्वरूप का प्रत्यक्ष से तनिक भी समर्थन नहीं होता। प्रत्यक्ष ज्ञान में नीलादि 25  
भेदों को छोड़ कर किसी एक अनुगत शब्दब्रह्म स्वरूप का प्रतिभास नहीं होता। यदि कहें - 'स्वसंवेदन  
का जैसे ज्ञानात्मकस्वरूप प्रत्यक्ष से सिद्ध है वैसे ही ज्योतिस्वरूप शब्दब्रह्म सिद्ध ही है, वह शब्दात्मक  
भी है और चैतन्यस्वरूप है।' - तो यह गलत है, क्योंकि स्वसंवेदनविरुद्ध है। कैसे यह देखिये  
- चित्त कुछ दूसरे विचार में हो तब संमुखवर्ति नीलरूपादि को नेत्र से देखने वाला अभिलापविरहित  
शुद्ध नीलादिबोध का ही अनुभव करता है - बौद्धमतवाले ने इस तथ्य का विस्तृत निरूपण कर 30  
दिया है, ग्रन्थगौरव के भय से यहाँ पुनः निरूपण करना जरूरी नहीं। अत एव बौद्धप्रतिपादन से  
वह निरस्त हो जाता है जो वाक्यपदीयग्रन्थकार ने श्लो० १/१२४-२५ में कहा है 'ऐसी कोई प्रतीति

स्वसंवेदनाद्वा तथाभूतब्रह्मसिद्धिः।

नाप्यनुमानतस्तत्सिद्धिः यतोऽनुमानं कार्यलिङ्गजम् स्वभावहेतुप्रभवं वा तत्सिद्धये व्याप्रियेत ? अनुपलब्धेः प्रतिषेधविषयत्वेन विधावनधिकारित्वात्। तत्र न तावत् कार्यलिङ्गजं तत्र व्याप्रियते, नित्यस्य क्रम-योगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात् ततः कार्यस्यैव कस्यचिदसम्भवात्। नापि स्वभावहेतुप्रभवस्य तस्य तत्र व्यापारः ब्रह्माख्यस्य धर्मिणोऽसिद्धत्वेन तत्स्वभावभूतस्य धर्मस्य सुतरामसिद्धेः। न चैतद्व्यतिरिक्तमपरं विधिसाधकं लिङ्गमस्ति तस्य स्वसाध्यप्रतिबन्धनाभावात्। न चाऽप्रतिबद्धं लिङ्गं युक्तम् अतिप्रसंगात्। शब्दरूपान्वयत्वं चाऽसिद्धत्वात् न पारमार्थिकब्रह्मस्वरूपसाधनायालम्। नाप्यागमात्तत्सिद्धिः तस्याऽनवस्थितत्वात्। किंच, ज्ञानमात्रार्थकरणेऽप्ययोग्यं ब्रह्म चामृतम्। तदयोग्यतयाऽरूपं तद्वाऽ(?द्ध्य) वस्तुष्व(त्व)लक्षणम्।।  
— [ ] इत्येतत् प्रतिपादितमनेकधा न पुनरुच्यते।

यदपि न्यगादि 'तं तु परमं ब्रह्मात्मानमभ्युदय-निःश्रेयसफलधर्मानुगृहीतान्तःकरणा योगिन एव नहीं है'.... तथा वाणीरूपता यदि लुप्त हो जाय... इत्यादि। निष्कर्ष, बहिरिन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष या स्वसंवेदन से तथाविध ब्रह्म की सिद्धि नहीं शक्य है।

### [ शब्दब्रह्म की सिद्धि अनुमान से दुष्कर ]

अनुमान से भी शब्दब्रह्म की सिद्धि शक्य नहीं है। कौन से अनुमान से सिद्धि करेंगे ? कार्यलिंगक या स्वभावहेतुक से ? तीसरा प्रकार अनुपलब्धिमूलक भी अनुमान है किन्तु वह अभावसाधक होने से, भावसिद्धि के लिये निकम्मा है। कार्यलिंगक अनुमान से ब्रह्मसिद्धि शक्य नहीं, क्योंकि नित्य होने के कारण ब्रह्म का कोई कार्य ही नहीं हो सकता, क्योंकि नित्य पदार्थ क्रमिक या एकसाथ किसी अर्थक्रिया करे इस में विरोध है। स्वभावहेतुक अनुमान भी नित्यब्रह्मसिद्धि के लिये नपुंसक है क्योंकि जब तक ब्रह्मनामक धर्मी ही अप्रसिद्ध है तो उस के स्वभावभूत हेतुधर्म की सुतरां असिद्धि होगी।  
इन दो सें पृथक् और कोई भावात्मक ब्रह्म के साधक लिंग की सत्ता ही नहीं है क्योंकि होगी तो उस लिंग में अपने साध्य को सिद्ध करने के लिये व्याप्ति ही नहीं मिलेगी। व्याप्तिशून्य लिंग की कोई कीमत नहीं है, क्योंकि तब तो कोई भी वस्तु लिंग बन कर साध्य सिद्ध कर बैठेगा। यदि प्रत्येक प्रतीति में शब्दस्वरूपानुविद्ध के बल से पारमार्थिक शब्दब्रह्म सिद्धि करने जायेंगे तो निष्फलता मिलेगी क्योंकि प्रत्येक प्रतीति में शब्दस्वरूप का अन्वय ही असिद्ध है।

आगम प्रमाण से भी उस की सिद्धि दुष्कर है क्योंकि किसी भी आगम का भरोसा नहीं हो सकता। तथा, — “अमृतमय ब्रह्म ज्ञानमात्रस्वरूप अर्थ के करण में भी योग्य (समर्थ) नहीं, अतः अयोग्य होने से स्वरूपहीन है अथवा वह अवस्तुस्वरूप है।” — इस तथ्य का बार बार निरूपण हो चुका है, पुनरावर्तन नहीं करते।

### [ योगिजन के ब्रह्मदर्शन की मीमांसा ]

यह जो कहा है — ‘अभ्युदय एवं निःश्रेयस फलदायी धर्म से आप्लावित चित्तवाले योगिजन ही उस परम ब्रह्मात्मा का दर्शन करते हैं (१६९-२१)’ — वह भी असंगत है। कारण :- यदि ब्रह्मात्मा का ऐसा कोई व्यापार हो जिस से उन योगियों को अपने स्वरूप का दर्शनरूप कार्य निष्पन्न हो तभी

पश्यन्ति' इति (१६९-२) तदप्यसङ्गतमेव। यतो यदि योगजे ज्ञाने तस्य व्यापारो भवेत् तदा तत्स्वरूपं योगिनः पश्यन्तीति युक्तं भवेत्। न च तज्ज्ञाने तस्य व्यापार इति प्रतिपादितम्। न च तद्विषयज्ञानोत्पत्त्या योगिनस्तं पश्यन्तीति नाऽस्माभिरभिधीयते — तद्व्यतिरिक्तस्य योगिनस्तज्ज्ञानस्य चाऽभावात् — किन्तु योगित्वावस्थायामात्मज्योतीरूपं स्वत एव तत् प्रकाशत इति 'योगिनस्तत् पश्यन्ति' इत्युच्यत इति वक्तव्यम्, यतो योग्यवस्थातः प्राग् यदि ब्रह्मणो ज्योतीरूपत्वस्वभावस्तदा सदैवात्मज्योतीरूपत्वात् तस्य न कदाचिद् 5 अयोग्यवस्थेत्ययन्सिद्धः सर्वेषां मोक्षः स्यात्। न च भवदभिप्रेताऽद्वयसंवेदनचित्राकारपरिग्रहप्रतिभास-वदविभागस्याप्यविद्यावशाद् ब्रह्मणोऽविशुद्धसन्ततीनां तथाप्रकाशनम् इति वक्तव्यम्, यतो न तद्व्यतिरेकेणान्येऽविशुद्धसन्ततयो भवदभिप्रायेण सन्ति ते(?)षां तथा तत्प्रतिभासः। न च स्वयमेव तथा प्रकाशत इति वक्तव्यम्, मोक्षाभावप्रसङ्गात्, सर्वदैव तस्य तथाप्रकाशात्मकत्वात्।

अस्मन्मते तु विशुद्धज्ञानान्तरोदयात् मुक्तिर्घटत एव। न च भवन्मतेन तद्व्यतिरेकिणी अविद्या 10 सम्भवति यद्वशात् तथा प्रकाशन इत्युच्यते(?च्येत)। तद्व्यतिरेके चाऽविद्यायास्तद्वशात् 'तदेव तथा प्रकाशते' इति वचो जाघटीति। न च 'अविद्यावशात् तत्तथा ख्याति' इत्यनेन तस्याऽविद्यात्मकत्वमेव

आप का उपरोक्त कथन युक्तिसंगत हो सकता है, किन्तु पहले ही हम कह चुके हैं कि नित्य ब्रह्म का किसी भी कार्योत्पत्ति (ज्ञानोत्पत्ति) के प्रति कोई व्यापार हो नहीं सकता।

**ब्रह्मवादी** :- हम ऐसा नहीं कहते कि स्वविषयकज्ञानोत्पत्ति के द्वारा योगीजन उस ब्रह्म का दर्शन 15 करते हैं — 'ऐसा हम बोलेंगे तब तो उस का अर्थ ऐसा निकलेगा कि ऐसे दर्शन से वंचित जन योगी नहीं है और उन को वैसा ब्रह्मज्ञान भी नहीं है। हम तो इतना कहते हैं कि योगिअवस्था में स्वत एव आत्मज्योतिरूप ब्रह्म स्फुरित होता है।' तो यह बोलने जैसा नहीं,

**द्वैतवादी** :- क्योंकि योगिअवस्था के पूर्व में ब्रह्म में ज्योतीरूप स्वभाव नहीं है ? यदि है तो सदैव स्वयं आत्मज्योतीरूप होने के कारण ब्रह्म से अभिन्न ऐसी कोई अयोगीअवस्था है वहाँ ? फिर 20 तो अनायास ही सभी का मोक्ष हो जायेगा।

**ब्रह्मवादी** :- आप की जैसे मान्यता है कि किसी एक भाव का संवेदन एक-अखंड होता है फिर भी वह चित्राकार (अनेकाकार) परिग्रहण करके भासित होता है, उसी तरह निर्विभागअखंड ब्रह्म भी अविशुद्धचित्तसंतानवाले को अविद्या के कारण भिन्न भिन्न अवस्थावाला भासित हो सकता है।

**द्वैतवादी** :- यह भी बोलने जैसा नहीं, क्योंकि तब अविद्या के प्रभाव से किसी का मोक्ष ही 25 नहीं होगा, कारण :- नित्य ब्रह्म का सदैव तथाविध प्रकाशरूप ही (अविद्या के कारण भेदप्रकाशन) स्वभाव है।

### [ द्वैतवादी के क्षणिकतामत में मोक्षाभावापत्ति नहीं ]

**हमारा मत** :- क्षणिकज्ञान सन्तान में पूर्व ज्ञान क्षणों में अयोगिअवस्था और बाद में योगाभ्यास से उत्तर काल में विशुद्ध ज्ञानक्षणों के उत्पाद से मुक्ति-सिद्धान्त युक्तिसंगत ही है। आप के (ब्रह्मवादी 30 के) मत में द्वैत न होने से ब्रह्म से पृथक् अविद्या का सम्भव ही कहाँ है — जिस से कहा जा सके कि अविद्या के कारण ब्रह्म विविधाकार भासता है ? अविद्या यदि ब्रह्म से अभिन्न अविभक्त हो

प्रकाश्यते' इति वक्तव्यम्, मोक्षाभावप्रसक्तेरेव। यतो न नित्यैकरूपब्रह्मण्यविद्यात्मके स्थिते तदात्मकाऽविद्याव्यपगमः कुतश्चित् सम्भवी येनाविद्याव्युपरतेर्मुक्तिर्भवेत्। न च तद्व्यतिरेकवदविद्याङ्गीकरणेऽप्यविद्याप्रकाशात् (? द्यावशात्) तस्य तथाप्रकाशनं युक्तिसंगतम्, नित्यत्वादानाधेयातिशये ब्रह्मणि तस्या अकिञ्चित्करत्वात्, अत एव तस्य तथाऽसम्बन्धात् संसाराभावप्रसक्तिश्च। न च सा तत्त्वाऽन्यत्वाभ्याम-  
5 निर्वचनीयेति वक्तव्यम् वस्तुधर्मस्य गत्यन्तराभावात्। न चाऽवस्तुत्वमेव तस्याः, तथात्वे तस्या तथाख्यात्य-  
योगादतिप्रसंगात्। न च तथाभूतार्थक्रियाकारिण्यास्तस्या 'वस्तु' इति नामकरणे कश्चिद् विवादः।

अस्मन्मते तु तथाभूताऽभिनिवेशवासनैवाऽविद्या। वासना च कारणात्मिका शक्तिरिति पूर्वपूर्वकरण-  
भूतादविद्यात्मकज्ञानादुत्तरोत्तरज्ञानकार्यस्य वितथाकाराभिनिवेशिन उत्पत्तेरेवाविद्यावशात् तथाख्यातिरित्युच्यते।  
तस्याश्च योगाद्यभ्यासादसमर्थतरतमक्षणोदयक्रमतः प्रच्युतेः शुद्धतरसंवित्सन्तानप्रादुर्भावात् मुक्तिप्राप्तिरित्युत्पन्नैव  
10 बन्ध-मोक्षव्यवस्थितिः। नित्यैकरूपे च ब्रह्मणि अवस्थाद्वयाऽयोगात् न संसाराऽपवर्गो भवन्मते सम्भवतः।

तब आप का कहना उचित होगा कि 'अविद्या के कारण वह ब्रह्म विविधाकार भासित होता है।' यदि कहें कि — 'अविद्या के कारण ब्रह्म विविधाकार ज्ञात होता है इस विधान से आप समझ जाओ कि ब्रह्म का अविद्यात्मकत्व ही प्रकट होता है' — तो ऐसा नहीं बोलना, क्योंकि तब मोक्षप्राप्ति का सम्भव ही नहीं रहेगा। कारण, अखंड नित्य ब्रह्म यदि अविद्यात्मक है तो अविनाशी ब्रह्मात्मक होने  
15 से अविद्या का किसी भी उपाय से नाश ही सम्भव नहीं होगा जिस से कि अविद्याहासरूप मोक्ष हो सके। अविद्या को ब्रह्मभिन्न स्वीकार ले, फिर भी पृथक् अविद्या के कारण ब्रह्म का विविधाकार स्फुरण मानना युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि ब्रह्म नित्य होने से उस में किसी विकारस्वरूप अतिशय का आधान शक्य न होने से, पृथक् अविद्या अकिञ्चित्कर ही पडी रहेगी, अत एव उस का ब्रह्म से कोई तादात्म्यादि सम्बन्ध न घटने से संसार का भी लोप प्रसक्त होगा। ऐसा मत कहना कि —  
20 'अविद्या भिन्न है या अभिन्न, सत् है या असत् किसी भी प्रकार से निर्वचनीय नहीं है (अतः भेद-अभेद पक्ष में जो मोक्षाभाव-संसाराभाव दूषण दिये गये हैं वे निरस्त हो गये)' — क्योंकि कोई भी वस्तु या उस का धर्म तद्रूप होगा या अतद्रूप होगा, तीसरा कोई अनिर्वचनीयादि प्रकार ही नहीं है। यदि अविद्या को अवस्तु ही मानेंगे तो उस की जो ऐसी ख्याति है कि उस के प्रभाव से ब्रह्म विविधाकार भासित होता है वह घट नहीं सकता, क्योंकि फिर तो ब्रह्म तत्त्व की सत्ता में भी उस  
25 का प्रभाव मानना पडेगा। ब्रह्म के विविधाकार में प्रदर्शन रूप अर्थक्रिया करनेवाली अविद्या का यदि 'वस्तु' ऐसा नामकरण किया जाय तो कोई विवाद नहीं रहता। (क्योंकि वह नाम सार्थक ही है।)

### [ पर्यायास्तिकनय से बन्ध-मोक्ष की उपपत्ति ]

हमारे पर्यायास्तिक मत के अनुसार :- क्षणिक ज्ञानान्तर्गत मिथ्यात्वादि अभिनिवेशगर्भित वासना का ही दूसरा नाम अविद्या है। वासना का तात्पर्य है अन्तर्निहित कारणात्मक शक्ति। पूर्व-पूर्व कारणस्वरूप  
30 अविद्याअभिन्न ज्ञान क्षणों से उत्तरोत्तर ज्ञानक्षणात्मक कार्यो मिथ्याअभिनिवेशगर्भित उत्पत्ति को ही हम कहते हैं अविद्यामूलक तथाख्याति। उस अविद्या का हास होता है योगादिअभ्यासमूलक असमर्थ-असमर्थतर-असमर्थतम ज्ञानक्षणों के क्रमिक उदय से। तब शुद्ध शुद्धतर शुद्धतम संवेदनपरम्परा के प्रादुर्भाव से

ब्रह्मणश्चैकत्वादेकस्य मुक्तौ सर्वेषां मुक्तिप्रसंगः अमुक्तौ वैकस्य सर्वेषाममुक्तिप्रसक्तिश्चाऽनिर्वाया। न चात्मज्योतीरूपत्वेऽयोग्यवस्थायां किञ्चिदस्य प्रमाणं प्रसाधकमस्ति। यथा हि ज्ञानं स्वसंवेदनप्रसिद्धं प्रकाशात्मतया नैवं शब्दः सर्वसंविदि संवेद्यत इति प्रदर्शितम्। अथ अयोग्यवस्थायां ब्रह्मणो नात्म-प्रकाशताऽङ्गीक्रियते: नन्वेवमपि प्रागविद्यमान(ऽ)योग्यवस्थायां सा प्रादुर्भवतीति सुस्थितं तस्य नित्यत्वम् !!। निराकृतश्च पुरुषाद्वैतवादः प्रागिति समानन्यायत्वाद्यमपि तथैव निराकर्तव्य इत्यलमितिप्रसङ्गेन। 5

यद्यपि 'अभेदेन संकेतकरणं शब्दार्थयोस्तादृष्यं स्थापयति' इत्युच्यते (१७०-३) तदप्युक्तम्, न हि 'अयं घटः' इति घटशब्दस्य घटार्थता (तदर्थस्य वा) घटशब्दता प्रकाशयते, किन्तु 'अयं घटशब्दवाच्यः घटार्थवाचको वा' इत्ययमन्वयः प्रकाशयितुमभिप्रेतः। अन्यथा प्रत्यक्षप्रतीतिबाधितार्थप्रकाशकत्वेन इदमुन्मत्तकवचनवदनादरणीयं स्यात्। शब्दार्थयोश्च तादात्म्ये क्षुराऽग्निमोदकादिशब्दोच्चारणे आस्यपाटन-दहन-पूरणादिप्रसक्तिः अनवगतसमयस्याभिधानोपलब्धौ तदर्थस्य अर्थोपलब्धौ च तद्वाचकस्यावगतिप्रसक्तिश्च, 10

मुक्तिप्राप्ति होती है - इस प्रकार बन्ध-मोक्षव्यवस्था सही ढंग से होती है। एक स्वरूप नित्य ब्रह्म की पृथक् पृथक् दो अवस्था का सम्भव न होने से ब्रह्मवादिमत में संसार-मोक्ष की सही व्यवस्था शक्य नहीं है। सभी जीवों में ब्रह्माभेदप्रयुक्त अभेद होने से ब्रह्म एक होने के कारण एक जीव की मुक्ति होने पर सभी जीवों की मुक्ति प्रसक्त होगी। अथवा एक जीव अमुक्त रहेगा तो तदभिन्न सर्व जीव अमुक्त रह जायेंगे। इन दोषों का निवारण नहीं होगा। 15

### [ आत्मज्योतिस्फुरणरूप ब्रह्म का कोई साधक नहीं ]

यह कहा था कि - 'ब्रह्म आत्मज्योतिरूप स्फुरित होता है' - लेकिन अयोगीअवस्था में उस का साधक कोई प्रमाण नहीं है। जैसे प्रकाशात्मकरूप से ज्ञान स्वसंवेदनसिद्ध है उस तरह प्रत्येक संवेदन में शब्द का अन्वय संविदित नहीं होता - यह पहले (३८४-७) कह दिया है। आप कहेंगे कि अयोगीअवस्था में ब्रह्म की प्रकाशात्मकता हम नहीं मानते - वाह वाह, पूर्व (अयोगी) अवस्था में जो प्रकाशात्मकता 20 नहीं है वह बाद में योगी-अवस्था में उत्पन्न होती है फिर भी ब्रह्म या ब्रह्म की प्रकाशरूपता नित्य है, सुंदर व्यवस्था बनाई। याद कर लो, हमने पहले पुरुषाद्वैतवाद का निरसन कर दिया है, समान युक्तियों से उसी तरह यह शब्दाद्वैतवाद भी निरस्त हो जाता है। अधिक चर्चा से विश्राम।

### [ अभेदभावकृतसंकेतशब्दार्थतादात्म्य असिद्ध ]

यह जो कहा था (१७०-१८) - 'यह घट है' इस प्रकार अभेदभाव से किया गया संकेत, शब्द-अर्थ के तादात्म्य को प्रस्थापित करता है' - वह अयुक्त है। 'अयं घटः' ऐसे उल्लेख का तात्पर्य घटशब्द की घटरूपता अथवा घट की घटशब्दता को विषय नहीं करता, किन्तु यह (अर्थ) घटशब्दवाच्य है, अथवा यह (घट) शब्द घटरूप अर्थ का वाचक है इतना ही द्योतन करता है। यदि घटशब्द से अभेदात्मक घटार्थ का ही द्योतन मानेंगे तो अभेद सिद्ध नहीं किन्तु बाधित होने से वह प्रत्यक्षज्ञानबाधित अर्थ का प्रकाशन करने के कारण पागल नर के वचन की तरह अनादरपात्र बनेगा। 30

यदि शब्द-अर्थ का अभेद होगा तो 'अस्त्र' बोलने से जिह्वाछेद, 'अग्नि' बोलने से जलन और 'लड्डु' बोलने से पूरा मुख भर जायेगा। तथा, जिस को संकेतज्ञान नहीं उस को नाममात्रश्रवण होने

अन्यथा तादात्म्याऽयोगात् 'निश्चीयमानाऽनिश्चीयमानयोर्भेदान्निश्चायकं वाध्यक्षं परपक्षे' [ ] इत्युक्तत्वात्। न च यो यत्प्रतिपादकः स तदात्मको धूमक्षा(?मान्या)दिभिर्यभिचारात्। न च शब्दस्य अर्थविशेषणत्वेन प्रतीतेस्तदात्मकता, देशभेदेन शब्दार्थयोरुपलब्ध्येः। न च भेदे तस्य तद्व्यवच्छेदकत्वमनुपपन्नम्, काकादेर्भिन्नस्यापि गृहादिकं प्रति व्यवच्छेदकत्वप्रतीतेः। तत्र शुद्धद्रव्यास्तिकाभिमतनामनिक्षेपो युक्तियुक्त इति भावनिक्षेपप्रति-  
5 पादकपर्यायास्तिकाभिप्रायः।

[ शब्दार्थनित्यसम्बन्धवादिमीमांसकमतनिरसनम् ]

अशुद्धद्रव्यास्तिकप्रकृतिव्यवहारनयमनावलम्बिनस्तु मीमांसका भिन्नानेव शब्दार्थसम्बन्धान् नित्यानाहुः  
— 'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः' (मी०द०१-१-५) इति वचनात्। 'औत्पत्तिकः' इति विरुद्धलक्षणया  
नित्यस्त्वैर्वाख्यातः। नित्यत्वे च सम्बन्धस्य कृतकसम्बन्धवादिनो, येनावगतसम्बन्धेन 'अयम्' इत्यादिना  
10 शब्देनाऽप्रसिद्धसम्बन्धस्य घटादेः सम्बन्धः क्रियते तस्यापि यद्यन्येन प्रसिद्धसम्बन्धेन सम्बन्धः तदा  
तस्याप्यने(?न्ये)नेति अनवस्थाप्रसक्तिरिति यो दोषः सोऽकृत(क)सम्बन्धवादिनोऽस्मान्न श्लिष्यतीत्युक्तवादिन

पर अभेदभाव से अर्थ का भान, एवं नाम सुने बिना भी अर्थ को देखने पर नाम का भान प्रसक्त  
होगा। ऐसा नहीं होगा तो अभेद भी नहीं रहेगा। कहा गया है कि — 'प्रतिवादीपक्ष में,(एक जब)  
निश्चित किया जाता है (तब अन्य) अनिश्चित रहता है तो उन दोनों का भेद होने से (आखिर)  
15 प्रत्यक्ष ही निश्चायक है।' — जो जिस का निवेदक हो वह तदात्मक नहीं होता, क्योंकि धूम अग्नि  
का निवेदक है किन्तु अग्निरूप नहीं — यह व्यभिचार है। अर्थ के विशेषणरूप में प्रतीत होने से  
शब्द अर्थात्मक नहीं बन जाता, क्योंकि शब्द और अर्थ का देशभेद स्पष्ट दृष्टिगोचर है। — 'यदि  
विशेषणभूत शब्द अर्थ से भिन्न होगा तो अर्थ का व्यावर्तक नहीं बनेगा।' — ऐसा कथन युक्त नहीं  
है, क्योंकि भेद होने पर भी काग गृहादि का व्यावर्तक बनता है यह दिखता है।

20 इस से भावनिक्षेपनिवेदकपर्यायास्तिक अभिप्राय स्पष्ट है — शुद्ध द्रव्यास्तिकमान्य नामनिक्षेप  
युक्तिसंगत नहीं है।

[ अशुद्धद्रव्यास्तिकमतप्रविष्ट मीमांसकनित्यसम्बन्धवादसमीक्षा ]

जिनोक्त नयसमुदाय में, शब्दार्थ के संदर्भ में यदि मीमांसक का अवतार ढूँढा जाय तो अशुद्धद्रव्यास्तिक  
स्वरूपव्यवहारनय मत में मेल बैठता है। शुद्ध द्रव्यास्तिक तो अंतिमसामान्यवादी संग्रह नय है, व्यवहार  
25 नय सामान्य का स्वीकार करता है किन्तु लोकव्यवहार के अनुसार आवश्यक विशेषों का भी स्वीकार  
करता है अतः उसे यहाँ अशुद्धद्रव्यास्तिकप्रकृति कहा गया है। मीमांसक प्रति अर्थद्रव्य शब्दार्थ सम्बन्ध  
को सर्वानुगत शब्द सामान्यरूप न मान कर भिन्न भिन्न मानता है — इस तरह भेदवादी होने से  
उस का अशुद्ध द्रव्यास्तिक में अवतार उचित है। मीमांसक मत यह है कि शब्द-अर्थ का सम्बन्ध  
भिन्न भिन्न है एवं नित्य है। यद्यपि मीमांसासूत्र (१-१-५) में कहा है कि 'शब्द का अर्थ के साथ  
30 सम्बन्ध औत्पत्तिक (= उत्पत्तिशील) है।' (इस में अनित्यता व्यक्त होती है किन्तु) 'औत्पत्तिक' पद  
का शक्यार्थ न ले कर 'उत्पत्तिविरोधी' (यानी नित्य) ऐसा लक्ष्यार्थ ग्रहण करना है — ऐसा उस सूत्र  
के व्याख्याकार का अभिप्राय है। इसे विरुद्धलक्षणा कहते हैं क्योंकि यहाँ उत्पत्तिरूप शक्यार्थ का विरोधी

एनेऽपीति भावनिक्षेपवादी पर्यायास्तिकः। अयुक्तवादिता च नित्यवस्तुनः शब्दादेः कस्यचिदसम्भवादिति प्रतिपादितत्वादनवगन्तव्या(ः?)। अनवस्थादूषणमपि कृतकसम्बन्धपक्षप्रतिपादितमयुक्तमेव 'अयम्' इत्यादेः शब्दस्यानादिव्यवहारपरम्परातः सिद्धसम्बन्धत्वात्, तेनाऽनवगतसम्बन्धस्य घटादिशब्दस्य संकेतकरणाद् अकृतसम्बन्धवादिनोऽपि चानवस्थादोषस्तुल्य एव। तथाहि— अनभिव्यक्तसम्बन्धस्वाभिव्यक्तसम्बन्धेन शब्देन यदि सम्बन्धाभिव्यक्तिः क्रियते तदा तस्यापि सम्बन्धाभिव्यक्तिरन्यतोऽभिव्यक्तसम्बन्धादिति कथं 5 नानवस्थादोषस्तुल्यः ? यदि पुनः कस्यचित् स्वत एव सम्बन्धाभिव्यक्तिः अपरस्यापि तथैवास्तु इति संकेतक्रिया व्यर्था। शब्दविभागाभ्युपगमे चाऽस्मन्मतानुप्रवेशः प्रदर्शितन्यायेन।

अनुत्पत्तिक (नित्य) ऐसा विरुद्ध अर्थ लक्षणा से लिया जाता है। (जैसे उष्ट्र के लिये अहोरूपम् कहा जाय तब 'रूप' शब्द का कद्रूपता अर्थ लिया जाता है।)

### [ नित्यवाद-अनित्यवाद दोनों को तुल्य अनवस्था दोष ]

10

नित्यसम्बन्ध वादी अनित्यसम्बन्ध वादी के सिर पर एक अनवस्था दोष लगाते हैं — 'अयं घटः' यहाँ इदम् (अयम्) पद का पुरोवर्ती अर्थ के साथ सम्बन्ध ज्ञात है, 'घट' पद का उस के अर्थ के साथ सम्बन्ध अज्ञात है, इस स्थिति में अज्ञातसम्बन्धवाले घटादि अर्थ का (घटादि पद के साथ) सम्बन्ध जिस शब्द से जोडा जाता है — यानी ज्ञातसम्बन्ध वाले जिस 'अयम्' शब्द से अज्ञात सम्बन्ध जोडा जाता है, उस ज्ञात सम्बन्ध को भी पहले तो पुरोवर्ती अर्थ के साथ जोडना पडेगा, 15 वह किससे जोडेंगे ? यदि अन्य ज्ञातसम्बन्ध (वाले शब्द) से जोडेंगे तो उस सम्बन्ध को जोडने के लिये और एक सम्बन्ध, उसके लिये भी अन्य एक सम्बन्ध.. इस तरह अनवस्था दोष होगा — अनित्यसम्बन्धवादी के मत में यह दोष लगता है, किन्तु हमारे (मीमांसक) नित्यसम्बन्धवादी के मत में ऐसा कोई दोष लग सकता नहीं। — इस मीमांसक (अशुद्धद्रव्यास्तिकनय) मत के प्रति भावनिक्षेपवादी पर्यायास्तिकनयवादी कहता है कि ये नित्यसम्बन्धवादी अतथ्यवादी हैं। 20

अतथ्यवादी कहने का हेतु यह है कि पहले ही हम सिद्ध कर चुके हैं कि विश्व में किसी नित्य पदार्थ या नित्य शब्दादि की सत्ता ही नहीं है। फिर नित्यसम्बन्ध भी कैसे ? अनित्यसम्बन्धपक्ष में जो अनवस्थादूषण प्रदर्शित किया है वह भी गलत है। कारणः- 'अयम्' इत्यादि शब्दों का सम्बन्ध अनादिशब्दव्यवहारपरम्परा से सुप्रसिद्ध है। मीमांसक को भी अज्ञातसम्बन्धवाले घटादि शब्द का घटादि अर्थ में संकेत तो करना ही पडेगा, फलतः नित्यसम्बन्धवादी को भी पूर्वोक्त प्रकार से अनवस्था दोष 25 समान क्यों नहीं होगा ? यदि इस दोष से बचने के लिये कहा जाय कि परम्परा में कोई एक सम्बन्ध स्वयमेव अभिव्यक्त हो जायेगा, तो अनित्यशब्दवादी हमारे मत से भी अनवस्थादोष निवारण आप की तरह हो जायेगा, फिर व्यर्थ संकेत-करणक्रिया का कष्ट क्यों ? (शब्दार्थसम्बन्ध तभी नित्य हो सकता है जब शब्द को नित्य माना जाय किन्तु नित्य शब्द में संकेतकरण व्यर्थ है — शक्य नहीं है) यदि शब्द में भी कालविभाग से विभाग (यानी भेद, अर्थात् अनित्यता) माना जाय तो 30 पूर्वप्रदर्शित युक्ति से संकेतकरण करने पर तो हमारे मत में ही प्रवेश कर लेना होगा।



‘द्रव्य-पर्यायरूपमुभयमपि परस्परविविक्तमेकत्र विद्यते’ इत्यभिप्रायो नैगमोऽशुद्धद्रव्यास्तिकप्रकृतिः।

[ शब्दस्य द्रव्यार्थनिक्षेपरूपताया उपसंहारः ]

कृतकत्वेऽपि शब्दस्य यत्र यत्र सङ्केतद्वारेण शब्दो नियुज्यते तत्र तत्र प्रतिपादकत्वेन प्रवर्तते इति द्रव्यसाधर्म्याद् द्रव्यार्थनिक्षेपः शब्दः। य(?त)था द्रव्यार्थताया अपि सर्वत्राभ्युपगमाद् वाच्य-वाचकयो-  
5 नित्यत्वात् तत्सम्बन्धस्यापि नित्यता समस्त्येव, सङ्केतश्च तदभिव्यक्तिरिति द्रव्यार्थनिक्षेपः शब्दः।

[ स्थापनाया द्रव्यार्थिक निक्षेपरूपता प्रदर्शनम् ]

संकेतभिधानस्यार्थस्य प्रतिकृतिप्रकल्पना स्थापना इति यद् वस्तु सद्भूताकारेण स्थाप्यत इति णिजन्तात् कर्मणि षु(?यु)प्रत्ययः?। सापि द्रव्यार्थिकस्य निक्षेपः मुख्य-प्रतिनिधिविभागाभावात् सदविशेषात् सर्वस्य मुख्यार्थक्रियाक(1?)करणात् अन्यथोपयाचितादेस्ततोऽसिद्धिप्रसक्तेः तन्निमित्तद्रव्यादिविनियोग-  
10 व्यवहाराभावप्रसक्तेश्च मुख्यपदार्थरूपत्वात् स्थापनाया द्रव्यार्थत्वात्। अथवा अध्यवसायोपरचितमेव स्थापनायास्तदेकत्वम् न पुनर्वास्तवम् अन्यथा मुख्यप्रतिनिधिविभागाभावप्रसक्तेस्तद्रूपोपलक्षकत्वाभावप्रसक्तेश्च।

नैगम नय भी अशुद्ध द्रव्यास्तिक स्वभावी ही है क्योंकि उसकी मान्यता ऐसी है परस्पर पृथक् द्रव्य-पर्याय दोनों ही एक वस्तु में रहनेवाले हैं। (यहाँ पर्याय का भी स्वीकार होने के कारण यह नय अशुद्ध द्रव्यास्तिक समझना)।

15 [ शब्द(= नाम) की द्रव्यार्थनिक्षेपरूपता का उपसंहार ]

पर्यायास्तिक मतानुसार शब्द कृतक (उत्पत्तिशील) होने से जिस जिस अर्थ के अभिप्राय से वक्ता संकेत द्वारा शब्दनियोग करता है उस अर्थ का निरूपण वह शब्द करता है। वह शब्द सिर्फ पर्यायरूप ही नहीं होता द्रव्यरूप भी होता है, अतः द्रव्य के साधर्म्य से शब्द को द्रव्यार्थिक(मान्य) निक्षेप कहना उचित है। तथा अनेकान्तवाद में तो सभी अभिलाष्य वस्तुओं में द्रव्यार्थता मान्य होने से वाच्य-वाचक  
20 (अर्थ-शब्द) को नित्य माना गया है अत एव उन के सम्बन्ध में भी नित्यत्व अक्षुण्ण है। ‘तब संकेत की क्या जरूर?’ प्रश्न का उत्तर यह है कि वह तो सिर्फ अभिव्यक्ति है। द्रव्यार्थिक निक्षेपरूप शब्द (नाम) है यह प्रतिपादन समाप्त।

[ स्थापनानिक्षेप का प्रतिपादन ]

संकेतशाली नाम के वाच्यार्थ की प्रतिकृति (चित्र, छाया, शिल्प मूर्ति-प्रतिमा इत्यादि) की रचना-  
25 यह है स्थापनानिक्षेप। स्थापनाशब्द की व्याख्या — ‘सद्भूत यानी तुल्य आकार से प्रेरित हो कर जिस (अमुख्य) पदार्थ को (चित्रादि को, मुख वस्तु रूप से) स्थापित यानी गृहीत (=ज्ञात) किया जाता है’ यहाँ प्रेरकप्रत्ययान्त स्था(स्थाप्) धातु को कर्म-अर्थ में ‘यु’ प्रत्यय किया गया है। स्थापना भी नाम की तरह द्रव्यार्थिक मान्य होने के अनेक हेतु हैं — १ इस नय में यह मुख्य वस्तु और यह उस की प्रतिनिधिभूत वस्तु — ऐसे विभाग को नहीं माना जाता, २, क्योंकि दोनों ‘सद्’ रूप से तुल्य है। ३, प्रत्येक वस्तु  
30 अपनी अपनी मुख्य अर्थक्रियाओं को करते हैं। ४, अगर स्थापना मुख्य अर्थक्रिया नहीं कर सकती ऐसा मानेंगे तो देवताओं की प्रतिष्ठित मूर्ति-प्रतिमा के सामने (पूजादि करनेवाले को) मानता माननेवाले को

१. ‘ण्यासश्चन्यो युच्’ (पा. ३-३-१०७), ‘णि-वेत्यासश्चन्यघट्टवन्देरनः’ (सिद्धहेम.५-३-१११)।

न ह्यभेदे उपलक्ष्य-उपलक्षकभाव उपपन्नः। नापि भिन्नदेश-काल-चेतनाऽचेतन-मुक्तादिविभागो न्यायानुगतो भवेदिति सर्वत्र सद्भावाऽसद्भावरूपतया प्रवर्तमानत्वात् द्रव्यधर्मसद्भावादेकत्वाध्यवसायकृतमेव तस्या द्रव्यार्थत्वमिति द्रव्यार्थिकनिक्षेपः स्थापना।

[ द्रव्यार्थिक नय स्वीकृत-द्रव्यनिक्षेप व्याख्या ]

द्रवति = अतीताऽनागतपर्यायानधिकरणत्वेनाऽविचलितरूपं स(त्)गच्छति - इति द्रव्यम्। तच्च भूत- 5  
भाविपर्यायकारणत्वात् चेतनमचेतनं वाऽनुपचरितमेव द्रव्यार्थिकनिक्षेपः।

[ विस्तरेण क्षणभङ्गवादनिरसनम् ]

न च प्रतिक्षणविशाररुतया भावानां नित्यताऽसम्भवाद् न द्रव्यार्थिकनिक्षेपः सत्य इति वक्तव्यम्, निरन्वयनाशितायां प्रमाणाऽनवतारात्। तथाहि- अध्यक्षम् अनुमानं वा तद्ग्राहित्वेन प्रवर्तते ना(?अ)न्यस्य प्रमाणत्वेन सौगतैरनभ्युपगमात् ? न तावदध्यक्षं क्षणक्षयितां भावानामवगमयितुमलम् प्रतिक्षणमुदयापवर्गा- 10  
संसर्गितया भावानां तत्राऽप्रतिभासनात्। न हि प्रतिक्षणं त्रुट्यद्रूपतां विभ्रानाः पदार्थमात्रास्तत्रावभान्ति

फलसिद्धि रुक जायेगी। ५, मुख्य देवता के उद्देश्य से उसकी मूर्ति के सामने द्रव्यादि अर्पण करने के शिष्ट व्यवहारों का लोप भी प्रसक्त होगा। - इस तरह से सोचे तो स्थापना भी मुख्यपदार्थरूप ही है, उस की द्रव्यार्थता भी अक्षुण्ण है। अत एव यह द्रव्यार्थिकनिक्षेप है।

अगर कोई स्थापना और मुख्य का वास्तव एकत्व न माने तो आखिर तत्त्वाध्यवसाय के द्वारा 15  
भी एकत्व द्रव्यार्थिक को मंजूर है। वास्तव एकत्व न मानने के कारण - १, यह मुख्य और यह प्रतिनिधि - इस विभाग का लोप प्रसक्त होगा। तथा २, मूर्ति आदि के द्वारा मुख्य पदार्थ उपलक्षित होता है इस तथ्य का सर्वथा एकत्व पक्ष में लोप प्रसक्त होगा। ३, अभेदपक्ष में एक (मूर्ति आदि) उपलक्षक (पहेचान कराने वाला), दूसरा उपलक्ष्य (जिस की पहेचान करायी जाती है) ऐसा भेदभाव संगत नहीं हो पायेगा। ४, मुख्य वस्तु के देश, काल और स्थापना (प्रतिनिधि) के देश-काल में भेद 20  
है, मुख्य देवतादि सचेतन हैं मूर्ति-चित्रादि अचेतन हैं, परमात्मा मुक्त है - उन की मूर्ति-चित्रादि अमुक्त है - इत्यादि जो न्याययुक्त विभाग है वह लुप्त हो जायेगा। तथा, मुख्य पदार्थ तो 'सद्भूत' एक ही प्रकारवाला होता है, स्थापना तो सर्वत्र सद्भूत (यानी तुल्याकार जैसे मूर्ति आदि), असद्भूत (अतुल्याकार जैसे अक्ष-शंखादि) दोनों प्रकार से प्रवृत्त होती है। स्थापना के ये जो लक्षण कहे गये वे सब द्रव्य में घट सकते हैं अतः मुख्य और द्रव्यभूत स्थापना 'एकत्व' अध्यवसायकृत द्रव्यार्थत्व 25  
ही होता है यह मानना उचित ही है। यह द्रव्यार्थिक मान्य स्थापना निक्षेप का परिचय हुआ। अब द्रव्यनिक्षेप का परिचय कराया जाता है -

[ द्रव्यार्थिकनयमान्य द्रव्यनिक्षेपव्याख्या ]

'द्रुं गतौ' द्रुधातु गत्यर्थक है। द्रवति = गच्छति। द्रुधातु से 'द्रव्य' शब्द बना है। शब्दार्थः- अतीत- 30  
अनागत पर्यायों का वास्तविक आश्रय न बन कर जो अविचलितस्वरूप की ओर गमन (प्रत्यर्पण) करता है वह 'द्रव्य' है। यद्यपि वह अतीत-अनागत पर्यायों का आश्रय नहीं है किन्तु कारण जरूर है, वह चेतन-अचेतन दोनों प्रकार में हैं, जैन परिभाषा में भूत-भावि पर्यायों के कारण को द्रव्य कहा

स्थिरस्थूरूपतया तेषां तत्र प्रतिभाससंवेदनात् । न चाऽन्यादृग्भूतप्रतिभासोऽन्यादृग्भूतार्थव्यवस्थापकः अतिप्रसंगात् । न च प्रतिक्षणं भिन्नस्वभावानुभवेऽपि सदृशापरापरोत्पत्तिविप्रलम्भात् यथानुभवव्यवसायानुत्पत्तेः क्षणक्षयानुभवेऽपि स्थिर-स्थूरूपाध्यवसाय इति वक्तव्यम्, प्रमाणाभावात् । न चान्यादृग्भूतार्थानुभवेऽन्यादृग्भूतार्थनिश्चयोत्पत्तिकल्पना ज्यायसी, नीलानुभवेऽपि पीतनिश्चयोत्पत्तिकल्पनायाः सर्वत्र प्रतिनियतार्थव्यवस्थितेरभावप्रसक्तेः ।

5 [??न च भावव्यतिरिक्तस्य वा सादृश्यस्यान्यथा सामान्यपक्षोक्तदोषस्यात्रापि प्रसक्तेः सम्भवः यतो

जाता है, इस में कोई उपचार करना नहीं पडता। अतः द्रव्यार्थिक नय बिना किसी उपचार से द्रव्यनिक्षेप को मान्य करता है।

### [ द्रव्यार्थिकनय से क्षणभंगवाद का विस्तृत निरसन प्रारम्भ ]

यहाँ क्षणिकवादी के साथ चर्चा का प्रारम्भ हो रहा है -

10 क्षणवादी :- भाववृन्द क्षण-क्षण में नाशग्रस्त होते हैं अतः उस में नित्यता (स्थायिता) का सम्भव न होने से यह स्थायिद्रव्यवादी द्रव्यार्थिक निक्षेप सत्य नहीं है।

द्रव्यवादी :- ऐसा नहीं बोलना, क्योंकि निरन्वयनाशवाद को किसी प्रमाण का समर्थन नहीं है। अन्वय = हेतु, बिना हेतु ही नाश होता है इस लिये क्षणोत्पत्ति के बाद नाश में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं होता। बताईए - क्षणभंगग्राही प्रमाण कौन सा है ? प्रत्यक्ष या अनुमान ? इन 15 दो प्रमाणों से अधिक कोई प्रमाण बौद्ध विद्वानों को मान्य नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण भावों की क्षणभंगुरता का परिच्छेद करने के लिये सक्षम नहीं है। प्रत्यक्ष में कभी ऐसा नहीं दिखता कि सभी भाव प्रति-क्षण उत्पत्ति-विनाशप्रतियोगी हैं। पदार्थों की ऐसी कोई मात्रा (व्यक्तिप्रकार) दिखती नहीं जो प्रतिक्षण तूट तूट कर शून्यता ओढ लेती हो। उलटे, प्रत्यक्ष में भासमान सभी मात्रा स्थिर एवं स्थूलावयवीरूप से ही संविदित होती है। भाव को एक प्रकार से भासित करनेवाला प्रतिभास अन्यप्रकारापन्न अर्थ 20 का निश्चायक नहीं बन सकता, अन्यथा नील प्रतिभास पीत का निश्चायक बन जाने का अनिष्ट होगा।

क्षणवादी :- दर्शन में क्षण-क्षण का स्वभाव पृथक-पृथकरूप से अनुभूत होता ही है, किन्तु दर्शनानुरूप निश्चय उत्पन्न नहीं होता (मतलब, विकल्प क्षणक्षयित्व का प्रदर्शन नहीं करता) उस का हेतु यह है कि अहर्निश विवक्षित पदार्थ के तुल्य नये नये क्षणों की निरन्तर उत्पत्ति से स्थिरत्व की छलना होती ही रहती है। इस तरह, क्षणक्षय का अनुभव (= दर्शन या निर्विकल्प बोध) होता है किन्तु 25 तथाप्रकार सविकल्प न होने से तथा उक्त छलना के कारण स्थिर-स्थूलावयवी का अध्यवसाय उदित होता है।

द्रव्यवादी :- ऐसा नहीं बोल सकते क्योंकि उक्त बचाव में कोई प्रमाण नहीं है। 'अनुभव यदि एकप्रकार का होता है और अन्य प्रकार के निश्चय का उदय होता है' इस कल्पना में कुछ तथ्यांश नहीं है। नील का अनुभव (निर्विकल्प) होने के बाद पीत के निश्चय की उत्पत्ति की कल्पना कर 30 लेंगे तो नियत प्रामाणिक अर्थ व्यवस्था का दुष्काल ही पडेगा। तब अनुभव और निश्चय का कभी मेल ही नहीं बैठेगा।

[भूतपूर्वसम्पादकों के अभिप्राय से न च भावव्यति... (पृ.१८४ पं.५) से मध्यक्षावसेया। (१८७-

निमित्तात् सदृशापरापरोत्पत्तिर्विभ्रमाद् यथानुभवं विकल्पोत्पत्तिर्न भवेत्, न वाऽसदृशेष्वपि समानविकल्पजनकेषु दर्शनद्वारेण सदृशव्यवहारहेतुत्वमिति वक्तव्यम्, नीलादिविशेषाणामप्यभावप्रसक्तेः। यथा हि — परमार्थतोऽसदृशा अपि तथाभूतविकल्पोत्पादकदर्शनहेतवः सदृशव्यवहारभाजो भावाः तथा स्वयमनीलादिस्वभावा अपि नीलादिविकल्पोत्पादकदर्शननिमित्ततया नीलादिव्यवहारभाक्त्वं प्रतिपत्स्यन्ते इति तेषामपि निःस्वभावताप्रसक्तिः। अत एव ‘प्रतिक्षणं भिन्नस्वभावान् भावान् पश्यन्नपि विषमज्ञ इव नावधारयति’ [ ] इत्यभिधानं न 5 युक्तम्, स्वयमद्वयस्वरूपाणामन्तर्द्वयनिर्भासादर्शनाद् बहिरप्यनाविलाक्षविज्ञानानां खण्डशः प्रतिभासोपलब्धिः याथात्येनैवार्थप्रतिभासोऽनुभवैरित्येतस्याऽसिद्धेः विकल्पवशेन चाध्यक्षस्य प्रामाण्यव्यवस्था अन्यथा दान-हिंसाविरतचेतसामपि स्वर्गप्रापणशक्तेरध्यक्षत एवाधिगमव्यवस्थितेन तत्र विप्रतिपत्तिरिति तद्व्युदासार्थ-मनुमानप्रवर्तनम् शास्त्रविरचनं वा वैयर्थ्यमनुभवेत्।

३) तक पाठशुद्धि नहीं है — इस लिए उस का विवेचन दुष्कर है, स्थानाशून्यार्थ यहाँ प्रयास किया जाता है —]

सदृश अपर-अपरोत्पत्ति से स्थिरता के विभ्रम की जो बात कही वह भी अनुचित है क्योंकि क्षणों से सादृश्य अभिन्न होगा तो भिन्न भिन्न सादृश्य से एक-स्थिर बुद्धि नहीं हो सकेगी। यदि भाव से भिन्न प्रतिव्यक्ति अनुषक्त एक सादृश्य मानेंगे तो आपने जो दोष एक सामान्य में लगाये हैं वे सब सादृश्य के सिर पर चिपक जायेंगे। अतः स्थिर बुद्धि के निमित्त रूप से सादृश्य का सम्भव 15 नहीं है। अतः उस के निमित्त से सदृश नये नये क्षणों का उद्भव, उस से स्थैर्य का विभ्रम एवं क्षणिकत्व के अनुभव से क्षणिकत्व विकल्प की अनुत्पत्ति का निरूपण यथार्थ नहीं है। तथा, पूर्वोत्तर असदृश किन्तु दर्शन के द्वारा समानविकल्प के जनकभावों में सदृशव्यवहार हेतुत्व रूप सादृश्य भी नहीं घट सकता, क्योंकि इस तरह तो नीलादि पृथक् पृथक् भावों का भी लोप प्रसक्त होगा। देखिये — वास्तव में पूर्वोत्तर भाव असदृश होने पर भी समानताविकल्पों के जनक दर्शन-कारण भाव 20 सदृशव्यवहारशाली हो सकते हैं जैसे ही स्वयं अनीलादिस्वभाववाले भाव भी नीलादिविकल्पों के जनक दर्शननिमित्तभूत हो कर नीलादिव्यवहारकारी बन सकेंगे, फलतः नीलादि में अनीलस्वभावता या निःस्वभावता की आपत्ति होगी। इसी लिये यह कथन भी युक्तिवाह्य है कि — ‘प्रतिक्षण पृथक्-पृथक् स्वभाव वाले भावों को देखता हुआ भी दृष्टा भेददर्शी की तरह (पृथक् स्वरूप से) अवधारण (= निश्चय) नहीं कर सकता।’ — युक्ति, एकविषयक ज्ञान अन्यविषय का निश्चय नहीं कर सकता, इत्यादि 25 अनेक, पहले कही गयी हैं। ‘अनुभवों से हरहमेश यथार्थ वस्तुप्रतिभास ही होता है’ ऐसा मानना गलत (असिद्ध) है क्योंकि स्वयं एकात्मक होनेवाली वस्तु का भी भीतर में द्वैतप्रतिभास होता है, एवं बाहर निर्मल इन्द्रिय विज्ञानशाली को भी अखण्ड नहीं, खण्ड खण्ड प्रतिभास होता है। सच तो यह है कि आखिर प्रत्यक्ष के प्रामाण्य की व्यवस्था का आधार तो विकल्प ही है। अन्यथा दानचित्तवाले और हिंसाविरतचित्तवाले को स्वर्ग प्राप्ति करानेवाली शक्ति का भान प्रत्यक्ष से सिद्ध हो जाने पर 30 उस विषय में जो विवाद है उस को स्थान ही नहीं रहेगा। फिर उस विवाद को मिटाने के लिए अनुमानप्रयोग अथवा ग्रन्थरचना नितान्त व्यर्थ हो जायेंगे।

विकल्प(त)स्तु स्थिरस्थूरार्थाध्यवसाय(त्)प्रतीतिः कथमध्यक्षतः क्षणिक-निरंशो परमाणुस्वलक्षणो व्यवस्थाया(मेव?) सर्वविकल्पानामवस्तुविषयत्वम(म्)बाधितार्थ( ?र्थत्वम्) । तथा विकल्पस्यावा(वस्तु)विषयत्वे अन्यथाभूतसंवेदनस्यानुपलक्षणाद् वस्तुव्यवस्थाभावप्रसक्तेः । संहतसकलविकल्पावस्थायामश्वविकल्पनसमये एव चक्षुःप्रणिधानानन्तरं पुरोव्यस्थितस्य गवादेर्विशदतया स्थिरस्थूररूपस्यैवानुभवात् अन्यथा भूतार्थप्रतिभासस्य कदाचिदप्यनुपलब्धेः । न च वस्तुनः प्रतिक्षणध्वंसित्वात् तत्सामर्थ्यबलोद्भूतेनाध्यक्षेण तद्गुणमेवानुकरणीयम् 5 अन्यरूपानुकरणे असदर्थग्राहकत्वेन तस्य भ्रान्तताप्रसक्तेः क्षणपरिणामग्राह्येवाध्यक्षमिति वक्तव्यम् इतरेतराश्रय-प्रसक्तेः — सिद्धे हि क्षणक्षयित्वे भावानां तत्सामर्थ्यभाविनोऽध्यक्षस्य तद्गुणानुकरणं सिद्ध्यति तत्सिद्धौ च क्षणक्षयित्वं तेषां सिध्यतीति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् ।

अपि च क्षणस्थायित्वेऽपि भावानां यथास्वभावमनुभवः उतान्य(था ?अन्य)थेति चेत् वस्तुस्वभावा-

10 [ प्रत्यक्ष से क्षणिक-निरंश अर्थसिद्धि दुष्कर ]

विकल्प से जब स्थिर-स्थूल अर्थ अध्यवसित करने वाली प्रतीति होती है — तब 9 — प्रत्यक्ष से क्षणिक-निरंश स्वलक्षणपरमाणुसिद्धि कैसे ? २ — सर्वविकल्पों में अवस्तुविषयता एवं बाधितार्थता कैसे ? तथा, विकल्प हमेशा अवस्तुविषय ही होता तो <sup>१</sup>प्रत्यक्ष वस्तुव्यवस्थाकारि न हो सकने पर, <sup>२</sup>विकल्प अवस्तु विषयक होने के कारण, <sup>३</sup>प्रत्यक्ष एवं विकल्प से पृथक् किसी संवेदन उपलक्षित न 15 होने से, वस्तुमात्र की व्यवस्था का लोप प्रसक्त होगा । (विकल्प को छोड़ो, प्रत्यक्ष से भी स्थिर स्थूल वस्तु गृहीत होती है वह इस तरह—) सकल विकल्पावस्था जब स्थगित है, एकमात्र अश्वविकल्प उदित हो रहा है उस वक्त नेत्रव्यापार के बाद तुरंत पुरोवर्ति गाय आदि पिण्ड का स्थिर-स्थूलस्वरूप स्पष्टरूप से अनुभव में आता है (इस को विकल्प नहीं कह सकते क्योंकि अश्वविकल्प चालु है उसी वक्त चक्षुव्यापार से दूसरा विकल्प नहीं हो सकता ।) ऐसा नहीं मानेंगे तो सदभूतार्थ के प्रतिभास की उपलब्धि 20 का पूर्णतया लोप प्रसक्त होगा ।

यदि कहा जाय — वस्तुमात्र प्रतिक्षण विनाशी होने से वस्तुसामर्थ्य से उत्पन्न होनेवाले प्रत्यक्ष को क्षणक्षयिता का ही अनुसरण करना अनिवार्य है, उस से अन्य (स्थायित्व) का अनुसरण करेगा तो असत्प्रार्थग्राहक होने से उस में भ्रान्तता का प्रवेश होगा, अतः मानना पडेगा कि प्रत्यक्ष क्षणपरिणाम का ही ग्राही है । — तो यह बोलने लायक नहीं, क्योंकि यहाँ अन्योन्याश्रयदोषप्रसंग होगा । देख लो 25 — भावों का क्षणभंग सिद्ध होने पर उन के सामर्थ्य से उत्पन्न प्रत्यक्ष का क्षणिकताअनुसरण सिद्ध होगा, तथा क्षणिकत्वानुसरण सिद्ध होने पर भावों का क्षणविनाशित्व सिद्ध होगा । स्पष्ट ही यहाँ अन्योन्याश्रय है ।

और एक प्रश्न :- भाव क्षणभंगुर भले हो — उन का अनुभव उन के स्वभावानुरूप होगा या अन्यप्रकार से भी ? यदि अन्यप्रकार के होने पर भी अन्य प्रकार का अनुभव होगा तो यह नियम 30 नहीं रहेगा कि प्रत्यक्ष से वस्तुस्वभाव का ही अनुभव होगा । तब इस स्थिति में प्रत्यक्ष यथार्थ है या अयथार्थ ? अतः यह कहना युक्तियुक्त नहीं होगा कि — “चक्षुरादिजन्यज्ञान, प्रतिक्षण (प्रतिकालकला) में नये नये वस्तुस्वभाव का अनुभव तो करता है किन्तु विकल्पवासनाजनित अध्यवसाय उस का निश्चय

ऽनुभवनियमाभावात् कुत आशङ्काव्यावृत्तिरिति— 'चक्षुरादिज्ञानं प्रतिकलमपरापरमेव वस्तुस्वभावमनुभवति किन्तु विकल्पवासनाप्रभवाध्यवसायस्य तन्निश्चयं प्रत्यशक्तिरित्यसङ्गतम् नीलादिस्वभावेष्वप्यनाश्वास-प्रसक्तिरित्युक्तत्वाच्च। तद् न क्षणक्षयिता भावानामध्यक्षावसेया।??]

नाप्यनुमानाद् निश्चेतव्या, तत्राध्यक्षावृत्तावनुमानस्याप्यनवतारात्। तथाहि— अध्यक्षाधिगतमविनाभावमाश्रित्य पक्षधर्मतावगमबलादनुमानमुदयमासादयतीति, अध्यक्षानवगते तु विषये स्वर्गादाविवाध्यवसायफल-स्यानुमानस्य(1)प्रवृत्तिरेव सौगतैरभ्युपगता। तथा चाचार्यः — 'अदृष्टेऽर्थेऽर्थविकल्पनमात्रम्' [ ] इत्युक्तवान्। यदपि 'निर्हेतुको ध्वंसः पदार्थोदयानन्तरभावी देश-कालपदार्थान्तरम(न)पेक्ष्य भवत(न)स्तत्सापेक्षतया निर्हेतुत्वाभावप्रसक्तेः' इत्युक्तम् (तत्र) यतो यदि नाम अहेतुकः प्रध्वंसस्तथापि यदैव मुद्गरव्यापारानन्तर-मुपलब्धिगोचरस्तदैव तत्सद्भावोऽभ्युपगमनीयः भावोदयानन्तरं तु न कस्यचिदुपलम्भगोचरतामुपगच्छतीति कथं तदैवास्य तद्भावावगतिः ? न च मुद्गरादिव्यापारानन्तरमस्य दर्शनात् प्रागपि सद्भावः कल्पनीयः तथाकल्पने ह्यादौ तस्याऽदर्शनाद् मुद्गरव्यापारसमनन्तरमप्यभावप्रकृति (अ)प्रसक्तिः, विशेषाभावात्। न करने में अशक्त होता है।" — क्योंकि तब नीलादि के स्वभावों (के ग्रहण) भी अविश्वसनीय बन जायेंगे।

निष्कर्ष :- भावों की क्षणभंगुरता प्रत्यक्षग्राह्य नहीं है, प्रथम विकल्प निरसन समाप्त। (अशुद्ध पाठवाला कोष्ठान्तर्गत पाठ भी समाप्त)

### [ अनुमान से क्षणभंगुरता की सिद्धि दुष्कर ]

निरन्वयनाशिता (एवं क्षणक्षयिता) का निश्चय अनुमान से भी नहीं हो सकता, क्योंकि वह प्रत्यक्षविषय न होने पर अनुमान की भी उस में गति शक्य नहीं। देखिये — जब प्रत्यक्ष से अविनाभाव निश्चित हो जाय तब उस की सहायता से पक्षधर्मता का बोध होगा, उस के बल से अनुमान का उदय होता है — प्रत्यक्ष-अगृहीत स्वर्गादि के बारे में जैसे अनुमान की प्रवृत्ति बौद्धदर्शनी नहीं मानते, वैसे अध्यवसाय (विकल्प) से उत्पन्न होनेवाले अनुमान की भी प्रत्यक्षअगृहीत अर्थों में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। आचार्य (दिग्नाग?) ने कहा है — 'अदृष्ट (= प्रत्यक्षअगृहीत) अर्थ के बारे में सिर्फ अर्थविकल्पन ही होता है।'

यह जो कहते हैं कि — पदार्थोत्पत्ति के बाद त्वरित ही होनेवाला निर्हेतुक ध्वंस देश-काल या अन्य (मुद्गरादि) पदार्थमुखदर्शी नहीं होता, अन्यथा निर्हेतुकत्व लुप्त हो जायेगा' — (वह ठीक नहीं) क्योंकि प्रध्वंस यदि निर्हेतुक माना जाय, फिर भी कभी मुद्गरप्रहार के बाद ही दृष्टिगोचर होता है तो उस वक्त ही उस की सत्ता मानना चाहिए। भावोत्पत्ति के बाद तुरंत किसी को ध्वंस दृष्टिगोचर नहीं होता नहीं, तब उस वक्त ही (दूसरे क्षण) उस की सत्ता का पता कैसे चलेगा ? 'मुद्गरप्रहार के बाद नाश दिखता है इस लिये पहले भी उस की सत्ता मान लेंगे।' — तो यह गलत है, वैसी कल्पना करने पर तो प्रतिकल्पना ऐसी भी कर लो कि 'शुरु में नाश नहीं दिखता तो मोगरप्रहार के बाद भी वह नहीं होगा, क्या फरक पडता है ? तथा अन्त में क्षयदर्शन से पहले भी नाश मान नहीं लेना, क्योंकि दीपसन्तान का अन्त में नाश दिखता है किन्तु पहले आप सन्तान के नाश

चान्ते क्षयदर्शनाद् आदावप्यसावभ्युपगन्तव्यः, सन्तानेनानेकान्तात्।

- न च 'मुद्गरादिसंयोगादिकं कारणान्तरमनपेक्षमाणः (नाशः) पदार्थसत्तामात्रानुबन्धित्वात् तदुदयानन्तरमेव सत्त्वमासादयति' इति वक्तव्यम् — यतो यदि नाम भावसत्तामात्रानुबन्धिता नाशस्य तथापि न प्रतिक्षणध्वंसित्वं सिध्यति सत्ताया एव तथात्वेनाऽनिश्चयात्। तथाहि <sup>a</sup>असावेकक्षणसंगता वा भवेत्
- 5 <sup>b</sup>अनेकक्षणपरिगता वा ? तत्र <sup>a</sup>यद्याद्यः पक्षः स न युक्तः, तस्या एकैकक्षणावस्थानाऽसिद्धेः, तदसिद्धौ च तदनुबन्धिनः प्रध्वंसस्य कथं प्रतिक्षणभावित्वं निश्चेतुं शक्यम् ? विशेषणाऽप्रतिपत्तौ तद्विशेष्यस्य प्रतिपत्तुमशक्तेः न क्षणिकसत्तामात्रानुबन्धित्वाद् नाशस्योदयानन्तरभावित्वं सिद्धिमासादयति। <sup>b</sup>अर्था( ?था)नेक-क्षणस्थायिसत्तामात्रानुबन्धी ध्वंसः, तथा सति सत्तायाः क्षणान्तरावस्थानादक्षणिकतैव भावस्य न्यायादनुपपत्तिः।
- 10 अनेकक्षणस्थितिसत्तानुबन्धे प्रध्वंसस्याऽनेकक्षणस्थितिसत्तानन्तरं भावेन नष्टव्यम् अन्यथा तथाभूत-सत्तानुबन्धित्व(1)योगो ध्वंसस्येति कथं क्षणिकत्वम् ?

किञ्च, उदयानन्तरमेव भावानां ध्वंस इति कुतः प्रतीयते ? <sup>a</sup>किं भिन्नाभिन्नविकल्पाभ्यां ध्वंसस्याऽघटमानत्वात् <sup>b</sup>आहोस्विदन्यतः प्रमाणादिति विकल्पद्वयम्। <sup>a</sup>तत्र यद्याद्यः पक्षः तदा नोदयानन्तरं ध्वंसः सिद्धिमासादयति यतो भिन्नाभिन्नविकल्पाभ्यां मुद्गरादिनिरपेक्ष(क्ष)त्वं तस्य सिद्धिमासादयति न को नहीं मानते। यहाँ व्यभिचारदोष है।

- 15 ऐसा मत कहना कि — 'नाश मुद्गरप्रहार आदि किसी भी अन्यान्य कारणों की परवा नहीं करता, उस को तो पदार्थसत्ता मात्र से सम्बन्ध (अनुबन्धिता) है, अतः पदार्थोत्पत्ति होते ही उस का नाश अस्तित्व में आ जाता है।' — कारण, नाश यदि भावसत्तामात्रानुबन्धि है तो भी उस का प्रतिक्षणध्वंस सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि सत्ता क्षणिक ही होती है ऐसा निश्चय नहीं है। देखिये — दो विकल्प, <sup>a</sup>सत्ता एकक्षण जीवित होती है या <sup>b</sup>अनेकक्षणजीवी ? <sup>a</sup>प्रथमपक्ष अयुक्त है, क्योंकि सत्ता की एकक्षणस्थिति ही असिद्ध है। जब सत्ता की क्षणस्थिति ही असिद्ध है तो तदनुबन्धि नाश की भावोत्पत्ति के बाद तुरन्त प्राप्ति का निश्चय कैसे हो सकता है ? जब भावसत्ताक्षणिकत्वरूप विशेषण असिद्ध है तो भावसत्तानुबन्धित्व रूप विशेष्य ही गृहीत न हो सकने से, क्षणिकसत्तामात्रानुबन्धित्व के आधार पर नाश में उत्पत्तिपश्चाद्भावित्व कैसे सिद्धि प्राप्त करेगा ?

- दूसरा पक्ष :- <sup>b</sup>यदि ध्वंस अनेकक्षणस्थायीभाव सत्ता मात्र का अनुबन्धि है — तब तो भावसत्ता
- 25 में अन्यअन्यक्षणवृत्तित्व फलित होने से भाव की अक्षणिकता न्यायप्राप्त हो गयी। मतलब, जब ध्वंस में अनेकक्षण स्थायिभावसत्ता का अनुबन्ध है तब तो भाव को अनेकक्षणसत्ताभोग करने के बाद ही नाशप्राप्ति होगी, अन्यथा ध्वंस में अनेकक्षणस्थायिसत्ता का अनुबन्ध ही नहीं घटेगा, फिर कैसे क्षणिकत्व सिद्ध होगा ?

- बुद्धदर्शनीओं को यह एक प्रश्न है — उत्पत्ति के तुरन्त बाद भावों के ध्वंस की प्रतीति किस
- 30 से या कैसे हुई ? क्या आपने <sup>a</sup>ध्वंस भाव से भिन्न या अभिन्न, एक भी विकल्प के न घटने से कल्पना कर ली ? या <sup>b</sup>अन्य किसी प्रमाण से ? ये दो विकल्प विचारने पड़ेंगे। <sup>a</sup>प्रथम पक्ष मानेगें तो भाव की उत्पत्ति के बाद ध्वंस की सत्ता सिद्ध नहीं होगी, इतना ही सिद्ध होगा, कि भाव-उत्पत्ति

पुनर्जन्मा(न)न्तरं भावः। न हि निर्हेतुकस्य शशविषाणादेः पदार्थोदयानन्तरभावितोपलब्धा। अथ निर्हेतुकत्वे ध्वंसस्य सर्वदा भावात् कालाद्यपेक्षाऽसम्भवतः पदार्थोदयानन्तरमेव भावः, नन्वेवं निर्हेतुकत्वे सर्वदा भावात् प्रथमे क्षणे एव भावप्रसक्तिर्नोदयानन्तरं सद्भावो ध्वंसस्य। न ह्यनपेक्षत्वाद् निर्हेतुकः क्वचित् कदाचिच्च भवति तद्भावस्य सापेक्षत्वं(?त्वे)न निर्हेतुकत्वविरोधादिति अभ्युपगतमेव एतत् सौगतैः।

अथ स्वोत्पत्तिहेतु एव पदार्था ध्वंसमासादयन्तीति। प्रथमक्षण एव तेषां प्रध्वंसे न तथा(?दा) 5 सत्तानुषङ्गः इति पदार्थाभावात् कुतः तत्प्रच्युतिलक्षणो ध्वंसः प्रथमक्षणे भवेत् ? असदेतत्, यतो यदि भावहेतुरेव तत्प्रच्युतिहेतुः तदा ◀किमेकक्षणस्थायिभावहेतोस्तत्प्रच्युतिहेतुत्वम् किं वाऽनेकक्षणस्थायिभावहेतोरिति वक्तव्यम्। यद्याद्यः पक्षः तदाऽसिद्धम् एकक्षणस्थायिभावहेतुत्वस्याप्यसिद्धेः तत्कृतकत्वं तत्प्रच्युतेर-सिद्धमेव। द्वितीयपक्षे तु 'क्षणिकताऽभावः' इति प्रतिपादितं प्राक्। किञ्च यदि भावहेतुरेव तत्प्रच्युतिहेतुरभ्युपगम्यते तदा वक्तव्यम् किं भावजननादसौ प्राक् तत्प्रच्युतिं जनयति ? आहोस्विदुत्तरकालम् ? 10 उत समानकालम् ? यद्याद्यः पक्षः तदा प्रागभावः प्रच्युतिर्भवेद् न प्रध्वंसाभावः। अथ द्वितीयस्तथा सति

के बाद कभी भी ध्वंस को मोगरादि की अपेक्षा नहीं करनी पडती। ध्वंस की तरह शशविषाणादि निर्हेतुक होने पर भी भावोत्पत्ति के बाद शशविषाणादि का आविर्भाव सिद्ध नहीं होता (इस तरह निर्हेतुक माने गये ध्वंस का भी भावोत्पत्ति के बाद तुरंत आविर्भाव सिद्ध नहीं हो सकता।) यदि कहा जाय — 'ध्वंस निर्हेतुक होने से (एवं भावसापेक्ष होने पर भी) कालादिअपेक्षा न होने से वह 15 सर्वकालीन होना चाहिये (किन्तु भावसापेक्ष होने के कारण भावोत्पत्ति के पहले नहीं हो सकता) अतः भावोत्पत्ति के बाद तुरंत ध्वंस प्राप्त होगा।' — अरे बन्धु ! जब ध्वंस सर्वकालीन (एवं भावसापेक्ष) है तब तो भावोत्पत्तिकालक्षण = प्रथमक्षण में भी ध्वंसापत्ति आयेगी, निर्हेतुक होने से, न कि भावोत्पत्ति के दूसरे क्षण में ध्वंससत्ता। निरपेक्ष होने से निर्हेतुक जो होगा वह किसी एक क्षेत्र या किसी एक काल से ही सम्बद्ध हो यह नहीं बन सकता, क्योंकि तब उस वस्तु में देश-काल सापेक्षता के प्रवेश 20 से निर्हेतुकत्व के साथ विरोध प्रसक्त होगा। यह तथ्य तो बौद्धों को भी सम्मत है।

### [ उत्पादक की नाशकता के सभी विकल्पों में दूषण ]

**क्षणिकवादी :-** सभी भाव अपने उत्पादक हेतुओं से ही नष्ट हो जाते हैं, यदि यह नाश उत्पत्ति के प्रथम क्षण में हो जाय तब तो वस्तु को सत्ताप्राप्ति नहीं होगी, जब पदार्थ ही नहीं होगा तो प्रच्यवनरूप ध्वंस पहले क्षण में कैसे प्रसक्त होगा ? 25

**स्थायित्ववादी :-** यह कथन गलत है। भावोत्पादक को ही आप नाशहेतु मानते हैं तो दो प्रश्न :- १ क्या एकक्षणस्थायिभाव का उत्पादक हो कर वह प्रच्युतिहेतु बनेगा या २ अनेकक्षणस्थायिभाव का उत्पादक हो कर ? प्रथम पक्ष में प्रच्युतिहेतुत्व इसलिये असिद्ध है कि पहले तो भावोत्पादक में एकक्षणस्थायिभावोत्पादकत्व ही असिद्ध है, अतः भावनाश में तत्प्रयुक्तत्व भी असिद्ध हो गया। दूसरा पक्ष मानेंगे तो क्षणिकता का ही छेद हो जायेगा क्योंकि उत्पादक हेतु से जब अनेकक्षणस्थायिभाव 30 उत्पन्न होगा तो क्षणिकता कैसे टिकेगी ? — यह पहले भी कह आये हैं।

दूसरी बात :- यदि जो भावोत्पादक है वही नाशोत्पादक है तो तीन प्रश्न — १ भावोत्पत्ति के पहले



भावप्रभववेलायां तत्प्रच्युतिर्नोत्पन्नेति न भावहेतोस्तस्या उत्पत्तिरिति न भावहेतुस्तद्धेतुः। एवं चोत्तरोत्तरकालभावि-  
भावपरिणतिमपेक्ष्योपजायमाना तत्प्रच्युतिः कथं भावोदयानन्तरभाविनी स्यात् ? अथ तृतीयपक्षोऽभ्युप-  
गमविषयस्तथापि भावोदयसमयभाविन्या प्रच्युत्या सह भावस्य प्रथमक्षणेऽवस्थानेनाऽविरोधाद् न तत्सद्भावेऽपि  
सति भावेन नष्टव्यमिति न कदाचिद् भावाभावसद्भावः।

5 किञ्च, यद्यप्युदयानन्तरोदयवती तत्प्रच्युतिः तथापि न तदैव मुद्गरादिव्यापारानन्तरमिव प्रतीतिपक्षमवतरति  
किन्तु मुद्गरादिव्यापारानन्तरमेव, ततश्च प्रागनुपलब्धा मुद्गरादिव्यापारानन्तरमुपलभ्यमाना पुनस्तदभावे-  
ऽनुपलभ्यमाना तज्जन्यतयाऽसौ व्यवस्थाप्यते अन्यत्रापि हेतु-फलभावस्यान्वयव्यतिरेकानुविधानलक्षणत्वात्।  
न च मुद्गरव्यापारानन्तरं न प्रच्युतेरुपलम्भः किन्तु कपालसन्ततेरिति तदुदय एव मुद्गरादेर्व्यापारः  
प्रच्युत्युपलब्धिस्तु विषयाभावादुपजायमाना वितथैवेति वक्तव्यम्— यतो घटादेः स्वरूपेणैवाधि(?)विकृत-

- 10 ही भावहेतु नाश कर देगा ? या उत्तरकाल में ? या समानकाल में प्रच्युति करेगा ? पहले पक्ष में जो  
अभाव होगा वह ध्वंसरूप नहीं बल्कि प्रागभावरूप ही होगा, तो जो भावोत्पादक वही नाशोत्पादक कैसे  
हो सकेगा ? दूसरा पक्ष मानेंगे तो :- भावोत्पत्तिकाल में (यानी प्रथमक्षण में) भावविनाश उत्पन्न नहीं  
हुआ अतः (अन्वय व्यभिचार होने से) भावहेतु से भावनाशोत्पत्ति न होने से जो भावहेतु है वह नाशहेतु  
न रहा। फलतः मानना पड़ेगा कि भावप्रच्यवन भावोत्पादकसापेक्ष नहीं किन्तु उत्तरोत्तरकालभावी भाव (के)  
15 तथास्वभाव से ही नाशोत्पत्ति होती है, तब भावोत्पत्ति के तुरंत बाद प्रच्यवन कैसे सिद्ध होगा ? (भाव  
का जैसा स्वभाव रहेगा, कोई दूसरे क्षण में, कोई तीसरे.. चौथे..पाँचवे क्षण में नाश प्राप्त करे ऐसा स्वभाव  
होगा तो नाश भी तीसरे, चौथे, पाँचवे... क्षण में ही होगा।) तीसरा पक्ष माना जाय तो — प्रथम क्षण  
में अविरोधभाव से भावोत्पाद एवं भावोत्पत्तिक्षणभावि नाश दोनों विना विरोध सहचर बनेंगे, अतः भाव  
की उत्पत्ति (के समकाल में भले नाश रहे किन्तु) के उत्तर काल में भाव की सत्ता होने पर भी नाश  
20 कभी नहीं हो सकेगा। मतलब, भाव का अभाव कभी नहीं होगा।

### [ अन्वय-व्यतिरेकबल से अभाव में सहेतुकत्व की प्रतिष्ठा ]

- और एक बात, हालाँकि भावप्रच्युति भावोत्पत्ति के तुरंत बाद उदयवती होने का मान लिया जाय,  
फिर भी जैसे मोगरप्रहार के बाद उस की प्रतीति होती है वैसे उत्पत्ति के तुरंत बाद नहीं प्रतीत होती  
किन्तु मोगरप्रहार के बाद ही होती है, इस से यह निश्चय या निरूपण किया जा सकता है कि भावोत्पत्ति  
25 के तुरंत बाद न दिखनेवाली, मोगरादिप्रहार के बाद दिखाई देनेवाली, पुनः मोगरप्रहार के बन्द हो जाने  
पर न दिखनेवाली भावप्रच्युति मोगरप्रहार का ही कार्य है, क्योंकि घट-कपालादि अन्य स्थल में भी  
कार्यकारणभाव अन्वय-व्यतिरेकानुसरण से ही लक्षित होता है। ऐसा बोलना मत कि — 'मोगरप्रहार के  
बाद तो कपालखण्ड सन्तान की ही उपलब्धि होती है न कि भावप्रच्युति की, अतः खण्ड की उत्पत्ति  
के लिये ही मोगरादि का योगदान मानना चाहिये। प्रच्युति की उपलब्धि तो मिथ्या ही हैं क्योंकि वह  
30 तो विषयभूतघटादिअभाव से उदित होती है।' — निषेध का हेतु यह है कि जब मोगरप्रहार का भावप्रच्युति  
के लिये कुछ योगदान ही नहीं, तब तो अपने अविकृतस्वरूप से घटादि वहाँ विद्यमान होने से पूर्ववत्  
वहाँ उस की उपलब्धि आदि प्रसक्त होगी। ऐसा नहीं कहना कि — 'घटादि का तो वहाँ स्वयमेव अभाव

स्यावस्थाना(?ने) पूर्ववदुपलब्ध्यादिप्रसक्तिर्भवेत्। न च तस्य तदा स्वयमेवाभावाद् नोपलब्ध्यादिरिति वक्तव्यम् यतः सोऽपि तदभावस्तदैव मुद्गरादिव्यापारानन्तरमुपलभ्यते अन्यदा तु नोपलभ्यत इति कथं न तत्कार्यः ?!

अथ न (?) भावाभावो भावस्वरूपादन्यः केवलं कल्पनाविषयत्वादसदेवासौ व्यवहारपथमवतार्यते। नन्वेवं भावप्रच्युतेः काल्पनिकत्वे भावानामपि काल्पनिकत्वमपरिहार्यम् यतो लाक्षणिको विरोधो नीलपीतादेः 5 परैरभ्युपगतः, वस्तुस्वरूपव्यवस्थापकं च लक्षणं तन्निमित्तो विरोधो नीलप्रच्युत्या, तद्विरोधे च पीतादीनामपि तत्प्रच्युतिव्याप्तानां तेन विरोधः, तथा च प्रमाणं नीलपरिच्छेदकत्वेन प्रवृत्तं नीलप्रच्युतिं तद्व्याप्तानांश्च पीतादीन् व्यवच्छिन्देव स्वपरिच्छेदं नीलं परिच्छिनत्तीत्यभ्युपगमः। स च शशविषाणस्येव भावाभावकाल्पनिकत्वाभ्युपगमे कथं मु( ?यु)क्तिसङ्गतः ? न हि शशविषाणप्रख्यस्य भावाभावस्य भावविरुद्धत्वम् पीतादिव्यापकत्वं वा प्रमाणाऽविषयत्वेन व्यवस्थापयितुं शक्यम् यतस्तस्य प्रतिनियतपदार्थव्यवस्थाहेतुत्वं भवेत्। 10

न च विनाशस्य मुद्गरादिजन्यत्वमसिद्धम् विरोधिरूपतया लोकस्थित्या मुद्गरादीनां तत्कारणत्व-  
हो जाता है अतः उस की उपलब्धि आदि का प्रसञ्जन नहीं होगा,' - निषेध का हेतु यह है कि 15  
अन्वय-व्यतिरेक देख लो कि वह अभाव भी उसी काल में मोगरप्रहार के तुरंत बाद दिखता है, अन्य  
काल में नहीं तो उसे उस का कार्य क्यों न माना जाय ??

**क्षणिकवादी** :- भाव का अभाव भावस्वरूप से भिन्न नहीं (?) है, तथापि (पृथग् रूप से) वह 15  
असद्रूप से व्यवहार गोचर बनता है क्योंकि वह विकल्प का विषय है।

**स्थायित्ववादी** :- यदि भावप्रच्युति (स्वरूप अभाव) को आप काल्पनिक (यानी विकल्प का विषय) 20  
कहेंगे तो पदार्थों को भी काल्पनिक होने का प्रसंग अनिवार्य बन जायेगा। कैसे यह देखिये - बौद्धोंने  
नील-पीतादि का लाक्षणिक विरोध मान्य किया है। लाक्षणिक :- लक्षण वस्तुस्वरूप का निश्चायक होता  
है, लक्षण के आधार पर यानी लक्षणनिमित्तक नील-पीतादि का विरोध होता है जिसे 'लाक्षणिक' कहा 20  
गया है। अभाव का लक्षण है भावप्रच्युति, इसी लिये तो नील का नीलप्रच्युति के साथ विरोध होता  
है, जहाँ नीलप्रच्युति होगी वहाँ पीतादि कोई अवश्य होगा, यानी पीतादि नीलप्रच्युति से व्याप्त होने  
के कारण, नील से पीतादि का विरोध फलित होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि नीलपरिच्छेदकरूप  
से प्रवर्तनेवाला प्रमाण नीलप्रच्युति का व्यवच्छेद करता हुआ एवं नीलप्रच्युतिव्याप्त पीतादि को भी  
व्यावृत्त करता हुआ स्वविषयभूत नीलादि का प्रकाशन करता है यह आप का अभिमत हुआ। अब 25  
आप यदि भावाभाव को शशविषाण की तरह सर्वथा काल्पनिक मानेंगे तो उक्त लाक्षणिक विरोध कैसे  
युक्तिसंगत होगा ? भावाभाव सर्वथा शशविषाणतुल्य होगा तो भावाभाव के साथ भावविरुद्धता एवं  
उस की पीतादिव्यापकता प्रमाणविषय नहीं हो सकती (शशशुंग के साथ भावविरुद्धतादि जैसे प्रमाणविषय  
नहीं होती।) फिर उस का निश्चय भी कैसे किया जा सकेगा, जिस से कि व्यावृत्तरूप से परिच्छेद  
के द्वारा वस्तु की प्रतिनियतपदार्थव्यवस्था का हेतुत्व कहा जा सके ?! 30

[ विनाश में मोगर आदि जन्यता की निर्बाध सिद्धि ]

विनाश में मोगरप्रहार जन्यत्व असिद्ध नहीं है। लोकाभिप्राय से (सार्वजनीन प्रतीति से) यह

- व्यवस्थापनात्। तथाहि — न परैः कणभुग्मतानुसारिभिरिव कार्य-कारणभावात् पृथग् विरोधाख्यसम्बन्धोऽभ्युपगम्यते। यतस्तैर्मुद्गरादिजन्यस्य विनाशस्य तदतद्रूपत्वेनाऽसम्भवाद् विनाशस्य च तदतत्त्वभावतया विनाशविषयत्वमपाकृत्य घटकक्षणो मुद्गरादिकं विनाशकारणत्वेन प्रसिद्धमपेक्ष्य समानक्षणान्तरोत्पादनेऽसमर्थ-  
 5 क्षणान्तरमुत्पादयति तदपि तदपेक्षमपरमसमर्थतरम् तदप्युत्तरं तदपेक्ष(म)समर्थतमं यावद् घटसन्ततेर्निवृत्तिः, अन्यत्रापि सर्वत्रैवमेव विरोधित्वं प्रतिपादितं परैः। एतदभ्युपगमे च क्षणस्याऽसमर्थक्षणान्तरजनकत्वमेवानुपपन्नं भवेत्। न च मुद्गराद्यपेक्षस्य घटकक्षणस्य शक्तिव्यावृत्तिः स्वत एव व्यावर्तमानस्त्वसौ मुद्गराद्यभावे समानक्षणान्तरोत्पादकमपरं समर्थं जनयति तत्सद्भावे त्वसमर्थक्षणा(न?)न्तरम् न तु मुद्गराद्यपेक्षातस्तस्य कश्चित् सामर्थ्यविघात इति वक्तव्यम्, यतो मुद्गरादिसंनिपाते तज्जनकस्वभावऽव्याहृतौ समर्थक्षणान्त-  
 10 रोत्पादप्रसक्तिः समर्थक्षणान्तरजननस्वभावस्य कारणपरम्परायातस्य भावात् प्राक्तनक्षणस्येव। न हि तस्य स्वनिरोधादन्यज(ज्ज)नकत्वम्। स च हेतुतः समर्थजननस्वभावो भूत्वा स्वयमेव न भूतो। मुद्गरादिना च न तस्य कश्चिच्छक्तिप्रतिघातो विहित इति।

- सुविदित है कि मोगरप्रहार घटादि का विरोधी है अत एव निश्चित होता है कि वह घटविनाश का कारण है। देखिये — न्यायमत के पंडितों मानते हैं कि नाशय-नाशकभावादिस्वरूप विरोधसम्बन्ध कारण-कार्यभाव से पृथक् होता है, किन्तु क्षणवादी को इस का स्वीकार नहीं है। कारण :- मोगरप्रहारजन्य  
 15 विनाश न घटरूप होता है न अघटादिरूप, तथा विनाश स्वयं विनाश का तत्त्वभावरूप से विषय नहीं हो सकता और अतत्त्वभावरूप से भी विनाशविषय नहीं हो सकता, इत्यादि समझते हुए बौद्ध विद्वान् कहते हैं कि घटकक्षण, विनाशकत्वरूप से अन्यमतप्रसिद्ध मोगरादिप्रहार का सापेक्ष हो कर जब सजातीयअन्यक्षण को उत्पन्न करता है तो वह अग्रिम सजातीयअन्यक्षण को असमर्थरूप से ही उत्पन्न करता है। वह अग्रिम क्षण भी अग्रिमसजातीय अधिक असमर्थ क्षण को उत्पन्न करेगा। वह भी अग्रिम  
 20 अत्यन्तअसमर्थ क्षण को उत्पन्न करेगा... यावत् पूरे घटसन्तान की उपरति हो जायेगी। यही है बौद्धमतस्वीकृत विरोध, जो सर्वत्र उन्होंने प्रदर्शित किया है। अब इस तरह के सामर्थ्य का कुछ हनन मोगरप्रहार से मानना पडेगा। अन्यथा मोगर के सांनिध्य में उस क्षण में असमर्थ अन्य क्षण जनकत्व की संगति नहीं होगी।

### [ मोगरप्रहार से सामर्थ्यविघात की शंका - समाधान ]

- 25 ऐसा मत कहना कि — ‘मोगरादिसापेक्ष घटकक्षण से अपने आप ही शक्ति दूर भाग जाती है। वह घटकक्षण जब निवृत्त लेता है उस वक्त यदि मोगरादि नहीं होता तो समान (सजातीय) समर्थ अन्यक्षण को वह जन्म देता है किन्तु मोगरादि की उपस्थिति में असमर्थ अन्य क्षण को उत्पन्न करता है। यहाँ मोगरादिसांनिध्य रहने पर भी उस की अपेक्षा नहीं होती जिससे कुछ सामर्थ्य विघात हो सके।’ — निषेध का कारण मोगरादि के सांनिध्य में यदि समर्थक्षणजनकस्वभाव का व्याघात नहीं  
 30 मानेंगे तो समर्थ अन्यक्षण के जन्म की आपत्ति होगी, क्योंकि परम्पराप्राप्त समर्थ अन्यक्षणस्वभाववाला पूर्वक्षण जैसे समर्थ उत्पन्न हुआ था वैसे प्रस्तुतक्षण भी समर्थ ही उत्पन्न होगा। जनकत्व का मतलब कुछ व्यापार नहीं किन्तु स्व का निरोध यही है जनकत्व। निरोध का मतलब है — अपने हेतु से

यद्यप्यपरकारणान्तरसन्निधानात् कार्यं विलक्षण्येनैवोत्पत्तिमिच्छति [?? तथापि प्राक्तनघटक्षणस्य तत्त्वभावत्वाद् न त्वेवं कार्योत्पत्तिः स्याद् नान्यथेति। न च स्वहेतुतो समर्थजननस्वभावस्य तस्योत्पत्तेर्नायं दोषः प्रथमक्षण एवं(?) सन्तत्युच्छेदप्रसक्तिः। अतो मुद्गरादिव्यापारकालेऽपि यदि स्वहेतुत एव समानक्षणान्तरजननसामर्थ्यं घटक्षणस्य समास्ति ततः सदृशक्षणान्तरोत्पत्तेर्मुद्गरादिसंनिधानं व्यर्थम्। अथ स्वहेतुतः समानक्षणान्तराऽजननसमर्थो घटक्षणः तथापि प्राक्तनक्षणादिवत् तत्क्षणादप्यपरक्षणान्तरजनकस्य समानक्षणोत्पत्तेर्व्यापारवन्मुद्गरसन्निधिर्व्यर्थः एव। एतच्च— 'स्वहेतुतो भावस्य नश्वरस्वभावत्वे न किञ्चिन्नाशहेतुना अनश्वरस्वभावत्वेऽपि सुतराम्' — इति वदता परेण दूषणमभ्युपगतमेव। न चाऽकिञ्चित्करस्यापि मुद्गरादेः

समर्थक्षणजनकस्वभावयुक्त होने के बाद स्वयमेव असत् हो गया। यहाँ मोगर आदि से कुछ शक्तिविघात किया गया — ऐसी बात ही नहीं है।

### [ विलक्षण कार्योत्पत्ति के स्वीकार पक्ष में असंगतियाँ ]

(इस परिच्छेद में तथापि... से लगा कर (पृ.१९३-१) 'प्रच्युतिर्भवेत् ?' (१९७-४) पाठ पर्यन्त, भूतपूर्वसम्पादकों ने अशुद्ध पाठ का निर्देश किया है इस लिए उस का सम्यक् विवेचन शक्य नहीं, फिर भी स्थान अशून्यार्थ कुछ प्रयास करते हैं) —

यद्यपि नये नये अन्यकारणों के सांनिध्य में कार्य कुछ विलक्षण प्रकार से उत्पत्ति के लिये तत्पर रहता है (अतः मोगरप्रहार निरर्थक कहने का साहस किया जाय) किन्तु ऐसे तो उस का पूर्वघटक्षण भी तथाविधस्वभाववाला होने पर ही विलक्षण प्रकार से कार्योत्पत्ति हो सकती है अन्यथा नहीं। ऐसा मत कहना कि — 'पूर्वघटक्षणरूप हेतु से कार्य समर्थजननस्वभाववाला ही उत्पन्न होता है — अतः प्रस्तुतक्षण में विलक्षण कार्य (असमर्थकार्यक्षण) का दोष नहीं होगा।' — निषेधकारण :- प्रथमक्षण में ही सकल भावि समर्थक्षणों की उत्पत्ति प्रसक्त होने से समुचे सन्तान के उच्छेद की आपत्ति होगी (नतीजा, मोगरप्रहारकाल में भी यदि प्रस्तुतघटक्षण में अपने हेतुवृन्दप्रयुक्त समानअन्यक्षणजननसामर्थ्य मानना पड़ेगा, फिर तो उस से सदृश यानी समर्थ अन्यक्षण की ही उत्पत्ति प्रसक्त होने के कारण मोगरप्रहार सांनिध्य की निरर्थकता का कलंक लगा रहेगा।

### [ मोगरप्रहार की व्यर्थता का कलंक तदवस्थ ]

अब यदि कहें कि — 'अपने हेतुओं से समानउत्तरक्षण अजननसमर्थ घटक्षण की उत्पत्ति होती है' — फिर भी पूर्वक्षणादि की तरह (नियामक न होने से) प्रस्तुतक्षण से अन्यक्षणजनक ऐसे समान (असमर्थ) क्षणोत्पत्ति हो जायेगी, उसमें जैसे अन्य किसी का व्यापार व्यर्थ है वैसे मोगरप्रहारसांनिध्य भी व्यर्थ होने का कलंक अनिवार्य रहेगा। आपने स्वयं भी इस कलंक का स्वीकार तब कर ही लिया है जब आप ने कहा है कि — भाव यदि अपने हेतु से नश्वरस्वभाव उत्पन्न होता है तो नाशहेतु (मोगरप्रहारादि) अकिञ्चित्कर (यानी व्यर्थ) है। यदि अनश्वरस्वभाव उत्पन्न होता है तब तो सुतरां नाशहेतु व्यर्थ है। ऐसा मत कहना कि — प्रस्तुत घट क्षण द्वारा असमर्थ अन्यक्षणजनन काल में अकिञ्चित्कर मोगरप्रहार कोई उपालम्भपात्र नहीं है क्योंकि वह भी अपने हेतुओं के सांनिध्य के बल से अकिञ्चित्करस्वरूप से ही उपस्थित होता है (जिस को कहते हैं अवर्जनीयसंनिधि)।' — निषेध कारण

स्वहेतुमन्निर्हेतुसन्निधिबलायातत्वाद् घटक्षणस्याऽसमर्थक्षणान्तरजननकालेनोप(1)लम्भविषयता यत एवानेकस्यैव क्षणघटस्य विलक्षणक्षणान्तरोत्पादकत्वाभ्युपगमप्रसक्तिः स्यात्।

- एवं च मुद्गरादेर्न विरोधित्वम् विनाशस्याऽहेतुकत्वात्। नापि जनकत्वम् पूर्वोक्तदोषप्रसक्तेरिति विलक्षणसन्तत्युत्पादे सन्तानोच्छेदे वा मुद्गरादेरन्वय-व्यतिरेकानुविधानप्रसक्तितो नाग्न्यादीनां दहनादिकार्यं
- 5 लोकस्योपादानं भवेत्। न च परमार्थैकत्वस्याभावे घटादीनां मुद्गरादिव्यापारानन्तरमनुपलब्धिर्भवेत्। न च पूर्वसन्तानोच्छेदाद् विलक्षणसन्तानोत्पत्तेश्च तदा घटानुपलब्धिरिति वक्तव्यम्, विलक्षणसन्तत्युत्पादस्य प्राक्तनन्यायेनाभावात् पूर्वसन्ततिनिवृत्तेरपि वि(?नि)वर्तमानेभ्योऽनर्थान्तरत्वात् तथैवोपलब्ध्यादिप्रसक्तेः तदा तस्य स्वरूपक्षतेरभावात्। न च न तदा तस्य स्वरूपप्रच्युतिरुत्पद्यते किन्तु तस्यैकक्षणावस्थायित्वेन तदाऽभवनमिति नोपलम्भः, यतः स्वरूपादप्रच्युतस्य नाऽभवनं नाम किञ्चित् तत्सद्भावाभ्युपगमे वा कथं
- 10 न स्वरूपप्रच्युतिस्ततोऽर्थान्तरभूतोत्पत्तिमती ? अथ स एव न भवति, न तु तस्याऽपरं सत्त्वम् न तु तदेवेदं पुना रूपाऽभवनमभिधीयते, तत्र च तदेवोत्तरम्।

:- तब तो प्रत्येक घटक्षणों में विलक्षण (असमान) अन्य क्षण उत्पादकत्व के स्वीकार की आपत्ति होगी, (क्योंकि मोगरसानिध्य हो या न हो कोई फर्क पडनेवाला नहीं है)।

### [ मोगरप्रहारव्यर्थ होने पर लोकव्यवहारनिष्फलताप्रसंग ]

- 15 उक्त प्रकार से तो बौद्धमत का निष्कर्ष यही होगा कि मोगरादि घट के विरोधी नहीं है क्योंकि विनाश तो निर्हेतुक है एवं (कपालिकादि का) जनक भी नहीं है क्योंकि तब पूर्वकथित दोषप्रसंग खडे होंगे। उस का नतीजा यह होगा कि विलक्षणसन्तान की उत्पत्ति या सन्तानोच्छेद में मोगरादि की अन्वय-व्यतिरेक अनुवृत्ति निष्फल होने से (कारणताज्ञापक न होने से) कोई भी लोग पचनादि कार्यों के लिये अग्नि आदि की अपेक्षा नहीं रखेंगे। तथा, घटादिसन्तान में यदि वास्तव एकत्व नहीं
- 20 होगा तो जरूरी नहीं है कि मोगरादि के प्रहार के बाद घटादि की अनुपलब्धि हो। यदि कहें कि — प्रहार के बाद पूर्व घटसन्तान का उच्छेद एवं विलक्षण (ठिकरे) सन्तान का उत्पाद होने से घटादि की अनुपलब्धि जरूरी है। — तो यह अयुक्त है — क्योंकि पूर्वोक्त युक्तियों से स्पष्ट हो चुका है कि विलक्षणसन्तानोत्पाद सम्भव नहीं है। तथा पूर्वसन्ताननिवृत्ति भी निवर्तमानक्षणों से पृथक् न होने पर उन की उपलब्धि का प्रसंग तदवस्थ रहेगा, क्योंकि मोगरप्रहार व्यर्थ होने से उन क्षणों को कोई
- 25 स्वरूपहानि होती नहीं। ऐसा भी नहीं कहना कि — ‘वहाँ कोई स्वरूपप्रच्युति उत्पन्न होने की बात नहीं है। किन्तु घटादि एकक्षणस्थितिवाले होने के कारण बाद में अभवन हो जाने से घटादि की उपलब्धि नहीं होती।’ — निषेधकारण :- स्वरूप से प्रच्युति यदि नहीं हुई तो अभवन-शब्द का कुछ अर्थ ही नहीं है, यदि अभवन का सद्भाव है तो स्वरूपप्रच्युति कैसे नहीं जो कि अर्थान्तरभाव की उत्पत्तिरूप मानी गयी है ? यदि ऐसा भी कहें कि — ‘वह नहीं होता यही स्वरूपप्रच्युति है, और किसी भाव
- 30 की सत्ता नहीं, पूर्वक्षण में जो है वह उत्तरक्षण में नहीं है इसी को तद्रूप का अभवन कहा जाता है’ — तो यहाँ भी पूर्ववत् ही उत्तर समझ लेना।

तस्माद् विनाशहेतुव्यापारनन्तरं(?) पदार्थस्याऽसद्व्यवहारं विदधता तद्व्यतिरिक्तार्थान्तरग्रहणमभ्युपगन्तव्यम् न तु तदग्रहणमात्रम् अन्यथा तस्याभावानिश्चये क्तन्यादि(?)क्षणादि)व्यवहितस्य सद्व्यवहारनिषेध एव स्यात् नाऽसद्व्यवहारप्रवर्तनम् यतो न कश्चिदभावाऽनिश्चये तत्स्वरूपाऽग्रहणे वानुपलब्ध्योर्विशेषः येनैकत्राऽसद्व्यवहारप्रवृत्तिः अन्यत्र सद्व्यवहारनिषेधमात्रात्(?)त्रम्)। किञ्च, भावोत्पत्तेः प्राग्भावस्याऽभावनिश्चय(?)ये) तदुत्पादकारणोपादानं कुर्वन्त उपलभ्यन्ते प्रेक्षापूर्वकारिणः; तदुत्पत्तौ च निवृत्तव्यापारा विनाशकहेतुव्यापारान्तरं च स्वरूपातिरिक्तं पदार्थान्तरमवगत्य शत्रुध्वंसं सुखभाजो मित्रप्रक्षये तु दुःखानुषक्ता उपलभ्यन्ते। न च मित्रसद्भावो दुःखहेतुः प्रतीतः, नापि शत्रुसद्भावः सुखजनक इति तद्व्यतिरिक्तोऽभावस्तज्जनकोऽभ्युपगन्तव्यः। न च मित्राऽमित्राभावे (च?) न दुःख-सुखे, विहितोत्तरत्वात्।

न चाभावस्य भवितृत्वे भावरूपता, अभावप्रत्ययविषयत्वेन भवितृत्वेऽप्यभावरूपत्वात्। यथा हि भवितृत्वेनाऽविशेषेऽपि घट-पटयोस्तत्प्रतीतिविषयत्वेन तद्रूपता तथा भावाऽभावयोरपि तद्विषयत्वात् तद्रूपत्वे 10

### [ 'असत्' व्यवहार तो साथ अर्थान्तरग्रहण अनिवार्य ]

यही कारण है कि विनाशहेतुव्यापार के उत्तरक्षण में पदार्थ के प्रति 'असत्' व्यवहार करनेवाले को यह भी स्वीकारना चाहिये कि भावनाश के बाद उस भाव से भिन्न किसी अन्य अर्थ का ग्रहण भी होता है न कि पूर्वभाव का अग्रहणमात्र। अन्यथा, अग्रहणमात्र से उस भाव के अभाव का निश्चय न होने से क्षणादिव्यवधान से उस भाव के सत्त्व के व्यवहार का निषेध मात्र होगा किन्तु 'असत्' 15 व्यवहार का प्रवर्तन शक्य नहीं होगा। कारण :- भाव के अभाव का अनिश्चय और भाव के स्वरूप का अग्रहण, दोनों प्रकार की अनुपलब्धि में खास कोई भेद नहीं है, जिस से कि अभाव का अनिश्चय रहने पर 'असत्' व्यवहार प्रवृत्ति की जा सके और अग्रहणमात्र होने पर सिर्फ 'सद्' व्यवहार का निषेध किया जाय।

### [ शत्रु-मित्र से अतिरिक्त (ध्वंसरूप) अभाव की स्वीकारापत्ति ]

दूसरी बात :- बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवाले को किसी (धूमादि) भाव की उत्पत्ति के पूर्वकाल में जब उस भाव के विरह का निश्चय रहता है तो वे उस के उत्पादक (अग्नि आदि) कारणों की खोज करते हैं यह दिखता है। जब उस की उत्पत्ति हो जाती है तो फिर उत्पादनक्रिया से उपरत हो जाते हैं। फिर जब उस (प्रिय-अप्रिय) भाव के विनाशकहेतु के व्यापार के बाद अन्यपदार्थ (ठिकरे आदि) को जान कर (अप्रिय) शत्रु का ध्वंस होने पर सुख भोक्ता और (प्रिय) मित्र का ध्वंस होने 25 पर दुःखभागी होते हैं - यह दिखता है। न तो मित्र का सद्भाव दुःखहेतु है, न तो शत्रु का सद्भाव सुखहेतु है, अतः सुख या दुःख के हेतुभूत (शत्रु-मित्र) से अतिरिक्त ही उन के अभाव को सुख-दुःख का जनक मानना पडेगा। 'मित्र के अभाव में दुःख न हो, शत्रु के अभाव में सुख न हो' ऐसा तो बोल नहीं सकते क्योंकि उन के हेतु-हेतुमद्भाव से उत्तर दिया जा चुका है।

### [ अभाव में भावरूपता की आपत्ति का प्रतिकार ]

यदि कहा जाय - भाव का ध्वंसरूप अभाव यदि भविता - यानी भवनशील माना जायेगा तो उस में भावरूपता प्रसक्त होगी - तो यह गलत है क्योंकि भविता स्वीकारने पर भी वह अभावप्रतीतिविषय होने से अभावरूपता ही माननी होगी। देखिये - घट और पट दोनों में भविता 30

न किञ्चिद्दूषणमुत्पश्यामः । न वाऽभावस्य भवने विरोध एव दूषणम् स्वरूपेऽबाधितप्रत्ययविषये विरोधाऽसिद्धेः, अन्यथा सर्ववस्तुषु तत्सिद्धिप्रसक्तिः । तन्न मुद्गरादिव्यापारात् प्राग् घटादेस्तद्व्यापारानन्तरमेव तस्या उपलब्धेः पदार्थात्मभूता प्रच्युतिः । अत एव तस्मिन् 'गृहीतैव प्रमाणता' इति हेतोरसिद्धतेत्यपि न वाच्यम् । यतः किं घट एव प्रच्युतिः, उत कपाललक्षणं भावान्तरम्, आहोस्वित् तदपरं पदार्थान्तरमिति विकल्पाः ।

5 9तत्र यदि घटस्वरूपमेव प्रच्युतिः तर्ह्यपरं तत्राभिधानान्तरं विहितम् घटस्वरूपं त्वविचलितं प्रतीयते कथं न नित्यम् ? अथैकक्षणस्थायि घटस्वरूपं प्रच्युतिरिति न घटस्य नित्यता, नन्वेकक्षणस्थायितया घटस्वरूपं न प्रतीतिगोचर इति कथं तस्य प्रच्युतिः ? २ अथ कपालस्वरूपमेव घटप्रच्युतिः तथापि प्राक्कपालप्रादुर्भावात् घटस्यावस्थितेः कालान्तरस्थायितैव घटस्य भवेद्, न क्षणिकता । न च कपालरूप-प्रच्युत्यभ्युपगमे मुद्गरादिव्यापारानन्तरमिव 'घटस्य ध्वंसः' इति पूर्ववदुपलब्ध्यादिप्रसङ्गः, यतो न मुद्गरादिना

10 तुल्यरूप से हैं, फिर भी घट में पटरूपता या पट में घटरूपता प्रसक्त नहीं होती, क्योंकि घटप्रतीतिविषयता होने से घट में घटरूपता, पटप्रतीतिविषयता होने से पट में पटरूपता ही होती है। मतलब पदार्थ की तद्रूपता भविताप्रयुक्त नहीं किन्तु तदाकारप्रतीतिविषयतामूलक होती है। इसी तरह भाव/अभाव में भी भावाकारप्रतीतिविषयता/अभावाकारप्रतीतिविषयता से प्रयुक्त भावरूपता/अभावरूपता होती है। इस के स्वीकार में कोई दूषण दिखता नहीं। यदि दूषण दिखाया जाय — अभाव और उस का भवन यही 15 तो विरोध है — तो समझ लो कि अबाधितप्रतीतिविषयभूत भवनस्वरूप चाहे भाव का हो या अभाव का, कोई विरोधगन्ध नहीं है। अन्यथा निर्बाधप्रतीतिविषय भूत प्रत्येक पदार्थ में विरोध ही विरोध प्रसक्त होगा। निष्कर्ष, मुद्गरादिव्यापार के पहले घटादि की उपलब्धि होती है और मोगरप्रहार के बाद ही घटप्रच्युति का उपलम्भ होता है, अतः सिद्ध होता है कि प्रच्युति भावात्मक नहीं होती (किन्तु अभावरूप होती है। यही कारण है कि आप को ऐसा बोलने का अवसर ही नहीं रहता कि — 20 'ध्वंस के प्रति मोगरप्रहार की हेतुता में प्रामाण्य गृहीत है इस प्रकार का हेतु असिद्ध है' — (क्योंकि उपरोक्त कथन से हेतुसिद्धि निर्बाध है।)

यहाँ प्रच्युति के बारे में बौद्धमत के प्रति तीन प्रश्न-विकल्प हैं — 9घट ही प्रच्युति है ? २या प्रच्युति कपालस्वरूप भावान्तररूप है ? ३या कपालभिन्न कोई पदार्थान्तर है ?

### [ घटस्वरूप या कपालरूप प्रच्युति का समीक्षण ]

25 प्रथमपक्ष :- यदि घट का स्वरूप है प्रच्युति, तो यहाँ घटक्षण को नाशादिस्वरूप प्रच्युति से कुछ सम्बन्ध नहीं रहता, सिर्फ एक नूतन नामकरण घट का हुआ 'प्रच्युति'। घट स्वरूप तो नामान्तर करने पर भी तदवस्थ प्रतीत होता है — क्यों उसे नित्य न माने ? यदि कहें कि — 'घटस्वरूप प्रच्युति का मतलब नित्यता नहीं है किन्तु एकक्षणस्थायित्व' — तो यह प्रश्न निरुत्तर रहेगा कि घटस्वरूप एकक्षणस्थायित्व रूप प्रच्युति दृष्टिगोचर क्यों नहीं होती ? प्रतीति के बिना प्रच्युति को घटस्वरूप 30 कैसे मानेंगे ? दूसरा पक्ष :- यदि प्रच्युति कपालस्वरूप है, तो भी जब तक कपाल का प्रादुर्भाव नहीं होगा, घट तदवस्थ रहने से कालान्तरस्थिति ही घट की सिद्धि होगी, क्षणिकता नहीं। तथा — 'प्रच्युति (=ध्वंस)' को कपालरूप मानने पर मुद्गरप्रहार के बाद जब तक कपाल रहेंगे तब तक 'घट

घटस्वरूपं क्रियते, स्वहेतोरेव तस्य निष्पत्तेः। नाप्यसती स्वरूपप्रच्युतिरुत्पद्यते तत्र परैर्हेतुव्यापारानभ्युपगमात्। यत् तु कपालादिषु(?स्तु) मुद्गरादिना निष्पाद्यत इत्यभ्युपगतम् न तस्य विरोधान्न हेतुत्वं कुड्यादेरिवेति कथं न प्रागिवोपलब्ध्यादिकं भवेत्।??

[अथ स एव न तदा न तेन नित्यता न चोपलब्ध्यादिकं(?क)स्वकार्यक(1?)रणम्। नैतदेवम् — यतः 'सः' — 'न' इति शब्दयोः किं भिन्नार्थत्वम् आहोस्विदेकार्थत्वमिति वक्तव्यम्। यदि भिन्नार्थता 5 कथं न 'नञ्'शब्दवाच्यः पदार्थान्तरमभावोऽभ्युपगतो भवेत् ? अभिन्नार्थत्वे तु पूर्वमपि 'नञ्' प्रयोगप्रसक्तिः। न चानुपलम्भे सति नञ्प्रयोगाभ्युपगम इति वक्तव्यम् यतो व्यवधानाद्यभावे स्वरूपादप्रच्युतस्य तस्यैवानुपपत्तिर्भवेत्। अथ स्वरूपात् प्रच्युतिः कथं न कपालकाले मुद्गरादिहेतुकं भावान्तरं प्रच्युतिर्भवेत् ???]

[??अथ कपालकाले घटविनाशा(न)भ्युपगमे स्वभावत एव घटस्याऽविनश्वरस्य परतोऽपि नाशाऽसम्भवतो यः स्वभावो घटस्य प्रथमक्षणात् कियत्कालावस्थानोत्तरकालविनाशलक्षणस्तस्य मुद्गरादिसंनिधानकालेऽपि 10

का ध्वंस' ऐसी उपलब्धि का अतिप्रसंग पूर्ववत् जारी रहेगा' — ऐसा मत कहना क्योंकि मोगरप्रहार घटध्वंस के साथ घटस्वरूप का निर्माण नहीं करता जिस से 'घट का' इस प्रकार घट की (एवं तत्प्रतियोगिक ध्वंस की) पुनः पुनः उपलब्धि का निमित्त बन सके। घट तो अपने हेतु मिट्टी आदि से ही निर्मित होता है। बौद्ध मत में असत् के निर्माण के लिये हेतु के योगदान का स्वीकार न होने से, मोगर प्रहार से असत् प्रच्युति की उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं है। भीति आदि का जैसे मिट्टी आदि से 15 निर्माण होता है वैसे ही मोगरप्रहार से कपालादि का निर्माण मान्य ही है, अतः वहाँ विरोध का आपादन कर के मोगरप्रहार के हेतुत्व का निषेध नहीं किया जाता। अतः एक बार कपाल उत्पन्न होने पर पहले पहल जैसे उस की उपलब्धि होती है वैसे जब तक उसका नाश न हो तब तक पूर्ववत् उसकी उपलब्धि क्यों नहीं होगी ?

बौद्ध :- उस वक्त वही नहीं है, अतः नित्यता प्रसक्त नहीं होगी। एवं उपलब्धि आदि अपने 20 कार्य का करण भी नहीं होगा। नित्यवादी :- यह यथार्थ नहीं, स न भवति — इस में स और न शब्द भिन्नार्थक है या एकार्थक ? यह कहो। यदि भिन्नार्थक है तो अभाव नञ्शब्दवाच्य एक पदार्थ है यह स्वीकारना होगा। यदि एकार्थक है पूर्वक्षण में भी नञ्प्रयोग प्रसक्त होगा। यदि कहें कि — 'पूर्वक्षण में उपलम्भ होने से नञ्प्रयोग नहीं होगा, अनुपलम्भ के रहते ही वह होगा' — तो यह बोलने जैसा नहीं। कारण :- यदि दूसरे क्षण में कोई व्यवधान न रहा तो जो अपने स्वरूप से 25 अप्रच्युत है उसका अनुपलम्भ कैसे ? यदि स्वरूप से प्रच्युति मानेंगे तो कपाल (यानी ध्वंस) क्षण में मोगर आदि हेतुक कपालादि रूप अन्यभावात्मक प्रच्युति क्यों न मानी जाय ?

### [ कपालकाल में घट के स्वतन्त्र विनाश की समीक्षा ]

[पुनः यहाँ (१९७-१०) अथ कपाल.. से लेकर वितथत्वात् सिद्धः (२०१-८) पर्यन्त अशुद्ध पाठ का विवेचन]

अहेतुनाशवादी :- कपालस्वरूप ही प्रच्युति मानेंगे, पृथक् विनाश नहीं मानेंगे तो घट को (नाश 30 न होने से) स्वभावतः ही अविनश्वरस्वभाव मानना होगा, फलतः किसी भी मोगरादि पर वस्तु से उस का नाश सम्भव नहीं होगा। कैसे यह देखिये — घट का जो आप को मान्य स्वभाव है — कुछ काल जीवित रह कर उत्तर काल में विनष्ट होना, वह स्वभाव तो मोगरसंनिधिकाल में भी तदवस्थ रहेगा,



भावात् — अभावे वा स्वभावानात्त्वा(त्) क्षणिकत्वप्रसक्तेः — पुनरपि तावत्कालमवस्थानमनुभूय तेन (न) नष्टव्यमिति घटादेः कौटस्थ्यप्रसङ्गः। विनाशहेतुस्व( ?स्त्व)भावस्याऽकिञ्चित्करतयाऽनपेक्षणीयः। न ह्यसौ भावमेव करोति कृतस्य करणाऽयोगात्। न च भावान्तरं करोति, तत्करणेऽपि भावस्य किं सञ्जातमिति तथोपलब्ध्यादिप्रसङ्गात्। न च तस्य तेन सम्बन्धो येन 'तस्यायं विनाशः' इति व्यपदेशभाग् भवेत्,

5 तयोरुपकार्योपकारकभावाऽभावात् तदभावे च पारमार्थिकसम्बन्धाऽयोगात्। यदि पुनर्भावान्तरं विना स्वयमेव क्रियते, विनाशहेतुवैक( ?फ)ल्यम्, स्वत एव तस्य तत्करणसमर्थत्वात् अन्यापेक्षाऽनुपपत्तिः, असमर्थत्वेऽन्यसंनिधानेऽपि करणानुपपत्तेर्न भावान्तरमपि विनाशहेतुनिर्वर्त्यम्। अभावकरणेऽपि पर्युदासपक्षेऽयमेव दोषः। प्रसज्यपक्षे त्वभावं करोतीति क्रियाप्रतिषेधमात्रमेव। तत्र च हेतुरकिञ्चित्कर एवेत्यनपेक्षणीयः स्यात् तस्य निर्हेतुकत्वात्। स्वरसतो भवन्नभावो भावस्य पावकोणत्ववन्न कालान्तरभावीति।

10 असदेतत्— हेतुतः साध्यसिद्धेः प्रत्यक्षस्य च क्षणिकत्वग्राहकत्वेनाऽप्रवृत्तेः न तत्प्रतिबद्धत्वेन हेतु-  
अगर नहीं रहेगा तो स्वभावभेद प्रसक्त होने से स्वयं क्षणिकत्व आ पडेगा। जब पुनः विनाशकाल प्राप्त होगा तब भी कुछ काल जीवित रहने का स्वभाव तदवस्थ रहने से वह कभी नष्ट नहीं होगा — इस प्रकार घटादि कुटस्थ नित्य रहेगा। किसी को वहाँ 'विनाश हेतु' माना जाय तो व्यर्थ है क्योंकि अभाव तुच्छ होने से वहाँ हेतु अपेक्षणीय नहीं रहेगा। यदि कहें कि — 'विनाशहेतु मोगरादि अभावकारक नहीं,  
15 भावकारक हो सकता है।' — तो वह शक्य नहीं, भाव तो अपने हेतु से उत्पन्न है उस का पुनरुत्थान असंभव है। 'विनाशहेतु अन्य भाव को करे' यह भी शक्य नहीं, यदि वह अन्य भाव का कारक बने तो प्रस्तुत घटरूप भाव से क्या निस्वत, वह तो मोगरसंनिध्य में भी तदवस्थ रहने से पुनः पुनः उपलब्धि का प्रसंग जारी रहेगा। घटादि के साथ अन्य भाव का कोई सम्बन्ध नहीं है जिस से कि 'उस का यह विनाश' ऐसा कहा-माना जा सके, क्योंकि घटादि के साथ उस भावान्तर का कोई उपकारक-उपकार्यभाव  
20 है नहीं, उसके विना उन दोनों में कोई वास्तविक सम्बन्ध होगा नहीं।

### [ विनाशहेतु की निष्फलता का आपादन ]

यदि कहें कि — "विनाशहेतु या तज्जन्य भावान्तर के विना विनाशहेतु संनिधि में घटादि स्वयं ही किया जाता हो, तब तो विनाशहेतु सर्वथा निष्फल रहेगा, क्योंकि घटादि स्वयं स्वकरण के लिये समर्थ है, उसे अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रही। यदि वह स्वयं समर्थ नहीं, अतः फलित होगा कि 'अन्यभाव  
25 भी विनाशहेतु का कार्य नहीं हो सकता। यदि भावकरण के बदले अभावकरण माना जाय, तो पर्युदासनञ् पक्ष में अभावकरण का अर्थ अन्यभाव करण ही होगा, अतः उक्त दोष अनिवृत्त रहेगा। प्रसज्य नञ् पक्ष में, 'अभावं करोति' का अर्थ होगा 'भावं न करोति' यानी कुछ (भी) नहीं करता — इस प्रकार क्रिया होने पर विनाशहेतु अकिञ्चित्कर सिद्ध होने से अपेक्षाविषय नहीं रहा, क्योंकि निषेध तो निर्हेतुक है। भाव का अभाव जब स्वयमेव हो सकता है तो वह तत्क्षण हो जायेगा कालान्तरप्रतीक्षा क्यों ? अग्नि की उष्णता  
30 स्वयमेव होती है, तो अग्नि उत्पत्ति के साथ तत्क्षण हो जाती है कालान्तरप्रतीक्षा नहीं करती।" —

### [ सहेतुकविनाश की हेतुपूर्वक सिद्धि ]

हेतुवादी :- यह पूरा कथन गलत है। क्षणिकत्व साध्य की सिद्धि हेतु पर निर्भर है। जब प्रत्यक्ष से क्षणिकत्व सिद्ध नहीं है तो क्षणिकत्वग्राहकरूप से प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति के विरह में क्षणिकत्व से व्याप्त हेतु

निश्चित इत्युक्तत्वात्। अहेतुकत्वेऽपि च नाशस्य जन्मान्त(नन्त)रभावित्वं नित्यस्यापि प्राक्प्रतिपादितत्वात्। न च पावकोष्णत्वदृष्टान्तस्तत्र संभवी, प्रथमक्षणेऽपि भावध्वंसप्रसक्तेः तद्वदेवेत्यग्न्या( ?त्यग्रे)प्यभिहितत्वात्। न च क्षणावस्थितिलक्षणस्य विनाशस्य तदैवेष्टत्वाददोषः, कालान्तरस्थायित्वस्यापि स्वभावत एव सम्भवाद्विशेषाभावात्। तथाहि एतदपि वक्तुं शक्यम् — कालान्तरस्थायी स्वहेतोरेव भाव उत्पन्नः न तद्भावे भावान्तरमपेक्षतेऽग्निरे(रि)वोष्णत्वे इति किं न स्वत एव स्थिरस्वभावो भावो भवेत् ? न चैवं कौटस्थप्रसङ्गः 5 क्षणिकपक्षेऽप्यस्य समानत्वात्।

तथाहि— क्षणमपि स्वरसतः एव स्थासोः कल्पान्तरस्थायित्वमपि किं न भवेत् ? अन्यथा अग्निरिव शैत्ये न क्षणमपि स्वयमस्थासोः स्थायिता युक्तिमती। विनाशहेतुपक्षनिक्षिप्तश्च विकल्पो भावोत्पत्तिहेतावपि समानः। तस्या( ?था)हि — उत्पत्तिहेतुः स्वभावत एव भावमुत्पित्सुमुत्पादयति, आहोस्विदनुत्पित्सुम् ? प्रथमपक्षे विफलता तद्धेतोः। द्वितीयपक्षेऽप्यनुत्पित्सोरुत्पादने वियत्कुसुमादेरप्युत्पादनप्रसङ्गः। 10 स्वहेतुसन्निधेरेवोत्पित्सोरुत्पादनाभ्युपगमे विनाशहेतुसंनिधानाद् विनाशहेतुर्विनश्रं विनाशयतीत्यभ्युपगमनीयम्

का निश्चय शक्य नहीं यह पहले कह दिया है। नाश को निर्हेतुक मानने पर भी, पदार्थ युग युगान्त तक (चिरकालजीवी) यानी नित्य हो सकता है — यह भी पहले कहा जा चुका है। (?) अग्नि की उष्णता का उदाहरण प्रस्तुत में अप्रस्तुत है, अग्नि की उष्णता की तरह क्षण का नाश क्षण के साथ समानक्षणवृत्ति होने पर प्रथम क्षण में ही भाव के ध्वंस की आपत्ति होगी, यह पहले कह दिया है। यदि कहें कि — ‘क्षणिकस्थितिस्वरूप 15 विनाश क्षणकाल में इष्ट ही है, दोष नहीं है।’ — तो यह गलत है क्योंकि ऐसे तो स्वभावतः ही वस्तु को कालान्तरस्थायी होने की सम्भावना में भी दोष नहीं है। स्वभाव युक्ति तो दोनों ओर तुल्य है।

देखिये — आप के बयान से विरुद्ध यह भी कह सकते हैं — भाव अपने हेतुओं से कालान्तरस्थायिस्वभाववाला ही निष्पन्न होता है। उस के लिये किसी भावान्तर की अपेक्षा नहीं होती, जैसे अग्नि की उष्णता को। अब बोलो कि भाव स्वतः ही स्थिरस्वभाव क्यों नहीं होगा ? यहाँ ऐसा मानने पर कूटस्थ नित्यता की 20 आपत्ति निरवकाश है क्योंकि क्षणिकवाद में भी वैसी आपत्ति सावकाश हो सकती है।

### [ भाव का युगान्तरस्थायी स्वभाव निर्बाध ]

कैसे यह देखो — अपने स्वभाव से क्षण यदि क्षणमात्रस्थायी होता है तो वैसे ही क्षण (यानी भाव) युगान्तरस्थायी अपने स्वभाव से क्यों नहीं होगा ? यदि अग्नि में जैसे शीतलता नहीं होती वैसे भाव में यदि स्वभाव से स्थिरता नहीं होगी तो एक क्षण के लिये भी भाव स्थिर कैसे रह 25 पायेगा ? विनाशहेतु के निरसन के लिये आपने जो विनाशस्वभाव — अविनाशस्वभाव के विकल्प किये हैं वे तो भावोत्पत्तिहेतु के निरसन में भी समान हैं। देखिये — उत्पत्ति का हेतु किसे उत्पन्न करता है ? स्वभावतः उत्पत्तिसज्ज भाव को या उत्पत्ति के लिए अनभिमुख भाव को ? पहले पक्ष में हेतु निष्फल है क्योंकि वह भाव तो अपने स्वभाव से ही उत्पन्न होनेवाला है। दूसरे पक्ष में जो स्वयं उत्पत्ति सज्ज नहीं है, उस को भी यदि हेतु उत्पन्न करेगा तो गगनपुष्प को भी उत्पन्न 30 क्यों नहीं करेगा ? यदि स्वहेतुसंनिध्य में उत्पत्तिसज्ज को उत्पत्तिहेतु उत्पन्न करेगा ऐसा कहा जाय तो हम भी कह सकते हैं कि विनाशहेतुसंनिधि में विनाशसज्ज भाव को विनाशहेतु विनष्ट करता है, युक्ति इस प्रकार दोनों ओर समान है। जो अपने स्वभाव से ही उत्पत्तिसज्ज है उस के प्रति

न्यायस्य समानत्वात् । स्वयमेवोत्पित्सोस्तत्कृतोपकाराभावात् सम्बन्धाभावतो व्यपदेशाभावतो(वो)ऽपि समानः । एवं च प्रयोजनाभावाद् भावहेतुर्भावं नोत्पादयतीति, नाप्यभावं भावयतीति कथं नाऽकिञ्चित्करत्वम् ? 'अभावं भावीकरोति' इति चेत् ? नन्वेवं हेतुर्विनाशहेतुर्भावमभावीकरोतीति तुल्यम् ।

यदपि — 'स्वकारणादुत्पत्तिरात्मलाभो यस्य(ः?) स(ः?) स्वोत्पत्तिधर्मा तं यदि स्वहेतुर्नोत्पादयति तदा विरुद्धमभिधानं स्यात्' — इत्याद्युक्तं तद् विनाशहेतावपि तुल्यम् । तथाहि— विनाशकारणाद् विनाश आत्मप्रच्युतिलक्षणो धर्मो यस्य तं यदि विनाशहेतुर्न विनाशयति तदा विरुद्धाभिधानमित्याद्यपि कथं न समानम् । यदपि— उत्पत्तेः प्राग् उत्पत्तिधर्मिणोऽसत्त्वात् किमुत्पत्तिधर्माणमुत्पत्तिहेतुरुत्पादयति, आहोस्विद् अनुत्पत्तिधर्माणम् (१९९-७) इत्यादिविकल्पानुपपत्तिः' तदपि (१९३-६) विनाशहेतौ समानम् प्रागभाववत् प्रध्वंसाभावास्यापि भवन्मतेनाऽभावात् कथं तत्रापि विकल्पोत्पत्तिः ? येषां च न घटनिवृत्तिः कपालस्वरूपादन्या 10 तेषां कथं न कपालहेतुर्घटध्वंसहेतुर्भवेत् ? अथ कथं कपाललक्षणस्य वस्त्वन्तरस्य प्रादुर्भावे 'घटो विनष्टः' इति व्यपदिश्यते ? नैष दोषः, मुद्गरादेर्घटस्यैव कपालभावाद् 'घटो विनष्टः' । 'कथं स एवाऽन्यथा

उत्पत्तिहेतु का कोई उपकार न होने से उस के साथ इस का कोई सम्बन्ध नहीं होगा, अत एव 'यह उस का उत्पादक' ऐसा व्यवहार भी उत्पत्तिहेतुसाध्य नहीं होगा । विनाशहेतु की तरह उत्पत्तिहेतु के लिये भी व्यवहारशून्यता दोष समान है । इस प्रकार कह दो कि कोई प्रयोजन न होने के कारण 15 भावहेतु भावनिर्माण नहीं कर सकता, अभाव का भावीकरण भी नहीं कर सकता, अतः उत्पत्ति हेतु अकिञ्चित्कर क्यों नहीं ? यदि कहें — अभाव का भावीकरण (असत् का सत्करण) करता है — अरे तब तो विनाशहेतुरूप कारण भाव का अभावीकरण भी कर सकता है — बात समान है ।

### [ उत्पत्तिधर्मता की तरह नाशधर्मिता में युक्तितुल्यता ]

यह जो कहा था — अपने कारणों से उत्पत्ति = आत्मसत्तालाभ यह है धर्म जिस का उस को 20 कहते हैं 'उत्पत्तिधर्मा' । यदि ऐसे उत्पत्तिधर्मवाले को उत्पादकहेतु उत्पन्न ही नहीं करेगा तो उत्पत्तिधर्मत्व से विरोध प्रसक्त होगा... — ऐसा कथन तो विनाशहेतु के लिये भी तुल्य है । देखिये — विनाशकारणों से विनाश = आत्मप्रच्युतिस्वरूप यह है धर्म — जिस का वह है 'विनाशधर्मा' — यदि विनाशहेतु से उस का विनाश नहीं होगा तो वहाँ भी विरोध प्रसक्त होगा, तुल्यता क्यों नहीं ? यह जो कहा था — (१९९-२२) उत्पत्तिहेतु उत्पत्तिसज्ज को उत्पन्न करता है या जो उत्पत्तिसज्ज नहीं है उस को — इत्यादि 25 विकल्पों को अवकाश ही नहीं, क्योंकि उत्पत्ति के पहले उत्पत्तिधर्मी की सत्ता ही नहीं है तो वह सज्ज है या नहीं ये विकल्प निरवकाश हैं । — ऐसा तो (१९३-२८) विनाश के लिये भी समान है । जैसे उत्पत्ति के पहले भाव नहीं होता वैसे विनाश के बाद भी भाव नहीं होता, फिर विनाशपक्ष में भी वे विकल्प कैसे सावकाश हो सकते हैं ? जो लोग कपालस्वरूप से घटनिवृत्ति को भिन्न नहीं मानते उन के मत से जो कपालहेतु है वह घटध्वंस का (घटनिवृत्ति का) हेतु कैसे नहीं होगा ? यदि पूछा 30 जाय — कपाल हेतु से जब कपालरूप भावान्तर की उत्पत्ति होने पर, घटनाश से उस का क्या सम्बन्ध कि वहाँ 'घट विनष्ट हुआ' ऐसा व्यवहार उचित हो सके ? — उत्तर :- यहाँ दोष नहीं है, मोगरप्रहार से घट का ही कपालात्मक रूपान्तर होने से, अर्थात् घटनिवृत्ति होने से 'घट का नाश हुआ' यह व्यवहार उचित है । प्रश्न :- घट तो घट है वह अन्यविध यानी कपाल कैसे बन गया ? — उत्तर :- उत्पत्ति

भवति' इति चेत् ? नन्वसत् कथं भवतीति समानम्।

अथ प्राग् घटादिकमसत् 'सद्' भवत्युत्पत्तिसमये इत्यविरुद्धम्। नन्वन्यदा घटः सन् कपालीभवति इत्यविरुद्धमेव। कथं तस्यैव तदन्यत्वमिति चेत् ? यथा संवेदनस्यैकस्य ग्राह्य-ग्राहकाद्याकारभेदः, यथा ह्य(न्य)रूपेणानेकमेकं भवन्न विरुध्यते इत्यसकृदावेदितम् तेन निवृत्तिः कारणस्य कार्यात्मना परिणतिरेवाभिधीयते। तथा च घटप्रच्युतेः कपालस्वरूपत्वे कुतः क्षणिकत्वम् ?

5

अथ भवान्तरं घट-कपालव्यतिरिक्तं घटप्रच्युतिः। नन्वेवमपि तेन सह घटस्य युगपदवस्थानाद्यविरोधात् कथं तत् तत्प्रच्युतिः ? अथ कपालमन्यभावोपलक्षणम् तेन सह घटक्षणस्यान्यस्य प्रादुर्भावः पूर्वस्य च प्रध्वंसः सदृशापरापरानुभवश्च दलितपुनरुदितकररुहनिकरादिष्विव 'स एवायम्' इत्येकाग्र्यवसायोदयः। नन्वत्रापि किं स एव पदार्थात्मा प्रतिभाति आहोस्वित् तत्प्रतिसमयमन्यान्यसंवेदनेऽपि सादृश्यादेकत्व-भ्रान्तिरिति नात्र निश्चयो बाधकानुत्पत्तौ दर्शनस्य वितथत्वात् सिद्धः। ??]

10

के पहले घट असत् था फिर उत्पन्न हो कर सत् कैसे हो गया ? तुल्य स्थिति है।

[ असत् सदृशभवन की तरह घट का कपालभवन अविरुद्ध ]

यदि कहा जाय: - 'पहले जो घटादि असत् था वह अपनी उत्पत्तिक्षण में सत् है, इस में कोई विरोध नहीं है' - ठीक इसी तरह पहले घट सत् था और विनाशपल में कपाल बन गया इस में क्या विरोध है ? प्रश्न :- घट और कपाल सर्वथा भिन्न है, अब घट कैसे कपालरूप यानी कपालाभिन्न हो गया ? उत्तर :- वास्तव में कहीं एकान्तभेद नहीं होता, भेद-अभेद दोनों सापेक्षभाव से एक में रह सकता है। उदा० एक ही संवेदन में ग्राह्याकार-ग्राहकाकार का भेद रहने पर भी अभेद होता है। तथा अवयव-अवयवी में भेदाभेद होने से पृथग् अवयव रूप से अनेक होनेवाले तन्तु आखिर वस्त्ररूप से एक बनते हैं वहाँ कोई विरोध नहीं होता - यह बार बार कहा जा चुका है। सारांश, कारणों की कार्यात्मकरूप से परिणति ही निवृत्ति कही जाती है, इस स्थिति में घट प्रच्युति द्वितीयक्षणरूप न हो कर कालान्तरभावी कपालरूप सिद्ध हो गयी तो क्षणिकता रही कहाँ ?

15

20

[ भवान्तररूप घटप्रच्युति - तीसरे विकल्प की आलोचना ]

घटप्रच्युति के तीसरे विकल्प में यदि कहें - 'घट प्रच्युति न तो घटरूप है न कपालस्वरूप, किन्तु स्वतन्त्र भावरूप है, अतः क्षणिकता अक्षुण्ण है। - अरे ! तब प्रश्न आयेगा - स्वतन्त्रभावरूप घटप्रच्युति को घट के साथ समकाल में अवस्थान होने में कोई विरोध नहीं रहा, फिर उसने 'घटप्रच्युति' कैसे कहेंगे ? (क्योंकि घटप्रच्युति तो घट की विरोधिनी होती है, भवान्तर विरोधी नहीं होती।)। यदि कहें कि - 'कपाल घटप्रच्युतिरूप है ही, लेकिन कपाल के उपलक्षण से नूतन घटक्षणरूप अन्यभाव भी 'घटप्रच्युति' होता है, अतः नूतन घटक्षणरूप की उत्पत्ति और पूर्व पूर्व घटक्षण का नाश - इस तरह क्षणिकता सुरक्षित है। फिर भी 'यह वही है' ऐसा जो प्रत्यभिज्ञा बोध होता है वह समान अन्य अन्य क्षणों का उद्भव होने से होता है। उदा० एक बार नाखुन वृत्ते काटने के बाद वह पुनः उगता है तब भी 'यह वही है' ऐसा बोध होता है।' - तो यहाँ विनिगमनाविरह होगा, उस बोध में वही पूर्व पदार्थ भासित होता है या समय समय बदलनेवाले स्वलक्षण का संवेदन (दर्शन) होने पर भी सादृश्य के कारण एकत्व का भ्रम होता है ? यहाँ एकत्वबोध में बाधकप्रतीति का उदय

25

30

- न च क्षणक्षयव्यवस्थापकमनुमानमेकत्वाध्यवसायिदर्शनस्य बाधकम् अनुमितेरध्यक्षबाधकत्वेनाऽप्रवृत्तेः तस्यास्तत्पूर्वकत्वात्। यतोऽध्यक्षावगतं प्रतिबन्धमाश्रित्य पक्षधर्मतादर्शनबलादनुमितिरुदयति, अनुमानादविनाभावावगमेऽनवस्थाप्रसक्तेः। न च स्थायितादर्शनमनुमानेन बाधितत्वाद् नाध्यक्षतामनुभवतीति वाच्यम्, क्षणक्षयानुमानमध्यक्षेण बाधनाद(त्रा)नुमानं भवतीत्यपि पर्यनुयोगस्य तुल्यत्वात्। अतः स्थायितादर्शनं
- 5 क्षणक्षयग्राहिणा परेणाध्यक्षेण बाधकेना(न)ध्यक्षीकर्तव्यम् क्षणक्षयनिर्भासविरहेण तस्य (?) अन्यथा तेन सह विरोधाऽसिद्धेः। ततः प्रतिक्षणभेदावभास्येवाध्यक्षं नित्यताध्यवसायिदर्शनस्य बाधकं नान्यत्। न च प्रतिक्षणविशारुतावभास्यध्यक्षमनुभूयते, स्थिर-स्थूरार्थावभासिनोऽध्यक्षप्रभवस्य संवेदनस्य सर्वदोषलक्षणत्वा(णा)त्। अथ प्रत्यक्षेऽपि बाधकेऽभ्युपगमाने द्वयोरपि दर्शनयोः परस्परप्रतिहितद्वारेणाऽनध्यक्षता कस्माद् न भवति येनैकमेवानध्यक्षीभवति। नैतदेवम्, अतुल्यत्वात्। दुर्बलं हि बलवता प्रतिहन्यते रजतदर्शनमिव
- 10 शुक्तिकादर्शनेन बलवता रजतदर्शनमया(यथा)र्थक्रियाकारिरूपावभासि दुर्बलमनध्यक्षीक्रियते।

न होने पर एकत्वदर्शन में विपरीतता के बल से कोई निश्चय सिद्ध नहीं हो सकेगा। (भूतपूर्व सम्पादकों के अभिप्राय से 'वितथत्वात् सिद्धः' यहाँ तक पाठ अशुद्ध है।)

### [ अनुमान में प्रत्यक्षबाधकता का निरसन ]

- क्षणिकवादी :- एकत्वग्राहक दर्शन में बाधक है क्षणिकतासाधक अनुमान।
- 15 स्थायितावादी :- नहीं, प्रत्यक्षबाध के लिये अनुमानप्रवृत्ति संभव नहीं। कारण :- अनुमान प्रत्यक्षोपजीवी यानी प्रत्यक्षपूर्वक होता है, क्योंकि प्रत्यक्षगृहीत व्याप्तिसंबन्ध एवं पक्षधर्मतादर्शन के बलबूते पर अनुमान प्रवृत्त होता है, यदि व्याप्तिबोध प्रत्यक्ष के बदले अनुमान से मानेंगे तो उस अनुमान के लिये आवश्यक व्याप्तिबोध तीसरे अनुमान से... इस प्रकार अनवस्थादोष होगा। यदि कहें कि — 'स्थायित्व का प्रत्यक्ष क्षणिकत्व अनुमान से बाधित होने के कारण वास्तवप्रत्यक्षता वहाँ नहीं है।' — तो समानरूप से हम कहेंगे
- 20 कि क्षणिकत्वानुमान स्थायित्वप्रत्यक्ष से बाधित होने से वास्तवानुमानता उस में नहीं है, प्रश्न-उत्तर तो दोनों ओर हो सकते हैं। हाँ अगर स्थायित्वप्रत्यक्ष को प्रत्यक्षाभास ठहराना है तो क्षणिकताग्राहि प्रत्यक्ष ही बाध कार्य कर सकता है। अन्यथा जब तक क्षणिकत्वनिर्भासि प्रत्यक्ष नहीं होगा तब तक व्याप्तिबोध के विरह में क्षणिकत्वानुमान भी न होने से स्थायित्वप्रत्यक्ष के साथ उस का विरोध सिद्ध नहीं होगा। सारांश, प्रतिक्षणभिन्नतावबोधक प्रत्यक्ष ही नित्यता (= स्थायित्व) बोधक प्रत्यक्ष का बाधक हो सकता है,
- 25 अन्य कोई नहीं। प्रतिक्षण भंगुरता बोधक प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध नहीं है। हर हमेशा, स्थिर एवं स्थूल (न कि परमाणुस्वलक्षणरूप) अर्थ भासक ही प्रत्यक्षजन्य संवेदन उपलक्षित होता है।

शंका :- प्रत्यक्ष को बाधक मानने पर भी उगारा नहीं है क्योंकि विनिगमनाविरह से, दोनों प्रत्यक्ष एक-दूसरे का बाधक बन कर एक-दूसरे को प्रत्यक्षाभास सिद्ध क्यों नहीं करेगा ? तब किसी एक को ही प्रत्यक्षाभास कैसे कह सकेंगे ? (आखिर तो अनुमान को ही बाधक मानना पड़ेगा — यह तात्पर्य।)

- 30 समाधान :- ऐसा नहीं होगा क्योंकि दोनों परस्परविरुद्ध प्रत्यक्ष तुल्यबली नहीं हो सकते, जो दुर्बल होगा वह बलवान् से बाधित होगा, जैसे बलवान् सीप-दर्शन से दुर्बल रजतप्रत्यक्ष बाधित होता है। रजतदर्शन अयथार्थक्रियाकारिरूप अवबोधक होने से दुर्बल होता है अतः वह प्रत्यक्षाभास ठहराया जाता है।

न च (ननु) लून-पुनर्जातकेशादिष्वपि प्रत्यभिज्ञाज्ञानोदया(त्) स्थायिताप्रतिपत्तिः सर्वत्रालीका। न, दृष्टान्तमात्रादर्शिसिद्धेरभावात्, अन्यथा हेतूपन्यासस्य वैफल्यापत्तेः। हेतूपयोगितयैव निदर्शनस्य परैः साफल्याभ्युपगमात्। आह च 'स एवाऽविनाभावो दृष्टान्ताभ्यां दर्शयते' [ ] इति। यद्वा लून-पुनर्जातशिरसिजादिष्वपि प्रत्यभिज्ञानादेकता भवतु। 'अप्रध्वस्तः केशादिः कथं प्रत्यभिज्ञायते ?' नन्वेवं ध्वस्तेऽपि शिरोरुहनिकरादौ समानम्। अथाऽध्वस्ते तत्र पुनर्दर्शनात् 'त एवामी केशाः' इत्येकताप्रतीत्यनुभवात् 5 प्रत्यभिज्ञानम्, ननु ध्वस्तेष्वपि तेषु पुनर्दर्शनात् तुल्यप्रमाणादियोगेष्वेकताप्रतिपत्तिदर्शनात् कथं न प्रत्यभिज्ञानम् ? तस्माद् ध्वस्तोदितेष्वपि शिरसिजादिषु प्रत्यभिज्ञानादेकत्वं कस्यचिद् रूपस्याभ्युपगन्तव्यम्। अथ दलिताध्यवसायि प्रत्ययः स्थायिताध्यवसायिनीं प्रत्यभिज्ञां बाधत इति न तेष्वेकता। न, भिन्नकालेन दलितकेशाध्यवसायिप्रत्ययेन प्रत्यभिज्ञाया बाधाऽयोगात्। अथवा लूनपुनर्जातकेशनखादिभेदाभेदाध्यवसायादुभयतैवाऽस्तु स्तम्भादिषु तु विशददर्शनावभासिषु क्षणक्षयविकला स्थायिता प्रतिभातीति तेषां स्थिररूपतैवास्तु। 10

### [ प्रत्यभिज्ञाप्रदर्शित स्थायित्व के प्रति शंका-समाधान ]

**शंका :-** काटने के बाद पुनरुत्पन्न केशादि के विषय में 'ये तो वही हैं' ऐसी प्रत्यभिज्ञा का उदय होता है जो स्थायित्व प्रदर्शित करती है किन्तु वह जैसे भ्रम है वैसे अन्यत्र भी स्थायित्व का भान भ्रम ही समझना चाहिये।

**उत्तर :-** नहीं, सिर्फ दृष्टान्त कह देने से साध्यार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती, अन्यथा अनुमान 15 के लिये हेतु-प्रदर्शन निष्फल हो जायेगा, क्योंकि आप लोग तो यह मानते हैं कि दृष्टान्त तो हेतु की पुष्टि के लिये ही दिये जाने पर सफल बनता है। कहा भी है — वही अविनाभाव दो प्रकार के (साधर्म्य-वैधर्म्य) दृष्टान्तों से दिखाया जाता है। अथवा कह सकते हैं कि प्रत्यभिज्ञा के बल पर काटे गये पुनरुत्पन्न केशादि में एकत्व (यानी स्थायित्व) होता है। यदि पूछें कि — यह केशादि (एक ही है स्थायी है) अविनष्ट है ऐसा बोध प्रत्यभिज्ञा से क्यों कर होगा ? — जवाब भी प्रतिप्रश्नरूप है कि विनष्ट (पुनरुत्पन्न) 20 केशादि गुच्छ के बारे में भी प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी ? यदि कहें कि अविनष्ट केशादि का तो पुनःदर्शन होने के कारण 'वे ही ये केश हैं' ऐसी एकताप्रतीति का अनुभव होने से प्रत्यभिज्ञा हो सकती है। — तो विनष्ट केशादि प्रति भी प्रमाणादि का सामग्रीयोग तुल्य रहने पर एकता का बोध दिखता है इस लिये प्रत्यभिज्ञा क्यों नहीं होगी ? अत एव नष्ट पुनरुत्पन्न केशादि के प्रति प्रत्यभिज्ञा होने से, पूर्वोत्तर केशों में किसी एक (केशत्वादि सामान्य) रूप का एकत्व स्वीकारना पड़ेगा। 25

**शंका :-** नष्टतानिश्चायक प्रतीति स्थायित्वनिश्चायक प्रत्यभिज्ञा को बाध करेगी, अतः एकता संभव नहीं — **उत्तर :-** नहीं, भिन्नकालीन नष्टताप्रतीति स्थायित्वबोधक प्रत्यभिज्ञा की बाधक नहीं बन सकती। अथवा मान सकते हैं कि भेदाध्यवसायी निश्चय और अभेदाध्यवसायिनी प्रत्यभिज्ञा तुल्यबल होने से नष्ट पुनरुत्पन्न केश-नखादि में भिन्नाभिन्नता अथवा एकानेकता उभय होना चाहिये। यह केश-नखादि की बात हुई, लेकिन स्तम्भादि के लिये क्या मानेंगे ? वहाँ तो (नष्टता ही नहीं है) नष्टताप्रतीति 30 है नहीं, स्पष्टदर्शनभासमान स्तम्भादि में स्थायित्व ही भासित होता है, अतः उन में तो स्थायित्व का स्वीकार करना ही पड़ेगा।

अथ कथं प्रत्यभिज्ञा प्रामाण्यमनुभवति ? कारणदोषाभावात् बाधारहितापूर्वार्थग्राहित्वाच्च । तदुक्तम् — (प्र०वा०भाष्य २-१५८) ।

तत्राऽपूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम् । अदुष्टकारणारब्धं प्रमाणं लोकसंमतम् ॥ इति ।

प्रथमदर्शनानधिगतां स्थायितां प्रत्यभिज्ञानमध्यवस्यति विश्वासादिव्यवहारप्रवर्तिका चेति कथं न 5 प्रमाणम् ? न चाद्यदर्शनमेव स्थायिताध्यवसायात् उत्तरकालभाविनो नित्यताग्राहितया व्यवस्थाप्यत इति आद्यदर्शनगृहीतां नित्यतामध्यवस्यत् प्रत्यभिज्ञाज्ञानमपूर्वार्थाधिगन्तृत्वाभावात् प्रमाणम् । यत एवमाद्यदर्शनावसेयमेव नित्यत्वमिति कथं क्षणक्षयिता भावानाम् ? न चाध्यक्षानवतारे प्रतिक्षणध्वंसितायामनुमानमपि प्रवृत्ति-मासादयतीत्युक्तम् ।

किञ्च, स्वभावलिङ्गप्रभवमनुमानं क्षणक्षयितां भावानामवगमयति इति पराभ्युपगमः । न चाध्यक्षगृहीतं 10 प्रतिक्षणध्वंसित्वम् येन स्वभावहेतुस्तत्र व्यवहृतिमुपरचयति यथा शिंशपा विशददर्शनावभासिनि तरो वृक्षत्वव्यवहृतिम् प्रत्यक्षप्रतीत एवार्थे स्वभावहेतोर्यवहृतिप्रदर्शनफलत्वात् । न च विद्युदादौ सत्ता-क्षणिकत्वयोरध्यक्षत एव प्रतिबन्धग्रहणात् अन्यत्रापि शब्दादौ सत्तोपलभ्यमाना क्षणिकत्वमवगमयति, जातरूपे

### [ प्रत्यभिज्ञा के प्रामाण्य की शंका का समाधान ]

प्रश्न :- प्रत्यभिज्ञा प्रामाण्य-धारण कैसे कर सकती है ?

15 उत्तर :- उस के कारणवृद्ध निर्दोष है, बाधमुक्त है तथा अपूर्वार्थग्राहक होती है इस लिये वह प्रमाणभूत है। आप के प्रमाणवार्तिक भाष्य में कहा गया है — 'निर्दोषकारणजन्य बाधमुक्त अपूर्वार्थस्पर्शी निश्चयात्मक विज्ञान प्रमाण है जो लोकसंमत भी है।' — प्रत्यभिज्ञा पूर्वदर्शन से अज्ञात स्थायित्व का बोध करती हुई विश्वाससम्पादन आदि कार्य व्यवहार प्रवर्तिका होने से प्रमाण क्यों नहीं है ?

शंका :- अगर ऐसा मानें कि पूर्वदर्शन से ही स्थायित्व गृहीत हो जाता है, उत्तर काल स्थायित्वग्राही 20 प्रत्यभिज्ञारूप निश्चय तो पूर्वदर्शन को 'नित्यत्वग्राही' रूप से घोषित करता है। यहाँ पूर्वदर्शनगृहीत नित्यता का पुनर्ग्रहण करने वाली प्रत्यभिज्ञा प्रमाण नहीं हो सकती क्योंकि उस में अपूर्वार्थग्राहकत्व नहीं है।

समाधान :- ऐसा मानेंगे तो आद्यदर्शन से ही नित्यता की सिद्धि हो गयी, तब भावों की क्षणभंगुरता कहाँ रह पायेगी ? जब दर्शनरूप प्रत्यक्ष नित्यताग्राही बन गया, प्रतिक्षणध्वंसावगाही न रहा, तो प्रत्यक्षमुखदर्शी अनुमान भी क्षणिकताग्रहण का साहस कैसे कर पायेगा ? कई बार यह कह दिया 25 है कि अनुमान क्षणिकता साधक नहीं हो सकता।

### [ स्वभावलिङ्गक अनुमान से क्षणिकतासिद्धि अशक्य ]

और एक बात :- बौद्ध विद्वान् तो मानते हैं कि स्वभावलिङ्गक अनुमान भावों की क्षणिकता का बोधन करता है। अब देखो कि प्रतिक्षण ध्वंस प्रत्यक्षसिद्ध है नहीं, जिस से कि स्वभावहेतु क्षणिकता के विषय में व्यवहारकारक बन सके। उदा० स्पष्टदर्शनअवभासित वृक्ष (यानी प्रत्यक्षगृहीत वृक्ष) में 30 स्वभावहेतुस्वरूपा शिंशपा से वृक्षत्व का व्यवहार सिद्ध किया जाता है, मतलब प्रत्यक्षदृष्ट अर्थ के लिये ही स्वभावहेतु व्यवहार सम्पादन में सफल होता है। (यहाँ क्षणिकता का प्रत्यक्ष ग्रहण है नहीं तो कैसे उस वृक्ष स्वभावहेतु से (सत्त्व से) व्यवहार सिद्ध करेंगे ? यदि कहें कि — 'बिजली आदि में सत्ता और क्षणिकत्व का प्रतिबन्ध (= अविनाभावसम्बन्ध) प्रत्यक्ष से गृहीत होता है अतः अन्यत्र

सत्तातः शुक्लतानुमितिप्रसक्तेः। अथ हेमाकारनिर्भासिदर्शनं शुक्लताप्रसाधकमनुमानमुपहन्तीति न तत्र शुक्लतासिद्धिः। नन्वेवं स्तम्भादौ क्षणिकतामुल्लिखन्तीमनुमितिं 'स एवायम्' इत्यभेदप्रतिभासोऽपहन्तीति कुतः क्षणिकतासिद्धिः ? अथ प्रत्यभिज्ञा भिन्नेष्वप्यभेदमुल्लिखन्ती दलितपुनरुदितकररुहादिषूपलभ्यत इति नासावेकत्वे प्रमाणम् तर्हि कामलोपहतदृशां धवलिमानमाभिभ्रान्णेषु पदार्थेषु कनकाकारनिर्भासिदर्शनमुदेतीति तत् पीतेऽपि न प्रमाणतामासादयेत् तथा च शुक्लतानुमानस्यापि कुतो बाधाप्रसक्तिः ? 5

अथ शुक्लताप्रसाधकस्यानुमानस्यान्यथासिद्धत्वात् युक्तं प्रत्यक्षबाध्यत्वम्, तस्याऽनन्यथासिद्धत्वात्। न ह्यनुपहतेन्द्रियस्य पीतावभासि दर्शनं पीतार्थव्यतिरेकेण सम्भवति कनकादौ तु शुक्लताप्रसाधकमनुमानमन्यथासिद्धत्वाद् अध्यक्षविरोधे न तद्विपरीतार्थसाधकं युक्तम्। स्तम्भादौ तु नित्यतावेदकस्याध्यक्षस्य कुतश्चिद् भ्रान्तिकारणादन्यथासिद्धत्वेनाऽनन्यथासिद्धानुमानबाधकत्वमयुक्तम्। तथाहि— सति प्रतिबन्धग्रहणेऽनुमितिप्रवृत्तिः, प्रतिबन्धग्रहणं च साध्यव्यतिरेकेण साधनस्याऽभवनज्ञानम्, तदेव चाऽनन्यथासिद्धत्वं 10

शब्दादि में उपलंभगोचर सत्तारूप हेतु से क्षणिकत्व का अवबोध हो सकता है।' — अरे तब तो कर्पास या दुग्धादि में सत्ता और शुक्लवर्ण का प्रत्यक्ष से प्रतिबन्धग्रहण कर के सुवर्ण में भी सत्ता हेतु के द्वारा शुक्लता का व्यवहार या अनुमिति प्रसक्त होगी।

**शंका :-** सुवर्णाकार अवभासकारी दर्शन शुक्लवर्णसाधक अनुमान का उपघातक होने से सुवर्ण में शुक्लतासिद्धि नहीं होगी। 15

**उत्तर :-** वाह ! इसी तरह स्तम्भादि में अभेदावभासी प्रत्यक्ष भी क्षणिकता उल्लेखकारि अनुमिति का उपघातक होने से क्षणिकतासिद्धि कैसे होगी ? **शंका :-** भिन्न भावों में भी अभेद का उल्लेख करनेवाली, यानी काटे गये पुनरुत्पन्नखादि में अभेदप्रदर्शक प्रत्यभिज्ञा प्रसिद्ध है अतः वह एकत्वविषय में प्रमाण नहीं है।

**उत्तर :-** तब तो फिर पीतग्राहि दर्शनमात्र को अप्रमाण मानना पड़ेगा क्योंकि काचकामल बिमारीग्रस्त नेत्रवालों को श्वेतताधारक शंखादि में पदार्थों में कनक (यानी पीत) आकार प्रदर्शक दर्शन उदित होता है। फिर उस से पीत पदार्थ में शुक्लता का अनुमान कैसे बाधित हो सकेगा ? 20

### [ क्षणिकवादसमर्थक दीर्घ पूर्वपक्ष ]

**क्षणिकतावादी :-** पीत पदार्थ में शुक्लता का साधक अनुमान अन्यथासिद्ध है, मतलब कि शुक्लतारूप साध्य के बिना ही उदित हो गया है, दूसरी ओर पीतभाव का प्रत्यक्ष अन्यथासिद्ध नहीं है क्यों कि पीतभाव के बिना उदित हो गया ऐसा नहीं है। अतः वह प्रत्यक्ष शुक्लतासाधक अनुमान को बाधित कर सकता है। व्याघातरहित इन्द्रिय से होनेवाला पीतभावदर्शन पीत अर्थ के बिना शक्य नहीं है। दूसरी ओर, सुवर्णादि में शुक्लतासाधक अनुमान शुक्लता के बिना भी होने से वह अन्यथासिद्ध है, उस का यद्यपि पीतग्राही प्रत्यक्ष से विरोध जरूर है किन्तु स्वयं बाधित होने से पीतविपरीत (शुक्लता) अर्थ का साधक नहीं हो सकता। (क्षणिकवादीकथन चालु है।) 25 30

स्तम्भादि की बात अलग है। वहाँ जो नित्यताआवेदक प्रत्यक्ष होता है वह किसी प्रकार से भ्रान्तिकारक दोष से जन्य होने से वहाँ वास्तव नित्यता के न होने पर भी उदित होता है अत एव वहाँ वह प्रत्यक्ष ही अन्यथासिद्ध है। अतः अनन्यथासिद्ध क्षणिकतासाधक अनुमान का वह बाधक



तस्योच्यते। अत एवानुमानस्य प्रामाण्यमपाकुर्वता तत् प्रतिबन्धप्रसाधकप्रमाणस्याऽप्रामाण्यमुपदर्शनीयम्। यतः प्रतिबन्धाऽसिद्धितोऽनुमानं प्रामाण्यादपाक्रियेत। तथा चोक्तं न्यायविदा - 'लक्षणयुक्ते बाधासम्भवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात्" [ ] - इति। नित्यताप्रसाधकस्य त्वध्यक्षस्यास्तामनुमानेन तुल्यकक्षत्वम्, तत्प्रतिबन्धप्रसाधकेनाप्यतुल्यकक्षतैव।

5 तथाहि— क्षणक्षयविपरीतनित्यत्वलक्षणार्थमन्तरेणानुपजायमानमध्यक्षं तथाभूतमर्थं व्यवस्थापयत् क्षणिकत्वानुमानबाधकमुच्यते न चाध्यक्षा(क्षेण स्वा)वसेयं नित्यत्वं वस्तुनो व्यवस्थापयितुं शक्यम् यतः पूर्वापरकालताविष्टमध्यक्षावसेयम् तच्च न वस्तुधर्मः। वर्तमानकालं हि वस्तु, पूर्वापरकालभावित्वं च वर्तमानवस्तुविरुद्धत्वात् न तद्धर्मत्वेनावस्थापयितुं युक्तम् इति प्रत्यभिज्ञाप्रमेयस्य यथाप्रतीत्यसम्भवात् बाधकप्रमाणेनाप्यतुल्यकक्षत्वात्तद्ग्राहिणोऽध्यक्षस्य कुतः क्षणक्षयानुमानबाधकता ? विपर्ययस्य प्रमाणेनाऽत्र

10 नहीं हो सकता। देख लो - (क्षणिकतादिप्रदर्शक) अनुमिति की प्रवृत्ति प्रतिबन्धग्रहणमूलक ही होती है। प्रतिबन्ध (व्याप्ति) ग्रहण का मतलब है 'साध्य के बिना साधन का न रहना' ऐसा ज्ञान। इसी को हम 'अनन्यथासिद्धत्व' कहते हैं। जिस को भी अनुमानप्रामाण्य का निषेध करना हो उस का कर्तव्य है कि वह प्रतिबन्ध (उक्त व्यतिरेकव्याप्ति) के साधक प्रमाण के अप्रामाण्य का खण्डन कर दिखावे, जिस से कि प्रतिबन्धनिरसन के द्वारा अनुमानप्रामाण्य का निरसन किया जा सके। न्यायवेत्ता (धर्मकीर्ति ?) ने कहा है कि - "(अगर आप) लक्षणयुक्त में बाधा का सम्भव (दिखाना चाहते) हैं तो (आप को) लक्षण ही दूषित करना होगा।" - इति।

प्रस्तुत में नित्यतासाधक प्रत्यक्ष और क्षणिकतासाधक अनुमान दोनों में तुल्यबलत्व की बात तो दूर, उक्त प्रतिबन्ध (सत्त्व-क्षणिकत्व व्याप्ति) साधक प्रमाण से भी तुल्यबलत्व नहीं है (क्षणिकवादीकथन चालु है।)

20 [ अनुमान की बाधकता बलवती-पूर्वपक्ष चालु ]

असमानता इस प्रकार :- आप कहते हैं, क्षणिकता से विपरीत नित्यत्वात्मक पदार्थ के बिना उस का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, अतः वस्तु की नित्यता को प्रकाशित-स्थापित करनेवाला प्रत्यक्ष क्षणिकत्व-अनुमान का बाधक बनेगा। अब वस्तुस्थिति यह है कि प्रत्यक्ष वस्तु की नित्यता की स्थापना कर सके यह असंभव है। कारण :- नित्यता यानी त्रिकाल सम्बन्ध, प्रत्यक्ष भूत-भविष्य को यानी 25 पूर्वापरकाल को भी ग्रहण करेगा, किन्तु वस्तु हरहमेश वर्तमानकालीन ही होती है उस में पूर्वापरकालीनता जैसा कोई वास्तव धर्म होता नहीं, क्योंकि वर्तमानकालता के साथ उसका विरोध है, अतः पूर्वापरकालता को वर्तमानवस्तु के धर्म-रूप में निश्चित करना अयुक्त है। प्रत्यभिज्ञा का विषय है पूर्वापरकालता, किन्तु प्रतीति (जो वर्तमानकालता की होती है) के अनुरूप सम्भव न होने से बाधकप्रमाण (= अनुमान) से समानबलवती नहीं हो सकती। फिर उस (प्रत्यभिज्ञा के) विषय का ग्राहक प्रत्यक्ष क्षणिकता-अनुमान 30 का बाधक कैसे हो सकता है ? प्रत्यभिज्ञाविषय है नित्यता, उस से विपरीत है क्षणिकता, उस का निश्चय बाधक अनुमान प्रमाण से निश्चित हो जाता है। (पूर्वपक्ष चालु है)

(न च मूल... से ले कर निराकृतम्...यहाँ तक (पृ०२०७) पाठ अशुद्ध होने से सम्यक् विवेचन

विषये निश्चितत्वात्। [?? न च मूलबाधकत्वेनानुमानस्यानुभव आशङ्कनीयः प्रत्यक्षाभासस्य कस्यचिद् बाधनात् उत्पलपत्रशतव्यतिभेदाद्यध्यक्षबाधकत्वेनानुमानस्य प्रवृत्तावपि यतो नोच्छेदः एवमत्रापि इति न कश्चिद्दोषः, अत एव सर्वत्र प्रत्यक्षं विरोधि बाधकमनुमानं तु तद्विरोधाद् बाध्यमेवेति नियमाभावाद् निराकृतम्। ??] इतरेतराश्रयत्वमपि नात्राऽऽशङ्कनीयम् — प्रत्यक्षाभासत्वेऽनुमानं बाधकम् अनुमानप्रामाण्यात् प्रत्यक्षस्याभासतेति — यस्मान्नानुमानप्रामाण्यमध्यक्षाभासनिबन्धनम् किन्तु प्रतिबन्धप्रसाधकप्रमाणनिमित्तं 5 तत्प्रामाण्यमिति कुत इतरेतराश्रयत्वम् ?

असदेतत्— यतो यद्यपि परिच्छिद्यमानस्य वस्तुनः पूर्वकालताऽपि निश्चीयते तथापि नाऽवस्तुधर्म-ग्राहकमध्यक्षमिति कथं तद्विषयस्य यथाप्रतीत्यसम्भवः ? तथाहि — तस्य पूर्वकालसम्बन्धिता स्वरूपेण गृह्यते नेदानीन्तनसम्बन्धितानुप्रवेशेन। तेनेदानीं यद्यपि कुतश्चिन्निमित्तात् तस्य पूर्वकालादित्वमवसीयते तथापि— तद्ग्राहकमध्यक्षं कथं न वस्तुग्राहकमिति कुतः तस्याऽप्रामाण्यम् ? यदि ह्यविद्यमानं पूर्वकालादित्वम् 10 विद्यमानं वा वर्तमानारोपेणाध्यक्षमध्यवस्येत् तदा भवेदस्याऽयथार्थग्राहित्वादप्रामाण्यम्, एतच्च नास्तीति

करना दुःशक है, यहाँ स्थानाशून्यार्थ किञ्चित् प्रयास करते हैं) आशंका नहीं करना कि अनुभव ही अनुमान के मूलभूत (प्रतिबन्ध) का बाधक है। कभी-कभी शतकमलपत्रों का नुकीले सूये से एकसाथ भेदन हो जाने के प्रत्यक्ष का अनुमान से बाध होता है अतः वह प्रत्यक्षाभास ठहरता है। अतः अनुमान-प्रमाणता का यहाँ उच्छेद नहीं होता, इसी तरह नित्यतादर्शन का भी अनुमान से बाध होने 15 में कोई दोष नहीं। यही कारण है कि 'सर्वत्र प्रत्यक्ष ही विरोधि या बाधक होता है और अनुमान प्रत्यक्ष के विरोध से बाधित होता है' ऐसा नियम न बन सकने से, अनुमान की बाध्यता का निराकरण हो जाता है।

यहाँ अन्योन्याश्रय दोष कल्पना भी निरवकाश है। “पहले प्रत्यक्ष ‘आभास’ सिद्ध होगा तब अनुमान बाधक बनेगा, दूसरी ओर अनुमान ‘प्रमाण’ सिद्ध होने पर प्रत्यक्ष की आभासता निश्चित होगी” ऐसी 20 आशंका इस लिये निरवकाश है कि अनुमान का प्रामाण्य (या बाधकत्व) प्रत्यक्षाभासतामूलक नहीं होता किन्तु अविनाभावरूप प्रतिबन्ध के साधकप्रमाण पर निर्भर होता है, फिर यहाँ अन्योन्याश्रय रहेगा कैसे ? (पूर्वपक्ष समाप्त)

### [ नित्यतावादी कृत क्षणिकवाद-प्रतिकार ]

यह पूरा क्षणिकवादी का पूर्वपक्ष गलत है। ज्ञायमान वस्तु की यद्यपि प्रत्यक्ष से वर्तमानकालता 25 के साथ पूर्वकालता भी गृहीत होती है, तथापि इतने मात्र से प्रत्यक्ष में अवस्तुधर्मग्राहकता नहीं है, फिर उस के विषय में वस्तुअनुरूप प्रतीति का असम्भव कैसे ? देखिये — प्रत्यक्ष में जो पूर्वकालसम्बन्धिता गृहीत होती है वह (रजत में रजतत्व की तरह) अपने सच्चे रूप से ही गृहीत होती है न कि तदनुप्रविष्ट वर्तमानकालसम्बन्धितारूप से। अतः किसी भी निमित्त से, यद्यपि प्रत्यक्ष में पूर्वकालादिता भासित होती है, किन्तु वह सत्य होने से उस का ग्राहक प्रत्यक्ष असत्यवस्तु का नहीं सत्य धर्म 30 का ही ग्राहक है फिर वह अप्रमाण कैसे ? यदि नित्य वस्तु में पूर्वकालीनतादि अविद्यमान हो, अथवा विद्यमान होने पर भी अन्यरूप से यानी आरोपित वर्तमानरूप से प्रत्यक्षविषय बनती हो तब तो

कुतोऽस्याऽप्रामाण्यप्रसक्तिः ?

न च संनिहितविषयबलोत्पत्त्याऽविचारकत्वादध्यक्षेण पूर्वकालसम्बन्धित्वं परामर्ष्टुमशक्यम्, यतो यद्यप्यतीतकालत्वमसंनिहितं तथापि संनिहितविषयबलादुपजायमानमध्यक्षं वर्तमानवस्तुनस्तन्निश्चिनोत्येव यथा अन्त्यसंख्येयग्रहणकाले 'शतम्' इति प्रतीतिः क्रमगृहीतानपि संख्येयान्। न चैषाऽनिन्द्रियजा इन्द्रियान्वय-  
5 व्यतिरेकानुविधानात्। नाप्यनर्थजा संनिहितान्त्यसंख्येयजन्यत्वात्। न चैकावभासिनी, एकप्रतिपत्तिसमये 'शतम्' इत्यप्रतिपत्तेः, अन्यथा प्रथमव्यक्तिप्रतिभाससमय एवैषा भवेत्। न चाऽप्रमाणमेषा बाधकाभावात्। घटाध्यक्षेण तुल्यत्वाद् नास्या विकल्पमात्रता। तस्मात् यथा अन्त्यसंख्येयप्रतिपत्तिसमये प्रागवगततदा(?या) परिच्छिद्यमानार्थोपयोगः तद्विशिष्टप्रतिपत्तौ, तथा प्रत्यभिज्ञावसेयवस्तुपरिच्छेदसमये पूर्वकालभाविताया अपि। न च विशिष्टप्रतिपत्तिकाले संख्येयानां विद्यमानता, पूर्वकालतायास्तु तद्वैपरीत्यमिति न तत्रोपयोगः। यतो

10 अयथार्थग्राहि होने से उस को अप्रमाण मानना ठीक है, किन्तु जब ऐसा है ही नहीं तब नित्यता (पूर्वकालीनतादि) ग्राहक प्रत्यक्ष में अप्रमाणता की आपत्ति कैसे दी जा सकती है ?

### [ प्रत्यक्ष से पूर्वकालपरामर्श की अशक्यता का निरसन ]

शंका :- प्रत्यक्ष निकटवर्ती विषय बल से उत्पन्न होता है, वहाँ विचार सावकाश नहीं है अतः उस से पूर्वकालसंसर्गिता का परामर्श भी अशक्य है।

15 उत्तर :- यह शंका उचित नहीं, क्योंकि यद्यपि अतीतकालता संनिहित नहीं है, फिर भी संनिहितविषयसम्पर्क से उत्पन्न होने वाले प्रत्यक्ष से वर्तमानवस्तु में अतीतकालसंसर्गिता का (मौजूद होने से) निश्चय अवश्य हो सकता है — यह तथ्य उदाहरण से स्पष्ट होगा — एक, दो, तीन... ९९, १०० इस तरह जो संख्येय मोती आदि की गिनती होती है तब प्रथम-द्वितीयादि का भी ग्रहण अन्तिम संख्येय के ग्रहण के साथ होता है जो कि पहले क्रमशः गृहीत हुए थे। ऐसा नहीं कि यह  
20 ज्ञान इन्द्रियजन्य नहीं है, इन्द्रिय के अन्वय-व्यतिरेक का अनुसरण होने से तज्जन्य ही है। अर्थजन्य नहीं ऐसा भी नहीं कहना, क्योंकि, संनिहित अन्तिम संख्येय (मोती आदि) से जन्य है। शंका :- एक मात्र (अन्तिम) संख्येय अर्थ का ही उस में भान होगा, पूर्व-पूर्व का नहीं। उत्तर :- नहीं, एक का भान होने पर 'सो' ऐसा संख्याबोध नहीं हो सकता, यदि एक के भान से 'सो' ऐसा संख्याबोध मानेंगे तो प्रथम व्यक्ति से भी वह हो जाने की आपत्ति होगी। यह प्रतीति अप्रमाण नहीं है क्योंकि  
25 कोई बाधक नहीं है। इसको सिर्फ विकल्परूप (यानी अप्रमाण) नहीं कह देना, क्योंकि यह प्रतीति घटादिप्रत्यक्ष जैसी ही होती है।

अतः यह फलित होता है कि जैसे पूर्वसंख्येय विशिष्टप्रतीति में अन्तिमसंख्येय के बोधकाल में ज्ञायमान अर्थ में पूर्वसंख्येय का भी उपयोग (= भान) होता है इसी तरह प्रत्यभिज्ञा से गृह्यमाण वस्तु के बोधकाल में पूर्वकालभाविता का निर्बाध बोध होता है। शंका :- विशिष्ट बोधकाल में संख्येयों  
30 की तो सत्ता होती है किन्तु पूर्वकालता (जो पूर्वकालगर्भित होने से) वर्तमान में विद्यमान नहीं है अतः तद्विषय उपयोग (= भान) संभव नहीं। उत्तर :- ऐसा नहीं होता, क्योंकि ज्ञायमान पदार्थों में तत्कालविद्यमानता का कोई महत्त्व नहीं होता, अतः जैसे चरमसंख्येयबोधकाल में पूर्वज्ञात संख्येयों का

गृह्यमाणानां तत्कालविद्यमानता नोपयोगिनी यत्र चान्त्यसंख्येयग्रहणसमये पूर्वावगतसंख्येयानामभावस्तत्र यथा तेषामुपयोगः तथा पूर्वकालादितया अपि तदविशिष्टाया उपयोगो भविष्यतीत्यनवद्यम्।

अथापि स्यात् — वर्तमानतापरिच्छेदसमये तदभावनियतभावत्वात् न पूर्वतावगतिर्भावानाम् नीलपरिच्छेदे पीतादीनामिव। तथाहि — नीलप्रच्युत्यविनाभूतत्वात् पीतादीनां नीलपरिच्छेदकं प्रमाणं तत्प्रच्युतेरिव तदविनाभूतपीतादिव्यवच्छेदं कुर्वदेव तत् परिच्छिनत्ति, तद्वद् इदानींतनपदार्थपरिच्छेदाय प्रमाणं प्रवृत्तं 5 तत्प्रच्युत्यविनाभूतानां व्यवच्छेदकम्। वर्तमानश्च समयः तत्प्रच्युत्या विरुद्धः इति तद्व्याप्तावप्यतीतानागतौ तेन विरुद्धाविति तदवच्छिन्नस्यापि भावस्य वर्तमानावच्छिन्नेन सह न समावेशः तयोः परस्परपरिहारत्वेन विरोधात्। तेन वर्तमानसम्बन्धिताग्राहिणा प्रमाणेन तत्प्रच्युत्यविनाभूतव्यवच्छेदस्य व्यवच्छेदमकुर्वाणेन वर्तमानसम्बन्धित्वमेव न परिच्छिन्नं भवेत्। ततः पूर्वापरसमयसम्बन्धिनोर्नानात्वे यन्नानाभूतानामेकत्वग्राहि 10 प्रमाणं तस्य अतस्मिंस्तद्ग्रहणरूपत्वाद् अप्रामाण्यम्। अत एवैकत्वाध्यवसायस्य सदृशापरापरेत्यादिभ्रम- निमित्तादुत्पादः परिगीयते।

असदेतत् — यतो नैकत्वेन निश्चीयमानस्य परस्परविरुद्धकालादिव्यवच्छेदाद् नानात्वम् छत्र-अभाव होता है फिर भी उन का भान होता है, इसी तरह पूर्वकालताविशिष्ट अर्थबोध में पूर्वकालता आदि का भान भी होता है, जिस में कोई दोष नहीं।

### [ पूर्वापरभाव के एकत्व की बुद्धि भ्रममूलक-शंका ]

शंका :- पूर्वता हर हमेशा वर्तमानता के अभाव से नियतभाववाली होती है। अतः भावों की वर्तमानता के बोधकाल में पूर्वता के न होने से पूर्वता का बोध नहीं होता। उदा० नीलरूप पीताभाव से नियत होने के कारण नीलबोधकाल में पीतादि का बोध नहीं होता। क्यों ? देखिये— पीतादि रूप नीलप्रच्युति (= नीलाभाव) के अविनाभूत होता है। अतः नीलपरिच्छेदक प्रमाण जैसे नीलाभाव का व्यवच्छेद करता है वैसे नीलाभाव-अविनाभावि पीतादि का भी निरसन करता हुआ ही नील का 20 भान करता है। इसी तरह— वर्तमानभावबोधार्थ प्रवृत्त प्रमाण वर्तमानता-अभाव (का व्यवच्छेद करने के साथ) उस के अविनाभावि पूर्वतादि का भी व्यवच्छेद करेगा ही। जैसे वर्तमान क्षण का स्व-अभाव के साथ विरोध है वैसे स्व-अभाव से नियतभाववाले अतीत और अनागत क्षण के साथ भी विरोध है। अतः अतीत या अनागत से अवच्छिन्न (= संसृष्ट) भाव का वर्तमानसंसृष्ट भाव के साथ सहभावरूप समावेश असम्भव है, क्योंकि वर्तमानता और अतीतादिता परस्परपरिहारावस्थित होने से विरुद्ध है। 25 तात्पर्य, वर्तमानसंसर्गिताग्राहक प्रमाण यदि स्व-अभाव अविनाभूत अतीतादि व्यवच्छेद का व्यवच्छेद नहीं कर पायेगा तो वह वर्तमानसंसर्गिता का बोध करेगा कैसे ?

निष्कर्ष :- पूर्वापरसम्बन्धित्व में भेद होने पर भी, भिन्न भिन्न उन दोनों में एकत्वग्राहि जो तथाकथित प्रमाण दिखाया जायेगा वह अतथाभूत भाव में तथाप्रकारग्राहि होने से प्रामाण्यधारक नहीं रहेगा। इसी कारण से कहा जाता है कि वहाँ जो एकत्वबुद्धि उत्पन्न होती है वह तुल्य नये नये 30 भावक्षण की निरंतर उत्पत्ति रूप भ्रमनिमित्त के जरिये होती है।

कुण्डलाद्यवच्छिन्नस्य देवदत्तादेरिव । न च देवदत्तादेः सहभाव्यनेकविशेषणावच्छिन्नत्वादेकत्वम् तदभावनियत-  
 भावलक्षणस्य विरोधस्य सहसम्भविनामपि भावात्, ततो विरुद्धावच्छिन्नस्य नानात्वे देवदत्तस्यापि नानात्वप्रसक्तिः ।  
 न च देवदत्तादेरेकस्य कस्यचिदभावात् तन्नानात्वप्रसक्तिः न सौगतपक्षे दोषायेति वाच्यम्, एकप्रतिभासबलात्  
 देवदत्तादेरेकत्वसिद्धेः, अन्यथा नीलसंवेदनस्यापि स्थूलाकारावभासिनो विरुद्धदिकसम्बन्धात् प्रतिपरमाणुभेदप्रसक्तेः  
 5 तदवयवानामपि षट्कयोगाद् भेदापत्तितोऽनवस्थाप्रसक्तेः प्रतिभासविरतिलक्षणाऽप्रामाणिका शून्यता भवेत्—  
 इति सर्वव्यवहारविलोपः । न च छत्रकुण्डलादेरिन्द्रियावसेयवस्तुव्यवच्छेदकत्वेन इन्द्रियजप्रतिपत्तिविषयता  
 संनिहितत्वेन युक्ता, पूर्वापरादित्वस्य तु वर्तमानकालावच्छिन्ने वस्तुन्यसंनिधानात् कथं तद्ग्राहिज्ञानग्राह्यता  
 युक्तेति वक्तव्यम्, यतो यथाऽन्त्यसंख्येयकाले पूर्वसंख्येयानामसंनिधानेऽपि इन्द्रियजप्रतिपत्तिविषयता तथा  
 पूर्वापरकालभाविताया अपीत्युक्तं प्राक् ।

10 [ छत्र-कुण्डलादि के दृष्टान्त से पूर्वापरकालीन में एकत्व-समाधान ]

उत्तर :- शंका गलत है — एकत्वरूप से निश्चयारूढ घटादि भावों में परस्पर विरुद्धकालादिव्यवच्छेद  
 के जरिये भिन्नता का आपादन करना युक्तियुक्त नहीं, जैसे एक निश्चित देवदत्तादि में छत्रधारण,  
 कुण्डलधारणादि अवस्थाभेद से भेद नहीं हो सकता । शंका :- देवदत्तादि में विशेषणभूत जो छत्र-कुण्डलादि  
 हैं वे सहभावी हैं सहभावी विशेषणों से विशिष्ट देवदत्त में एकत्व हो सकता है । उत्तर :- नहीं,  
 15 जब आपने स्व-अभाव से नियत भाव स्वरूप विरोध लक्षित किया है तब वह तो सहभावी में भी  
 माना जा सकता है । अतः विरुद्ध छत्रादि धर्म विशिष्ट में भेद होने से देवदत्त में भी भेद मानना  
 पड़ेगा । शंका :- इष्टापत्ति है, हम तो स्थिर एक देवदत्तादि का स्वीकार नहीं करते हैं, अतः उस  
 में भेद का आपादन हमारे बौद्धमत में दोषकारक नहीं है । उत्तर :- दोष क्यों नहीं ? जब कि एकत्व  
 अवबोध से देवदत्तादि में एकत्व सिद्ध है । अन्यथा, नीलसंवेदन में स्थूलाकार भासित होनेवाले पदार्थ  
 20 में विरुद्ध षट् दिक् (विरुद्धकाल की तरह विरुद्ध दिशा) के संयोग से उस में भी प्रति परमाणु  
 भेद प्रसक्त होगा (इस में तो बौद्ध को आपत्ति नहीं किन्तु) फिर परमाणु (स्वलक्षण) में भी षट्  
 दिशा संयोग से पुनः पुनः उन के अवयवविभागों में भेदापत्ति के कारण अनवस्था दोष प्रसक्त रहेगा ।  
 फिर एक भी भाव का प्रतिभास न हो सकने से शून्यता प्रसक्त होगी जो कि प्रामाणिक नहीं है ।  
 फलतः पूरे लोकव्यवहार का विलोप ही प्रसक्त होगा ।

25 शंका :- छत्र-कुण्डलादि जरूर (पूर्वापरकाल की तरह) इन्द्रियगम्य वस्तु के व्यवच्छेदक (विशेषणरूप)  
 हैं, किन्तु वे देवदत्तादि वस्तु में संनिहित हैं — सम्बद्ध हैं अतः वे इन्द्रियजन्यप्रतीतिविषय एक साथ  
 होने में कोई अनौचित्य नहीं । प्रस्तुत वर्तमानकालीन घटादि में विशेषणरूप माने गये पूर्वापरकालीनता  
 वर्तमान घटादि में संनिहित न होने से उन में घटादिग्राहकज्ञानविषयता (यानी घटादि विशेषणरूप  
 में पूर्वापरकाल की प्रतीति) कैसे उचित हो सकती है ?

30 उत्तर :- इस तरह उचित है कि जैसे चरमसंख्येयकाल में पूर्व-पूर्व संख्येयों का सांनिध्य न  
 होने पर भी उन में चरमसंख्येयज्ञानजनकइन्द्रियजन्यज्ञानविषयता सर्वमान्य है, तो ऐसे घटादि में  
 असंनिहित पूर्वापरकालीनता में भी इन्द्रियजन्यप्रतीतिविषयता भी हो सकती है — यह अभी अचिरपूर्व  
 में कह आये हैं ।

अथवा 'तदेवेदम्' इति ज्ञानस्याऽनिन्द्रियजत्वेऽप्यलिंगजस्य प्रामाण्यमभ्युपगन्तव्यम् बाधारहितत्वेनाऽनेन प्रतीयमानस्य वस्तुनः पूर्वापरकालभाविता पूर्वापरदर्शनकर्मता चाऽवसीयत इति चाभ्युपगन्तव्यम् अन्यथाऽनक्षालिंगप्रत्ययस्य निश्चयात्मनो बाधारहितस्यैवंजातीयस्य कस्यचित् प्रामाण्यानभ्युपगमे अक्षजस्य संनिहितार्थमात्रग्राहित्वेन लिंगजस्य चानवस्थाप्रसक्तितः सकलपदार्थाक्षेपेण प्रतिबन्धग्राहकत्वाऽयोगात् अनुमान-प्रवृत्तेरभाव इति कुतः क्षणिकत्वादिधर्मसिद्धिः ? यथोक्तविकल्पस्य च प्रामाण्ये कथं न क्षणक्षयानुमानबाधा ? 5

भवतु वा प्रत्यभिज्ञाज्ञानस्य तदाभाससमानत्वात् क्षणक्षयानुमानाऽबाधकत्वम् तथापि स्मृत्याद्य-व्यवहिताक्षप्रभववर्तमानतासम्बद्धस्वविषयपरिच्छेदकावभासबाधितत्वाद् न क्षणक्षयानुमानस्य स्वविषय-व्यवस्थापकत्वम् । यतो न भवन्मतेन नीलादिज्ञानसमानकालभावी जनकत्वेन व्यवस्थितः, वर्तमानज्ञानसत्तासमया-ज्जनकत्वेन तस्य प्राक्कालभावित्वाभ्युपगमात् । जनकश्च ज्ञानविषयः परमतेन तस्य वर्तमानसम्बन्धित्वाऽवगमे

अथवा, भले पूर्वकालभाविता में इन्द्रियजन्यप्रतीति गोचरता न मानी जाय, 'यह वही है' इस 10 प्रत्यभिज्ञा ज्ञान को इन्द्रियजन्य न माना जाय, लिंगजन्य न होने से अनुमानरूप भी न माने, फिर भी प्रत्यभिज्ञाज्ञान को प्रमाणभूत मानना पड़ेगा, क्योंकि इस ज्ञान में अन्य किसी प्रमाण की बाधा नहीं है, अत एव इस ज्ञान से गृह्यमाण वस्तु की पूर्वापरकालता एवं पूर्वापरदर्शनकर्मता सुज्ञात होती है — यह भी स्वीकारना होगा। नहीं स्वीकारेंगे तो — मतलब इन्द्रियअजन्य, लिंगअजन्य बाधा रहित तथाविध किसी एक निश्चयात्मक (प्रत्यभिज्ञा) ज्ञान का प्रामाण्य नहीं मानेंगे तो, अनुमानप्रवृत्ति रुक 15 जायेगी क्योंकि इन्द्रियजन्य ज्ञान तो संनिहितार्थमात्रग्राही रह गया अतः उस से प्रतिबन्ध का ग्रहण नहीं मान सकेंगे, तथा लिंगजन्य अनुमान से प्रतिबन्ध ग्रहण मानेंगे तो उस के लिये भी और एक प्रति० ग्रहण ... इस तरह मानने में अनवस्था दोष होगा, अतः सकल (धूम-अग्नि) पदार्थ के उपसंहार द्वारा प्रतिबन्ध ग्रहण न होने पर अनुमान की प्रवृत्ति नहीं हो पायेगी, तो क्षणभंगसिद्धि क्षणिकताधर्म की सिद्धि होगी कैसे ? यदि उक्त निश्चयात्मक बाधारहित विकल्प ज्ञान को 'प्रमाणभूत' मान ले तब 20 तो पूर्वापरकालता वास्तविक हो जाने से क्षणिकता का अनुमान बाधित क्यों नहीं होगा ?

### [ क्षणभंगानुमान में प्रत्यक्ष से बाधितत्व की उपपत्ति ]

अथवा, मान लिया कि प्रत्यभिज्ञाज्ञान अनुमानबाधक नहीं होगा यदि वह भी प्रत्यक्षाभासतुल्य है। फिर भी क्षणभंगानुमान अपने विषय का सुनिश्चायक नहीं हो सकता, क्योंकि वह ऐसे प्रत्यक्ष 25 से बाधित है जो स्मृति से व्यवहित नहीं है, इन्द्रियजन्य है, वर्तमानता से आलिंगित है और अपने स्थिर-स्थूल विषय का बोधक है। कारण :- आप के मतानुसार ज्ञानसमानकालभावी नीलादिभाव ज्ञानजनक नहीं हो सकता। कारण, आप मानते हैं कि वर्तमानज्ञानक्षणसमय का जनक नीलादिभाव पूर्वक्षणभावी होता है। तथा आप मानते हैं कि जो जनक होता है वही तज्जन्यज्ञान का विषयभूत होता है। अब देखना यह है कि प्रत्यक्षज्ञान यदि अपने विषय में वर्तमानसम्बन्धिता को ग्रहण करता है तो 30 विषय नीलादि जनक होने से पूर्वक्षण में तो मौजूद होना चाहिये, एवं उत्तरक्षण का तज्जन्यज्ञान उस में वर्तमानसम्बन्धिता को भी ग्रहण करता है, इस तरह अल्पतम दो क्षणों की अवस्थिति नीलादि में माननी पड़ेगी, तो यहाँ नीलादि की अक्षणिकता कैसे सिद्ध नहीं होगी ? देखिये— नीलादि भावस्पर्शा

क्षणद्वयावस्थितत्वेन ग्रहणात् कथं नाऽक्षणिकत्वग्रहणम् ? तथाहि— एतद्ग्राहि ज्ञानमुपजायमानमेवं स्वविषयमवभासयति 'नायं सम्प्रत्येव नीलाद्यर्थः अपि तु प्रागासीत्' इति । यतश्चक्षुरादिव्यापारोद्भूतप्रतिपत्तिभेदः प्रादुर्भूत-प्रादुर्भवद् घटविषयत्वेन सुप्रसिद्ध एव उत्पद्यमानविषयावगमस्वभावप्रतिपत्तेः तद्विपरीतार्थालम्बनाऽप्रतीतिः अपरैव लोकेनानुभूयते ।

5 न चैकसन्तान-पूर्वसन्तानव्यावृत्तिनिबन्धनाऽपरसन्तानोत्पत्तिनिबन्धनोऽयं प्रतिपत्तिभेदः क्षणिकत्वसिद्धा-  
वेतद्वचनस्य घटमानत्वात् तत्र चाद्यापि विवादात् । न च जनकोऽर्थो वर्तमानकालतया नाक्षसंविदि प्रतिभाति  
किन्तु तस्यां तत्समानकालभाव्याकारस्तेनाधीयते तस्य तथावभासात् वर्तमानार्थावगम इत्युच्यते, ज्ञानकाले  
बहिरवभासमानस्य नीलादेर्ज्ञानाकारतयाऽसिद्धेः, अन्यथाऽन्तरवभासमानस्य सुखादेरप्यर्थाकारताप्रसक्तिः इति  
ज्ञानसत्त्वोत्सीदेत् । निराकरिष्यते च साकारता ज्ञानस्य ।

10 न चार्थस्य ज्ञानजनकत्वेऽवगते क्षणद्वयस्थायित्वमर्थस्य सिध्यति, तदेव तु तस्यावगन्तुमशक्यम् ।

प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न हो कर इस तरह ज्ञापन करता है कि मेरा नीलादि विषय 'सिर्फ वर्तमान में  
ही है ऐसा नहीं, पहले भी था।' इस प्रकार से ज्ञान होने का कारण :- एक ही घट को विषय  
करते हुए चक्षुआदिव्यापारजन्य पृथक् पृथक् प्रतीति भेद, 'घट उत्पत्ति हो रही है, घट उत्पन्न हुआ'  
इस प्रकार से सुविदित है। प्रतीतिभेद तो स्पष्ट है क्योंकि 'उत्पन्न हो रहा है' ऐसी बोधस्वरूपा प्रतीति  
15 अलग होती है और उत्पन्न अर्थ विषयक प्रतीति अलग होती है — ऐसा लोकानुभव प्रसिद्ध है। (इस  
से उत्पत्तिप्रक्रियाधीन एवं उत्पन्न घटादि एक होने से अक्षणिक होने का फलित होता है।)

### [ प्रतीतिभेद एकसन्तानमूलक कहना शोभास्पद नहीं ]

यदि कहा जाय — 'यह जो प्रतीतिभेद है वह एकघटविषयमूलक नहीं है किन्तु एकसन्तानमूलक  
है जिस में उत्पत्तिप्रक्रियाधीन पूर्वसन्ताननिवृत्तिप्रयुक्त अन्यसन्तानोत्पत्ति ही प्रयोजक है।' — यह ठीक  
20 नहीं है, जब तक अन्य प्रमाण से क्षणिकत्व सिद्ध हो जाय तभी सन्तानवार्ता शोभायुक्त हो सकती  
है, किन्तु अब तक तो क्षणिकत्व ही विवादग्रस्त है। यदि कहें — जनक यानी पूर्ववर्ती क्षण प्रत्यक्ष  
ज्ञान में वर्तमानकालीनरूप से संविदित नहीं होता (अतः क्षणद्वयअवस्थिति की सिद्धि शक्य नहीं।)  
किन्तु पूर्ववर्ती क्षण उत्तरज्ञान में वर्तमानकालभावितास्वरूप आकार का आधान करता है, इसी लिये  
प्रत्यक्ष में पूर्वक्षण की वर्तमानता भासित होती है, उसी को वर्तमानार्थप्रत्यक्ष कहा जाता है। — यदि  
25 ऐसा कहेंगे तो वह ठीक नहीं है। कारण :- प्रत्यक्षकाल में बाह्यरूप से भासमान नीलादि बाह्यभाव  
ही होता है, उस की ज्ञानाकारता सिद्ध नहीं है। अन्यथा, ऐसी भी कल्पना हो सकेगी कि भीतर  
में बाह्यभावजन्य सुखादि में बहिर्भावाकारता की आपत्ति आयेगी। फिर बहिर्भावों में ज्ञानाकारता मान  
लेने से ज्ञानसत्ता का ही उच्छेद हो जायेगा। बाह्यार्थ की सत्ता के बदले ज्ञान में साकारता (अर्थाकारता)  
की मान्यता का तो अग्रिम चतुर्थभाग में विस्तार से निरसन किया जायेगा।

30 [ अर्थ के ज्ञानजनकत्व के अवगम की शंका और समाधान ]

आपादन :- क्षणद्वयस्थायित्व अर्थ में तब सिद्ध होगा जब प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा पूर्वक्षण के  
ज्ञानजनकत्व का भी ग्रहण किया जाय। महत्त्व की बात यह है कि पूर्वक्षण के ज्ञानजनकत्व का प्रत्यक्ष

तथाहि— न तावत् तदवभासिना ज्ञानेन तस्य जनकताऽवगन्तुं शक्या, तेन तत्स्वरूपस्यैव ग्रहणात्। जनकता तु तज्ज्ञानहेतुत्वम् न तत्तेन परिच्छेत्तुं शक्यम्। नापि तदवभासिना ज्ञानान्तरेण, तस्यापि तत्तुल्यत्वात्। अतत्प्रतिभासिनाप्यतद्ग्रहणस्वभावत्वात् न तज्जनकतापरिच्छेदः। तत्स्वरूपप्रतिभासे हि 'इदमस्मादुत्पन्नम्' इत्यवगन्तुं शक्यं नान्यथेति वक्तव्यम्, यतो देवदत्तावभासिनो ज्ञानस्य तद्देश-देवदत्तसंनिधेः प्रागभावमवगत्य तद्देशसंनिहितदेवदत्तावभासोदये तस्य तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वमवगतं तज्जन्यतां तस्य 5 व्यवस्थापयति, अन्वय-व्यतिरेकावगमनिबन्धनत्वात् तज्जन्यतावगतेः। अथवा कार्यव्यतिरेकाच्चक्षुरादेरिव विषयस्यापि तज्जनकत्वमवसीयते केवलं चक्षुरादेर्विशिष्टज्ञानव्यतिरेकेण जनकत्वावधारणेऽपि स्वरूपाऽप्रतिभासादतीन्द्रियत्वम् विषयस्य पुनः कार्यव्यतिरेकादवगतस्य जनकत्वेन तत्स्वरूपावभासात् तदध्यक्षता। न हीन्द्रियज्ञानविषयत्वव्यतिरेकेणान्यत् प्रत्यक्षलक्षणमिति विषयस्य तज्जनकत्वे स्थिते वर्तमानताग्रहण एव तस्याऽक्षणिकत्वग्रह इति तेन तद्विरुद्धानुमानबाधा। 10

से ग्रहण शक्य नहीं। देखिये — पूर्वक्षणबोधक वर्तमानप्रत्यक्ष से उस की जनकता की पहिचान शक्य नहीं क्योंकि वर्तमानप्रत्यक्ष तो उस के नीलादिस्वरूप को ही ग्रहण करता है। जनकता का अर्थ है उस ज्ञान का हेतुत्व। अन्य ज्ञान उस को ग्रहण करने में सक्षम नहीं है। अन्य ज्ञान से भिन्न कोई ऐसा पूर्वक्षणवेदी ज्ञान नहीं है जो अन्यज्ञान के जनक पूर्वक्षण की जनकता को भाँप सके, क्योंकि वह भी अन्यज्ञान की तरह अक्षम है। पूर्वक्षण-अवेदी ज्ञान से भी जनकता का बोधन शक्य नहीं 15 क्योंकि उस का तथास्वभाव नहीं है कि वह उसका ग्रहण करे। पूर्वक्षण के जनकत्व स्वरूप को जो प्रकाशित कर सके वही ज्ञान 'यह इस से उत्पन्न हुआ है' इस तथ्य का द्योतन कर सकता है अन्यथा नहीं।

**आपत्तिशमन :-** उक्त आपादन कथनक्षम नहीं है। कारण :- अन्वय-व्यतिरेक से जनकता ज्ञान होता है। देवदत्त वस्तु का प्रदर्शक ज्ञान उस देशमें पहले देवदत्त नहीं था (तब उस का ज्ञान भी नहीं हुआ) जब वह उस देश में उपस्थित हुआ तब उस का ज्ञान उदित हुआ— इस प्रकार देवदत्त के अन्वय- 20 व्यतिरेक के अनुसरण को देवदत्तज्ञान ग्रहण कर लेता है अत एव स्व में देवदत्तजन्यता को निश्चित करता है। एक कार्य में अन्यजन्यता का बोध तो आखिर अन्वयव्यतिरेकबोधमूलक ही होता है।

### [ अन्वय-व्यतिरेकसहकृत जनकत्वनिश्चय ]

अथवा दूसरा उत्तर :- ज्ञानजनक चक्षु आदि में जैसे (उस के बिना रूपप्रत्यक्ष नहीं होता इस प्रकार के) कार्य व्यतिरेकमूलक जनकत्व का निश्चय होता है इस तरह ज्ञानजनक विषय में भी 25 व्यतिरेकमूलक जनकत्व का निश्चय हो सकता है। फर्क है तो इतना कि चक्षु आदि (अतीन्द्रिय) में जनकत्व का निश्चय होने पर भी चक्षु के रूपादिमत्त्व स्वरूप का प्रतिभास न होने से उस को अतीन्द्रिय मानना पडेगा, जब कि कार्यव्यतिरेक के बल पर जनकत्वरूप से ज्ञात विषय का नीलादिमय स्वरूप भासित होता है अतः विषय को 'प्रत्यक्ष' माना जाता है। प्रत्यक्ष का इन्द्रियजन्यज्ञानविषयत्व के अलावा और तो कोई लक्षण नहीं है, इस तरह विषय में ज्ञानजनकत्व के निश्चय में आपादित शंका का 30 निवारण हो जाने से अब, ज्ञात ज्ञानजनकत्व के आधार पर वर्तमानताग्रहणमूलक क्षणद्वयस्थायित्व का निश्चय निष्कण्टक बन गया। फलस्वरूप, इस प्रत्यक्ष से क्षणिकत्वग्राहि अनुमान बाधित हो गया।



अथ वर्तमानार्थावभासिनाऽध्यक्षेण न प्राक्तनक्षणभाविनोऽर्थस्य जनकत्वनिश्चयः, तस्यानुमानगम्यत्वात् तेन ज्ञानोदयात् प्रागर्थप्रतिपत्तिरनुमानफलम् जनकत्वात् ज्ञानसत्तातः प्राग्भावो विषयस्यान्यकारणस्येव इति कथमनुमानबाधा वर्तमानावभासिनाऽध्यक्षेणेत्युच्यते। असदेतत्— यतो न जनकत्वमनुमानगम्यम् तस्याऽध्यक्षविषयत्वे तत्प्रतिबद्धत्वेनैव लिङ्गस्याऽनिश्चयादनुमानगम्यताऽपि न भवेत् तत् कुतो ज्ञानार्थव्यतिरिक्तस्यापि वस्तुनो जनकत्वमनुमीयेत ? तत् मानसाध्यक्षगम्यमूहाख्यप्रमाणगम्यं वाऽभ्युपगन्तव्यम्। यच्च ‘जनकत्वात् कार्यसत्तातः पूर्वं कारणसत्तेत्यनुमानगम्यत्वं जनकस्य’ इत्युक्तम् (१९७-१९) तदपि परिहृतमेव, यतः एका भावावगमपूर्विका चक्रमूर्द्धव्यवस्थितघटप्रतिपत्तिः अपरा प्रदीपव्यापारप्रभवा तदनवगमपूर्विका, यया स्वविषयपरिच्छेद एवं क्रियते — ‘न सम्प्रत्येवायं भाव अपि तु प्रागासीत्’ इति, अतीते च क्षणेऽक्षव्यापारः शतादिप्रतीत्या प्रदर्शितः।

10 यदपि ‘न गृह्यमाणस्य ज्ञानसमानसमयस्य जनकता, जनकस्य च क्षणिकत्वेन वर्तमानतयाऽतीतस्य

### [ जनकत्वनिश्चायक प्रत्यक्ष नहीं किन्तु अनुमान ? ]

शंका :- वर्तमानक्षणभासक प्रत्यक्ष से पूर्वक्षणभावी अर्थ में जनकता का निश्चय कर नहीं सकता, क्योंकि जनकत्व अनुमानगोचर है। अतः ज्ञानोदयपूर्ववर्तिक्षण की वर्तमान में प्रतीति तो अनुमान का ही फल है, तथा विषय की ज्ञानोत्पत्तिपूर्वकालीनता का पता भी जनकत्व हेतु से ही हो सकता है जो धूमोत्पत्तिपूर्वकालीनता अग्नि में जनकत्व हेतु से ज्ञात होती है। इस स्थिति में, वर्तमानरूप से भासमान प्रत्यक्ष से अनुमान को बाधा कैसे पहुँचेगी ?

उत्तर :- शंका गलत है। जनकत्व अनुमान गोचर नहीं हो सकता, क्योंकि वह प्रत्यक्षगोचर नहीं होगा तो तदविनाभावि किसी लिंग का भी निश्चय न होने से अनुमानगोचरता भी नहीं होगी। तब, ज्ञानविषय की तो ठीक अन्य किसी वस्तु में भी जनकता का अनुमान कैसे होगा ? अतः जनकत्व को मानसप्रत्यक्षगोचर या ऊहसंज्ञक प्रमाणगोचर मान लेना पड़ेगा। अभी जो यह कहा (१९७-१९) ‘कार्यसत्ता से कारण की पूर्वसत्ता जनकत्व हेतु द्वारा जनक में अनुमान से गृहीत होगी — उसका भी निरसन हो गया, क्योंकि दृष्टा को पहले पदार्थबोधपूर्वक कुलाल चक्र पर रहे हुए घट की प्रतीति होती है, फिर कुम्हार जब चक्र पर से घट को नीचे उतार लेता है, अन्धेरे किसी खण्ड में रख देता है, बाद में प्रदीपप्रकाश से चक्र विनिर्मुक्त ऐसी प्रतीति होती है जिस से अपने विषय का भान इस प्रकार के उल्लेखपूर्वक होता है — ‘यह भाव सिर्फ वर्तमान में ही नहीं — पहले भी मौजूद था।’ इस प्रकार अतीतकालीनता का बोध होता है। पहले शतसंख्याज्ञान के उदाहरण से यह दिखाया है कि अतीत अर्थ के प्रति भी इन्द्रियव्यापार शक्य है।

### [ ज्ञानमात्र का विषय आरोपित मानने पर आपत्तियाँ ]

यह जो कहा जाय कि — ‘गृह्यमाण पूर्वक्षणभाव यदि ज्ञान का समानकालीन होगा तो उसमें ज्ञानजनकता नहीं रहेगी। ज्ञान क्षण में उस के जनक पूर्वक्षण का वर्तमानरूप से प्रतिभास भी शक्य

न प्रतिभासः, इति समारोपिताकारग्राहि सर्वमेव ज्ञानम्' इत्युच्यते, तदप्यसारम्, नील-द्विचन्द्रज्ञानयोरविशेषप्रसक्तेः। न च बाह्यार्थवादिना तयोरविशेषोऽभ्युपगन्तव्यः प्रमाणाऽप्रमाणप्रविभागप्रलयप्रसक्तेः। न चानेन न्यायेन विज्ञाननय एवावतार्यत इति वक्तव्यम् तस्य निषेत्स्यमानत्वात्। न च ज्ञानार्थयोरेकसामग्रीजन्ययोः सहभावित्वेन वर्तमानग्रहणं क्षणिकत्वेऽपि वैभाषिकमताश्रयणेनाऽभ्युपगन्तव्यम्, क्रियानियमस्य कर्मशक्ति-निमित्तत्वेन व्यवस्थापितस्याऽभावप्रसक्तेः।

5

भवतु वाऽनुमानात् प्राक्तनक्षणे सत्ताप्रतीतिः, तथाप्यनन्यथासिद्धेनानेनान्यथासिद्धस्य क्षणक्षयानुमानस्य बाधनात् कुतस्तत्सिद्धिः ? न च क्षणक्षयानुमानस्यान्यथासिद्धत्वाऽसिद्धिः बाधकप्रमाणबलात् सत्ता-क्षणिकत्वयोरविनाभावसिद्धेरिति वक्तव्यम्, यतस्तद्बाधकं प्रमाणं सत्तायाः क्षणिकाविनाभावप्रतिपादकमध्यक्षं अनुमानं वा भवेत् ? न तावदध्यक्षरूपम् तत्र क्षणिकताप्रतिभासाभावात्। न चाऽनवभासमानक्षणक्षयस्वरूपमध्यक्षं

नहीं। इस स्थिति में यही फलित होता है कि सभी ज्ञान अच्छी तरह आरोपित (न कि वास्तव) आकार को ही ग्रहण करता है।' — तो यह निःसार कथन है। कारण, नील ज्ञान (जो कि प्रमाण माना जाता है) और चन्द्रयुगलज्ञान (जो अप्रमाण माना जाता है) दोनों ही अवास्तव आरोपित आकार के ग्राहक होने से उन के आपसी भेद का उच्छेद हो जायेगा। बाह्यार्थ को स्वीकारनेवाले वादी कभी भी इन दो प्रकार के ज्ञानों का एकत्व नहीं मान सकते क्योंकि तब प्रमाण और अप्रमाण — इस विभाजन का लोप ही प्रसक्त होगा। यदि कहें — 'इष्टापत्ति, आखिर तो इस ढंग से हम विज्ञानमात्रतापक्ष का ही अवतरण करना चाहते हैं' — तो इस विज्ञानमात्रतापक्ष का भी हम अग्रिम चतुर्थ खंड में प्रतिकार कर दिखायेंगे — याद रखना। यदि वैभाषिक मत का आशरा ले कर कहा जाय कि — 'ज्ञान और उस का विषय ये दोनों एकसामग्रीजन्य होने से समकालीन हो सकते हैं, अतः क्षणिक होने पर भी अर्थ में वर्तमानता गृहीत होती है' — तो यह भी निर्दोष नहीं, क्योंकि कर्मशक्तिमूलक जो क्रियानियम स्थापित किया गया है — उस का भी लोप प्रसक्त होगा। मतलब कर्मरूप जो घटादि विषय है उस में निहित शक्ति के आधार पर ही ज्ञान (जानाति) क्रिया अवलम्बित होने का नियम, पूर्वापर भाव से ही संगत होता है, समकालीन मानने पर उस का लोप होगा।

10

15

20

### [ क्षणभंगानुमान अन्यथासिद्ध एवं बाधग्रस्त ]

कदाचित् मान ले कि पूर्वक्षणनिष्ठ सत्ता की प्रतीति प्रत्यक्ष से नहीं अनुमान से होगी। फिर भी उस से क्षणभंग की सिद्धि दुराशा है क्योंकि स्थायित्वप्रत्यक्ष अनन्यथासिद्ध है क्योंकि वह अन्यप्रमाण पर निर्भर नहीं है, जब कि क्षणभंगानुमान प्रत्यक्षावलम्बि होने से अन्यथासिद्ध है, अतः प्रत्यक्ष से उस अनुमान का जरूर बाध होगा। अब क्षणक्षयसिद्धि कैसे होगी ? शंका :- क्षणभंगानुमान में अन्यथासिद्धि का होना असिद्ध है, बाधक प्रमाण न होने से सत्त्व और क्षणिकत्व का अविनाभाव सिद्ध होता है। उत्तर :- ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि प्रत्यक्षबाधक एवं सत्ता में क्षणिकत्व की व्याप्ति का निवेदक प्रमाण कौन सा है ? प्रत्यक्ष या अनुमान ? प्रत्यक्ष तो नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष में कभी भी क्षणिकता

30

सत्तायास्तदविनाभावमावेदयितुमलम् । न च प्रत्यक्षवपुषि स्फुटमाभाति प्रतिक्षणविशरारुता भावानाम् किन्तु विपरीताध्यवसायोदयात् प्रतिहन्यत इति वक्तव्यम् विहितोत्तरत्वात् प्रागेव । किञ्च, यदि अध्यक्षं प्रतिक्षणमपायमवभासयति भावानाम् किमिति तदनुसारी निश्चयो नोदयमासादयति ? सादृश्यदर्शनात् भ्रान्तेर्निश्चयानुदय इति न च वक्तव्यम् सादृश्ये प्रमाणाभावात् । न चाप्रामाणिका सादृश्यपरिकल्पना ज्यायसी । किञ्च, यदि विपरीतनिश्चयोत्पादात् प्रतिक्षणापायप्रतिभासप्रतिहतिरभ्युपगम्यते, नन्वेवं पुरोवर्तिनि स्तम्भादौ विजातीयस्मरणसमये प्रतिभासमाने क्षणक्षयनिर्भासो भवेत् नित्योल्लेखाभावात् ।

किञ्च, यदि क्षणक्षयावभासि संवेदनं स्थायिताध्यवसायश्च परस्पराऽसंसक्तरूपं प्रत्यक्षद्वयमुदयमासादयति तदा क्षणक्षयावभासस्य न काचित् प्रतिहतिः । न च नित्याध्यवसायसंनिधानमेव तस्य प्रतिहतिः, क्षणक्षयावभासस्यापि नित्याध्यवसायप्रतिघातकत्वप्रसक्तेः, संनिधेरविशेषात्, पूर्वोत्तरकालभावित्वस्याप्यकिं-

10 का प्रतिभास नहीं होता । क्षणभंगस्वरूप ग्रहण न करनेवाला प्रत्यक्ष सत्ता में क्षणिकता के अविनाभाव का प्रतिपादन कर नहीं सकता । शंका :- प्रत्यक्ष दर्पण में स्पष्ट ही भावों की प्रतिक्षणविनाशित्व का अनुभव होता ही है, किन्तु क्षणिकताविरुद्ध स्थायित्व के अध्यवसाय (निश्चय) उदित होने के कारण उक्त क्षणिकताग्राहि प्रत्यक्ष को व्याघात लग जाता है । उत्तर :- ऐसा नहीं बोलना, क्योंकि पहले ही, प्रत्यक्ष में क्षणिकत्व के प्रतिभास का कोई प्रमाण नहीं... इत्यादि उत्तर दिया जा चुका है ।

15 [ क्षणिकत्व प्रत्यक्ष के बाद स्थायित्वनिश्चय का उदय क्यों ? ]

शंकाकार को यह प्रश्न है कि यदि प्रत्यक्ष प्रतिक्षणविनाशित्व को ग्रहण करता है, उस के अनुसार निश्चय का उदय क्यों नहीं होता — क्यों उस से विपरीत निश्चय उदित होता है ? यदि उत्तर में कहें कि सादृश्यमूलक भ्रान्ति के कारण क्षणिकत्वनिश्चय का उदय नहीं होता — तो पहले सादृश्य को सिद्ध करनेवाला प्रमाण दिखाओ — वह तो है नहीं । निष्प्रमाण सादृश्यकल्पना शोभावर्धक नहीं है । उपरांत, यदि विपरीत अध्यवसाय के उद्भव से आप प्रतिक्षण विनाशप्रतिभास का व्याघात मानते हैं तो व्याघातमुक्त दशा में तो उस का उदय होना चाहिये — मतलब, जब एक ओर भाव के क्षणिकत्व का प्रत्यक्ष हुआ, एवं दूसरी ओर पुरोवर्ति स्तम्भादि के बारे में विसदृश स्मृति का उदय हुआ, यहाँ व्याघातकारक सादृश्य है नहीं, तो इस स्थिति में क्षणभंग का निर्भास = निश्चय हो जाना चाहिये क्योंकि यहाँ सादृश्यमूलक स्थायित्व का उल्लेख नहीं है जिस से कि व्याघातकल्पना की जा सके ।

25 [ क्षणिकत्वसंवेदन स्थायित्वाध्यवसाय — व्याघात किस को ? ]

जब तक व्याघात की बात है तो इतना समझ लो कि अगर एक ओर क्षणिकताघातक संवेदन है, दूसरी ओर स्थायिता का निश्चय है, दोनों ही परस्पर असंसृष्ट है — इस प्रकार के दो दो प्रत्यक्ष उदित होते हैं तो इस में क्षणभंगप्रत्यक्ष को कोई जफा नहीं हो सकती । शंका :- जो स्थायित्वाध्यवसाय का संनिधान है वही बड़ी जफा है । उत्तर :- क्षणभंगावभास के संनिधान से स्थायित्वाध्यवसाय को

चित्करत्वात्। अपि च, विजातीयविकल्पोदयेऽपि विशददर्शनस्य प्रतिहतिप्रसक्तिरिति पीताद्यध्यवसायप्रसवे नीलादिकं न प्रतिपन्नं स्यात्। न च विजातीयत्वात् पीतविकल्पो नीलादिदर्शनस्य न प्रतिघातक इति वक्तव्यम्, नित्यताध्यवसायस्यापि क्षणक्षयदर्शनं प्रति प्रतिघातकत्वाऽप्रसक्तेः विजातीयत्वाऽविशेषात्। आकारभेदादेव ह्यन्यत्रापि विजातीयत्वम् तच्च नित्यानित्ययोरपि तुल्यमेव। न च प्रथमोत्पन्नक्षणिकदर्शन-समानाधिकरणतया नित्योल्लेखस्योत्पत्तेः प्रतिघातकत्वं विरुद्धाकारावभासिनोः प्रत्यययोः सामानाधिकरण्या- 5 नुपपत्तेः, अन्यथाऽतिप्रसक्तेः। तन्न सामानाधिकरण्यात् तत्रप्रतिहतिरित्यध्यक्षस्वरूपबाधकप्रमाणनिश्चयो न क्षणक्षय-सत्तयोरविनाभाव इति न सत्तातः क्षणक्षयसिद्धिः।

न चानुमानरूपेण बाधकप्रमाणेन क्षणक्षयाऽविनाभूता सत्ताध्यवसीयते, तदनुमानेऽविनाभावस्यानुमानबलात्

जफा क्यों नहीं है ? संनिधान तो दोनों ओर एक-सा है। क्षणभंगावभास पहले हुआ है, स्थायित्वाध्यवसाय बाद में, इतने मात्र से पहले को दूसरे की जफा बताना अनुचित है, क्योंकि पूर्वापरभाव यहाँ नियामक 10 न होने से दूसरे को पहले की जफा भी हो सकती है। ऐसा अगर माना जाय कि स्थायित्वाध्यवसाय विजातीय होने से विशददर्शनरूप क्षणभंगसंवेदन का व्याघात करेगा, तो अन्य प्रकार के विजातीय विकल्प से भी विशददर्शन का व्याघात प्रसक्त होगा, उदा० पीतादिअध्यवसाय के उदय से नीलादिप्रतिपत्ति भी रुक जायेगी। यदि कहें कि — पीतविकल्प विजातीय होने से नीलादिदर्शन का व्याघातकारि नहीं होगा — तो यह ठीक कथन नहीं, हम कहेंगे कि स्थायित्वाध्यवसाय भी क्षणभंगसंवेदन का विजातीय 15 होने से उस का विघातक नहीं होगा, क्योंकि पीतविकल्प और स्थायित्वाध्यवसाय दोनों ही क्रमशः नीलदर्शन और क्षणभंगदर्शन का समानतया विजातीय हैं। यहाँ वैजात्य आखिर है क्या ? आकारभेद, वह तो क्षणभंग और स्थायित्व दोनों में तुल्यतया मौजूद है।

### [ विरुद्धाकार दो प्रतीतियों का सामानाधिकरण्य नहीं ]

यदि कहें — प्रथमजात क्षणिकतादर्शन के अधिकरण में सामानाधिकरणतरूप से स्थायित्वविकल्प 20 उत्पन्न होता है इसलिये वह क्षणिकतादर्शन का सामानाधिकरण्य के कारण विघातक होता है। — तो यह जूठा है, क्योंकि (पहली बात, बौद्धमत में दो ज्ञानक्षणों का कोई एक आत्मादि अधिकरण है नहीं, सन्तान तो काल्पनिक है) यदि ये दो अधिगम विरुद्धाकार हैं तो उन की एकअधिकरणता ही अघटित है, अन्यथा प्रकाश और अन्धकार भी सामानाधिकरण होने की मुसीबत आ पड़ेगी। निष्कर्ष, सामानाधिकरण्यमूलक दर्शनविघात शक्य नहीं है। अत एव स्थायित्वप्रत्यक्षस्वरूप के बाधक (अनुमान) 25 प्रमाण से सत्त्व-क्षणिकत्व का अविनाभाव उपलब्ध नहीं हो सकता। अतः सत्ता हेतु से क्षणभंगसिद्धि अशक्य है — प्रत्यक्ष से अविनाभाव का पता नहीं चल सकता — यह प्रथम विकल्प निरस्त हुआ।

अनुमानात्मक बाधकप्रमाण से भी सत्ता क्षणभंगाविनाभाविनी होने का पता नहीं चलता। कारण, उस बाधकप्रमाणरूप अनुमान करने के लिये जिस अविनाभाव की जरूर पड़ेगी उस के लिये अन्य अनुमान करना पड़ेगा... उस के लिये भी अन्य-अन्य अनुमान.. तो इस तरह अनवस्था दोष होगा। 30

प्रसिद्धभ्युपगमादनवस्थाप्रसक्तेः।

अपि च, किं तद् बाधकं प्रमाणमिति वक्तव्यम्। अथाऽर्थक्रियालक्षणं सत्त्वं नित्ये क्रम-  
यौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात् ततो व्यावर्तमानमनित्ये एवाऽवतिष्ठते इति तेन व्याप्तं तत् सिध्यति इत्येतद्  
बाधकं प्रमाणम्। असदेतत्— सत्ता-नित्यत्वयोर्विरोधाऽसिद्धेः। विरोधो हि भवन्<sup>१</sup>सहानवस्थानलक्षणः  
5 <sup>b</sup>परस्परपरिहारस्थितिलक्षणो वा तयोर्भवेत् ? <sup>a</sup>न तावत् स्थायिता-सत्तयोराद्यो विरोधः सम्भवी, स हि  
पदार्थस्य पूर्वमुपलम्भे पश्चात् पदार्थान्तरसद्भावादभावावगतौ निश्चीयते शीतोष्णवत्। न च नित्यतावभासि  
दर्शनमुदयमासादयति तदभ्युपगमे वा विशददर्शने नित्यतायाः प्रतिभासात् सा विद्यमानैवेति कथं क्षणक्षयिणः  
सर्वे भावाः स्युः।

<sup>B</sup>नापि द्वितीयो विरोधस्तयोः सम्भवति, नित्यतापरिहारेण सत्तायाः सत्तापरिहारेण वा स्थायितायाः  
10 अनवस्थानात्। क्षणिकतापरिहारेण ह्यक्षणिकता व्यवस्थिता अक्षणिकतापरिहारेण च क्षणिकता-इत्यनयोः  
परस्परपरिहारस्थितिलक्षणताविरोधः। न चार्थक्रियालक्षणा सत्ता क्षणक्षयितया व्याप्तेति नित्यताविरोधिनी

### [ स्थायित्वबाधक प्रमाण की समालोचना ]

क्षणिकवादी को और एक प्रश्न है — स्थायित्व का बाधक प्रमाण कौन-सा है ? यदि कहें —  
'अर्थक्रियाकारित्वरूप सत्त्व अनित्यत्व के साथ ही बैठ सकता है, नित्यत्व के साथ नहीं क्योंकि  
15 नित्य पदार्थ में क्रमिक अथवा युगपद् अर्थक्रिया के साथ विरोध है, अतः उस से वह दूर भागता  
है। अनित्यत्व से व्याप्त सत्त्व सिद्ध हो कर स्थायित्वप्रत्यक्ष का बाध करेगा।' — तो यह गलत है,  
सत्ता के साथ नित्यत्व का विरोध असिद्ध है। यदि विरोध है तो कौन-सा ? <sup>a</sup>सहानवस्थानस्वरूप  
या <sup>b</sup>परस्परपरिहारवृत्तिस्वरूप ?

<sup>a</sup>स्थायित्व और सत्ता में प्रथमस्वरूप विरोध निरवकाश है, क्योंकि सहानवस्थानरूप विरोध वहाँ  
20 होता है जहाँ एक पदार्थ पहले अनुभवारूढ होता है जैसे शीत, बाद में उष्णतारूप अन्य पदार्थ का  
आगमन होने पर शैत्य का वहाँ विरह दिखता है, तब निश्चित होता है कि एक अधिकरण में  
शीत और उष्णता एक साथ नहीं रह सकते। सत्ता और नित्यत्व में ऐसा विरोध सम्भव नहीं है  
क्योंकि सत्तादर्शन के बाद नित्यताप्रदर्शक दर्शन का कभी उदय नहीं होता। अगर, नित्यत्व का स्पष्ट  
दर्शन हो सकता है तब तो उस का प्रतिभास ही नित्यता के सद्भाव को सिद्ध कर देगा, फिर  
25 पदार्थों की क्षणिकता की सिद्धि को अवकाश कहाँ मिलेगा ? <sup>b</sup>परस्पर परिहारस्वरूप विरोध भी सिद्ध  
नहीं क्योंकि ऐसा दिखता नहीं कि सत्ता हो वहाँ नित्यता न हो और नित्यता हो वहाँ सत्ता न  
हो। हाँ ऐसा हो सकता है, क्षणिकता रहे वहाँ अक्षणिकता नहीं रहेगी (उदा० बीजली) अक्षणिकता  
रहे वहाँ क्षणिकता नहीं रहती (उदा० समुद्र)। यहाँ 'क्षणिकता-अक्षणिकता में परस्परपरिहारस्वरूप विरोध  
रहता है। ऐसा बोलना नहीं कि — 'अर्थक्रियास्वरूप सत्ता क्षणिकता से अविनाभाविनी होने से नित्यता  
30 की विरोधिनी फलित होगी' — इस में तो स्पष्ट अन्योन्याश्रय दोष होगा। देखिये— अर्थक्रियारूप सत्ता  
नित्यताविरोधिनी होने से क्षणिकता की व्याप्य सिद्ध होगी, दूसरी ओर सत्ता क्षणिकता की व्याप्य

सेति वक्तव्यम् इतरेतराश्रयप्रसक्तेः। तथाहि — अर्थक्रियालक्षणा सत्ता क्षणिकतया व्याप्ता नित्यताविरोधात् सिध्यति, सोऽपि तस्याः क्षणिकतया व्याप्तेरिति परिस्फुटमितरेतराश्रयत्वम्। न चान्वयनिश्चयद्वारेण सत्त्व-क्षणक्षययोरविनाभावः सिध्यति प्रत्यक्षस्याऽन्वयग्राहित्वेनात्रप्रवृत्तेः। अनुमानादन्वयप्रतिपत्तावनवस्था-प्रसक्तेरिति प्रतिपादनात् (२१८-१०)।

अथापि स्यात् — अर्थक्रियास्वरूपं सत्त्वं नित्यतायामसंभवि। अन्यथाभूतं च तत्र सम्भवतीति 5  
क्षणक्षयिणः सर्वेऽपि भावाः। तथाहि— सत्तासम्बन्धः तावत् सत्त्वं नोपपद्यते व्यक्तिव्यतिरेकेण तस्या अनवभासनात्। न ह्यक्षान्वय-व्यतिरेकानुविधायिनी दर्शनोदये परिस्फुटप्रतिभासव्यक्तिस्वरूपव्यतिरेकेणाऽपरा वर्ण-संस्थानविरहिणी बहिर्ग्राह्याकारतां बिभ्राणा सत्ता प्रतिभाति तदवभासिन्या अक्षप्रभवसंविदोऽननुभवात्। न च सकलजनताविशदसंवेदनगोचरातिक्रान्ता सा समस्तीति शक्यमभिधातुम् अभावव्यवहारोच्छेदप्रसक्तेः। न च कल्पनाबुद्धिः 'सत्... सत्...' इति सत्तास्वरूपमुल्लिखन्ती प्रतिभातीति तदवसेयत्वात् सत्ता सतीति 10  
वक्तव्यम्, कल्पनाबुद्ध्यावपि बहिःपरिस्फुटव्यक्तिस्वरूपान्तर्नामोल्लेखाध्यवसायव्यतिरेकेण सत्तास्वरूपस्या-ऽप्रकाशनात्। तत्र कल्पनाबुद्ध्यध्यवसेयापि सत्तेति कथं सा सतीति ?

सिद्ध होने पर नित्यता विरोध सिद्ध होगा। यहाँ अन्योन्याश्रय स्पष्ट है। उपरांत, सत्ता और क्षणिकता का अविनाभाव अन्वयग्रहण के द्वारा सिद्ध नहीं होता, क्योंकि दर्शन क्षणिकताग्राहित्वेन निश्चित न होने से 'जहाँ सत्ता है वहाँ क्षणिकता' इस प्रकार के अन्वय ग्रहण के लिये प्रत्यक्ष-प्रवृत्ति असिद्ध 15  
है। यदि अन्वयग्रहण अनुमान से मानेंगे, तो उस अनुमान के उत्थानार्थ जरूरी अन्वयग्रहण के लिये दूसरा अनुमान... उस के लिये तीसरा, इस प्रकार अनवस्था प्रसक्त होगी। पहले (२१९-१२) यह निरूपण कर आये हैं।

### [ सत्ता के स्वरूप की मीमांसा-पूर्वपक्ष ]

दीर्घ पूर्वपक्ष का प्रारम्भ :- यदि ऐसा सोचा जाय — नित्य के होते हुए अर्थक्रियारूप सत्त्व 20  
नहीं सम्भवता, नित्य या अनित्य के सिवा और कोई उस का स्वरूप नहीं है, अतः 'सर्व क्षणिकम्' स्वीकारना पड़ेगा। कैसे यह देखिये— सत्त्व की संगति सत्तासामान्य के सम्बन्ध से नहीं हो सकती, क्योंकि व्यक्ति से अलग किसी सामान्य का वहाँ उपलम्भ नहीं होता। इन्द्रिय के अन्वय-व्यतिरेक से अनुबद्ध दर्शन का उदय होने पर अतिस्पष्टव्यक्तिस्वरूपप्रतिभास से अतिरिक्त वर्णाकारशून्य, बाह्यरूप से ग्राह्याकारता धारण करनेवाली कोई सत्ताजाति भासित नहीं होती, क्योंकि सत्ताजातिअवबोधक 25  
इन्द्रियजन्य संवेदन अनुभूत नहीं होता। ऐसा कहना कि — 'भले सत्ताजाति सकल जनसमूहसंवेदन विषयमर्यादा की बाहर है फिर भी है जरूर' — शक्य नहीं, क्योंकि तब तो समस्त काल्पनिक वस्तु के लिये ऐसा कथन शक्य होने से शशशुंगादि के अभाव-व्यवहार का ही विलोप प्रसक्त होगा।

### [ कल्पनाबुद्धि से सत्ता की सिद्धि असम्भव ]

शंका :- सत्ता जाति वास्तव है, क्योंकि 'सत् सत्' ऐसी सत्ता के स्वरूप को घोषित करती 30  
हुयी कल्पनाबुद्धि उदित होती है उस से सत्ता ज्ञात होती है।

उत्तर :- ऐसा नहीं बोलना। कारण :- कल्पनाबुद्धि में भी बाह्यरूप से स्पष्टतया व्यक्तिस्वरूपों

- किञ्च, न तावत् सतः सत्तासम्बन्धात् सत्त्वम्, सत्तासम्बन्धात् प्रागेव पदार्थस्य सत्त्वप्रसक्तेः प्राक् सत्ताभ्युपगमे च सत्तासम्बन्धवैयर्थ्यम्। नाप्यसतः तत्सम्बन्धात् सत्त्वम् शशशृंगादेरपि सत्त्वप्रसक्तेः। न च खरविषाणादेः स्वरूपविरहात् न सत्तासम्बन्धः, इतरेतराश्रयप्रसक्तेः— शशशृंगादेः स्वरूपविरहात् सत्तासम्बन्धाभावसिद्धिः तत्सिद्धौ च स्वरूपविरहसिद्धिरितीतरेतराश्रयत्वम्। यदि च शशशृंगादेः स्वरूपविरहाद्
- 5 न सत्तासम्बन्धः तर्हि यत्र गोशृंगादौ स्वरूपसद्भावः तत्र सत्तासम्बन्धः इति स्वरूपसत्त्वमायातम्। तथा सत्तापि यदि न स्वरूपेण सती तदाऽपरसत्तासम्बन्धात् सा सती स्यात् सापि सत्तान्यसम्बन्धात् सत्यभ्युपेयेत्यनवस्थाप्रसक्तिः। अथ सा न सती न तर्हि तत्सम्बन्धो भावसत्त्वव्यवस्थापकः। न च गगनारविन्दस्य सम्बन्धाभावाद् न तद्योगः कस्यचित् सत्त्वं व्यवस्थापयति, सत्तायास्तु सम्बन्धसद्भावात् तद्योगात् पदार्थसत्त्वम् इति वक्तव्यम्, यतः सम्बन्धोऽपि विद्यमानस्य भवेत् ? अविद्यमानस्य वा ?
- 10 यदि विद्यमानस्य, न किञ्चित् सम्बन्धकल्पनया, तद(?म)न्तरेणापि विद्यमानत्वात्। अथाविद्यमानस्य,

के उल्लेख करनेवाले अध्यवसाय से अधिक किसी सत्तास्वरूप का प्रकाशन नहीं होता। अतः कल्पनाबुद्धि से भी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती, फिर उसे वास्तव कैसे कहा जाय ?

### [ सत्ता का योग विवादास्पद - पूर्वपक्ष चालु ]

- यह भी समझ लो — क्या सत्ता के सम्बन्ध से सत् का सत्त्व होता है ? नहीं, क्योंकि सत्ता
- 15 के सम्बन्ध के पहले ही (सत् होने से) पदार्थ का सत्त्व प्रसक्त है, तब पहले ही सत्ता स्वीकृत है फिर सत्तासम्बन्ध निरर्थक हो गया। यदि सत्ता सम्बन्ध के पहले पदार्थ सत् नहीं है, सत्तासम्बन्ध से सत्त्व होता है, तब तो शशशृंगादि में भी सत्त्व प्रसक्त होगा। ऐसा मत कहना कि शशशृंगादि स्वरूपविहीन होने से उस में सत्तासम्बन्धप्रयुक्त सत्त्व संभव नहीं — ऐसा कहने पर तो अन्योन्याश्रय दोष प्राप्त होगा। देखिये— शशसींग के स्वरूपविरह की सिद्धि होने पर सत्ता सम्बन्धाभाव की सिद्धि
- 20 होगी, और उस की सिद्धि होने पर स्वरूपविरह की सिद्धि होगी— इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष होगा। यदि कहें कि शशसींग का स्वरूप विरह तो प्रसिद्ध ही है, उस से सत्तासम्बन्धाभाव निर्बाध सिद्ध हो जायेगा तो जिस गोशृंग आदि में स्वरूपसद्भाव होगा उसी में सत्तासम्बन्ध मानना होगा, फलतः गोशृंग आदि में स्वरूपतः सत्त्व ही प्रसक्त हुआ (न कि सत्तासम्बन्धमूलक सत्त्व)। इसी तरह, सत्ता भी यदि स्वरूप से सत् नहीं है तो अन्यसत्ता के सम्बन्ध से ही वह सत् बन सकेगी, वह अन्यसत्ता
- 25 भी अपर सत्ता सम्बन्ध से... इस तरह अनवस्था दोष प्रसक्त होगा। यदि सत्ता सम्बन्ध से भी वह सत् नहीं है, तो सत्तासम्बन्ध भावतः सत्त्व-स्थापक नहीं हो सकता। जैसे, आकाशकमल का सम्बन्ध किसी वस्तु के सत्त्व का स्थापक नहीं हो सकता।

- शंका :-** आकाशकमल का कोई सम्बन्ध ही नहीं होता (क्योंकि वह खुद ही असत् है) अतः उस का योग किसी के सत्त्व का स्थापक नहीं बन सकता। सत्ता की बात अलग है, सत्ता का सम्बन्ध
- 30 वास्तव होने से, उस के योग से पदार्थ का सत्त्व हो सकता है।

**उत्तर :-** ऐसा कथन अयुक्त है। **कारण :-** सम्बन्ध किस का ? विद्यमान का या अविद्यमान का ? यदि विद्यमान का, तो सम्बन्ध कल्पना की जरूर ही नहीं है, क्योंकि उस के बिना भी पहले

गगनारविन्दस्यापि स्यात् - इति न सत्तासम्बन्धः सत्त्वम्।

नापि स्वरूपतः सत्त्वम् स्वप्नावस्थावगतेऽपि पदार्थात्मनि स्वरूपसद्भावात् सत्त्वप्रसक्तेः। यदि हि परिस्फुटसंवेदनावभासनं स्वरूपमुच्यते तत् स्वप्नदशायामपि पदार्थात्मनो विद्यते इति कथं न तत्सत्त्वप्रसक्तिः ? तत् पारिशेष्याद् अर्थक्रियायोगः सत्त्वम्, स च क्रम-योगपद्याभ्यां व्याप्तः, ते च न नित्ये सम्भवतः। यतो न क्रमवती अर्थक्रिया नित्ये सम्भविनी, तस्य स्वरूपमात्रेण कार्यकरणसामर्थ्यं तदेव सकलकार्योत्पत्तिप्रसक्तिः 5 कालविलम्बाऽयोगात्। न हि पदार्थस्वरूपनिबन्धनं कार्यं तत्स्वरूपस्य प्रागपि संनिधाने क्रमोत्पत्तिकं युक्तम्। न च नित्यस्याऽविचलितरूपस्य सहकारिसव्यपेक्षस्य स्वकार्यकरणात् सहकारिक्रमात् कार्यक्रमः, नित्यस्य सहकार्यपेक्षाऽयोगात्। न हि स्थायिनो निरतिशयं स्वरूपं बिभ्रणस्य सहकारिणा क्रमवता कश्चिदव्यतिरिक्त उपकारः कर्तुं शक्यः। नापि व्यतिरिक्तोपकारजननात् तस्य सहकारीणि किञ्चित्कराणि भवन्ति, अतिप्रसंगात्। न चाऽकिञ्चित्कारण्यपेक्षन्ते इति युगपत् सकलकार्योदयप्रसक्तिः। न च यौगपद्येनाप्यर्थक्रिया नित्यात् 10

से वह विद्यमान है। यदि अविद्यमान का - तो आकाशपुष्प का भी सम्बन्धप्रयुक्त सत्त्व क्यों नहीं होगा ? वस्तुतः सत्त्व सत्तासम्बन्ध स्वरूप नहीं है यह फलित होता है।

### [ नित्यपदार्थ में स्वरूप सत्त्व अघटमान- पूर्वपक्ष ]

सत्तासम्बन्ध से सत्त्व का जैसे मेल नहीं बैठता, वैसे स्वरूपतः सत्त्व भी संगत नहीं होता क्योंकि स्वप्नदशा में दृष्ट पदार्थात्मा में भी स्वरूप होने से उस में सत्त्व प्रसक्त होगा। स्वरूप किस को 15 कहते हैं - स्पष्ट संवेदन के अवभास को, तो स्वप्न दशा में पदार्थात्मा के स्पष्ट संवेदन का अवभास होता ही है, तो उस में सत्त्व प्रसक्ति क्यों नहीं होगी।

जब सत्तासम्बन्ध और स्वरूप से सत्ता का मेल नहीं बैठता तो आखिर परिशेषन्याय से अर्थक्रियायोग को ही सत्त्व मान लेना अनिवार्य है। वह अर्थक्रियायोग क्रम या यौगपद्य (अन्यतर) का व्याप्य है। नित्य पदार्थ में वे संभव नहीं है क्योंकि वह न तो क्रमिक, न युगपद् अर्थक्रिया कर सकता है। 20 नित्य पदार्थ क्रमिक अर्थक्रिया कर नहीं सकता क्योंकि अपने स्वरूप मात्र से वह कार्य-करण समर्थ होगा तो पहले क्षण में ही सकल भाविकार्यों का सर्जन कर देगा, कालविलम्ब क्यों करेगा ? सिर्फ पदार्थस्वरूपमूलक ही कार्य-सर्जन है तो वह स्वरूप प्रथम क्षण में भी संनिहित होने से क्रमोत्पत्ति युक्तियुक्त नहीं है।

शंका :- नित्य पदार्थ अचल एकरूप ही होता है किन्तु सहकारियों से मिल कर अपना कार्य 25 करता ही होगा। उत्तर :- नित्य पदार्थ के साथ सहकारि-अपेक्षा घट नहीं सकती। निरतिशय स्थायि स्वरूप धारण करनेवाले नित्य पदार्थ पर क्रमिक सहकारी पृथक् उपकार करेगा या अपृथग् ? अपृथग् तो संभव नहीं क्योंकि तब नित्यत्व भंग होगा। पृथक् उपकार से नित्य पदार्थ का कोई रिश्ता न होने के कारण उस के लिये सहकारीवृन्द अकिञ्चित्कर ही रहेगा, अन्यथा वह पृथग् उपकार वस्तुमात्र प्रति साधारण हो जाने से सभी का सहकारी बन जायेगा। यदि अकिञ्चित्कर होने पर भी सहकारी 30 वृन्द अपेक्षित माना जायेगा तो पूर्वोक्त एक साथ सकल कार्योत्पत्ति की आपत्ति नहीं टलेगी। दूसरी और, एक साथ अर्थक्रिया-करण भी नित्य पदार्थ के लिये असम्भव है, क्योंकि प्रथम क्षण में सब



सम्भवति पूर्वोत्तरकालयोरपि तत्स्वभावप्रच्युतेः तावतः कार्यस्योदयप्रसक्तेः — इत्यादि क्षणिकतां व्यवस्थापयद्भिः सौगतैः प्रतिपादितम् न पुनरुच्यते ग्रन्थविस्तरभयात्। ततः क्रमयोगपद्याभ्यामर्थक्रिया नित्याद् व्यावर्त्तमाना क्षणिकतायामेवावतिष्ठत इति कथं न सत्ता क्षणिकताव्याप्ता ?

- असदेतत्— यतो यद्यर्थक्रिया क्रमेणोत्पत्तिमती भिन्ना, हेतोः किमायातं येन तद्भेदाद्धेतोर्भेदो भवेत् ?
- 5 न ह्यन्यभेदादन्यद् भिन्नमतिप्रसंगात्। न च हेतोः प्रतिक्षणमभिन्नरूपत्वे एकस्वभावत्वादर्थक्रियाऽपि युगपद् भवेद्, यतो नायं नियमः एकस्वभावत्वे हेतोरर्थक्रियया युगपद् भवितव्यम्। यदि हि कारणसद्भावेऽर्थक्रिया युगपदुपलभ्येत तदा युगपदुदेति — इति व्यवस्था भवेत्, न च कारणाभेदेऽपि युगपदुदयमासादयन्ती सा ततो लक्ष्यत इत्यनुभवबाधितमर्थक्रियायोगपद्यम्। न च प्रतिक्षणविशाररुताऽविनाभूतः क्रमवदर्थक्रियोत्पादः क्वचिदुपलब्धो येन तदुदयक्रमात् तद्धेतोः प्रतिक्षणभेदः सिद्धिमासादयेत्। न चार्थक्रियाऽपि प्रतिक्षणं भेदवती
- 10 सिद्धा तत् कथं स्वयमसिद्धा हेतोः प्रतिक्षणभेदमवगमयति। न च सौगतानां कालाभावादर्थक्रियाक्रमो

अर्थक्रिया कर देने पर दूसरे क्षण में वह बेकार बन जायेगा, अथवा दूसरे-तीसरे क्षण में भी एक साथ अर्थक्रिया-करण स्वभाव तदवस्थ होने से पुनः पुनः सकल-कार्यकारित्व का दोष खडा होगा।

- यह सब बौद्धों ने क्षणभंग की सिद्धि करते हुए कह दिया है, पुनरुक्ति ग्रन्थविस्तार के भय से नहीं करना है। सारांश, नित्य पदार्थ से क्रमिक-युगपद् अन्यतर प्रकार से अर्थक्रियाकारित्व की व्यावृत्ति
- 15 होने के कारण आखिर यह क्षणिक वस्तु के साथ ही दोस्ती कर पायेगी। तो वह क्षणिकत्व की व्याप्य क्यों नहीं होगी ? (क्षणिकता दीर्घपूर्वपक्ष समाप्त)।

### [ अर्थक्रियाभेद से हेतुभेद असिद्ध - उत्तरपक्ष ]

- उत्तरपक्ष :- पूरा कथन गलत है। पदार्थ और अर्थक्रिया दोनों एक नहीं है भिन्न है। अर्थक्रिया भिन्न है और क्रमिक है, लेकिन इस से पदार्थ का क्या दोष ? पदार्थ से क्या रिश्ता ? जिस से
- 20 कि अर्थक्रियाभेद से पदार्थ(क्षणों) का भेद हो जाय। एक पदार्थ के भेद से अन्य पदार्थ का भेद मानेंगे तो सर्वत्र भेद ही भेद रहेगा, एक व्यक्ति भी अभेदशाली नहीं रह पायेगी। ऐसा नहीं है कि — ‘हेतु (कारण) अनेक क्षणों में अभिन्न एकरूप है तो स्वभाव भी एक होने से युगपद् अर्थक्रिया हो जानी चाहिये’ — हाँ, ऐसी व्यवस्था तब मानी जाती यदि ऐसा नियम होता कि एकस्वभाववाले हेतु से अर्थक्रिया एक साथ ही होनी चाहिये। यदि अनेकक्षणस्थायी किसी एक कारण से एक साथ सब
- 25 अर्थक्रिया दृष्टिगोचर होती तो एक साथ सब अर्थक्रिया हो सकने की स्थापना भी हो जाती, किन्तु कारण के एक रहते हुए भी एकसाथ सब अर्थक्रिया उदित होती हो ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता अतः एक साथ सब अर्थक्रियाओं का उदय का आपादन अनुभवविरुद्ध है। ऐसा भी कहीं नहीं दिखता कि क्रमिक अर्थक्रियोत्पत्ति क्षणभंगुरता की व्याप्य हो जिस से कि अर्थक्रियाक्रमिकोदय से उस के कारण में क्षणविनश्वरता की सिद्धि हो सके।

- 30 [ प्रतिक्षण अर्थक्रिया भेद भी असिद्ध ]

तथा, अर्थक्रिया भी प्रतिक्षण भिन्न भिन्न होने की सिद्ध नहीं है। तो स्वयं असिद्ध अर्थक्रियाभिन्नता कारण के प्रतिक्षणभेद का अवबोध कैसे करा सकती है ? बौद्धों के मत में कालपदार्थ स्वीकृत न

युक्तिसंगतः। यदि ह्यतीतानागतवर्तमानकालभेदसङ्गतिमासादयेयुः कार्याणि तदा क्रमवन्ति भवेयुः। न च कार्यपरम्पराव्यतिरिक्तः कालः सौगतैरभ्युपगत इति भिन्नफलमात्रमेव। न च फलभेदमात्राद् हेतुभेदव्यवस्था कर्तुं शक्या, एकस्यापि प्रदीपादेरेकदाऽनेककार्यकरणात्।

अथ वैशेषिकादिपरिकल्पितः पदार्थव्यतिरिक्तः कालोऽभ्युपगम्यते, तथापि तस्यैकत्वाद् न तद्भेद-  
निमित्तः कार्यभेदो युक्तिसंगतः। न चैककालानुषङ्गात् कार्याणि क्रमवन्ति भवन्ति यौगपद्याभावप्रसक्तेः। 5  
न कालस्यैकत्वेऽपि क्रमवद्वर्षातपादिसम्बन्धात् क्रमः, इतरेतराश्रयप्रसक्तेः। तथाहि— कालक्रमाद् वर्षादिः  
क्रमः तत्क्रमाच्च कालक्रमः इति कथं नेतरेतराश्रयत्वम् ? न च कालक्रमहेतुरपरः कालोऽभ्युपगमविषयः  
अनवस्थाप्रसक्तेः कालक्रमनिमित्तापरकालाभ्युपगमाऽनिष्ठितेः। न च कालः स्वरूपादेव क्रमवान् कार्याणामपि  
स्वरूपत एव क्रमवत्त्वप्रसक्तेः, एवं च कालपरिकल्पनावैयर्थ्यप्रसक्तिः। तत्र कालाभ्युपगमेऽपि कार्यक्रमो  
युक्त्या सङ्गच्छत इति कथं कार्यक्रमो हेतुभेदमवगमयति ? न च कार्यक्रमाभ्युपगमेऽपि हेतुरनित्यता- 10  
मासादयतीत्युक्तम्। अथ क्रमेण कार्योदयेऽनेककर्तृत्वसङ्गतेरनित्यता, ननु कार्यक्रमदर्शनात् यदि नाम  
कारणस्य क्रमः, स्वभावभेदस्तु कथं सिध्यति ?

होने से कालभेदमूलक अर्थक्रियाक्रम युक्तिसंगत नहीं है। बौद्ध मत में यदि कार्यकलाप अतीत-वर्तमान-  
भाविकाल भेद से अनुबद्ध होने का सिद्ध हो तभी कार्यों में (अर्थक्रिया में) क्रमिकता सिद्ध हो सकती  
है, किन्तु कार्यसन्तान से पृथक् काल की सत्ता बौद्धमत में मान्य नहीं है अतः उन के मत में तो 15  
कालविहीन भिन्न भिन्न कार्यवृन्द ही शेष रहा। कार्यभेद रहे तो भले रहे किन्तु कार्यभेद से कारण-  
भेद की स्थापना करना अशक्य है। दिखता है कि प्रदीप (आदि) भाव एक होते हुए भी कज्जल,  
प्रकाश, वर्तिध्वंसादि अनेक कार्य करता है।

### [ काल स्वीकारने पर भी कार्य भेद अयुक्तिक ]

यदि वैशेषिकादिदर्शनप्ररूपित पृथ्वी आदि पदार्थ से भिन्न काल तत्त्व का स्वीकार किया जाय 20  
तो उस से कालभेदमूलक कार्यभेद सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वह काल एक ही है। एककाल के संसर्ग  
से कार्यों की क्रमिकता सिद्ध नहीं होती, अन्यथा यौगपद्य (समकालीन) का सर्वथा उच्छेद हो जायेगा  
क्योंकि एक काल समस्त कार्यों में क्रम प्रयुक्त करेगा। शंका :- काल एक होने पर भी वर्षाऋतु - ग्रीष्मऋतु  
आदि के क्रम सम्बन्ध से काल का क्रम सिद्ध हो जायेगा। उत्तर :- ऐसा मानने पर अन्योन्याश्रय दोष  
होगा। देखिये— कालक्रम से वर्षा आदि में क्रम सिद्ध होगा और वर्षादि के क्रम से कालक्रम सिद्ध 25  
करेंगे तो अन्योन्याश्रय क्यों नहीं होगा ? यदि कालक्रम वर्षादिमूलक न मान कर अन्यकाल की कल्पना  
कर के उस से प्रथम काल में क्रम संगत करेंगे तो दूसरे के लिये तीसरे काल की... चौथे काल की...इस  
तरह अनवस्था दोष प्रसक्त होगा। कारण :- कालक्रम की सिद्धि के लिये आप के अन्य अन्य काल  
स्वीकार का अन्त नहीं होगा। यदि कहें कि — ‘काल स्वतः क्रमिक है’ — तब तो कार्यों का क्रम  
भी स्वतः ही बन जायेगा, तो फिर कार्यक्रम के द्वारा कारणभेद का अनुमान कैसे हो सकता है ? 30  
पहले तो हमने कह दिया है कि कार्यों का क्रम बन जाने पर भी कारण की अनित्यता सिद्ध नहीं  
हो सकती। यदि कहें — ‘कार्यों का क्रमिक उदय अनेककर्तृत्व के साथ ही संगत होता है अतः अनित्यता

- न च क्रमेण कार्यजननेन जनकताऽजनकत्वे भवत इति स्वभावभेदलक्षणमनित्यत्वं सिध्यति, यतः क्रमोपेतकार्योपलम्भाद् हेतोर्जनकाऽजनकस्वभावं भेदं कल्पना अध्यवस्यति। न च तत्प्रदर्शितस्वभावभेदाद् भावा भिद्यन्ते तथाऽभ्युपगते वा कल्पना भावानामेकत्वमध्यवस्यन्त्युदयतीति नित्यता तेषां भवेत्। कल्पनाप्रदर्शितश्च भावानां जनकत्वऽजनकत्वलक्षणः स्वभावभेदः। तथाहि— उदितप्रयोजनापेक्षया कल्पना
- 5 भावानां जनकत्वमध्यवस्यति अनुदितफलापेक्षया तु तत्रैवाऽजनकत्वं सैवाध्यारोपयति, न च कल्पनाप्रदर्शितस्वभावभेदाद् भावानां जनकत्वमध्यवस्यति अनुदितफलापेक्षया तु तत्रैवाऽजनकत्वं सैवाध्यारोपयति, न च कल्पनाप्रदर्शितस्वभावभेदाद् भावानां भेदो युक्तः अन्यथा परोपजनितकार्याऽपेक्षयैकस्यैव क्षणस्याऽजनकत्वम् स्वोत्पाद्यकार्यापेक्षया तु जनकत्वं तदैव तस्याऽसौ व्यवस्थापयतीति युगपदेकस्य क्षणस्य स्वरूपभेदप्रसक्तिः। अथाऽत्राभेदप्रतिभासः कल्पनाप्रदर्शितं भेदं बाधते तर्हि क्रमेण कार्यजननेऽपि कल्पनाप्रदर्शितो
- 10 जनकत्वाऽजनकत्वलक्षणः स्वभावभेदोऽभेदनिर्भासेन किं न बाध्यते ? न च क्रमेण कार्योत्पत्तौ हेतुभेदः प्रतिक्षणमवभात्येव, भ्रान्त्या तु न निश्चीयत इति वक्तव्यम् प्रतिक्षणं भेदसंवेदनस्याननुभवात्, अननुभवे सिद्ध है।' — यह कथन गलत है। कारण :- कार्यों का क्रम देखने के आधार पर कारणों का क्रम सिद्ध होने पर भी एक स्थायी कारण में स्वभावभेद कैसे सिद्ध होगा ?

### [ कल्पनासूचित स्वभावभेद भावभेदक नहीं ]

- 15 पूर्वपक्षी :- स्वभावभेद इस तरह होगा — क्रमिक कार्यजनन करने पर कार्योत्पत्तिक्षण में जनकत्व, पूर्वोत्तरक्षण में अजनकत्व — इस प्रकार स्वभावभेदात्मक अनित्यत्व सिद्ध है।
- उत्तरपक्ष :- नहीं, यह तो कल्पनाविलास है। क्रमिक कार्यों को देख कर कल्पना कारण में जनक-अजनक स्वभाव भेद को मान लेती है। वास्तव यह है कि कल्पना प्रदर्शित स्वभावभेद से भावभेद सिद्ध नहीं हो जाता। अरे ! ऐसा मानेंगे तब तो पूर्वोत्तर भावों के एकत्व को ग्रहण करती हुई
- 20 कल्पना जाग्रत होने पर भावों की नित्यता सिद्ध हो सकती है। भावों में जो जनकत्व-अजनकत्वरूप स्वभावभेद कहा जाता है वह तो कल्पनासूचित है। देखिये — प्रयोजन प्राप्त होने पर कल्पना भावों की जनकता निश्चित कर लेती है, अनपेक्षित प्रयोजन के अवसर में वही कल्पना भावों में अजनकत्व स्वीकार लेती है। अत एव कल्पनागृहीत स्वभावभेद से भावों में भेद मान लेना युक्तिसंगत नहीं है, अन्यथा एक ही क्षण में एक साथ दो विरोधिधर्म के अध्यवसाय से क्षणस्वरूपभेद प्रसक्त होगा, देखिये —
- 25 एक ही क्षण में स्वजन्य कार्यापेक्षया जनकत्व, परजन्य कार्यापेक्षया अजनकत्व — इस प्रकार एक ही क्षण में स्वभावभेद कल्पना से निश्चित किया जा सकता है। यदि कहें कि — यहाँ अभेद का (एक क्षण में अभेद का) प्रतिभास कल्पना गृहीत भेद का बाध करता है, तो कपालादि में अभेदप्रतिभास से, क्रमिककार्यकारि भावों में जनकत्व-अजनकत्वस्वरूप स्वभावभेद भी क्यों बाधित नहीं होगा ? ऐसा मत कहना — क्रमशः कार्योत्पत्ति होते समय प्रतिक्षण कारणभेद भासित होता ही है, भ्रान्ति के कारण
- 30 उस का निश्चय नहीं हो पाता है — निषेध इसलिये कि प्रतिक्षण भेदसंवेदन का किसी को अनुभव नहीं होता, अनुभवसिद्ध न होने पर भी उसकी कल्पना करने पर तो शशसींगादि की कल्पनारूप अतिरेक होगा — पहले यह कहा जा चुका है। निष्कर्ष, अर्थक्रिया के भेद से कारणभेद सिद्ध नहीं

तु तत्कल्पने अतिप्रसक्तिरित्युक्तमिति नार्थक्रियाभेदात् कारणभेदः अन्यभेदस्याऽन्याभेदकत्वात्।

किञ्च, यदि नाम क्रम-योगपद्याभ्यां नित्यादर्थक्रिया व्यावृत्ता तथापि न ततः क्षणक्षयसिद्धिः। तथाहि— यथैषाऽक्षणिकेभ्यो व्यावृत्तत्वात् क्षणिकत्वं साधयति तथा क्षणिकेभ्योऽपि व्यावृत्तत्वादक्षणिकतां साधयेत्। न च क्षणिकेभ्योऽस्या अव्यावृत्तिः, यतः क्षणिका अपि कार्यमुत्पादयन्तः किं केवला एकमुत्पादयन्ति, उतानेकम् ? तथा समुदिता अपि तदेकमनेकं वा ? न तावदेक एकमुत्पादयत्यनभ्युपगमात् अदर्शनाच्च। 5  
तथाहि— एक एवाऽग्निः इन्धनविकार-धूम-भस्मादिकमनेकं कार्यमुत्पादयन्नपलभ्यत इति नैक एकमेव जनयतीति नियमः, 'न वै किञ्चिदेकं जनकम्' [ ] इत्यभ्युपगमविरोधश्चैकस्यैकजनकत्वे। ▼नाप्येकमने-कोत्पादकम् सामग्या एव जनकत्वाभ्युपगमात्, अनेकस्मात् कार्यात्पत्युपलब्धेश्च। नाप्यनेकमेकोत्पादकम् कार्यस्यानेकस्मादुपजायमानस्य नानात्वापत्तेः। न हि विज्ञानवाद्यभ्युपगतकार्यव्यतिरेकेण बाह्यं वस्तु सामग्रीतः उपजायमानं विज्ञानं वा एकं भवति। सौत्रान्तिक-वैभाषिकमतेन सञ्चितेभ्यः परमाणुभ्यः सञ्चितानां 10  
तेषामुत्पत्तेः सञ्चितपरमाणुव्यतिरेकेणाऽपरस्य भिन्नस्याऽभिन्नस्य वा सञ्चयस्य वस्तुसतोऽभावात्। यस्य होता, क्योंकि एक का (कपालादि का) भेद अन्य (तन्तु आदि) के भेद का कारक नहीं बन सकता।

### [ क्षणिकत्व के साथ अर्थक्रिया की असंगति ]

और एक बात :- यदि नित्य वस्तु में क्रमिक/एकसाथ अर्थक्रिया-संगति नहीं होती, तथापि इतने मात्र से क्षणिकत्व की सिद्धि किस तरह हो गयी ? देखिये— अक्षणिक वस्तु में जैसे अर्थक्रिया नहीं 15  
घटती इसलिये आप क्षणिकत्वसिद्धि की आशा रखते हैं, इसी तरह क्षणिक वस्तु में वह न घटने से अक्षणिकत्व की सिद्धि भी हो सकती है। 'क्षणिकों में वह घटती है' ऐसा है नहीं। कारण :- प्रश्न — क्षणिक भावों १क्या केवल (यानी एक भाव) स्वयं ही एक कार्य को उत्पन्न करते हैं ? या २अनेक कार्य को ? ३क्या समुदित (अनेक) हो कर एक कार्य को उत्पन्न करते हैं या ४अनेक कार्य को ? किसी १एकमात्र व्यक्ति से एक कार्य की उत्पत्ति मान्य नहीं है क्योंकि वैसा कभी देखा नहीं। देखो— 20  
एक ही अग्नि इन्धन का रूपान्तर, धूम, भस्म आदि अनेक कार्यों को उत्पन्न करते हुए दिखते हैं अतः 'एक व्यक्ति से एक कार्य का उत्पाद' ऐसा नियम नहीं बना सकते, क्योंकि "कोई एकउत्पादक नहीं" [ ] आप की इस मान्यता का 'एक से एक का जनन' मानने पर विरोध प्रसक्त होगा।

### [ दूसरे-तीसरे विकल्पों का निरसन ]

२एक से अनेक की उत्पत्ति, ऐसा भी नहीं है, सामग्री ही उत्पादक होती है ऐसी मान्यता होने 25  
से एवं कार्य की उत्पत्ति अनेक से ही, दृष्टिगोचर होने से। ३'अनेक से एक की निष्पत्ति' यह तीसरा विकल्प भी योग्य नहीं, क्योंकि अनेक से उत्पन्न कार्यों में भी भेद की आपत्ति होगी। विज्ञानवादी स्वीकृत कार्य के अलावा सामग्री से जायमान वस्तु अथवा विज्ञान एकरूप नहीं हो सकता। तथा सौत्रान्तिक - वैभाषिक बौद्धमतानुसार तो परमाणुपुञ्ज से परमाणुपुञ्ज की ही उत्पत्ति होती है, समुदित परमाणुपुञ्ज को छोड़ कर भिन्न या अभिन्न अन्य किसी समुदाय (अवयवी) की वास्तव सत्ता नहीं 30

▼. न तु स्वोपादानमात्रभावि किञ्चित् कार्य सम्भवति, सामग्रीतः सर्वस्य सम्भवात्। यथोक्तम् - 'न किञ्चिदेकमेकस्मात् सामग्या सर्वसम्भवः।।' (तत्त्वसं. पञ्चिका पृ.११३ पं.१२) इति भूतपूर्वसम्पादकयुगलम्।)

च संवृत्ति सत एकता घटादेः न तस्य जन्यता, विज्ञानमपि विषयाऽऽलोकमनस्कारादिसामग्रीप्रभवं नैकं युक्तम्। नापि तद् एकरूपमभ्युपगम्यते ग्राह्य-ग्राहकाकारद्वयस्य तस्य संवेदनात्।

न चैकस्य रूपद्वयं बोधाऽबोधरूपमुपपन्नम्। तथाहि— अहंकारास्पदः सुखादिरूपो ग्राहकाकारः अन्तस्तद्वैपरीत्येन च ग्राह्याकारोऽपरः एव प्रतिभाति, तथा च स्वसंवेदनसिद्धभेदत्वात् रूप-रसयोरिव तयोनैकत्वम्। अथानयोर्भेदावभासो भिन्नयोरिव न पुनर्भिन्नयोरेव। तदुक्तम्— ‘ग्राह्य-ग्राहकसंविद्धभेदवानिव लक्ष्यते’<sup>▼</sup> [प्र.वा.२/३५४] इति। नैतदेवम्, बाह्यार्थवादत्यागप्रसक्तेः, सौत्रान्तिकमतस्य वैभाषिकमतस्य चात्र विचारयितुं प्रक्रान्तत्वात् ज्ञानवादस्य च निषेत्स्यमानत्वात्। न च ग्राह्य-ग्राहकाकारयोः संवृतत्वम्, स्वकारणा-  
5 न्वय-व्यतिरेकानुविधानात्। ग्राहकाकारो हि बोधरूपतया समनन्तरप्रत्ययान्वय-व्यतिरेकानुविधायी, विषया-  
कारोऽपि विषयस्यान्वय-व्यतिरेकावनुविधत्ते। एवं च रूप-रसादेरिव नानयोरेकता। न च निराकारमभिन्न-

10 होती। तथा, बौद्धमत में जो काल्पनिक-सत् घटादि का एकत्व यद्यपि स्वीकृत है किन्तु वहाँ घटादि कार्य सत् नहीं है। नीलादि विषय, आलोक, अन्तःकरण (मन) आदि सामग्री से जन्य विज्ञान का भी एकत्व युक्तिसिद्ध नहीं है। विज्ञान के भी ग्राह्य-ग्राहक दो आकार संवेदन सिद्ध होने से वह भी एकरूप नहीं माना जा सकता।

### [ अनेक से अनेक का सृजन-चौथा विकल्प सदोष ]

एक वस्तु में बोध (ग्राहक) और अबोध (ग्राह्य) ये दो आकार (= दो रूप) युक्ति घटित नहीं  
15 होते। देख लो — ग्राहकाकार भीतर में अहंकारमय एवं सुखादिस्वरूप (ज्ञानमय) होता है, उस से विपरीत ग्राह्य (नीलादि) आकार उलटा ही प्रतीत होता है। फलतः रूप-रस के भेद की तरह ग्राह्य-ग्राहक आकारों में भेद स्वसंवेदनसिद्ध होने से उन में एकत्व नहीं हो सकता। शंका :- ग्राह्य-ग्राहक में जो भेदप्रतिभास होता है उसे मानों कि भिन्न हो — इस प्रकार से जरूर होता है, किन्तु वस्तुतः भिन्न का ही हो —  
20 ऐसा नहीं है। कहा भी है [ ] ग्राह्य-ग्राहक संवेदन में ‘परस्पर भिन्न हो’ ऐसा लक्षित होता है। उत्तर :- ऐसा नहीं है। यदि ग्राह्य-ग्राहक आकार वास्तव में भिन्न नहीं है तो सिर्फ ग्राहकाकार ही फलतः सिद्ध होने से बाह्यार्थ का परित्याग प्राप्त होगा। विज्ञानवादी भले यहाँ इष्टापत्ति कर ले, किन्तु प्रस्तुत में सौत्रान्तिक-वैभाषिक दो मतों की बात चल रही है, उन में तो बाह्यार्थ-परित्याग की आपत्ति आ कर रहेगी। तथा आगे चल कर इष्टापत्ति कर लेनेवाले विज्ञानवाद का भी निरसन किया जानेवाला है।

### [ ग्राह्य-ग्राहक आकार काल्पनिक नहीं ]

25 तथा, ग्राह्य-ग्राहक आकारों में शून्यवादी यहाँ ग्राह्य-ग्राहक आकारों को काल्पनिक नहीं कह सकता, क्योंकि ये दोनों कार्यभूत आकार कारणों के अन्वय-व्यतिरेक का अनुसरण करनेवाले हैं। देख लो — ग्राहकाकार बोधात्मक स्वरूप से अपने पूर्वकालीन समनन्तरप्रत्यय के अन्वयव्यतिरेक के अनुगामी हैं और विषय (ग्राह्य) आकार विषय नीलादि के अन्वय-व्यतिरेक के अनुगामी हैं, अतः रूप-रस आदि

▼. अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मविपर्यासितदर्शनैः - इत्यस्य पूर्वार्धः प्रमाणवार्तिके। मनोरथनन्दिटीकायाम् - परमार्थतोऽविभागो = भेदरहितोऽपि बुद्ध्यात्मद्वयवासनया विपर्यासितं = विभागोपदर्शितं दर्शनं येषां तैः = अतत्त्वदर्शिपुरुषैर्ग्राह्य-ग्राहकसंविद्धभेदं परस्परं भेदः तद्वानिव लक्ष्यते।

स्वभावमेकसामग्रीजन्यं ज्ञानं सम्भवति पराभ्युपगमेन निराकारत्वेन तस्य विषयसंवेदनत्वानुपपत्तेः। तस्मान्नैकमनेकजन्यमिति स्थितम्।

नापि पूर्वसामग्रीत उत्तरा सामग्री प्रभवतीति बौद्धाभ्युपगमात् अनेकमनेकमुत्पादयतीति वक्तव्यम्, यतः कारणायत्तः कार्याणां स्वभावः, अन्यथा निर्हेतुकत्वं तस्य स्यात्। पूर्वसामग्री च सर्वेषां सामग्र्यन्तर्भूतानां समग्राऽजनकत्वेन व्यवस्थितेति कथं कार्यविशेषस्य सामग्र्यन्तर्गतस्यैकस्वभावता ? एवं च रूपस्य ज्ञान- 5 रूपतापत्तिर्ज्ञानजन्यत्वात् ज्ञानस्वरूपवत्, ज्ञानस्यापि रूपस्वरूपतापत्तिः रूपजन्यत्वात् रूपस्वरूपवत् — इत्यनेकत्वव्याघातः। न वा किञ्चित् रूपम् प्रतिनियतस्वरूपाभावात्। अथाऽवान्तरकारणसामग्रीविशेषसम्भवात् तज्जन्यस्य कारणभेदादेव स्वभावानानात्वमिति नायं दोषः। तथाहि— चक्षुरूपालोकमनस्कारादिषु विज्ञानादि- कार्योत्पादकेषु मनस्कारो विज्ञानमुपादानत्वेन जनयति शेषकार्याणि सहकारित्वेन, एवं रूपादिकमपि रूपादि- कार्यमुपादानत्वेन शेषाणि सहकारित्वेनेत्यवान्तरसामग्रीभेदेन सिद्धः तज्जन्यानां स्वभावभेदः। नन्वत्रापि 10

की तरह इन दोनों में अभेद नहीं हो सकता। तथा एकसामग्री(= अनेक)जन्य ज्ञान अभेदानुविद्ध निराकारस्वरूप नहीं हो सकता, क्योंकि यदि विज्ञानवादीबौद्ध कथनानुसार वह निराकार (और एकरूप) होगा तो निराकार होने से साकार विषय का संवेदी वह नहीं हो सकेगा। (ज्ञान तो साकार ही संविदित होता है)। अतः एक के जनक अनेक नहीं हो सकते — यह सार निकला।

### [ अनेक से अनेक की उत्पत्ति - चतुर्थविकल्प निरसन ]

15

अनेक से अनेक की उत्पत्ति यह विकल्प भी मिथ्या है क्योंकि बौद्ध विद्वान् तो पूर्व सामग्री से उत्तर सामग्री की उत्पत्ति को मानते हैं। कारण यह है कि कार्यों के स्वभाव का मूल, कारण होता है। अन्यथा कार्यस्वभाव को निर्हेतुक मानना पड़ेगा। कारणीभूत पूर्व सामग्री, सामग्रीअन्तर्भूत समस्त भावों के समग्रस्वरूप से समग्र कार्यों की जनक नहीं होती यह निर्विवाद है, तो सामग्री-अन्तर्भूत कार्यविशेष की एकस्वभावता कैसे हो सकती है ? फलतः पदार्थरूप और ज्ञान में अन्योन्य सांकर्य इस तरह 20 प्रसक्त होगा — ज्ञान जन्य होने से ज्ञानस्वरूप की तरह पदार्थरूप में ज्ञानस्वरूपता प्रसक्त होगी, तथा ज्ञान में पदार्थरूपजन्यता होने से पदार्थस्वरूप की तरह पदार्थरूपता (नीलादिविषयरूपता) प्रसक्त होगी, इस प्रकार कारण-कार्य (विषय और ज्ञान) में एकरूपता प्रसक्त होने पर अनेकत्व को व्याघात पहुँचेगा। अथवा नियत एकस्वरूपता न होने से पदार्थमात्र नीलरूप ही मान लेना पड़ेगा।

### [ कारणभेद से कार्य में भी अनेक स्वभाव की शंका और उत्तर ]

25

शंका :- दीपक-प्रकाशादि जनक एक तैलादि सामग्री में मषी, वर्तिहास आदि की जनक अवान्तर अनेक विशिष्ट सामग्री अन्तर्भूत होती है, अतः उस सामग्री से जन्य कार्य कारणभेदाधीन विविध स्वभाव युक्त हो सकता है, कोई पूर्वोक्त दोष अब रहता नहीं। देखिये — विज्ञानादि कार्य के जनक चक्षु है रूप है आलोक है मनस् है — तो इस में मन विज्ञानजनक है क्योंकि वह उपादान है, विज्ञान के उपरान्त जो भी वचनादि कार्य हैं उस में मन उपादान नहीं किन्तु सहकारी होता है। इसी तरह 30 रूपादि भी रूपादि कार्य के उपादानतया कारण होते हैं, शेष ज्ञानादि कार्यों के प्रति सहकारितया। इस तरह अवान्तर सामग्री भेद से, सामग्रीजन्य कार्य में स्वभाव भेद सिद्ध होता है।

किं येन रूपेण मनस्कारो ज्ञानस्य जनकः तेनैव चक्षुरादिकमपि जनयति, आहोस्वित् रूपान्तरेण ? यदि तेनैवेति पक्षः तदा चक्षुरादेर्ज्ञानत्वापत्तिः।

- तथाहि- सकलस्वगतविशेषाधायकत्वं कार्ये उपादानत्वम् तद्रूपेण चेत् प्रवृत्तो मनस्कारश्चक्षुरादिजनने कथं न चक्षुरादेर्ज्ञानरूपतापत्तिः ? अथ स्वभावान्तरेण चक्षुरादिजननेऽसौ प्रवर्तते। नन्वेवं स्वभावभेदाद्
- 5 मनस्कारस्य भेदापत्तिः स्वभावभेदलक्षणत्वाद् वस्तुभेदस्य। अथ स्वसंविदि एकत्वेनाऽवभासात् मनस्कारक्षणस्यैकत्वमुपादान-सहकारिशक्तिभेदेऽपि। नन्वेवमक्षणिकस्यापि तदतत्कालभाविकार्यजनकत्वाऽजनकत्व-भावभेदेऽप्येकत्वेनाध्यक्षे प्रतिभासनात् कथं नैकत्वम् ? अथ न स्वभावभेदाद् भावभेदः अपि तु विरुद्धस्वभावभेदात् तदतत्कार्यजनकत्वाऽजनकत्वे चाऽक्षणिकस्य विरुद्धौ स्वभावाविति तस्य भेदः। नन्वेवं मनस्कारक्षणस्यापि भेदप्रसक्तिः उपादानत्व-सहकारित्वलक्षणयोः शक्त्योर्मनस्कारात् परस्परतश्च भेदात्। अथ न शक्तीनां
- 10 शक्ति-शक्तिमतोर्वा भेदः, तथापि विरुद्धस्वभावद्वययोगात् भेद एव। यतो मनस्कारस्योपादेयज्ञानं प्रति यैव जनिका शक्तिः सैव चक्षुरादिकं प्रति, ततश्चक्षुरादिकं प्रति जनकस्वभावोऽजनकस्वभावश्च मनस्कारः

उत्तर :- यहाँ प्रश्न यह है कि मन जिस स्वभाव से ज्ञान का जनक है क्या उसी स्वभाव से चक्षुआदि को जन्म देता है या अन्य स्वभाव से ? यदि उसी स्वभाव से, तब तो चक्षु आदि में भी ज्ञानरूपता की आपत्ति होगी।

### 15 [ चक्षु आदि में ज्ञानरूपता की, मनस्कार में भेद की आपत्ति ]

देखिये — उपादानत्व यदि कार्य में सकल स्वनिष्ठ विशेषों का आधान-कारित्वरूप है, और उसी रूप से मनस्कार चक्षुरादि उत्पन्न करेगा तो चक्षु आदि में ज्ञानरूपता की आपत्ति क्यों नहीं होगी ? यदि उस रूप से नहीं अन्य रूप (= स्वभाव) से नेत्रादि के सृजन के लिये मनस्कार प्रवृत्त होगा तब तो मनस्कार में भेदापत्ति होगी क्योंकि वस्तुभेद स्वभावभेदस्वरूप ही होता है।

- 20 शंका :- उपादानशक्ति — सहकारिशक्ति भिन्न होने पर भी स्वसंवेदन में मनस्कार एकत्वरूप से ही भासित होता है इस लिये उस का एकत्व अक्षुण्ण रहेगा। उत्तर :- अच्छा ! इसी तरह तत्कालभाविकार्यजनकत्व — अतत्कालभाविकार्यअजनकत्व स्वरूप भेद के होते हुए भी अक्षणिक नीलादि एकरूप से प्रत्यक्ष में भासित होने से, नीलादि का एकत्व क्यों नहीं होगा ? शंका :- सिर्फ स्वभावभेद वस्तुभेदप्रयोजक नहीं होता, विरुद्धस्वभाव का भेद वस्तुभेदप्रयोजक होता है। तत्कार्यकारित्व और
- 25 अतत्कार्यकारित्व ये दो एक अक्षणिक नीलादि पदार्थ में विरुद्ध स्वभाव है, अतः उस एक नीलादि में भेद प्रसक्त होगा। उत्तर :- अरे ! ऐसे तो मनस्कारक्षण में भी भेद प्रसक्त होगा क्योंकि उपादानत्व शक्ति और सहकारित्व शक्ति मनस्कार से तो भिन्न है एवं परस्पर भी विरुद्ध होने से भिन्न है। शंका :- शक्ति और शक्तिमान का भेद नहीं होता, एवं शक्तियों में परस्पर भेद नहीं होता। उत्तर :- तथापि विरुद्ध दो स्वभाव के संभवित योग से भेद प्रसक्त होगा ही। कारण :- मनस्कार में उपादेय ज्ञान
- 30 के प्रति जो जनक शक्ति है वही चक्षु आदि के प्रति है, फलतः चक्षुआदि के प्रति मनस्कार में जनकस्वभाव-अजनकस्वभाव ऐसे दो विरुद्ध स्वभाव प्रसक्त होगा, यहाँ चक्षु आदि के प्रति जो सहकारिस्वभाव है वह सकल स्वनिष्ठ विशेषों का आधानकारी न होने से अतत्स्वभाव (अनुपादानत्व) रूप बन गया।

प्रसक्तः, चक्षुरादिजननात् तत्स्वभावः सकलस्वगतविशेषानाधायकत्वादतत्स्वभावः। न हि जनकत्वादन्त्यत् सकलस्वगतविशेषाधायकत्वम्। नापि मनस्काराज्जनकत्वम्, धर्म-धर्मिणोरभेदाभ्युपगमात्। अतः शक्ति-शक्तिमतोरभेदपक्षे तदतत्स्वभावत्वमेकदैकस्यैकस्मिन् जन्ये पूर्वोक्तनीत्या प्रसक्तम् तेन विधि-प्रतिषेधरूप-विरुद्धधर्मसंसर्गाद् भेदः प्रसक्तः।

भेदपक्षेऽप्युपादानत्व-सहकारित्वयो रूप-रसवत् तद्भावनियतभावत्वेनैककालत्वेऽपि भेदात् मनस्कार- 5 लक्षणस्य भावस्य भेदः सिद्ध एव। न चैवमापादितभेदस्याप्यबाधितैकावभासिप्रत्ययविषयत्वात् न नानात्वम् अक्षणिकस्यापि पूर्वक्षणग्रहणपरिणामाजहद्वृत्तौत्तरक्षणग्रहणपरिणामवदध्यक्षेणैकतया ग्रहणात् तदतज्जनका-ऽजनकस्वभावभेदेऽपि न नानात्वमित्युक्तत्वात्। न च शक्ति-शक्तिमतोः शक्त्योश्चाभेदे 'इदमुपादानम् इदं च सहकारिकारणम्' इति विभागः क्षणिकपक्षे भवेत्। यदपि 'अन्त्यावस्थायां सर्वेषां प्रत्येकमभिमतकार्योत्पाद- 10 कत्वम् अन्यसंनिधिस्तु स्वहेतुप्रत्ययसामर्थ्यात् नोपालम्भमर्हति। न च भिन्नकार्योत्पत्तिः सर्वेषां तस्यैव जनने सामर्थ्यात् पर्यायाऽनपेक्षणाच्च नोत्पन्नोत्पादोऽपि' इत्युक्तम् तदपि प्राक्तनन्यायेन निरस्तम्।

आप के मत से सकल स्वनिष्ठ विशेषाधानकारित्व जनकत्व से भिन्न तो नहीं है। अतः विरुद्ध स्वभाव प्रसक्ति होगी। तथा जनकत्व स्वभाव मनस्कार से भी भिन्न नहीं है, क्योंकि आपने धर्म-धर्मों में भी भेद नहीं माना है। अतः शक्ति और शक्तिमान में अभेद मानने पर, एक ही मनस्कार में एक ही चक्षुआदि कार्य के प्रति एक काल में ही तत्स्वभावत्व और अतत्स्वभावत्व पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार 15 प्रसक्त है। इस प्रकार, विधिरूप एवं निषेधरूप विरुद्धधर्म संसर्ग के कारण भेदापत्ति प्रसक्त है।

### [ धर्म-धर्मों शक्ति-शक्तिमान् का भेदपक्ष असंगत ]

धर्म-धर्मों का भेद पक्ष मानेंगे तो, जैसे रूप और रस दोनों में 'एक है तो दूसरा अवश्य होगा' ऐसा अविनाभाव होने पर भी, यानी समकालीनता के रहने पर भी भेद होता है, उसी तरह उपादानत्व और सहकारित्व समकालीन होने पर भी उन का भेद अक्षुण्ण रहने पर, मनस्काररूप भाव में भी 20 भेद सिद्ध होगा ही। शंका :- भेद का कितना भी आपादन किया जाय, किन्तु निर्बाध एकत्वदर्शकप्रतीति का विषय होने से मनस्कार एक ही है, अनेक नहीं है। उत्तर :- तो हमने भी पहले कह दिया है — अक्षणिक पदार्थ में तज्जनक-अतज्जनक स्वभावभेद से भेदापादन कितना भी किया जाय, किन्तु पूर्वक्षणग्रहणपरिणाम को न छोड़ते हुए उत्तरक्षणग्रहणपरिणाम से अनुबद्ध प्रत्यक्ष अपने विषय को एकत्वरूप से ग्रहण करता है अतः उस में (अक्षणिक में) कोई भेद नहीं है। तथा, क्षणिकवाद में शक्ति-शक्तिमान 25 और शक्तियों का अभेद मानेंगे तो 'यह है उपादान और यह है सहकारी' ऐसा विभाग भी पूर्ण अभेद के कारण संगत नहीं हो सकेगा। यह जो आशंका है — 'सभी भाव अपनी अन्त्यावस्था (एक सन्तान का चरम क्षण) में अपने अपने कार्य को उपादानविधया उत्पन्न करते हैं। वहाँ सहकारिक्षण भी अपने अपने हेतु के बल से, बिना बुलाये हाजिर हो जाते हैं तो उन का क्या दोष ? सब मिलते हैं सब कार्य करते हैं किन्तु पृथक् पृथक् कार्य उत्पन्न नहीं होते, एक ही कार्य उत्पन्न होता 30 है क्योंकि उन सभी का एक साधारण कार्य करने का ही सामर्थ्य होता है। तथा, एक ने जो उत्पन्न किया, दूसरे ने भी उसे फिर से, तीसरे ने भी उसे फिर से उत्पन्न किया... इस प्रकार 'उत्पन्न का



किञ्च, अत्र पक्षे उष्णाद् गर्भगृहं प्रविष्टस्य मनस्कारादिः कारणकलापश्चक्षुर्ज्ञाने समर्थः परस्परनिर-  
पेक्षतयेति यथा मनस्कारस्य चक्षुर्ज्ञानं प्रत्युपादानता तस्यैवैकस्य तज्जनने सामर्थ्यात् तथाऽऽलोकादेरपीति  
दर्श(कथं ?)न क्षतिः। प्रतीतिविरुद्धं चैकस्यैवोत्पादकत्वम्। न चैकैकस्मात् कार्यात्पादः कदाचिदप्युपलब्धः  
इति कथं न तदभ्युपगमः प्रतीतिविरुद्धः ? न च प्रकारान्तरेण क्षणिकानां कार्यकरणसम्भव इति क्षणिके-  
5 भ्योऽपि प्राक्तनन्यायेन कार्यकरणसामर्थ्यं निवृत्तमक्षणिकत्वं प्रसाधयेत्, श्रावणत्ववद् बोभयव्यावृत्तत्वात्  
संशयहेतुर्भवेत्। नाप्येतद् वक्तव्यम् उक्तप्रकारेणाऽक्षणिकेष्वप्यर्थक्रियानुपपत्तिरिति निर्हेतुकं सकलं जगद्  
भवेत्, अक्षणिकपक्षे बहुभ्यः समवायिकारणत्वादिरूपेभ्य एकमभिन्नं च वस्तुत्पद्यत इत्यभ्युपगमात्तत्र च  
विरोधाभावादित्युक्तत्वात्।

यदपि 'सत्त्वस्वरूपमुपवर्णयता प्रतिपादितमर्थक्रियालक्षणं भावानां सत्त्वम्' इति तत्र किमर्थक्रियातः  
10 सत्त्वम् आहोस्वित् सत्त्वादर्थक्रिया ? तत्र यद्यर्थक्रियातः सत्त्वं तदा प्राक् सत्त्वव्यतिरेकेणापि तस्या उत्पत्ते-  
निर्हेतुका सा। अथ सत्त्वादर्थक्रिया तदाऽर्थक्रियातः प्रागपि भावसत्त्वसिद्धेः स्वरूपसत्त्वमायातम्, अपि

उत्पादन' दोष संभव नहीं है क्योंकि वे कारणभूत सब पर्याय (= क्रम) से कार्य नहीं करते हैं।"  
— यह कथन भी पूर्वोक्त भेदपक्ष - अभेदपक्ष की युक्तियों से निरस्त हो जाता है।

### [ परस्परनिरपेक्ष एक एक कारण से एक कार्योत्पत्ति में विरोध ]

15 यह भी सोचिये — जब आपने एक के सृजन में अनेक का सामर्थ्य स्वीकार कर लिया है  
तो बाह्य उष्ण प्रदेश से घर के भीतर कोई आ गया तब उस का मनस्कारादि कारणवृन्द चक्षु-ज्ञान  
सृजन में परस्पर निरपेक्ष समर्थ है — यहाँ जैसे चक्षु-ज्ञान के प्रति मनस्कार उपादान है क्योंकि उस  
में एक में ही चक्षु-ज्ञान सृजन का सामर्थ्य है, वैसे आलोक आदि एक एक में भी सृजन का सामर्थ्य  
मानने में, आप के मत की हानि क्यों नहीं होगी ? (अनेक से एक या अनेक के सृजन वाले विकल्प  
20 में क्षति आयेगी।) वास्तव में तो परस्परनिरपेक्षरूप से एक एक में जनकत्व मानना यह तो प्रतीतिविरुद्ध  
है। एक एक से कार्य की उत्पत्ति कभी भी दिखती नहीं। तब वैसी मान्यता प्रतीतिविरुद्ध क्यों नहीं ?  
अन्य किसी प्रकार से क्षणिक में कार्यजनकत्व का संभव नहीं। अतः पूर्वोक्त युक्ति से ही, क्षणिकभावों  
से भागनेवाला कार्यजनकसामर्थ्य आखिर अक्षणिकत्व को ही सिद्ध करेगा न ! अरे अक्षणिकत्व को  
नहीं मानेंगे तो नित्य-अनित्य उभय से व्यावृत्त श्रावणत्व की तरह कार्यकरण सामर्थ्य उभयव्यावृत्त होने  
25 से रहेगा कहाँ — यह संशय का झुला चलता रहेगा। नास्तिक हो कर ऐसा मत बोलना कि — 'उपरोक्त  
न्याय से जब (क्षणिक एवं) अक्षणिक से भी अर्थक्रिया भागती है तो आखिर सारे जगत् को अकस्मात्  
यानी निर्हेतुक कह दो' — हम तो अक्षणिकपक्ष में समवायिकारणादि अनेक कारणरूप वस्तु से अभिन्न  
एक घटादि वस्तु की उत्पत्ति को मानते हैं जहाँ कोई विरोध नहीं है — यह पहले कहा जा चुका है।

### [ अर्थक्रिया एवं सत्त्व अन्योन्य सम्बन्ध की समीक्षा ]

30 तथा सत्त्व के स्वरूपवर्णन में जो यह कहा जाता है कि पदार्थों की अर्थक्रिया यही सत्त्व का  
लक्षण है — वहाँ हमारे दो प्रश्न हैं — अर्थक्रिया पर सत्त्व निर्भर है या सत्त्वमूलक अर्थक्रिया होती  
है ? यदि अर्थक्रिया पर सत्त्व निर्भर है तो सत्त्व के पहले ही अर्थक्रिया का स्वीकार (= उत्पत्ति)

चार्थक्रियाकाले हेतोरदर्शनाद् सतस्तस्य कथं सत्ताऽवगम्यते ? न च 'अर्थक्रियोदयात् प्राक् कारणमासीत्' इति व्यवस्थापयितुं शक्यम्, यतो यदि स्वरूपेण पूर्वं हेतुरवगतो भवेत् तदनन्तरं चार्थक्रियोपलम्भानुभवः स्यात् ततोऽर्थक्रिया अवगतप्रतिबन्धोपलभ्यमाना प्राग् हेतुसत्ताव्यवस्थापनपटीयसी भवेत्। न चार्थक्रियामन्तरेण हेतुः स्वरूपेण कदाचिदप्युपलब्धिगोचरः स्वरूपसत्त्वप्रसक्तेः।

किञ्च, यद्यर्थक्रिया हेतुसत्ताव्यवस्थापिका तस्या अप्यपरार्थक्रिया व्यवस्थापिकेत्यनिष्ठाप्रसक्तेः न हेतुसत्ताव्यवस्थितिर्भवेत्। न चार्थक्रिया अनधिगतसत्त्वस्वरूपाऽपि हेतुसत्त्वव्यवस्थापिका, शशविषाणा- 5 देरपि तत्सत्त्वव्यवस्थापकत्वप्रसक्तेः। तथाहि— हेतुसद्भावादर्थक्रिया सती तत्सत्त्वाच्च हेतोः सत्त्वमिति परिस्फुटमितरेतराश्रयत्वमिति नार्थक्रियालक्षणं सत्त्वम्।

भवतु वाऽर्थक्रियालक्षणं सत्त्वं तथापि नातः क्षणक्षयानुमानम् यतोऽसौ भावानां <sup>A</sup>क्षणस्थायितां साधयति उत <sup>B</sup>क्षणादूर्ध्वमभावम् ? <sup>A</sup>प्रथमपक्षे सिद्धसाध्यता, नित्यस्यापि भावस्य क्षणावस्थानाभ्युपगमादन्यथा 10

सत्त्व के बिना भी हो जाने से उसे निर्हेतुक मानना पडेगा। यदि सत्त्वमूलक अर्थ क्रिया मानेंगे तो अर्थक्रिया के पहले उस के विरह में भी वस्तु का सत्त्व सिद्ध होने से स्वरूपतः सत्त्व ही प्राप्त हो गया। तदुपरांत, अर्थक्रियाकरण काल द्वितीयक्षण में हेतु(= कारण)भूत (पूर्वक्षणवृत्ति) वस्तु का दर्शन नहीं होता अतः असत् कारण की सत्ता का बोध कैसे होगा ? 'अर्थक्रिया के उदय के पूर्वक्षण में कारण सत् था' — ऐसी व्यवस्था (= स्थापना) नहीं कर सकते, क्योंकि यदि पूर्वक्षण में हेतु का 15 स्वरूपतः बोध होता, उस के अनन्तर क्षण में अर्थक्रिया उदय का अनुभव (उसी व्यक्ति को) होता तब तो ठीक है कि ज्ञात अविनाभावविशिष्ट अर्थक्रिया उपलब्ध होने पर, पूर्वक्षण में हेतु की सत्ता की स्थापना करने के लिये सक्षम होती। किन्तु समस्या यही है कि अर्थक्रिया के बिना कभी भी स्वरूपतः सत् हेतु दृष्टिगोचर नहीं होता, होगा तो स्वरूपतः सत्त्व प्रसक्त होगा।

उपरांत, यदि हेतु की सत्ता की व्यवस्था अर्थक्रिया करेगी तो उस की खुद की व्यवस्था किस 20 से होगी ? (यदि हेतु सत्ता से तो अन्योन्याश्रय दोष और) अन्य अर्थक्रिया से होगी तो उस के लिये भी अन्य अर्थक्रिया.... इस तरह अनवस्था दोष होगा, अतः हेतुसत्ता की व्यवस्था नहीं हो पायेगी। तथा, जिस का सत्त्वस्वरूप अज्ञात है ऐसी अर्थक्रिया भी यदि हेतुसत्ता की व्यवस्था कर पायेगी तो वैसे शशसींग आदि भी हेतु आदि की सत्ता के व्यवस्थापक हो जाने का अतिप्रसंग होगा। ऐसा नहीं कहना कि — हेतुजन्य होने से अर्थक्रिया सत् होती है न कि अन्य अर्थक्रिया के उदय से। ऐसा 25 कहेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा। देखिये — हेतु के सत्त्व से अर्थक्रिया का सत्त्व होगा, और अर्थक्रिया के सत्त्व से हेतु की सत्ता सिद्ध होगी — तो स्पष्ट ही अन्योन्याश्रय दोष होने से, सत्त्व अर्थक्रिया स्वरूप नहीं हो सकता यह सिद्ध हुआ।

### [ अर्थक्रियास्वरूप सत्त्व से क्षणिकतानुमान अशक्य ]

अथवा सत्त्व अर्थक्रियास्वरूप हो जाय, फिर भी उस से क्षणभंग का अनुमान करना शक्य नहीं 30 है। कारण :- वह अनुमान क्या सिद्ध करेगा ? <sup>A</sup>क्षणस्थायिता या <sup>B</sup>क्षण के बाद अभाव ? <sup>A</sup>प्रथम पक्ष में सिद्धसाधनता दोष होगा, क्योंकि जो नित्य होता है वह क्षणस्थायी तो अवश्य होता है —

सदावस्थितिरेव न भवेत्, क्षणावस्थितिनिबन्धनत्वात् क्षणान्तरादिस्थितेः। <sup>B</sup>न चोत्तरकालमभावमवगमयति  
अभावेन सह तस्याः प्रतिबन्धाभावात् न चाऽप्रतिबन्धविषयः शशविषाणादिवदनुमेयः। किञ्च, <sup>A</sup>समानकालं  
वा सा साध्यं साध्येद् <sup>B</sup>भिन्नकालं वा ? <sup>A</sup>यदि समानकालं सद्वृषं साध्यं साध्यति तदा तत्समानकालभाविनः  
सत्तामात्रस्य सिद्धत्वात् सिद्धसाध्यता, अभावेन च प्रतिबन्धाभावाद् न ततस्तत्सिद्धिः। <sup>B</sup>अथ भिन्नकालं  
5 साध्यति, तत्रापि प्रतिबन्धाभावाद् न ततस्तत्सिद्धिः। न हि भिन्नकालेन विद्यमानेनाऽविद्यमानेन वा सत्तायाः  
कश्चिदविनाभावः, इति यत्राऽविनाभावस्तत्र विप्रतिपत्तिर्नास्ति यत्र च विप्रतिपत्तिस्तत्राविनाभावस्याभावः  
इति न सत्तातः क्षणक्षयानुमानम्।

न च सत्त्वं वर्तमानकालभावित्वम् तच्च पूर्वापरकालसम्बन्धविकलतया क्षणिकत्वं तदात्मकतया  
भावानां प्रकटयति। यतो वर्तमानं क्षणिकमिति कुतोऽवगम्यते ? 'पूर्वापरयोस्तत्राऽदर्शनाद्' इति चेत् ?  
10 न, दृश्यादर्शनस्यैवाभावव्यवहारसाधकत्वात्। अदर्शनमात्रस्य तु सत्यपि वस्तुनि सम्भवात् न तत्र प्रमाणता।  
न च सर्वं वस्तु सर्वदा दर्शनयोग्यम् चक्षुर्व्यापाराभावे वस्तुनोऽप्रतिभासनात् तदैव च चक्षुर्व्यापारात्

सब कोई यह मानता है, नहीं मानेगा तो क्षणाधिक यानी सदा स्थैर्य ही नहीं बनेगा। क्षणाधिकस्थायित्व  
तो अवश्य क्षण-क्षणस्थितिमूलक ही होता है। <sup>B</sup>क्षणभंगानुमान क्षणान्तर उत्तर काल में अभाव का बोध  
करावे — यह भी शक्य नहीं, क्योंकि अभाव के साथ सत्त्वस्वरूप अर्थक्रिया की अविनाभावसम्बन्धरूप  
15 व्याप्ति नहीं है। जो प्रतिबन्ध यानी अविनाभाव का विषय (= आश्रय) नहीं है वह कभी अनुमानग्राह्य  
नहीं होता, उदा० शशसींग अनुमानग्राह्य नहीं होता।

और एक बात :- वह अनुमानहेतुभूत अर्थक्रिया अपने <sup>A</sup>समानकालीन साध्य को सिद्ध करेगी या  
<sup>B</sup>भिन्नकालीन ? <sup>A</sup>यदि समानकालीन सत्त्वरूप साध्य सिद्ध करेगी तो हमारे लिये सिद्धसाधनता है क्योंकि  
अर्थक्रिया के साथ समानकालीन सत्ता रूप साध्य तो हमारे पक्ष में सिद्ध ही है। यदि क्षणान्तर अभाव  
20 रूप साध्य है तो उस के साथ व्याप्ति नहीं है, अतः क्षणक्षय की सिद्धि नहीं हो सकेगी। <sup>B</sup>यदि भिन्नकालीन  
साध्य सिद्ध करना है तो वहाँ व्याप्ति के बिना साध्यसिद्धि अशक्य है। सत्ता को भिन्नकालीन विद्यमान  
या अविद्यमान साध्य के साथ किञ्चिद् भी अविनाभाव नहीं है। हाँ, जिस के साथ अविनाभाव है (सत्तामात्र  
के साथ) वहाँ कोई विवाद नहीं है, जहाँ (क्षणभंग के बारे में) विवाद है वहाँ अविनाभाव नहीं है।  
सारांश, सत्ता हेतु से क्षणभंग का अनुमान नहीं हो सकता।

25 [ प्रत्यक्ष/अनुमान से क्षणिकत्व की सिद्धि असंभव ]

यदि कहा जाय — 'सत्त्व की व्याख्या है वर्तमानकालभावित्व, इस ढंग का सत्त्व पूर्वापरकालसम्बद्ध  
न होने से, भाव वर्तमानकालीनरूप होने से, उन की क्षणिकता प्रकट करता है।' — यह ठीक नहीं  
है क्योंकि जो वर्तमान है वह क्षणिक ही होने का कैसे ज्ञान हुआ ? यदि पूर्वोत्तरकाल में नहीं  
दिखता इसलिये ? नहीं, क्योंकि दृश्यादर्शन (यानी योग्य की अनुपलब्धि) ही अभावव्यवहार का साधक  
30 है। वस्तु सत् होने पर भी उस का अदर्शन हो सकता है लेकिन वह अदर्शन निषेध में प्रमाण  
नहीं है। नियम नहीं है कि सभी वस्तु सदा दर्शन के योग्य हो, वस्तु होने पर भी चक्षुःक्रिया न  
होने पर वस्तु का अप्रतिभास हो सकता है। उसी काल में किसी अन्य व्यक्ति को चक्षुःक्रिया से उस

परेणोपलम्भात्। तत्र पूर्वापरयोरनुपलम्भमात्रादभावनिश्चय इति न प्रत्यक्षानुमानाभ्यां क्षणिकत्वावगमः। न चैतद्व्यतिरिक्तं प्रमाणान्तरं परैरभ्युपगम्यते इति कुतः क्षणिकत्वसिद्धिः ?

यदपि 'यद् यथावभासते तत्तथैवाभ्युपगन्तव्यम् यथा नीलं नीलरूपतया प्रतिभासनं तेनैव रूपेणाभ्युपगमविषयः, क्षणपरिगतेन च रूपेण पदार्थाः प्रतिभान्तीति प्रत्यक्षसिद्धे क्षणिकत्वे तद्व्यवहार साधनाय हेतूपादानम्' इति परैः प्रतिपादितं तदप्ययुक्तम्, 'क्षणपरिगतेन रूपेण प्रतिभासनाद्' — इति 5  
हेतोरसिद्धेः कालान्तरस्थायितयाऽध्यक्षे भावानां प्रतिभासनस्य प्रतिपादितत्वात्। यदप्यभिहितम् 'न प्रथमदर्शनेन कालान्तरस्थितिरवसातुं शक्या' तदप्यसङ्गतम्, स्थिररूपपदार्थदर्शनाद् आ विनाशकारणसंनिधानात् स्थायितया आद्यदर्शनेनैव भावस्य ग्रहणात् अन्यथैकक्षणस्थायितया तस्य ग्रहणे व्यवहारार्थमुपादानं न भवेत्। न च तत्क्षणप्रभवं वस्तु व्यवहारं साधयिष्यतीति तदुपादानम् एवंभूतप्रतिपत्तेर भावात्। न हि व्यवहारिणः 'इदमर्थक्रियाकारि वस्त्वन्यदेव' इति प्रतिपद्यन्ते। न च सन्ताननिबन्धनोऽयं व्यवहारः क्षणिकत्वाऽसिद्धौ 10

वस्तु का दर्शन हो सकता है या होता है। निष्कर्ष :- पूर्वोत्तर काल में अनुपलम्भ मात्र से भावक्षणानन्तर अभाव का निश्चय नहीं किया जा सकता। अतः प्रत्यक्ष या अनुमान से क्षणिकत्व की सिद्धि अशक्य है। इन दो से अतिरिक्त कोई प्रमाण बौद्ध विद्वानों को मान्य नहीं है — अब क्षणिकत्व की सिद्धि कैसे करेंगे ?

### [ क्षणिकताव्यवहारसाधनार्थ अनुमान की सफलता दुष्कर ]

बौद्ध विद्वानों ने यह जो प्रतिपादन किया है — 'जो जैसा भासित होता है उस का वैसा ही स्वीकार होना चाहिये जैसे नीलरूपता से प्रतिभासमान नील उसी रूप से स्वीकारपात्र होता है। पदार्थवृन्द भी क्षणानुबद्धरूप से भासता है अतः क्षणिकत्व तो प्रत्यक्षसिद्ध है, अनुमान हेतुप्रयोग तो उस के व्यवहार के उपपादन के लिये किया जाता है।' — यह प्रतिपादन अयुक्त है क्योंकि 'पदार्थवृन्द क्षणानुबद्धरूप से भासता है' यह हेतु ही असिद्ध है। उलटा, पदार्थवृन्द तो प्रत्यक्ष में कालान्तरावस्थितरूप से भासित 20 होता है यह पहले दिखाया जा चुका है। तथा, यह जो कहा जाता है — प्रथमदर्शन से कालान्तरावस्थिति ज्ञात नहीं हो सकती — वह भी असंगत है, क्योंकि स्थिरस्वरूप पदार्थ दिखता है, विनाशकारणसंनिधानपर्यंत भाव की स्थायिता का ग्रहण आद्य दर्शन से ही हो जाता है, अगर ऐसा नहीं मानेंगे तो यानी सिर्फ एकक्षणस्थिति का ही दर्शन मानेंगे तो दूसरे क्षण में उस के न होने का निश्चय होने से उस के संबन्ध में क्रय-विक्रयादि व्यवहार के लिये कोई उपक्रम ही करेगा नहीं। यदि कहें कि — व्यवहारार्थ उपक्रम 25 तो वह ऐसा समझ कर के करता है कि व्यवहारक्षण में (यह भाव तो नहीं रहेगा किन्तु) जो नया भाव पैदा होगा वह व्यवहार साधन करेगा — तो यह गलत है क्योंकि वर्तमानक्षणग्रहण अवसर में ऐसा तो कोई भान या विचार होता नहीं है। व्यवहारी लोक ऐसा अनुभव नहीं करते कि 'यह व्यवहारसाधक अर्थक्रियाकारी क्षण पूर्वक्षणवाले भाव से जुदा है।' व्यवहारउपक्रम को सन्तानमूलक मानना भी अयुक्त है, क्योंकि जब क्षणिकत्व ही असिद्ध है तो सन्तान कहाँ से सिद्ध होगा ? यदि कहें कि 'पूर्वदृष्ट भाव 30 के सम्बन्ध में ही ये क्रयादि हो रहे हैं — यह व्यवहार भ्रान्त है' — तो कहना पडेगा कि अब तक क्षणक्षय सिद्ध नहीं है तब उस व्यवहार में अतद् में तद् के भान रूप भ्रमत्व भी सिद्ध नहीं हो सकता।

सन्तानस्याऽसिद्धेः। न च क्षणिकत्वं तथाप्रतिभासात् सिद्धम् इतरेतराश्रयप्रसक्तेः। तथाहि- प्रतिभासात् क्षणिकत्वसिद्धौ एकत्वव्यवहारो भ्रान्तः सिध्यति, तत्सिद्धेश्च तथाप्रतिभाससिद्धौ क्षणिकता सिध्यतीति- तरेतराश्रयत्वम्।

- न चान्यदनुमानं क्षणिकताप्रतिपादकमस्ति यत् एकत्वव्यवहारस्य भ्रान्तता भवेत्। न च भाविजन्म-  
 5 परम्पराग्रहणप्रसक्तिराद्यप्रत्यक्षेण कालान्तरस्थायिताप्रतिपत्तौ - यतोऽबाधितप्रतिपत्तौ यत् प्रतिभाति तदेव तद्ग्राह्यतया व्यवस्थाप्यते न त्वप्रतिभासमानस्यापि ग्राह्यताप्रसक्तिप्रेरणं युक्तिसङ्गतम्। न हि 'सुरभि चन्दनम्' इति विशेषण-विशेष्यभावग्रहणे बाह्येऽपि बाह्येन्द्रियनिरपेक्षं स्वातन्त्र्येण प्रवृत्तं मानसमध्यक्षमेकी- यमतेनेति सर्वत्रैव तत् प्रवर्ततामिति प्रेरणा युक्तिसङ्गता सर्वस्य तत्राऽप्रतिभासनात्। यत्रैव विशेषण- विशेष्यभावनियतं लिङ्गाद्यनपेक्षं मनः प्रवर्तते तत्रैव तद्ग्रहणव्यापारोऽभ्युपगन्तव्यः, न सर्वत्र।  
 10 एवं भाविकालान्तरादिस्थितेरपि वक्तव्यम्, यतः तत्रापि भाविकालादीनामसंनिहितत्वेऽपि तद्व्यापिनो भावस्य संनिहितत्वात् तत्र व्यापृतमक्षं तद्विशेषणत्वव्यवस्थितानां भाविकालादीनामपि ग्राहकम्। न चैवं तदनिन्द्रियजम् असंनिहितार्थजत्वेन भ्रान्तरं च, इन्द्रियान्वय-व्यतिरेकानुविधानेन संनिहिते विशेष्ये भावात्।  
 तथाप्रतिभास से क्षणिकता सिद्ध करने जायेंगे तो अन्योन्याश्रय दोष होगा। देखिये - उस प्रतिभास से क्षणिकत्व सिद्ध होने पर एकत्वव्यवहार भ्रान्त सिद्ध होगा और एकत्वव्यवहार भ्रान्त सिद्ध होने से  
 15 तथाप्रतिभास सिद्ध होने पर क्षणिकता की सिद्धि होगी। स्पष्ट है यहाँ अन्योन्याश्रय।

### [ एकत्वव्यवहारबाधक अनुमान का अभाव ]

- क्षणिकता का प्रदर्शक और कोई अनुमान है नहीं जिस से कि भावों में एकत्वव्यवहार (स्थायित्वदर्शन) को भ्रान्त माना जा सके। शंका :- प्रथम दर्शन से यदि भाविकालस्थिरता का ग्रहण मानेंगे तो भावि काल में कोई सीमा न होने से अप्रिम जन्मों की परम्परा का भी ग्रहण प्रसक्त होगा। उत्तर :- शंका  
 20 अनुचित है क्योंकि निर्बाध प्रतीति में जो जैसा प्रतीत हो वही उस प्रतीति का विषय प्रस्थापित होता है। जो प्रतिभासित नहीं होता उस को उस प्रतीति का विषय मानने का आग्रह युक्तियुक्त नहीं है। उदा० जब चन्दन को देख कर 'सुगन्धि चन्दन' ऐसी विशेषण-विशेष्यभावग्राही चाक्षुष प्रतीति में सुगन्ध का भान बाह्य सुगन्ध रूप विषय में बहिरिन्द्रियनिरपेक्ष स्वतन्त्ररूप से प्रवृत्त मानसप्रत्यक्षरूप होता है ऐसा जो न्यायदर्शन का मत है, उस को ऐसा प्रसञ्जन नहीं कर सकते कि जलादिप्रतीति में भी  
 25 सुगन्ध का भान हो जायेगा, क्योंकि सुगन्ध का मानस प्रत्यक्ष होने पर भी सभी विषयों का वहाँ भासन नहीं होता है। नियम यह है कि विशेषण-विशेष्य भाव से नियत लिङ्गादिनिरपेक्ष मन जिस (सुगन्धादि) के ग्रहण में प्रवृत्त होता है वहाँ ही मन का ग्रहण व्यापार माना जाता है, सभी क्षेत्रों में नहीं। अतः भाविजन्म परम्परा के ज्ञान की आपत्ति निरर्थक है।

- व्याख्याकार अभयदेवसुरिजी कहते हैं कि 'सुगन्धि चन्दन' प्रतीति की तरह प्रस्तुत में भावि  
 30 कालान्तरादि संबन्धि अवस्थिति भी समझ लेना। कारण :- यद्यपि (आद्य क्षण में वस्तु देखते ही स्थायिता = भाविकालावस्थिति का ग्रहण हो जाता है) वहाँ भी भाविकालादि असंनिहित है किन्तु तब तक रहनेवाले (तद्व्यापि) भाव तो वर्तमान में संनिहित जरूर है, उस के ग्रहण में संलग्न इन्द्रिय उस

न चाऽसंनिहितानां भाविकालादीनां तत्राऽप्रतिभासः विशेष्यप्रतिभासाऽऽकृष्टानां शतादिग्रहणे पूर्वसंख्येयानामिव तेषां तत्र प्रतिभाससंवेदनात् अन्यथा अस्खलद्रूप एकत्वनिबन्धन उपादेयव्यवहारस्तत्र कथं भवेत् ? इत्युक्तमसंनिहितार्थस्यापि चेन्द्रियजत्वं तैमिरिकज्ञानस्येवोपपन्नम् केवलमसत्यत्वे विवादः, तत्र च बाधकाभावात् कालान्तरस्थायिताप्रतिपत्तेः सत्यता व्यवस्थाप्यते। न च विषयसंनिधानाऽसंनिधाने इन्द्रियजत्वप्रयोजके अपि त्विन्द्रियव्यापारानुविधानम् तच्चात्रास्तीति कथं न कालान्तरस्थितिप्रतिपत्तिरक्षजा ? न चावच्छेदकाग्रहणे- 5  
ऽवच्छेद्यस्याप्यग्रहणमिति वक्तव्यम् अवच्छेदकप्रतिभासस्य प्रसाधितत्वात्।

किञ्च, यदि पूर्वापरविविक्तमध्यक्षणप्रतिभास्येवाध्यक्षं भवेत् तदा बाधकसंवादप्रत्ययानुत्पत्तितः प्रमाणे-  
तरव्यवहारो ज्ञानानां विशीर्येत। तथाहि - बाधकं पूर्वविषयापहारेणोत्पत्तिमासादयति, पूर्वप्रत्ययेन च यद्युत्तर-  
प्रत्ययसमये स्वविषयसत्त्वं नावभातं तदा स्वसमये बाधकेन पूर्वविज्ञानगोचरस्याऽसत्त्वावेदनेऽपि कथं

भाव के विशेषणरूप से (असंनिहित) भाविकालादि का भी ग्राहक होता है। शंका :- भाविकालादि 10  
इन्द्रियग्राह्य न होने से वह अनिन्द्रियजन्य हुआ और असंनिहितार्थ (भाविकालादि) से जन्य होने से  
भाविकालादि का ग्रहण अति भ्रान्त ठहरा। उत्तर :- शंका अनुचित है, विशेष्य (स्थायि भाव) संनिहित  
है और उस में अन्वयव्यतिरेकानुविधान से असंनिहित भाविकालादि का बोध मान सकते हैं। ऐसा  
मत कहना कि - 'भाविकालादि असंनिहित अर्थ का प्रतिभास नहीं हो सकता' - क्योंकि संनिहित  
शतसंख्या के ग्रहणकाल में अन्वय-व्यतिरेक से पूर्व की दो-तीन आदि संख्या का ग्रहण हो जाता है 15  
वैसे ही विशेष्य (घटादि या नीलादि) प्रतिभास से (स्मृति द्वारा) आकृष्ट भाविकालादि का प्रतिभास  
संविदित हो सकता है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो अस्खलितरूप से (अभ्रान्तरूप से) एकत्वमूलक  
उपादेयव्यवहार होता है वह कैसे होगा ? अत एव कहा जा चुका है कि जैसे तिमिरग्रस्त दोषवाले  
को संनिहित शंख में असंनिहित पीतादि का इन्द्रियकृत प्रत्यक्ष होता है वैसे ही यहाँ भाविकालादि  
का नीलादि में भी हो सकता है। हाँ उस के सत्यत्व/असत्यत्व में विवाद हो सकता है - हम कह 20  
सकते हैं (यानी प्रस्थापित करते हैं) कि कोई बाधकज्ञान का उदय न होने से कालान्तरस्थायिता का  
भान सत्य है। ऐसा नहीं मानना कि इन्द्रियजन्य/अनिन्द्रियजन्य ज्ञान के प्रयोजक क्रमशः संनिहित/  
असंनिहित विषय होते हैं। नियम है तो इतना कि जो प्रतिभास इन्द्रियव्यापार का अनुविधान करता  
है वह इन्द्रियजन्य होता है। आद्य क्षण में नीलादि वस्तु के ग्रहण के साथ साथ जो भाविकालादि  
अवस्थिति का ग्रहण होता है वहाँ (नीलादिग्रहणकालीन) इन्द्रियव्यापार मौजूद ही है, तो क्यों उसे 25  
इन्द्रियजन्य न माना जाय ? '(असंनिहित होने से) अवच्छेदक (विशेषणभूत भाविकालादि) का ज्ञान  
शक्य न होने से, अवच्छेदक (विशेष्यभूत नीलादि) का भी विशेष्यरूप से भान अशक्य है' - ऐसा  
नहीं कह सकते क्योंकि अवच्छेदक का प्रतिभास सिद्ध कर दिया है।

### [ पूर्वापरअस्पृष्टमध्यक्षणमात्र का प्रतिभास अशक्य ]

यह भी सोचिये - यदि प्रत्यक्ष सीर्फ पूर्वापरक्षण अस्पृष्ट मध्यवर्ति क्षण का ही भासक है तो 30  
न उस का कोई बाधक ज्ञान होगा, न संवादी, फलतः ज्ञानों में भ्रम या प्रमाण ऐसा व्यवहार कभी  
नहीं हो पायेगा। देखिये - बाधक का मतलब जो पूर्व विषय को जूठलाता हुआ उत्पन्न होता है,

बाधकता ? न हि विनाशकारणव्यापारोत्तरकालभाविभावाऽसत्त्वावेदकज्ञानस्य पूर्वज्ञानबाधकता। न च बाधकेन पूर्वविज्ञानविषयस्य पूर्वमेवाऽसत्त्वपरिच्छेदात् बाधकता, तस्य पूर्वविज्ञानविषये प्रवृत्त्यभ्युपगमप्रसक्तेरिति बाध्य-बाधकभावाभ्युपगमे पूर्वोत्तरविज्ञानयोरेकविषयता अभ्युपगन्तव्या, अन्यथा— सन्तानकल्पनाया असम्भवतो बाध्यबाधकभावविलोपप्रसक्तेरप्रामाण्यव्यवस्था न क्वचिद् विज्ञाने भवेत्। पूर्वविज्ञानविषयेऽविजातीयोत्तरज्ञानवृत्तिः

5 संवादः सोऽपि पूर्वापरज्ञानविषयैकत्वे सम्भवति नान्यथेति तद्व्यवहारादपि स्थायिताग्राह्यध्यक्षसिद्धिः। पूर्वज्ञानवदुत्तरज्ञानमपि 'तदेवेदम्' इत्युल्लेखवत् पूर्वक्षणेषु वर्तत इत्यभ्युपगन्तव्यम् न्यायस्य समानत्वात्। न च पूर्वदेश-काल-दशा-दर्शनानामुत्तरज्ञानप्रतिभासे तद्देशादिताप्रसक्तिरिति वर्तमानतामात्रग्रहणात् क्षणिकताग्रह एवाऽग्रहणे न तेन स्वविषयस्य पूर्वादिताग्रह इति वक्तव्यम्, क्षणिकत्वग्रहेऽप्यस्य चोद्यस्य समानत्वात्।

• तथाहि— उत्तरज्ञानेन पूर्वदेशादीनां ग्रहणे न स्वविषयस्य ततो भेदग्रहः, अग्रहणेऽपि सुतरां तेषामग्रहे

- 10 यदि उत्तरप्रतीति काल में पूर्वप्रतीति के द्वारा अपने विषय का सत्त्व प्रदर्शित नहीं किया जायेगा तो अपने काल में बाधकप्रतीति से पूर्वविज्ञानविषय की असत्ता का प्रदर्शक ज्ञान होगा तो भी वह पूर्वज्ञान का बाधक कैसे बन सकेगा ? पूर्वक्षणज्ञान विनाशक कारणव्यापार के उत्तर काल में भाव की असत्ता का प्रदर्शक ज्ञान पूर्वज्ञान का बाधक नहीं हो सकता। शंका :- बाधक प्रतीति पहले से ही पूर्वज्ञानविषय की असत्ता को भाँप लेती है इसलिये वह बाधक बन सकेगी। उत्तर :- तब तो आप को मान लेना
- 15 पड़ेगा कि बाधक ज्ञान पूर्वज्ञानीय विषय के ग्रहण में प्रवृत्त होता है। मतलब — बाध्य-बाधक भाव अखंड रखना है तो पूर्वोत्तरविज्ञानों में एकविषयता भी माननी पड़ेगी। अन्यथा, सन्तानकल्पना का सम्भव न रहने से बाध्य-बाधकभाव का लोप प्राप्त होगा, परिणामतः किसी भी विज्ञान को अप्रामाणिक घोषित नहीं कर सकेंगे। यह बाधक की असंगतता की बात हुई।

- संवाद प्रतीति की असंगतता भी प्रसक्त है। 'पूर्वविज्ञान के विषय में सजातीय उत्तर ज्ञान की
- 20 प्रवृत्ति' यह है संवाद। पूर्वापरज्ञानों में एकविषयता का स्वीकार न किया जाय तो उक्त संवाद नहीं घट सकता। इस प्रकार बाधक-संवाद व्यवहार से भी स्थायित्वग्राहक प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। पूर्वज्ञान जैसे पूर्वक्षणों के ग्रहण में प्रवृत्त होता है, उत्तरज्ञान भी उसी तरह 'यह वही है' इस उल्लेख के साथ उन के ग्रहण में प्रवृत्ति करता है यह मानना ही पड़ेगा, क्योंकि न्याय तो पूर्वज्ञान की तरह उत्तर ज्ञान के लिये भी समान होना चाहिये। शंका :- उत्तर ज्ञान में यदि पूर्वज्ञानविषयभूत पूर्वदेश,
- 25 पूर्वकाल, पूर्वदशा, पूर्वदर्शन का प्रतिभास मानेंगे तो उत्तरज्ञान स्वयं भी पूर्वदेशादिविशिष्ट बन जाने की आपत्ति होगी। यदि कहें कि सिर्फ वर्तमानता का ही ग्रहण होगा, पूर्वदेशादि का नहीं — तब तो क्षणिकताग्रह ही फलित हो गया। यदि वर्तमानताग्रह नहीं मानेंगे तो अपने विषय की पूर्वदेशता आदि का भी ग्रहण नहीं हो पायेगा। उत्तर :- शंका नहीं करना, क्योंकि क्षणिकता के ग्रहण में भी यह समस्या समान है।

### 30 [ पूर्वज्ञान उत्तरज्ञान विषयों का अभेद-प्रत्यक्ष सुविदित ]

कैसे यह देखिये — पूर्वदेशादि का ग्रहण यदि क्षणिक उत्तर ज्ञान से होगा तो अपने विषय का उन से भेद होने पर भी उस का ग्रहण नहीं हो सकेगा। (मतलब, पूर्वोत्तर विषय का एकत्व

‘ततो भिन्नमिदम्’ इति प्रतितेरयोगात् प्रतियोगिग्रहणसव्यपेक्षत्वाद् भेदावगतेः। न च स्वविषयस्य तेन तदनुप्रवेशाग्रहणमेव भेदग्रहणम्, तद्भेदाऽग्रहणमेव तदनुप्रवेशस्वरूपनित्यत्वग्रहणमित्यस्यापि वक्तुं शक्यत्वात्। न च स्वरूपमेव भेद इति तद्ग्रहणे भेदग्रहः, अभेदेऽप्यस्य समानत्वात्। तथा च ‘पूर्वमेवेदं मया दृष्टम्’ ‘पूर्वदृष्टं पश्यामि’ इति च पूर्वोत्तरज्ञानयोर्भाविभूतज्ञानैकार्थविषयताव्यवस्थापकं निश्चयद्वयं यथाक्रममुपजायमानं संलक्ष्यत इति यथा ‘नीलमिदं पश्यामि’ इति तद्व्यापारानुसारिविकल्पोदयात् तत्रप्रतिभासोऽध्य- 5 क्षस्याविकल्पकस्य व्यवस्थाप्यते तथा प्रकृतेऽपि पूर्वोत्तरज्ञानद्वयेऽभेदप्रतिभासो व्यवस्थापनीयः, न्यायस्य समानत्वात्। इदमेव वा निश्चयद्वयमक्षव्यापारानुसारित्वादध्यक्षतामनुभवति। यतो नेदमानुमानिकम् लिंगाद्यनपेक्षतयोत्पत्तेः। नापि भ्रान्तम्, बाधकाभावात्। न च स्मृतिरूपम् अपूर्वार्थप्रतिपत्तेः।

न च प्रथमाक्षव्यापारानन्तरमनुत्पत्तेः स्मरणरूपताऽस्य, विशिष्टसामग्र्यन्तर्भूतेन्द्रियजन्यतया प्रागनुत्पादेऽपि स्मरणरूपतानुपपत्तेः। अत एवोत्पाद्यमाने पटादौ ‘अनागताध्यवसायोऽध्यक्षम्’ इति केचित् सम्प्रतिपन्नाः। 10

गृहीत हो जायेगा। यदि पूर्वदेशादि का ग्रहण नहीं होगा तब तो उन का ग्रहण न होने की वजह से सुतरां ‘उन से यह भिन्न है’ ऐसी प्रतीति नहीं होगी, क्योंकि भेदग्रह के लिये प्रतियोगिग्रहण अपेक्षित है। शंका :- उत्तरज्ञान में पूर्वदेशादि के अनुप्रवेश का ग्रहण (दूसरे विकल्प में) नहीं होता है तब यह अग्रहण ही स्वविषयानुयोगिक भेदग्रहण है यह समझ लो। उत्तर :- नहीं, ऐसा ही बोलो न कि स्वविषय में पूर्वदेशादि के भेद का अग्रहण है वही पूर्वदेशादिअनुप्रवेशस्वरूप नित्यत्व का ग्रहण है 15 — ऐसा भी कहा जा सकता है। शंका :- उत्तरज्ञान में गृहीत होने वाले स्वविषय का स्वरूप है यही पूर्वदेशादिभेद है, स्वरूप का ग्रहण होने पर भेद भी गृहीत हो जायेगा। उत्तर :- इस से विपरीत, उक्त प्रकार से अभेद का ही ग्रहण समानन्याय से मान लो। फलितार्थ यह है कि ‘मैंने पहले भी यह देखा है’ तथा ‘पहले देखा है उसे अब देखता हूँ’ ये दो निश्चयज्ञान क्रमशः प्रकट होता है यह स्पष्ट दिखता है जो कि पूर्वोत्तरज्ञानों में भावि एवं भूतकालीन ज्ञानों की एकविषयता का स्फुटरूप 20 से प्रदर्शक हैं। जैसे यह नील देखता हूँ — ऐसे दर्शन के बाद उस दर्शन के व्यापार का अनुगामी तथाविध निश्चय (= विकल्प) के उदय से यह निश्चित किया जाता है कि पूर्व निर्विकल्प प्रत्यक्ष भी नीलप्रतिभासात्मक ही है — तो इसी तरह प्रस्तुत में भी पूर्वोत्तर ज्ञान के विषय में अभेदग्राहि विकल्प के उदय से यह मान लेना चाहिये कि पूर्व निर्विकल्प प्रत्यक्ष भी अभेदग्राही हुआ था, क्योंकि नीलप्रतिभास और अभेदप्रतिभास दोनों के प्रति न्याय तो समान ही है। अथवा ये उक्त दोनों निश्चय 25 इन्द्रियव्यापार संजात होने से प्रत्यक्षता को धारण करनेवाले ही माना जाय। कारण :- न अनुमानरूप है, न भ्रान्त है न तो स्मृतिरूप है (तब एक प्रत्यक्षरूप ही बचा) क्योंकि क्रमशः लिङ्गादिनिरपेक्ष होकर उत्पन्न होता है, बाधरहित है, एवं अपूर्वार्थग्रहणरूप है।

### [ पूर्वादृष्टदर्शन की स्मृतिरूपता का निषेध ]

उक्त निश्चय प्रथम प्रथम इन्द्रियव्यापार से उत्पन्न नहीं होता अतः स्मृतिरूप है ऐसा नहीं कह 30 सकते — क्योंकि जिस विशिष्ट सामग्री से वह उत्पन्न होता है उस में इन्द्रिय भी शामिल है अतः प्रथमक्षण में उत्पन्न न होकर यदि दूसरे तीसरे क्षण में भी भले उत्पन्न हो, इन्द्रियजन्य होने से स्मृतिरूप



न ह्यनध्यवसितमुत्पाद्यते, तथा चोत्पन्ने तदुत्पादकानां प्रतिपत्तिः, यदेवोत्पादयितुमध्यवसितं तदेवोत्पादितम् यदेव चोत्पादितं तदेवाध्यवसितमित्यभेदप्रतिपत्तिः सङ्गता भवति। न चास्या अनिमित्तता अनियतनिमित्तता वा, कादाचित्कतयाऽनिमित्तत्वस्याभावात् लिङ्गादिनिमित्ताभावतः पारिशेष्यादिन्द्रियलक्षणनियतनिमित्तत्वाच्च। न चैवम्भूतप्रतिपत्तेर्मिथ्यात्वेनोपलब्धेरियमपि मिथ्या, प्रत्यक्षस्यापि कस्यचिन्मिथ्यात्वोपलब्धेः सर्वस्य मिथ्या-  
5 त्वप्रसक्तेः। न च तत्र बाधकाभावात् सत्यार्थतेति वक्तव्यम्, अत्रापि समानत्वात्, बाधरहिता हि सविकल्पा प्रतिपत्तिः प्रमा नान्येत्यभ्युपगमात्। न च मनसः सर्वत्रातीते अनागते वाऽव्याहृतप्रसरत्वादुत्पाद्यमाने भावे तदध्यवसायस्य मनोजन्यत्वेनाध्यक्षता युक्ता चक्षुरादेस्त्वतीतानागतयोरविषयत्वेन तत्प्रतीतेः कथमध्यक्षतेति वक्तव्यम् उक्तोत्तरत्वात्। अतीतानागतविषयस्य मानसाध्यक्षत्वेऽपि वा क्षणप्रतिभासलक्षणस्य हेतोरसिद्धता भवत्येव अबाधितमानसाध्यक्षेण भावानामेकत्वग्रहणात्।

10 यदपि 'किं क्षणिकेन ज्ञानेन स्थायिता युगपत् क्रमेण वा भावानां गृह्यते, आहोस्वित् अक्षणिकेन'

नहीं हो सकता। अत एव कुछ पंडितों का कहना है कि जब वस्त्र उत्पन्न हो रहा है तब बुननेवाले को जो पूरे वस्त्र का ज्ञान होता है वह इन्द्रियजन्य होने से अनागत (वस्तु) का अध्यवसाय प्रत्यक्षरूप है। जो भी उत्पन्न किया जाता है वह पहले अध्यवसित (यानी मानसप्रत्यक्ष) रूप ही होता है, जब वह उत्पन्न हो जाता है तब कर्ता को यह प्रतीति होती है कि जो पहले मैंने निर्माणार्थ निश्चित  
15 किया था वही मैंने उत्पन्न किया, जो मैंने उत्पन्न किया वही पहले मैंने निर्माणार्थ निश्चित किया था — इस प्रकार जो अभेद प्रतीति होती है वह एकत्व प्रत्यक्ष से संगत होती है।

यह प्रतीति निर्निमित्त नहीं है क्योंकि कादाचित्क है, कादाचित्क चीज निर्निमित्त नहीं होती। अनियत (अनिश्चय) निमित्तमूलक भी नहीं है, क्योंकि लिङ्गादि निमित्त के बिना भी होती है अतः परिशेष से इन्द्रियरूप नियतनिमित्तमूलक सिद्ध होती है। शंका :- ऐसी ऐसी प्रतीतियाँ तो कभी जूठी  
20 भी होती है, उन का भरोसा नहीं कर सकते यह भी जूठी हो सकती है। उत्तर :- अरे ! अन्य अन्य अनेक प्रत्यक्ष भी जूठा होता है तो क्या आप सभी प्रत्यक्ष को जूठा मानेंगे ? ऐसा कहने की जरूर नहीं कि वहाँ बाधक के न होने पर सत्यता हो सकती है — यहाँ भी वैसा कह सकते हैं — बाधमुक्त सविकल्प प्रतीति प्रमाणभूत और अन्य (बाधयुक्त) प्रतीति अप्रमाणभूत — ऐसा मानेंगे।  
आशंका :- उत्पत्ति-अधीन भाव के बारे में मनोजन्य जो अध्यवसाय है उस को प्रत्यक्ष मान सकते  
25 हैं क्योंकि मन तो अतीत-अनागत (और वर्तमान) सर्व काल में अस्खलितगतिप्रसरवाला होता है — किन्तु चक्षु आदि बहिरिन्द्रिय अतीत-अनागत विषय में गतिशील नहीं है, तो फिर अनागत उत्पद्यमान भाव के बारे में या अतीत विषय में चक्षुजन्य प्रतीति कैसे प्रत्यक्ष मानी जा सकती है ? — उत्तर :- पहले इसका प्रत्युत्तर दे दिया है, मान लो कि अतीतानागतविषयता मानसाध्यक्ष तक ही सीमित है, फिर भी क्षणिकता साधक क्षणप्रतिभासरूप हेतु तो यहाँ असिद्ध बन गया क्योंकि अब अबाधित मानस  
30 प्रत्यक्ष से ही (चाक्षुष प्रत्यक्ष से न सही) भावों के एकत्व का ग्रहण सिद्ध है।

**[ पर्यायाधारभूत द्रव्यवस्तुसिद्धि - द्रव्यार्थिक निक्षेप पूर्ण ]**

यह जो कहा है — ( ) ज्ञान तो क्षणिक होता है, क्षणिक ज्ञान से भावों की स्थायिता एक

इति विकल्प्य सर्वत्र दोषप्रतिपादनं कृतम् तत् क्षणिकत्वग्रहेऽपि समानम्। तथाहि— न क्षणिके ज्ञाने क्षणस्थिति-क्षणान्तरस्थित्योर्युगपत् क्रमेण वा प्रतिभासे तयोर्भेदप्रतिपत्तिः परस्पराभावस्य भावग्राहिणि तत्राऽप्रतिभासनाद् भावाभावयोर्विरोधात्, तदप्रतिभासने च न तद्भेदप्रतिपत्तिः। नापि तयोरप्रतिभासने भेदावगतिः प्रतियोगिग्रहणसव्यपेक्षत्वाद् भेदप्रतिपत्तेः इति भवतैवाभिधानात्। अन्तर्बहिश्च स्थिर-स्थूरा-ध्यक्षप्रतिभासबाधितत्वाच्च प्रकृतविकल्पानुत्थानमिति न प्रतिपदमेषां निराकरणे प्रयत्नः सफलः पिष्टपेषण- 5 रूपत्वात्। दिग्मात्रप्रदर्शनं तु विहितमेवेत्यलमतिविसारिण्या कथया। तत् क्षणक्षयप्रसाधने प्रत्यक्षादेः प्रमाणस्यानवताराद् बाधकत्वेन च तस्यैकत्वाध्यवसायिनः प्रवृत्तिप्रतिपादनात् न पर्यायास्तिकाभिमत्पूर्वापरक्षण-विविक्तमध्यक्षणमात्रं वस्तु किन्त्वतीतानागतपर्यायाधारमेकं द्रव्यवस्त्विति द्रव्यार्थिकनिक्षेपः सिद्धः।

### [ द्रव्यनिक्षेपस्य आगमोक्तस्वरूपम् ]

द्रव्यं चानुभूतपर्यायम् अनुभविष्यत्पर्यायं चैकमेव तेन 'अनुभूतपर्याय'शब्देन तत् कदाचिदभिधीयते 10

साथ (भावग्रहण के साथ) गृहीत हो जाती है या क्रमशः गृहीत होती है ? अथवा अक्षणिक ज्ञान से एक साथ या क्रमशः गृहीत होती है ? — इस प्रकार से विकल्पजाल को बुन कर सभी विकल्पों में दोषों का उद्भावन किया गया था वह सब वस्तु की अस्थायिता (= क्षणिकता) के पक्ष में तुल्य है। देखिये— क्षणिक ज्ञान में वस्तु की क्षणस्थिति और क्षणान्तरस्थिति का चाहे एक साथ प्रतिभास हो या क्रमशः, किन्तु भेदप्रतीति शक्य नहीं। (मतलब कि वस्तु में क्षणभेद से वस्तुभेद की प्रतीति 15 शक्य नहीं है।) कारण :- भावमात्रग्राहि प्रत्यक्ष में परस्परव्यावृत्ति का प्रतिभास हो नहीं सकता क्योंकि भाव और अभाव में अन्योन्य विरोध होता है। अतः किसी भी तरह से भेदप्रतिभासन होने पर भेद का स्थापन शक्य नहीं रहेगा। यदि प्रतिभास अभावग्राही मान लिया जाय तो भाव-अभाव में कोई विरोध न रहा, अतः क्षणस्थिति और क्षणान्तरस्थिति में भेदप्रतीति का सम्भव नहीं रहा। तथा, उन दोनों का जब तक प्रतिभास नहीं होगा तब तक तत्प्रतियोगिक भेद का बोध हो नहीं पायेगा, 20 क्योंकि आपने ही कहा है कि भेद का बोध प्रतियोगीसापेक्ष ही होता है। तथा, आपने जो युगपद् क्रमशः इत्यादि विकल्पों का उत्थान किया है वे सब निरर्थक हैं क्योंकि बाह्य या भीतर में स्थिर एवं स्थूल प्रत्यक्षप्रतिभास अनुभवसिद्ध होने से बाधग्रस्त हैं। अतः उन एक एक विकल्प को पकड कर उन के निरसन करने के लिये प्रयत्न करना व्यर्थ है क्योंकि वह पिष्टपेषण ही होगा, जो थोडा कुछ ऊपर कहा है वह तो दिशासूचन ही है, अति विस्तृत निरूपण विनजरुरी है। 25

निष्कर्ष, क्षणभंगसिद्धि के लिये प्रत्यक्षादि एक भी प्रमाण उत्साहित नहीं है, तथा क्षणिकता में बाधक बन कर एकत्वग्राही अध्यवसाय की प्रवृत्ति होती है यह पहले कह आये हैं — इस से फलित होता है कि पर्यायास्तिकनयमान्य पूर्वापरक्षण से अस्पृष्ट मध्यवर्ती क्षणमात्र कोई वस्तु नहीं होती किन्तु भूत-भाविपर्यायों के आधारभूत एक द्रव्य ही सत्य वस्तु है — इस प्रकार द्रव्यार्थिकाश्रित निक्षेप सिद्ध है।

पृ.१८३ पं. ८ से द्रव्यार्थिकनिक्षेपवादीने क्षणभंगवाद का निरसन प्रारंभ किया था वह पूरा हुआ। 30

### [ द्रव्यार्थिक निक्षेपवादी के मत से द्रव्यस्वरूपवर्णन ]

द्रव्यार्थिकनिक्षेपवादीने द्रव्य का समर्थन किया — अब वह द्रव्यस्वरूप दिखा रहे हैं —

कदाचिच्च 'अनुभविष्यत्'पर्यायशब्देन यथा अतीतघृतसम्बन्धो घटो 'घृतघटः' इत्यभिधीयते भविष्यत्तत्सम्बन्धोऽपि तथैवाऽभिधानगोचरचारी। शुद्धतरपर्यायास्तिकेन च निराकारस्य ज्ञानस्यार्थग्राहकत्वाऽसम्भवात् साकारं ज्ञानमभ्युपगतम् तत्संवेदनमेव चार्थसंवेदनम् ज्ञानानुभवव्यतिरेकेणापरस्यार्थानुभवस्याभावात् घटोपयोग एव घटस्तन्मतेन। तत्पर्यायेण अतीतेन परिणतम् परिणस्यद् वा द्रव्यं तच्छब्दवाच्यं द्रव्यार्थिकमतेन व्यवस्थितं 5 पूर्ववत्। अत एव घटाद्यर्थाभिज्ञः तत्र चानुपयुक्तो 'द्रव्यम्' इति प्रतिपादितः द्रव्यार्थिकनिक्षेपश्च। द्रव्यमागमे अनेकधा प्रतिपादितम् इह तु युक्तिसंस्पर्शमात्रमेव प्रदर्शयते तदर्थत्वात् प्रयासस्य।

[ ४ - भावनिक्षेपनिवेदनम् पर्यायार्थिकनयसमावेशश्च ]

'भवति' = विवक्षितवर्तमानसमयपर्यायरूपेण उत्पद्यते - इति 'भावः' 'विभाषा ग्रहः' (३-१-१४३ सिद्धान्त कौ० अं० २९०५) इत्यत्र सूत्रे कैश्चिद् 'भवतेश्च' इति णोऽपीष्यते। अथवा भूतिः = भावः

- 10 ▲अतीत पर्याय का अनुभव (धारण) जो पहले कर चुका है और भाविपर्याय का अनुभव जो करनेवाला है वह भी एक द्रव्य है। कभी कभी 'द्रव्य' का निर्देश भूतकालीन पर्याय से होता है जैसे घी खाली कर देने के बाद भी अतीत घृताश्रयतापर्याय को लेकर वह 'घृत-घट' कहा जाता है। कभी द्रव्य का निर्देश भावि पर्याय को लक्ष में ले कर किया जाता है, जैसे बजार से घी भरने की इच्छा से घड़े को ले आये (अभी भरा नहीं है) उस में दो-तीन दिन के बाद घी भरा जायेगा, तब भावि 15 घृताश्रयतापर्याय को ले कर उसे 'घृत-घट' कहा जाता है। यह द्रव्यनिक्षेप विचारबाह्य घटादि वस्तु को ले कर हुआ। बाह्य की तरह एक अभ्यन्तर घट भी होता है जो अतिशुद्ध पर्यायास्तिकनयानुसार ज्ञानमय होता है और इसी ज्ञान संदर्भ में द्रव्यनिक्षेपवादी भी अन्य दो प्रकार द्रव्य का प्रदर्शित करेगा। पहले \*अति शुद्धपर्यायवादी मतानुसार ज्ञानमय घट का स्वरूप ऐसा है - अर्थ (घटादि) नहीं किन्तु अर्थसंवेदन ही सत्य (घटादि) अर्थ है, संवेदन रूप ज्ञानानुभूति से पृथक् कोई अर्थानुभव नहीं होता। 20 यद्यपि ज्ञान निराकार भी कोई स्वीकारता है, किन्तु निराकार ज्ञान अर्थग्राहि नहीं हो सकता, अतः यहाँ साकारज्ञानमय घटादि अर्थ का स्वीकार किया गया है। यह तो पर्यायवादी का मत हुआ। ▼द्रव्यनिक्षेपवादी कहता है कि वर्तमान में घटसंवेदनपर्याय नहीं है किन्तु भूतकाल में जिस देवदत्त ने घटसंवेदनपरिणाम संविदित किया है अथवा भविष्य में यदि (देवदत्त) संवेदनपरिणाम संविदित करनेवाला है वे दोनों ही द्रव्यशब्दवाच्य होने से द्रव्यार्थिक मत से 'द्रव्य' है। यही कारण है कि अनुयोगद्वार 25 [सू०३३] आदि आगमशास्त्रों में घटादिअर्थज्ञाता किन्तु वर्तमान में घटसंवेदन से शून्य व्यक्ति को 'द्रव्य' कहा गया है, द्रव्यनिक्षेप में गिना गया है। आगमशास्त्रों में अनेक प्रकार 'द्रव्य' के दिखाये गये हैं - यहाँ तो उस की उपपत्ति के लिये लेशमात्र युक्तियाँ ही दिखायी हैं क्योंकि निक्षेप व्याख्यान का यह प्रयास भी उसी के लिये है।

[ पर्यायनयान्तर्गत भावनिक्षेपव्याख्या ]

- 30 मूल गाथा ६ के उत्तरार्ध में भावनिक्षेप सूचित किया गया है - यहाँ 'भाव' शब्द की व्युत्पत्ति व्याख्याकार प्रदर्शित करते हैं - विवक्षित (= कहने के लिये या स्वयंबोध के लिये अभिप्रेत) वर्तमानकालीन ▲. भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यल्लोके तद् द्रव्यम्। (अनु०द्वार-सू०१३-मलधारीटीकायाम्) \* . आगमतो भावसुयं जाणते उवउत्ते (अनु०द्वार-सू०४७) ▼. अणुवओगो दव्वं - (अनु०द्वार सू०१४)

वज्र-किरीटादिधारणवर्तमानपर्यायेणेन्द्रादिरूपतया वस्तुनो भवनम्, तद्ग्रहणपर्यायेण वा ज्ञानस्य भवनम्। यथा चाऽयं पर्यायार्थिकप्ररूपणा तथा प्रदर्शित एव प्राक् न पुनरुच्यते। एष एव नय-निक्षेपानुयोगप्रतिपादित उभयनयप्रविभागः परमार्थः = परमं हृदयम् आगमस्य, एतदव्यतिरिक्तविषयत्वात् सर्वनयवादानाम्। न हि शास्त्रपरमहृदयनयद्वयव्यतिरिक्तः कश्चिद् नयो विद्यते सामान्य-विशेषस्वरूपविषयद्वयव्यतिरिक्तविषयान्तरा-भावाद् विषयिणोऽप्यपरस्य नयान्तरस्याभाव इति प्राक् प्रतिपादितमिति ॥६॥

5

एतदपि नयद्वयं शास्त्रस्य परमहृदयं 'द्रव्यं पर्यायाऽशून्यं पर्यायाश्च द्रव्याऽविरहिणः' इत्येवं भूतार्थ-प्रतिपादनपरम् नान्यथैत्येतस्यार्थस्य प्रदर्शनार्थमाह—

(मूलम्) पज्जवणिस्सामण्णं वयणं दव्वट्टियस्स 'अत्थि'त्ति।

अवसेसो वयणविही पज्जवभयणा सपडिवक्खो ॥७॥

पर्याय रूप से (तद् तद् द्रव्यों का) उद्भव 'भाव' कहा जाता है (भवति इति भावः)। यहाँ 'विभाषा 10 ग्रहः' इस सूत्र द्वारा 'भवतेश्च' इस काशिका वृत्तिकथन से कुछ पंडितों को 'भू' धातु से 'ण' प्रत्यय विधान मान्य है अतः 'भाव' शब्द निष्पन्न होता है। अथवा 'भू' धातु से भाव अर्थ में 'अण्' प्रत्यय से भी 'भाव' शब्द बनता है 'भूतिः = भावः'। इस रीति से निष्पन्न 'भाव' शब्द का मतलब है कि मुगुट आदि धारण स्वरूप वर्तमान इन्द्रादिपर्यायरूप से वस्तु का भवन (= परिणमन)। अथवा 15 तथाविध इन्द्रपर्यायग्रहणात्मक पर्याय में परिणत ज्ञान का जो भवन है वही (इन्द्र का) 'भाव' निक्षेप है। ये दोनों प्रकार के भाव पर्यायार्थिकनयप्ररूपणान्तर्निहित ही है यह पहले दिखाया है, पुनरुक्ति नहीं करते। यही नयगर्भितनिक्षेप के अनुयोग (= व्याख्यान) में निरूपित उभयनय प्रविभाग परमार्थ है। यहाँ 'परमार्थ' शब्द का अर्थ है आगम का परम हृदय (तात्पर्य), क्योंकि सकल नयवादों का विषय इस नय द्वन्द्व से पृथक् नहीं है। शास्त्रों के परम हृदयभूत नयद्वन्द्व से अधिक कोई नय कहीं भी नहीं है, क्योंकि सामान्य एवं विशेष रूप विषयद्वन्द्व से अधिक कोई अन्य विषय दुनिया में नहीं 20 है। अत एव तद्ग्राहक कोई अन्य (तृतीय) नय भी नहीं है यह पहले भी कहा जा चुका है। [ द्वि०काण्ड गाथा-६ विवरण समाप्त ] विशेषार्थी चार निक्षेपों के अधिक भेद-प्रभेद विवेचन के लिये श्री अनुयोगद्वार सूत्र में 'आवश्यक' एवं 'सुअ' (श्रुत) शब्द के नामादि चार निक्षेपों को सूत्र १० से ५० के मध्य देख सकते हैं।)

[ मीलित द्रव्य-पर्याय बोधक उभय नय ही शास्त्रहृदय ]

25

यह जो नयद्वन्द्व शास्त्रों का परम हृदय कहा गया है वह भी इसलिये कि 'द्रव्य पर्यायविहीन कभी नहीं होता और पर्याय कभी द्रव्यविहीन नहीं होते' इस प्रकार द्रव्य-पर्याय की सापेक्ष प्ररूपणा करते हो तभी वह परमहृदय है, अन्यथा एकान्ततः द्रव्य-पर्याय को निरपेक्ष दिखानेवाले नय कभी परमहृदय नहीं हो सकते — इस तथ्य का सातवीं गाथा से दिवाकर सूरि निरूपण करते हैं —

गाथार्थ :- 'अस्ति' ऐसा वचन पर्यायसामान्यविहीन द्रव्यास्तिक का है, सप्रतिपक्ष शेष वचनप्रयोग 30 पर्यायोपासना स्वरूप है ॥७॥

परस्परनिरपेक्षस्य नयद्वयस्य प्रत्येकमेवं वचनविधिः - द्रव्यास्तिकस्याऽननुषक्तविशेषं वचनम् 'अस्ति' इत्येतावन्मात्रम्, पर्यायास्तिकस्य त्वपरामृष्टसत्तास्वभावं 'द्रव्यम्' 'पृथिवी' 'घटः' 'शुक्लः' इत्याद्याश्रित-पर्यायम्। परस्परनिरपेक्षं चोभयनयवचोऽसदेव, वचनार्थाऽसत्त्वात्। वचनमसदर्थमिति तदर्थस्याप्यसत्त्वमावेदितं भवतीति समुदायार्थः।

- 5 अवयवार्थस्तु- पर्यायनयेन सह निःसामान्यम् = असाधारणं वचनम् द्रव्यास्तिकस्य 'अस्ति' इति एतत्, भेदवाद्यभ्युपगतस्य विशेषस्य सत्तारूपतानुप्रवेशात्। एतच्च वचो निर्विषयम्, निर्विशेषत्वात् वियत्कु-सुमाभिधानवत् - 'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्' (श्लो० वा० आकृति० श्लो० १०) इति प्रसाधितत्वाद् नाऽव्याप्तिर्हेतोः। असिद्धिः पराभ्युपगमादेव परिहृता। तत्रैकान्तभावनाप्रवृत्तस्य द्रव्यास्तिकनयस्य परमार्थता। पर्यायास्तिकस्याप्येवंप्रवृत्तस्य न सेति पश्चार्धेन प्रतिपादयति - अवशेष इति शेषः, स चोपयुक्तादन्यः
- 10 वचनविधिः = वचनभेदः सत्ताविकलविशेषप्रतिपादकः पर्यायेषु सत्ताव्यतिरिक्तेष्वसत्सु भजनात् = सत्ताया आरोपणात् सप्रतिपक्षः इति सतः प्रतिपक्षः = विरोधी असन् भवति। तथाहि- पर्यायप्रतिपादको वचनविधिरवस्तुविषयः, निःसामान्यत्वात् खपुष्पवत्। भावना तु द्रव्यार्थिकवचनविपर्ययेण प्रयोगस्य कार्या।

व्याख्यार्थ :- परस्पर निरपेक्ष दोनों नयों का एक एक वचनप्रयोग इस तरह है - विशेषानुषङ्गविनिर्मुक्त द्रव्यास्तिक का वचन 'अस्ति' इतना ही होता है। पर्यायास्तिक मत सत्तासामान्य की उपेक्षा कर के 'द्रव्य'

15 अथवा 'पृथिवी' अथवा 'घट' अथवा 'श्वेत' इस प्रकार पर्यायाश्रित ही होता है। ऐसा जो परस्परनिरपेक्ष उभय नय का वचनप्रयोग है वह जूठा है क्योंकि उक्तवचनप्रतिपाद्य अर्थ असत् है। वचन असत्यार्थक कह देने से वचनवाच्य अर्थ की भी असत्यता निवेदित हो जाती है। यह गाथा का समुदितार्थकथन है।

### [ सातवीं गाथा के पदों का शब्दार्थ ]

- गाथा के अवयवों का अर्थ :- पर्यायनय के साथ समानता से रहित यानी असाधारण (= स्वतन्त्र)
- 20 ऐसा वचन है द्रव्यास्तिक को मान्य - 'अस्ति' (= सत् है), क्योंकि द्रव्यास्तिक नय के मान्य सत्तास्वरूप में भेदवादी (पर्यायवादी) मान्य विशेष के अनुप्रवेश को अवकाश नहीं है।

- द्रव्यास्तिकनय का यह वचन विषयबाह्य (निरर्थक) है क्योंकि विशेषमुक्त है जैसे 'गगनपुष्प' नाम। श्लोकवार्तिक में कहा है कि 'विशेषरहित सामान्य शशसींग तुल्य है।' - इस कथन से निर्विशेषत्व हेतु की पुष्टि होने से अव्याप्ति दोष नहीं है। असिद्धि दोष भी नहीं है क्योंकि द्रव्यास्तिकनय (एकान्त)
- 25 ने स्वयं विशेष का बहिष्कार किया है। सारांश, एकान्तवासना से प्रवृत्त यह द्रव्यास्तिक नय पारमार्थिक नहीं। गाथा के उत्तरार्थ से यह सूचित करना है कि एकान्तवासना से प्रवृत्त पर्यायास्तिक नय भी पारमार्थिक नहीं। देखिये - अवशेष यानी शेष, मतलब द्रव्यास्तिकवचन से भिन्न जितने भी सत्ताशून्य विशेष के निरूपक वचनप्रकार हैं वे पर्यायों में यानी सत्ताशून्य असत् व्यक्तियों में सत्ता का भजन यानी आरोपण कर देने से प्रतिपक्षयुक्त (यानी विरोधयुक्त) हैं, अर्थात् सत् के विरोधी होने से उक्त
- 30 वचन प्रकार असत् हैं। प्रयोग देखिये - पर्यायनिरूपक वचनप्रकार वस्तुविषयक (वस्तुस्पर्शी) नहीं, क्योंकि सामान्यविकल है जैसे गगनपुष्प। इस प्रयोग का भावार्थ, उपरोक्त द्रव्यार्थिकवचन के लिये किये गये प्रयोग से विपरीत, समझ लेना।

अथवा — ‘अर्थाभिधानप्रत्ययास्तुल्यनामधेयाः’ [ ] इति अर्थ-प्रत्यययोः स्वरूपमभिधायभिधानस्य द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकस्वरूपस्य तदभिधायकस्य वा प्रतिपादनार्थमाह— पञ्जवनिस्सामण्णं इत्यादि। पर्यायान्निष्क्रान्तम् — तद्विकलम् सामान्यं सङ्ग्रहस्वरूपं यस्मिन् वचने तत् पर्यायनिःसामान्यं वचनम्। किं पुनस्तत् ? इत्याह — ‘अस्ति’ इति, तच्च द्रव्यार्थिकस्य स्वरूपम् प्रतिपादकं वा।

यद्वा पर्यायः ऋजुसूत्रनयविषयाद् अन्यो द्रव्यत्वादिविशेषः, स एव च निश्चितं सामान्यं यस्मिंस्तत् 5 पर्यायनिःसामान्यं वचनम् द्रव्यत्वादिसामान्यविशेषाभिधायीति यावत्। तच्चाशुद्धद्रव्यार्थिकसम्बन्धि तत्प्रतिपादकत्वेन तत्स्वरूपत्वेन वा। अवशेषो वचनविधिः = वर्णपद्धतिः सप्रतिपक्षः अस्य वचनस्य पर्यायार्थिकनयरूपः तत्प्रतिपादको वा पर्यायसेवनात्; अन्यथा कथमवशेषवचनविधिः स्यात् यदि विशेषं नाश्रयेत् ॥७॥

### [ सातवीं गाथा के वैकल्पिक अवयवार्थ ]

अन्यविध अवतरणिका :- दर्शनक्षेत्र में यह सुविदित तथ्य है कि अर्थ, उस का वाचक और 10 उस की प्रतीति, इन तीनों के लिये समान नामकरण होता है। उदा० घटरूप अर्थ, उस का वाचक एवं उस के ज्ञान — तीनों के लिये ‘घट’ शब्दप्रयोग होता है। (दूसरा नाम निक्षेप हैं और तीसरा है आगमतः भावनिक्षेप। और पहला ज्ञशरीरभव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य निक्षेप है।) व्याख्याकार कहते हैं — तीन में से प्रथम-तृतीय दो अर्थ एवं प्रतीति का स्वरूप पहले काण्ड में और दूसरे काण्ड की ६ गाथा तक कहा जा चुका है। अतः अब अवसरप्राप्त है द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिक स्वरूप जो 15 अभिधान, उस का प्रतिपादन, अथवा अर्थ/प्रतीति का जो वाचक (नाम) है उस का प्रतिपादन सातवीं गाथा से किया जा रहा है — पञ्जवनिस्सामण्णं इत्यादि पदों का अर्थ :- पर्यायों से निष्क्रान्त यानी पर्याय (= विशेष) रहित है सामान्य = संग्रहरूप जिस वचन में वह वचन पर्यायनिःसामान्य वचन है। वह कौन सा वचन है ? उत्तर :- ‘अस्ति’ ऐसा। यह वचन द्रव्यार्थिक का प्रतिपादक = सूचक अथवा द्रव्यार्थिक स्वरूप है। 20

और एक प्रकार से अवयवार्थ :- ‘पर्याय’ का मतलब है द्रव्यत्वादिरूप (अवान्तर) विशेष जो कि यहाँ ऋजुसूत्रनय का विषय नहीं समझना। (ऋजुसूत्र नय शुद्ध विशेषवादी है द्रव्यत्व उस का विषय नहीं।) यही द्रव्यत्वादिरूप विशेष जिस वचन में सामान्यरूप से निश्चित है वैसा वचन है पर्यायनिःसामान्य वचन। (यहाँ ‘नि’ उपसर्ग लेकर ‘निश्चित’ अर्थ किया है, प्राकृतशैली से ‘स्स’ द्विरुक्ति समझना।) मतलब कि द्रव्यत्वादि सामान्यविशेष का प्रतिपादक वचन। यह वचन (किसी रूप से विशेष- 25 निरूपक होने के कारण) अशुद्ध द्रव्यार्थिक सम्बन्धि जानना क्योंकि वह अशुद्धद्रव्यार्थिकरूप है अथवा उस का प्रदर्शक है।

अवशेष वचनविधि का और एक अर्थ :- अवशेष यानी द्रव्यार्थिक स्पर्शरहित जो वचनविधि यानी वर्णानुपूर्वी है वह सप्रतिपक्ष (यानी द्रव्यार्थिक से विपरीत) है यानी द्रव्यार्थिकवचन के प्रतिपक्षरूप पर्यायार्थिकनयरूप अथवा उस का प्रतिपादक है, पर्याय सेवन (पर्याय का आश्रयण) करने से। यदि 30 यह पर्याय = विशेष का नाम नहीं जपेगा तो उसे अवशेष (द्रव्यार्थिकभिन्न) वचनविधि कौन मानेगा ? ॥७॥

[ द्रव्य-पर्याय संकीर्णताबोधार्थं ज्ञानानेकान्तनिरूपणम् ]

एवं तावत् द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकभेदेन भेदमनुभवतां नयानां स्वरूपं प्रतिपाद्य अनेकान्तभावभावनयैवैषां सत्यता नान्यथेत्येतत्प्रतिपादनार्थं ज्ञानानेकान्तमेव तावदाह—

(मूलम्) पज्जवणयवोक्कन्तं वत्थुं दव्वट्टियस्स वयणिज्जं।

5

जाव दविओवओगो अपच्छिमवियप्पनिव्वयणो।।८।।

[ व्याख्या ] द्रव्यास्तिकस्य वक्तव्यं = परिच्छेद्यो विषयः, निश्चयकर्तृ वचनं निर्वचनम्, विकल्पश्च निर्वचनं च विकल्प-निर्वचनम्। न विद्यते पश्चिमं यस्मिन् विकल्पनिर्वचने तत् — तथा, तथाविधं तद् यस्य द्रव्योपयोगस्यासौ अपश्चिमविकल्पनिर्वचनः सङ्ग्रहावसानः इति यावत्, ततः परं विकल्पवचनाऽप्रवृत्तेः। यावद् अपश्चिमविकल्पनिर्वचनो द्रव्योपयोगः प्रवर्तते तावद् द्रव्यार्थिकस्य विषयो वस्तु, तच्च पर्यायाक्रान्तमेव;

10 अन्यता ज्ञानाऽर्थयोरप्रतिपत्तेरसत्त्वप्रसक्तिः। न हि पर्यायाऽनाक्रान्तसत्तामात्रसद्भावग्राहकं प्रत्यक्षमनुमानं वा प्रमाणमस्ति, द्रव्यादिपर्यायाक्रान्तस्यैव सर्वदा सत्तारूपस्य ताभ्यामवगतेः।

यद्वा यद् वस्तु सूक्ष्मतर-तमादिबुद्धिना पर्यायनयेन स्थूल रूपत्यागेनोत्तरतत्तत्सूक्ष्मरूपाश्रयणाद् व्युत्क्रान्तम्

[ द्रव्य-पर्यायो की अवियुक्तताप्रदर्शिता ज्ञान अनेकान्तवाद ]

15 अवतरणिका :- इस प्रकार, द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक के भेद से स्वयं भी भेद धारण करने वाले नयों का स्वरूप दिखाया। अब ८ वीं गाथा से यह दिखाना है कि उन नयों की सत्यता भी अनेकान्त स्वभाव की भावना के द्वारा ही हो सकती है, इस लिये अब ज्ञान में अनेकान्तगर्भता प्रदर्शित करते हैं —

गाथार्थ :- पर्यायनय से आक्रान्त वस्तु द्रव्यार्थिक का ग्राह्य (विषय) है, जहाँ तक अपश्चिम (= चरम) विकल्प-निर्वचन है (वहाँ तक) द्रव्योपयोग होता है।

20 व्याख्यार्थ :- द्रव्यास्तिक का वाच्य (= ग्राह्य) विषय समझने के लिये व्याख्याकार पहले उत्तरार्थ का स्पष्टीकरण करते हैं :- निर्वचन यानी निश्चयकारक वचन। विकल्प और निर्वचन का समाहार द्वन्द्व एकवचन से सूचित किया है। जिस विकल्पनिर्वचन के पश्चिम (उत्तर) में कोई शेष नहीं ऐसे विकल्प-निर्वचन को अपश्चिम कहा गया है। (इस का तात्पर्य यह है कि 'शुक्ल' यह चरम विकल्पवचन है — उस के पहले द्रव्य-मिट्टी-घट ये सब अचरम विकल्पवचन पर्यन्त द्रव्योपयोग है वह द्रव्यास्तिक का विषय समझना।) जो द्रव्योपयोग ऐसे अपश्चिम विकल्प निर्वचनरूप यानी संग्रहणशील (= संक्षेपीकरणरूप या

25 सामान्यीकरणरूप) होता है — जिस के बाद विकल्पवचन (सामान्यीकरण) निरुद्ध हो जाता है ऐसा द्रव्योपयोग द्रव्यार्थिक का वाच्य विषय — वस्तु है और वह अनेकान्तदृष्टि से देखा जाय तो पर्यायाक्रान्त ही होता है। उस के बिना ज्ञान या अर्थ का भान असंभव होने से उन का सत्त्व लुप्त हो जायेगा। ऐसा कोई प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण है नहीं जो पर्यायानासक्त सत्ता (सामान्य) मात्र की हस्ती का बोधक हो। प्रमाणद्वय (प्र० अनु०) से तो सर्वदा द्रव्यादिपर्यायानुषक्त सत्तारूप का ही बोधन किया जाता है।

30

[ जहाँ तक द्रव्योपयोग वहाँ तक द्रव्यार्थिक विषय ]

अथवा, सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतर आदि दृष्टिवाले पर्यायनय ने स्थूलरूपता को छोड़ कर उत्तरोत्तर तत्तत्

= गृहीत्वा त्यक्तम् यथा किमिदं मृत्सामान्यं घटादिभिर्विना प्रतिपत्तिविषयः ? यावत् शुक्लतमस्वरूपोऽन्त्यो विशेषः एतद् द्रव्यार्थिकस्य वस्तु = विषयः यतो यावद् अपश्चिमविकल्पनिर्वचनोऽन्त्यो विशेषः तावद् द्रव्योपयोगः द्रव्यज्ञानं प्रवर्तते, न हि द्रव्यादयो विशेषान्ताः सदादिप्रत्ययाः विशिष्टैकान्तव्यावृत्तबुद्धि-ग्राह्यतया प्रतीयन्ते। न च तथाऽप्रतीयमानास्तथाऽभ्युपगमार्हा अतिप्रसङ्गात् ॥८॥

[ शुद्धद्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकास्तित्वं गगनपुष्पवत् ]

5

तदेवं न सत्ता विशेषविरहिणी, नापि विशेषाः सत्ताविकला इति प्रदर्श्यापसंहरन्नाह-

(मूलम्) दव्वट्टिओ त्ति तम्हा नत्थि णओ नियम सुद्धजाईओ।

ण य पज्जवट्टिओ णाम कोई भयणाय उ विसेसो ॥९॥

तस्माद् द्रव्यार्थिकः इति नयः शुद्धजातीयः विशेषविनिर्मुक्तो नास्ति 'नियमेन' इत्यवधारणार्थः विषयाभावेन विषयिणोऽप्यभावात्। न च पर्यायार्थिकोऽपि कश्चिद् नयः 'नाम' इति प्रसिद्धार्थः नियमेन 10 शुद्धस्वरूपः सम्भवति; सामान्यविकलात्यन्तव्यावृत्तविशेषविषयाभावेन विषयिणोऽप्यभावात्। यदि विषयाभावादिमौ

सूक्ष्मरूप को पकड कर जिस वस्तु का व्युत्क्रमण यानी ग्रहण किया और छोड दिया (यह है पर्यायनय व्युत्क्रान्त वस्तु)। जैसे कि जिज्ञासा की जाय कि यह क्या है ? तब ज्ञाता पहले साधारण यह मिट्टी है - ऐसा द्रव्यबोध करता है, फिर यहाँ से ले कर अपश्चिमविकल्पनिर्वचन तक, यानी अतिअति शुक्ल है वहाँ तक) यह प्रतीति विषयभूत द्रव्य घटादि है, फिर श्वेत है, श्वेततर (= अधिकश्वेत) 15 श्वेततम है... (अत्यन्तश्वेत) है यहाँ तक द्रव्यार्थिक की विषयसीमा है। वहाँ तक द्रव्योपयोग यानी द्रव्यसंबन्धि ज्ञान प्रवृत्त रहता है। यहाँ व्याख्याकार यह स्पष्टता करते हैं कि द्रव्यादि से ले कर अन्त्य विशेष पर्यन्त जो सत्, द्रव्य, मिट्टी, घट शुक्ल शुक्लतर शुक्लतम इत्यादि प्रतीतियाँ हैं वे अन्त्यनयविषय से विनिर्मुक्त एकान्ततः भेदबुद्धि के सम्बन्धिरूप से प्रतीत नहीं होती। जिस रूप से वे प्रतीत नहीं होती उस रूप से वे स्वीकृतिपात्र भी नहीं हो सकती क्योंकि तब शशशींग आदि 20 का भी सत् आदिरूप से स्वीकार्य होने का अनिष्ट प्रसङ्ग होगा।

[ शुद्ध द्रव्यार्थिक शुद्ध पर्यायार्थिक कोई है नहीं ]

अवतरणिका :- इस प्रकार, विशेषवियुक्त कोई सत्ता नहीं होती, और सत्तावियुक्त कोई विशेष नहीं होते - यह निर्दिष्ट कर के अब उपसंहार करते हैं -

गाथार्थ :- इस कारण से नियमतः शुद्धजातीय कोई द्रव्यार्थिक नहीं होता, और पर्यायार्थिक भी 25 नहीं होता। भजना से भेद होता है ॥९॥

व्याख्यार्थ :- एकान्ततः भेद या समानता न होने से, विशेषवियुक्त शुद्धाभिमानजातीय कोई द्रव्यार्थिक नय नहीं ही होता। 'नियम' पद अवधारण का द्योतक है। (नास्ति एव ऐसा समझना) जब विषय (विशेषवियुक्त सत्ता) नहीं है तो विषयी (तद्ग्राहि नय) कैसे होगा ? उपरान्त, यह भी प्रसिद्ध है कि शुद्ध स्वरूपवाला पर्यायार्थिक कहा जाय ऐसा कोई नय नहीं ही है। 'नाम' शब्द इस तथ्य की 30 प्रसिद्धता का द्योतक है। यहाँ भी 'नियम' पद से अवधारण समझ लेना।



नयौ न स्तः यदुक्तम् 'तीर्थकरवचनसंग्रह' — इत्यादि तद् विरुध्यत इत्याह- भयणाय उ विसेसो = भजनायास्तु विवक्षाया एव विशेषः- 'इदं द्रव्यम् — अयं पर्याय' इत्ययं भेदः, तथा तद्भेदाद् विषयिणोऽपि तथैव भेद इत्यभिप्रायः। भजना च — सामान्यविशेषात्मके वस्तुतत्त्वे उपसर्जनीकृतान्वयीरूपं तस्यैव वस्तुनो यदसाधारणं रूपं तद् विवक्ष्यते तदा पर्यायनयविषयस्तद् भवतीति॥९॥

5 [ अन्योन्यनययोः तत्तद्विषययोरवस्तुता ]

एवंरूपभजनाकृतमेव भेदं दर्शयितुमाह—

(मूलम्) द्रव्यद्विवक्तव्यं अवत्थु णियमेण पज्जवणयस्स।

तह पज्जववत्थु अवत्थुमेव द्रव्यद्वियनयस्स॥१०॥

पर्यायास्तिकस्य द्रव्यास्तिकाभिधेयमस्तित्वमवस्तु एव भेदरूपापन्नत्वात्, द्रव्यास्तिकस्यापि पर्यायास्ति-  
10 काभ्युपगता भेदा अवस्तरूपा एव भवन्ति सत्तारूपापन्नत्वात्। अतो भजनामन्तरेणैकत्र सत्ताया अपरत्र च भेदानां नष्टत्वात् 'इदं द्रव्यम् एते च पर्यायाः' इति नास्ति भेदः। न च प्रतिभासमानयोर्द्रव्य-पर्याययोः

शंका :- यदि विषय न होने से शुद्धाभिमानी दो नय नहीं है तो तीर्थकरवचनसंग्रहविशेषप्रस्तारमूलव्याकरणी द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक इत्यादि तीसरी गाथा से जो पहले कह आये हैं उस के साथ विरोध प्रसक्त होगा।

समाधान :- 'भयणाय उ विसेसो' मतलब कि दोनों का विभाग विवक्षाभेदाधीन है, (यानी वास्तविक  
15 नहीं है।) यह द्रव्य और ये पर्याय — ऐसा जो लौकिक या शास्त्रीय विषय या व्यवहारभेद है वह विवक्षाभेद से होता है। विषयभेद से विषयी नयों का भी भेद हो जाता है। यहाँ भजनाशब्द का अर्थ 'विवक्षा' कहा है — उस का स्पष्टीकरण :- वस्तुतत्त्व सामान्य-विशेषात्मक है, जब विशेष को गौण कर के पर्यायों में अनुगत अन्वयी रूप की प्रधानरूप से विवक्षा की जाती है तब 'द्रव्य' कहा जाता है और वह द्रव्यार्थिक का विषय बनता है। जब अन्वयीरूप को गौण करके उसी वस्तु के  
20 असाधारणरूप की विवक्षा की जाय तब वह द्रव्यार्थिक का विषय बनता है॥९॥

[ अन्योन्य नय से तत्तद् विषय की अवस्तुता ]

अवतरणिका :- पूर्वगाथा में भजनाकृत भेद का निर्देश किया है, अब उस के स्वरूप का निरूपण  
90 वीं गाथा में करते हैं —

गाथार्थ :- द्रव्यार्थिक का वक्तव्य पर्यायनय की अवश्य अवस्तु है। तथा पर्यायनय की वस्तु  
25 द्रव्यार्थिकनय की अवश्य अवस्तरूप है॥१०॥

व्याख्यार्थ :- द्रव्यास्तिक प्रतिपाद्य अस्तित्व (= सत्तासामान्य) पर्यायास्तिकनय की दृष्टि में वस्तरूप  
है ही नहीं, क्योंकि वह तो भेदरूप के प्रति झुक कर बैठा है। तथा, पर्यायास्तिक स्वीकृत भेद (= विशेष) द्रव्यास्तिक की दृष्टि में अवस्तरूप (= मिथ्या) ही है क्योंकि वह सत्ता की ओर झुका है।  
ये दोनों जब परस्पर विरुद्ध बिन्दु पर जा बैठे हैं तब भजना ही (विवक्षा ही) यहाँ सामञ्जस्य  
30 कर सकती है। भजना के बिना एक और सत्ता नाशाभिमुख है तो दूसरी ओर भेद नाशाभिमुख हैं, तो 'यह द्रव्य — ये पर्याय' ऐसा भेद (विभाग) कैसे होगा ?

कथं पर्यायास्तिक-द्रव्यास्तिकाभ्यां प्रतिक्षेप इति वक्तव्यम्, यतः प्रतिभासोऽप्रतिभासस्य बाधकः न तु मिथ्यात्वस्य, मिथ्यारूपस्यापि प्रतिभासनात्। तथाहि, पर्यायास्तिकः प्राह — न मया द्रव्यप्रतिभासो निषिध्यते तस्यानुभूयमानत्वात्, किन्तु विशेषव्यतिरेकेण द्रव्यस्याऽप्रतिभासनात् अव्यतिरेके तु व्यक्तिस्वरूपवत् तस्यानन्वयात् उभयरूपतायाश्चैकत्र विरोधात् गत्यन्तराभावात् द्रव्यप्रतिभासस्तत्र मिथ्यैव। विशेषप्रतिभासस्त्वन्यथा, बाधकाभावात्। यतः प्रतिक्षणं वस्तुनो निवृत्तेर्नाशोत्पादौ पर्यायलक्षणं न स्थितिः। द्रव्यार्थिकस्तु भजनोत्थापित- 5 स्वरूपः प्राह— अस्माकमप्ययमेवाभ्युपगमः न विशेषप्रतिभासप्रतिक्षेपः किन्तु तस्य भेदाभेदोभयविकल्पैर्बाध्यमानत्वाद् मिथ्यारूपतैव अभेदप्रतिभासस्तु अनुत्पादव्ययलक्षणस्य द्रव्यस्य तद्विषयस्य सर्वदाऽवस्थितेरबाध्यमानत्वात् सत्य इति॥१०॥

[ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ये नयद्वयस्य स्वस्वाभ्युपगमः ]

कल्पनाव्यवस्थापितपर्यायास्तिक-द्रव्यास्तिकयोरेवंलक्षणप्रदर्शितस्वरूपयोर्मिथ्यारूपताप्रतिपत्तिः सुकरा 10 भविष्यतीत्याह-

शंका :- परीक्षक को द्रव्य एवं पर्याय दोनों का प्रतिभास होता है, तब क्रमशः पर्यायास्तिक और द्रव्यास्तिक कैसे उन का अपलाप कर सकता है ?

उत्तर :- प्रश्न अयोग्य है, प्रतिभास/अप्रतिभास अन्योन्य विरुद्ध है अतः प्रतिभास बाध करेगा तो अप्रतिभास का बाध करेगा, लेकिन द्रव्य या पर्याय के मिथ्यात्व का बाध कैसे करेगा ? प्रतिभास तो 15 मिथ्यारूप का भी होता है। देखिये — (दोनों नय एक दूसरे का विरोध कैसे करते हैं यह देखिये—) पर्यायास्तिक बोलता है — मैं द्रव्यप्रतिभास का इनकार नहीं करता क्योंकि द्रव्यप्रतिभास तो अनुभवगोचर जरूर है, सिर्फ बात यह है कि विशेष से पृथक् द्रव्य का स्वतन्त्र प्रतिभास नहीं होता। यदि अपृथक् रूप से व्यक्तिस्वरूप जैसे व्यक्ति के साथ भासित होता है ऐसे यदि द्रव्य भी अपृथक् रूप से पर्याय के साथ भासित होगा तो मुसीबत यह होगी कि प्रमाणसिद्ध पर्यायों के साथ उस का अन्वय 20 (मेल) तो नहीं हो पायेगा, एक वस्तु में विरुद्ध उभयरूपता भी स्वीकारार्ह नहीं है, आखिर अन्य गति न होने से द्रव्यप्रतिभास को मिथ्या ही करार देना पड़ेगा। विशेष (पर्याय) प्रतिभास को मिथ्या नहीं कह सकते क्योंकि उस का कोई बाधक नहीं है, क्योंकि क्षण-क्षण वस्तु की जो निवृत्ति दिखती है वह सिद्ध करती है कि उत्पत्ति-विनाश पर्याय ही वस्तु का स्वरूप है स्थिति नहीं। भजना जब द्रव्यास्तिक को स्वरूपपृच्छा करती है तो वह कहता है — हमारा भी तुल्यरूप से यही अभिगम है — हम भी 25 विशेषप्रतिभास का इनकार नहीं करते किन्तु विशेष के प्रति द्रव्यभिन्न/द्रव्यअभिन्न विकल्प लगाने पर वह बाधित हो जाता है अतः पर्यायप्रतिभास मिथ्या ही है। अतः उत्पत्ति-व्ययरहित स्थितिरूप अभेद का प्रतिभास तो सत्य ही है क्योंकि उस के विषयभूत द्रव्य की स्थिरता में कोई बाधापादन है नहीं॥१०॥

[ उत्पत्ति-व्यय-स्थिति के बारे में नयद्वय का अभिप्राय ]

द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिक का विभाग तो कल्पनाप्रेरित है और तथाविध अपने अपने लक्षणों के 30 द्वारा उन का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है, उस के आधार पर उन की मिथ्यारूपता की प्रतीति सरलता से हो सकेगी — इस आशय से गाथा ११ में कहते हैं —

(मूलम्-) उप(प्प)ज्जन्ति वियन्ति य भावा नियमेण पज्जवणयस्स।

दव्वट्टिअस्स सव्वं सया अणुप्पन्नमविणट्ठं ॥१११॥

उत्पद्यन्ते = प्रागभूत्वा भवन्ति विशेषेण निरन्वयरूपतया गच्छन्ति = नाशमनुभवन्ति भावाः =  
पदार्थाः — नियमेन इत्यवधारणे पर्यायनयस्य मतेन — प्रतिक्षणमुत्पाद-विनाशस्वभावा एव भावाः पर्याय-  
5 नयस्याभिमतः। द्रव्यार्थिकस्य सर्वं वस्तु सदा अनुत्पन्नमविनष्टम् आकालं स्थितिस्वभावमेवेति मतम्।  
एतच्च नयद्वयस्याभिमतं वस्तु प्राक् प्रतिपादितमिति न पुनरुच्यते ॥१११॥

परस्परनिरपेक्षं चोभयनयप्रदर्शितं वस्तु प्रमाणाभावतो न सम्भवतीत्याह—

(मूलम्) दव्वं पज्जवविउयं दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि।

उप्पाय-ट्टिइ-भंगा हंदि दवियलक्खणं एयं ॥११२॥

10 दव्वं पर्यायवियुक्तं नास्ति मृत्पिण्ड-स्थास-कोश-कुशूलाद्यनुगतमृत्सामान्यप्रतीतेः। द्रव्यविरहिताश्च पर्यायाः  
न सन्ति अनुगतैकाकारमृत्सामान्यानुविद्धतया मृत्पिण्ड-स्थास-कोश-कुशूलादीनां विशेषाणां प्रतिपत्तेः। अतो  
द्रव्यार्थिकाभिमतं वस्तु पर्यायाक्रान्तमेव न तद्विविक्तम्, पर्यायाभिमतमपि द्रव्यार्थानुषक्तं न तद्विकलम्,  
परस्परविविक्तयोः कदाचिदप्यप्रतिभासनात्। किंभूतं पुनर्द्रव्यमस्तीत्याह — उत्पाद-स्थिति-भङ्गा यथाव्यावर्णित-

गाथार्थ :- पर्यायनय में नियमतः भावों का उत्पत्ति-व्यय चलता है। द्रव्यार्थिक नय में हरहमेश

15 सब कुछ उत्पत्तिविनाशरहित है ॥१११॥

व्याख्यार्थ :- पर्यायनय अभिमत पदार्थ नियमतः (अवश्य) उत्पन्न होते हैं यानी पूर्व में न हो  
कर वर्तमान में होते हैं तथा विशेषरूप से यानी निरन्वय (विना कारण) चले जाते हैं, नाश का  
अनुभव करते हैं। मतलब भाव क्षण-क्षण में उत्पत्ति-विनाशधर्मी होते हैं। द्रव्यार्थिक मत में सर्व वस्तु  
सदा के लिये अनुत्पन्न अविनष्ट होती है, सर्वकाल में स्थिर स्वभाव होती है ॥१११॥

20 [ द्रव्य का लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रुवता ]

अवतरणिका :- दो नय के द्वारा निरूपित वस्तु परस्परनिरपेक्ष नहीं हो सकती, परस्परनिरपेक्ष  
होने पर उस का साधक कोई प्रमाण न होने से एकान्त वस्तु की संगति नहीं हो सकती यह तथ्य  
१२ वीं गाथा से कहते हैं —

गाथार्थ :- पर्यायविहीन द्रव्य नहीं होता, पर्याय द्रव्यविहीन नहीं होता। उत्पाद-स्थिति-व्यय यह  
25 द्रव्य का सही लक्षण है ॥११२॥

व्याख्यार्थ :- द्रव्य कभी पर्यायमुक्त नहीं हो सकता, मिट्टी-तास-कोश-कुशूल इत्यादि विशेषों में मिट्टी  
समानरूप से प्रतीत होती है। पर्याय कभी द्रव्यरहित नहीं रह सकते। सर्व में अन्तर्भूत एकाकार मिट्टीरूप  
सामान्य से अनुविद्ध हो कर ही मिट्टी-तास-कोश-कुशूल आदि विशेषरूपों की प्रतीति होती है। सारांश,  
द्रव्यार्थिकमान्य (द्रव्य) वस्तु पर्यायानुषक्त ही होती है, पर्यायरहित नहीं होती, एवं पर्यायास्तिकमान्य  
30 (पर्याय) वस्तु द्रव्यरूप अर्थ से अनुविद्ध ही होती है, उस से रहित नहीं, कभी भी द्रव्य-पर्याय एक  
दूसरे से पृथक् भासित नहीं होती। 'द्रव्य का स्वरूप कैसा है' — इस प्रश्न के उत्तर में उत्तरार्थ  
में कहते हैं — परस्पर अपृथग्भाव से रहने वाले उत्पाद-स्थिति-व्यय — जिन का स्वरूप पहले कहा

स्वरूपाः परस्पराविनिर्भागवर्तिनः, 'हन्दि' इत्युपप्रदर्शने, द्रव्यलक्षणं = द्रव्यास्तित्वव्यवस्थापको धर्मः एतद् दृश्यताम्, यतः पूर्वोत्तरपर्यायपरित्यागोपादानात्मकैकान्वयप्रतिपत्तिः तथाभूतद्रव्यसत्त्वं प्रतिपादयतीत्युत्पाद-व्ययध्रौव्यलक्षणं वस्त्वभ्युपगन्तव्यम्। एतच्च त्रितयं परस्पराणुविद्धम् अन्यतमाभावे तदितरयोरप्यभावात्।

[ सविस्तरं उत्पादादेरन्योन्याविनाभावित्वोपपादनम् ]

तथाहि- न ध्रौव्यव्यतिरेकेण उत्पाद-व्ययौ सङ्गतौ, सर्वदा सर्वस्यानुस्यूताकारव्यतिरेकेण विज्ञान- 5 पृथिव्यादिकस्याऽप्रतिभासनात्। न चानुस्यूताकारावभासो बाध्यत्वादसत्यः तद्बाधकत्वानुपपत्तेः। यतोऽ-नुस्यूताकारस्य विशेषप्रतिभासो बाधकः परिकल्प्येत, स एव चानुपपन्नः। तथाहि- अनुगतरूपे <sup>A</sup>प्रतिपन्ने<sup>B</sup>ऽप्रतिपन्ने वा विशेषावभासोऽभ्युपगम्येत ? यदि <sup>A</sup>प्रतिपन्ने तदा <sup>B</sup>किमनुस्यूतप्रतिभासात्मको विशेषप्रतिभासः, उत <sup>B</sup>तद्व्यतिरिक्त इति कल्पनाद्वयम्। <sup>A</sup>यद्यव्यतिरिक्तः तदा ध्रौव्यावभासस्य मिथ्यात्वे विशेषावभासस्यापि तदात्मकत्वाद् मिथ्यात्वापत्तेः कथमसौ तस्य बाधकः ? अथ <sup>B</sup>द्वितीयो विकल्पस्तत्रापि ध्रौव्यप्रतिभासमन्तरेण 10 स्थास-कोशादिप्रतिभासस्य तद्व्यतिरिक्तस्याऽसंवेदनात् कथं तद्बाधकतोपपत्तिः ? न चाक्षव्यापारानन्तर-मन्वयप्रतिभासमन्तरेण विशेषप्रतिभास एवोपजायत इति वक्तव्यम् प्रथमाक्षव्यापारे प्रतिनियतदेशवस्तुमात्रस्यैव जा चुका है — वही द्रव्य का लक्षण है, मतलब द्रव्य के अस्तित्व को निश्चित करानेवाला धर्म है — यह समझ लो। कारण :- पूर्वपर्याय त्याग — उत्तरपर्यायग्रहण उभयात्मक एक अन्वयी तत्त्व की प्रतीति तथाविध (त्रितय युक्त) द्रव्य के सत्त्व का स्पष्ट निर्देश करती है, अतः वस्तु का उत्पाद- 15 व्यय-स्थिति रूप लक्षण स्वीकार लेना चाहिये। उत्पादादि तीनों ही एक-दूसरे से मिले-जुले ही होते हैं, उन में से एक के भी न होने पर अन्य दो भी नहीं रह पायेंगे।

[ उत्पादादि तीनों के अविनाभावित्व का उपपादन ]

उत्पादादि तीन का अनुषंग किस तरह है यह देखिये — ध्रुवता के बिना उत्पाद-व्यय सिद्ध नहीं हो सकते। कारण:- कभी किसी को अनुगत आकार विहीन विज्ञान या पृथ्वी आदि भेदों का प्रतिभास 20 नहीं होता। नहीं कह सकते कि 'अनुगताकार बाध्य होने से असत्य है' — क्योंकि उसका कोई बाधक प्रमाणोपलब्ध नहीं है। यदि कल्पना कर ले कि विशेषप्रतिभास अनुगताकार (= सामान्य तत्त्व) का बाधक है — तो वह भी संगत नहीं। देखिये — <sup>A</sup>ज्ञात अनुगताकार के बाद बाधक विशेषप्रतिभास होगा या <sup>B</sup>अज्ञात अनुगताकार के ? यदि ज्ञात होने के बाद, तो वह विशेष प्रतिभास <sup>B</sup>अनुगताकारप्रतिभास से अभिन्न होगा या <sup>B</sup>भिन्न ? ये जो दो कल्पना है उसमें अभिन्न कल्पना मान लेंगे तो यह विपदा 25 आयेगी कि अनुगताकारप्रतिभास (यानी ध्रुवता का भान) को यदि मिथ्या मानेंगे तो तदात्मक होने से विशेषप्रतिभास में भी मिथ्यात्व प्रसक्ति होगी। फिर वह मिथ्या प्रतिभास दूसरे का बाधक बनेगा कैसे ? यदि वह विशेष प्रतिभास सामान्यप्रतिभास से भिन्न होगा तो ऐसा होगा कि मिट्टीतत्त्व के ध्रुवता-प्रतिभास के बिना मिट्टी अन्तर्भूत स्थास, कोशादि के प्रतिभासों का स्वतन्त्ररूप से प्रतिभास का संवेदन न होने के कारण जो है नहीं वह बाधक कैसे होगा ? 30

[ इन्द्रियसंनिकर्ष के बाद अन्वयभान की उपपत्ति ]

यदि कहें कि — 'इन्द्रियव्यापार उत्तरक्षण में अन्वयि तत्त्व प्रतिभास न हो कर विशेष प्रतिभास ही निपजता है' — तो ऐसा मत बोलना, क्योंकि प्रथम प्रथम इन्द्रियसंनिकर्ष से तो प्रतिनियत देश

प्रतीतेः, अन्यथा तत्र विशेषावभासे संशयाद्यनुत्पत्तिप्रसक्तिः, विशेषावगतेस्तद्विरोधित्वात्। न च तदुत्तरकाल-  
भाविषादृश्यनिमित्तैकत्वाध्यवसायनिबन्धनेयं संशयाद्यनुभूतिः, प्राग् विशेषावगमे एकत्वाध्यवसायस्यैवाऽ-  
सम्भवात्। अनुभूयते च दूरदेशादौ वस्तूनि सर्वजनसाक्षिकी प्राक् सामान्यप्रतिपत्तिः, तदुत्तरकालभाविनी  
च विशेषावगतिः। अत एव अवग्रहादिज्ञानानां कालभेदानुपलक्षणेऽपि क्रमोऽभ्युपगन्तव्यः, उत्पलपत्रशत-  
5 व्यतिभेद इव।

द्वितीयविकल्पोऽप्यत एवाऽनभ्युपगमार्होऽनुगताकाराऽप्रतिपत्तौ तद्विशेषावभासस्याऽसम्भवादिति। न  
हि मूल-मध्याग्रानुस्यूतस्थूलैकाकारप्रतिभासनिह्नवे विविक्ततत्परमाणुप्रतिभासाऽनपह्नव इति कुतस्तस्य स्वविषय-  
व्यवस्थापनद्वारेणान्यबाधकत्वम् ? न चैकत्वप्रतिभासस्य मिथ्यात्वम् तद्विषयस्य विकल्प्यमानस्याऽघट-  
मानत्वादिति वक्तव्यम्, विकल्पमात्रात् प्रमाणस्यान्यथात्वाऽयोगात्। न चानुगतावभासस्याऽप्रामाण्यम्,  
10 तन्निबन्धनाभावात्। न च क्षणिकानेकनिरंशपरमाणवभावसस्तन्निबन्धनम्, तस्याभावात्। न ह्यसंवेद्यमानस्त-  
थाभूतावभासः प्रमाणम् इतरद् वा, प्रतीतिधर्मत्वात् प्रमाणेतरयोः। न च सञ्चितपरमाणुनिबन्धन एवायमनुस्यूत-  
में अवस्थित वस्तुसामान्य की ही प्रतीति होती हैं। यदि ऐसा नहीं माने तो वहाँ पहले से विशेषप्रतिभास  
मान लेने पर संशय की उत्पत्ति कभी कभी होती है वह होगी ही नहीं। कारण :- विशेषभान संशय  
का विरोधी है। शंका :- इन्द्रियसंनिकर्षजन्य विशेषभान के बाद होनेवाले सादृश्यमूलक एकत्वाध्यवसाय  
15 के कारण संशयादि अनुभूति हो सकती है।

उत्तर :- पहले ही यदि विशेषभान हो गया तो बाद में एकत्व के अध्यवसाय का संभव ही  
नहीं रहता। यह सर्वजनअनुभवगोचर है कि वस्तु दूरदेश में हो तब पहले उस का सामान्यबोध ही  
होता है, विशेषभान तो आगे बढने पर बाद में होता है। इसी लिये तो इन्द्रियजन्य मतिज्ञान में  
प्रथमतः अपाय नहीं हो जाता किन्तु अवग्रह इहा अपाय क्रमशः ही होते हैं भले उन में कालभेद  
20 उपलक्षित न होता हो, वह मानना ही पडेगा, जैसे कमल के शत पत्रों के वेध की घटना में क्रम  
उपलक्षित न होने पर भी क्रम माना जाता है।

### [ सामान्यअबोधदशा में विशेषभान असंभव ]

प्रथम सामान्य बोध फिर विशेषबोध यह सर्व जनानुभवसिद्ध है इसी लिये मूल दूसरा विकल्प,  
अनुगताकार अज्ञात रहने पर विशेष का बोध, यह विकल्प स्वीकृतिपात्र नहीं है, क्योंकि जिस वस्तु  
25 का अनुगताकार अज्ञात है उस के विशेषाकार का भान असम्भव है। यदि मूल-मध्य-अग्र भागों में  
ओतप्रोत स्थूल-एक सामान्याकार वस्तु के भान का अपलाप कर देंगे तो पृथक्-पृथक् उस वस्तु के  
परमाणु के अवबोध का अपलाप सुतरां हो कर रहेगा, इस स्थिति में विशेषावबोध (जो स्वयं सिद्ध  
नहीं है) अपने विषय की स्थापना के द्वारा अन्य (सामान्यबोध) का बोध कैसे करेगा ? 'एकत्वबोध  
तो मिथ्या है क्योंकि उस का विषय (सामान्य) विकल्पशाण के ऊपर खरा नहीं उतरता' — ऐसा  
30 मत कहना क्योंकि यह भी आप का एक विकल्पमात्र ही है उस से प्रमाण को उलटाया नहीं जा  
सकता। अनुगतप्रतीति में अप्रामाण्य नहीं है क्योंकि अप्रामाण्य का वहाँ कोई प्रयोजक (बाध प्रतीति  
आदि या विसंवाद आदि) नहीं है। क्षणिक-अनेक-निरंश परमाणु के अवभास को अनुगतप्रतीति के अप्रामाण्य

स्थूलावभासः, सञ्चितेष्वपि तेषु प्रत्येकं समुदितेषु वा स्थूलरूपतायाः परेणानभ्युपगमात्, सञ्चयस्य च वस्तुरूपस्यैकस्य द्रव्यपक्षोक्तदोषप्रसक्तितोऽनिष्टेः । न चाऽन्यथावभासोऽन्यथाभूतार्थव्यवस्थापकः अतिप्रसक्तेः । तत्रालंबनप्रत्ययतया परमाणवः स्थूलावभासजनकाः तत्र स्वरूपानर्पकत्वेनाऽप्रतिभासनात् । स्थूलाकारस्य वा तेष्वनुस्यूतज्ञानावभासिनो भावेऽनुगतव्यावृत्तहेतुफलरूपभावाभ्युपगमात् परवादाभ्युपगमप्रसक्तिः ।

यदि च स्तम्भादिप्रतिभासो मिथ्या तर्हि 'अतथाभूते तथाभूतारोपणं मिथ्या' इत्यन्यथाभूतवस्तुसद्भावावेदकं प्रमाणं वक्तव्यम् । तच्च न प्रत्यक्षम् उक्तोत्तरत्वात् । नाप्यनुमानम् क्षणिक-परस्परविविक्तपरमाणुस्वभाव-भावकार्याऽदर्शनात् स्थूलैकस्वभावस्य चोपलभ्यमानस्य न तत्कार्यत्वम्, तस्याऽवस्तुसत्त्वेन परैरभ्युपगमात् । न चाऽवस्तुसत् कस्यचिद् व्यवस्थापकम् अतिप्रसङ्गात् । वस्तुसत्त्वेऽपि न तस्य क्षणिकविविक्त-परमाणुव्यवस्थापकत्वम् तस्य तद्विरुद्धत्वात् । न हि पावकप्रतिभासो जलव्यवस्थापकत्वेन प्रसिद्धः ।

का प्रयोजक नहीं कह सकते, क्योंकि वैसा कोई परमाणु अवभास प्रमाणसिद्ध नहीं है । असंवेद्यमान परमाणु-अवभास को प्रमाण या मिथ्या नहीं बता सकते क्योंकि प्रामाण्य/अप्रामाण्य प्रतीतिधर्म है, परमाणु प्रतीत ही नहीं है तो उस के प्रामाण्य की चर्चा ही कैसे ?

### [ स्थूलावभास समुदितपरमाणुमूलक नहीं है ]

यदि अनुगत स्थूलावभास को परमाणुसञ्चयमूलक बताया जाय तो वह जूठा है क्योंकि स्थूलरूपता न तो सञ्चित एकैक परमाणु में आप को स्वीकार्य है न तो समुदितपरमाणुवृन्द में, फिर स्थूलरूपता का बोध होगा ही कैसे ? यदि आप परमाणुसञ्चय को एक वस्तुरूप मान लेंगे तो स्थूल-एकद्रव्य वाद पक्ष में आपने जो दोषारोपण किया है वह सब अब आप के पक्ष में प्रसक्त होगा — जो आप को इष्ट नहीं है । एकप्रकार का बोध अन्य प्रकार के अर्थ का निश्चायक नहीं बन सकता, अन्यथा अर्थ का बोध गधे का निश्चायक हो जायेगा — यह अतिप्रसंग होगा । फलितार्थ :- परमाणु स्वविषय प्रतीतिमात्र से स्थूलाकार बोध का कारण नहीं हो सकते क्योंकि वे (परमाणु) बोध में अपने आकार का (स्थूलाकार का) अर्पण करते हो ऐसा दिखता नहीं है । यदि आप मान लेंगे कि परमाणु में, अनुगताकार ज्ञान में भासमान स्थूलाकार की वास्तविक सत्ता है, तब तो अनुगताकारबोध जो कारण है और व्यावृत्ताकार बोध जो फल है — इस हेतु-फल भाव का स्वीकार कर लेने पर प्रतिवादीमत का स्वीकार ही गले पड़ेगा ।

### [ स्थूल-एक स्तम्भादि के प्रतिभास में मिथ्यात्व अप्रमाण ]

स्थायित्ववादी उत्पाद-व्ययवादी को पूछता है क्या स्तम्भादि प्रतिभास मिथ्या है ? मिथ्या की व्याख्या है अतथाभूत (शुक्ति आदि) में तथाभूत (रजनादि) का आरोपज्ञान । यदि स्तम्भादि भान मिथ्या है तो वह 'अतथाभूतवस्तुसत्' हो ऐसा घोषित करनेवाला प्रमाण दिखाना चाहिये । वह प्रमाण प्रत्यक्ष हो सकता है ? नहीं, पहले ही उस का कारण कह दिया है । क्या अनुमान है ? नहीं, विधिसाधक अनुमान स्वभावलिंगक या कार्यलिंगक होता है, यहाँ स्तम्भादि वस्तु में क्षणिक परस्पर भिन्न परमाणु स्वभाव रूप लिंग का अथवा वैसे तथाविध परमाणु के किसी कार्य लिंग का उपलम्भ है नहीं । क्या स्थूल-एक उपलभ्यमान (स्तम्भादि) उन परमाणुओं का कार्य लिंग है ? नहीं, क्षणिक वाद में स्थूल

न च वनादिप्रत्ययतः शिंशपादिविशेषावगतिरिवात्रापि भविष्यतीति वक्तव्यम्, शिंशपादेः प्राक् प्रतिपत्तेर्वनादेश्च तद्धर्मतया वस्तुत्वात् परमाणूनां न कदाचनानपि प्रतिपत्तिः। नापि तद्धर्मतया वस्तुत्वाभ्युपगमः स्थूलस्य पराभ्युपगमविषयः, वस्तुत्वाभ्युपगमे तु तस्य स्यात् सूक्ष्मव्यवस्थापकता, सूक्ष्मापेक्षितत्वात् स्थूलस्य, अन्यथा तदयोगात्। सूक्ष्मपर्यन्तरूपश्च परमाणुः, तस्याभेद्यत्वात्। भेद्यत्वे वाऽवस्तुत्वापत्तेः तदवयवानां परमाणु-  
5 त्वापत्तिः, भेदपर्यन्तलक्षणत्वात् परमाणुस्वरूपस्य।

न च ध्रौव्योत्पत्तिव्यतिरेकेण प्रतिक्षणविशाररुताऽणूनामपि सम्भवति। तयोरभावे एकक्षणस्थिति-  
नामपि तेषामभावात् कुतो विनश्वरत्वम् ? अथ देश-कालनियतस्य स्थैर्याभावेऽपि क्वचित् कदाचित्  
पदार्थस्य वृत्तेरन्यदाऽन्यत्र च निवृत्तिः। नैतदेवम्, अन्यदाऽन्यत्र चाऽवृत्तेरेवाऽनिश्चयात्। तथाहि— कार्य-

एक अवयवी रूप कार्य अवस्तुभूत होने से स्वीकार्य नहीं है। अवस्तु किसी का निश्चायक (= साधक)  
10 नहीं हो सकता। अन्यथा शशसींग भी गोशुंग का साधक बन बैठेगा। यदि स्थूल पदार्थ वस्तुभूत  
मान लेंगे तो भी वह क्षणिक परस्परभिन्नपरमाणु का साधक नहीं हो सकता क्योंकि तब हेतु ही विरुद्ध  
होगा। (स्थूल स्थायि एक कार्य क्षणिक भिन्न सूक्ष्म का विरोधी है।) अग्नि का प्रतिभास कभी स्वविरुद्ध  
जल का निश्चायक हो नहीं सकता। शंका :- जैसे स्थूल एक भासमान जंगल की प्रतीति से सीसम  
आदि विशेषों का बोध होता है वैसे यहाँ भी स्थूल कार्य भान से क्षणिक परमाणु आदि विशेषों  
15 का अवबोध क्यों नहीं होगा ? उत्तर :- इस लिये कि वहाँ पहला बोध सीसम आदि का होता  
है, बाद में समूहात्मक जंगल का उन के धर्मरूप से, क्योंकि समूहात्मक वन तो सीसम आदि का  
धर्म है, और दोनों ही वस्तु है एवं प्रत्यक्ष है। एक अवस्तु, दूसरी वस्तु ऐसा नहीं है।

दूसरी और परमाणुओं का तो कभी भी प्रत्यक्ष बोध होता नहीं है। तथा, क्षणिकवाद में परमाणुओं  
के धर्मरूप से स्थूल में वस्तुत्व का स्वीकार किया नहीं जाता। हाँ यदि स्थूल को (अवयवी को)  
20 वस्तुरूप स्वीकारा जाय तो उस के सूक्ष्म अवयवरूप से परमाणुओं की निश्चायकता मानी जा सकती  
है, क्योंकि स्थूल हमेशा सूक्ष्मसापेक्ष ही होता है, अन्यथा सूक्ष्मता की संगति ही नहीं होगी। सूक्ष्मता  
की चरम सीमा ही परमाणु हैं, क्योंकि वह अभेद = अविभाज्य है। अथवा उसे विभाज्य मानेंगे तो  
उन में अवस्तुत्व की आपत्ति होगी। स्थूल एवं परमाणु से अतिरिक्त हो वह शशसींगवत् अवस्तु होती  
है। तथा, परमाणु का भी भेद होने पर उन के अवयवों में ही वास्तव परमाणुत्व संगत होगा, क्योंकि  
25 भेद की चरम सीमा ही परमाणु का स्वरूप होता है।

स्थैर्य एवं उत्पत्ति के बिना प्रतिक्षणविनाश भी अणुओं का सिद्ध नहीं होगा, उत्पत्ति के बिना  
अणु ही नहीं होगा तो विनाश किस का ? स्थैर्य के बिना एक क्षण अवस्थिति कैसे रहेगी ? इन  
दोनों के अभाव में विनश्वरता कैसे घटेगी ? शंका :- प्रत्येक अणु की नियतदेशीयता और नियतकालता  
स्वभावतः ही होती है। अतः बिना स्थैर्य के नियत देश-काल में स्वभावमूलक परमाणु की वृत्ति हो  
30 जायेगी, अन्य देशकाल में उन का विरह रहेगा। उत्तर :- यह शंका वास्तविक नहीं है, अन्य देश-  
काल में विरह का निश्चय कौन कैसे करेगा ? देखिये — कार्य-कारण (पूर्वक्षण की और उत्तर क्षण  
की वस्तु) में परस्परभेद किस तरह मानेंगे ? क्या यह भेद कथंचित् ओतप्रोत एक आकार धारण

कारणयोः परस्परतो व्यावृत्तिः कथञ्चिदनुस्यूतमेकमाकारं बिभ्रतोर्विज्ञानग्राह्यग्राहकाकारयोरिवापरित्यक्तादात्म्यस्वरूपयोः, आहोस्वित् घट-पटयोरिवात्यन्तभिन्नस्वरूपयोः इत्यत्र न निश्चयः।

किञ्च, प्रत्यक्षेणैव हेतु-फलयोः कथञ्चित्तादात्म्यस्य निश्चयाद् न घट-पटयोरिवात्यन्तव्यावृत्तिस्तयोः परस्परतोऽभ्युपगन्तव्याः। न ह्यध्यक्षतः प्रसिद्धस्वरूपं वस्तु तद्भावे प्रमाणान्तरमपेक्षते, अग्निरिवोष्णत्व-निश्चये। न च कालभेदान्यथानुपपत्त्या प्रतिक्षणं भेदेऽपि पूर्वोत्तरक्षणयोः कथञ्चित्तादात्म्यं वस्तुनो विरुध्यते 5 येनाध्यक्षविरुद्धो निरन्वयविनाशः कल्पनामनुभवति, अध्यक्षविरोधेन प्रमाणान्तरस्याऽप्रवृत्तेः। न चानुवृत्ति-व्यावृत्त्योः परस्परं विरोधैकान्ताभ्युपगमे विज्ञानमात्रमपि सिध्येदिति कुतः क्षणस्थितिर्भावानां निरन्वया व्यावृत्तिर्वा सिद्धिमासादयेत् ? अन्तर्बहिश्च भावानामनुगत-व्यावृत्तात्मकत्वात् प्रमाणतस्तथैवानुभवात् तत्स्वरूपभावे निःस्वभावतया भावाऽभावप्रसक्तेः। यदि च परस्परव्यावृत्तस्वभावानां परमाणूनां कथञ्चिदनुवृत्त-

करनेवाले, तादात्म्य का सर्वथा त्याग न करनेवाले, कार्य-कारण दोनों के बीच होगा, जैसे कि कथञ्चिदेकाकार 10 ग्राह्य-ग्राहक उभयरूप विज्ञान में होता है ? या फिर घट-वस्त्र की तरह सर्वथा भिन्न स्वरूप कार्य-कारण के बीच होगा ? — इस तरह कोई निश्चय नहीं है अत एव अन्य देश-काल में अवृत्ति स्वीकारपात्र नहीं रहती।

### [ कारण-कार्य में अंशतः भेदाभेद का समर्थन ]

यह भी अनुभवसिद्ध है — उपादान कारण और कार्य (मिट्टी एवं घट) में प्रत्यक्ष से ही अंशतः 15 तादात्म्य निश्चित होता है। अतः घट-वस्त्र की तरह उन में परस्पर अत्यन्त भेद स्वीकारार्ह नहीं है। जिस वस्तु का स्वरूप प्रत्यक्षप्रसिद्ध है उस के निर्णय के लिये अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं रहती, उदा० अग्नि के स्पर्शन प्रत्यक्ष से उष्णता का निश्चय हो जाने के बाद अन्य प्रमाण की खोज करनी पडती नहीं। हाँ, कालभेद (यानी वस्तु में अतीतादि अवस्थाभेद), वस्तु में प्रतिक्षण परिवर्तन के स्वीकार के बिना घट नहीं सकता, तथापि पूर्वोत्तर क्षण में वस्तु का तादात्म्य या एकत्व विरोधाक्रान्त नहीं 20 है जिस से कि प्रत्यक्षविरुद्ध निरन्वयनाश की कल्पना का शरण लेना पड़े, जहाँ प्रत्यक्ष का विरोध है वहाँ अन्य प्रमाण आगे आने का साहस नहीं करता। फलतः सिद्ध होता है कि प्रत्येक वस्तु में कथञ्चित् अनुवृत्ति (= एकत्व) एवं व्यावृत्ति (= भेद) अपने आप रहते हैं। यदि उन में एकान्ततः विरोधापादन करेंगे तो विज्ञान की सिद्धि में भी (ग्राह्याकार-ग्राहकाकार विरोध प्रसक्त होने से) बाधाप्रवेश के कारण उस की भी सिद्धि नहीं हो सकेगी, तो फिर भावों का क्षणभंग एवं निरन्वयनिवृत्ति (विज्ञान 25 के बिना) कैसे सिद्धि-आरोहण कर पायेंगे ? भाव मात्र का बाह्य या भीतरी स्वरूप अनुवृत्ति-व्यावृत्ति उभयात्मक होता है, प्रमाण से उसी प्रकार का अनुभव भी होता है, यदि फिर भी उभयात्मकता नहीं मानना है तो भावों के स्वरूप के बारे में कोई निश्चय न होने पर, स्वभावहीनता प्रसक्त होने से वस्तुमात्र का उच्छेद प्रसक्त होगा।

### [ अंशतः स्थूलता के अस्वीकार में बहुत नुकसान ]

परस्पर भिन्न व्यक्तित्ववाले पुञ्जभूत परमाणुओं में यदि कथञ्चित् अनुस्यूत एक स्थूलाकार को वास्तविक नहीं मानेंगे तो बाह्य किसी भी पदार्थ का प्रत्यक्ष अवभास होगा नहीं, क्योंकि जब प्रत्येक



स्थूलैकाकारः पारमार्थिको न भवेत् न किञ्चिद् बहिरध्यक्षेऽवभासेत, परमाणु-पारिमाण्डल्य-नानात्व-परोक्षस्वभावत्वस्वभावानां सञ्चितेष्वप्यणुषु स्थूलैकाकाराध्यक्षस्वभावेन विरोधात्, अविरोधे वाऽनेकान्त-त्वप्रसक्तेः तथाभूतस्वभावसद्भावेऽपि तेषु पारिमाण्डल्य-नानात्व-परोक्षत्वस्वभावानपायात्।

- अपाये वा परमाणुरूपतात्यागात् स्थूलैकाकारस्य तेषु सांवृतत्वे साकाराऽध्यक्षाजनकत्वेन न किञ्चिदपि तत्र प्रतिभासेत। तदनध्यक्षत्वे तत्रत्यनीकस्य स्वभावस्य पारिमाण्डल्यादेश्चक्षुरादिबुद्धौ रसादेरिवाऽप्रतिभासनाद् बहिरर्थप्रतिभासशून्यं जगद् भवेत्। स्थूलैकाकारग्राह्यवभासस्य च भ्रान्तत्वे न किञ्चिद् कल्पनापोहं प्रत्यक्षमभ्रान्तं भवेत्। तदभावे च प्रमाणान्तरस्याप्यप्रवृत्तेरन्तर्बाह्यरूपस्य प्रमेयस्याऽव्यवस्थितेर्न कस्यचिदभ्यु-पगमः प्रतिकेपो वेति निर्व्यापारं जगद् भवेत्। तस्मात् क्षणस्थितिधर्मणोऽपि बाह्यान्तर्लक्षणस्य वस्तुनः परस्परव्यावृत्तपरमाणुरूपस्य कथंचिदनुवृत्तिरभ्युपगन्तव्या, अन्यथा प्रतिभासविरतिप्रसक्तेः। तदभ्युपगमे च 10 परस्परव्यावृत्तयोर्हेतु-फलयोरपि प्रत्यक्षगता अनुगतिरभ्युपगमनीयैव। कल्पनाज्ञाने भ्रान्तसंविदि वा स्वसंवेदनापेक्षया विकल्पेतरयोर्भ्रान्तेतरयोश्च परस्परव्यावृत्तयोराकारयोः कथञ्चिद् अनुवृत्तिमभ्युपगच्छन् कथमध्यक्षां हेतु-

अणुओं में स्वतन्त्र मिजाज है जैसे सूक्ष्मता-अणुपरिमाण-पृथक्त्व-परोक्षता आदि, तब हजारों समुदित परमाणु भी मिल कर अपने मिजाज से विरुद्ध एकस्थूलाकार-प्रत्यक्षत्व की प्राप्ति नहीं कर सकते। यदि उन मिजाजों में विरोध नहीं स्वीकारेंगे तो आप का प्रवेश होगा अनेकान्तवाद भवन में, क्योंकि स्थूलतादि 15 स्वभाव के रहते हुए भी सूक्ष्मता-अणुपरिमाण-वैविध्य एवं परोक्षस्वभावता को कोई हानि नहीं पहुँचती।

### [ एक-स्थूलाकार को भ्रान्त मानने पर प्रत्यक्षलोपापत्ति ]

यदि कुछ हानि समझ कर, परमाणु में अणुरूपता के त्याग से स्थूलरूपता के प्रवेश को काल्पनिक कहने का साहस करेंगे तो सूक्ष्मपरमाणु साकार प्रत्यक्ष का जनक न हो सकने से प्रत्यक्ष में कुछ भासेगा ही नहीं। स्थूलाकार प्रत्यक्ष के अभाव में, उस के विरोधी स्वभाववाले अणुपरिमाणादि का 20 भी चाक्षुषादिबोध में रसादि की तरह प्रतिभास नहीं हो सकने से, सारा जगत् बाह्यार्थावभासशून्य बन जायेगा। एक स्थूलाकारग्राहि प्रत्यक्ष को भ्रान्त मानने पर तो (स्थूल भिन्न आकारग्राहि किसी अभ्रान्त प्रत्यक्ष की हस्ती न होने से) 'कल्पनामुक्त अभ्रान्त' लक्षणवाले प्रत्यक्ष का ही लोप हो जायेगा। प्रत्यक्ष का लोप होने पर, तदाधारित सकल अन्य प्रमाणों की भी गति न हो पाने से बाह्य-अन्तर किसी भी प्रमेय का निश्चय नहीं हो सकेगा, फलतः किसी वस्तु का स्वीकार या प्रतिकार अशक्य बन 25 जाने से पूरा जगत् व्यवहारशून्य हो जायेगा।

### [ भिन्न भिन्न परमाणुओं में पूर्वापर अनुवृत्ति का समर्थन ]

अत एव क्षणिकस्थितिधर्मी बाह्य-अभ्यन्तरस्वरूप अन्योन्यभिन्न परमाणुरूप वस्तु में अंशतः अनुवृत्ति (= एकत्व) का भी स्वीकार करना ही पडेगा। अन्यथा, परमाणु प्रतिभास-अयोग्य होने से प्रतिभासलोप प्रसंग खडा होगा। प्रतिभास यदि मानना है तो परस्परभिन्नांशवाले उपादान-कार्यों में प्रत्यक्षगृहीत कुछ 30 अनुवृत्ति भी स्वीकारनी ही होगी। बौद्धवादी कल्पनाज्ञान अथवा भ्रान्तबोध में स्वसंवेदन की अपेक्षा निर्विलपता एवं अभ्रान्तता, विषय की अपेक्षा विकल्परूपता और भ्रान्तता — इस प्रकार परस्परविरुद्ध दो आकारों में अंशतः अभेद का जब स्वीकार करता है तो प्रत्यक्षसिद्ध पूर्वापर हेतु-फलक्षणों में अंशतः

फलयोरनुवृत्तिं प्रतिक्षिपेत् ? संशयज्ञानं वा परस्परव्यावृत्तोल्लेखद्वयं बिभ्रद् यद्येकमभ्युपगम्यते कथं न पूर्वापरक्षणप्रवृत्तमेकं हेतुफलरूपं वस्तु ?

शब्द-विद्युत्-प्रदीपादीनामप्युत्तरपरिणामाऽप्रत्यक्षत्वेऽपि तस्य सद्भावोऽभ्युपगन्तव्यः । पारिमाण्डल्यादि-वत् संविद्ग्राह्याकारविवेकवद् वाऽध्यक्षस्यापि केनचिद्रूपेण परोक्षता, अविरोधात् । न च पारिमाण्डल्यादेः प्रत्यक्षतेति वाच्यम्, शब्दाद्युत्तरपरिणामेऽप्यस्य वक्तुं शक्यत्वात् विशेषाभावात् । अत एव अन्ते क्षयदर्शनात् 5 प्रागपि तत्रप्रसक्तिरिति न वक्तव्यम्, मध्ये स्थितिदर्शनस्य पूर्वापरकोटिस्थितिसाधकत्वेन प्रसिद्धेः । न हि शब्दादेरनुपादाना उत्पत्तिर्युक्तिमती, नापि निरन्वया सन्ततिविच्छित्तिः, चरमक्षणस्याऽकिञ्चित्करत्वेऽवस्तुत्वापत्तितः पूर्व-पूर्वक्षणानामपि तदापत्तितः सकलसन्तत्यभावप्रसक्तेः । न च शब्दादेर्निरुपादानोत्पत्त्यभ्युपगमेऽन्येषामपि सा सोपादानाऽभ्युपगन्तुं युक्ता । तथा च सुप्तप्रबुद्धबुद्धेरपि निरुपादानोत्पत्तिप्रसक्तिः, तत्रापि शब्दादेरिव

अभेद का इनकार कैसे कर सकता है ? तथा परस्पर विरुद्ध कोटिद्वय के उल्लेखवाले संशयज्ञान को 10 यदि एक = अभिन्न मानता है तो पूर्वापरक्षणवृत्ति हेतुफल को एक वस्तु मानने में क्यों डरता है ?

### [ शब्द-विद्युत्-प्रदीपादि में उत्तरपरिणामतः स्वैर्य ]

हालाँकि शब्द-विद्युत्-प्रदीपादि में क्षणभंगुरता दिखती है, किन्तु ऐसा एकान्त नहीं है । शब्द उत्पन्न होते ही सुन लिया, बाद में उस का प्रतिघोष भी सुनने को मिलता है — मतलब मध्य क्षण में भले वह प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु नष्ट भी नहीं है, अत एव उस का उत्तर परिणाम प्रतिघोष सुनाई 15 देता है । विद्युत् का चमकार दिखता है, बाद में नहीं दिखता किन्तु जमीन पर कहीं उस के गिरने से बड़ा गर्त बन जाता है अतः चमकार के बाद भी उस का उत्तर परिणाम मौजूद है । प्रदीप में तो अन्तिम दीप ज्योत तक उत्तरोत्तर परिणाम स्पष्ट ही दिखाई देता है । दूसरी ओर, जिस को आप प्रत्यक्ष कहते हैं वह भी किसी रूप से परोक्ष होता है जैसे पारिमाण्डल्य (= अणुपरिमाण) अथवा संवेदन और ग्राह्य आकारों का भेद । (बौद्ध मत में अणु को स्वलक्षण को प्रत्यक्ष मानते हैं, उसके 20 परिमाण को नहीं । तथा संवेदन स्वप्रत्यक्ष माना जाता है किन्तु उस से ग्राह्य-ग्राहकाकार के भेद को प्रत्यक्ष नहीं माना जाता ।) यदि कहें कि अणु के साथ उस के पारिमाण्डल्य का भी हम प्रत्यक्ष मान लेंगे — अच्छा ! तब तो शब्दादि के साथ हम उन के उत्तर परिणाम को भी प्रत्यक्ष मान लेंगे, अनुभवबाह्यता तो दोनों ओर रहती है, कोई फर्क नहीं ।

जैसे आपने उत्तर परिणाम का अस्तित्व मान लिया, वैसे हम अन्तिमपल में नाश के दर्शन 25 से पूर्व-पूर्व क्षणों में भी नाश को मान लेंगे — ऐसा मत बोलना, क्योंकि तब मध्य क्षणों में स्थिति के दर्शन में, पूर्वोत्तर काल-कोटि में भी स्थितिसाधकता प्रसक्त होने पर उस की भी प्रसिद्धि आ पड़ेगी । शब्दादि की बिना उपादान उत्पत्ति शक्य नहीं है, युक्तिसंगत भी नहीं है । निरन्वय सन्तानोच्छेद भी युक्तियुक्त नहीं । यदि अन्तिम क्षण अर्थक्रियाकारी न होने से असत् ठहरेगा । फलतः उपात्त क्षण भी बिना अर्थक्रिया के असत् ठहरेगा...इस तरह पूर्व-पूर्व सभी क्षणों में अवस्तुत्व आपत्ति आने से पूरे 30 सन्तान में (प्रत्येक क्षणों में) असत्त्व की आपत्ति होगी । यदि बौद्धवादी शब्दादि की निरुपादान उत्पत्ति मानते हैं तब तो घटादि की भी सोपादान उत्पत्ति नहीं मानना चाहिए । मतलब कि सो कर जागनेवाले

प्रागुपादानाऽदर्शनात् । न चानुमीयमानमत्रोपादानम्, शब्दादावपि तथाप्रसङ्गात् ।

- न च 'दृष्टस्यार्थस्याखिलो गुणो दृष्ट एव' इति परिणामसाधनं निरवकाशम्, दृष्टेष्यर्थे पारिमाण्ड-  
ल्यादेर्ग्राह्याकारविवेकादेर्वांशस्याऽदृष्टत्वेनानुमीयमानत्वात्, एवं च परिणामसाधनं निरवद्यमेव । यदि हि  
दृष्टस्याऽदृष्टोऽंशः सम्भवति कथमुत्पन्नस्वभावस्यानुत्पन्नः कश्चानात्मा न सम्भवी ? स्वभावभेदस्य भाव-  
5 भेदसाधनं प्रत्यनैकान्तिकत्वेन प्रदर्शितत्वात् । तस्माद् वस्तु यद् नष्टं तदेव नश्यति नङ्क्यति च, यदुत्पन्नं  
तदेवोत्पद्यते उत्पत्स्यते च कथञ्चित्, यदेव स्थितं तदेव तिष्ठति स्थास्यति च कथंचिद् इत्यादि  
सर्वमुपपन्नमिति भावस्योत्पादः स्थितिविनाशरूपः विनाशोऽपि स्थित्युत्पत्तिरूपः स्थितिरपि विगमोत्पादात्मिका  
कथंचिदभ्युपगन्तव्या ।

- सर्वात्मना चोत्पादादेः परस्परं तद्वत्तश्च यद्यभेदेकान्तो भवेत् नोत्पादादित्रयं स्यादिति न कस्यचित्  
10 कुतश्चित् तद्वत्ता नाम । न च वस्तुशून्यविकल्पोपरचितत्रयसद्भावात्तद्वत्ता युक्ता अतिप्रसङ्गात्, खपुष्पादेरपि  
की प्रथम बुद्धि की भी बिना उपादान ही उत्पत्ति माननी पडेगी क्योंकि वहाँ भी शब्दादि की तरह  
कोई पूर्व-उपादान नहीं दिखता है। यहाँ उपादान का अनुमान करेंगे तो शब्दादि के पूर्व में भी उपादान  
का अनुमान करना होगा।

### [ वस्तु का पूर्वोत्तरपरिणाम-साधन सयुक्तिक ]

- 15 शंका :- जो प्रत्यक्षीकृत अर्थ है उस का कोई अंश अदृष्ट नहीं छूट जाता, उस के पूरे गुण-  
अंशो का प्रत्यक्ष हो जाता है। अतः दृष्ट वस्तु के उत्तरपरिणाम का साधन व्यर्थ है। उत्तर :- नहीं,  
अर्थ का प्रत्यक्ष करने पर भी उस के पारिमाण्डल्य अंश का, अथवा संवेदन का स्वप्रत्यक्ष करने पर  
भी ग्राह्याकारों के भेद अंश का दर्शन हो नहीं जाता इसीलिये तो उस का अनुमान किया जाता  
है। इस प्रकार वर्तमानदृष्ट वस्तु का उत्तरपरिणाम अदृष्ट रह जाने से उस का साधन दोषमुक्त ही  
20 है। यदि दृष्ट वस्तु का भी पारिमाण्डल्यादि अदृष्ट अंश सम्भव है तो उत्पन्न स्वभावी वस्तु का भी  
कोई अनुत्पन्नस्वरूप अंश क्यों संभव नहीं होगा ? 'स्वभाव भेद होने पर भाव-भेद अवश्य होता  
है' — इस नियम में व्यभिचार का प्रदर्शन पहले क्षणिकतावादनिरसन में किया जा चुका है। निष्कर्ष :-  
जिस वस्तु को नष्ट माना जाता है वह भी कुछ अंश में वर्तमान में नाश-अनुभव कर रही है एवं  
कुछ अंश में भविष्य में नाशाधीन होगी जरूर। इसी तरह, जो वस्तु उत्पन्न है वह भी अन्य कुछ  
25 अंश से उत्पन्न हो रही है, एवं अन्य अन्य अंशो से भविष्य में उत्पन्न होनेवाली है। तथैव, जो  
वस्तु अतीत में स्थिर थी वह वर्तमान में स्थितिभोग कर रही है और भविष्य में कथंचित् स्थिर  
रहनेवाली है। यह सब त्रितयात्मक युक्तिसिद्ध हो जाता है। इस प्रकार, वस्तु का उत्पाद कथंचित्  
स्थिति-विनाश से अभिन्न है, विनाश भी स्थिति-उत्पत्ति से कथंचिद् अभिन्न है, स्थिति भी कथंचिद्  
उत्पत्तिविनाश से अभिन्न है — ऐसी वस्तुमात्र की त्रितयरूपता कथंचिद् स्वीकारार्ह है।

- 30 [ उत्पादादि तीन में एकान्त से भेद या अभेद दुर्घट ]

उत्पादादि तीनों में तथा उत्पादादिशाली वस्तु में यदि परस्पर सर्वथा अभेद भी नहीं होता।  
यदि एकान्त अभेद होगा तो 'तीन' नहीं होंगे, न तो कोई किसी से तद्युक्त होगा, क्योंकि एकान्त

ततस्तद्वत्ताप्रसक्तेः। न चोत्पादादेः परस्परतः तद्वत्तश्च भेदैकान्तः, सम्बन्धाऽसिद्धितो निस्स्वभावताप्रसक्तेः।

एतेन उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययोगाद् यदि असतां सत्त्वम् शशशृंगादेरपि स्यात् सतश्चेत् स्वरूपसत्त्वमा-  
यातम्। तथोत्पाद-व्यय-ध्रौव्याणामपि यद्यन्यतः सत्त्वम् अनवस्थाप्रसक्तिः, स्वतश्चेद् भावस्यापि स्वत एव  
तद् भविष्यतीति व्यर्थमुत्पादादिकल्पनम् एवं तद्योगेऽपि वाच्यम्'... इत्यादि यदुक्तम् तन्निरस्तं दृष्टव्यम्  
एकान्तभेदाभेदपक्षोदितदोषस्य कथंचिद्भेदाभेदात्मके वस्तुन्यसम्भवात्। न हि भिन्नोत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययोगाद् 5  
भावस्य सत्त्वमस्माभिरभ्युपगम्यते किन्तु 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययोगात्मकमेव सत्' इत्यभ्युपगमः।

विरोधादिकं चात्र दूषणं निरवकाशम्, अन्तर्बहिश्च सर्ववस्तुनस्त्रयात्मकस्याऽबाधिताध्यक्षप्रतिपत्ति-  
विषयत्वात् स्वरूपे विरोधाऽसिद्धेः, अन्यथाऽतिप्रसक्तेः। एकान्तनित्यानित्यस्य प्रमाणबाधितत्वात् अनुभवरूपस्य  
चाऽसम्भवात्, शून्यताया निषेत्स्यमानत्वात्, पारिशेष्यात् कथंचिद् नित्यानित्यं वस्तु अबाधितप्रमाणगोचर-

अभेद होने पर कोई सम्बन्ध ही नहीं घटेगा। शंका :- एकान्त अभेद मानेंगे और वस्तुअस्पर्शी विकल्प 10  
के जादु से 'तीन' की रचना एवं कल्पितसम्बन्ध से तद्युक्तता भी घट जायेगी। उत्तर :- नहीं, विकल्प  
का जादु चलाने पर तो शशसींग को खपुष्पमाला-परिधान आदि अतिप्रसंग होता रहेगा। तथा, उत्पादादि  
तीन का परस्पर एकान्त भेद एवं तीन से युक्त वस्तु का एकान्तभेद भी मान नहीं सकते क्योंकि  
यहाँ भी सम्बन्ध न घटने से घटादि में अवस्तुत्व की घुस होगी।

उपरोक्त निरूपण से यह एक कथन भी निरस्त हो जाता है — कथन :- उत्पाद-नाश-स्थिरता 15  
के योग से आप किस का सत्त्व मानेंगे ? असत् का या सत् का ? यदि असत् का, तो शशसींग  
आदि का भी सत्त्व प्रसक्त होगा। यदि पूर्व में सत् का, तो मतलब उत्पादादि योग के बिना भी  
पूर्व वस्तु में स्वरूपतः सत्त्व मौजूद है फिर उत्पादादि का क्या प्रयोजन ? तथा उत्पादादि तीन स्वतः  
सत् हैं या अन्य (उत्पादादि) के योग से ? यदि अन्य योग से, तो उन का भी अन्य योग से...  
इस तरह अनवस्था दोष लगेगा। यदि वे तीन स्वतः ही सत् हैं तो उन के योग के बिना वस्तु 20  
में भी स्वतः ही सत्त्व रह पायेगा — अतः उत्पादादि की कल्पना निष्फल है। इसी प्रकार, उत्पादादि  
के योग से वस्तु का सत्त्व मानने पर भी उक्त दोष समझ लेना।

निरसन :- यह सब जो कहा है वह सब पूर्वोक्त भेदाभेद के प्रतिपादन से निरस्त हो जाता  
है। एकान्त भेद या एकान्त अभेद पक्ष में जो दोष लगाये जाते हैं वे कथंचिद् भेद-अभेद स्वरूप  
वस्तु मानने पर सम्भव नहीं होते। हम ऐसा नहीं कहते कि पृथक् पृथक् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के योग 25  
से भाव 'सत्' होता है। हम तो मानते हैं कि जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य योगात्मक होता है वह 'सत्'  
होता है।

अनेकान्तवाद में भेदाभेद उभय मानने पर जो विरोध संकर आदि दोष-संभावना करते हैं वे  
निरवकाश हैं। जब भीतर में या बाहर, जब वस्तुमात्र में उत्पादादित्रयात्मकता निर्बाधप्रत्यक्षप्रतीतिगोचर  
है तब तथाविध स्वरूप में कोई कल्पित विरोधादि दोषों को स्थान नहीं है। बलात् दोष निवेदन 30  
करेंगे तो सर्वत्र दोष-दोष ही शेष बचेगा। सारांश, वस्तु को एकान्ततः नित्य या अनित्य मानने में  
प्रमाणबाध है, अनुभयस्वरूप का सम्भव नहीं है, आखिर शून्यता मान ले तो उस का भी अग्रिम

मभ्युपगन्तव्यम् ।

- अत एव 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्' (तत्त्वार्थ. ५-२९) इति सल्लक्षणम् अन्यस्य तल्लक्षणत्वानुपपत्तेः । न तावत् सत्तायोगः सत्त्वम्, सामान्यादिनाऽव्यापकत्वात् निषिद्धत्वाच्च सत्तायास्तद्योगस्य वेति । नाप्यर्थक्रिया-लक्षणं सत्त्वम् नश्वरैकान्ते तस्याऽसम्भवात् तस्य क्वचिदप्यभावात् । उत्पाद-स्थितिस्वभावरहितस्य नश्वरत्वे
- 5 खपुष्पादेरेव तत् स्यात् न घट-सुखादेः, क्षणस्थितिरेव जन्म विनाशश्च यद्यभ्युपगम्येत कथमनेकान्तसिद्धिर्न स्यात् ? न च क्षणात् पूर्वमस्थितौ भावानां किञ्चित् प्रमाणमस्तीति प्रतिपादितम् । न चाऽवस्थितावपि न प्रमाणमिति वक्तव्यम्, प्रत्यक्षस्य तत्र प्रमाणत्वात् । न च सदृशापरापरोत्पत्तिविप्रलम्भादनवधारितक्षण-क्षयस्यैकत्वप्रतिपत्तिर्भ्रान्तेति वक्तव्यम्, निरन्वयविनाशप्रसाधकप्रमाणाभावात् । न चाऽक्षणिके क्रम-यौगपद्या-भ्यामर्थक्रियाविरोधात्ततो निवर्त्तमानं सत्त्वं निरन्वयविनश्वरस्वभावमिति सत् क्षणिकमेवेति प्रमाणम्, क्षणिकेपि
- 10 ग्रन्थ में निषेध किया जायेगा, तब यही विकल्प बचा कि वस्तु को कथंचित् नित्यानित्य माना जाय जिस में निर्बाध प्रमाण विषयता अक्षुण्ण है ।

### [ सत्त्व का श्रेष्ठ लक्षण उत्पादादित्रय ]

- एकान्ततः भेद या अभेदादि दुर्घट है इसी लिये जो तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में श्वेताम्बरशिरोमणिआचार्य उमास्वातिजी ने 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त सत्' ऐसा सत् का लक्षण निर्देश किया है, उत्पादादि को
- 15 छोड़ कर और किसी (सत्ता सामान्यादि) में सत् का लक्षण घट नहीं सकता । सत्तासामान्य के योग से सत्त्व नहीं घट सकता क्योंकि इस वह लक्षण की सामान्यादि में व्याप्ति नहीं है, एकान्त सामान्य का निषेध हो चुका है और एकान्त सामान्य का सत् आदि में योग भी दुर्घट है । अर्थक्रिया को भी सत् का लक्षण नहीं कह सकते क्योंकि एकान्त नश्वर (क्षणिक) पक्ष में अर्थक्रिया सम्भवित नहीं है यह पहले कहा जा चुका है । कहीं भी तथाविध सत्ता का अस्तित्व नहीं है । उत्पत्ति-स्थितिविहीन
- 20 नश्वरता तो सिर्फ गगनपुष्पादि में ही कदाचित् हो सकती है, सदभूत घट-सुखादि में नहीं । यदि क्षणिक स्थिति को ही आप उत्पत्ति-विनाशात्मक मान लेंगे (जिस से घट-सुखादि में वह घट सके) तो अनेकान्तवादसिद्धि अनायास हो जायेगी । तथा, यह पहले ही कह दिया है कि क्षण के पूर्वकाल में किसी वस्तु की स्थिति नहीं होती इस बात में कोई प्रमाण नहीं । 'स्थिति होने में भी क्या प्रमाण है कोई नहीं' — ऐसा मत कहना क्योंकि पहले प्रत्यक्ष प्रमाण का सबूत दिया जा चुका है ।

### 25 [ सदृश अपरापरक्षणप्रेरित एकत्व भ्रान्ति का निरसन ]

- ऐसा नहीं कहना कि — 'उत्तरोत्तर नये सदृश घटादि क्षणों की उत्पत्ति की श्रेणि चलती रहती है उस से छलित दृष्टा को क्षणभंग का निश्चय न होने से एकत्व की भ्रान्ति हो जाती है' — निषेध का कारण :- प्रतिक्षण निरन्वयनाश को सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है । यदि ऐसा तर्क-प्रमाण दिखाया जाय कि — अक्षणिक पदार्थ में क्रमशः अथवा युगपद् अर्थक्रिया को मानने में खूब विरोध
- 30 आता है, अतः अक्षणिक पदार्थ से पराङ्मुख बने हुए सत्त्व को आखिर निरन्वय क्षणभंग स्वभाववाला ही स्वीकारना पड़ेगा, अतः जो सत् है वह क्षणिक ही होता है — तो यह प्रमाण ।' — तो यह बेकार है, सच तो यह है कि क्षणिक पदार्थ में भी तथोक्त प्रकार से अर्थक्रिया का विरोध प्रसक्त

तथैवार्थक्रियाविरोधात्। तथाहि— क्षणिकत्वे कार्य-कारणयोर्योगपद्येन कुतः कार्य-कारणभावव्यवस्था ? क्रमोत्पादे हेतोरसतः कुतः फलजनकत्वम् ?

निरन्वयविनाशाभ्युपगमे चानन्तरं विनष्टस्य चिरतरविनष्टस्य च विनष्टत्वाऽविशेषात् चिरतरविनष्टादपि कार्योत्पत्तिप्रसक्तिः। भावस्य हि विद्यमानत्वाद् अनन्तरकार्योत्पादनसामर्थ्यम् न व्यवहिततदुत्पादनसामर्थ्यम् इति विशेषो युक्तः न पुनरभावस्य, निःस्वभावत्वाऽविशेषात्। अनेकान्तवादिना हि कथंचिद् भेदाभेदौ 5 हेतु-फलयोर्व्यवस्थापयितुं शक्यौ संवेदनस्य ग्राह्य-ग्राहकाकारयोरिव। भेदाऽभेदैकान्तौ तु परस्परतो न विशेषमासादयत इति न निरन्वयनाशव्यवस्था नित्यताव्यवस्था वा कर्तुं शक्या। यतो न क्षणिकपक्षेऽपि सत्ताव्यतिरेकेण अपरा अर्थक्रिया सम्भवति सा चाऽक्षणिकेऽपि समाना। यथा हि क्षणिकस्य स्वसत्ताकाले कुर्वतोऽपि कार्यं स्वत एव न भवति, भावे वा कार्य-कारणयोर्योगपद्येन न कार्य-कारणव्यवस्था। नापि 10 होता है। देखिये — यदि क्षणिकवाद में कारण कार्य का योगपद्य मानेंगे तो कौन कारण कौन कार्य यह निश्चय ही शक्य नहीं बनेगा। क्षणिक कारण से क्रमशः कार्योत्पत्ति असम्भव है क्योंकि एक क्षण के बाद जिस का खुद का अस्तित्व ही नहीं है वह क्रमशः पहले-दूसरे-तीसरे आदि क्षणों में फलोत्पादन करेगा ही कैसे ?

### [ क्षणिकवाद में चिरविनष्टवस्तु से कार्य की आपत्ति ]

वस्तुमात्र का दूसरे क्षण में निरन्वय विनाश माननेवाले बौद्ध मतवादी को यह भी आपत्ति होगी 15 — दीर्घ भूतकाल में विनष्ट घटादि से वर्तमान में जलाहरणादि कार्य हो जायेगा। कारण :- समकालीन कारण-कार्यभाव ही मान्य है। कार्यक्षण में कारण विनष्ट होता है फिर भी उसे वर्तमान कार्य का उत्पादक माना जाता है। वर्तमान में जैसे पूर्वक्षण विनष्ट है वैसे ही बिना फर्क पूर्वतरादि हजारों क्षण भी विनष्ट हैं विनष्ट विनष्ट में कोई तफावत नहीं होता सब असत् हैं, तो विनष्ट पूर्व क्षण की तरह विनष्ट हजारों पूर्वतरादि क्षणों से भी कार्य क्यों उत्पन्न नहीं होगा ? हाँ, भावों में यह 20 तफावत होता है — जो भाव विद्यमान है वह निरन्तर उत्तरकाल में कार्योत्पत्ति के लिये समर्थ होता है, वह यदि कार्य से क्षेत्र-काल से दूर व्यवहित होता है तो उस में व्यवहितकार्योत्पादन सामर्थ्य नहीं होता, क्योंकि उस का समर्थ स्वभाव देश-कालमर्यादित होता है। अभाव (नाश) में ऐसी विशेषता नहीं होती क्योंकि उस में कोई स्वभाव ही नहीं होता। अनेकान्तवाद में कारण-कार्य में कथंचिद् भेदाभेद की व्यवस्था सुकर है जैसे संवेदन में ग्राह्याकार-ग्राहकाकार के भेदाभेद की व्यवस्था की जाती है। 25 एकान्त भेद या अभेद पक्षों में कारण-कार्य में कोई स्पष्ट विशेषता का निश्चय नहीं होने से एकान्त निरन्वयनाश अथवा एकान्त नित्यता की संगतव्यवस्था हो नहीं सकती। चाहे क्षणिकवाद हो या नित्यवाद, सत्ता को छोड़ कर और कोई अर्थक्रिया होती नहीं है।

### [ अक्षणिक पक्ष में कार्यों की स्वनियतकाल व्यवस्था सुघट ]

जैसे क्षणिक भाव अपनी सत्ता के काल में कार्य (अर्थक्रिया) करता है फिर भी स्वतः (अपनी मौजूदगी 30 में) ही कार्योत्पत्ति हो नहीं जाती। अगर स्वतः ही हो जायेगी तो कारण-कार्य समकालीन बन जाने पर सव्येतर (दायें-बायें) गो-विषाणवत् उन में 'यह कारण यह कार्य' ऐसी विभक्त व्यवस्था नहीं हो पायेगी,

सन्तानव्यवस्था भवेत्। किन्तु कार्यस्य स्वकालनियमात् तत्तदभावाऽविशेषेऽपि द्वितीय एव क्षणे भावः तथा अक्षणिकस्यापि प्रागपि विवक्षितकार्योत्पादनसामर्थ्यं ततो भवत् कार्य स्वकालनियतमेव भविष्यतीति समानं पश्यामः।

5 न चाऽसति कारणविनाशे कार्योत्पत्तिर्न भवतीत्यत्र निबन्धनं किञ्चिदस्ति येनाऽक्षणिकात् कार्योत्पत्तिर्न भवेत्। यदि चाऽक्षणिकस्य कार्योत्पत्तिक्षणे स्थितिः कार्योत्पत्तिप्रतिबन्धहेतुः एवं क्षणिकस्यापि तदा तदभावः किं न प्रतिबन्धहेतुर्भवेत् ? यदि च कारणविनाशे कार्योत्पत्तिः स प्रागिव चिरतरविनष्टे कारणेऽस्तीति तदापि कार्योत्पत्तिः स्यात्। अथ कार्योत्पत्तिकालेनैव कारणसन्धिरेपयोगः, ननु कारणव्यावृत्तेरपि तदुत्पत्तिकाले नैव कश्चिदुपयोगः यतः कारणव्यावृत्तौ कार्यं भवेत्। कारणव्यावृत्तिश्च तदभावः स च प्राक् पश्चादपि कालान्तरेऽस्त्येवेति सर्वदा कार्योत्पत्तिप्रसक्तिरित्युक्तम्।

10 न च कारणस्य प्राग्भावित्वमात्रं कार्योत्पत्तावुपयोगः तस्याऽकारणाभिमतेष्वपि जगत्क्षणेभ्यु भावात्, तथा सभी कार्य समानक्षणवृत्ति हो जाने से सन्तानव्यवस्था भी नहीं बनेगी — किन्तु कार्य तो अपने नियत काल में (उत्तरक्षण में) ही होता है, मतलब उस वक्त पूर्वक्षणादि तत्तत् सभी क्षणों का अभाव रहने पर भी कार्य तो स्वपूर्वक्षणरूप कारण के उत्तर क्षण में ही होता है, ठीक ऐसे ही अक्षणिक वस्तु में शुरु से अन्त तक किसी अभिप्रेत कार्योत्पादन का सामर्थ्य रहते हुए भी, अक्षणिक भाव से होनेवाला कार्य

15 अपने नियत (तत्तत् काल) क्षणों में ही उत्पन्न होता है — इस प्रकार कार्यों की स्वनियतकालीन उत्पत्ति क्षणिकवाद या अक्षणिकवाद दोनों पक्षों में समानतया हो सकती है यह हम सब को दृष्टिगोचर है।

### [ कारणव्यावृत्ति की कार्योत्पत्ति के लिये निरुपयोगिता ]

कारणविनाश कार्योत्पत्तिकाल में होना ही चाहिये वह नहीं होगा तो कार्योत्पत्ति रुक जायेगी — इस बात में कोई तर्क नहीं है जिस से कहा जा सके कि अक्षणिक से (दूसरे क्षण में कारणनाश

20 न होने से) कार्योत्पत्ति नहीं होगी। कार्योत्पत्ति क्षण में अक्षणिक पदार्थ की स्थिति यदि बिना तर्क के कार्योत्पत्ति में प्रतिबन्धक मान ली जाय तो उस काल में क्षणिक भाव का अभाव भी कार्योत्पत्ति प्रतिबन्धक क्यों न माना जाय ? यदि कहें कि कारणनाश के रहते ही कार्योत्पत्ति हो सकती है, तब तो पूर्वक्षण की तरह चिरतरविनष्ट कारण के बाद भी कारणविनाश है तो उस वक्त कार्योत्पत्ति चिरतरविनष्ट कारण से भी मान लेनी पड़ेगी। यदि कहें कि कार्योत्पत्तिकाल में कारणसन्धि उपयोगी

25 नहीं है तो उस की सत्ता क्यों मानना ? तब यह भी कहो कि कार्योत्पत्तिकाल में कारणव्यावृत्ति (ध्वंस) भी उपयोगी नहीं है जिस से कि कार्य उत्पन्न करने के लिये कारणव्यावृत्ति की गरज रहे। कारणव्यावृत्ति क्या है — कारण का अभाव, वह तो पूर्व या उत्तर काल में सदा के लिये है, तो हरहमेश उस के रहते हुए कार्योत्पत्ति का अनिष्ट प्रसक्त होगा — यह सब पहले कह दिया है।

### [ अक्षणिक भाव में कारणतासिद्धि से परिणामवाद सिद्धि ]

30 यदि कहें कि कार्य के लिये कारण का इतना उपयोग है कि पूर्वावस्थिति, तो सारे पूर्वक्षण के जगत् में कारणता प्रसक्त होगी, यद्यपि पूरा पूर्वक्षण का जगत् किसी एक कार्य का कारण नहीं होता किन्तु पूर्वावस्थित होता है। यदि उन से कारण को पृथक् दिखाने के लिये कोई अगोचर विशेष

तद्विशेषकल्पनायास्त्वक्षणिकेष्वप्यविरोधात्। तथाहि— यद् यदा यत्र कार्यमुत्पित्सु तत् तदा तत्रोत्पादनसमर्थम-  
क्षणिकं वस्त्विति कल्पनायां न काचित् क्षतिः। न च स्वयमेव प्रतिनियतसमयस्य कार्यस्योत्पत्त्यभ्युपगमे  
न किञ्चित् कारणाभिमतभावेन तस्य कृतमिति न तत्कार्यतया तद्व्यपदेशमासादयेदिति वक्तव्यम्,  
(अ)क्षणिकपक्षेऽप्यस्य समानत्वात्। तस्मात् कथञ्चिद् व्यवस्थितस्यैव भावस्य जन्म-विनाशयोर्दर्शनाद्  
यथादर्शनं हेतु-फलभावव्यवस्थितेः परिणामसिद्धिः समायाता।

5

न चाऽभेदबुद्धिभ्रान्ता, भेदबुद्धावपि तत्प्रसक्तेः, स्वप्नावस्थाहस्त्यादिभेदबुद्धिवत्। न च मिथ्याबुद्धीना-  
मपि विसंवादो भावमात्रे, भेदेष्वेव तद्दर्शितेषु विप्रतिपत्त्युपलब्धेः। तस्मादक्षणिकत्वे क्रम-योगपद्याभ्यामर्थ-  
क्रियाविरोधात् क्षणिकत्वमभ्युपगच्छन् क्षणिकानामर्थक्रियादर्शनमभ्युपगच्छेत्, अन्यथा सत्त्वादेर्हेतोर्विपक्ष-  
व्यावृत्तिप्रसाधिकाया अनुपलब्धेर्व्यतिरेकसिद्धेः, अक्षणिकत्वेऽर्थक्रियाविरोधः क्षणिकत्वेऽर्थक्रियोपलम्भमन्तरेण  
कथं सिद्धिमासादयेत् ? न चाऽक्षणिकेऽर्थक्रियाविरोधादेव क्षणिकेऽर्थक्रियोपलब्धिः, इतरेतराश्रयप्रसक्तेः।  
[?? तथाहि— विपक्षे प्रत्यक्षवृत्तेरनुपलब्धेर्व्यतिरेकसिद्धिः। तत्र प्रत्यक्षवृत्तिरक्षणिकत्वेऽर्थक्रियाविरोधात्

10

कारण में स्वीकारा जाय तो अच्छा है कि वह विशेष अक्षणिक में ही विरोध न होने से मान लिया  
जाय। कैसे यह देखिये — जो कोई कार्य जब जहाँ उत्पत्त्यभिमुख होगा उसे वहाँ उस काल में उत्पन्न  
करने के लिये अक्षणिक वस्तु समर्थ होगी — ऐसा मान लेने में कोई हानि नहीं है। शंका :- प्रतिनियतकाल  
में स्वतः ही कार्यात्पत्ति मान ले तो ? कारणरूप से अभिप्रेत भाव ने तो कार्य के लिये कुछ किया  
ही नहीं, फलतः वह अमुक कारण का कार्य है ऐसा व्यवहार भी नहीं बच पायेगा, अतः कारणता  
की सुरक्षा के लिये क्षणिक पदार्थ में कुछ विशेष मानना पडेगा। उत्तर :- यही बात अक्षणिक पक्ष  
के लिये भी समानतया कही जा सकती है। सारांश, कथञ्चिद् स्थिरभाव के ही उत्पत्ति-विनाश दृष्टिगोचर  
होते हैं, तो दर्शन के अनुरूप ही कारण-कार्य भाव का स्वीकार करना चाहिये — इस प्रकार परिणामवाद  
की सिद्धि फलित होती है।

15

20

### [ अभेदबुद्धि हरहमेश भ्रान्त नहीं होती ]

अभेदबुद्धि को भ्रान्त कहना गलत है, भेदबुद्धि में भी भ्रान्तता का प्रवेश सम्भव है, जैसे स्वप्नावस्था  
में हाथी-बैल इत्यादि में भेदबुद्धि भ्रान्त होती है। जो मिथ्याबुद्धियाँ कही जाती है वे भी भावसामान्यग्राही  
होने में कोई विसंवाद नहीं है, विसंवाद तो मिथ्याज्ञानप्रदर्शित भेदों के बारे में होता है। अतः जो बौद्धवादी  
अक्षणिक में क्रमिक या युगपद् अर्थक्रिया के विरोध से डर कर क्षणिकत्व का स्वीकार करने को त्वरा  
करता है उस को पहले तो क्षणिक वस्तु में अर्थक्रिया का दर्शन सिद्ध करना होगा। अन्यथा, सत्त्व हेतु  
की विपक्ष (अक्षणिक) से व्यावृत्ति की साधक जो अनुपलब्धि है वह विपक्ष की तरह पक्ष में भी जाग्रत्  
होने से विपक्षमात्र से सत्त्वहेतु की व्यावृत्ति असिद्ध हो जायेगी। इस स्थिति में, क्षणिक वस्तु में  
अर्थक्रियोपलब्धि के बिना अक्षणिक में अर्थक्रियाविरोध की सिद्धि होगी कैसे ? अक्षणिक में अर्थक्रिया के  
विरोध की कल्पना से यदि क्षणिक में अर्थक्रियोपलब्धि मान लेंगे तो स्पष्ट अन्योन्याश्रय दोष आयेगा।  
(तथाहि... से ले कर... व्यक्तमिरेतराश्रयत्वम्- यहाँ तक अशुद्ध पाठ होने से शब्दशः यथार्थ विवेचन शक्य  
नहीं है किन्तु भाव ग्रहण कर यह विवरणप्रयास किया है —) अक्षणिक में अर्थक्रियाविरोध की सिद्धि होगी

25

30



तद्विरोधसिद्धिरनुपलब्धेर्व्यतिरेकनिश्चयात् तद्विषये प्रत्यक्षवृत्तेरिति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् ??]

क्षणिकत्वेऽपि च भावानां यथातत्त्वमुपलम्भनियमाभावाद् ग्राह्य-ग्राहकाकारसंवेदनवद् अयथातत्त्वोपलम्भसंभवाद् न क्षणिकत्वमध्यक्षगोचर इत्यतोऽप्यनेकान्तः सिद्धिमासादयति । न च सदृशापरापरोत्पत्तिरनिश्चयहेतुः, भेदैकान्ते तस्या अप्ययोगात् । न हि तत्र सादृश्यं भावानां व्यतिरिक्तमव्यतिरिक्तं वा सम्भवति । न चाऽविद्यमानमनुपलम्भमानं वा तद् विभ्रमहेतुः, अतिप्रसङ्गात् । न च विशेषाणां स्थिति-भ्रान्तिजननशक्तिरेव सादृश्यम्, क्षणिकावेदकप्रमाणान्तराभावतः स्थितिप्रतिपत्तेर्भ्रान्त्यसिद्धेः । न चान्यादृग्भूतं वस्तु अबाधित-प्रतिपत्तिजन्मनो हेतुरभ्युपगन्तव्यम् अभ्रान्तप्रतिपत्तेर्वस्त्वव्यवस्थापकत्वेन प्रतिनियतव्यवहारोच्छेदप्रसक्तेः । अत एव उपलब्धमपि क्षणिकत्वं 'विषमज्ञ इव न निश्चिनोती'[१८५-५]त्युदाहरणमप्यसिद्धम्, यथावस्तूपलम्भनियमाभावात् ।

10 यदपि 'ये यद्भावं प्रत्यनपेक्षाः ते तद्भावनियताः यथा अन्त्या कारणसामग्री स्वकार्योत्पादने, विनाशं क्षणिक में अर्थक्रिया की उपलब्धि होने पर, और क्षणिक में अर्थक्रिया की उपलब्धि की सिद्धि, अक्षणिक में अर्थक्रियाविरोध सिद्ध होने पर होगी — तो यहाँ अन्योन्याश्रय स्पष्ट ही है ।

### [ भाव क्षणिक मान लेने पर भी यथार्थोपलब्धिनियम नहीं ]

कदाचित् मान लिया जाय कि भाव क्षणिक होते हैं, किन्तु तथापि क्षणिकत्वरूप से ही उस का उपलम्भ हो ऐसा नियम नहीं है; जैसे ग्राह्य-ग्राहक संवेदन ग्राह्य के प्रति अयथार्थ उपलब्धि के सम्भव से युक्त होता है । अतः यदि क्षणिकत्व भी प्रत्यक्षगोचर नहीं मानेंगे तो अनेकान्त ही सिद्धिसदनारूढ होगा । यदि कहें कि — दर्शन में क्षणिकत्व गृहीत होता है किन्तु सदृश नये नये भाव की निरंतर उत्पत्ति के कारण उस का निश्चय नहीं होता — तो यह भी भाव एवं क्षणिकत्वादि का एकान्त भेद मानने पर नहीं घट सकता । तथा उन नये नये भावों में क्षणिकवादानुसार भाव से अभिन्न या भिन्न सादृश्य का एकान्त भेदवाद में सम्भव नहीं है । जब सादृश्य कोई चीज नहीं है अविद्यमान है अनुपलम्भमान है तब वह किसी अभेदादि विभ्रम का हेतु नहीं बन सकता, क्योंकि अविद्यमान-अनुपलम्भमान शशसीगादि में भी विभ्रमहेतुता मानने का अनिष्टप्रसंग होगा । यदि कहें कि — भिन्न भिन्न विशेषों (व्यक्तियों) में जो स्थैर्य की भ्रान्ति को निपजा सके ऐसी शक्ति है वही सादृश्य है — तो यह भी निषेधाह है क्योंकि जब तक क्षणिकत्वसाधक अन्य कोई प्रमाण सिद्ध नहीं है तब तक स्थिति के भान को 'भ्रान्ति' मानना प्रमाणिक नहीं है । वस्तु यदि यथादृष्टस्वरूप नहीं है तो वह निर्बाधबोधोत्पत्ति के कारणरूप से मान्य नहीं हो सकती । यदि अभ्रान्त प्रतीति को वस्तु-व्यवस्थाकारक नहीं स्वीकारेंगे तो 'यह अश्व यह बैल' इस प्रकार नियतरूप से व्यवहार चलता है उस का लोप प्रसक्त होगा । इसी लिये — यह जो दृष्टान्त (क्षणिकत्व दर्शनविषय बनने पर भी उस का निश्चय नहीं होता — इस कथन की पुष्टि में विष का दृष्टान्त) दिया जाता है कि 'अज्ञानी पुरुष जहर को देखता है किन्तु उसका जहररूप से निश्चय नहीं कर पाता — यह दृष्टान्त भी निरर्थक है क्योंकि 'जिन का निश्चय नहीं होता ऐसी सकल वस्तु का उपलम्भ होता ही है' ऐसा कोई नियम प्रसिद्ध नहीं है ।

### [ अनपेक्षत्व की तद्भावनियतत्व से व्याप्ति परिणामसाधक ]

बहुत पहले निरन्वयनाशसिद्धि के लिये यह जो कहा था (२०-१७) कि जो जिस भाव के प्रति

प्रत्यनपेक्षश्च भावः' (२०-२) तदपि परिणामप्रसाधकम्, भावस्योत्तरपरिणामं प्रत्यनपेक्षतया तद्भाव-नियतत्वोपपत्तेः। पूर्वक्षणस्य स्वयमेवोत्तरीभवतोऽपरापेक्षाऽभावतः क्षेपाऽयोगात् उत्पन्नस्य चोत्पत्ति-स्थिति-विनाशेषु कारणान्तरानपेक्षस्य पुनः पुनरुत्पत्ति-स्थिति-विनाशत्रयमवश्यं भावि। तदेवं कस्यचिदंशस्य पदार्थाध्यक्षतायामप्यनिर्णये तस्य सांशतामभ्युपगच्छन् कथमंशेनोत्पन्नस्यांशान्तरेण पुनः पुनरुत्पत्तिं नाभ्युपगच्छेद् येनैकं वस्त्वनन्तपर्यायं नाङ्गीकुर्वीत ?

5

न चैकान्तसाधने उदाहरणमपि किञ्चिदस्ति, अध्यक्षाधिगतमनेकान्तमन्तरेणाऽन्तर्बहिश्च वस्तुसत्तानुपपत्तेः। न च निरन्वयविनाशमन्तरेण किञ्चिद् वस्तु अनुपपद्यमानं संवेद्यते; यतो बहीरूप-संस्थानाद्यात्मना अध्यक्ष-प्रतीतमनेकान्तमन्तर्विकल्पाविकल्पस्वरूपं संशय-विपर्यास-संवेदनात्मकं वा स्वसंवेदनसिद्धमपहाय निरन्वय-क्षणक्षयलक्षणं वस्तु प्रकल्पे(ल्ये)त। न चानुस्यूतिव्यतिरेकेण ज्ञानानां कार्य-कारणभावोऽपि युक्तिसङ्गतः आस्तां स्मृति-प्रत्यभिज्ञा-वासना-सन्तानादिव्यवहारः। न हि भेदाऽविशेषेऽपि कथञ्चित् तादात्म्यमन्तरेण 10 भेदानामयं नियमः सिद्धिमासादयति केषांचिदेव, अन्यथा ग्राह्य-ग्राहकाकारयोरपि तादात्म्याभावप्रसक्तिर्भवेत्।

अन्य (दण्डादि) निरपेक्ष होते हैं वे उस भाव से अवश्यंभावि होते हैं, जैसे अन्तिम कारण सामग्री कार्योत्पादन में। भाव भी विनाश के लिये अन्यनिरपेक्ष होते हैं — यह व्याप्ति भी वस्तु के परिणाम को ही सिद्ध करती है। भावमात्र अपने उत्तरपरिणाम के लिये निरपेक्ष होते हैं अतः वे उत्तरपरिणाम से नियत ही होते हैं — यह सिद्ध होता है। पूर्वक्षण को स्वयं उत्तरपरिणामप्राप्ति के लिये किसी 15 की अपेक्षा न होने से उत्तरपरिणामप्राप्ति के लिये विलम्ब नहीं होता। इसी तरह, उत्पन्न भाव को भी अन्य अन्य अंशों से उत्पत्ति-स्थिति-विनाशात्मक परिणाम प्राप्ति के लिये अन्य किसी कारण की अपेक्षा नहीं होती अतः पुनः पुनः उस की उत्पत्ति-स्थिति-विनाश ये तीन धर्म अवश्य होता ही रहेगा। इस प्रकार, बौद्ध जब वस्तु के कुछ अंश का प्रत्यक्ष मानने पर भी उस का अनिश्चय स्वीकारता हुआ वस्तु की सांशता को मान्य रखता है तो एक अंश से उत्पन्न किन्तु अन्य अन्य अंशों से पुनः 20 पुनः उत्पत्तिशील ऐसे पदार्थ को कैसे अमान्य करेगा जिस से कि अनन्तपर्यायवाली वस्तु का बहिष्कार कर सके ?

### [ एकान्तमतसिद्धि में दृष्टान्ताभाव ]

दुनिया की हर कोई चीज अन्योन्य विरोधाभासि अनन्तधार्मिक ही है अत एव एकान्तवाद को सिद्ध करने के लिये एकान्त एकरूप हो ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता। यद्यपि हम लोगों को वस्तु 25 के अनन्त धर्मों का प्रत्यक्ष भले न होता हो फिर भी अपने अपने प्रत्यक्ष से उत्पादादि अन्योन्यविरोधाभासी अनेक धर्मों का यानी अनेकान्त का प्रत्यक्ष होना अनुभवसिद्ध है, अनेकान्तमयता के बिना बाह्य-आन्तररूप से वस्तु-सत्ता दुर्घट है। ऐसा कोई संवेदन नहीं जिस में निरन्वय विनाश के बिना कोई वस्तु असंगत होने का ध्यान में आ सके, जिस के फलस्वरूप :- बाह्यरूप-संस्थानादि संबन्धि प्रत्यक्षसिद्ध अनेकान्त का, तथा भीतर में स्वसंवेदनसिद्ध ऐसा विकल्प-अविकल्पादि नानास्वरूप संशय-विपर्यय-संवेदन का त्याग 30 कर के निरन्वयनाशस्वरूप एकान्त वस्तु की कल्पना करनी पड़े। स्मृति-प्रत्यभिज्ञा-वासना-सन्तानादि व्यवहार तो दूर रहो, एक अनुगत सामान्य के बिना ज्ञानों में कारण-कार्यभाव भी युक्तिघटित नहीं हो सकता।

यतः शक्यमत्राप्येवं वक्तुम् ग्राह्यग्राहकानुभवयोः स्वकारणवशाद् भिन्नस्वभावयोरेव प्रतिक्षणं विशिष्टयोरुत्पत्ति-  
स्तेन रूपेणेति। एवं च [प्र० वा० २-३५४]

अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा विपर्यासितदर्शनैः। ग्राह्य-ग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते।।

▲इत्ययुक्तमेवाभिधानं स्यात्। परेणापि चैवं वक्तुं शक्यत एव —

5 'परमात्माऽविभागोऽप्यविद्याविप्लुतमानसैः। सुख-दुःखादिभिर्भागेभेदवानिव लक्ष्यते।।' इति।

न हि भेदाऽभेदैकान्तयोरामोपलम्भं परमार्थाऽदर्शनं च प्रति कश्चिद् विशेषः संलक्ष्यते। कथंचित्  
परमार्थाऽदर्शनाभ्युपगमे च 'उत्पन्नं कथंचित् पुनरुत्पादयेत्' इत्यनेकान्तसिद्धिः स्यादित्युक्तम्। स्वलक्षणस्य  
परमात्मनो वा परमार्थसतः सर्वथाऽनुपलम्भैकान्ताभ्युपगमे परीक्षाक्षमस्य संवृतिरूपस्याऽविद्यास्वभावस्य वा  
दर्शनाऽसम्भवाद् अनेकान्तात्मकस्य सतः सर्वथैकान्तव्युदासेन प्रमाणतो दर्शनमायातमिति कथं तत्प्रतिक्षेपः ?

10 [ कथंचिद् अभेद के बिना ग्राह्य-ग्राहकाकार अनुपपत्ति ]

कुछ पदार्थभेद (= वस्तुप्रकार) ऐसे हैं कि जिन में भेद के रहते हुए भी यदि कथंचित् अभेद  
नहीं रहेगा तो उन में 'यह इस का कारण, यह इस का कार्य' ऐसा कोई भी नियम सिद्ध ही नहीं  
हो सकेगा। यदि तादात्म्य के बिना भी उक्त नियम की सिद्धि शक्य है तो ग्राह्य-ग्राहकाकार (जिन  
में अभेद होने पर भी) तादात्म्य के लोप की आपत्ति आ सकती है क्योंकि वहाँ भी ऐसा तर्क हो  
15 सकता है कि अपने अपने कारण बल से ही भिन्नस्वभाववाले ये दोनों एक-दूसरे से विशिष्ट यानी  
मिलितरूप से ही उत्पन्न होते हैं, फिर तादात्म्य मानने की जरूर क्या ? यदि ऐसा मान लेंगे तो  
यह कथन अयुक्त ही ठहरेगा कि —

[ ग्राह्य-ग्राहकसंवित्तिअविभाग की तरह परमात्मा अविभाग ]

'परमार्थ से बुद्धिस्वरूप में भेद नहीं होने पर भी विपरीत दर्शनवालों को ग्राह्य-ग्राहक संवेदन  
20 भेदवाला दिखता है।।' (२-३५४) ऐसा कथन अयुक्त ठहरेगा, क्योंकि ब्रह्म अभेदवादी भी ऐसा कहेगा  
— 'परमात्मा में भेद नहीं होने पर भी अविद्या से विकृत चित्तवालों को सुख-दुःखादि खंडों से भेदयुक्त  
दिखाई देता है।।'

यहाँ अपने शास्त्रों की वासना से चाहे कोई एकान्त भेद या अभेद स्वीकार ले — दूसरी ओर  
उन को परमार्थ का दर्शन न होने का माना जाय तो एकान्तवाद में कुछ फर्क पडता नहीं है (मतलब  
25 दोनों जूठे हैं।) यदि दोनों (भेद और अभेद वादियों) में कथंचित् (अंशतः) परमार्थ दर्शन का अंगीकार  
किया जाय तब तो 'जो (कुछ अंश से) उत्पन्न है वही (अन्य अंशो से) कथंचिद् उत्पन्न किया जायेगा'  
ऐसा मानने में भी अनेकान्त मत ही सिद्ध होगा। पहले भी यह कहा जा चुका है। चाहे स्वलक्षण  
हो या चाहे परमात्मा, यदि दोनों पारमार्थिक हैं कुछ अंश से उन की (अपरोक्ष) उपलब्धि भी माननी  
होगी, यदि उन को सर्वथा एकान्त परोक्ष मानेंगे तो प्रमाणपरीक्षा में उत्तीर्ण न हो सकने से, चाहे  
30 सांवृतिरूप (= काल्पनिक) मानो या फिर वासनाप्रेरित मानो, दर्शन का सम्भव बचेगा नहीं। हाँ

▲. परमार्थतोऽविभागो भेदरहितोऽपि बुद्ध्यात्मद्वयवासनया विपर्यासितं = विभागेनोपदर्शितं दर्शनं येषां तैरतत्त्वदर्शिपुरुषैर्ग्राह्य-  
ग्राहकसंवित्तिनां परस्परं भेदः तद्वानिव लक्ष्यते।। इति म० नन्दिकृतटीकायाम्।)

न च संवृतेरेवोत्पाद-विनाशाभ्युपगमः, क्षणस्थितिव्यतिरेकेणापरस्य परमार्थसल्लक्षणलक्ष्यस्याभावात् क्षणस्थायिन एव स्वलक्षणताभ्युपगमात् क्षणव्यवस्थितयश्च ग्राह्य-ग्राहकसंवित्यादयोऽध्यक्षत्वेनेष्यन्ते तदस्वलक्षणत्वे कोऽपरः स्वलक्षणार्थो भवेत् ? तदाकारविविक्तस्यापरस्यात्यन्तानुपलम्भतः प्रत्यक्षत्वानुपपत्तेः । न चानंशमसाधारणं स्वलक्षणं सांशमिव विपर्यासात् प्रतिभातीति वक्तव्यम्, अकार्यकारणरूपं कार्य-कारणरूपमिव सर्वविकल्पातीतं सविकल्पमिव पुरुषतत्त्वं प्रतिभातीत्येवं पराभिधानस्यापि सम्भवादित्युक्तत्वात् । 5 ततश्च न कस्यचिद् उत्पादः क्षयो वा भवेत् । न चोत्पाद-विनाशयोः भ्रान्तिकल्पनायां किञ्चिदप्यभ्रान्तं सिध्येत्, निरंशक्षणक्षयाद्यवभासाभावात् स्वसंवित्तिसद्भावमात्रसिद्धेरप्यभावप्रसंगात् । क्षणक्षयाद्यवभासस्यासत्यत्वे सैवाऽनेकान्तसिद्धिः समापतति । अथ नेयमसती संवित्तिः कुतश्चिन्निमित्तात् सतीव प्रतिभाति, किन्तु सत्येव प्रतिभातीत्यस्याः स्वभावसिद्धिः, नन्वेवं न सर्वथापि भ्रमः सिध्येत् किन्तु भ्रान्ताऽभ्रान्तैकविज्ञानाभ्युपगमादनेकान्तवाद एव पुनरपि सिद्धिमायातः । 10

यदपि 'कार्य-कारणयोरभेदाभावः सिध्यति भेदात् अकार्यकारणवत्' इति तदपि ग्राह्य-ग्राहक-

अनेकान्तरूप से पारमार्थिक मानने पर, एकान्त निरस्त हो जाने से प्रमाणप्रयुक्त दर्शन सुघट बन जाता है — तो उस का अपलाप कैसे हो सकेगा ?

बौद्धवादी ऐसा मत कहें कि — 'उत्पाद-विनाश तो कल्पनाकल्पित ही हैं' — वास्तव तो क्षणिकस्थिति ही है — क्षणस्थिति से अतिरिक्त 'परमार्थसत्'रूप लक्षण के लक्ष्यभूत कोई तत्त्व नहीं है, अतः क्षणस्थायी 15 को ही स्वलक्षण माना जाता है। (अनेक) क्षणावस्थितिवाले ग्राह्य-ग्राहकसंवेदनादि प्रत्यक्षतया दिखते हैं — यदि उन्हें स्वलक्षणरूप नहीं मानेंगे तो और कौन है जिस को स्वलक्षण-अर्थरूप माना जाय ? (स्थूलाकार रहित अथवा) ग्राह्यादिआकारशून्य कोई अन्य तत्त्व उपलब्धिगोचर न होने से उस का प्रत्यक्षत्व सयुक्तिक नहीं हो सकता। ऐसा मत कहना कि 'स्वलक्षण तो निरंश एवं असाधारण है किन्तु वासनाकृत विपर्यास से वह सावयव हो ऐसा दिखता है' — ऐसे तो अन्य वादी (सांख्य) भी कहेगा कि पुरुषतत्त्व कार्य-कारणरूप 20 न होने पर भी कार्य-कारण हो ऐसा, एवं सर्वविकल्पशून्य होने पर भी सविकल्प हो ऐसा भासता है — पहले यह कह दिया है। सिर्फ क्षणस्थिति मानने पर तो न किसी का उत्पाद होगा, न नाश।

यदि उत्पाद-विनाश के भान को भ्रान्ति कहेंगे तब तो प्रत्येक चीज के ज्ञान के लिये समानरूप से यह बात लागू होने से फिर सारे जगत् में अभ्रान्त कुछ बचेगा ही नहीं। निरंशक्षणक्षयादि अवभास भी भ्रान्त ठहरेगा, तो सिर्फ स्वसंवेदनमात्र की सत्ता भी संकटग्रस्त हो जायेगी — उस का भी अभाव 25 प्रसक्त होगा। क्षणक्षयादि अवभास को असत्य मानेंगे या सत्य ? यदि असत्य मानेंगे तो स्वसंवेदन में सत्यत्व किन्तु क्षणक्षयसंवेदन में असत्यत्व — इस प्रकार अनेकान्तमत की सिद्धि प्रसक्त होगी। यदि कहें कि यह क्षणक्षयादि प्रतीति है असत्य किन्तु, किसी निमित्त से सत्य भासती है ऐसा नहीं है, वह स्वभाव से वास्तव में ही सत्य भासती है — तो कहीं भी भ्रम सिद्ध नहीं होगा — तथा पूर्वोक्त प्रकार से एक ही विज्ञान को भ्रान्त एवं अभ्रान्त मान लेने पर तो अनेकान्तवाद की ही पुनः सिद्धि प्रसक्त होगी। 30

[ स्वभावभेद ही आखरी भेदक होता है ]

यह जो कहा जाता है — अकार्य और अकारण में जैसे भेद होने से अभेदविरह होता है वैसे

संवित्यादिभिरनैकान्तिकमित्युपेक्षामर्हति। न हि स्वभावभेदात् अभेदे ग्राह्य-ग्राहक संवित्यादेः कालभेदाद् हेतुफलयोरभेदाभावो युक्तः, कालभेदादपि स्वरूपभेद एव भावानामवसेयः, स्वभावतोऽभिन्नस्य कालभेदादपि भेदाऽयोगात् — स्वभावभेदश्चेन्न भेदकः कालभेदो क्वोपयोगी ? इति न तद्भेदात् कार्य-कारणयो-  
 5 संवित्तेर्ग्राह्य-ग्राहकाकारादेर्दृष्टान्तत्वेन सिद्धत्वात्। अनंशवृत्तिस्तु न क्वचिदर्थस्य प्रमाणसिद्धा या दृष्टान्तत्वेन प्रदर्शयत, सर्वस्य सांशवृत्तितयोपलब्धेः। ततो नाध्यक्षसिद्धमनुगमस्वरूपं भावानां लक्षणं प्रतिक्षेप्तुं युक्तम्, तत्प्रतिक्षेपे प्रमाणान्तराभावात्। न हि सुखादि-नीलादीनां निरन्वयानां क्वचित् संवेदनमध्यक्षमनुमानं वाऽनुभूयते। नापि तेषां भेदविकलानां कदाचिदप्यनुभूतिरिति यथा संविदाकारमन्तरेण ग्राह्य-ग्राहका-  
 10 कारयोरसंवित्तेरनुपपत्तिस्तथा तावन्तरेण तस्या अप्यसंवित्तेरनुपपत्तिरिति भेदाऽभेदरूपं सर्वं प्रमाण-प्रमेय-  
 लक्षणमभ्युपगन्तव्यम्।

न च पूर्वापराऽधोमध्योर्ध्वादिभेदाभावेऽनुगताकारलक्षणं सामान्यं तेष्वेकाकारप्रतिभासग्राह्यं सम्भवति, अनुगतिविषयाभावे तदनुगतैकाकारस्याप्यभावात्, तदभावे च तदवृत्तेः सामान्यस्याभाव एव। न च  
 कारण-कार्य में भी भेद होने से अभेदविरह सिद्ध होता है — वह कथन उपेक्षापात्र है क्योंकि ग्राह्य-  
 ग्राहकसंवेदनों में भेद होने पर भी अभेद कैसे होता है वह पहले कहा जा चुका है। ग्राह्य-ग्राहकसंवेदनों  
 15 में स्वभावभेद रहने पर अभेद भले रहे किन्तु हेतु-फल में कालभेद के कारण अभेदाभाव होना चाहिये  
 — यह ठीक नहीं, क्योंकि कालभेद से भी आखिर भावों के स्वरूपभेद पर ही जाना पड़ेगा। यदि  
 भावों में स्वरूपभेद नहीं होगा तो कालभेद से भी भावभेद नहीं बनेगा। यदि भेदक होगा तो स्वभावभेद,  
 वह यदि भेदक नहीं बनेगा तो कालभेद का उपयोग क्या रहेगा ? मतलब, कालभेद से कार्य-कारण  
 का अत्यन्तभेद सिद्ध नहीं हो सकता। अत एव कारण में कार्य की आंशिक वृत्ति सुघटित है। यदि  
 20 कहें कि क्षण-क्षण में एक ही भाव की आंशिक वृत्ति होने में कोई दृष्टान्त नहीं है — तो यह निषेधार्ह  
 है क्योंकि संवेदन की ग्राह्य-ग्राहक आकारों में आंशिक वृत्ति सिद्ध है। किसी भी भाव में किसी धर्म  
 की निरंशवृत्ति प्रमाणसिद्ध नहीं है जिस का दृष्टान्तरूप से आप प्रदर्शन कर सके, सर्वत्र सभी की  
 सांशवृत्ति ही उपलब्धिगोचर होती है। अतः भावों का प्रत्यक्षसिद्ध अनुवृत्तिरूप लक्षण निषेधार्ह नहीं  
 है, क्योंकि निषेध करने के लिये कोई अतिरिक्त प्रमाण नहीं है। निरन्वय (यानी अनुवृत्तिरहित) भीतरी  
 25 सुखादि या बाह्य नीलादि भावों का प्रत्यक्ष या अनुमानरूप संवेदन कहीं भी अनुभवसिद्ध नहीं है।  
 साथ में यह भी ज्ञातव्य है कि सर्वथा व्यावृत्तिरहित भावों की अनुभूति भी कदापि नहीं होती। जैसे  
 संवेदनाकाररहित ग्राह्य-ग्राहक आकारों का अनुभव नहीं होने से उन की संगतता नहीं हो सकती, वैसे  
 ही उन आकारद्वय (रूपभेदों) के बिना संवेदन का अनुभव भी सिद्ध न होने से संगति नहीं हो  
 सकती। सारांश, सर्व भाव भेदा-भेदोभयरूप प्रमाण-प्रमेयलक्षण स्वीकार के काबिल है।

30 [ विशेष के बिना सामान्य का असम्भव ]

वस्तु निरंश नहीं होती। पूर्व-पश्चिम, अधो-मध्य-ऊर्ध्व आदि भेद (अंश) नहीं होगा तो उन में  
 एकाकारप्रतीतिग्राह्य अनुगताकाररूप सामान्य, घट नहीं सकेगा, क्योंकि अनुगम के विषय (आश्रय) पूर्वादि

तेष्ववर्तमानमपि तत् सामान्यं व्यक्त्यन्तरस्वरूपवत्। किञ्च, तदनुगतं रूपं व्यावृत्तरूपाभावे किं कार्यरूपम् उत कारणरूपम् आहोस्विदुभयात्मकम् उतानुभयस्वभावम् इति विकल्पाः। आद्यविकल्पे तस्याऽनित्यत्व-प्रसक्तिः। द्वितीयेऽपि सैवेति न तत् सामान्यस्वभावम्। तृतीय पक्षे उभयदोषप्रसक्तिः। तुर्यविकल्पेऽप्यभाव-प्रसङ्ग इति विशेषाभावे नानुगतिरूपसामान्यसम्भवः, सम्भवेऽपि तत्प्रतिपादकं प्रमाणमभिधानीयम्। तच्चाऽक्षणिकत्वविरोधि कथञ्चित् क्षणिकत्वावभासितयाऽनुभूयत इति विपर्ययसाधकं भवेत्। कथञ्चित् 5 क्षणिकत्वावभासस्य भ्रान्तत्वे विपरीतावभासस्यापि भ्रान्तत्वप्रसक्तिः। तदवभासस्याऽभ्रान्तत्वे वा भ्रान्ताऽभ्रान्तरूपमेकं विज्ञानमेकान्तपक्षप्रतिक्षेप्यनेकान्तं साधयतीत्यलमतिप्रसङ्गोनेति स्थितमेतत्— ध्रौव्यमुत्पाद-व्ययव्यतिरेकेण न सम्भवति तौ च तदन्तरेणेत्युत्पाद-स्थितिभङ्गा अपरित्यक्तात्मस्वरूपास्तदितरस्वरूपत्वेन त्रैलक्षण्यं प्रत्येकमनुभवन्तो द्रव्यलक्षणतामुपयान्ति अन्यथा पृथक्पक्षोक्तदोषप्रसक्तिर्दुर्निवारति व्यवस्थित-मुत्पाद-स्थिति-भङ्गा द्रव्यलक्षणमिति ॥१२॥ 10

भेद न होने पर उन में एक अनुगताकार भी नहीं रहेगा, विषयों के अभाव में भी एकाकारता नहीं रह पायेगी अतः सामान्य का लोप ही प्रसक्त हुआ। ऐसा कहना कि — इस तरह भेदों में जो नहीं रहेगा फिर भी उसे सामान्य (व्यक्ति) रूप मानने में बाध नहीं। — तो यह अनुचित है एक व्यक्ति में न रहनेवाले अन्यव्यक्तिस्वरूप को सामान्य नहीं माना जाता। मतलब, सामान्य को मानना है तो भेदों को भी मानना पड़ेगा। 15

### [ द्रव्य का लक्षण 'उत्पाद-स्थिति-व्यय' - निष्कर्ष ]

यदि भेद (यानी व्यावृत्तरूप) को मान्य नहीं रखेंगे तो अकेले 'सामान्य' के प्रति चार विकल्पप्रश्न खड़े होंगे — <sup>१</sup>सामान्य कार्यरूप है ? <sup>२</sup>सामान्य कारणरूप है ? <sup>३</sup>उभयात्मक है ? <sup>४</sup>या अनुभयस्वभाव है ? <sup>१</sup>प्रथम विकल्प में सामान्य अनित्य बन जायेगा। <sup>२</sup>दूसरे विकल्प में भी अनित्यता आपत्ति होगी, क्योंकि कारण कभी नित्य नहीं होता। अतः सामान्य कार्यरूप या कारणरूप नहीं हो सकता। <sup>३</sup>तीसरे 20 विकल्प में उभयपक्ष के दोष प्रविष्ट होंगे। <sup>४</sup>चौथे विकल्प में सर्वथा अभाव ही प्रसक्त होगा। फलितार्थ, विशेष (कार्यादि के विरह में) अनुगताकाररूप सामान्य का संभव नहीं है। यदि उस के होने की सम्भावना करते रहेंगे तो उस के लिये भी प्रमाण खोजना पड़ेगा। यदि वह प्रमाण अक्षणिकत्वविरोधी कथञ्चित् क्षणिकत्वावभासरूप से अनुभवारूढ होगा तो विपरीत स्वरूप की सिद्धि होगी। यदि कथञ्चित् क्षणिकत्वावभासि बोध भ्रान्त होगा तो विपरीतावभास भी भ्रान्त ठहरेगा। यदि उस भ्रान्त अवभास 25 को (कथञ्चित्) अभ्रान्त मानेंगे तो भ्रान्त-अभ्रान्त उभयरूप एक विज्ञान एकान्तपक्षविरोधी अनेकान्त मत की सिद्धि करेगा। अब अधिक विस्तार छोड़ दो, सिद्ध पक्ष यह हुआ कि द्रव्य का यह लक्षण है कि अपने स्वरूप को न छोड़ते हुए प्रत्येक (उत्पादादि तीन) ही अन्यद्वयस्वरूप होने से त्रिलक्षणानुविद्ध ऐसे उत्पाद-व्यय-स्थितिरूप त्रैलक्षण्य। यदि इस तरह मिलित त्रैलक्षण्य नहीं मानेंगे तो प्रत्येक पृथक् पृथक् पक्ष में कहे गये दोषों का निवारण नहीं हो सकेगा। आखरी निष्कर्ष यह है कि उत्पाद-स्थिति- 30 व्यय ये मिलित द्रव्य का लक्षण है ॥१२॥

एते च परस्परसव्यपेक्षा द्रव्यलक्षणम् न स्वतन्त्रा इति प्रदर्शनायाह-

(मूलम्-) एए पुण संगहओ पाडिक्कमलक्खणं दुवेणं पि।

तम्हा मिच्छदिट्ठी पत्तेयं दो वि मूलणया ॥१३॥

एते = उत्पादादयः सङ्ग्रहतः शिबिकोद्वाहिपुरुषा इव परस्परस्वरूपोपादानेनैव लक्षणम्। प्रत्येकं

5 एकका उत्पादादयो द्वयोरपि = द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोः अलक्षणम् उक्तवत् तथाभूतविषयाभावे तद्-  
ग्राहकयोरपि तथाभूतयोरभावात्, उत्पादादीनां च परस्परविविक्तरूपाणामसम्भवात्। तस्मात् मिथ्यादृष्टि  
एव प्रत्येकं परस्परविविक्तौ द्वावपि एतौ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-स्वरूपौ मूलनयौ समस्तनयराशिकारण-  
भूतौ ॥१३॥

स्यादेतद् - भवतु परस्परनिरपेक्षयोर्मिथ्यात्वम् उभयनयारब्धस्त्वेकः सम्यग्दृष्टिर्भविष्यतीत्याह-

10 (मूलम्-) ण य तइओ अत्थि णओ ण य सम्मत्तं ण तेसु पडिपुण्णं।

जेण दुवे एगन्ता विभज्जमाणा अणेगन्तो ॥१४॥

न च तृतीयः परस्परसापेक्षोभयग्राही अस्ति नयः कश्चित् तथाभूतार्थस्यानेकान्ताऽत्मकत्वात् तद्ग्राहिणः

[ निरपेक्ष प्रत्येकमूल नय मिथ्यादृष्टि ]

15 अवतरणिका :- ये उत्पादादि तीन अन्योन्यसापेक्षरूप से मिल कर रहे तो द्रव्य का लक्षण बन  
सकता है, अन्योन्य पराङ्मुख या स्वतन्त्र रहे तो नहीं - इस का प्रदर्शन करते कहते हैं -

गाथार्थ :- संग्रह से ये (लक्षण जानना)। अकेले तो दोनों का भी लक्षण नहीं। अतः एक एक  
दोनों ही मूल नय मिथ्यादृष्टि हैं ॥१३॥

20 व्याख्यार्थ :- ये उत्पादादि तीन संगृहीत (= मिलित) हो कर, यानी पालखी के वाहक पुरुषों  
की तरह परस्पर के स्वरूप का आदर करने पर ही द्रव्य का लक्षण बनेंगे। एक एक उत्पाद या  
व्यय या स्थिति तो दोनों द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिक में से एक का भी लक्षण नहीं हो सकते, जैसे की  
पूर्व गाथा के विवेचन में कहा जा चुका है। जब अन्योन्यपराङ्मुख ऐसा कोई विषय (= पदार्थ) ही  
नहीं, तब उन के ग्राहक भी न कोई स्वतन्त्र द्रव्यास्तिक है न कोई स्वतन्त्र पर्यायास्तिक है। परस्पर  
निरपेक्षरूपवाले उत्पादादि का सम्भव नहीं। अतः प्रत्येक द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक मूल नय जो कि  
समस्तनयसमुदाय के उत्थानबिंदु है - वे परस्परनिरपेक्ष होंगे तो प्रत्येक ही मिथ्यादृष्टि जान लेना ॥१३॥

25 [ उभयग्राहि तृतीयनय की कल्पना असत्य ]

प्रश्न :- परस्परनिरपेक्ष दो नयों में मिथ्यात्व कहा वह सत्य है, किन्तु उभयनय संयोजनमूलक  
तीसरा एक नय माना जाय तो वह तो सम्यग्दृष्टि होगा या नहीं ? उत्तर :-

गाथार्थ :- तीसरा कोई नय है नहीं। दो में सम्यक्त्व परिपूर्ण है। यतः दोनों एकान्त विशेषतया  
(सापेक्षभाव से) गृहीत करने पर अनेकान्त (बन जाता) है ॥१४॥

30 व्याख्यार्थ :- वैसा कोई तीसरा नय नहीं है जो अन्योन्यसापेक्षतया उभयस्पर्शी हो, क्योंकि जो  
उभयात्मक (द्रव्य-पर्याय अथवा सामान्य-विशेष) अर्थ तो अनेकान्तात्मक होने से उस का ग्राहक जो

प्रत्ययस्य नयात्मकत्वानुपपत्तेः। न च सम्यक्त्वं न तयोः प्रतिपूर्ण प्रतिषेधद्वयेन प्रकृतार्थावगतेः। अशेषं हि प्रामाण्यं सापेक्षं गृह्यमाणयोरनयोरेवंविषययोर्व्यवस्थितं येन द्वावपि एकान्तरूपतया व्यवस्थितौ मिथ्यात्वनिबन्धनं तत्परित्यागेनाऽन्वय-व्यतिरेकौ विशेषेण परस्परत्यागरूपेण भज्यमानौ गृह्यमाणावनेकान्तौ भवतीति सम्यक्त्वहेतुत्वमेतयोरिति ॥१४॥

एवं सापेक्षद्वयग्राहिणो नयत्वानुपपत्तेस्तृतीयनयाभावः प्रदर्शितः, निरपेक्षग्राहिणां तु मिथ्यात्वं दर्शयितुं 5  
माह-

(मूलम्) जह एए तह अण्णे पत्तेयं दुण्णया णया सव्वे।

हंदि हु मूलणयाणं पण्णवणे वावडा ते वि॥१५॥

यथा एतौ निरपेक्षद्वयग्राहिणौ मूलनयौ मिथ्यादृष्टी तथा उभयवादरूपेण व्यवस्थितानामपि परस्पर-  
निरपेक्षत्वस्य मिथ्यात्वनिबन्धनस्य तुल्यत्वात् प्रत्येकम् इतरानपेक्षा अन्येऽपि दुर्नयाः। न च प्रकृत- 10  
नयद्वयव्यतिरिक्तनयान्तरारब्धत्वादुभयवादस्य नयानामपि वैचित्र्यादन्यत्रारोपयितुमशक्यत्वात् तद्रूपस्य अन्ये  
सम्यक्प्रत्यया भविष्यन्तीति वक्तव्यम्; यतः हंदि इत्येवं गृह्यतां 'हुः' इति हेतौ मूलनयद्वयपरिच्छिन्नवस्तुन्येव

एक बोध होगा वह पूर्ण (न कि अंश) ग्राही होने से नयरूप हो नहीं सकता। दूसरी ओर वे दोनों  
नय यदि परस्पर सापेक्ष मिल कर उभयग्राही बनेंगे तो उन में परिपूर्ण सम्यक्त्व नहीं होगा ऐसा  
नहीं है। यहाँ दो निषेधों से प्रकृत अर्थ बोधित होता है कि 'परिपूर्ण सम्यक्त्व होगा'। भावार्थ है 15  
कि सापेक्षरूप से प्रवर्तमान दोनो नयों में एवं सापेक्ष दोनों विषयों में अशेष प्रामाण्य अक्षुण्ण विद्यमान  
है। अतः फलित यह हुआ कि एकान्तआग्रहिता से युक्त दोनों नय मिथ्यात्वमूलक हैं। एकान्ताग्रह से  
मुक्त, विभज्यमान यानी विशेष (मिलित) स्वरूप से अन्योन्य की उपेक्षा न करते हुए प्रवर्तमान दोनों  
ही अनेकान्त विभूषित बन जाते हैं, अत एव उन में सम्यक्त्व की हेतुता अक्षुण्ण रहेगी ॥१४॥

[ स्वतन्त्र प्रत्येक सर्व नय दुर्नय हैं ]

20

अव० :- उस प्रकार से सापेक्ष उभयग्राहि एक बोध में नयत्व दुर्घट होने से तीसरे नय का  
अभाव दर्शाया। अब परस्परनिरपेक्ष सामान्यादि वस्तुग्राहि बोध (या प्रतिपादन) में भी मिथ्यात्व है  
यह दिखाते हैं -

गाथार्थ :- जैसे ये (दो) हैं उसी तरह अन्य सभी प्रत्येक (= निरपेक्ष) नय (मिथ्यादृष्टि) हैं,  
क्योंकि वे भी मूल नयों के प्रज्ञापन में ही मस्त हैं ऐसा समझ के रखो ॥१५॥ 25

व्याख्यार्थ :- जैसे परस्परनिरपेक्ष सामान्य-विशेष ग्राही मूल नय मिथ्यादृष्टि हैं वैसे ही पृथक् पृथक्  
उभयनिरूपकरूप से प्रवर्तमान होने पर भी प्रत्येक (यानी इतरनिरपेक्ष) अन्य नय भी दुर्नय ही हैं  
क्योंकि मिथ्यात्वआपादक परस्परनिरपेक्षत्व उन में भी तुल्य ही है।

शंका :- उभयवाद (= उभय निरूपण) तो मूलनययुगल से अत्यन्त विभिन्न नयविशेषमूलक होने  
से, और नय का कोई संकुचित स्वरूप नहीं होता किन्तु विचित्र स्वभाव होता है, इस लिये उभय 30  
वाद में मिथ्यात्व आरोपण शक्य नहीं है अतः अन्य नय बोध भी सम्यक्प्रतीतिरूप हो सकते हैं।



व्यापृतास्तेऽपि तद्विषयव्यतिरिक्तविषयान्तराभावात् सर्वनयवानानां च सामान्य-विशेषोभयैकान्तविषयत्वात् । तन्न नयान्तरसद्भावः यतः तदारब्धोभयवादे नयान्तरं भवेत् ॥१५॥

ननु सङ्ग्रहादिनयसद्भावात् कथं तद्व्यतिरिक्तनयान्तराभावः ? सत्यम्, सन्ति सङ्ग्रहादयः किन्तु तद्विषयव्यतिरिक्तविषयान्तराभावतः तद्विषयविषयास्तेऽपि तद्वृषणेनैव दूषिताः । यतो न मूलच्छेदे तच्छा-

5 खास्तदवस्थाः सम्भवन्तीत्याह-

(मूलम्-) सव्वणयसमूहमि वि णत्थि णओ उभयवायपण्णवओ ।

मूलणयाण उ आणं पत्तेय विसेसियं विति ॥१६॥

सङ्ग्रहादिसकलनयसमूहेऽपि नास्ति कश्चिद् नयः उभयवादप्ररूपकः यतः मूलनयाभ्यामेव यत् प्रतिज्ञातं वस्तु तदेव आश्रित्य प्रत्येकरूपाः सङ्ग्रहादयः पूर्वपूर्वनयाधिगतांशविशिष्टमंशान्तरमधिगच्छन्तीति 10 न विषयान्तरगोचराः । अतो व्यवस्थितम् परस्परत्यागप्रवृत्तसामान्यविशेषविषयसङ्ग्रहाद्यात्मकनयद्वयाधिगम्यात्मकत्वात् वस्त्वप्युभयात्मकम् ॥१६॥

न केवलं बाह्यघटादि वस्तु उभयात्मकं तथाविधप्रमाणग्राह्यत्वात् किन्त्वान्तरमपि हर्ष-शोक-भय-

उत्तर :- यह कथन बोलने योग्य नहीं है । कारण, आखिर अन्य नय भी मूल उभयनयगृहीत विषय प्रति ही सक्रिय हैं, अन्य कोई अधिक विषय नहीं है, सभी नयवादों का विषय या तो एकान्त 15 सामान्य है या एकान्त विशेष है । अतः ऐसा कोई नयविशेष है नहीं जिस से कि तन्मूलक उभयवाद चलाने के लिये वह प्रवृत्ति करे ॥१५॥

[ उभयवादप्ररूपक कोई भी स्वतन्त्र नय नहीं है ]

अव० :- शंका :- संग्रहादि नय अनेक हैं तो उक्त दो मूलनय से अधिक नयभेद का अभाव हैं, किन्तु मूलनयविषयभूत वस्तु (सा.वि.) से पृथक् कोई नया विषय नहीं है, उक्त मूलनययुग्म का 20 विषय ही उन का विषय है । अतः निरपेक्ष मूल नययुगल सदोष सिद्ध होने पर तन्मूलक संग्रहादि निरपेक्ष नयवृन्द भी दूषित सिद्ध होता है । कारणः- वृक्षमूल का उच्छेद हो जाने पर वृक्ष की शाखा-प्रशाखा जीवंत नहीं रह सकती । यही १६ वीं गाथा में -

गाथार्थ :- सकलनयवृन्द में भी (ऐसा) कोई नय नहीं (जो) उभय वाद का पुरस्कर्ता हो । (कारण :-) प्रत्येक (नय) मूल नयों की आज्ञा (= विषय वस्तु) का सविशेष कथन करते हैं ॥१६॥

25 व्याख्यार्थ :- संग्रहादि सकलनयसमुदाय में भी कोई ऐसा नय नहीं जो उभयवाद का प्रज्ञापक हो । कारण :- मूल नयों ने जिन वस्तु की आज्ञा यानी प्रतिज्ञा की है उन्हीं का आशरा ले कर, पूर्व पूर्व नय स्वीकृत वस्तु-अंश से गर्भित अंशांतर का उत्तरनय निरूपण करते हैं, नहीं कि अन्यविषयसंबन्धि कुछ कहते हो । अतः निश्चित होता है कि वस्तु उभयात्मक (सा.वि.रूप) है क्योंकि परस्परमिलितरूपवाले सामान्य-विशेष विषयग्राहि संग्रहादिमय नययुगलरूप बोध के गोचरस्वरूप है ॥१६॥

30 [ बाह्यवत् अभ्यन्तर पदार्थ भी उभयात्मक ]

अव० :- केवल बाह्य घटादि वस्तु ही (सा.वि.) उभयात्मक है उभयात्मकतासूचकप्रमाणग्राह्य होने

करुणौदासीन्याद्यनेकाकारविवर्त्तात्मकैकचेतनास्वरूपम् तदात्मकहर्षाद्यनेकविकारानेकात्मकं च स्वसंवेदनाध्यक्ष-  
प्रतीतम् तस्य भेदाभेदैकान्तरूपताभ्युपगमे दृष्टाऽदृष्टविषयसुख-दुःखसाधनस्वीकार-त्यागार्थप्रवृत्ति-निवृत्ति-  
स्वरूपसकलव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिरिति प्रतिपादयितुमाह—

(मूलम्-) ण य दव्वट्टियपक्खे संसारो णेव पज्जवणयस्स ।

सासय-वियत्तिवायी जम्हा उच्छेअवाईआ ।।१७।।

5

द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयद्वयाभिमाने वस्तुनि न संसारः सम्भवति, शाश्वतव्यक्तिप्रतिक्षणान्यत्वैकान्तात्मक-  
चैतन्यग्राहकविषयीकृतत्वात् पावकज्ञानविषयीकृते उदकवत् । तथाहि— संसारः = संसृतिः सा चैकान्त-  
नित्यस्य पूर्वावस्थाऽपरित्यागे सति न सम्भवति तत्परित्यागेनैव गतेः भावान्तरापत्तेर्वा— संसृतेः सम्भवात् ।  
नाप्युच्छेदे = उत्पत्त्यनन्तरनिरन्वयध्वंसलक्षणे संसृतिः सम्भवति, गतेः भावान्तरापत्तेर्वा कथञ्चिद् अन्वयि-  
रूपमन्तरेणाऽयोगात् । अथैकस्य पूर्वापरशरीराभ्यां वियोग-योगौ संसारः, असावपि सदाऽविकारिणि न 10

से, इतना मत समझना, अरे ! आन्तरिक हर्ष-शोक-भय-करुणा-औदासीन्य इत्यादि विविधाकार विवर्त्तात्मक  
एक-चेतना के परिणामस्वरूप पदार्थ भी (सा.वि.) उभयात्मक है। प्रत्यक्ष से यह सिद्ध है क्योंकि एक-  
चेतनामय हर्षादि अनेक विकाररूप से अनेकात्मक आन्तर वस्तु स्वप्रकाश संवेदनात्मक प्रत्यक्ष से अनुभूत  
होता है। यदि इन आन्तर पदार्थों को एकान्ततः अभिन्न या एकान्त भिन्न स्वरूप मानेंगे तो सकल  
व्यवहार के उच्छेद की आपत्ति होगी — दृष्ट (= इहलौकिक) अदृष्ट (= पारलौकिक) विषयों से प्रेरित 15  
सुख या दुःख के साधनों का कोई स्वीकार करता है उन के लिये प्रवृत्ति करता है, तो कोई त्याग  
करता है उन के लिये निवृत्ति करता है। ये सब व्यवहार लुप्त हो जायेंगे। इस वृत्तान्त का निरूपण  
गाथा १७ में —

गाथार्थ :- न तो द्रव्यार्थिक मत में संसार (घट सकता है), न पर्यायार्थिकमत में, क्योंकि शाश्वतवादी  
(द्रव्या०) या (प्रतिक्षण भिन्न) व्यक्तिवादी (व्यवहार के) उच्छेदवादी हैं ।।१७।। 20

### [ एकान्तवाद में संसार की अनुपपत्ति ]

व्याख्यार्थ :- द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक नय द्वारा स्वीकृत (नित्य अथवा एकान्त अनित्य) वस्तु  
होने पर संसार (जन्मादि व्यवहार) संगत नहीं हो सकते, जैसे अग्निज्ञानविषयीभूत वस्तु में जल  
की संगति नहीं होती। कैसे यह देखिये— संसार यानी संसृति (संसरण) मतलब परिवर्त्तनशील। एकान्त  
नित्य वस्तु पूर्वावस्था छोड़े बिना (परिवर्त्तनरूप) संसार कैसे घटेगा ? पूर्वावस्था छोड़ेगा तभी अन्य 25  
गति अथवा अन्य भावप्राप्ति रूप संसार घटेगा। पर्यायनयसंमत एकान्त क्षणिकतापक्ष यानी उत्पत्ति के  
बाद तुरंत निरन्वयविनाशपक्ष में संसार सम्भव नहीं, क्योंकि किसी एक स्थायि कथञ्चिद् अन्वय रूप  
के बिना गत्यन्तर या भावान्तर की प्राप्तिरूप संसार कैसे घटेगा ?

शंका :- संसार है पूर्वशरीर त्याग उत्तरशरीर संयोग, तो यह एकान्त नित्य में क्यों नहीं घटेगा ?  
उत्तर :- अत्यन्त अविकारी वस्तु मानने पर यह शरीरपरिवर्त्तन सम्भव नहीं है, क्योंकि एकान्त नित्य 30  
आत्मा के साथ पूर्वोत्तर शरीर का त्याग-ग्रहण घट नहीं सकेगा। पर्यायनय के निरन्वयक्षणध्वंसवाद

सम्भवति, नित्यस्य पूर्वापरशरीराभ्यां वियोग-योगानुपपत्तेः। निरन्वयक्षणध्वंसिनोऽप्येकाधिकरणत्वाऽसम्भवाद् न तल्लक्षणः संसारः। न चामूर्त्तस्यात्मनोऽसर्वगतैकमनोऽभिष्वक्तशरीरेण विशिष्टवियोग-योगौ संसारः, मनसोऽकर्तृत्वेन शरीरसम्बन्धस्यानुपपत्तेः। यो ह्यदृष्टस्य विधाता स तन्निर्वर्तितशरीरेण सह सम्बध्यते, न चैवं मनः। न च मनसः शरीरसम्बन्धेऽपि तत्कृतसुख-दुःखोपभोक्तृत्वम् आत्मनि तस्याभ्युपगमात् तदर्थं च शरीरसम्बन्धोऽभ्युपगम्यते इति तत्सम्बन्धपरिकल्पनं मनसो व्यर्थम् मनसि सुख-दुःखोपभोक्तृत्वाभ्युपगमे वा आत्मकल्पनावैयर्थ्यम् मनस आत्मत्वसिद्धेः॥१७॥ तथा-

(मूलम्-) सुह-दुःखसम्पओगो ण जुज्जए णिच्चवायपक्खम्मि।

एगंतुच्छेयंमि य सुह-दुःखवियप्पणमजुत्तं॥१८॥

सुखेन = अबाधास्वरूपेण, दुःखेन = बाधनालक्षणेन, सम्प्रयोगः = सम्बन्धः न युज्यते = न घटते आत्मनो नित्यवादपक्षे = द्रव्यास्तिकाभ्युपगमे, सुखस्वभावस्य अविचलितरूपत्वात् सदा सुखरूपतैव आत्मनः न दुःखसम्प्रयोगः, दुःखस्वभावत्वे तद्रूपतैव तत्त्वादेव। एकान्तोच्छेदे च पर्यायास्तिकपक्षे सुख-

में पूर्वदेहधारी और उत्तरदेहधारी की एकाधिकरणता नहीं घटेगी। मतलब, एक ही व्यक्ति में भवद्वय का त्याग-ग्रहण नहीं घटेगा। यानी संसार नहीं घटेगा। उपरांत, यदि कहें कि — अमूर्त्त आत्मा को अव्यापि एक मन संसक्त देह के साथ विशिष्ट प्रकार से संयोग-वियोग — यही संसार है — तो यह भी असंगत है क्योंकि मन स्वयं कर्त्ता न होने से उस का शरीर के साथ संयोग घटेगा नहीं। शरीर के साथ सम्बन्ध उसी का होगा जो शरीरनिमित्त अदृष्ट का निर्माता होगा। मन अदृष्टनिर्माता नहीं। तथा मन का देहसम्बन्ध मान ले तो भी वह देह जनित सुख-दुःख का उपभोग कर नहीं सकता क्योंकि उपभोग तो आत्मा में ही होता है, उपभोग के लिये ही देहसम्बन्ध की जरूर पडती है। अतः मन में देहसम्बन्ध की कल्पना निरर्थक है। अगर मन को ही सुख दुःख का उपभोक्ता मान लेंगे तो मनोभिन्न आत्मा की कल्पना व्यर्थ ठहरेगी, क्योंकि अब तो मन ही आत्मा बन कर बैठ गया है॥१७॥ तथा,

[ एकान्तवाद में सुख-दुःख भोगादि की अनुपपत्ति ]

गाथार्थ :- नित्यवादपक्ष में सुख-दुःखसंयोग नहीं घट सकता। एकान्तविनाश में भी सुख-दुःख का विकल्पन अयुक्त है॥१८॥

व्याख्यार्थ :- अबाधास्वरूप सुख और बाधास्वरूप दुःख का, एकान्तनित्यवाद मत में संबन्ध नहीं बैठ सकता, क्योंकि द्रव्यास्तिक नय के मत में यदि आत्मा सुखस्वभावी होगा तो स्वभाव अचल होने के कारण हरहमेश सुखी ही बना रहेगा, कभी दुःखस्पर्श होगा नहीं। यदि दुःखस्वभाव होगा तो अचलस्वभाव के कारण हमेशा दुःखी रहेगा। एवं पर्यायास्तिक मत में भी एकान्त विनाशी आत्मवाद में सुख-दुःख का सम्बन्ध घटेगा नहीं, क्योंकि सुखी क्षण और दुःखी क्षण सर्वथा पृथक् हैं। तदुपरांत, दोनों पक्ष में सुखप्राप्ति और दुःखनाश के लिये विकल्पन यानी विशिष्ट प्रयत्न (क्लृप् धातु यहाँ प्रयत्नार्थक समझना) भी घट नहीं सकता, क्योंकि नित्यपक्ष में सुख-दुःख अचल स्वभाव होने से प्राप्ति-परिहार

दुःखसम्प्रयोगो न युज्यत इति सम्बन्धः। तथा पक्षद्वयेऽपि सुखार्थम् दुःखवियोगार्थं च विशिष्टं कल्पनं = यतनम् - 'कल्पतेः' अत्र यतनार्थत्वात् - अयुक्तम् = अघटमानकम् सुख-दुःखोपादान-न्यागार्थप्रयत्न-स्याप्ययुक्तत्वमुक्तन्यायात्। 'संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्।' [सांख्य का० ४०] इति सांख्यमतमपि निरस्तम् न्यायस्य सर्वैकान्तसाधारणत्वात्।।१८।।

एकान्तपक्षे आत्मसुख-दुःखोपभोग-निर्वर्तकशरीरसम्बन्धहेत्वदृष्टोत्पादकनिमित्तानामप्यसम्भवं दर्शय- 5  
ब्राह-

(मूलम्-) कर्मं जोगनिमित्तं बज्जइ बन्ध-ट्टिई कसायवसा।

अपरिणउच्छिण्णेषु य बंधट्टिइकारणं णत्थि।।१९।।

कर्म = अदृष्टम्, योगनिमित्तं मनो-वाक्-कायव्यापारनिमित्तम् बध्यते = आदीयते, बध्यत इति बन्धः = अदृष्टमेव तस्य स्थितिः = कालान्तरफलदातृत्वेन आत्मन्यवस्थानम् सा कषायवशात् = 10  
क्रोधादिसामर्थ्यात् एतदुभयमपि एकान्तवाद्यभ्युपगते आत्मचैतन्यलक्षणे भावे अपरिणते उत्सन्ने च बन्ध-  
स्थितिकारणं नास्ति। न ह्यपरिणामिनि अत्यन्तानाधेयातिशये आत्मनि क्रोधादयः सम्भवन्ति। नाप्येकान्तोत्सन्ने  
का प्रयत्न व्यर्थ जायेगा, एवं क्षणिकपक्ष में प्रयत्न करने पर भी स्वयं को कोई लाभ होने वाला नहीं - यह युक्ति है।

सांख्यकारिका ग्रन्थ में जो कहा है कि '(अहंकारादि) भावों से अधिवासित लिंग (प्रधानतत्त्व), विना 15  
उपभोग ही संसरण (= परिभ्रमण) करता है' - यह सांख्यमत भी निरस्त हो जाता है, क्योंकि एकान्त  
कूटस्थ आत्मा मानने पर सर्वत्र 'सुख-दुःख प्राप्ति-परिहारप्रयत्नव्यर्थता'रूप न्याय यहाँ लब्धप्रसर है।।१८।।

### [ एकान्तवाद में कर्मसिद्धान्त की अनुपपत्ति ]

अव० :- एकान्तवाद पक्ष में आत्मा को सुख-दुःख उपभोग कराने वाले देहसम्बन्ध की अनुपपत्ति  
की तरह देहसम्बन्ध के हेतुभूत अदृष्ट यानी कर्म एवं उस के उत्पादक निमित्त कषायादि की भी 20  
अनुपपत्ति को गाथा १९ में दिखाते हैं -

गाथार्थ :- (मन आदि) योग के निमित्त से कर्म बंधता है। बन्ध की स्थिति कषायाधीन होती  
है। अपरिणाम एवं उच्छेद (पक्ष) होने पर बन्ध एवं उस की स्थिति का कारण नहीं रहेगा।।१९।।

व्याख्यार्थ :- 'कर्म' शब्द के क्रियादि अनेक अर्थ हैं, यहाँ नैयायिकमत प्रसिद्ध अदृष्ट अर्थ लेना  
है। उस का बन्ध होता है मन-वचन-काया के स्पन्दनरूप योग के निमित्त से। जीव को बाँधनेवाला 25  
बन्ध कहा जाता है, मतलब कि कर्म। उस की स्थिति का मतलब है कालान्तर में फलदान करने  
तक आत्मा में बैठे रहना। बन्धस्थिति क्रोधादिबलाधीन होती है। एकान्तवादी स्वीकृत नित्य (अपरिणामी)  
या क्षणविनाशी आत्मचेतनारूप पदार्थ में उभय यानी बन्ध और स्थिति का एक भी कारण (योग  
या कषाय) घट नहीं सकता।

जिस में किसी संस्कार (= अतिशय) का सिंचन शक्य नहीं ऐसा अपरिणामी आत्मा मानने पर 30  
उस में क्रोधादि कषायों का आवेश-उपशम घटेगा नहीं। एकान्त क्षणभंगुरवाद में पूर्वापर अनुसन्धान नहीं

अनुसन्धानविकले 'अहमनेनाऽऽकुष्टः' इति द्वेषसम्भवः। तथा च 'अन्य आकुष्टः अन्यो रुष्टः' 'अन्यो व्यापृत अपरो बद्ध अपरश्च मुक्तः' इति कुशलाकुशलकर्मगोचरप्रवृत्त्याद्यारम्भवैफल्यप्रसक्तिः। न चैकसन्ततिनिमित्तोऽयं व्यवहारः, क्षणिकैकान्तपक्षे सन्ततिकल्पनाबीजभूतोपादानोपादेयभावस्यैवाऽघटमानत्वात्। न चेयमनुसन्धानप्रतिपत्तिर्मिथ्या, द्वेष-गर्व-शाठ्याऽसन्तोषादीनामन्योन्यविरुद्धस्वभावानां क्रमविवर्तिनां चिद्विवर्तानां

5 स्वसंवेदनाध्यक्षसिद्धानाम् तथा तथाभवितुश्च संशय-विपर्यासाऽदृढज्ञानाऽगोचरीकृतस्यैकस्य चैतन्यस्यानुभवात्। न च बाधारहितानुभवविषयस्यापहनवः सुखादेरप्यनुभवविषयस्याऽपह्नुतिप्रसङ्गात्। तथा च प्रमाण-प्रमेयादिव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिः।

यदपि 'मिथ्याधारोपहानार्थं यत्नोऽसत्यपि मोक्षरि' (प्र.वा. १-१९४) इत्युक्तम् तदप्यनेनैव प्रतिविहितम्, यथोक्तप्रतिपत्तेर्मिथ्यात्वाऽसिद्धेः। न चानुमाननिश्चितेऽर्थे आरोपबुद्धेरुत्पत्तिर्धूमनिश्चयावगतधूमध्वज इव।

10 न च मिथ्याज्ञानस्य सहजत्वात् विपरीतार्थोपस्थापकानुमानप्रवृत्तावपि न निवृत्तिः तथाभ्युपगमे बोधसन्तानवत् तस्य सर्वदाऽनिवृत्तिरित्यमुक्तिप्रसक्तिः। असहजं तु तत्त्वज्ञानप्रादुर्भावेऽवश्यं निवर्तते शुक्तिकावगमे रजतभ्रम

होगा — 'अतः मुझ पर इसने आक्रोश किया' ऐसा द्वेष होगा नहीं। कारण :- इस पक्ष में आक्रोशकर्ता अन्य है रोषकर्ता अन्य है, क्रियाकारक अन्य है बन्धप्रतियोगी अन्य है एवं मुक्त होने वाला भी अलग है, अतः कुशल या अकुशल कर्मसंबन्धि प्रवृत्ति आदि कारक प्रयत्नों में निष्फलता प्राप्त होगी।

15 [ 'मैं बद्ध हूँ' इत्यादि बुद्धि में मिथ्यात्व असिद्ध ]

धर्मकीर्ति पंडित ने प्रमाणवार्तिक ग्रन्थ में जो यह कहा है कि 'मुक्तिगामी कोई न होने पर भी('मैं बद्ध हूँ' ऐसे) मिथ्या आरोप की निवृत्ति के लिये प्रयत्न किया जाता है' — यह कथन भी ऊपरि कथित युक्ति से निरस्त हो जाता है, क्योंकि 'मैं बद्ध हूँ' ऐसी बुद्धि मिथ्या मानना अयुक्त है। जैसे धूमनिश्चय से निश्चित होनेवाले अग्नि में आरोपित प्रकार की बुद्धि नहीं होती ऐसे ही

20 अनुमान से निश्चित बन्धादि अर्थ के प्रति आरोपबुद्धि का उदय नहीं होता। ऐसा कहना कि — 'मैं बद्ध हूँ' इत्यादि मिथ्याज्ञान अनादिकालीन सहज होने से, विपरीत अर्थ 'मैं बद्ध नहीं' उपस्थापक अनुमान प्रवृत्त रहने पर भी उक्त सहज बुद्धि की निवृत्ति नहीं होती' — तब ऐसा मानने पर तो, वैसे बोधसन्तान की तरह उस मिथ्याज्ञान की भी निवृत्ति न होने से कभी मुक्ति लाभ न होने की अनिष्टता प्रसक्त होगी। जो असहज मिथ्याज्ञान होता है वह तो तत्त्वज्ञान के उदय में अवश्य निवृत्त

25 हो जाता है जैसे सीप का भान होने पर चाँदी का भ्रम निवृत्त हो जाता है। कदाचित् उस की निवृत्ति न होने का मानेगें तो कभी भी प्रमाण अप्रमाबुद्धि का बाधक नहीं हो सकेगा।

[ 'मैं वही हूँ' यह प्रतीति मिथ्याविकल्परूप नहीं ]

यदि वस्तु के निश्चय के साथ क्षणभंग का भी निश्चय हो जाता तो 'मैं वही हूँ' ऐसा भान कभी न होता, उलटे — 'उस के जैसा हूँ' ऐसा ही भान होता। गवय का निश्चय होने से गाय

30 का स्मरण होने पर भी 'गाय ही है' ऐसा निश्चय नहीं होता किन्तु 'गाय जैसा है' ऐसा निश्चय होता है, क्योंकि गवय और गाय भिन्न है। यदि क्षणभेद से वस्तुभेद होता तब तो 'मैं वही हूँ' ऐसा भान न हो कर 'उस के जैसा हूँ' ऐसा ही बोध होता, लेकिन होता नहीं है अतः क्षणभेद

इव, अनिवृत्तौ वा न प्रमाणमप्रमाणबाधकं भवेत्। न च क्षणक्षयनिश्चये 'स एवाहम्' इति प्रत्ययो युक्तः अपि तु 'स इव' इति स्यात्। न हि गवयनिश्चये 'गौरेव' इति प्रत्ययो दृष्टः अपि तु 'गौरिव' इति। न च क्रमवर्तिष्वभिष्वङ्ग-द्वेषादिपर्यायेषु चैतन्यानुस्यूतिप्रत्ययस्य मानसत्वमात्मनि क्षणक्षयमनुमानाद् निश्चिन्वतोऽपि; तदैव स्पष्टमनुभूयमानत्वाद् विकल्पद्वयस्य युगपदुत्पत्तिः परैर्नष्टेति विकल्परूपत्वे एकत्व-प्रत्ययस्य क्षणिकत्वनिश्चयसमये सद्भावो न भवेत्। इत्येकान्तनित्याऽनित्यव्युदासेनोभयपक्ष एव बन्ध- 5 स्थितिकारणं युक्तिसङ्गतम्॥१९॥

किञ्च, एकान्तवादिनां संसारनिवृत्ति-तत्सुखमुक्तिप्राप्त्यर्था प्रवृत्तिश्चाऽसङ्गतेत्याह-

(मूलम्-) बन्धमि अपूरन्ते संसारभओघदंसणं मोज्झं।

बन्धं व विणा मोक्खसुहपत्थणा णत्थि मोक्खो य॥२०॥

बन्धे वाऽसति संसारो = जन्म-मरणादिप्रबन्धस्तत्र तत्कारणे वा मिथ्यात्वादावुपचारात् तच्छब्दवाच्ये 10 भयौघो = भीतिप्राचुर्यं तस्य दर्शनं 'सर्वं चतुर्गतिपर्यटनं दुःखात्मकम्' इति पर्यालोचनं मौढ्यं = मूढता

से वस्तु भेद सिद्ध न होने से, 'मैं वही हूँ' इस बुद्धि का मिथ्यात्व असिद्ध हो जाता है। क्षणिकवादी ऐसा कहें कि - 'आत्मा मैं एक ओर क्षणक्षय के अनुमानरूप निश्चय हो रहा है उसी क्षण में जो क्रमिक राग-द्वेषादि पर्यायों में अनुविद्ध एक चैतन्य की प्रतीति होती है वह मानस विकल्प है (प्रत्यक्षप्रमाणरूप नहीं)' - तो यह अयुक्त है क्योंकि विकल्प स्पष्टानुभवरूप नहीं होता जब कि अनुविद्ध 15 चैतन्य की प्रतीति (मैं वही हूँ) तो उसी वक्त स्पष्टानुभवरूप होती है। तथा अनुमानरूप विकल्प के साथ उक्त मानसविकल्प की कल्पना इस लिये भी अयुक्त है कि एक साथ विकल्पद्वय का उद्भव क्षणिकवादी को मान्य नहीं है। अतः अनुविद्ध एक चैतन्य प्रतीति यदि विकल्परूप होगी तो क्षणभंगनिश्चय (अनुमान) काल में उस की सत्ता नहीं होती। इस प्रकार, एकान्तनित्य या एकान्तअनित्य पक्ष का निरसन हो जाने से यह फलित होता है कि उभयवाद (कथंचिद् नित्यानित्य) पक्ष में ही बन्ध-स्थिति 20 कारण (योग-कषायादि) युक्तिसङ्गत हैं॥१९॥

[ बन्ध नहीं तो संसार का भय क्यों ? ]

अब० :- एकान्तवादीयों की संसारनिवृत्ति के लिये, तथा सुख एवं मुक्ति के लिये प्रवृत्ति व्यर्थ है यह २० गाथा में दिखाते हैं -

गाथार्थ :- बन्ध युक्तिरिक्त होने पर संसारभयबाहुल्य का प्रदर्शन मूढता है। बन्ध के बिना मोक्ष 25 की प्रार्थना भी नहीं हो सकती एवं मोक्ष भी॥२०॥

व्याख्यार्थ :- यदि बन्ध वास्तव नहीं तो जन्म-मृत्युपरम्परारूप अथवा उस के कारणभूत मिथ्यात्वादि जो कि उपचार से संसारशब्दवाच्य है उस संसार के प्रचुर भय का दर्शन यानी सेवन अथवा 'पूरा चारगतिपरिभ्रमण दुःखात्मक है' ऐसा विमर्श मूढता ही है क्योंकि बन्ध वास्तव न होने पर संसार में दुःखसमुदायकारणता दुर्घट है, अर्थात् वह मिथ्याज्ञान है, जैसे कि वन्ध्यापुत्र मुझे परेशान करेगा 30 ऐसे भय सम्बन्धि परामर्श। मिथ्याज्ञान से होने वाली प्रवृत्ति विसंवादिनी यानी निष्फल होती है।

अनुपपद्यमान संसारदुःखौघविषयत्वात् मिथ्याज्ञानं बन्ध्यासुतजनितबाधागोचरभीतिविषयपर्यालोचनवत्। मिथ्याज्ञानपूर्विका च प्रवृत्तिर्विसंवादिन्येव। बन्धेन विना संसारनिवृत्ति-तत्सुखप्रार्थना च न भवत्येव तथा मोक्षश्चानुपपन्नः निरपराधपुरुषवत् अबद्धस्य मोक्षाऽसम्भवात्। बन्धाभावश्च, योग-कषाययोः प्रकृति-स्थिति-अनुभाग-प्रदेशात्मकबन्धहेत्वोरेकान्तपक्षे विरुद्धत्वात्। न चैकरूपत्वाद् ब्रह्मणो बन्धाद्यभावप्रेरणा न दोषाय, चेतनाऽचेतनादिभेदरूपतया जगतः प्रतिपत्तेः। न च भेदप्रतिपत्तिर्मिथ्या अविद्यानिर्मितत्वादिति वक्तव्यम्; अविद्यायाः प्रतिपत्तिजननविरोधात्, अविरोधे विद्यारूपताप्राप्तेर्द्वैतप्राप्तिरिति। प्रतिविहितश्चाऽद्वैतवाद इति न पुनः प्रतन्यते॥२०॥

तदेवमेकान्ताभ्युपगमे बन्धहेत्वाद्यनुपपत्तेरैहिकाऽऽमुष्मिकसर्वव्यवहारविलोपः इत्येकान्तव्यवस्थापकाः सर्वेऽपि मिथ्यादृष्टयो नयाः अन्योन्यविषयाऽपरित्यागवृत्तयस्तु त एव सम्यक्त्वं प्रतिपद्यन्त इत्युपसंहरन्नाह—  
5 (मूलम्-) तम्हा सव्वे वि णया मिच्छादिट्ठी सपक्खपडिबद्धा।

अण्णोण्णणिस्सिआ ण हवंति सम्मत्तसब्भावा॥२१॥

यस्मादेकान्तनित्याऽनित्यवस्त्वभ्युपगमो बन्धादिकारणयोगकषायाभ्युपगमबाधितः तदभ्युपगमोऽपि नित्याद्येकान्ताभ्युपगमप्रतिहतः इत्येवंभूतपूर्वोत्तराभ्युपगमस्वरूपाः तस्मात् मिथ्यादृष्टयः सर्वेऽपि नयाः तथा, बन्ध वास्तव न होने पर, संसार निवृत्तिरूप मुक्तिसुख की याचना भी नहीं करनी चाहिये।  
15 बन्ध के बिना मोक्ष भी निर्दोष पुरुष की तरह असंगत है। जो बद्ध नहीं उस का मोक्ष कैसा ? प्रकृति-स्थिति-रस-प्रदेश चतुर्विध बन्ध के हेतुभूत योग-कषायद्वन्द्व एकान्तवाद में विरुद्धतत्त्व है।

यदि ब्रह्माद्वैतवादी कहें कि — हमारे पक्ष में बन्धादि के अभाव का आपादन दूषण नहीं भूषण है — तो यह गलत है, क्योंकि जड-चेतन के भेद से द्वैत जगत् का अनुभव होता है। 'अविद्याप्रेरित होने से भेदानुभव मिथ्या है' — ऐसा नहीं कहना क्योंकि अविद्या होकर अनुभव का उत्पादन करे  
20 इस में विरोध है, यदि विरोध नहीं है तब तो उत्पादक होने से वह विद्यारूप सिद्ध होने से विद्या एवं ब्रह्म ऐसे द्वैत का प्रवेश होगा। पहले (२८५-६) पूर्वग्रन्थ में अद्वैतवाद का निरसन किया जा चुका है अतः यहाँ पुनः विस्तार नहीं करते॥२०॥

[ नय मिथ्यादृष्टि नय सम्यग्दृष्टि कब कैसे ? ]

अव० :- उक्त प्रकार से एकान्ताग्रह रखने पर बन्धहेतु आदि की संगति नहीं होती अतः इहलौकिक  
25 पारलौकिक सर्व व्यवहारों का लोप प्रसङ्ग आता है; अतः एकान्तस्थापक सभी नय मिथ्यादृष्टि हैं। वे ही नय अन्योन्यविषय की उपेक्षा करने का साहस न करे तो सम्यग्दृष्टि बन जाते हैं इसी भावार्थ का उपसंहार करते हैं —

गाथार्थ :- अत एव अपने पक्ष में आग्रहबद्ध सकल नय मिथ्यादृष्टि हैं। और अन्योन्यनिश्चित हो कर सम्यक्त्व की सत्ता से युक्त बन जाते हैं॥२१॥

30 व्याख्यार्थ :- चूँकि एकान्तनित्य या एकान्त अनित्य वस्तु की मान्यता बन्धादिकारणीभूत योग और कषायों की मान्यता से विरुद्ध है; बन्धादिकारण योग-कषायादि का स्वीकार भी एकान्त नित्य या अनित्य आत्मतत्त्व स्वीकार से विरुद्ध है, इस प्रकार के पूर्व-उत्तर मान्यतात्मक सभी नय मिथ्यादृष्टि

स्वपक्षप्रतिबद्धाः = स्व आत्मीय पक्षः अभ्युपगमस्तेन प्रतिबद्धाः = प्रतिहता यतस्तत इति। नयज्ञानानां च मिथ्यात्वे तद्विषयस्य तदभिधानस्य च मिथ्यात्वमेव। तेनैवं प्रयोगः — मिथ्याः सर्वनयवादाः स्वपक्षेणैव प्रतिहतत्वात् चौरवाक्यवत्। अथ तेषां प्रत्येकं मिथ्यात्वे बन्धाद्यनुपपत्तौ सम्यक्त्वानुपपत्तिः सर्वत्रेत्याह—  
अन्योन्यनिश्चिताः = परस्परऽपरित्यागेन व्यवस्थिताः पुनर् इति त एव सम्यक्त्वस्य यथावस्थितवस्तुप्रत्ययस्य सद्भावा भवन्तीति न बन्धाद्यनुपपत्तिः।

5

ननु यदि नया प्रत्येकं सन्ति कथं प्रत्येकावस्थायां तेषां सम्यक्त्वाभावः स्वरूपव्यतिरेकेण अपरसम्यक्त्वाभावात् तस्य च तेष्वभ्युपगमात् ? अथ न सन्ति, कथं तेषां समुदायः सम्यक्त्वनिबन्धनो भवेत् असतां समुदायानुपपत्तेः ? न च असतोऽपि सम्यक्त्वम् नयवादेश्चपि सम्यक्त्वप्रसक्तेः। न च प्रत्येकं तेषां सतामसम्यक्त्वेऽपि तत्समुदाये सम्यक्त्वं भविष्यति 'द्व्वट्टिओ त्ति तम्हा नत्थि णओ' [९] इत्याद्युपसंहारसूत्रविरोधात्। न च प्रत्येकमेकैकांशग्राहिणः सम्पूर्णवस्तुग्राहकाः। समुदिता इति सम्यग्व्य-

10

हैं क्योंकि अपने अपने पक्ष के साथ आग्रहबद्ध होने से परस्पर प्रतिघातकारक बन जाते हैं। एकान्तग्रह के कारण जब सभी नयों में मिथ्यात्व भरा है तो उन का विषय घटादि और उन का प्रतिपादन ये सब मिथ्यात्वग्रस्त सिद्ध होते हैं। यहाँ अब इस प्रकार अनुमानप्रयोग जान लो — 'सकल नयवाद मिथ्या हैं क्योंकि अपने ही पक्ष से एक-दूसरे के साथ टकरानेवाले हैं जैसे तस्कर का वाक्य।'

शंका :- जब नयों में प्रत्येक में मिथ्यात्व हैं, बन्धादि न घट सकने से सभी में सम्यक्त्व तो 15 दूर रह गया।

उत्तर :- अन्योन्यनिश्चाराभिहित यानी एक-दूसरे को न छोड़ते हुए सहयोगी बन जाय तो वे ही यथा-वस्थितवस्तुबोधरूप सम्यक्त्व के प्रशस्तभाववाले बन जायेंगे, फिर कोई बन्धादि की असंगति नहीं होगी।

### [ प्रत्येक में नहीं है तो समुदाय में कैसे ? शंका ]

शंका :- नय यदि प्रत्येक (= स्वतन्त्र ) हैं तो उन की प्रत्येकावस्था में सम्यक्त्व क्यों न हो ? 20 क्या अपने (प्रत्येकत्व) स्वभाव से अतिरिक्त कोई नया सम्यक्त्व होता है ? नहीं। स्वभाव तो उन में है ही। यदि 'प्रत्येक' कोई नय ही नहीं है तब तो उन का समुदाय सम्यक्त्वप्रयोजक कैसे बनेगा ? जो नहीं है वह असत् है, असत् बन्ध्यापुत्रादि का कोई समुदाय नहीं हो सकता। जो स्वयं असत् हैं उस में सम्यक्त्व नहीं होता, यदि मानेंगे तो नयवादों में भी सम्यक्त्व प्रसक्त होगा। ऐसा नहीं कहना कि — 'नय सत् हैं असत् नहीं, किन्तु एक एक में सम्यक्त्व नहीं होता किन्तु उन के समुदाय 25 में सम्यक्त्व हो सकता है।' — क्योंकि पहले जो एक उपसंहारसूचक सूत्र कहा था 'द्व्वट्टिओ त्ति तम्हा नत्थि णओ' (= शुद्ध द्रव्यास्तिक कोई नय नहीं है) इस सूत्र [९] के साथ विरोध होगा। यदि कहें कि — 'प्रत्येक नय एकांशवस्तुग्राही है किन्तु उन का समुदाय होने पर वे मिल कर सम्पूर्णवस्तुग्राहक बनते हैं अतः 'सम्यक्' उपाधि प्राप्त कर लेते हैं।' — तो यह ठीक नहीं, क्यों कि समुदाय में रहने पर भी वे अपने अपने विषय को ही पकड कर रखेंगे, अपनी विषयमर्यादा छोड कर दूसरे विषय 30 में टाँग नहीं अडाएँगे। तथा, जो प्रत्येक में नहीं होता वह उन के समुदाय में भी नहीं हो सकता, उदा० प्रत्येक बालु-कण में तैल नहीं होता, तो उन के समुदाय को पीलने से भी तैलप्राप्ति नहीं होती।



पदेशमासादयन्ति, तत्तत्स्वगोचराऽपरित्यागेन तत्रापि विषयान्तरे तेषामप्रवृत्तेः। न च प्रत्येकमसम्यक्त्वे समुदायेऽपि सम्यक्त्वं युक्तम् सिकतासु तैलवत्, असतः सदुत्पत्तेः सतो वाऽसदुत्पत्तेर्विरोधाच्च।

अत्राभिधीयते- प्रत्येकमप्यपेक्षितेतरांशस्वविषयग्राहकतयैव सन्तो नयाः तद्व्यतिरिक्तरूपतया त्वसन्त इति सतां तत्समुदाये सम्यक्त्वे न कश्चिद् दोषः। नन्वितरेतरविषयाऽपरित्यागवृत्तीनां ज्ञानानां कथं  
5 समुदायः सम्भवी येन तत्र सम्यक्त्वमभ्युपगम्येत ? — अनुक्तोपालम्भ एषः,; नह्येकदाऽनेकज्ञानोत्पादस्तेषां समुदायो विवक्षितः अपि त्वपरित्यक्तेतररूपविषयाध्यवसाय एव समुदायः। अन्योन्यानिश्चिताः इत्यनेनाप्यय-  
मेवार्थः प्रतिपादितः। न हि द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकाभ्यामत्यन्तपृथग्भूताभ्यामङ्गुलिद्वयसंयोगवदुभयवादोऽपरः  
प्रारब्धः।

ननु यदि प्रमाणं नयाः 'प्रमाणनयैरधिगमः' [तत्त्वार्थ० १-६] इति प्रमाण-नयभेदकल्पनावैयर्थ्यप्रसक्तिः।  
10 अथ अप्रमाणम् तथाप्यधिगमानुपपत्तिः तत्पृथग्भूतस्यापरस्याऽसंवेदनात् प्रमाणाभावप्रसक्तिश्च। असदेतत्-  
यतः अप्रमाणं नयाः नयन्ति इतररूपसापेक्षं स्वविषयं परिच्छिन्दन्तीति नया इति व्युत्पत्तेः। न चाऽपरिच्छेदकाः,  
प्रत्येक में जो अल्पांश में भी होगा वही समुदाय में बहुअंश में प्राप्त हो सकेगा, यदि असत् से  
सत् की अथवा सत् से असत् की उत्पत्ति मानेंगे तो विरोध ही होगा।

### [ सम्यक्त्वापादक समुदाय की विशेष व्याख्या ]

15 उक्त शंका का उत्तर :- प्रत्येक नय भी सत् है जो स्वाभिप्रेत अंश के ग्राहक होते हुए अन्य  
नय निरूपित अंश के प्रति सापेक्ष होते हैं। ऐसे सत् नयों के समुदाय में सम्यक्त्व माने तो कोई  
दोष नहीं।

शंका :- माना कि अन्योन्य नयविषय का अपलाप करने की वृत्ति सत् नयों में न होनी चाहिये,  
किन्तु नय तो ज्ञानात्मक है, उन का समुदाय कैसे बनेगा ? जिस से कि उस में सम्यक्त्व हो सके ?

20 उत्तर :- यह उपालम्भ हमारे मान्य सिद्धान्त पर नहीं है अमान्य तत्त्व पर थोपा गया है। 'समुदाय'  
पद से हम एक साथ अनेक ज्ञानों की सहोत्पत्ति का निर्देश नहीं करते, समुदायपद से हमारा अभिप्राय  
यह है कि अन्य नयविषय का अपलाप न करनेवाला स्वाभिप्रेतविषय का अध्यवसाय। मूल गाथा  
में 'अन्योन्यनिश्चित' पद से यही अर्थ अभिप्रेत है। ऐसा मत समझना कि — अत्यन्त भिन्न दो अंगुलि  
के संयोग की तरह यहाँ अत्यन्त पृथग् द्रव्यार्थिक - पर्यायार्थिक का कोई नया उभयवाद यहाँ अप्रस्तुत है।

25 [ प्रमाण-नय भेदव्यर्थता शंका का समाधान ]

शंका :- नय प्रमाण हैं या अप्रमाण ? यदि प्रमाण हैं तो फिर श्री तत्त्वार्थसूत्र में (१-६ में)  
'प्रमाण और नयों से अधिगम' इस तरह जो प्रमाण-नय में भेद की कल्पना प्रदर्शित है वह निरर्थक  
ठहरेगी। यदि अप्रमाण हैं तो उन से अधिगम होने का नहीं घटेगा क्योंकि प्रमाण से पृथक् तो कोई  
अधिगम अनुभवसिद्ध नहीं है। फलतः प्रमाणलोप प्रसक्त हुआ।

30 समाधान :- शंका गलत है। नय प्रमाण से पृथक् ही हैं — उस की व्युत्पत्ति ही ऐसी है —  
नयन्ति = अन्यरूपसापेक्ष रह कर अपने विषय का परिच्छेद = बोध करते हैं (वे नय कहे जाते  
हैं)। नय परिच्छेदकारी नहीं है ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नयति = नीधातु गत्यर्थक

नयतेर्गत्यर्थत्वेन ज्ञानार्थत्वात् ज्ञानस्य च परिच्छेदकत्वात्। न च परिच्छेदकत्वेऽपि प्रमाणता, समस्तनयविषयीकृतानेकान्तवस्तुग्राहकत्वेन 'प्रकृष्टं मानं प्रमाणम्' 'इतरांशसव्यपेक्षस्वांशग्राही नयः' इति तत्त्वतत्त्वव्यवस्थितेः। न चानेकान्तात्मकवस्तुग्राहिणो नया (न?) भवन्ति, प्रत्येकं स्वविषयनियतत्वात् तेषाम् तद्व्यतिरिक्तस्य चान्यस्य तद्विषयस्याननुभवात्।

प्रमाणाभावोऽपि न, आत्मनः कथञ्चित् तद्व्यतिरिक्तस्य प्रमाणत्वेनाऽनुभवसिद्धत्वात् तत्तन्नय- 5  
विषयीकृताऽशेषवस्त्वंशात्मकैकद्रव्यग्राहकत्वस्य तत्र प्रतीतेः। न च संशयादिज्ञानैरात्मनः प्रमाणत्वेऽति-  
प्रसङ्गाः, प्रमीयतेऽनेनेति प्रमिणोतीति वा प्रमाणमिति 'प्र'शब्देन तस्य निरस्तत्वात्। न चात्मनः कर्तृत्वात्  
करणरूपप्रमाणताऽनुपपत्तिः, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकस्य तस्यानेकरूपत्वेन कर्तृ-करणभावाऽविरोधात्। एतेन  
'प्रत्येकं मिथ्यादृष्टयो नयाः समुदिताः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यन्ते इत्यत्र न नयसमुदायोऽर्थदृष्टा प्रत्येकमदृष्टत्वात्  
जात्यन्धसमूहवत्' इत्येतन्निरस्तम्, अदृष्टतत्समूहस्य सम्यक्त्वानभ्युपगमात्, स्वविषयपरिच्छेदकत्वाच्च नयानाम् 10

है, जो गत्यर्थक धातु होते हैं वे सब ज्ञानार्थक भी होते हैं — यह सुविदित तथ्य है, ज्ञान कहो या परिच्छेद, एक ही बात है। परिच्छेदक हैं तो प्रमाण क्यों नहीं ? इस का उत्तर है व्युत्पत्तिभेद। 'प्रमाण' पद की व्युत्पत्ति है — 'प्रकृष्ट मान प्रमाण' है, प्रकृष्ट यानी समस्त नयों के द्वारा विभिन्न अंशों से विषयी कृत अनेकान्तात्मक वस्तु का वह ग्राहक है — इस को प्रमाण कहा जाता है। नय की व्युत्पत्ति है — अन्य अंश से सापेक्ष रह कर अपने अभिप्रेत अंश का ग्राहक नय है। इस प्रकार 15  
दोनों का अपना अपना तत्त्व (= तात्पर्य) भिन्नरूप से व्यवस्थित हैं। यदि कहें कि 'नय अंशग्राही होने पर भी अनेकान्तात्मक वस्तु के ग्राहक हैं' — तो ऐसा नहीं है, प्रत्येक नय अपने अपने अंशभूत विषय के ग्रहण में नियत होते हैं, उन से (अनेकान्तात्मक वस्तु के अंशों से) पृथक् और कोई उन का विषय अनुभवारूढ नहीं हैं। अतः अनेकान्तवस्तुग्राही नहीं है।

### [ प्रमाणलोप-आपत्ति का निरसन ]

20

प्रमाणभावप्रसक्ति भी निरवकाश है, क्योंकि नयबोध से कथञ्चिद् विभिन्न आत्मा की प्रमाणता अनुभवसिद्ध है। तत्तद् नय के विषयीभूत समस्त वस्तु-अंशात्मक एक द्रव्य के ग्राहकरूप में प्रमाणरूप से आत्मा प्रतीत होता है। 'यदि आत्मा को ही प्रमाण मानेंगे तो संशय-विपर्ययादि ज्ञान के काल में भी प्रमाणत्व का अतिप्रसङ्ग होगा' — ऐसा मत कहना क्योंकि 'प्र' उपसर्ग का प्रयोग उस का निवारक है — 'प्रमिति जिस से हो' अथवा 'जो प्रमिति करे' वह प्रमाण है — इन व्युत्पत्तिओं में 25  
'प्र' शब्द संशयादि का निवारण करने के लिये ही प्रयुक्त है। यदि कहें कि — 'आत्मा तो प्रमिति का कर्ता है अतः उस में करणार्थकव्युत्पत्ति से प्राप्त प्रमाणता संगत नहीं होगी।' — तो यह उचित नहीं, क्योंकि आत्मा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक होने से एकान्त कर्तारूप नहीं है, कथञ्चित् करणरूप भी होने में कोई विरोध नहीं।

### [ नयसमुदाय में अर्थदर्शित्व निषेध का निरसन ]

30

शंका :- प्रत्येक नय मिथ्यादृष्टि है किन्तु समुदित हो कर सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं ऐसा कहा जाता है किन्तु उस के सामने यह एक अनुमान है — नयसमुदाय अर्थदर्शी नहीं है क्योंकि प्रत्येक

‘अदृष्टत्वात्’ इति हेतुरसिद्धः। ‘परिपूर्णवस्त्वनधिगन्तृत्वात्’ इति हेतौ प्रतिज्ञातार्थकदेशाऽसिद्धिः, सिद्धसाध्यता च समुदायिनो दृष्टत्वनिषेधे साध्ये। अथ तत्समुदायस्य दृष्टत्वनिषेधः साध्यः तदाऽध्यक्षविरोधः समुदायि-  
व्यतिरिक्तस्यैकान्तेन समुदायस्याभावात् धर्मिणोऽप्रसिद्धिः सिद्धसाध्यता च॥२१॥

5 न च समुदायाभावे नया एव परस्परव्यावृत्तस्वरूपा इति न क्वचित् सम्यक्त्वम्, नय-प्रमाणात्मकैकचैतन्य-  
प्रतिपत्तेः, रत्नावलीवत् इत्याह—

यद्वा ‘यत् प्रत्येकं नयेषु न सम्यक्त्वम् तत् तेषां समुदायेऽपि न भवति यथा सिकतासु प्रत्येकमभवत्  
तैलं तासां समुदायेऽपि न भवति’ इत्यत्र हेतोरनैकान्तिकताप्रतिपादनार्थमाह— जहण्यलक्खण इत्यादि—

(मूलम्-) जहऽण्यलक्खणगुणा वेरुलियाई मणी विसंजुत्ता।

रयणावलिबवएसं न लहंति महग्घमुल्ला वि॥२२॥

10 तह णिययवायसुविणिच्छिया वि अण्णोण्णपक्खणिरवेक्खा।

सम्मइंसणसइं सव्वे वि णया ण पावेति॥२३॥

नय अर्थदर्शी नहीं है, जैसे एक एक जन्मांध जन दृष्टा न होने पर उन का समुदाय दृष्टा नहीं होता।

निरसन :- हम अदर्शी वचनसमूह में सम्यक्त्व का स्वीकार ही नहीं करते हैं और नय तो  
अपने विषय के परिच्छेदकारी यानी दृष्टा है, अतः नयों में ‘अदृष्टत्व’ हेतु असिद्ध है। यदि  
15 ‘परिपूर्णवस्तुअबोधकारित्व’ को हेतु किया जाय तो तो सर्वथा-अदृष्टत्व नहीं हुआ मतलब किंचिदर्थदृष्टत्व  
प्रतिज्ञात अर्थ में रह जाने से, प्रतिज्ञार्थकदेश से हेतु पुनः असिद्ध हो गया। तदुपरांत प्रश्न है कि  
9समुदायान्तर्गत एक नय में दृष्टत्व का निषेध करना है या २उन के समुदाय में ? प्रथम पक्ष में  
सिद्धसाध्यता है क्योंकि हम समुदाय में ही अर्थदृष्टत्व मानते हैं न कि समुदायान्तर्गत एक नय में।  
दूसरे पक्ष में प्रत्यक्ष विरोध है क्योंकि समुदाय में अर्थदृष्टत्व प्रत्यक्षसिद्ध है। तथा, समुदायि (= समुदाय  
20 का अवयव) एवं समुदाय में हम एकान्त भेद नहीं मानते, समुदायि से पृथक् समुदाय न होने से  
तथाविध समुदाय को पक्ष करेंगे तो पक्षासिद्धि दोष होगा। सिद्धसाध्यता दोष भी होगा, क्योंकि अतिरिक्त  
समुदाय (न होने से उस) में दृष्टत्व को हम नहीं मानते।

[ अनेकान्तवाद के समर्थन में रत्नमाला का दृष्टान्त ]

अव० (१) — जब समुदायरूप धर्मी नहीं है तब शेष रहे परस्पर भिन्नस्वरूप नय। उन में  
25 तो कहीं भी सम्यक्त्व नहीं। ऐसा नहीं है, क्योंकि नय-प्रमाण उभयात्मक एक चैतन्य रत्नावली की  
तरह अनुभवसिद्ध है — यही पदार्थ २२-२३-२४-२५ गाथाओं में प्रदर्शित करते हैं—

अव० (२) — अथवा, ‘प्रत्येक नयों में जो सम्यक्त्व नहीं है वह समुदाय में भी नहीं, जैसे  
वालुकणों में एक एक में न रहने वाला तैल उन के समूह में भी नहीं होता’ इस प्रयोग में ‘प्रत्येकावृत्तित्व’  
हेतु में साध्यद्रोह दोष का प्रदर्शन २२ आदि चार गाथाओं से किया जाता है—

30 गाथार्थ :- जैसे अनेक लक्षण एवं गुण वाले वेड्युआदि पृथक् पृथक् मणीओं में, वे मूल्य से अति  
महेंगे होने पर भी ‘रत्नावली’ संज्ञा (विशेषण) से लाभान्वित नहीं होते॥२२॥ उसी तरह, अपने

जह पुण ते चेव मणी जहा गुणविसेसभागपडिबद्धा।  
 'रयणावलि' त्ति भण्णइ जहंति पाडिक्कसण्णाउ।।२४।।  
 तह सव्वे णयवाया जहाणुरूवविणिउत्तवत्तव्वा।  
 सम्मदंसणसदं लहन्ति ण विसेससण्णाओ।।२५।।

5

(व्याख्या:-) यथा अनेकप्रकारा विषविघातहेतुत्वादीनि लक्षणानि नीलत्वादयश्च गुणा येषां ते वैदूर्यादयो मणयः पृथग्भूता रत्नावलीव्यपदेशं न लभन्ते महार्घमूल्या अपि।।२२।।

तथा प्रमाणावस्थायाम् इतरसव्यपेक्षस्वविषयपरिच्छेदकाले वा स्वविषयपरिच्छेदकत्वेन सुनिश्चिता अपि अन्योन्यपक्षनिरपेक्षाः 'प्रमाणं' इत्याख्यां सर्वेऽपि नया न प्राप्नुवन्ति, निजे च इतरनिरपेक्षसामान्यादिवादे सुविनिश्चिता हेतुप्रदर्शनकुशला अन्योन्यपक्षनिरपेक्षत्वात् सम्यग्दर्शनशब्दं 'सुनयाः' इत्येवंरूपं सर्वेऽपि 10 संग्रहादयो नया न प्राप्नुवन्ति।।२३।।

यदा पुनस्त एव मणयो यथा गुणविशेषपरिपाट्या प्रतिबद्धाः 'रत्नावलि' इति आख्यामासादयन्ति प्रत्येकाभिधानानि च त्यजन्ति रत्नानुविद्धतया रत्नावल्यास्तदनुविद्धतया च रत्नानां प्रतीतेः 'रत्नावली'

अपने विषयों के बारे में सुनिश्चित किन्तु परस्पर निरपेक्ष सर्व नय 'सम्यग्दर्शन' शब्दलाभ प्राप्त नहीं कर सकते।।२३।। फिर जैसे वे ही मणि गुणविशेष (= एक धागे में अथवा चित्र क्रम से) गूथित 15 होने पर 'रत्नावली' संज्ञा प्राप्त करते हैं, और प्रत्येक संज्ञाओं का त्याग करते हैं।।२४।। इसी तरह, सभी नयवाद यथोचित विनियोगात्मक वक्तव्य युक्त हो जाने पर 'सम्यग्दर्शन' शब्दसंज्ञा प्राप्त करते हैं, पृथक् संज्ञा रहती नहीं।।२५।।

[ पृथग् पृथग् मणियों को 'रत्नावली' विरुद नहीं ]

व्याख्यार्थ :- यथा = विविध प्रकार के जहर उतारने के लिये हेतुभूत लक्षण एवं नील-पीतादि 20 वर्णरूप गुणों को धारण करने वाले वैदूर्यादि मणि पृथक् पृथक् होने पर 'रत्नावली' विरुद को प्राप्त नहीं कर पाते, चाहे कितने भी महंगे मूल्यवंत हो।।२२।। सर्व नय यद्यपि प्रमाणावस्था में तो सुनिश्चित होते हैं, अथवा इतरसापेक्षस्वविषयबोधकाल में, अपने विषय के बोधकारक होने से सुनिश्चित होते हैं, फिर भी जब परस्पर निरपेक्ष बन जाय तो कोई भी नय सम्यग्दर्शन यानी 'प्रमाण' संज्ञा को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। निज यानी अन्यनिरपेक्ष सामान्यादिप्ररूपक वाद अवसर में सुविनिश्चित यानी 25 युक्तिप्रदर्शन करने में बाहोश होते हुए भी कोई भी संग्रहादि नय जब तक अन्योन्य पक्ष से निरपेक्ष हैं तब तक 'सम्यग्दर्शन' शब्द अर्थात् 'सुनय' ऐसा विरुद प्राप्त नहीं कर सकते।।२३।।

[ विशिष्टरचनालंकृत मणियों को रत्नावली विरुद ]

व्याख्यार्थ :- जब वे ही मणि यथोचित रचनाविशेषगर्भित क्रम से संकलित किये जाते हैं तब 'रत्नावलि' ऐसे विशेषण को प्राप्त कर लेते हैं और अपने अपने व्यक्ति-नाम का त्याग कर देते हैं। 30 'रत्नावली रत्नों से अनुविद्ध है और रत्न रत्नावलि से अनुविद्ध हैं' इस ढंग से अन्योन्य अनुविद्धस्वरूप

इति तत्र व्यपदेशः, न पुनः प्रत्येकाभिधानम् ॥२४॥

तथा सर्वे नयवादा यथानुरूपविनिर्युक्तवक्तव्या इति — यथा इति वीप्सार्थे अनु इति सादृश्ये रूपम् इति स्वभावे तेनानुरूपमित्यव्ययीभावः, पुनर्यथाशब्देन स एव 'यथाऽसादृश्ये' [ पाणि० २-१-७ ] इत्यनेन, यद् यदनुरूपं तत्र विनिर्युक्तं वक्तव्यं उपचारात् तद्वाचकः शब्दो येषां ते तथा-यथानुरूपद्रव्यध्रौव्यादिषु

5 प्रमाणात्मकत्वेन व्यवस्थिताः सम्यग्दर्शनशब्दं = 'प्रमाणम्' इत्याख्यां लभन्ते न विशेषसंज्ञाः = पृथग्भूता-भिधानानि; एकानेकात्मकत्वेन चैतन्यप्रतिपत्तेः अन्यथा चाऽप्रतिपत्तेरिति।

ननु नय-प्रमाणात्मकचैतन्यस्याध्यक्षसिद्धत्वेन 'रत्नावलि' इति दृष्टान्तोपादानं व्यर्थम्। न, अध्यक्षसिद्धमप्यनेकान्तमनभ्युपगच्छन्तं प्रति व्यवहारसाधनाय दृष्टान्तोपादानस्य साफल्यात्। प्रवर्तितश्च

से भासित होते हैं। मतलब कि वहाँ एक एक मणि की पृथक् पहिचान नहीं रहती, 'रत्नावली' ऐसा

10 ही नामकरण हो जाता है ॥२४॥

(जैसे रत्न एक धागे में उचित क्रम से पिरोये जाने पर 'रत्नावली' बन जाते हैं) वैसे, सभी नयवाद यथानुरूपविनिर्युक्तवक्तव्यवाले हो कर 'सम्यग्दर्शन' शब्द यानी 'प्रमाण' संज्ञा को प्राप्त करते हैं, फिर कोई व्यक्तिगत मणी आदि संज्ञा नहीं रहती। यहाँ जो यथानुरूपविनिर्युक्त(यु)क्त वक्तव्य— ऐसा अव्ययी समास है उस का विग्रह व्याख्याकार ने इस ढंग से किया है — 'यथा' शब्द वीप्सा =

15 द्विरुक्ति सूचक है, 'अनु' पद सादृश्यनिरूपक है, 'रूपम्' पद स्वभाववाचक है, यहाँ 'अनुरूपम्' ऐसा अव्ययीभाव आन्तर समास हुआ। पुनः 'अनुरूप' शब्द को वीप्सावाचक 'यथा' शब्द से जोड़ कर (वही =) अव्ययीभाव समास करना होगा। ऐसा समास पाणिनि व्याकरण के (२-१-७) 'यथाऽसादृश्ये' (इत्यनेन) इस सूत्र से (सिद्ध हेम व्याकरण के 'यथाऽथा' (३-१-४१) इस सूत्र से) बन सकता है। अब पूरे मूल समास का विग्रह इस तरह होगा — यद् यद् अनुरूपम् (यहाँ वीप्सा से यद् यद् ऐसी द्विरुक्ति

20 हुई।) = जो जो सादृशस्वभाव, तत्र — उस विषय में विनियुक्त = नियोजित है वक्तव्य = यानी उपचार से उन के वाचक शब्द येषां ते = जिन के वे यथानुरूपविनियुक्तवक्तव्य। इस का फलितार्थ यह है कि यथोचित द्रव्य-ध्रौव्यादि के प्रति प्रमाणभूत तरीके से नियोजित यानी व्यवस्थित सर्व नय 'प्रमाण' संज्ञा को प्राप्त करते हैं, विशेष = व्यक्तिगत अलग अलग संज्ञा को प्राप्त नहीं करते — छोड़ देते हैं, क्योंकि चैतन्य स्वयं एक-अनेकात्मकरूप से अनुभवारूढ होता है, एकान्त एकरूप या एकान्त

25 अनेकरूप अनुभूत नहीं होता।

### [ प्रत्यक्षसिद्ध भाव के लिये दृष्टान्त की उपयोगिता ]

शंका :- जब आप कहते हैं कि नयात्मक एवं प्रमाणात्मक बोधरूप चैतन्य प्रत्यक्षसिद्ध है — तो रत्नावली का उदाहरण देना निरर्थक है।

समाधान :- नहीं, अनेकान्तमत प्रत्यक्षसिद्ध ही है, किन्तु अन्य पंडित उस का सरलता से स्वीकार

30 नहीं करते, उन के प्रति अनेकान्त व्यवहार प्रसिद्ध करने के लिये दृष्टान्त निरूपण सफल हैं। अतः

▲. अत्र मूलगाथागत 'विणिउत्त' इति प्राकृतपदानुसारेण 'विनियुक्त' इत्येव सम्यग् भाति, 'विनिर्युक्त' इत्यस्य तु प्राकृतपदम् 'विणिज्जुत्त' इति भवेत्। (भू.सम्पा. युगलम्।)

तेनापि तत्रानेकान्तव्यवहारः॥२५॥

दृष्टान्तगुणप्रतिपादनायाह-

(मूलम्-) लोड्य-परिच्छयसुहो निच्छयवयणपडिवत्तिमग्गो य।

अह पण्णवणाविसउ त्ति तेण वीसत्थमुवणीओ॥२६॥

व्युत्पत्तिविकल-तद्युक्तप्राणिसमूहसुखप्राप्तत्वम् एकानेकात्मकभावविषयवचोऽवगमजनकत्वं च अथ 5  
इत्यवधारणार्थः अनन्तधर्मात्मकवस्तुप्ररूपकवाक्यविषयत्वं दृष्टान्तस्यैव। एतैः कारणैः शङ्काव्यवच्छेदेन  
अयमुपदर्शित इति गाथातात्पर्यार्थः।

न चावल्यवस्थायाः प्राग् उत्तरकालं च रत्नानां पृथगुपलम्भाद् इह च सर्वदा तथोपलम्भाभावाद्  
विषममुदाहरणमिति वक्तव्यम्, आवल्यवस्थाया उदाहरणत्वेनोपन्यासात्। न च दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकयोः  
सर्वथा साम्यं तत्र तद्भावानुपपत्तेः॥२६॥ 10

(१) रत्नादिकारणेष्वाल्यादिकार्यं सदेव - इति साङ्ख्याः।

इस दृष्टान्त से अनेकान्तव्यवहार अच्छी तरह प्रवृत्त होता है॥२५॥

[ रत्नावली दृष्टान्त प्रदर्शन के विविध हेतु ]

अव० :- दृष्टान्त के गुण का प्रतिपादन करते कहते हैं -

गाथार्थ :- लौकिक और परीक्षकों के लिये सुखद, निश्चय वचन ग्रहण का उपायभूत, तथा 15  
प्ररूपणाविषय है इसीलिये विश्वस्ततया प्रदर्शित किया है॥२६॥

व्याख्यार्थ :- लौकिक यानी अव्युत्पन्न और परीक्षक यानी व्युत्पन्न दोनों प्रकार के जनसमुदाय  
के लिये दृष्टान्त सरलता से सुखद यानी बोधकारक बनता है। निश्चयवचनप्रतिपत्ति यानी एकानेकात्मक  
वस्तुविषयक वचनजन्य बोध का उपायभूत दृष्टान्त है। तथा, दृष्टान्त अनन्तधर्मात्मकवस्तुप्ररूपणाकारक  
वचन का निर्देश्य है। इसी लिये शंका दूर करने हेतु दृष्टान्त का प्रदर्शन किया जाता है - यह 20  
गाथा का तात्पर्यार्थ है।।

शंका :- उदाहरण में प्रस्तुत साध्य का साम्य होना चाहिये, यहाँ तो साम्य के बदले वैषम्य  
है। कारण :- रत्नावली अवस्था के पहले सब मणी पृथक् दृष्टिगोचर होते हैं। जब रत्नावली का  
धागा निकाल दिया या तूट गया तो पश्चात् भी सब मणी पृथग् दृष्टिगोचर होते हैं। जब कि आप  
तो यह दिखा रहे हो कि सदा के लिये नयसमुदायरूप अनेकान्त होता है, कभी भी पृथग् नय दृष्टिगोचर 25  
नहीं हो सकता।

समाधान :- समझीये जी ! हमने पूर्व-मध्य-उत्तर तीनों अवस्था वाले रत्न समुदाय को दृष्टान्त  
नहीं किया, सिर्फ मध्य अवस्था में जो रत्नावली है उस को ही हमने दृष्टान्त किया है। दृष्टान्त  
और तद्बोध्य अर्थ में सर्व प्रकार से साम्य कभी नहीं होता, सर्वथा साम्य ढूँढेंगे तो कोई दृष्टान्त  
ही नहीं बन सकेगा, क्योंकि सभी भावों में कुछ न कुछ वैषम्य तो रहता ही है॥२६॥ 30

अव० - (१) सांख्यों का मत है कि मालादि कार्य रत्नों में पहले से सत् = विद्यमान होता है।

(२) तेषामेवानेन रूपेण व्यवस्थितत्वात् तदव्यतिरिक्तं विकारमात्रं कार्यं त एव — इति साङ्ख्यविशेष एव।

(३ + ४) 'न कार्यं कारणे विद्यते इति तेभ्यस्तत् पृथग्भूतम्' 'नहि कारणमेव कार्यरूपेण व्यवतिष्ठते परिणमते वा' इति वैशेषिकादयः।

5 (५) न च कार्यं कारणं वास्ति द्रव्यमात्रमेव तत्त्वम् — इत्यपरः। एवंभूताभिप्रायवन्त एकान्तवादिनो दृष्टान्तस्य साध्यसमतां मन्यन्ते, तान् प्रत्याह—

(मूलम्-) इहरा समूहसिद्धो परिणामकओ व्य जो जहिं अत्थो।

ते तं च ण तं तं चैव व त्ति नियमेण मिच्छत्तं।।२७।।

10 (व्याख्या:-) इतरथा = उक्तप्रकारादन्यथा समूहे रत्नानां सिद्धो = निष्पन्नः परिणामकृतो वा मण्यादिष्वावल्यादिः<sup>▲</sup> क्षीरादिषु दध्यादिर्वा यो यत्र अर्थः ते मण्यादय आवल्यादि \*कार्यम् क्षीरं वा दध्यादिकम्<sup>३</sup> तत्र तत्सद्भावात् तस्य तत्परिणामरूपत्वात्। समूहसिद्धः परिणामकृतो वा इति द्वयोरुपादानं

(२) कुछ सांख्यों का मत है कि रत्न ही उत्तरावस्था में माला रूप से ग्रथित हो जाते हैं जो उस से भिन्न नहीं होते, रत्नावलीरूप कार्य रत्नों का एक विकार (= परिणाम) ही है जो स्वयं रत्नमय ही हैं।

15 (३-४) वैशेषिक-नैयायिक आदि का मत है — कारण में कार्य पहले से विद्यमान नहीं होता, कार्य कारणों से भिन्न ही होता है, कारण कभी कार्यरूप से अवस्थित या परिणत नहीं होता।

(५) न कारण है न कार्य, जो कुछ तत्त्व है वह द्रव्य है — ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं।

उक्त प्रकार से विभिन्न अभिप्राय रखनेवाले एकान्तवादी कहते हैं कि 'रत्नावली' का दृष्टान्त भी असिद्ध है, पहले तो उसी की सिद्धि करिये — इस प्रकार दृष्टान्त को साध्यसम दिखानेवाले के प्रति ग्रन्थकार गाथा २७ में कहते हैं —

20 गाथार्थ :- अन्यथा (रत्नावली-दृष्टान्त अनुसार अनेकान्त का स्वीकार न किया जाय तो) जहाँ जो अर्थ समुदायसिद्ध अथवा परिणामकृत है — १वे ही यह है या २वे तद्रूप नहीं है अथवा ३वह वही है — इत्यादि (मत) नियमतः मिथ्यात्व हैं।।२७।।

व्याख्यार्थ :- इतरथा यानी ग्रन्थकर्ता ने जिस प्रकार से दृष्टान्त के द्वारा एकान्त निरसन कर के अनेकान्त स्थापना की है उस से विपरीत यदि ऐसा एकान्त माना जाय कि — मणि आदि में 25 रत्नों के समूह से निष्पन्न जो रत्नावली रूप अर्थ, या क्षीरादिक से परिणामनिष्पन्न जो दही आदि अर्थ, जो जहाँ भी निष्पन्न है — वहाँ वे मणिआदि आवलीकार्यरूप है अथवा क्षीरादि दही आदि परिणामरूप है क्योंकि वहाँ मण्यादि-क्षीरादि दही आदिपरिणामरूप है क्योंकि वहाँ मण्यादि-क्षीरादि में वह एकान्ततः पहले से विद्यमान है अथवा तो वह कार्य कारण के परिणामरूप है। यहाँ मूल गाथा में समूहसिद्ध और परिणामकृत इस तरह अलग अलग उल्लेख किया है वह लौकिकव्यवहार का अनुसरणमात्र है, 30 एकान्त अभेदवादी तो कहता है कि वास्तव में तो, सर्व द्रव्य परमाणुओं का पुञ्जात्मक परिणाम ही

▲. यथाक्रमं योगः - बृ.ल.मां.टि.। \* . समूहः - मां.टि.। ‡ . परिणामः मां.टि.। इति टिप्पणीत्रयं भूतपूर्वावृत्तौ।

लौकिकव्यवहारापेक्षया । परमार्थतस्तु परमाणुसमूहपरिणामात्मकत्वात् सर्व एव समूहकृतः परिणामकृतो वेति न भेदः ।

[ सांख्याभिमतसत्कार्यवादैकान्तनिरसनम् ]

अयं चाभ्युपगमो मिथ्या । तथाहि— यद्येकान्तेन कारणे कार्यमस्ति तदा कारणस्वरूपवत् कार्यस्वरूपा-  
नुत्पत्तिप्रसक्तिः । न हि सदेवोत्पद्यते उत्पत्तेरविरामप्रसङ्गात् । न च कारणव्यापारसाफल्यम् तद्व्यापारनिर्वर्त्यस्य 5  
विद्यमानत्वात् । तथाहि— कारणव्यापारः किं कार्योत्पादने आहोस्वित् कार्याभिव्यक्तौ उत तदावरणविनाशे  
इति पक्षाः । तत्र न तावत् कार्योत्पादने, तस्य सत्त्वे कारणव्यापारवैफल्यात् असत्त्वे स्वाभ्युपगमविरोधात् ।  
अभिव्यक्तावपि पक्षद्वयेऽप्येतदेव दूषणम् । आवरणविनाशेऽपि न कारकव्यापारः, सतो विनाशाभावात्  
असतो भावस्योत्पादवत् । तन्न सत्कार्यवादे कारकव्यापारसाफल्यम् । न चान्धकारपिहितघटाद्यनुपलम्भे-  
ऽन्धकारोपलम्भवत् कार्यावारकोपलम्भः येन प्रतिनियतं किञ्चित्तदावारकं व्यवस्थाप्येत । न च कारणमेव 10  
कार्यावरकम् तस्य तदुपकारकत्वेन प्रसिद्धेः । न ह्यालोकादि रूपज्ञानोपकारकं तदावारकत्वेन वक्तुं शक्यम् ।  
किञ्च, आवारकस्य मूर्त्तत्वे कारणरूपस्य न कार्यस्य तदभ्यन्तरप्रवेशः मूर्त्तस्य मूर्त्तेन प्रतिघातात्,

है, उन में समुदायकृत या परिणामकृत ऐसा कोई भेद नहीं है ।

[ सांख्यसम्मत एकान्तसत्कार्यवाद का निरसन ]

यह मान्यता जूठी है । कारणः- यदि एकान्ततः कारण में कार्य पूर्व-विद्यमान है तो कारणस्वरूप 15  
की तरह कार्यस्वरूप को भी उत्पन्न होने की संभावना नहीं रहती । सत् (विद्यमान) वस्तु की उत्पत्ति  
मानेंगे तो प्रतिपल उत्पत्ति-परम्परा का अन्त नहीं आयेगा । तथा कारणों की सक्रियता निष्फल बन  
जायेगी, क्योंकि उन से जो कार्य करना है वह तो पहले से ही विद्यमान है । तीन पक्ष देखिये —  
कारणों का व्यापार किस के लिये ? <sup>१</sup>क्या कार्योत्पत्ति के लिये ? <sup>२</sup>क्या कार्य की अभिव्यक्ति के  
लिये ? <sup>३</sup>क्या कार्यावरक आवरण के भंग के लिये ? <sup>१</sup>कार्योत्पत्ति के लिये जरूर नहीं, क्योंकि कार्य 20  
पहले से सत् होने से कारणव्यापार निष्फल रहेगा, कार्य पहले से असत् होने का मानेंगे तो सत्कार्यवादी  
को स्वमत से विरोध होगा । <sup>२</sup>इसी तरह कार्याभिव्यक्ति पक्ष में भी पूर्व सत्त्व या असत्त्व दो विकल्पों  
में क्रमशः कारणवैफल्य और स्वमतविरोध दोष समझ लेना । <sup>३</sup>आवरणभंगवाले तीसरे पक्ष में, कारकव्यापार  
व्यर्थ होगा क्योंकि आवरण यदि सत् है तो उस का विनाश अशक्य है जैसे असत् का उत्पाद नहीं  
होता वैसे सत् का नाश नहीं होता । सारांश, सत्कार्यवाद में कारकव्यापार का साफल्य नहीं होगा । 25

अन्धकार से ढके हुए घटादि का उपलम्भ नहीं होता तब जैसे अन्धकार रूप आवरण उपलब्ध  
होता है वैसे यहाँ कार्य का आवारक कोई उपलब्ध नहीं होता जिस से कि यह सिद्ध किया जा सके  
कि कोई ऐसा नियत पदार्थ है जो कार्य का आवारक होता है । 'कारण ही कार्य का उपलभ्यमान  
आवारक है' ऐसा भूल से भी मत बोलना, कारण तो कार्य के उपकारक रूप से सुविदित है । रूप  
प्रतिभास में उपकारक प्रकाश आदि को रूप का आवारक कहना बिलकुल उचित नहीं है । 30

[ मूर्त्त कारण से मूर्त्त कार्य का आवरण असंगत ]

और एक बात :- आवारक (कारण) मूर्त्त है, कार्य भी मूर्त्त है तो एक मूर्त्त (कारण) में दूसरे



अप्रतिघाते च यथा कार्यं कारणाभ्यन्तरप्रविष्टत्वात् तेन आवृतमिति नोपलभ्यते तथा कारणस्यानुपलब्धि-  
 प्रसङ्गः अप्रतिघातेन तदनुप्रविष्टत्वाविशेषात्। अथान्धकारवत् तद्दर्शनप्रतिबन्धकत्वेन तद् आवारकम्;  
 नन्वेवमदर्शनेऽपि तस्य स्पर्शोपलम्भप्रसङ्गः तस्याप्यभावे तस्याऽसत्त्वमिति तद् आवारकं तत्स्वरूपविनाशकं  
 प्रसक्तम्। न च पटादेरिव घटादिकं प्रति कारणस्य कार्याऽवारकत्वमिति न स्पर्शोपलब्धिः, पटध्वंसे इव  
 5 मृत्पिण्डध्वंसे तदावृतकार्योपलब्धिप्रसङ्गात् एकाभिव्यञ्जकव्यापारादेव सर्वव्यङ्ग्योपलब्धिश्च भवेत्  
 एकप्रदीपव्यापारात् तत्सन्निधानव्यवस्थितानेकघटादिवत्।

किञ्च, कारणकाले कार्यस्य सत्त्वे स्वकाल इव कथमसौ तेनाव्रियते ? नापि मृत्पिण्डकार्यतया  
 पटादिवत् घटो व्यपदिश्येत, असत्त्वे च नावृत्तिः अविद्यमानत्वादेव। एकान्तसतः करणविरोधात् ▼ असद-  
 करणादिभ्यो (२८२-१८) न सत्कार्यसिद्धिः। प्रतिक्षिप्तश्च प्रागेव सत्कार्यवाद (२९६-८) इति न पुनरुच्यते।

- 10 मूर्त्त (कार्य) का अन्तःप्रवेश शक्य नहीं, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के प्रतिघातकारी है। यदि प्रतिघात  
 नहीं मानेंगे तो, जैसे: कारणान्तःप्रविष्ट होने से कारण द्वारा आवृत कार्य (पूर्वावस्था में) दृष्टिगोचर  
 नहीं होता, वैसे अप्रतिघात के जरिये कार्यान्तःप्रविष्ट कारण भी कार्यावृत होने से दृष्टिगोचर नहीं  
 होगा, प्रतिघात न होने पर अन्तःप्रवेश तो दोनों का एक-दूसरे में समान है। यदि कहें— 'कारण  
 अन्धकारतुल्य है जो विषयदर्शन का अवरोधक है अतः अन्धकार की तरह (पूर्वावस्था में) कारण  
 15 दिखता है कार्य नहीं।' — अरे तब तो कार्य दृष्टिगोचर न होने पर भी अन्धकार में स्पर्शनगोचर  
 बनेगा जैसे अन्धकार में घटादि। यदि स्पर्शोपलम्भ का भी आवारक होता, तब तो सर्वथा कार्य का  
 अभाव प्रसक्त होने से वह असत् ठहरेगा और कारण ही कार्य का (आवारक यानी) नाशक बन  
 जायेगा। यदि कहें — जैसे: घटादि के पटादि आवारक होते हैं वैसे कारण कार्य का आवारक बनेगा  
 अतः स्पर्शोपलम्भ नहीं हो सकता — अहो ! तब, वस्त्रध्वंस होने पर जैसे घटादि-उपलम्भ होता है  
 20 वैसे मिट्टीपिंडरूप कारणध्वंस होने पर कारणवृत घटादि कार्य का उपलम्भ प्रसक्त होगा। तथा, अन्धकाररूप  
 आवरण का एक ही प्रदीपव्यापार से ध्वंस हो जाने पर प्रदीपसंनिहित अनेक घटादि दृष्टिगोचर  
 होते हैं वैसे एक ही कार्याभिव्यञ्जक कुम्हार आदि के व्यापार से सर्व अभिव्यञ्ज्य कार्यों की उपलब्धि  
 प्रसक्त होगी।

- तथा, यदि कारणकाल में कार्य का सत्त्व है तो प्रश्न है कि जैसे कार्यकाल में कारण (मिट्टी)  
 25 से कार्य (घटादि) का आवरण नहीं होता तो कारणकाल में ही क्यों आवरण होता है ? तथा, अनुपलब्ध  
 होने पर भी मिट्टीकाल में जैसे मिट्टीपिण्ड का कार्य नहीं कहा जाता, वैसे घटादि भी मिट्टीकाल में अनुपलब्ध  
 होंगे तो वे मिट्टीपिण्ड के कार्य नहीं कहे जा सकेंगे। यदि उस काल में पटादि की तरह घटादि को  
 भी असत् मानेंगे तब तो अविद्यमान होने से वह कारणवृत होने की बात ही नहीं रहती। सारांश,  
 सांख्यकारिका (गाथा-९ दूसरे खंड में) में असदकरणादि पाँच हेतु से जो 'सत् कार्य' को सिद्ध करने  
 30 की चेष्टा किया है वह व्यर्थ है क्योंकि एकान्त सत् कार्य वाद में कार्य का निष्पादन घट नहीं सकता।  
 पहले भी (२८२-१८) सत्कार्यवाद का प्रतिकार हो चुका है अतः यहाँ अधिक पुनरुक्ति नहीं करते।

▼. असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम् (सांख्य कारिका-९)

### [ सांख्यविशेषमान्यानर्थान्तरभूतपरिणामवादस्य निरसनम् ]

अनर्थान्तरभूतपरिणामवादोऽपि प्रतिक्षिप्त एव। न हि अर्थान्तरपरिणामाभावे परिणाम्येव कारण-लक्षणोऽर्थः, पूर्वापरयोरेकत्वविरोधात्। न च परिणामाभावे परिणामिनोऽपि भावो युक्तः परिणामनिबन्धनत्वात् परिणामित्वस्य। अभिन्नस्य हि पूर्वापरावस्थाहानोपादानात्मतया एकस्य वृत्तिलक्षणः परिणामो न युक्तियुक्तः। तन्नैकान्तभेदे कारणमेवानर्थान्तरकार्यरूपतया परिणमत इति स्थितम्। 5

मृत्पिण्डावस्थायां घटार्थक्रिया-गुणव्यपदेशाभावात् 'असदुत्पद्यते कार्यम्' इत्ययमप्येकान्तो मिथ्यावाद एव। कार्यात्पत्तिकाले कारणस्याऽविचलितरूपस्य कार्यादव्यतिरिक्तस्य सत्त्वे पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गात्। तद्व्यतिरिक्तस्य तस्य सद्भावे कारणस्य प्राक्तनस्वरूपेणैवावस्थितत्वात् अकारणा कार्यात्पत्तिर्भवेत् कारणस्य प्राक्तनाऽकरणस्वरूपाऽपरित्यागात् परित्यागे वा कार्यकारणस्वरूपस्वीकारेण तस्यैवाऽवस्थितत्वादनेकान्त-

### [ सांख्यविशेष के अनर्थान्तरभूतपरिणामरूपकार्य का निरसन ]

'कार्य कारण का ही एक ऐसा परिणाम है जो कारण से अर्थान्तरभूत नहीं है' ऐसा जो सांख्य-एकदेशी का मत है वह भी उपरोक्त सत् कार्यवाद के निरसन से निरस्त हो जाता है। जैसे कारण और कार्य के बारे में ऊपर विचारणा की गयी है वैसे कारण और परिणाम के बारे में विमर्श करने से स्पष्ट पता चलता है कि जब तक परिणाम को अर्थान्तर नहीं मानेंगे तब तक परिणामीरूप कारणात्मक अर्थ भी संगत नहीं होगा, क्योंकि कारण और परिणाम में पूर्वापरभाव होने से उन में एकान्त एकत्व 15 मानने में विरोध है। तथा, पूर्वोक्त युक्तियों के विरोध से परिणाम भी युक्तिसंगत न होने से परिणामी का भी अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, क्योंकि परिणामित्व परिणामसिद्धि आधीन है। एक एवं अभिन्न पदार्थ की पूर्वावस्थात्याग-उत्तरावस्थास्वीकारात्मक वृत्ति = वर्तना — जिस को परिणाम कहा जाता है — युक्तिसह नहीं है। निष्कर्षः- कारण-कार्य के एकान्त अभेद पक्ष में 'कारण ही स्व से अनर्थान्तरभूत (= अभिन्न) कार्यरूप से परिणत होता है' ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता। 20

### [ नैयायिकादिमान्य असत्कार्यवाद का निरसन ]

कोई भी एकान्तमत मिथ्या है। 'मिट्टीपिण्डावस्था में घटसाध्य अर्थक्रिया नहीं होती, घट के गुण एवं 'घट' ऐसा नामकरण भी नहीं होता अतः उत्पत्ति के पूर्व कार्य असत् होता है' — यह एकान्तवाद भी मिथ्या ही है। स्पष्टता :- कार्यात्पत्तिकाल में कार्याभिन्न कारण यदि अविचलस्वरूप ही होगा तो कार्य ही उत्पन्न नहीं होता... इत्यादि पूर्वकथित दोष प्रसक्त होंगे। यदि कहें कि — 'कारण कार्य से 25 अव्यतिरिक्त नहीं, व्यतिरिक्त होता है' — तो वहाँ कारण तो पूर्ववत् अपने अजननस्वभाव से अवस्थित यानी निर्व्यापार रहेगा, फिर बिना कारण ही कार्यात्पत्ति प्रसक्त होगी, क्योंकि कारण ने वहाँ अपने पूर्वकालीन निर्व्यापारता स्वरूप का त्याग तो नहीं किया। यदि पूर्वकालीन स्वरूप का त्याग कर के वह कार्यनिष्पादन व्यापार करेगा, ऐसा स्वीकार करेंगे तो मानना होगा कि उस व्यापार के उद्देश्यरूप से कार्य उस काल में विद्यमान है, अतः 'कथञ्चित् सत्' अनेकान्त सिद्ध हो जायेगा। तथा कारण- 30 कार्य का सर्वथा भेद मानने पर घटोत्पत्ति के बाद मिट्टीपिण्ड एवं घट की पृथग् उपलब्धि प्रसक्त होगी। ऐसा कहना — 'कार्य घट कारण मिट्टीपिण्ड का आश्रित बन कर ही उत्पन्न होने से, दोनों की पृथग्

सिद्धिः। व्यतिरेके च कारणात् कार्यस्य पृथगुपलम्भप्रसङ्गः। न च तदाश्रितत्वेन तस्योत्पत्तेर्न तत्प्रसङ्ग इति वक्तव्यम्, अवयविनः समवायस्य च निषेत्स्यमानत्वात् निषिद्धत्वाच्च।

[ बौद्धमतेन कारणव्यतिरिक्तं असत् कार्यमित्येकान्तस्य भङ्गः ]

- कारणाद् व्यतिरिक्तं तत्र असदेव कार्यमित्ययमपि पक्षो मिथ्यात्वमेव। तथाहि— एकान्ततो निवृत्ते  
5 कारणे कार्यमुत्पद्यते इति, अत्र कारणनिवृत्तिः सद्रूपाऽसद्रूपा वेति वक्तव्यम्। सद्रूपत्वेऽपि न तावत् कारणस्वरूपा, कारणस्य नित्यत्वप्रसक्तेः, निवृत्तिकालेऽपि कारणसद्भावात्। न चाऽविचलितस्वरूप-  
मृत्पिण्डसद्भावे घटोत्पत्तिर्दृष्टेति कार्यानुत्पत्तिप्रसक्तिश्च। नापि कार्यरूपा तन्निवृत्तिः, कारणाऽनिवृत्तौ  
कार्यस्यैवानुत्पत्तेः। एवं च कार्यानुत्पादकत्वेन कारणस्याप्यसत्त्वमेव। न च कार्यात्पत्तिरेव कारणनिवृत्तिरिति  
‘कारणाऽनिवृत्तेर्न कार्यात्पत्तिः’ इति नायं दोषः, कार्यगतोत्पादस्य कारणगतविनाशरूपत्वाऽयोगात्, भिन्नाधि-  
10 करणत्वात् कारणनिवृत्तेश्च कार्यरूपत्वे कारणं कार्यरूपेण परिणतमिति घटस्य मृत्स्वरूपवत् कपालेष्व-  
प्युपलब्धिप्रसङ्गः। नाप्युभयरूपा तन्निवृत्तिः, कारणनिवृत्तिकाले कार्य-कारणयोर्युगपदुपलब्धिप्रसक्तेः।

उपलब्धि का प्रसंग नहीं होगा’ — ठीक नहीं है, क्योंकि तब अवयवी और अवयवसमवाय भी लाना पडेगा, किन्तु उन का तो पहले निषेध हो चुका है एवं आगे निषेध किया भी जायेगा।

[ कारण से कार्य का भेद एवं उत्पत्तिपूर्व असत्त्व का निरसन ]

- 15 कारण से कार्य भिन्न है और उत्पत्ति के पूर्व असत् है — यह पक्ष भी मिथ्या है। देखिये —  
कारण की एकान्ततः निवृत्ति होने पर कार्यात्पत्ति होती है उस में प्रश्न है कि वह कारणनिवृत्ति सत्  
रूप है या असत् रूप — यह कहो। सत् रूप कारणनिवृत्ति भी कारणस्वरूप है या कार्यरूप ? उभयरूप  
है या अनुभयरूप ? कारणस्वरूप मानने पर कारण में नित्यत्व प्रसक्त होगा क्योंकि स्वनिवृत्तिकाल  
में भी स्व = कारण विद्यमान है क्योंकि निवृत्ति से अभिन्न है। स्पष्ट है कि कारण की यदि निवृत्ति  
20 नहीं होगी अर्थात् मिट्टीपिण्ड रूप कारण अविचलस्वरूप रहेगा तब तक घटकार्य की उत्पत्ति दृष्टिगोचर  
नहीं होती, अतः कार्यात्पत्तिभंगप्रसंग आ पडेगा। कारणनिवृत्ति कार्यरूप भी नहीं हो सकती, क्योंकि  
तब अकेला कार्य होगा किन्तु कारणनिवृत्ति कैसे कही जायेगी ? यानी कारण (मिट्टीपिण्ड) की निवृत्ति  
नहीं होगी तब तक घटादि कार्य ही उत्पन्न नहीं हो सकेगा। कारण से कार्य उत्पन्न नहीं होगा तो  
अर्थक्रिया अनुत्पादक होने से कारण का असत्त्व फलित होगा। यदि कहें कि — ‘हमने कहा तो है  
25 कि कार्यात्पत्ति ही कारणनिवृत्तिरूप है, अतः आपने जो इस पक्ष में दोष दिया है कि कारण निवृत्ति  
नहीं होगी तो कार्यात्पत्ति भी नहीं होगी — वह निरवकाश है।’ — तो यह ठीक नहीं, क्योंकि कारणनिवृत्ति  
कारणगत विनाशरूप है और वह कारण में रहेगी, कार्यात्पत्ति कार्यगत है, दोनों व्यधिकरण होने से  
अभिन्न नहीं हो सकती। तथा, कारणनिवृत्ति यदि कार्यरूप होगी तब तो कारण ही कार्यरूप में परिणत  
होने का फलित हुआ, अतः जैसे घट में मिट्टीस्वरूप उपलब्ध होता है वैसे कपालों में भी मिट्टीस्वरूप  
30 की उपलब्धि प्रसक्त होगी। (यहाँ कुछ पाठ उचित नहीं जचता, उपलब्धि के बदले अनुपलब्धि पाठ  
की कल्पना करने पर भी संतोषजनक समाधान नहीं मिलता)।

यदि कारणनिवृत्ति को कारण-कार्य उभयरूप माना जाय तो कारणनिवृत्तिकाल में तदभिन्न कारण-

नाप्यनुभयस्वरूपा तन्निवृत्तिः, मृत्पिण्डविनाशकाले विवक्षितमृत्पिण्ड-घटव्यतिरिक्ताऽशेषजगदुत्पत्तिप्रसक्तेः।

अथ असद्रूपा तन्निवृत्तिः तत्रापि यदि कारणाभावरूपा तदा कारणाभावात् कार्योत्पादप्रसक्तेर्निर्हेतुकः कार्योत्पादः इति देश-कालाऽऽकारनियमः कार्यस्य न स्यात्। अभावाच्च कार्योत्पत्तौ विश्वमदरिद्रं भवेत्। नापि कार्याभावरूपा तन्निवृत्तिः कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गात्। नाप्युभयाभावस्वभावा द्वयोरप्यनुपलब्धिप्रसक्तेः। नाप्यनुभयाभावरूपा विवक्षितकारण-कार्यव्यतिरेकेण सर्वस्यानुपलब्धिप्रसक्तेः कारणस्योपलब्धिप्रसक्तेश्च। 5  
कारणभावाभावरूपापि न तन्निवृत्तिः, कारणस्यानुगतव्यावृत्तताप्रसक्तेः। अत एव च सदसद्रूपं स्व-पर-स्वरूपापेक्षयाऽनेकान्तवादिभिर्वस्त्वभ्युपगम्यते। पररूपेणैव स्वरूपेणाप्यसत्त्वे वस्तुनो निःस्वभावताप्रसक्तेः। स्वरूपवत् पररूपेणापि सत्त्वे पररूपताप्रसक्तेः। एकरूपापेक्षयैव सदसत्त्वविरोधात् अन्यथा वस्त्वैव न

कार्य उभय की उपलब्धि एक साथ प्रसक्त होगी। अनुभयस्वरूप भी कारणनिवृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि मिट्टीपिण्डविनाशकाल में विवक्षित मिट्टीपिण्ड और घट को छोड़ कर पूरे जगत् की उत्पत्ति प्रसक्त होगी, 10  
क्योंकि मिट्टीपिण्ड और घट उभय से भिन्न यानी अनुभय, वह पूरा जगत् है। कारणविनाशकाल में कारणनिवृत्ति अस्तित्व में आयेगी तब अनुभयरूप पूरा जगत् अस्तित्व में आयेगा।

### [ असद्रूप निवृत्ति के चतुर्विध विकल्पों की समीक्षा ]

यदि कारणनिवृत्ति असद्रूप मानेंगे तो चार विकल्प खड़े होंगे :- 9 — वह कारणाभावरूप है ? 15  
२ — कार्याभावरूप है ? ३ — उभयाभावरूप है ? या ४ — अनुभयाभावरूप है ? प्रथम विकल्प में, कारण का अभाव होने से कार्योत्पत्ति प्रसक्त होगी अतः कार्य निर्हेतुक उत्पन्न हो जायेगा। फलतः, 20  
नियत देश — नियतकाल-नियताकार से कार्योत्पत्ति का नियम नहीं रहेगा। तथा, अभावमूलक कार्योत्पत्ति मानने पर पूरा विश्व तवंगर बन जायेगा, क्योंकि तवंगर बनने के लिये किसी भी भाव की जरूरत नहीं है। दूसरे विकल्प में — कारणनिवृत्ति कार्याभावरूप होने से कार्य उत्पन्न ही नहीं होगा। तीसरे विकल्प में :- कारणनिवृत्ति यदि कारण-कार्य उभयाभावरूप होगी तो दोनों की अनुपलब्धि का अतिप्रसंग 25  
आयेगा। चौथे विकल्प में :- यदि कारण-कार्य अनुभव (यानी उन दो से भिन्न सर्वपदार्थ) के अभावरूप कारण-निवृत्ति मानी जायेगी तो विवक्षित कारण-कार्य को छोड़ कर अन्य सभी पदार्थों का अनुपलम्भ प्रसक्त होगा, एवं उसी वक्त कारण की असद्रूप निवृत्ति कारणसत्ताविरोधी न होने से कारण की उपलब्धि प्रसक्त होगी।

### [ कारणनिवृत्ति के अन्यविध चार विकल्पों की समीक्षा ]

पुनः कारणनिवृत्ति कारणाभावाभावरूप है ? कार्यभावाभावरूप है ? उभयभावाभावरूप है ? या 25  
अनुभयभावाभावरूप है ?

प्रथम विकल्प में :- कारण के भावाभावरूप कारणनिवृत्ति मानेंगे तो कारण को भी अनुगत-व्यावृत्त उभयात्मक मानना पड़ेगा। इसी लिये तो हमारे सर्वज्ञभाषित जैन दर्शन में वस्तु मात्र को 30  
अनेकान्तवादियों की ओर से स्वरूप अपेक्षया सद्रूप एवं पररूपापेक्षया असद्रूप माना गया है। पररूप से वस्तु असत् होती है न कि स्वरूप से। यदि स्वरूप से भी वस्तु को असत् मानेंगे तो वस्तु स्वभावविहीन बन जायेगी। एवं वस्तु स्वकीयरूप से सत् होती है, यदि पर-रूप से भी सत् होगी

भवेत्। नापि कार्यभावाभावरूपा, कार्यस्योत्पत्त्यनुत्पत्त्युभयरूपताप्रसक्तेः। तथा च सिद्धसाध्यता, केवलो-  
भयपक्षोक्तदोषप्रसक्तिश्च। नापि कार्य-कारणोभयभावाभावरूपा, प्रत्येकपक्षोदितसकलदोषप्रसक्तेः। परस्परसव्य-  
पेक्षकार्यकारणभावाभावरूपकारणनिवृत्त्यभ्युपगमेऽनेकान्तवादप्रसक्तिश्च। नाप्यनुभयभावाभावरूपा, अनुभय-  
रूपस्य वस्तुनोऽभवात्। न च तन्निवृत्तेः सत्त्वम्, एकान्तभावाभावयोर्विरोधात्। अनुभयभावाभावरूपत्वे  
5 तु तस्याः कारणस्याऽप्रच्युतत्वात् तथैवोपलब्धिप्रसङ्गः।

अपि च, कारणनिवृत्तिस्तत्स्वरूपाद् भिन्नाऽभिन्ना वा ? यद्यभिन्ना, निवृत्तिकालेऽपि कारणस्योपलब्धि-  
प्रसङ्गः तन्निवृत्तेः कारणात्मकत्वात् स्वकालेऽपि वा कारणस्योपलब्धिर्न स्यात्, तस्य तन्निवृत्तिरूपत्वात्।  
भिन्ना चेत् 'कारणस्य निवृत्तिः' इति सम्बन्धाभावाद् अभिधानानुपपत्तिः। संकेतवशाद् अभिधानप्रवृत्तावपि  
आधेयनिवृत्तिकालेऽधिकरणस्य सत्त्वम् असत्त्वं वेति वक्तव्यम्। सत्त्वे कारणविनाशानुपपत्तिराधेयनिवृत्त्या  
10 कारणस्वरूपस्याऽऽधारस्याऽविरोधात् विरोधे वा कारण-तन्निवृत्त्योर्योगपद्याऽसम्भवात्। असत्त्वेऽधिकरणत्व-

तो वस्तु में पररूपता की आपत्ति आयेगी। किसी एक ही (स्व या पर) रूप की अपेक्षा से सत्त्व-  
असत्त्व उभय मानने में स्पष्ट विरोध है। विरोध की उपेक्षा करने पर वस्तु ही निश्चित नहीं होगी।

दूसरे विकल्प में :- कार्य के भावाभावरूप कारणनिवृत्ति मानी जाय तो कार्य में उत्पन्न-अनुत्पन्न  
उभयरूपता प्रसक्त होगी, हालाँ कि अनेकान्तवादी जैन दर्शन के लिये तो वह सिद्धसाधन ही होगा।

15 तथा भावरूपता-अभावरूपता एक-एक पक्ष में पहले जो दोष दिखाये हैं वे पुनः प्रसक्त होंगे। तीसरे  
विकल्प में कारण-कार्य उभय के भावाभावरूप कारणनिवृत्ति मानी जाय तो पृथक् पृथक् एक-एक पक्ष  
में कहे गये सब के सब दोष यहाँ प्रसक्त होंगे। यदि कारणनिवृत्ति को अन्योन्यसापेक्ष कार्य-कारण  
उभय के भावाभावरूप मान्य करेंगे तो अनेकान्तवाद का स्वागत करना ही पड़ेगा। चौथे विकल्प में  
कारण-कार्य अनुभय (नित्य जैसे किसी काल्पनिक पदार्थ) के भावाभावरूप कारण-निवृत्ति मानी जाय  
20 तो वह गलत है क्योंकि ऐसी कोई नित्य या अनित्य चीज ही नहीं है जो न तो कारण हो न  
कार्य हो। उक्त प्रकार की कारणनिवृत्ति का कहीं भी सत्त्व संभवित नहीं, क्योंकि निवृत्ति है असत्रूप,  
उस का सत्त्व मानेंगे तो एकान्ततः भावरूप एकान्ततः अभावरूप ऐसा द्वैविध्य मानने में विरोध सीर  
उठायेगा। यदि चौथे विकल्प (अनुभय के भावाभावरूप) को स्वीकारे तो तथाविध निवृत्ति के रहते  
हुए भी भावरूपताप्रयुक्त कारण तदवस्थ रहने से उस की पूर्ववत् उपलब्धि का अतिप्रसंग आ पड़ेगा।

25 [ कारणनिवृत्ति और कारणस्वरूप के भेद-अभेद की समीक्षा ]

और भी विकल्पद्वय हैं — कारणनिवृत्ति कारणस्वरूप से भिन्न है या अभिन्न ? यदि अभिन्न  
है तो कारणनिवृत्ति काल में भी कारण की उपलब्धि प्रसक्त होगी, क्योंकि अब तो कारण की निवृत्ति  
कारणात्मक है। अथवा कारण के सत्ताकाल में भी कारण की उपलब्धि नहीं होगी, क्योंकि कारण  
कारणनिवृत्तिरूप है। यदि कारण से कारणनिवृत्ति भिन्न है तो 'कारण की निवृत्ति' ऐसा उल्लेख शक्य  
30 नहीं होगा, क्योंकि कारण और निवृत्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है, सम्बन्ध के बिना षष्ठीप्रयोग अनुचित  
है। यदि कहें — 'सम्बन्ध चाहे हो या न हो, शब्दोल्लेख तो संकेताधीन होता है, अतः संकेत के  
प्रभाव से षष्ठी-प्रयोग हो सकेगा' — तो यहाँ पुनः विकल्पद्वय खड़े होंगे — (कारण की निवृत्ति —  
यहाँ कारण आधार है और निवृत्ति आधेय है) आधेय रूप निवृत्ति के काल में आधारत्मात्मक कारण

विरोधः असतोऽधिकरणत्वायोगात् तस्य वस्तुधर्मत्वात्। अथ कारणं निवृत्तेर्नाधिकरणमपि तु तद्धेतुः। न, निवृत्तेरुत्तरकार्यवत् तत्कार्यत्वप्रसङ्गात् तदनभ्युपगमे कारणस्य तद्धेतुत्वप्रतिज्ञाहानिः अकार्यस्य तद्धेतुत्वविरोधात् अविरोधे वन्ध्याया अपि सुतं प्रति हेतुत्वप्रसक्तेः। न च कारणाहेतुकैव कारणनिवृत्तिः, कारणानन्तरभावित्वविरोधात्। न च कारणहेतुका तन्निवृत्तिः, कारणसमानकालं तदुत्पत्तिप्रसङ्गतः प्रथमक्षण एव कारणस्यानुपलब्धिप्रसक्तेः उपलम्भे वा न कदाचित् कारणस्यानुपलब्धिर्भवेत् तन्निवृत्त्याऽविरुद्धत्वात्। 5 न च कारणनिवृत्तिः स्वहेतुका, स्वात्मनि क्रियाविरोधात्। न च निर्हेतुकैव, कारणानन्तरमेव तस्या भावविरोधात् अहेतोर्देशादिनियमाभावात्।

सत् है या असत् है — बोलो ! सत् है तो कारण का विनाश अघटित होगा, क्योंकि आधेयरूप निवृत्ति के साथ कारणात्मक आधार का कोई विरोध नहीं रहा क्योंकि कारण निवृत्तिकाल में भी सत् है। यदि विरोध होगा तो कारण और उस की निवृत्ति में समकालीनता नहीं रहेगी। असत् है तो 10 अधिकरणता के साथ विरोध होगा, क्योंकि जो (कारण) असत् है वह किसी का (निवृत्ति का) आधार नहीं बन सकता। आधारता सद् वस्तु का धर्म होता है असत् का नहीं।

### [ कारण और निवृत्ति के आधार-आधेयभाव की असंगति ]

यदि कहें कि हम कारण को निवृत्ति का आधार नहीं मानते, निवृत्ति का हेतु मानते हैं। — तो यह भी निषेधपात्र है क्योंकि जैसे मिट्टी का उत्तर कार्य होता है घट वैसे निवृत्ति (= असत्) 15 को उस कारण का (मिट्टीपिण्ड) कार्य मानने की आपत्ति होगी। कार्य मानने का निषेध करेंगे तो कारण में निवृत्ति की हेतुता के निरूपण को हानि पहुँचेगी, क्योंकि जो (वन्ध्यापुत्र) कार्य नहीं होता, उस की हेतुता किसी में (वन्ध्या में) स्वीकारने पर विरोध प्रसक्त होगा। यदि विरोध नहीं मानेंगे तो वन्ध्या में भी पुत्रोत्पत्ति की हेतुता माननी पड़ेगी। यदि कहें कि हम कारणनिवृत्ति को कारणहेतुक नहीं मानते — अरे तब तो कारण के उत्तर काल में ही निवृत्ति होती है इस तथ्य का विरोध प्रसक्त 20 होगा। (यहाँ 'न च कारणहेतुका' पाठ के बदले जो 'न च कारणकारणहेतुका' ऐसा पाठ है वह ठीक जँचता है —) यदि कारण के कारण से (उत्तर) कारण की निवृत्ति मानेंगे तो पूर्व कारण से जब उत्तरकारण उत्पन्न होगा उसके साथ ही कारणनिवृत्ति भी पूर्वकारण से उत्पन्न होगी, फलतः उस काल में निवृत्ति के साथ विरोध होने से प्रथम क्षण में ही उत्तर कारण की उपलब्धि ही रुक जायेगी। यदि नहीं रुकती यानी उपलब्धि होगी — तब तो मानना पड़ेगा कि उस को रोकनेवाला 25 कोई न होने से सदा काल (उत्तर) कारण की उपलब्धि चलती ही रहेगी क्योंकि निवृत्ति के साथ उस का कोई विरोध नहीं है। यदि कहें कि कारणनिवृत्ति कारणहेतुक या अन्यहेतुक या अहेतुक नहीं है किन्तु स्वयं स्व की हेतु है — तो वह ठीक नहीं, क्योंकि अपने में अपने उत्पादन का व्यापार मानना विरोधग्रस्त है। सुशिक्षित नट भी अपने खन्धे पर आरोहण नहीं कर सकता। यदि निर्हेतुक ही मानेंगे तो वह कभी भी या सदा के लिये हो सकती है, कारण के उत्तर काल में ही उस के 30 उद्भव में स्पष्ट विरोध होगा क्योंकि निर्हेतुक वस्तु में (गगनादि में) नियत देश-कालादि का कोई नियम नहीं होता।

अथ न कारणं निवृत्तेर्हेतुः अधिकरणं वा, किन्तु स्वयमेव न भवति। नन्वत्रापि किं स्वसत्तासमय एव स्वयं न भवति आहोस्विदुत्तरकालमिति विकल्पद्वयानतिक्रान्तिः। यदि प्राक्तनविकल्पः तदा कारणानुत्पत्तिप्रसङ्गः प्रथमक्षण एव निवृत्त्याक्रान्तत्वात्। उत्पत्त्यभावे न निवृत्तिरपि, अनुत्पन्नस्य विनाशाऽसम्भवात्। नापि द्वितीयः, तदा निवृत्तिभवेन उत्पन्नाऽनुत्पन्नतया कारण-स्वरूपाभवनयोस्तादात्म्यविरोधात्।

5 यदि हि स्वसत्ताकाले एव न भवेत् तदा भवनाऽभवनयोरविरोधात् 'स्वयमेव भावो न भवेत्' [ ] इति वचो घटेत नान्यथा। न च जन्मानन्तरं भावाभावस्य भावात्मकत्वात् तदव्यतिरिक्त एवाभावः। नन्वेवमपि जन्मानन्तरं 'स एव न भवति' इत्यनेन अभावस्य भावरूपतैवोक्तेत्युत्तरकालमपि कारणाऽनिवृत्तेस्तथैवोपलब्ध्यादिप्रसङ्गः।

भावस्याभावात्मकत्वाद् नायं दोषः इति चेत् ? न, अत्रापि पर्युदासाभावात्मकत्वं भावस्य ?

10 प्रसज्यरूपाभावात्मकत्वं वा ? प्रथमपक्षे स्वरूपपरिहारेण तदात्मकतां प्रतिपद्यते अपरिहारेण वा ? प्रथमपक्षे

[ 'कारण स्वयं नहीं होता' - यहाँ विकल्पद्वय का असमाधान ]

आशंका :- कारण निवृत्ति का हेतु भी नहीं है, अधिकरण भी नहीं है, निवृत्ति से इतना ही कहना है कि 'कारण स्वयं नहीं होता'।

प्रतिकार :- अरे ! यहाँ भी दो विकल्प :- कारण अपनी सत्ता के काल में स्वयं नहीं होता

15 या उत्तरकाल में ? - उत्तर दुष्कर है। प्रथमविकल्प में, प्रथम क्षण में ही 'न भवति' स्वरूप निवृत्ति से गभरा कर कारणोत्पत्ति रुक जायेगी। तथा, जब उत्पत्ति ही नहीं होगी तो निवृत्ति किस की होगी ? अनुत्पन्न का विनाश असम्भव है। दूसरे विकल्प में :- उत्तर काल में कारण का स्वयं अभवन होने का मतलब यह होगा कि कारण और उस का अभवन दोनों का मिलन होगा, उन में कारण उत्पन्न है और अभवन अनुत्पत्तिरूप है, उन दोनों के तादात्म्य का विरोध है, अतः 'कारण स्वयं नहीं होता'

20 इस का वाक्यार्थ असंगत हो जायेगा। हाँ, यदि कारण अपनी सत्ता के काल में नहीं होगा (= अभवन होगा) तब भवन-अभवन का विरोध टल जाता और तब 'स्वयमेव नहीं होता' इस के वाक्यार्थ की संगति होती, अन्यथा शक्य नहीं। 'भाव की उत्पत्ति के बाद जो भावाभाव (= निवृत्ति) उत्तरकाल में होता है वह भावात्मक होता है, अभाव तो उस से अलग ही होता है।' ऐसा कहना अयुक्त है क्योंकि इस कथन से तो आपने - भाव की उत्पत्ति के बाद 'वह (उत्तरकाल में) नहीं होता'

25 इस प्रकार से अभाव की भावात्मकता ही प्रदर्शित कर दी, फलतः उत्तरकाल में भी कारणनिवृत्ति न रह पायेगी, अतः उत्तरकाल में भी कारण की उपलब्धि प्रसक्त होगी।

[ भाव के पर्युदास-प्रसज्य विकल्पों की चर्चा ]

पूर्वपक्ष :- भाव अभावात्मक होता है इसलिये कारणनिवृत्ति काल में कारण की उपलब्धि का अतिप्रसंग निरवकाश है।

30 उत्तरपक्ष :- गलत है। यहाँ भी अभावात्मक से क्या अभिप्रेत है ? भाव की पर्युदासाभावात्मकता या प्रसज्यरूपअभावात्मकता ? प्रथम विकल्प में :- नये दो उपविकल्प हैं - भाव अपने स्वरूप का त्याग करके पर्युदासाभावात्मकत्व को अपनाता है या त्याग किये बिना ? पहले उपविकल्प में :- प्रसज्यनिषेध

स्वभवनप्रतिषेधपर्यवसानत्वाद् न पर्युदासाभावात्मको भावो भवेत्। न चासौ तथा तद्ग्राहकप्रमाणाभावात् तथाभूतभावग्राहकप्रमाणाभ्युपगमे च प्रसज्य-पर्युदासात्मको भावो भवेदित्यनेकान्तप्रसिद्धिः। द्वितीयपक्षेऽपि न पर्युदासः अनिषिद्धतत्स्वरूपत्वात् पूर्वभावस्वरूपवत्।

प्रसज्यरूपाभावात्मकत्वेऽपि भावस्य प्रतिषिध्यमानस्याश्रयो वक्तव्यः। न तावत् मृत्पिण्डलक्षणं कारण-माश्रयः, कारणनिवृत्तेर्हि प्राग् घटस्याऽसत्त्वेन 'अयम्' इति प्रत्ययाऽविषयत्वात्। 'अयं' प्रत्ययविषयत्वे च 'अयं ब्राह्मणो न भवति' 'ब्राह्मणादन्योऽयम्' इति च प्रतिषेधप्रधानविध्युपसर्जन-विधिप्रधानप्रतिषेधोप-सर्जनयोः शब्दयोः प्रवृत्तिनिमित्तधर्मद्वयाधारभूतं द्रव्यं विषयत्वेनाऽभ्युपगन्तव्यमन्यथा तदयोगात्। तथा चानेकान्तवादापत्तिरयत्नसिद्धा- इति तथाभूतस्य तस्य वस्तुनः प्रमाणबलायातस्य निषेद्धुमशक्यत्वात्। एकान्तेन घटस्योत्पत्तेः प्रागस्तित्वे क्रियायाः प्रवृत्त्यभावः फलसद्भावान्तत्सद्भावेऽपि प्रवृत्तावनवस्था-

की तरह स्वभवन का प्रतिषेधमात्र ही बोधित होगा, अतः भाव (प्रसज्यअभावात्मक होगा) पर्युदासाभावात्मक नहीं होगा। भाव स्वरूप का त्याग करके पर्युदासअभावात्मक हो भी नहीं सकता क्योंकि तथाविधभावबोधक प्रमाण अनुपलब्ध है। स्वरूप परित्याग करने पर स्वभवनप्रतिषेध यानी प्रसज्यरूपता तो प्रसक्त है ही, उपरांत यदि पर्युदासाभावात्मकता साधक प्रमाण मिलेगा तो भाव में प्रसज्य-पर्युदास उभयात्मकता प्रविष्ट होने से अनेकान्त मत प्रसिद्ध हो जायेगा। दूसरे उपविकल्प में पूर्वस्वरूप का त्याग न होने से पर्युदासाभावात्मकता निरवकाश रहेगी जैसे पूर्वभावस्वरूप में वह नहीं है (वैसे कारणनिवृत्तिकाल में भी नहीं होगी।)

### [ प्रसज्याभावात्मकता - दूसरे मूल विकल्प की आलोचना ]

दूसरे मूल विकल्प में :- कारणनिवृत्तिचर्चा में भाव अभावरूप है फिर कहा था कि भाव प्रसज्याभावात्मक है ? यदि हाँ तो यहाँ प्रसज्यरूपाभाव से जिस भाव का निषेध किया जाता है उस का आश्रय बताईए ! मिट्टीपिण्डरूप कारण को भाव का आश्रय दिखायेंगे तो हम उस का आगे चल कर निषेध प्रदर्शित करेंगे। अतः जिस का हम निषेध करनेवाले हैं उस का कोई आश्रय हो नहीं सकता। घटात्मक कार्य भी भाव का आश्रय नहीं बन सकता, क्योंकि घट तो मिट्टीपिण्ड के बाद उत्पन्न होगा, कारण (मिट्टीपिण्ड) की निवृत्ति के पहले तो मिट्टीपिण्डावस्था में घट असत् है अतः भाव के आश्रय के रूप में 'यह' इस तरह की प्रतीति से विषय के रूप में उस का उल्लेख शक्य नहीं है। यदि उस को 'यह' ऐसी प्रतीति का विषय मानेंगे तो, जैसे 'यह ब्राह्मण नहीं है (प्रसज्य प्रतिषेध)' और 'यह ब्राह्मण से जुदा है' (पर्युदास०) इस प्रकार दोनों तरह का व्यवहार होता है उस तरह भाव-घट-मिट्टीपिण्ड के बारे में भी दोनों प्रसज्य-पर्युदासव्यवहार 'यह घट नहीं है' - यह घट से भिन्न है' मानेंगे तभी 'यह' इस प्रतीति का विषयभूत ऐसा (मिट्टी पिण्डादि) द्रव्य स्वीकारना होगा जो निषेध प्रधान और विधि गौण ऐसे शब्द की, एवं विधिप्रधान और निषेध गौण ऐसे शब्द की प्रवृत्ति के निमित्तभूत दो धर्म का आधारभूत हो। अन्यथा उक्त दो प्रकार के व्यवहार का प्रचलन शक्य नहीं होगा। उक्त दो प्रकार के व्यवहार से अनायास ही अनेकान्तवाद की आपत्ति खड़ी होगी, क्योंकि अनेकान्तात्मक वस्तु जब उक्त प्रकार से प्रमाणबल से प्राप्त होती है तो उस का निषेध शक्य



प्रसक्तेः। कारणेऽप्येतदविशेषतस्तद्वत् प्रसङ्गे द्वयोरप्यभावप्रसङ्गः। न चैतदस्ति तथाऽप्रतीतेः। तन्न मृत्पिण्डे घटस्य सत्त्वम्।

- नाप्येकान्ततोऽसत्त्वम् मृत्पिण्डस्यैव कथञ्चिद् घटरूपतया परिणतेः। सर्वात्मना पिण्डनिवृत्तौ पूर्वोक्त-  
दोषानतिवृत्तेः घटसदसत्त्वयोरधारभूतमेकं द्रव्यं मूल्लक्षणमेकाकारतया मृत्पिण्डघटयोः प्रतीयमानमभ्युप-  
गन्तव्यम्। न च कारणप्रवृत्तिकाले कारणगता मृदूपता तन्निवृत्तिकाले च कार्यगता सापरैव नोभयत्र  
5 मृदूपताया एकत्वम्; भेदप्रतिपत्तावपि मृत्पिण्ड-घटरूपतया कथञ्चिदेकत्वस्याऽबाधितप्रत्ययगोचरत्वात्। उप-  
लभ्यत एव हि कुम्भकारव्यापारसव्यपेक्षं मृद्द्रव्यं पिण्डाकारपरित्यागेन शिवकाद्याकारतया परिणममानम्।  
न हि तत्र 'इदं कार्यमाधेयभूतं भिन्नमुपजातं पङ्के पङ्कजवत्' इति प्रतिपत्तिः। नापि तत्कारणनिवर्त्यतया  
दण्डोत्पादितघटवत्। नापि तत्कर्तृतया कुविन्दव्यापारसमासादितात्मलाभपटवत्। नापि तदुपादानतया  
10 आम्रवृक्षोत्पादिताम्रफलवत्।

- नहीं। यदि उत्पत्ति के पहले घट को एकान्ततः सत् मान लेंगे तो उत्पादक क्रिया निष्प्रयोजन होने से कर्तव्य नहीं रहेगी क्योंकि उस का कार्य तो पहले से विद्यमान है। विद्यमान होने पर भी क्रियार्थक प्रवृत्ति जरूरी मानेंगे तो अपेक्षित कार्योत्पत्ति के बाद भी वह चालु रखना पड़ेगा। — तब अनवस्था दोष होगा। कार्य के लिये जैसे प्रवृत्ति की अनवस्था का दोषप्रसङ्ग है (जिस से कार्य का अस्तित्व  
15 शून्य बन जाता है) वैसे कारण में भी वह तुल्यतया प्रसक्त होने पर न तो कारण का अस्तित्व बचेगा, न कार्य का, दोनों का अभाव आ पड़ेगा। वह स्वीकारार्ह नहीं है क्योंकि ऐसी प्रतीति नहीं होती। अतः सिद्ध है कि मिट्टीपिण्ड में घट का सत्त्व नहीं है।

- (उत्पत्ति के पूर्व में कार्य की एकान्तसत्ता का निषेध कर के अब एकान्त असत्त्व का भी निषेध किया जाता है।) एवं उत्पत्ति के पूर्व कार्य एकान्ततः असत् हो — ऐसा भी नहीं है। कारण :- मिट्टीपिण्ड  
20 ही किसी न किसी अंश से घटरूप परिणाम अपना लेता है। यदि सर्वात्मना मिट्टीपिण्ड (= कारण) निवृत्ति मानेंगे तो पूर्वकथित कारणव्यर्थता आदि अनेक दोष प्रसक्त होंगे। अतः घट के सत्त्व-असत्त्व के आधारभूत, मिट्टीपिण्ड एवं घट दोनों में एकाकारतया भासमान एक मिट्टीरूप द्रव्य मानना ही पड़ेगा।  
25 ऐसा मत कहना कि — 'मिट्टीपिण्डात्मककारण घटोत्पत्ति-अभिमुख काल में पिण्ड में रहने वाली मिट्टीरूपता एवं कारणनिवृत्तिकाल में घटात्मककार्यनिष्ठ मिट्टीस्वरूप ये दोनों भिन्न है, एकाकार नहीं, अतः दोनों काल में मिट्टीरूपता एक नहीं है।' — निषेध का कारण यह है कि दोनों काल में पिण्ड-घटावस्था में भेदप्रतीति होने पर भी मिट्टीपिण्डरूपता एवं घटरूपता में निर्बाध प्रतीति से कथञ्चिद् एकाकारता भी दृष्टिगोचर होती है। दिखता है — एक ही मिट्टी द्रव्य कुम्हारप्रवृत्तिअपेक्षाधीन होने पर पिण्डाकार छोड़ कर शिवकाकार में रूपान्तर प्राप्त करता हुआ। ऐसा भान नहीं होता कि आधेयभूत यह शिवकाकार परिणामरूप कार्य मिट्टीरूप आधार से पृथग् उत्पन्न हुआ। दण्ड से उत्पन्न घट जैसे पृथक् दिखता है  
30 वैसे चक्रात्मक कारण से निष्पन्न होनेवाला घट मिट्टी से अलग नहीं दिखता, चक्र से अलग भले दिखता हो। जुलाहा के व्यापार से स्वरूपलाभ प्राप्त करने वाला वस्त्र जैसे जुलाहा रूप कर्ता से अलग दिखता है वैसे मिट्टी से घट अलग नहीं दिखता। आम्र वृक्षात्मक उपादान से आम्रफल जैसे अलग दिखता

तस्मात् पूर्वपर्यायविनाश उत्तरपर्यायोत्पादात्मकः, तद्देशकालत्वात् उत्पादात्मवत्, अभावरूपत्वाद्वा प्रदेशस्वरूपघटाद्यभाववत्, प्रागभावाभावरूपत्वाद्वा घटस्वात्मवत्। एवमनभ्युपगमे पूर्वपर्यायस्य ध्वंसात् उत्तरस्य चानुत्पत्तेः शून्यताप्रसक्तिः। उत्तरपर्यायोत्पादाभ्युपगमे वा तदुत्पादः पूर्वपर्यायध्वंसात्मकः, प्रागभावाभावरूपत्वात् प्रध्वंसाभावाभाववत्। न च प्राक्तनपर्यायविनाशात्मकत्वे उत्तरपर्यायभवनस्य तद्विनाशे पूर्वपर्यायस्योन्मज्जनप्रसक्तिः, अभावाभावमात्रत्वानभ्युपगमाद्वस्तुनः तस्य प्रतिनियतपरिणतिरूपत्वात्। भावाभावोभयरूपतया प्रतिनियतस्य वस्तुनः प्रादुर्भावे मुद्गरादिव्यापारानन्तरमुपलभ्यमानस्य कपालादेरभावस्य नाऽहेतुकता। न चोभयस्यैकव्यापारादुत्पत्तिविरोधः, तथाप्रतीयमाने विरोधासिद्धेः, ततस्तद्विपरीत एव विरोधासिद्धेः उभयैकान्ते प्रमाणानवतारात्। तथात्मकैकत्वेन प्रतीयमानं प्रति हेतोर्जनकत्वविरोधे घटक्षणसत्तायाः स्व-परविनाशोत्पादकत्वं विरुध्येत, एवं चाकारणा घटक्षणान्तरोत्पत्तिर्भवेत्। न च विनाशस्य है वैसा भी यहाँ नहीं है।

### [ पूर्वपर्यायविनाश-उत्तरपर्यायोत्पाद का एकत्व ]

जैसे उत्पाद का आत्मा उत्तरपर्यायोत्पादरूप ही होता है वैसे पूर्वपर्यायविनाश भी उत्तरपर्यायोत्पादरूप ही होता है क्योंकि दोनों का देश-काल समान है। अथवा जैसे घटादि का अभाव अभावरूप होने से घटात्मक होता है वैसे पूर्वपर्यायविनाश भी समझ लेना। ऐसा अगर नहीं मानेंगे तो एक सन्तान में पूर्वपर्याय का ध्वंस तो होगा किन्तु तदात्मक उत्तरपर्याय का उत्पाद न होने से वहाँ शून्यावकाश प्रसक्त होगा। वहाँ यदि उत्तरपर्यायोत्पाद स्वीकारना ही है तो उसे पूर्वपर्यायध्वंसात्मक ही मानना होगा क्योंकि प्रध्वंसाभाव क्या है — जैसे पूर्वपर्यायध्वंस ध्वंसाभावाभावरूप है वैसे प्रागभाव के अभावरूप भी है अतः उसे उत्पादरूप ही मानना पड़ेगा।

**पूर्वपक्ष :-** यदि उत्तरपर्यायनिर्माण पूर्वपर्यायविनाशात्मक माना जायेगा तो उत्तरपर्याय का नाश होने पर तदात्मक पूर्वपर्यायविनाश की भी निवृत्ति हो जाने से पूर्वपर्याय के पुनराविर्भाव का संकट होगा।

**उत्तरपक्ष :-** नहीं होगी। कारण :- हम वस्तु को सिर्फ अभावाभावात्मक नहीं मानते किन्तु प्रतिनियतपरिणामरूप मानते हैं। अर्थात् दूधपर्यायविनाश और दधिपर्यायोत्पाद एक होता है, जब दधि पर्यायविनाश हो जाय तब दूधपर्यायविनाश का अभावात्मक नाश नहीं होता किन्तु नवनीत-घृतादि नियत परिणाम उत्पन्न होता है। हम मानते हैं वस्तुमात्र भावाभावोभयरूप होती है, अतः जब किसी नियत वस्तु का उत्पाद होता है तो वह भी उभयात्मक होने से, कपालादिरूप अभाव जब मोगरप्रहार से उत्पन्न होता है तब उस में निर्हेतुकता की आपत्ति सावकाश नहीं क्योंकि वह सिर्फ अभावरूप नहीं है किन्तु कपालादिभावात्मक भी है। ऐसा नहीं कहना कि 'एकहेतुव्यापार से भाव या अभाव उभय की उत्पत्ति विरुद्ध है' — क्यों कि विनाशात्मक कपाल की मोगरप्रहारजन्य उत्पत्ति जब सर्वजनविदित है तब विरोध कैसे सिद्ध होगा ? उलटे, सिर्फ एक ही भाव या अभाव की उत्पत्ति मानेंगे तो सर्वजनविदित प्रतीति से विरोध प्रसक्त होगा। एकान्त भाव या अभाव रूप वस्तु की सिद्धि के लिये कोई प्रमाण गगन से धरती पर उतरनेवाला नहीं है।

उभयात्मक एकरूप से प्रतीतिसिद्ध वस्तु की एक हेतु से उत्पत्ति का विरोध मानेंगे तो घटक्षणसत्ता

प्रसज्य-पर्युदासपक्षद्वयेऽपि व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तादिविकल्पतो हेत्वयोगान्निर्हेतुकता युक्ता, सत्ताहेतुत्वेऽपि तथाविकल्पनस्य समानत्वेन प्राक् प्रदर्शितत्वात्।

यदपि विनाशस्य निर्हेतुकत्वात् स्वभावादनुबन्धितेति निरन्वयक्षणक्षयिता भावस्येति नान्वयः — तदप्यसङ्गतम्, विनाशहेतोर्मुद्गरादेर्घटादिनाशस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्। न ह्यध्यक्षसिद्धे वस्तुन्यनुमानं  
5 विपरीतधर्मोपस्थापकत्वेन प्रामाण्यमात्मसात्करोति। यदपि 'विनाशं प्रति तद्धेतोरसामर्थ्यात् क्रियाप्रतिषेधाच्च स्वरसवृत्तिर्विनाश इति नान्वयः' तदप्यसङ्गतम् विनाशहेतोर्भावाभावीकरणसामर्थ्यात् यथा हि भावहेतुर्भावी-  
करोति, अन्यथा स्वयमेव नाशेऽपि भावानां द्वितीयक्षणे 'स्वयमेव भावो भावीभवति' इति भवेत्। यथा  
हि निष्पन्नस्य भावस्य नाभावो नाम कश्चित्तत्सम्बन्धी, यद्यन्योऽभावो भवेत् निष्पन्नस्य भावस्य तदा  
तेन तस्य सम्बन्धाऽसिद्धेः पूर्ववद् दर्शनप्रसङ्ग इति 'स्वयमेव भावो न भवति' इत्यभिधीयते; तथा

10 में स्वक्षणविनाश एवं पर (घट का कपाल) क्षण का उत्पाद — दोनों का विरोध प्रसक्त होगा, फलतः सिर्फ अकेले विनाश को ही मानेंगे तो नये घटकषण की उत्पत्ति का संभव ही नहीं होगा। यदि कहें कि — चाहे प्रसज्य या पर्युदास कोई भी स्वरूप विनाश हो, निर्हेतुक ही मानना होगा क्योंकि वह कारण से व्यतिरिक्त है या अभिन्न, किसी भी विकल्प से समाधान शक्य नहीं' — तो गलत है क्योंकि घटकषणसत्ता (यानी घटोत्पत्ति) के हेतु के लिये भी तथाविध विकल्पों का उत्थान तुल्य रूप  
15 से हो सकता है, तो फिर उत्पत्ति को भी निर्हेतुक मानने की आपत्ति आयेगी — यह सब पहले कह आये हैं।

### [ निरन्वय नाश का सयुक्तिक निरसन ]

यह जो कहते हैं — 'निर्हेतुक होने से विनाश को स्वभाव से ही वस्तु के साथ दोस्ती है। इसी लिये भावों की निरन्वय(निर्हेतुक) क्षणभंगुरता सिद्ध हो जाने से हेतु के अन्वय (= दोस्ती) की  
20 जरूर नहीं' — यह गलत है विनाशक हेतुभूत मोगरादि से घटादि का नाश सर्वजनप्रत्यक्ष से सिद्ध है। प्रत्यक्षसिद्ध वस्तु होने पर विपरीत धर्म (निरन्वयता) का उपस्थापक अनुमान प्रामाण्यपदवी को हस्तगत कर नहीं सकता। यह जो कहते हैं — 'तथाकथित विनाशक हेतु में कोई सामर्थ्य ही नहीं है कि वह विनाश कर सके, तथा विनाश कारक अर्थक्रिया भी निषेधाई होने से मानना पड़ेगा कि विनाश स्वरसतः (स्वभावतः) होता है, उस के लिये अन्वय (= हेतु) अनावश्यक है।' — वह भी  
25 अयुक्त है, क्योंकि विनाशक हेतु में भाव को अभाव में पलटने का पूरा सामर्थ्य है। सोचिये कि जो भाव का हेतु होता है वह भावकरण (भाव का निर्माण) कर सकता है (तो समानरूप से) अभावहेतु अभावीकरण कर सकता है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो स्वतः वस्तुनाश मानने पर भी दूसरे क्षण में जो भाव उत्पन्न होता है उस के लिये भी 'अभाव स्वतः भाव बन गया' ऐसा कहा जा सकेगा।

### [ निर्हेतुकनाशवत् निर्हेतुक उत्पत्ति का आपादन ]

30 (यथाहि.. पूर्वपक्ष :-) उत्पन्न भाव का स्वसम्बन्धि हो ऐसा कोई अभाव नहीं होता। उत्पन्न भाव का यदि कोई पृथग् अभाव है तो उन दोनों का कोई सम्बन्ध भी होना चाहिये, किन्तु अभाव के साथ भाव का कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं, अत एव दूसरे क्षण में उस भाव का अभाव मानने पर

न निष्पन्नस्य भावस्य भावो नामान्यः कश्चित् तेन तस्य सम्बन्धाऽसिद्धेर्न भावस्य सत्ता भवेदिति 'स्वयमेव हेतुनिरपेक्षो भावो भवति' इत्येतदपि वक्तव्यम्।

यदि पुनस्तत्र न किञ्चिद् भवति— इति क्रियाप्रतिषेधमात्रमिति न हेतुव्यापारः, कथं तर्हि तदवस्थस्य भावस्य दर्शनादिक्रिया न भवेदिति वक्तव्यम् ? 'स एव न भवति' इति चेत्, तर्हि तस्यैवाभवनं करोति विनाशहेतुरित्यभ्युपगन्तव्यमिति तद्धेतूनामकिञ्चित्करतयाऽनपेक्षणीयत्वमनुपपन्नम्। अत एवापेक्षणीयत्वोप- 5 पत्तिर्भावस्यान्यथाकरणात् कथंचिदन्यथा सहानवस्थानलक्षणविरोधाऽसिद्धेः प्रतिनियतव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिः। अपि च, यदि नाम स एव न भवति, तथापि प्रध्वंसाभावः प्रागभावाभावात्मकः उत्तरकार्यवदभ्युपगन्तव्यः तस्यापि तदनन्तरमुपलम्भात्। एतावान् विशेषः— विनाशप्रतिपादनाभिप्राये सति तत्राधान्येतरोपसर्जन- विवक्षायाम् 'विनष्टो भावः' इति प्रयुज्यते प्रतिपत्तिरपि तथैव, विनाशोपसर्जनेतरप्राधान्यविवक्षायाम्

भी (उस का भाव के साथ कोई नाता-रिश्ता न होने से) दूसरे क्षण में भाव के दृष्टिगोचर होने की आपत्ति होगी। अतः हम अभाव होता है ऐसा नहीं कहते, हम कहते हैं कि दूसरे क्षण में 'भाव स्वयं ही नहीं रहता है।' — अब इस के सामने उत्तरपक्षी कहता है — 10

**उत्तरपक्ष :-** आगे चल कर भाव के लिये भी ऐसा कह दो कि उत्पन्न भाव का कोई (कारण) भाव नहीं होता, होगा तो उस के साथ भाव का कोई सम्बन्ध नहीं घटता, अतः भाव (कारणात्मक भाव) की कोई सत्ता न होने से 'भाव स्वयं ही हेतुनिरपेक्ष उत्पन्न होता है।' 15

### [ विनाशहेतु से भाव को अभवन-करण का आपादन ]

**पूर्वपक्ष :-** हम भाव का अभाव होने की बात नहीं करते, हम तो सिर्फ 'वहाँ कुछ नहीं होता' इतना क्रिया का निषेधमात्र ही करते हैं। अतः वहाँ हेतुव्यापार का निषेध करते हैं।

**उत्तरपक्ष :-** जब आप सिर्फ भवन क्रियामात्र का निषेध करते हैं तो करो, लेकिन उस क्षण में तदवस्थ भाव की दर्शनादि क्रिया क्यों नहीं होती ? यह बताइये। आपने भाव का या उस की दर्शन क्रिया का निषेध तो नहीं किया है। 20

**पूर्वपक्ष :-** अरे भाई वह स्वयं नहीं है तो दर्शनादि कैसे होगा ?

**उत्तरपक्ष :-** अत एव यह मानना होगा कि विनाशहेतु ही भाव की अभवनक्रिया को करता है। सारांश, 'विनाशहेतु अकिञ्चित्कर होने से नाश के लिये अपेक्षणीय नहीं' यह प्रतिज्ञा युक्तियुक्त सिद्ध नहीं होती। विनाशहेतु भाव का कथंचिद् अन्यथा (= विभिन्नता) करण करता है इसीलिये तो विनाशहेतु की अपेक्षणीयता सिद्ध होती है। यदि विनाशहेतुक अन्यथाकरण नहीं मान कर सिर्फ अभवन क्रिया मानेंगे तो अभवनक्रिया से भाव के भवन की कोई हानि न होने से, भवन-अभवन में जो सहानवस्थान (= एक साथ एक काल में न रहेना) स्वरूप विरोध है वह नाममात्र हो जायेगा। फलतः 'प्रकाशस्थल में तिमिर नहीं होता' इत्यादि नियत व्यवहार का उच्छेद प्रसक्त होगा। 25

एक बार 'वही नहीं रहता' ऐसी व्याख्या को मान लिया, फिर भी अभवनक्रियाकाल में, प्रागभावाभावात्मक प्रध्वंसाभाव की हस्ती भी माननी पड़ेगी जैसे दुग्ध की अभवनक्रिया के बाद दधिरूप उत्तर कार्य की मानते हैं, क्योंकि प्रध्वंसाभाव भी कपालकाल में दृष्टिगोचर होता ही है। फर्क है तो 30

‘विनष्टो भावः’ इति प्रयुज्यते प्रतिपत्तिरपि तथैव। परमार्थतस्तु उभयमप्युभयात्मकम् अन्यथा पूर्वोक्तदोषा-  
नतिवृत्तेः। न च कारणस्य निरन्वयविनाशे कार्यस्याऽदलस्यात्यन्तासत् उत्पत्तिर्घटते, विनष्टस्य सकल-  
शक्तिविरहिणः कारणस्य कार्यक्रियाऽयोगात् अविनष्टस्य स्वसत्ताकाले कार्यनिर्वर्तने हेतु-फलयोः सहभाव  
इति तद्व्यपदेशः सव्येतरगोविषाणयोरिव न भवेत्। स्वकाले पश्चात् कार्यस्य भावे तदा कारणस्य  
5 स्वसत्तामत्यजतः क्षणक्षयपरिक्षयोऽनिष्टोऽनुषज्यते।

किञ्च, कारणसत्तासमये कार्यस्याऽभवतः स्वयमेव पश्चाद् भवतः तदकार्यत्वप्रसक्तिश्च। तथाहि—  
यस्मिन् सति यन्न भवति असति च भवति तत् तस्य न कार्यम् इतरच्च न कारणम्, यथा कुलालस्य  
पटादिः। क्षणक्षयपक्षे च प्रथमक्षणे कारणाभिमतभावसद्भावे न भवति कार्यम्, असति तस्मिन् द्वितीयक्षणे  
भवति चेति न तत् तत्कार्यम् इतरच्च तत्कारणमिति हेतुफलभावाऽभावस्य तन्मात्रनिबन्धनत्वात्। अत

10 इतना :- जब कपाल विवक्षा नहीं रहती, सिर्फ घट विनाश की ही विवक्षा रहती है तब वह विवक्षा  
कपाल में गौण — विनाश में प्रधानभाव रखती होने से ‘भाव (घट) नष्ट हुआ’ ऐसा वाक्यप्रयोग  
एवं वैसा अवबोध होता है। विनाश गौण, भाव प्रधान विवक्षा होती है तब ‘कपाल उत्पन्न हुए’  
ऐसा उल्लेख एवं ऐसा अवबोध होता है।

परमार्थदृष्टि से नजर डाले तो पता चलेगा कि विनाश और कपाल दोनों ही परस्पर उभयात्मक  
15 है — यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो एक एक पक्ष में पूर्वभाषित सब दोष घुस जायेंगे। कारण का यदि  
निरन्वय नाश मानेंगे तो कार्योत्पत्ति का कोई आधार (= दल या उपादान) न रहने से कार्य उत्पन्न  
नहीं हो सकेगा। जो सर्वथा विनष्ट है वह सकल शक्तिवंचित ही होता है, उस से कोई कार्यनिष्पादन  
क्रिया का योग घट नहीं सकता। यदि सर्वथा अविनष्ट हो कर कारण कार्योत्पत्ति करेगा तो वह  
(= कारण) अपनी सत्ता के काल में ही कार्य कर देगा, तब कारण-फल सहभावी बन जाने से ‘यह  
20 कारण — यह फल’ ऐसा स्वकाल में विभक्त व्यवहार, उसी तरह नहीं हो सकेगा जिस तरह सहजात  
दायें-बायें गोविषाण में कारण-फल विभक्त व्यवहार नहीं होता। यदि कारण समकाल में नहीं, किन्तु  
स्वउत्तरकाल में कार्योत्पत्ति मानेंगे तो सत्ता का त्याग नहीं बोल सकेंगे, फलतः क्षणभंग के भंग की  
आपत्ति आयेगी जो आप को नहीं रुचेगी।

### [ क्षणभंगमत में कारण-कार्यभाव असंगत ]

25 एक महत्त्व की बात:- यदि कारण की उपस्थिति में कार्य नहीं होता और बाद में होता है तो  
आपत्ति होगी कि वह ‘उस का कार्य’ नहीं हो सकता। देखिये— जिस के रहते हुए जो नहीं होता,  
जिस के न रहने पर जो होता है, वह उस का कार्य और दूसरा उस का कारण नहीं हो सकता।  
उदा० कुम्हार के रहते हुए वस्त्रादि नहीं होता, कुम्हार के न रहने पर भी वस्त्रनिर्माण होता है अतः  
वस्त्रादि कार्य और कुम्हार उस का कारण, ऐसा नहीं होता। क्षणभंगवाद में, प्रथम क्षण में कारणरूप  
30 से अभिमत दुग्ध के रहते हुए दही नहीं होता, दुग्ध द्वितीयक्षण में जब नहीं होता तब दही बनता  
है अतः बौद्धमतानुसार दुग्ध का कार्य दही नहीं होगा, दुग्ध उस का कारण नहीं होगा, — इस तरह  
के जो अन्वयाभावादि है वही हेतुफलाभाव का मूल है। यही कारण है कि क्षणिक पदार्थ के साथ अर्थक्रिया

एव क्षणिकादर्थक्रिया व्यावर्त्तमाना स्वं व्याप्यं सत्त्वलक्षणमादाय निवर्त्तत इति यत्र सत्त्वं तत्राऽक्षणिकत्वं सिद्धिमासादयति। न च कार्यकालेऽभवतोऽपि कारणस्य प्राक्तनानन्तरक्षणभावित्वात् कारणत्वम् कार्यकाले स्वयमेवाभवतोऽकारणान्तरवत् कारणत्वाऽयोगात् कार्यस्य च कारणकाले आत्मनैवाऽभवतः कार्यान्तरवत् तत्कार्यत्वानुपपत्तेः। क्षणिकस्य च प्रमाणाऽविषयत्वात् तत्र कार्य-कारणभावपरिकल्पना युक्तिसङ्गता। न चानुपलब्धेऽपि तत्र कार्यकारणभावव्यवस्था, अतिप्रसङ्गात्। न च क्षणक्षयमीक्षमाणोऽपि सदृशापरा- 5 परोत्पत्त्यादिविभ्रमनिमित्ताद् नोपलक्षयतीति वक्तव्यम्, यतो नाध्यक्षात् क्षणक्षयमलक्षयंस्तत्र कार्य-कारणभावं व्यवस्थापयितुं शक्नोति, नाप्यनुमानात् क्षणिकत्वं व्यवस्थापयितुं समर्थः, तस्य स्वांशमात्रावलम्बितया वस्तुविषयत्वाऽयोगात्। न च मिथ्याविकल्पेनाध्यवसितं क्षणिकत्वं वस्तुतो व्यवस्थापितं भवति।

यदपि 'अक्षणिके क्रम-यौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात्'० इत्याद्युक्तम् तदपि सहकारिसन्निधानवशाद- 10 क्षणिकस्य क्रमेणार्थक्रियां निर्वर्त्तयतोऽयुक्तमेव। यदप्युक्तम् 'तत्करणस्वभावश्चेदक्षणिकः प्रागेव तत्करणप्रसङ्गः की दोस्ती जमती नहीं तो उस से पराङ्मुख अर्थक्रिया अपने व्याप्यभूत सत्त्व को साथ में लेकर बिदा लेती है। फलतः यही सिद्ध होता है कि जहाँ सत्त्व होगा वहाँ अक्षणिकत्व होगा।

**पूर्वपक्ष :-** कारण भले कार्योत्पत्तिकाल में हाजिर न रहे, उस के अनन्तरपूर्वक्षण में रहे तो भी वह कारण बन सकता है।

**उत्तरपक्ष :-** कार्योत्पत्तिकाल में जैसे कि घटोत्पत्तिकाल में पाचकादि हाजिर नहीं होते तो पाचकादि 15 घट का कारण नहीं हो सकता वैसे यदि अभिमत कारण कार्यकाल में हाजिर नहीं रहेगा तो उस में कारणता भी रह नहीं सकेगी। तथा पूर्वक्षण में जब अभिमत कारण है तब यदि कार्य खुद स्वरूपतः हाजिर नहीं है तो वह उस का कार्य बन नहीं सकता जैसे अन्य कार्य।

### [ क्षणिक पदार्थ में कारण-कार्य भाव अनुपपत्ति ]

यह भी सुन लो कि क्षणिक वस्तु प्रमाणविषय न होने से क्षणिक पदार्थों में कारण-कार्य भाव 20 की कल्पना युक्तियुक्त नहीं है। प्रमाणोपलब्ध न होने वाले क्षणिक पदार्थ में कार्य-कारणभावव्यवस्था शक्य नहीं है, अन्यथा शशशुंगादि में भी होने लगेगी। ऐसा नहीं बोलना :- क्षणक्षय का प्रत्यक्ष तो होता है किन्तु सत्त्वर नये नये सदृशपदार्थ के उद्भव से पैदा होनेवाले विभ्रम के कारण वह क्षणक्षय को पहिचान सकता नहीं। — निषेध कारण यह है कि प्रत्यक्ष से क्षणक्षय को न पहिचाननेवाला उस में कारण-कार्यभाव की व्यवस्था भी कैसे कर सकता है ? अनुमान से भी वह क्षणिकत्व की 25 सिद्धि कर नहीं सकता। कारण :- बौद्धमतानुसार अनुमान तो सामान्यावगाहि कल्पनारूप यानी अपने ज्ञानांश का ही विषयी होने से, वस्तुविषयक न होने से। मिथ्या विकल्प से गृहीत किया जाने वाला क्षणिकत्व वस्तुतः प्रमाणसिद्ध कभी नहीं हो सकता।

### [ अक्षणिक में अवस्तुत्वापत्ति का निरसन ]

यह जो कहा है — अक्षणिक वस्तु में क्रमशः या एक साथ अर्थक्रिया का विरोध है। वह अयुक्त 30 है क्योंकि अक्षणिक पदार्थ सहकारि के संनिधान प्रभाव से क्रमशः अर्थक्रिया जरूर कर सकता है। यह जो कहा था — अक्षणिकपदार्थ में यदि द्वितीयक्षणवृत्ति कार्य करने का स्वभाव प्रथम क्षण में

पश्चादिव स्वभावाऽविशेषाद्' इति तदप्ययुक्तम्; यतो न वै किञ्चिदेकं जनकम् सामग्रीतः फलोत्पत्तेः। अक्षणिकश्च सामग्रीसंनिधानापेक्षया कार्यनिर्वर्तनस्वभावः केवलस्तु तदकरणस्वभावः। न च तदा भाविकार्याकरणादवस्तुत्वम्, क्षणिकेऽपि प्रथमक्षणे कार्याऽकरणादवस्तुत्वप्रसक्तेः। अत एकत्र कारणान्तरापेक्षाभ्यां जनकत्वाऽजनकत्वे अविरुद्धे। यतो न क्षणिकवाद्यभ्युपगतक्षणस्यापि सम्बन्ध्यन्तरसंनिधानाऽसंनिधाकृतः

5 स्वभावभेदः अन्यथाऽनेकसामग्रीसन्निपातिनः एकक्षणस्यैकदा विलक्षणानेककार्योत्पादनेऽनेकत्वप्रसक्तिर्भवेत्। दृश्यते च प्रदीपक्षणस्य समानजातीयक्षणान्तरकज्जलचक्षुर्विज्ञानाद्यनेककार्यनिर्वर्तकत्वमेकस्य नानासामग्र्युपनिपातिन इति क्रमेणाप्यक्षणिकस्य तदविरुद्धम्। यथा चैकक्षणस्य स्व-परकार्यापेक्षयैकदा जनकत्वाऽजनकत्वे अविरुद्धे तथाऽक्षणिकस्यापि सहकारिकारणसन्निधानाऽसन्निधानाभ्यां क्रमेण कार्यजनकत्वाऽजनकत्वे न विरोत्त्येते।

10 विज्ञप्तिपरमाणुपक्षेऽपि यथैको ज्ञानपरमाणुः सम्बन्ध्यन्तरजनितस्वभावभेदेऽप्यभिन्नः अन्यथा दिक्ष-

होगा तो प्रथमक्षण में ही उस कार्य का करण प्रसक्त होगा क्योंकि उत्तरक्षण में जो स्वभाव है वह पूर्वक्षण में अक्षुण्ण है — इत्यादि, वह भी अयुक्त है क्योंकि हम किसी एक व्यक्ति एवं उस के तथाविध स्वभाव से ही कार्योत्पत्ति नहीं मानते किन्तु सामग्री से फलोद्भव मानते हैं। अक्षणिक पदार्थ सामग्रीसंनिधान की अपेक्षा कार्यकरणस्वभाव होता है, सामग्रीविहीन अक्षणिक पदार्थ कार्यअकरणस्वभाववाला होता है।

15 उस का यानी भाविकार्यअकरणस्वभाव होने का मतलब यह नहीं है कि वह अवस्तु है, यदि ऐसा मानेंगे तो क्षणिक पदार्थ को भी स्वप्रथमक्षण में अवस्तुत्व मानना पड़ेगा क्योंकि वह भी उस क्षण में कार्योत्पत्ति नहीं कर सकता। फलित यह हुआ कि एक ही वस्तु में कारणान्तर सापेक्ष जनकत्व एवं कारणान्तरनिरपेक्षतया अजनकत्व मानने में कोई विरोध नहीं।

### [ स्वभावभेद से व्यक्तिभेद आपत्ति का निरसन ]

20 हेतु स्पष्ट है :- क्षणिकवादिमान्य क्षण में भी, अन्य अन्य सहकारी रूप संबन्धि का संनिधान और असंनिधान, दोनों के रहते हुए भी स्वभावभेद नहीं माना जाता। यदि स्वभावभेद मानेंगे तो कोई एक क्षण जब अनेककारणसामग्रीअन्तर्वर्ती है तब एकसाथ स्वभावभेद प्रयुक्त व्यक्तिभेद से विलक्षण अनेक कार्यों का उद्भव आ पड़ेगा, यानी क्षण के एकत्व का भंग होगा। यह तो सभी को दिखता है कि एक प्रदीप क्षण सजातीय उत्तरक्षण, काजल, चाक्षुषज्ञान आदि अनेक कार्यों को करता है फिर

25 भी उस का एकत्व अक्षुण्ण रहता है। तो ऐसे ही एक अक्षणिक पदार्थ जब विविध (क्रमिक) सामग्री के उपनिपात (= संनिधान) के जरिये क्रमशः अनेक कार्यकारी बने इसमें कोई विरोध नहीं है। क्षणिकवादी भी जब एक ही क्षण स्वसन्तान में उत्तरक्षणरूप कार्य करता है, परसन्तान में नहीं करता, इस तरह एकपल में जनकत्व-अजनकत्व होने में, विरोध नहीं मानते — तो इसी तरह अक्षणिक पदार्थ सहकारि कारणों के संनिधान में क्रमशः कार्य का जनक होता है, असंनिधान में अजनक होता है — यहाँ

30 कोई विरोध नहीं आयेगा।

जो विज्ञानवादी विज्ञानपरमाणु की बात करता है, उस में भी जैसे एक ही ज्ञानपरमाणु अन्यअन्यसंबन्धियों के सम्बन्ध से भिन्नस्वभाववाला होने पर भी अभिन्न = एक ही होता है। यदि

ट्कसंयोगात् सावयवत्वकल्पनया अवस्तुत्वप्रसक्तेः सेना-वनादिवत् स्वसंविदि निर्विकल्पिकायामप्रतिभासतः सर्वप्रतिभासविरतिर्भवेत्। एवमक्षणिकोऽपि क्रमभाव्यनेकतत्त्वसहकारिसम्बन्धन्तरसव्यपेक्षकार्यजननस्वभाव-भेदेऽप्यभिन्नोऽभ्युपगन्तव्यः, जनकत्वाऽजनकत्वभेदेऽपि वाऽभिन्नस्वभाव इति नाक्षणिकेऽर्थक्रियाविरोधः। न च क्षणक्षयेऽध्यक्षप्रवृत्तिव्यतिरेकेण अक्षणिकेऽर्थक्रियाविरोधः सिध्यति इतरेतराश्रयप्रसक्तेः। तथाहि—  
अक्षणिकत्वेऽर्थक्रियाविरोधात् प्रतिक्षणविशारुषु अध्यक्षप्रवृत्तिसिद्धिः तस्माच्चाऽक्षणिकेऽर्थक्रियाविरोध-  
सिद्धिरिति। 5

न चाऽक्षणिकवादमतेऽप्ययं समानो दोषः, कालान्तरस्थायिनि भावेऽध्यक्षप्रवृत्तिनिश्चयादेव क्षणिकत्वे-  
ऽर्थक्रियाविरोधस्य सिद्धेः। न च क्षणिकेऽध्यक्षप्रवृत्तिरुपजातैव केवलं भ्रान्तिकारणसद्भावाद् न निश्चितेति  
वक्तव्यम् — विहितोत्तरत्वात् (३००-५)। तत्रैकान्तक्षणिकस्यार्थक्रियाकरणलक्षणं सत्त्वम् अन्यस्य च सत्ता-  
सम्बन्धादेः सत्त्वस्य परेणाऽनभ्युपगमात् असन्त एकान्तक्षणिकाः। 10

क्षणिकवदेकान्ताऽक्षणिकेष्वप्यर्थक्रियालक्षणं सत्त्वं पूर्वापदर्शितन्यायेन व्यावृत्तम् सत्तासम्बन्धलक्षणस्य  
च सत्त्वस्याऽतिव्याप्तित्वा(व्याप्त्य)ऽसम्भवादिदोषदुष्टत्वात् असत्त्वमित्येकान्ताऽक्षणिका अप्यसन्तो  
वहाँ अनेक सम्बन्धिभेद से भिन्न मानेंगे तो छ दिशा के योग से उस को सावयव मानने की, फलतः  
परम्परया अवस्तु मानने की आपत्ति होगी। प्रतिभास तो सेना-वनादि पुञ्ज का होता है उसकी निर्विकल्प  
संवेदना में एक ज्ञानपरमाणु कभी नहीं भासता, तो आखिर कुछ भी नहीं भासता यही मानना पड़ेगा। 15  
इसी तरह अक्षणिक पदार्थ में क्रमशः अनेक पृथक् पृथक् सहकारिरूप अन्य अन्य सम्बन्धियों की अपेक्षा  
रखते हुए पृथक् पृथक् कार्यकारि स्वभावभेद भले रहे किन्तु स्वयं तो एक अभिन्न होता है — यह  
मानना पड़ेगा। अथवा ऐसा मानो कि अक्षणिक पदार्थ में जनकत्व-अजनकत्व ऐसा भेद भले रहे किन्तु  
स्वयं अभिन्न होता है, अतः उस में क्रमिकअर्थक्रिया योग के साथ कोई विरोध नहीं है। जब तक  
क्षणभंग विषय में प्रत्यक्ष का प्रचलन सिद्ध नहीं है तब तक अक्षणिक में अर्थक्रियाविरोध सिद्ध नहीं 20  
हो सकता, अन्यथा इतरेतराश्रय दोष का प्रवेश होगा। देखिये — अक्षणिक में अर्थक्रियाविरोध सिद्ध  
होने पर प्रतिक्षणविनाशी परमाणु में प्रत्यक्ष का प्रचलन सिद्ध होगा, और उस के सिद्ध होने पर  
अक्षणिक में अर्थक्रिया के विरोध की सिद्धि होगी।

### [ अक्षणिकवाद में अध्यक्षप्रवृत्ति में अन्योन्याश्रय नहीं ]

अक्षणिकवाद में समानरूप से अन्योन्याश्रयदोष का प्रवेश शक्य नहीं है क्योंकि अनेकक्षणस्थायी 25  
भाव में प्रत्यक्षप्रवृत्ति से निश्चय सिद्ध होने से क्षणिकत्व में अर्थक्रियाविरोध की सिद्धि सरल है।  
ऐसा नहीं कहना कि :- क्षणिक भाव में प्रत्यक्षप्रवृत्ति होती ही है किन्तु उस से संलग्न भ्रान्तिकारणों  
के अन्तराय से उस का निश्चय नहीं होता — निषेध कारण :- पहले इस तर्क का प्रत्युत्तर दिया  
जा चुका है (३००-१८) कि प्रत्यक्ष से क्षणभंग का निश्चय न होने पर कारण-कार्यभाव स्थापना शक्य  
नहीं ... इत्यादि। सारांश, एकान्तक्षणिक पदार्थ मानने पर अर्थक्रियारूप सत्त्व उस में संगत नहीं होता। 30  
अर्थक्रियाभिन्न कोई सत्तासामान्यसम्बन्धरूप सत्त्व तो बौद्धों को मान्य नहीं है अतः फलित हुआ कि  
सत्त्व न होने से एकान्तक्षणिक माने गये पदार्थ असत् हैं। 'तो क्या एकान्तअक्षणिक पदार्थों में अर्थक्रियालक्षण



भावाः—इत्युत्पाद-व्यय-ध्रौव्यलक्षणमेव भावानां सत्त्वभ्युपगन्तव्यमिति नैकान्ततः कारणेषु कार्यमसद् इति 'न तत्' (गाथा २७ उत्तरार्धे 'ण तं') इति पक्षो मिथ्यात्वमिति स्थितम्।

[ विविध-अद्वैततत्त्ववादिमतानां निरसनम् ]

अपरस्तु कार्य-कारणभावस्य कल्पनाशिल्पिविरचितत्वात्तदुभयव्यतिरिक्तमद्वैतमात्रं तत्त्वमित्यभ्युपपन्नः।

5 तन्मतमपि मिथ्या, कार्य-कारणोभयशून्यत्वात् खरविषाणवत्, अद्वैतमात्रस्य व्योमोत्पलतुल्यत्वात्। तथाहि—अद्वैतप्रतिपादकप्रमाणस्य सद्भावे द्वैतापत्तितो नाद्वैतम्, प्रमाणाभावेऽद्वैताऽसिद्धेः, प्रमेयसिद्धेः प्रमाणनिबन्धनत्वात्।

किञ्च, 'अद्वैतम्' इत्यत्र प्रसज्यप्रतिषेधः पर्युदासो वा ? प्रसज्यपक्षे प्रतिषेधमात्रपर्यवसानत्वात्तस्य नाद्वैतसिद्धिः, प्रधानोपसर्जनभावेनाङ्गाङ्गीभावकल्पनायां द्वैतप्रसक्तिः। द्वितीयपक्षेऽपि द्वैतप्रसक्तिरेव प्रमाणान्तरप्रतिपन्ने द्वैतलक्षणे वस्तुनि तत्प्रतिषेधेनाऽद्वैतसिद्धिः। द्वैताद् अद्वैतस्य व्यतिरेके च द्वैतप्रसक्तिरेव,

10 सत्त्व बेठता है' ? नहीं, पूर्व में प्रदर्शित युक्तियों ( ) के बल से वह भी बहिष्कृत ही है। यदि सत्तासम्बन्धरूप सत्त्व, एकान्त अक्षणिक पदार्थों में मानेंगे तो शशविषाणादि में अतिव्याप्ति और असम्भवादि दोषों की मलिनता स्पर्शगी, तब सत्त्व के बदले असत्त्व ही आ पड़ेगा। सारांश, एकान्त अक्षणिक पदार्थ भी असत् हैं। आखिर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य त्रिपुटी को ही भाव का निर्दोष लक्षण मान लेना उचित है।

15 सिद्ध यह हुआ कि कारणों में कार्य एकान्ततः असद् नहीं होता। अतः मूल (२७ वीं) गाथा के उत्तरार्ध में जो दूसरा पक्ष कहा था कि 'वे (यानी रत्नों) तद्रूप (समुदायात्मक) नहीं है' इस एकान्तवाद में भी उसी गाथा के अन्तिम पद से जो मिथ्यात्व कहा गया है वह सिद्ध हो गया।

[ विविध अद्वैतवादियों अद्वैततत्त्व का निरसन ]

अन्यवादी :- कार्य और कारण ऐसा द्वैतभाव कल्पनाकलाकार की कृति है, वास्तव में तदुभय

20 से विनिर्मुक्त अद्वैत ही तात्त्विक है।

सिद्धान्तवादी :- यह मत भी मिथ्या है, क्योंकि इस मत में न कोई कारण है न कुछ कार्य, शून्यमात्र है जैसे गर्दभविषाण। अद्वैतमात्र तत्त्व की बात गगनकमलवार्त्तातुल्य है। कैसे यह देखिये — यदि अद्वैत का साधक कोई स्वतन्त्र प्रमाण विद्यमान होगा तो अद्वैत और प्रमाण के द्वैत की आपत्ति होगी, अतः अद्वैत निषेधपात्र है। यदि प्रमाण नहीं है, तो अद्वैत की सिद्धि नहीं हो सकती,

25 क्योंकि प्रमेय (अद्वैत) की सिद्धि प्रमाणमूलक ही होती है।

दूसरी बात :- 'न द्वैतम् अद्वैतम्' यहाँ प्रसज्यप्रतिषेध माना जाय या पर्युदास ? प्रसज्यपक्ष में निषेध मात्रनिषेधपरक ही होता है अतः यहाँ द्वैत का निषेध करने पर भी अद्वैत का साधन न होने से अद्वैत सिद्ध नहीं होगा। यदि ऐसा कहें कि — 'मुख्यतया यहाँ द्वैत का निषेध ही है किन्तु गौणतया अद्वैत का विधान भी है — इस तरह अङ्ग-अङ्गीभाव की कल्पना करेंगे।' तो पुनः एक

30 अङ्ग है दूसरा अङ्गी इस प्रकार द्वैत का प्रवेश निर्व्याघात होगा। यदि पर्युदास (दूसरा) निषेध मानेंगे तो पुनः द्वैत प्रवेश होगा, क्योंकि यहाँ प्रमाणान्तर सिद्ध (द्वैतरूप) वस्तु का किसी देश-काल में निषेध कर के ही अद्वैत की सिद्धि हो सकती है। यहाँ जिस द्वैत के निषेध से अद्वैत का विधान करते

पररूपव्यावृत्त-स्वरूपाऽव्यावृत्तात्मकत्वेन तस्य द्विरूपताप्रसक्तेः, अव्यतिरेके पुनर्द्वैतप्रसक्तिः। न चाऽद्वैतस्याऽविद्यमानाद् द्वैताद्व्यावृत्तासम्भवः, अविद्यमानस्यापि विद्यमानाद् व्यावृत्तिप्रसक्तेः, अन्यथा सद्रूपता-विशेषप्रसक्तिर्भवेत्।

प्रमाणादिचतुष्टयसद्भावे च न द्वैतवादाद् मुक्तिः तदभावे शून्यतावादाद् इति नाऽद्वैतकल्पना ज्यायसी। न च नित्यत्वाऽद्वैतकल्पना भावानामनेकत्वेऽपि युक्तिसङ्गता, सर्वदा सर्वभावानां नित्यत्वे ग्राह्य- 5 ग्राहकरूपताऽभावप्रसक्तेः, तद्भावाभ्युपगमे वाऽऽनेकान्तवादाश्रयणम् ग्राह्य-ग्राहकरूपताया विकारिताव्यतिरेकेणाऽयोगात् सा च कथञ्चिदेकस्यानेकरूपानुषङ्गादिति कथं नानेकान्तसिद्धिः ?

द्रव्याद्वैतवादे रूपादिभेदाभावप्रसङ्गश्च। न च चक्षुरादिसम्बन्धात् तदेव द्रव्यं रूपादिप्रतिपत्तिजनकम् सर्वात्मना तत्सम्बन्धस्य तथैव प्रतीतिप्रसक्तेः रूपान्तरस्य तद्व्यतिरिक्तस्य तत्राभावात्। तन्न द्रव्याद्वैतमपि।

प्रधानाद्वैतं त्वयुक्तमेव सत्त्वादिव्यतिरेकेण तस्याभावात्। न च सत्त्वादेस्तद्व्यतिरेकादद्वैतं प्रधानस्य, 10 सत्त्वाद्यव्यतिरेकाद् द्वैत प्रसक्तेः महदादिविकारस्य चाभ्युपगमे कथं द्वैतम् ? विकारस्य च विकारिणोऽत्यन्तमभेदे

हो उस का उस से भेद मानने पर द्वैत का प्रवेश होगा। कारण :- पररूप से व्यावृत्त और अपने स्वरूप से अव्यावृत्त ऐसे द्वैरूप्य का प्रवेश प्राप्त होगा। और अद्वैत के भेद के बदले अभेद मानने पर द्वैत सिद्ध हो गया। द्वैत यदि अविद्यमान मानेंगे तो द्वैत से अद्वैत में व्यावृत्ति का सम्भव ही नहीं होगा। यदि सम्भव मानेंगे तो विद्यमान की व्यावृत्ति अविद्यमान में भी माननी पड़ेगी। नहीं मानेंगे 15 तो अविद्यमान में भी विद्यमान की तरह सत्रूपता निर्विवाद प्रसक्त होगी। यदि अद्वैत को प्रमाणसिद्ध मानना है तो प्रमाण-प्रमेय-प्रमाता-प्रमिति इस चौकट को भी मानना पड़ेगा, तब तो द्वैतवाद ऐसा गले पड़ेगा, छूट नहीं पायेंगे। प्रमाणादि चौकट न मानने पर शून्यवाद गला पकड़ेगा — सारांश, अद्वैतवादकल्पना तनिक भी शोभाप्रद नहीं।

दूसरी ओर, भावों की अनेकता स्वीकारने पर भी एकमात्र नित्यता का अद्वैत भाव (यानी एकमात्र 20 अनित्यता) मानेंगे तो वह भी युक्तियुक्त नहीं। कारण :- हर हमेशा सभी भावों को नित्य = यानी अविकारी मानेंगे तो कोई ग्राह्य — कोई ग्राहक ऐसा भेद समाप्त हो जायेगा। यदि भेद मानेंगे तो एक ही भाव में कदाचित् ग्राहकत्व, कदाचित् ग्राह्यत्व स्वीकारने पर अनेकान्तवाद का शरण लेना पड़ेगा। कारण, कभी ग्राह्य हो कर बाद में ग्राहक इत्यादि भेद तो विकारी (यानी अनित्य) स्वरूप मानने पर ही संगत होगा अन्यथा नहीं। विकारिता तभी होगी जब एक ही पदार्थ में कथंचिद् अनेक (ग्राह्य-ग्राहकादि) धर्मों का 25 संसर्ग स्वीकार लिया जाय। अब बताइये अनेकान्तवाद सिद्धि क्यों नहीं होगी ?

### [ द्रव्याद्वैत-प्रधानाद्वैत-शब्दाद्वैत-ब्रह्माद्वैत सब अविश्वस्य ]

कुछ लोग द्रव्याद्वैत मानते हैं वह भी अयुक्त है क्योंकि एक स्वरूप एक ही द्रव्य मानने पर उस के प्रत्यक्षसिद्ध रूप-रसादि के भेद का उच्छेद हो जायेगा। यदि कहें कि — 'नेत्रादि के सम्बन्ध एक ही द्रव्य तत्तत् रूपादिबुद्धि का जनक होता है' — तो यह ठीक नहीं, नेत्रादि का द्रव्य के साथ यदि सर्व प्रकार 30 से तादात्म्य सम्बन्ध होगा तो पुनः एकरूप से प्रतीति होगी तो रूपादि के भेद का उच्छेद गले पड़ेगा, क्योंकि अद्वैतवाद में द्रव्यभिन्न कोई अन्य अन्य रूप है नहीं। अतः द्रव्याद्वैतवाद भी निषेधार्ह ही है।

‘न विकारी’ इति प्रतिपादितम् । भेदाभेदेऽनेकान्तसिद्धिः, व्यतिरेके द्वैतापत्तिरिति । प्रतिक्षिप्तश्च प्रधानाद्वैतवाद इति न पुनः प्रतिषिध्यते ।

शब्दाद्वैतं तु नामनिक्षेपावसरे प्रतिक्षिप्तमिति न तदभ्युपगमोऽपि श्रेयान् ।

ब्रह्माद्वैतवादस्यापि प्रागेव प्रतिषेधः कृतः, इति ‘तदेव वा’ (गाथा २७-तं चेव व) इति अयमपि

5 पक्षो मिथ्यात्वम् ।

ततः ‘कारणे परिणामिनि वा कार्यं परिणामो वा सदेव’ ‘तावेव तौ’ ‘असदेव वा तत् तत्र’ इति, न कारणमेव कार्यम् परिणामी वा परिणामः । न कार्यम् नापि कारणम् अपि तु ‘द्रव्यमात्रं तत्त्वमिति’ ‘तदेव वा’ इति नियमेन एकान्ताभ्युपगमे सर्व एवैते मिथ्यावादा उक्तन्यायेन नियमेन मिथ्यात्वम् इत्यभिधानात् । कथञ्चिदभ्युपगमे ‘सम्यग्वादा एवैते’ इत्युक्तं भवति । यत उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकत्वे वस्तुनः

10 स्थिते तद् वस्तु तत्तदपेक्षया कार्यं अकार्यं च, कारणं अकारणं च, कारणे कार्यं सच्च असच्च, कारणं

एकदेशीय सांख्यवादी पुरुष को न मान कर एकमात्र प्रधान तत्त्व का अद्वैत मानते हैं वह भी अयुक्त है, क्योंकि सत्त्व रजः तमस् के अलावा कोई स्वतन्त्र प्रधान तत्त्व है नहीं । यदि प्रधान से अभिन्नता के कारण सत्त्वादि प्रधानमय होने से प्रधान-अद्वैत बाधरहित है — तो सत्त्वादि तीन से अभिन्न होने से उलटा प्रधान में द्वैत प्रसक्त होगा । तदुपरांत ‘महत्’-‘अहंकारादि’ तत्त्वों का स्वीकार करते हैं तो अद्वैत रहा कैसे ? यदि महत् आदि विकार और विकारी प्रधान का अत्यन्त अभेद मानेंगे तो विकार जैसा कुछ रहा नहीं, मतलब अविकारी प्रधान ही शेष रहेगा, तो सत्त्व या महत् आदि का उच्छेद होगा । यदि विकार-विकारी का कथंचित् भेदाभेद मानेंगे तो अद्वैत के बदले अनेकान्त की सिद्धि हो जायेगी । यदि उन का भेद ही मानेंगे तब तो स्पष्ट ही द्वैत का भूत धुनेगा । पहले भी प्रधानाद्वैतवाद का निषेध किया जा चुका है अतः फिर से बार बार निषेध कितना करे ?

20 शब्दाद्वैत का प्रतिषेध नामनिक्षेपविचार के प्रस्ताव में किया गया है अतः उस का स्वीकार भी श्रेयस्कर नहीं । ब्रह्माद्वैतवाद का भी पहले ही निषेध हो चुका है । (सारांश :-) अतः मूल गाथा उत्तरार्ध में ‘तं चेव व’ यानी ‘तदेव वा’ इस वाक्यावयव से जो ‘वही एक है’ ऐसा एकान्त अद्वैत पक्ष का निर्देश किया गया है उस में भी मिथ्यात्व सिद्ध होता है ।

[ कारण-कार्य-परिणाम-सत्-असत् आदि चर्चा का निगमन ]

25 मूल गाथा २७ में उत्तरार्ध में समूहसिद्ध अथवा परिणामकृत अर्थ के लिये जो विविध विकल्पों में मिथ्यात्व का निरूपण किया है उस की व्याख्या करते हुए अब व्याख्याकार कहते हैं — <sup>A</sup>कारण में कार्य सत् ही है, <sup>B</sup>परिणामी में परिणाम सत् ही है, <sup>C</sup>वे (कारण या कार्य अथवा सत् या असत्) वे ही है, <sup>D</sup>अथवा कारण या परिणामी में कार्य या परिणाम असत् ही है, <sup>E</sup>कारण कार्यात्मक नहीं है, <sup>F</sup>परिणामी परिणामात्मक नहीं है, <sup>G</sup>न तो कोई कार्य है न कारण — तत्त्व तो द्रव्याद्वैत है यानी

30 (जो है) वही है — इन विविध प्रकारों से नियमपूर्वक एकान्त को मानने पर ये सभी प्रवाद मिथ्यावाद है । पूर्वोक्तयुक्ति अनुसार अवश्यमेव मिथ्यात्व ऐसा कथन करने से गर्भितरूप से यह कहना है कि कथंचिद् रूप से उन प्रवादों को मानने पर वे सब सम्यग्वाद हैं, क्योंकि वस्तु जब निश्चितरूप से

कार्यकाले विनाशवत् अविनाशवच्च, तथैव प्रतीतेरन्यथा चाऽप्रतीतेः॥२७॥

[ सिद्धान्तविकृतं नयसत्याऽसत्यताविभागविमर्शनम् ]

अत एकान्तरूपस्य वस्तुनोऽभावात् सर्वेऽपि नयाः स्वविषयपरिच्छेदसमर्था अपि इतरनयविषयव्यवच्छेदेन स्वविषये वर्तमाना मिथ्यात्वं प्रतिपद्यन्त इत्युपसंहरन्नाह-

(मूलम्-) गिययवयणिज्जसच्चा सव्वनया परवियालणे मोहा।

5

ते उण ण दिट्ठसमओ विभयइ सच्चे व अलिए वा॥२८॥

निजकवचनीये = स्वांशे परिच्छेद्ये सत्याः = सम्यग्ज्ञानरूपाः सर्व एव नया संग्रहादयः परविचालने = परविषयोत्खनने मोहाः = मुह्यन्तीति मोहा मिथ्याप्रत्ययाः, परविषयस्यापि सत्यत्वेनोन्मूलयितुमशक्यत्वात्, तदभावे स्वविषयस्याप्यव्यवस्थितेः ततश्च परविषयस्याभावे स्वविषयस्याप्यसत्त्वात् तत्प्रत्ययस्य मिथ्यात्वमेव तद्व्यतिरिक्तग्राहकप्रमाणस्य चाभावात्।

10

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। तद् तद् वस्तु तत्तद् अपेक्षा से कार्य भी है अकार्य भी, कारण भी है अकारण भी, कारण में कार्य सत् है असत् भी, कार्यकाल में कारण विनाशी है अविनाशी भी, क्योंकि वैसा ही प्रमाण से ज्ञात होता है, अन्य (एकान्त) प्रकार से प्रतीत नहीं होता॥२७॥

[ सिद्धान्तज्ञाता की नयसत्याऽसत्यता के प्रति विवेकदृष्टि ]

अवतरणिका :- उक्त चर्चा से यह सूचित होता है कि एकान्तरूप वस्तु न होने से सभी नय 15 अपने अपने विषय का अवबोध करने में सक्षम होने पर भी यदि वे अन्यनय के विषय का निषेध कर के अपने विषय में आविष्ट रहते हैं तो आखिर मिथ्यात्व में गिर पडते हैं - उपसंहार में यही कहते हैं -

गाथार्थ :- अपने अपने वक्तव्य के प्रति सत्य ऐसे सभी नय अन्य का उच्चाटन करे तब मिथ्या बन जाते हैं। (अत एव) शास्त्रव्युत्पन्न (पुरुष) 'यह सच्चा - यह झूठा' इस प्रकार विभाजन नहीं 20 करता॥२८॥

व्याख्यार्थ :- निजकवचनीय = अपने ग्राह्य अंश (= विषय) में संग्रहादि सभी नय सत्य = सम्यग्ज्ञानमय होते हैं किन्तु परविचालन = अन्य नय के विषयों का खण्डन करने का साहस करते हैं तब मोहा = मूढताग्रस्त हो जाते हैं, यानी मिथ्याज्ञान बन जाते हैं। कारण :- अन्य का विषय भी उस की प्रामाणिक अपेक्षा से सत्य होने के कारण उस का उत्खनन करना शक्य नहीं होता। 25 अरे ! अपना विषय भी (दीर्घत्वादि) अन्य नय के (ह्रस्वत्वादि) विषय से निरपेक्ष बन जाने पर सुनिश्चित नहीं हो सकेगा। यदि अन्य नय के विषय का खंडन कर के उस का अभाव सिद्ध करेंगे तो अपना विषय भी असिद्ध हो जाने से तद्ग्राहक अवबोध मिथ्या ही ठहरेगा। (उच्चत्व-ह्रस्वत्वादि के बिना नीचत्व-दीर्घत्वादि सिद्ध कैसे होगा ? खंधे पर लगाई हुई कावडिका में जो दोनो छोर पर दूध और दही के मटके रखे हैं, यदि उस में एक घट दूसरे घट को तोड़ देगा तो वह खुद भी 30 सलामत कैसे रहेगा, सब भार एक ओर आ जाने से वह भी नीचे गिर कर फुट जायेगा।) क्योंकि अन्यनय के विषय से निरपेक्ष स्वविषय का बोधकारी कोई प्रमाण ही नहीं हैं।

तस्मात् तानेव नयान् पुनःशब्दस्यावधारणार्थत्वात् न इति प्रतिषेधो विभजनक्रियायाः दृष्टः समयः सिद्धान्तवाच्यमनेकान्तात्मकं वस्तुतत्त्वं येन पुंसा स तथा, स न विभजते सत्येतरतया स्वेतरविषयमवधारयमाणोऽपि तथा तान् न विभजते अपि त्वितरनयविषयसव्यपेक्षमेव स्वनयाभिप्रेतं विषयं सत्यमेवावधारयतीति यावत्। 'ग्राह्यसत्याऽसत्याभ्यां ग्राहकसत्यासत्ये' इत्येवमभिधानम् तच्च दृष्टाऽनेकान्ततत्त्वस्य

5 विभजनम् 'स्यादस्त्येव द्रव्यार्थतः' इत्येवंरूपम् ॥२८॥

अतो नय-प्रमाणात्मकैकरूपताव्यवस्थितमात्मस्वरूपम् अनुगतव्यावृत्तात्मकम् उत्सर्गापवादरूपग्राह्य-ग्राहकात्मकत्वाद् व्यवतिष्ठते इत्यर्थप्रदर्शनायाह-

(मूलम्-) दव्वट्टियवत्तव्वं सव्वं सव्वेण णिच्चमवियण्णं।

आरब्धो य विभागो पज्जववत्तव्वमगो य ॥२९॥

10 यत्किञ्चिद् द्रव्यार्थिकस्य संग्रहादेः सदादिरूपेण व्यवस्थितं वस्तु वक्तव्यं = परिच्छेद्यम् तत् सर्वं सर्वेण प्रकारेण नित्यं = सर्वकालम् अविकल्पं = निर्भेदम् सर्वस्य सदसद्विशेषात्मकत्वात् तच्च भेदेन

[ अन्यनयविषयसापेक्षभाव से स्वनयविषय का ग्रहण ]

यही हेतु है कि सिद्धान्तगम्य अनेकान्तात्मक वस्तु तत्त्व का दृष्टा पुरुष, उन्हीं नयों को यद्यपि अपने अपने विषय के निश्चायकस्वरूप से जानता हुआ भी, (उन्ही नयों को) 'यह सच्चा यह झूठा'

15 — इस तरह विभाजित करने का साहस नहीं करता। किन्तु अन्यनय के विषय से सापेक्ष रह कर ही अपने नय मान्य विषय की सचाई का निश्चय करता है। तात्पर्य है कि अर्थग्राही नय की सत्यता/असत्यता स्वतः नहीं होती किन्तु अपने ग्राह्य विषय की सत्यता/असत्यता पर अवलम्बित होती है (एक नय का ग्राह्य विषय यदि अन्य नयग्राह्य विषय को सापेक्ष होता है तो वह सत्य है अन्यथा असत्य है — यदि ऐसे सत्य विषय को नय ग्रहण करता है तो वह सत्य है अन्यथा वह भी असत्य

20 है।) यह है तात्पर्य निवेदन। उस का मतलब यह होगा कि अनेकान्ततत्त्वदर्शी व्यक्ति सत्य का विभाजन इस तरह करेगा कि 'द्रव्यार्थ की अपेक्षा वस्तु कथंचित् सत् ही है' — यहाँ गौर करो कि अपेक्षा को आगे रख कर कथंचिद् रूप से अन्य नय के विषय की सापेक्षता को बरकरार रख कर ही 'सत्य' नय का प्रतिपादन किया गया है ॥२८॥

[ द्रव्यार्थिक/पर्यायार्थिक नय से एक वस्तु का स्वरूप ]

25 अव० :- अन्य तत्त्वों की तरह आत्मा के लिये भी ऐसा ही समझना कि वह नय-प्रमाणोभयात्मक होते हुए भी निश्चित एकरूप है, अनुगत (= सामान्य) और व्यावृत्त (= विशेष) उभयात्मक एक है, कदाचित् उत्सर्गरूप से कदाचित् अपवादरूप से ग्राह्य है एवं तथैव ग्राहक भी है — इस तथ्य का निरूपण करते हैं —

गाथार्थ :- द्रव्यार्थिकनयवाच्य सर्व (वस्तु) सर्व प्रकार से हरहमेश निर्विकल्प होती है। तथा वही

30 (वस्तु) विभाग आरब्ध हो कर पर्यायनयवाच्य पंथ बन जाता है ॥२९॥

व्याख्यार्थ :- संग्रहादि द्रव्यार्थिक नय मत से जो कुछ 'सत्' आदि रूप बोधनीय वस्तु है वह

सम्पृक्तमिति दर्शयितुमाह- आरब्धश्च विभागः स एवाऽविभागः सत्तारूपो यो द्रव्यादिनाऽऽकारेण, प्रस्तुतश्च भेदः 'च'शब्दस्य प्रक्रान्ताऽविभागानुर्कर्षणार्थत्वात् पर्यायवक्तव्यमार्गश्च पर्यायास्तिकस्य यद् वक्तव्यं = विशेषः तस्य मार्गः = पन्थाः जातः - पर्यायार्थिकपरिच्छेदस्वभावो विशेषः सम्पन्न इति यावत् ॥२९॥

एवं भेदाभेदरूपं वस्तुपदश्रयं भेदस्य पर्यायार्थिकविषयस्य द्वैविध्यमाह-

5

(मूलम्-) सो उण समासओ च्विय वंजणणिअओ य अत्थणिअओ य।

अत्थगओ य अभिण्णो भइयव्वो वंजणवियप्पो ॥३०॥

स पुनर्विभागो संक्षेपतो व्यञ्जननियतः = शब्दनयनिबन्धनः अर्थनियतश्च = अर्थनयनिबन्धनश्च । तत्र अर्थगतस्तु विभागः अभिन्नः संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रार्थप्रधाननयविषयोऽर्थपर्यायोऽभिन्न असदद्रव्याती-

सब सभी प्रकार से हरहमेश अभिन्न (= अविकल्प) होती है, क्योंकि अविशेषतः वह 'सत्' रूप होती 10 है। वही वस्तु अपेक्षाभेद से भेद का भी स्पर्श करती है यह दिखाने के लिये ग्रन्थकार मूल गाथा उत्तरार्ध में कहते हैं - 'आरब्धश्च विभागः'। भावार्थ यह है कि जो द्रव्यादि आकार से भेदरूप प्रस्तुत होता है वही निर्विभाग सत्तारूप होता है। यहाँ गाथा में 'च' अव्ययशब्द प्रकरणप्राप्त अविभाग की अनुवृत्ति करने के लिये प्रयुक्त है अतः जो द्रव्यादिरूप से भेदात्मक है वही अविभाग सत्तारूप है 15 ऐसा अन्वय समझना। वह भेद पर्यायास्तिकनय का वाच्य जो विशेष है उस का मार्ग बन जाता है। तात्पर्य, वह सत्तारूप निर्विभाग वस्तु भेदसम्बन्ध होने पर पर्यायार्थिकनयगम्य विशेषात्मक स्वभावरूप हो जाता है ॥२९॥

[ नय भेद से अर्थनियत-व्यञ्जननियत विभाग ]

अवतरणिका :- वस्तु भेदाभेद उभयरूप प्रदर्शित कर के अब भेद, जो कि पर्यायार्थिक का विषय है उस के दो प्रकार कहते हैं - 20

गाथार्थ :- वह तो (यानी विभाग) संक्षेपतः शब्दनियत और अर्थनियत होता है। (उन में से) अर्थसम्बन्धी (विभाग) अभिन्न होता है और शब्दविकल्प भजनापात्र है ॥३०॥

व्याख्यार्थ :- पूर्व गाथा में जो विभाग-कथन किया है - वह संक्षेप से द्विविध १, व्यञ्जन नियत यानी अर्थनयमूलक। २, दूसरा जो अर्थनियत विभाग है वह अभिन्न होता है। क्या मतलब ? संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र ये तीन नय अर्थाधीन होते हैं, शब्द चाहे कोई भी हो, अथवा शब्द की यहाँ 25 अधीनता नहीं होती। अतः संग्रहादि तीन को अर्थनय कहते हैं, अर्थ प्रधान अभिधेय या विषय होने से। अर्थनयविषयभूत अर्थपर्याय 'अभिन्न' होता है। क्या मतलब ? उक्त तीन नयों के विषय असद्रव्यावृत्त, अद्रव्यव्यावृत्त एवं अतीतानागतव्यावृत्त हैं, इस प्रकार से इस अर्थपर्यायरूप विषय में अभिन्नता है। कैसे ? तीनों का विषय कथंचित् एकरूप ही है। खास कर के जो ऋजुसूत्र का क्षणिक अर्थपर्याय है वह पूर्व दो नयों को मान्य ही है। द्रव्य भी क्षणिक या अक्षणिक, तीनों नयों को मान्य है। 30 तीनों नयों को 'सत्' पदार्थ यानी अर्थ पर्याय मान्य हैं।

तानागतव्यवच्छिन्नाभिन्नार्थपर्यायरूपत्वात्। तद्विषया नया अपि 'अर्थगतो विभागोऽभिन्नः' इत्युच्यते। भाज्यो व्यञ्जनविकल्प इति। विकल्पितः शब्दपर्यायो भिन्न अभिन्नश्चानेकाभिधान एकः एकाभिधानश्चैक इति कृत्वा समानलिङ्ग-संख्या-कालादिरनेकशब्दो घटः कुटः कुम्भः इत्यादिक एकार्थ इति शब्दनयः। समभिरूढस्तु भिन्नाभिधेयो घट-कुटशब्दौ, भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् रूप-रसादिशब्दवत् इत्येकार्थ एकशब्द इति 5 मन्यते। एवंभूतस्तु चेष्टासमय एव घटो घटशब्दवाच्यः अन्यथाऽतिप्रसङ्गात्। तदेवमभिन्नार्थो वाच्यो-ऽस्येत्यभिन्नार्थो घटशब्द इति मन्यते।।३०।।

### [ भेद-अर्थपर्याय-अभिन्न आदि पद-परामर्श ]

**प्रश्न :-** यदि तीनों नयों को द्रव्यात्मक अर्थ मान्य हैं तो उसे 'पर्याय' (अर्थपर्याय) कैसे कह सकते हैं ?

10 **उत्तर :-** अवतरणिका में पर्यायार्थिक विषयभूत भेद (विभाग) का द्वैविध्य ३० वीं गाथा में कहने का निवेदन किया है। मतलब कि मुख्य रूप से इस गाथा में पर्याय के ही भेद दिखाने का है। उन में पहला अर्थ पर्याय है, दूसरा शब्दनयमान्य व्यञ्जन पर्याय है। शब्दनय मान्य पर्याय का मतलब होगा कि शाब्दबोध में जो शब्दानुसारी विषय ज्ञात होंगे वे व्यञ्जनपर्याय हैं और शाब्दभिन्न मति आदि बोध में जो विषय ज्ञात होंगे वे अर्थपर्याय कहें जायेंगे। (ये दोनों भेद पर्यायार्थिक के हैं) 15 इस लिये यहाँ पर्याय शब्द का प्रयोग उचित है। तथा 'पर्याय' शब्द से यहाँ क्षणिक और अक्षणिक दोनों प्रकार के पर्याय विवक्षित हैं। ऋजुसूत्र से ले कर शब्दनय तक सभी को क्षणिक पर्याय मान्य हैं संग्रह और व्यवहार को क्षणिक-अक्षणिक दोनों प्रकार के पर्याय मान्य हैं। अतः यहाँ अव० में जो पर्यायार्थिक शब्द है वहाँ पर्याय शब्द से पारिभाषिक (द्रव्यभिन्न) पर्याय न ले कर सिर्फ द्रव्य और पारिभाषिक पर्याय साधारण वस्तु ही ग्रहण करना है।

20 **प्रश्न :-** यद्यपि यहाँ अवतरणिका में पर्यायार्थिक विषयभूत भेद का द्वैविध्य कहने की बात है किन्तु अर्थगत या अर्थपर्याय को तीन नय (संग्रहादि के) मत में अभिन्न कहा गया है तो यह कैसे ?

**उत्तर :-** अवतरणिका में जो भेद की बात है वह अर्थपर्याय और व्यञ्जनपर्याय के भेद की बात है, अर्थपर्यायरूप भेद के प्रस्ताव में जो अभेद (= अविभाग) की बात है वह तो तीनों में परस्पर गौण-मुख्यरूप से मान्य अभिन्नविषयता की बात है। अनेकान्तवाद की यह विशेषता है। अस्तु। 25 सत् व्यावृत्त आदि विषयक तीन नय उक्तप्रकार से अभिन्न अर्थपर्यायग्राही होने से उन को (बहुसंख्यक नयों को) उद्देश्य कर के विधेयरूप में एक वचन से 'अर्थगतो विभागो अभिन्नः' इस रूप से 'उच्यते' यानी कहा गया है। (जैसे वेदाः प्रमाणम् में कहा जाता है।)

### [ व्यञ्जनपर्याय शब्द-समभिरूढ-एवंभूत नयमान्यता ]

व्यञ्जन विकल्प भजनापात्र है। पहले मूल गाथा में 'विभाग' के लिये 'व्यञ्जन नियत' शब्दप्रयोग 30 है, व्याख्याकार ने 'शब्दनयनिबन्धन' ऐसा व्याख्यान किया है और अब मूलगाथा के उत्तरार्थ में 'व्यञ्जन विकल्प' शब्दप्रयोग है। तात्पर्य, शब्दनयमूलक व्यञ्जनपर्यायात्मक भेद की ही बात है। उस व्यञ्जन-पर्यायात्मक भेद में भजना कैसे हैं ? उस की व्याख्या में स्पष्ट करते हैं - विकल्पित (यानी अर्थनयमान्य

यत् तदन्यतो विभक्तेन स्वरूपेणैकमनेकं च वस्तुक्तम् तदनन्तप्रमाणम् इत्याख्यातुमाह—

(मूलम्-) एगदवियम्मि जे अत्थपज्जया वयणपज्जया वा वि।

तीयाणागयभूया तावइयं तं हवइ दव्वं।।३१।।

एकस्मिन् जीवादिद्रव्ये अर्थपर्यायाः = अर्थग्राहकाः संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्राख्याः तद्ग्राह्या वाऽर्थभेदाः  
वचनपर्यायाः शब्द-समभिरूढ-एवंभूताः तत्परिच्छेद्या वस्त्वंशा वा ते च अतीतानागतवर्तमानरूपतया सर्वदा 5  
विवर्तन्ते विवृताः विवर्तिष्यन्ते इति तेषामानन्त्याद् वस्त्वपि तावत्प्रमाणं भवति। तथाहि— अनन्तकालेन  
सर्वेण वस्तुना सर्वावस्थानां परस्परानुगमेनाऽऽसादितत्वात् अवस्थातुश्चावस्थानां कथंचिदनन्यत्वाद् घटादि  
वस्तु पट-पुरुषादिरूपेणापि कथंचिद् विवृत्तमिति 'सर्वं सर्वात्मकं कथंचिद्' इति स्थितम्। दृश्यते चैकं

अर्थपर्याय से भिन्न) शब्दपर्याय भिन्न भी है अभिन्न भी है। क्या मतलब ? अनेकनाम अर्थ एक (जैसे  
अमर कोश, अभिधान चिन्तामणि आदि) तथा एक नाम एक अर्थ (ऐसा कोई कोश ध्यान में नहीं 10  
- व्युत्पत्तिकोश हो सकता है, एक नाम अनेक अर्थ ऐसा 'अनेकार्थकोश' मिलता है।)

पहला जो पक्ष है उस में उदा०-घट कुट कुम्भ ऐसे नाम अनेक है किन्तु एकार्थक है — यहाँ  
सभी का लिङ्ग एक है, संख्या (एकवचनगम्य) भी समान है और तीनों शब्दों में कालकृत भेद नहीं  
है। अतः शब्दनयमान्य है। दूसरा पक्ष :- समभिरूढ नय कहता है — घट-कुट (और कुम्भ) शब्द  
भिन्नार्थक हैं क्योंकि दोनों का व्युत्पत्ति-अर्थ यानी व्युत्पत्तिनिमित्त (घटत्व-कुटत्व) भिन्न हैं जैसे रूप और 15  
रस आदि शब्द। यहाँ एक नाम एक अर्थ माना जाता है। एवंभूत नय तो आगे बढ़ कर कहता  
है — घट जब निश्चेष्ट = निष्क्रिय है स्त्रीमस्तकारूढ हो कर उछलता नहीं तब वह 'घट' शब्द का  
अर्थ नहीं बन सकता। फिर भी माना जाय तो चेष्टारहित कलेवर आदि सभी के लिये 'घट' शब्दप्रयोग  
की आपत्ति होगी। मतलब, इस नय से 'घट' शब्द 'अभिन्नार्थ' है, अभिन्न (= एक मात्र प्रवृत्तिनिमित्तान्वित  
ही) है अर्थ जिस का — ऐसा विग्रहार्थ समझ लेना।।३०।। 20

[ अतीतादिपर्यायों से एकद्रव्य की अनन्तता ]

अवतरणिका :- वह जो अन्यप्रयुक्त विभागगर्भित स्वरूप से वस्तु में एक-अनेक भाव का कथन  
किया, उस का प्रमाण कितना ? अनन्त। इस तथ्य का निरूपण करते हैं ३२ वीं गाथा में—

गाथार्थ :- एक द्रव्य में जो अर्थपर्याय और वचनपर्याय अतीत-अनागत-वर्तमानभूत होते हैं इतने  
प्रमाणवाला एक द्रव्य होता है।।३१।। 25

व्याख्यार्थ :- जीवादि एक द्रव्य में रहनेवाले जो अर्थपर्याय, मतलब अर्थग्राही संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रनय  
अथवा इन नयों के जो विषयभूत अर्थप्रकार, एवं शब्द-समभिरूढ-एवंभूत नय अथवा उन के विषयभूत  
वस्तु-अंश, ये सब कभी भूतकालीन हो जाते हैं, कभी भाविकालीन रहते हैं तो कभी वर्तमानकालीन,  
ऐसे तीन काल से ग्रस्त रहते हुए वे हरहमेश चलते रहते हैं, चलते रहे हैं और चलते रहेंगे —  
इस प्रकार कालसम्बन्धितया वे नय अथवा वस्तुअंश अनन्त होने से कोई एक वस्तु भी अनन्तविध 30  
होती है क्योंकि उन की कालकृत विशेषताएँ भी अनन्त होती हैं। कैसे यह देखिये — अनन्त भूतकाल



पुद्गलद्रव्यं अतीतानागतवर्तमानद्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेषपरिणामात्मकं युगपत् क्रमेणापि तत् तथा-भूतमेव। एकान्तासत् उत्पादायोगात् सतश्च निरन्वयविनाशासम्भवादिति प्रतिपादितत्वात्॥३१॥

एवं तावद् बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्विविधस्यापि वस्तुनोऽनेकान्तात्मकत्वं प्रतिपाद्य तत्प्रतिपादनवाक्यनयानामपि तथाविधमेव स्वरूपम् नान्यादृग्भूतमस्तीति प्रतिपादयन्नाह-

5 (मूलम्-) पुरिसम्मि पुरिससदो जम्माई-मरणकालपज्जन्तो।

तस्स उ बालाईया पज्जवजोया बहुवियप्पा॥३२॥

अथवा अर्थ-व्यञ्जनपर्यायैः शक्ति-व्यक्तिरूपैरनन्तैरनुगतोऽर्थः सविकल्पः निर्विकल्पश्च प्रत्यक्षतोऽवगतः, इदानीं पुरुषदृष्टान्तद्वारेण व्यञ्जनपर्यायं तदविकल्पकत्वनिबन्धनम् अर्थपर्यायं च तत्सविकल्प-कत्वनिमित्तमाह- पुरिसम्मि० इत्यादिना सूत्रेण-

10 में सर्व वस्तु परस्पर अनुवृत्ति के द्वारा सभी अवस्थाओं को प्राप्त कर चुकी है। यद्यपि अवस्थाता (पदार्थ) एकरूप होने पर भी अवस्थावृन्द से कथंचिद् उस का अभेद होने से अवस्था भी अनन्तविध होती ही है। अब इस से यह फलित होता है कि वर्तमानकालीन घटादि वस्तु कभी भूतकाल में वस्त्र या देहपुरुषरूप से कथंचिद् रह चुकी है - अतः सर्व पदार्थ (परिवर्तन शील होने से) कथंचित् सर्वात्मक हैं - यह सिद्ध होता है।

15 [ एकान्त असत् का उत्पाद नहीं, एकान्त सत् का नाश नहीं ]

दिखता है कि एक ही बीजादि पुद्गलद्रव्य विविध परिणाम आश्लिष्ट होते हैं जैसे अतीतपरिणाम, अनागत, वर्तमानपरिणाम, द्रव्यात्मक, गुणात्मक, क्रियात्मक, सामान्यरूप या विशेषपरिणामात्मक। ये परिणाम भी कभी यथासंभव एकसाथ बनते हैं तो कभी क्रमशः भी, वे अनन्तविध हो इस में क्या आश्चर्य ?! इस का मूल यह है कि एकान्त असत् वस्तु का उत्पाद कभी नहीं होता, जो दुग्धादिरूप से पुद्गल था वही दधि आदि रूप से उत्पन्न होते रहते हैं। तथा सत् पदार्थ का कभी भी निरन्वय (अत्यन्त) विनाश नहीं होता - पहले ऐसा प्रतिपादन कर दिया है, इस वजह से सर्व वस्तु सर्वात्मक हो सकती है॥३१॥

[ ३२ वे श्लोक की भिन्न भिन्न अवतरणिका ]

(१) अवतरणिका :- अनन्तर गाथा के द्वारा बाह्य (यानी ग्राह्य वस्तु) और अभ्यन्तर (यानी ग्राहक आत्मा), अथवा आत्मा और पुद्गल ऐसे दोनों प्रकार की वस्तु अनेकान्तात्मक ही होती है ऐसा निवेदित कर दिया, अब कहते हैं कि वस्तु के प्रतिपादक वाक्यनयों का स्वरूप भी अनेकान्तगर्भित होता है न कि अन्यरूप या एकान्तगर्भित-

गाथार्थ :- पुरुष के लिये 'पुरुष' शब्द जन्म आदि से मरणपर्यन्त होता है, बालादि बहु अवस्थाएँ उसी के पर्याययोग हैं॥३२॥

30 (२) अवतरणिका :- (दूसरे प्रकार से अवतरणिका :-) अर्थपर्याय शक्तिरूप है, व्यञ्जनपर्याय व्यक्तिरूप है, ऐसे अनन्तपर्यायों से व्याप्त अर्थ चाहे सविकल्प (सामान्य) हो या निर्विकल्प (विशेषरूप), प्रत्यक्षप्रसिद्ध है। इतना कह देने के बाद पुरुष के दृष्टान्त से अब यह कहना है कि अर्थगत निर्विकल्पकत्व (=

अतीतानागतवर्तमानानन्तार्थ-व्यञ्जनपर्यायात्मके पुरुषवस्तुनि 'पुरुष' इति शब्दो यस्यासौ पुरुषशब्दः तद्वाच्योऽर्थो जन्मादिर्मरणपर्यन्तोऽभिन्न इत्यर्थः 'पुरुषः' इत्यभिन्नाभिधान-प्रत्यय-व्यवहारप्रवृत्तेः तस्यैव बालादयः पर्याययोगाः परिणतिसम्बन्धा बहुविकल्पा अनेकभेदाः प्रतिक्षणसूक्ष्मपरिणामान्तर्भूता भवन्ति तत्रैव तथाव्यतिरेकज्ञानोत्पत्तेः। एवं च 'स्यादेकः' इत्यविकल्पः 'स्यादनेकः' इति सविकल्पसिद्धः। अन्यथाभ्युपगमे तदभाव एवेति विपक्षे 'अत्थि त्ति णिव्वियप्पं' (पृ० ३३३) इत्यनन्तरगाथया बाधां दर्शयिष्यति। 5

द्वितीयपातनिकाऽऽयातगाथार्थस्तु- 'पुरुष'वस्तुनि पुरुषध्वनिर्व्यञ्जनपर्यायः, शेषो बालादिधर्मकलापोऽर्थपर्याय इति गाथासमुदायार्थः।।

[ वाच्य-वाचकसम्बन्धमीमांसायां वैयाकरणाभिप्रायः ]

ननु कोऽयं 'पुरुष'शब्दः कथं वा शब्दोऽर्थस्य पर्यायः, ततोऽत्यन्तभिन्नत्वात् घटस्येव पटः ?

सामान्यरूपता) का मूल व्यञ्जनपर्याय है और सविकल्पकत्व (विशेषरूपता) का आधार अर्थपर्याय है। 10

गाथार्थ :- पुरुष के लिये जन्म से लेकर मरणकालपर्यन्त पुरुषशब्द चलता है। उस के बालादि पर्यायवृन्द बहुविकल्पशाली हैं।।३२।।

[ पुरुष में व्यञ्जनपर्याय-अर्थपर्याय की स्पष्टता ]

व्याख्यार्थ :- पुरिसम्मि... इत्यादि सूत्र से उपरोक्त बात कहते हैं - मूल गाथा में जो 'पुरुषशब्द' बहुव्रीहि समास पद है - 'पुरुष' है (वाचक) शब्द जिस का = अर्थ का, वह अर्थ 'पुरुषशब्द' 15 पद से वाच्य समझना। तात्पर्य, पुरुषवाच्य अर्थ पुरुष के विषय में कोई एक-दो दिन के लिये ही नहीं किन्तु जन्म से ले कर मृत्यु पर्यन्त (मृत्यु है पर्यन्त = एक छोर जिस का इस विग्रह से मृत्यु के बाद भी कुछ काल तक प्रजा में) प्रवृत्त रहता है। किसी भी अवस्था में उस के लिये 'पुरुष' ऐसा एकविध नाम, 'पुरुष' ऐसी एकविध प्रतीति और 'यह पुरुष' ऐसा लौकिक व्यवहार होते रहते हैं। अतीत-अनागत-वर्तमान के अनन्त अर्थ-व्यञ्जनपर्यायों से अभिन्न पुरुषात्मक वस्तु के लिये पुरुष- 20 शब्दप्रयोग होता है, उसी में बालादि पर्याययोग यानी परिणाम नियोजना (अर्थपर्याय) बहुविकल्पशाली होती है। बहु विकल्प यानी प्रतिपल अनेक प्रकारवाले सूक्ष्म परिणामों का, उस में अन्तर्भाव होता है। कारण :- उसी पुरुष में भिन्न भिन्न बालादि अनेक पर्यायों की उपलब्धि होती है। मतलब, पुरुषादि वस्तु कथंचिद् एक है (यह सामान्यावगाहि) अविकल्प प्रकार हुआ। तथा परिणामों के भेद से 'यह अनेक हैं' इस तरह सविकल्प (विशेषावगाहि) प्रकार हुआ। यदि एकान्ततः 'एक' या 'अनेक' ही माना 25 जाय तो वैसा कोई असंकीर्ण पदार्थ अस्तित्व में नहीं है, फिर भी वैसा मानने का आग्रह करेंगे तो उस में 'अत्थि'त्ति णिव्वियप्पं'... इत्यादि आगामी ३३ वीं गाथा (पृ० ३३३) से बाधप्रदर्शन किया जायेगा।

जो दूसरी अवतरणिका है उस के मुताबिक गाथार्थ इस प्रकार होगा - 'पुरुष' वस्तु के लिये जो 'पुरुष' ऐसा ध्वनि यानी शब्दप्रयोग है वह व्यञ्जन पर्याय है और शेष बाल्यादि धर्मवृन्द है वह अर्थपर्याय है - ऐसा समुदित गाथार्थ समझना।।३२।। 30

[ शब्दस्वरूप मीमांसा- सम्बन्धसमीक्षा-स्फोटचर्चा ]

व्याख्याकार यहाँ शब्दस्वरूप एवं उस के अर्थवाचकत्व की विस्तृत मीमांसा का प्रारम्भ करते

▼अत्र वैयाकरणाः प्राहुः - 'यस्माद् उच्चरितात् ककुदादिमदर्थप्रतिपत्तिः स शब्दः' [ ]। ननु अत्र किं गकार-औकार-विसर्जनीयाः ककुदादिमदर्थप्रतिपादकत्वेन शब्दव्यपदेशं लभन्ते ? आहोस्वित्त्-व्यतिरिक्तः पदस्फोटादिः ?

तत्र न तावद् वर्णा अर्थप्रत्यायकाः यतस्ते किं समुदिता अर्थप्रतिपादका उत व्यस्ताः ? यदि व्यस्तास्तदैकेनैव वर्णेन गवाद्यर्थप्रतिपत्तिरुत्पादितेति द्वितीयादिवर्णोच्चारणमनर्थकं भवेत्। अथ समुदिता अर्थप्रत्यायकाः, तदपि न सङ्गतम् क्रमोत्पन्नानामनन्तरविनष्टत्वेन समुदायाऽसम्भवात्। न च युगपदुत्पन्नानां समुदायप्रकल्पना, एकपुरुषापेक्षया युगपदुत्पत्त्यसम्भवात्, प्रतिनियतस्थान-करण-प्रयत्नप्रभवत्वात् तेषाम्। न च भिन्नपुरुषप्रयुक्तगकार-औकार-विसर्जनीयानां समुदायेऽप्यर्थप्रतिपादकत्वं दृष्टम् प्रतिनियतक्रमवर्ण-प्रतिपत्त्युत्तरकालभावित्वेन शाब्द्याः प्रतिपत्तेः संवेदनात्।

10 हैं - पहले कोई विद्वान प्रश्न उठाते हैं कि 'पुरुष' शब्द का स्वरूप क्या है ? दूसरा प्रश्न यह है कि जब शब्द और अर्थ अत्यन्त भिन्न है जैसे घट और वस्त्र, तो शब्द (व्यञ्जनपर्याय) अर्थ का पर्याय कैसे हो गया ? (याद किजिए - व्याख्याकारने अभी अभी 'पुरुष' शब्द को पुरुष वस्त्र का व्यञ्जनपर्याय कह दिखाया है।)

15 प्रथम प्रश्न के उत्तर में व्याकरणविज्ञ कहते हैं - जिस का ('गौ'शब्द का) उच्चारण करने पर (श्रोता को) खूँध आदि अवयववाले (गौ) अर्थ का भान होता है उस को शब्द कहा जाता है। (यह शब्द के स्वरूप का विवरण हुआ।) (महाभारत प्रथमखंड एवं अनेकान्त जयपताका में ऐसा कथन है।) अब शब्द के स्वरूप की विशेष चर्चा शुरु की जाती है -

व्याकरणवेत्ता के सामने अब ये दो प्रश्न खड़े किये गये हैं - <sup>A</sup>'गौ' पद में गकार-औकार-विसर्ग ये तीन खूँध आदि विशिष्ट अर्थ का निदर्शक होने से 'शब्द' पद प्रयोग होता है ? <sup>B</sup>या उस से भिन्न कोई पदस्फोट आदि होता है ? प्रश्नकार अब कहते हैं \*वर्ण तो अर्थबोधक नहीं होते। यदि होते हैं तो समुदित वर्ण अर्थबोधक होते हैं या पृथक् पृथक् (यानी व्यस्त) ? यदि पृथक्, तो प्रथम उच्चारित वर्ण से ही अर्थबोध के हो जाने से दूसरे आदि वर्णों का उच्चारण व्यर्थ जायेगा। यदि समुदित वर्ण अर्थबोधक हैं तो वह संगत नहीं क्योंकि उन की उत्पत्ति क्रमशः होती है, अग्रिम वर्णोच्चार होता है तब पूर्व वर्ण नष्ट हो जाता है अतः उन का समुदाय बन नहीं पाता। ऐसी कल्पना करें कि एक साथ उत्पन्न वर्णों का समुदाय बन जायेगा - तो वह व्यर्थ है क्योंकि एक व्यक्ति से एक साथ अनेक वर्णों का जन्म अशक्य है, क्योंकि एक व्यक्ति के द्वारा प्रतिनियत कण्ठादि स्थान, जीह्वादि करण और व्यक्ति का तथाविध प्रयत्न मिल कर एक से ज्यादा वर्ण की एक साथ उत्पत्ति शक्य नहीं है। यदि कहें कि - 'एक व्यक्ति 'ग' बोले, दूसरी 'औ' बोले, तीसरी विसर्ग बोले, तीनों एक साथ बोलेंगे तो उन के समुदाय से अर्थबोध हो सकेगा।' - तो यह भी कहीं दिखता

▼. एतद्विषयकबहुग्रन्थसदृशसन्दर्भवाक्यानि महाभारत-मीमांसा० - अनेकान्तज० प० - प्रमेयक० - स्या० र० - श्लो० वा० - पार्थ० व्या० - प्रशस्त० कंद० स्फोटसिद्धि - तत्त्वसं० का० - सर्वदर्शन सं० आदि ग्रन्थेष्ववलोकनार्हाणि पूर्वसंस्करणे दृश्यानि।।

\*. प्रमेयकमलमार्त्तण्ड में, प्रशस्तपादकदली टीका में, स्फोटसिद्धिग्रन्थ में ऐसे वाक्यसंदर्भ को देख सकते हैं।

न चान्त्यो वर्णः पूर्ववर्णानुगृहीतो वर्णानां क्रमोत्पादे सत्यर्थप्रत्यायकः, पूर्ववर्णानामन्त्यवर्णं प्रत्यनुग्राहकत्वाऽयोगात्। यतो नान्त्यवर्णं प्रति जनकत्वं पूर्ववर्णानां तदुपकारित्वम् वर्णाद् वर्णोत्पत्तेर-  
भावात् — प्रतिनियतस्थानकरणादिसम्पाद्यत्वाद् वर्णानाम्, वर्णाभावेऽपि च वर्णोत्पत्तिदर्शनाद् न वर्णजन्यत्वम्।  
अथार्थज्ञानोत्पत्तौ सहकारित्वं पूर्ववर्णानामन्त्यवर्णं प्रत्युपकारकत्वम्— एतदप्ययुक्तम्; अविद्यमानानां  
सहकारित्वानुपपत्तेः। अत एव प्राक्तनवर्णवित्तीनामपि सहकारित्वमयुक्तम्।

5

न च पूर्ववर्णसंवेदनप्रभवसंस्काराः तत्सहायतां प्रतिपद्यन्ते; यतः संस्काराः स्वोत्पादकविज्ञानविषय-  
स्मृतिहेतवो नार्थान्तरज्ञानमुत्पादयितुं समर्थाः। न हि घटज्ञानप्रभवः संस्कारः पटे स्मृतिं विदधद् दृष्टः।  
न च तत्संस्कार प्रभवाः स्मृतयः सहायतां प्रतिपद्यन्ते, युगपदयुगपद्विकल्पनानुपपत्तेः। न हि स्मृतीनां  
युगपदुत्पत्तिः अयुगपदुत्पन्नानां वाऽवस्थितिरस्ति। न च समस्तसंस्कारप्रभवैका स्मृतिस्तत्सहकारिणी,  
परस्परविरुद्धानेकपदार्थाऽनुभवप्रभवप्रभूतसंस्काराणामप्येकस्मृतिजनकत्वप्रसक्तेर्नानेकवर्णसंस्काराजत्वं स्मृतेः  
संभवतीति कुतोऽस्या अन्त्यवर्णसहकारित्वम् ? न चान्यविषया स्मृतिरन्यत्र प्रतिपत्तिं जनयति खदिरव्या-

10

नहीं क्योंकि शाब्दबोध में तो अनुभव होता है कि प्रतिनियत क्रमिक वर्णों के श्रवण के बाद अर्थबोध होता है।

### [ चरमवर्ण से अर्थबोध की अनुपपत्ति ]

व्यस्त वर्ण भी अर्थबोधक नहीं हो सकते। 'वर्णों की क्रमशः उत्पत्ति होती है फिर भी पूर्व-  
पूर्व वर्णसहकृत चरम वर्ण को — अर्थबोधक मानेंगे — तो यह असंभव है क्योंकि पूर्व-पूर्व वर्ण चरम  
वर्ण के उपकारी बन नहीं सकते। उपकारित्व क्या है ? अन्त्य वर्ण के प्रति पूर्ववर्णों का जनकत्व ?  
प्रस्तुत में ऐसा उपकारित्व अघटित है क्योंकि एक वर्ण से दूसरे वर्ण की उत्पत्ति नहीं होती। वर्णों  
की उत्पत्ति तो नियत स्थान-करणों से सम्पन्न होती है, एवं प्रथमादि वर्णों की उत्पत्ति वर्णों के बिना  
ही होती है यह दिखता है अतः वर्णों में वर्णजन्यत्व नहीं होता। यदि उपकारित्व ऐसा है कि अन्त्य  
वर्ण से अर्थबोध उत्पन्न होने में पूर्व वर्ण अन्त्य वर्ण का सहकारी बनेगा — तो वह गलत है क्योंकि  
अन्त्य वर्णकाल में पूर्व वर्ण विद्यमान ही नहीं, फिर सहकारी कैसे होंगे ? पूर्व वर्ण विद्यमान ही  
नहीं इसी लिये पूर्ववर्णों का ज्ञान भी अन्त्य वर्ण के प्रति अर्थबोधजनन में सहकारी नहीं हो सकते,  
क्योंकि पूर्ववर्णज्ञान भी क्षणिक होने से अनुपस्थित है। यदि कहा जाय —

20

### [ संस्कार या तज्जन्य स्मृति का सहकारित्व अघटित ]

25

'पूर्ववर्ण बोधजन्य संस्कार अर्थबोधजनन में चरम वर्ण का सहकारी बनेगा।' — तो यह भी  
सम्भव नहीं, क्योंकि संस्कार तो सिर्फ स्वजनकज्ञान के विषय की स्मृति कराने में ही हेतु बनता  
है, वह स्मृति भिन्न भिन्नविषयक (शाब्दरूप) ज्ञानोत्पादन के लिये समर्थ नहीं। उदा० घटज्ञानजन्य संस्कार  
वस्त्र की स्मृति करता हुआ दृष्टिगोचर नहीं है। यदि कहें — 'तत्तत्संस्कारजन्य स्मृतियाँ ही सहकारी  
बन कर चरम वर्ण को सहायता करेगी' — तो यह भी शक्य नहीं, क्योंकि यहाँ क्रम यौगपद्य के  
विकल्पों का समाधान नहीं मिलता। देखिये — हर एक क्रमिक वर्णज्ञानजन्य संस्कार से उत्पन्न होने-  
वाली क्रमिक स्मृतियाँ एक साथ उत्पन्न नहीं हो सकती, न तो क्रमिकोत्पन्न स्मृतियों का एकसाथ अवस्थान

30

पृतपरशोः कदिरच्छेदक्रियाजनकत्वप्रसक्तेः। न चान्यवर्णनिरपेक्ष एव गौः इत्यत्रान्त्यो वर्णः ककुदादिमदर्थ-  
प्रत्यायकः पूर्ववर्णोच्चारणवैयर्थ्यप्रसक्तेः घटशब्दान्तव्यवस्थितस्यापि तत्प्रत्यायकत्वप्रसक्तेश्च। तस्माद् न  
वर्णाः समस्त-व्यस्ता अर्थप्रत्यायकाः सम्भवन्ति।

अस्ति च गवादिशब्देभ्यः ककुदादिमदर्थप्रतिपत्तिरिति तदन्यथानुपपत्त्या वर्णव्यतिरिक्तः स्फोटान्ता  
5 निरवयवोऽक्रमः स्फुटमवभातीति तस्याऽध्यक्षतोऽपि सिद्धिः। तथाहि— श्रवणव्यापारानन्तरभाविन्यभिन्नार्था-  
वभासा संविदनुभूयते। न चासौ वर्णविषया, वर्णानां परस्परव्यावृत्तरूपत्वाद् एकावभासजनकत्वविरोधात्  
तदजनकस्याऽतिप्रसङ्गतस्तद्विषयत्वानुपपत्तेः। न चेयं सामान्यविषया, वर्णत्वव्यतिरेकेणाऽपरसामान्यस्य  
गकार-औकार-विसर्जनीयेष्वसम्भवात् वर्णत्वस्य च प्रतिनियतार्थप्रत्यायकत्वाऽयोगात्। न चेयं भ्रान्ता,

होता है — फिर कैसे स्मृतियाँ सहकारी बनेगी ? यदि कहें — ‘समस्त संस्कारों से एक ही स्मृति  
10 उत्पन्न होगी जो अन्त्य वर्ण की सहकारिणी बनेगी’ — तो यह असम्भव है, ‘ग’-‘औ’-‘ः’ इत्यादि  
परस्पर विरुद्ध अनेक वर्ण के अनुभव से जन्य संस्कार भी परस्पर विरुद्ध अनेक ही होंगे, अतः  
वे एक स्मृति के उत्पादक नहीं हो सकते। यदि वैसा मानेंगे तो परस्पर विरुद्ध भाव-अभाव आदि  
अनेक पदार्थों के अनुभव से जन्य अनेक संस्कारों में भी एक स्मृतिजनकत्व प्राप्त होगा। यह सोच  
कर अब बोलो कि स्मृति अन्त्यवर्ण सहकारी कैसे बनेगी ? ऐसा भी शक्य नहीं है कि एक घटादिविषयक  
15 स्मृति अन्यविषय का बोध करा सके। शक्य मानेंगे तो खदिरवृक्षच्छेदन के लिये प्रयुक्त परशु में  
कदिरच्छेदनक्रियाजनकत्व आ पड़ेगा। ऐसा शक्य नहीं कि पूर्व पूर्व वर्ण निरपेक्ष ‘गौः’ शब्द का अन्त्य  
वर्ण (विसर्ग) खूँध आदि उपांगवाले अर्थ का बोधन करे; क्योंकि तब ‘ग’ आदि पूर्ववर्णोच्चारण में  
व्यर्थतादोष प्राप्त होगा और यदि केवल विसर्ग से गौ का भान होगा तो ‘घटः’ यहाँ घटपदोत्तर विसर्ग  
से भी गौ का भान प्रसक्त होगा। निष्कर्ष, व्यस्त या समुदित वर्णों से अर्थबोध का सम्भव है नहीं।

20 [ अन्यथा अनुपपत्ति से स्फोटातत्त्व की सिद्धि ]

इतना तो पक्का है कि गौ-आदिशब्दों से खूँध आदि उपांगवाले जनावर की प्रतीति होती है।  
व्यस्त-समस्त वर्णों से इस प्रतीति की उपपत्ति शक्य नहीं, अतः स्वीकारना होगा कि वर्णभिन्न  
अर्थप्रतिपत्तिहेतुभूत स्फोटनामक पदार्थ ही शब्द है। स्फोट की सिद्धि प्रत्यक्ष से होती है — श्रावणप्रत्यक्ष  
में वर्णभिन्न निरवयव अक्रमिक स्फोट पदार्थ स्पष्ट ही अनुभूत होता है। देखिये— श्रोत्रेन्द्रिय-व्यापार  
25 के बाद तुरंत अभिन्न एक अर्थभासक संवेदन का अनुभव होता है। वह वर्णविषयक नहीं होता, क्योंकि  
वर्ण स्वयं एक-दूसरे से भिन्न होने के कारण, एकवस्तुभानजनक होने में विरोध आयेगा। अजनक होने  
पर भी उसको तत्प्रतीति का विषय मानेंगे तो अजनक सभी पदार्थ तत्प्रतीति के विषय बन जाने  
की आपत्ति होगी। वह प्रतीति एकावभाससंगति के लिये वर्णसामान्य विषयक मानना अनुचित है।  
कारण :- यहाँ गकार-औकार-विसर्ग में वर्णत्व के सिवा और कोई सर्ववर्णसाधारण सामान्य नहीं है,  
30 वर्णत्वरूप सामान्य सर्ववर्णसाधारण होने से प्रतिनियत एकवस्तु का बोधकत्व यहाँ सम्भव नहीं होगा।

[ स्फोट-प्रत्यक्ष को भ्रान्त मानने पर मुसीबतें ]

स्फोट की प्रत्यक्ष प्रतीति भ्रान्त नहीं है क्योंकि उस का कोई बाधक नहीं है। अबाधितप्रतीतिविषय

अबाध्यमानत्वात्। न चाबाध्यमानप्रत्ययगोचरस्यापि स्फोटोऽख्यस्य वस्तुनोऽसत्त्वम्, अवयविद्रव्यस्याप्य-  
सत्त्वप्रसक्तेः। एवमप्यवयवभ्युपगमे स्फोटाभ्युपगमोऽवश्यभावी तत्तुल्ययोगक्षेमत्वात्। स च वर्णभ्यो व्यतिरिक्तः  
नित्यः, अनित्यत्वे सङ्केतकालानुभूतस्य तदैव ध्वस्तत्वात् कालान्तरे देशान्तरे च गोशब्दश्रवणात् ककुदादि-  
मदर्थप्रतिपत्तिर्न स्यात् असंकेतिताच्छब्दादर्थप्रतिपत्तेरसम्भवात्। सम्भवे वा द्वीपान्तरादागतस्य गोशब्दाद्  
गवार्थप्रतिपत्तिर्भवेत् संकेतकरणवैयर्थ्यं च प्रसज्येत। तस्मान्नित्यः स्फोटोऽख्यः शब्दो व्यापकश्च सर्वत्रैक- 5  
रूपतया प्रतिपत्तेः।

[ स्फोटवादनिरसनं वैशेषिके स्वप्रक्रियावर्णनं च ]

असदेतद्— इति वैशेषिकाः। ते ह्याहुः— एकदा प्रादुर्भूता वर्णाः स्वार्थप्रतिपादका न भवन्तीत्यत्राऽवि-  
प्रतिपत्तिरेव क्रमप्रादुर्भूतानां न समुदाय इत्यत्राप्यविप्रतिपत्तिरेव अर्थप्रतिपत्तिस्तु उपलभ्यमानात् पूर्ववर्ण- 10  
ध्वंसविशिष्टान्त्यवर्णात्। न चाभावस्य सहकारित्वं विरुद्धम् वृन्त-फलसंयोगाभावस्येवाऽप्रतिबद्धगुरुत्व-  
फलप्रपातक्रियाजनने, दृष्टं चोत्तरसंयोगं विदधत् प्राक्तनसंयोगाभावविशिष्टं कर्म, परमाण्वग्निसंयोगश्च  
परमाणौ तद्गतपूर्वरूपप्रध्वंसविशिष्टो रक्ततामुत्पादयन्।

स्फोटसंज्ञक वस्तु को असत् नहीं कह सकते, इस को असत् कहने पर स्फोट की तरह अवयविद्रव्यप्रतीति  
को भ्रान्त कह कर अवयवी को 'असत्' कहना पड़ेगा। अवयवी को यदि सत् मानेंगे तो स्फोट को  
भी अवश्यमेव सत् मानना पड़ेगा, क्योंकि दोनों और युक्तियों का योगक्षेम तुल्य है। यह स्फोट वर्णों 15  
से भिन्न एवं नित्य मानना होगा। अनित्य मानेंगे तो — सङ्केतकाल में जिस स्फोट में संकेत किया  
होगा वह नष्ट हो जाने के बाद अन्य देश अन्य काल में 'गौ' शब्दश्रवण के बाद (नष्ट स्फोट से)  
खुंध आदि उपांगवाले अर्थ का बोध नहीं होगा, क्योंकि अन्यदेश-काल में सुने गये (स्फोट में = शब्द  
में तो संकेत न होने से उस से अर्थबोध का सम्भव नहीं। सम्भव मानेंगे तो जिसने पहले कभी 'गौ'  
शब्द नहीं सुना ऐसे अन्यदेश से आये हुए प्रवासी को अभी 'गौ' शब्द के श्रवण से तुरंत ही धेनु- 20  
अर्थ का बोध प्रसक्त होगा। एवं संकेत क्रिया भी व्यर्थ जायेगी। सारांश, स्फोटसंज्ञक शब्दवस्तु नित्य  
एवं सर्वदेशव्यापक मानना चाहिये क्योंकि सर्व देश-काल में एकरूपता की अनुभूति होती है।

[ स्फोटवादनियेध अन्त्यवर्ण से अर्थबोध—वैशेषिक ]

वैशेषिक विद्वानों का कहना है कि यह स्फोटवाद गलत है। हाँ इतना सही है कि एक साथ  
उत्पन्न वर्ण स्वार्थप्रदर्शक नहीं होते और क्रमिक उत्पन्न वर्णों का कोई समुदाय बन नहीं सकता। तो 25  
अर्थबोध किस तरह होगा ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पूर्व-पूर्व वर्णों के ध्वंस से सहकृत अन्त्य  
वर्ण की उपलब्धि से होगा। 'ध्वंस तो अभावरूप है वह कैसे किसी का सहकारी होगा — स्पष्ट विरोध  
है' — इस आशंका का उत्तर यह है कि जैसे वृक्ष पर वृन्त और फल के संयोग का नाश होता है  
तब उस से गुरुत्व प्रेरित फल अधः पतन क्रिया अप्रतिबद्ध होने से उत्पन्न होती है। तथा पूर्वसंयोगध्वंस  
सहकृत क्रिया से उत्तरसंयोग का उद्भव दिखता है। तथा, परमाणु में स्वगतपूर्वरूपप्रध्वंस के सहकार 30  
से परमाणु-अग्निसंयोग रक्तरूप को उत्पन्न करता है यह दिखता है। वैसे यहाँ भी समझ लेना।

यद्वोपलभ्यमानोऽन्त्यो वर्णः पूर्ववर्णविज्ञानाभावविशिष्टः पदार्थे प्रतिपत्तिं जनयति प्राक्तनवर्णसंवित्प्र-  
 भवसंस्कारसव्यपेक्षो वा। न च संस्कारस्य विषयान्तरे कथं विज्ञानजनकत्वमिति प्रेर्यम्, तद्भावभावि-  
 तयार्थप्रतिपत्तेरुपलब्धेः पूर्ववर्णविज्ञानप्रभवसंस्कारश्चान्त्यवर्णसहायतां पूर्वपूर्वसंस्कारप्रभवतया प्रणालिकया  
 विशिष्टः समुत्पन्नः सन् प्रतिपद्यते। तथाहि— प्रथमवर्णं तावद् विज्ञानम् तेन च संस्कारो जन्यते ततो  
 5 द्वितीयवर्णविज्ञानम् तेन पूर्ववर्णविज्ञानाहितसंस्कारसहितेन विशिष्टः संस्कारो जन्यते ततस्तृतीयवर्णं ज्ञानम्  
 तेन पूर्वसंस्कारविशिष्टेनापरो विशिष्टतरः संस्कारो निर्वर्त्यते इति यावदन्त्यः संस्कारोऽर्थप्रतिपत्तिजन-  
 कान्त्यवर्णसहायः तथाभूतसंस्कारप्रभवस्मृतिसव्यपेक्षो वाऽन्त्यो वर्णः पदरूपः पदार्थप्रतिपत्तिहेतुः।

अथवा शब्दार्थोपलब्धिनिमित्तादृष्टनियमादविनष्टा एव पूर्ववर्णसंवित्प्रभवाः संस्कारा अन्त्यसंस्कारं  
 विदधति, तस्मात् पूर्ववर्णेषु स्मृतिरुपजाता अन्त्यवर्णनोपलभ्यमानेन सहार्थप्रतिपत्तिमुत्पादयति। वाक्यार्थ-  
 10 प्रतिपत्तौ वाक्यस्याप्ययमेव न्यायोऽङ्गीकर्तव्यः। वर्णाद् वर्णोत्पत्त्यभावप्रतिपादनं च सिद्धसाधनमेव। तदेवं  
 यथोक्तं सहकारिकारणसव्यपेक्षादन्त्याद्वर्णाद् अर्थप्रतिपत्तिरन्वय-व्यतिरेकाभ्यामुपजायमानत्वेन निश्चीयमाना  
 स्फोटपरिकल्पनां निरस्यति तदभावेऽप्यर्थप्रतिपत्तेरुक्तप्रकारेण सम्भवेऽन्यथानुपपत्तेः प्रक्षयात्। न हि दृष्टादेव

### [ अथवा पूर्ववर्णज्ञानध्वंससहकृत अन्त्यवर्ण से बोध ]

अथवा वर्णध्वंस के बदले पूर्ववर्णविज्ञानध्वंस के सहकार से, उपलब्धिगोचर अन्त्यवर्ण 'पद' बन  
 15 कर पदार्थ का बोध करायेगा। अथवा पूर्णवर्णज्ञानजन्यसंस्कार सहकृत अन्त्य वर्ण 'पद' बन कर पदार्थबोध  
 करा सकता है। शंका :- पूर्ववर्ण का संस्कार पूर्व वर्ण की स्मृति ही करा सकता है, अन्य विषय  
 के विज्ञान का जनक कैसे हो सकता है ? उत्तर :- नहीं। संस्कार से साक्षात् अन्य विषय का बोध  
 न होने पर भी पूर्ववर्णों की स्मृति होने पर अन्त्यवर्णजन्य पदार्थबोध अवश्यभावि होने से श्रवणगोचर  
 होता है। पूर्ववर्णविज्ञानजन्यसंस्कार भी पूर्व-पूर्वसंस्कारजन्य होने से परम्परया विशिष्ट (= सक्षमतावान्)  
 20 बन जाता है अतः वह अन्त्यवर्ण को सहायता देता है। कैसे यह देखिये — प्रथम वर्ण, फिर उस  
 का ज्ञान, उस से संस्कारजन्म, फिर दूसरे वर्ण का ज्ञान, फिर पूर्ववर्णज्ञानप्रेरितसंस्कार सहित उस ज्ञान  
 से विशिष्ट संस्कार जन्म लेता है। फिर तीसरा वर्ण उस का ज्ञान पूर्वसंस्कारविशिष्ट इस ज्ञान से  
 नया विशिष्टतर संस्कार पैदा किया जाता है। इस प्रकार चलते चलते अर्थबोधजनक अन्त्य वर्ण सहायवाला  
 संस्कार (पदार्थबोधहेतु बनता है), अथवा तथाविधसंस्कारजन्यस्मृतिसापेक्ष अन्त्य वर्ण, जो अब पदरूप  
 25 है, वह पदार्थबोधहेतु बनता है।

### [ अविनष्टसंस्कारजन्य अन्त्यसंस्कार अ अन्त्यवर्ण से अर्थबोध ]

वैशेषिक पंडित दूसरा विकल्प दिखाते हैं — अथवा, शब्दार्थबोध का अदृष्ट भी निमित्त है उस  
 अदृष्ट के प्रभाव से पूर्व-पूर्ववर्णज्ञानजन्य संस्कार अवश्य अविनष्ट रहते हैं। वह संस्कारवृंद अन्त्यसंस्कार  
 को जन्म देते हैं। उस संस्कार से पुनः पूर्व वर्णों की स्मृति उत्पन्न होती है। उपलब्धिगोचर अन्त्यवर्ण  
 30 को साथ दे कर वही स्मृति पदार्थबोध को जन्म देती है। इसी तरह वाक्य से वाक्यार्थ बोध के  
 लिये भी यही न्यायप्रक्रिया स्वीकार लेना है। पूर्वपक्षी स्फोटवादी ने जो वर्ण से वर्ण की उत्पत्ति का  
 निषेध किया है वह तो हमारे लिये सिद्धसाधन है। निष्कर्ष — पूर्वोक्त सहकारीकारण सापेक्ष चरमवर्ण

कारणात् कार्योत्पत्तावदृष्टतदन्तरपरिकल्पना युक्तिसंगता, अतिप्रसङ्गात्।

किञ्च, यद्युपलभ्यमाना वर्णा व्यस्त-समस्ता नार्थप्रतिपत्तिजननसमर्थाः स्फोटाभिव्यक्तावपि न समर्था भवेयुः। तथाहि— न समस्तास्ते स्फोटमभिव्यञ्जयन्ति सामस्त्याऽसम्भवात्। नापि प्रत्येकम् वर्णान्तरवैफल्य-प्रसङ्गात् एकेनैव स्फोटाभिव्यक्तेर्जनितत्वात्। न च पूर्ववर्णैः स्फोटस्य संस्कारेऽन्त्यो वर्णस्तस्याभिव्यञ्जक इति न वर्णान्तरवैयर्थ्यम्, अभिव्यक्तिव्यतिरिक्तसंस्कारस्वरूपानवधारणात्। तथाहि— न तावत्तत्र तैर्वेगाख्यः 5 संस्कारो निर्वर्त्यते तस्य मूर्त्तष्वेव भावात्। नापि वासनारूपः, अचेतनत्वात् स्फोटस्य, तच्चैतन्याभ्युपगमे वा स्वशास्त्रविरोधः। नापि स्थितिस्थापकः तस्यापि मूर्त्तद्रव्यवृत्तित्वात् स्फोटस्य चाऽमूर्त्तत्वाभ्युपगमात्।

किञ्च, असौ संस्कारो स्फोटस्वरूपः तद्धर्मो वा ? न तावदाद्यः कल्पः, स्फोटस्य वर्णोत्पाद्यत्वप्रसक्तेः। नापि द्वितीयः, व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पानुपपत्तेः। तथाहि— असौ धर्मः स्फोटाद् व्यतिरिक्तः अव्यतिरिक्तो 10 से अर्थबोध होता है यह अन्वय-व्यतिरेक से निश्चित होता है, अतः स्फोट की कल्पना निरस्त हो जाती है। स्फोट के बिना भी पूर्वोक्त पद्धति से अन्त्यवर्ण से अर्थबोध घट सकता है। स्फोट के बिना अर्थबोध की अनुपपत्ति हतप्रभाव बन जाती है। जब दृष्ट कारण (अन्त्य वर्ण) से ही किसी प्रकार कार्योत्पत्ति संगत हो जाती है तब उस कार्य के लिये अन्य कारण (स्फोट) की कल्पना युक्तिसंगत नहीं है। अन्यथा, शशशृंगादि की भी कल्पना आ पड़ेगी।

### [ स्फोटवाद में संस्कार की बात अशोभनीय ]

15

और एक बात :- स्फोटवादी जो कहता है कि व्यस्त या समुदित वर्ण अर्थबोध उत्पादन में सक्षम नहीं है तो हम कहते हैं कि स्फोट-अभिव्यक्ति में भी कैसे सक्षम होंगे ? देखिये— समुदित वर्ण स्फोट का व्यक्तीकरण कर नहीं सकता, क्योंकि वर्णों का समुदाय बन नहीं सकता। प्रत्येक वर्ण से भी अभिव्यक्ति दोषग्रस्त है क्योंकि तब अन्य वर्णों की सार्थकता नष्ट होगी, क्योंकि किसी भी एक वर्ण से स्फोट-अभिव्यक्ति सम्पन्न हो जायेगी। यदि कहें — ‘पूर्व पूर्व वर्णों से स्फोट परिष्कृत होता 20 रहेगा फलतः अन्त्य वर्ण स्फोट का अभिव्यञ्जक बन जायेगा, अतः अन्य वर्णों की निरर्थकता नहीं होगी’ — तो यह निषेधार्ह है क्योंकि आप के मत में अभिव्यक्ति खुद ही संस्कार है, उस से भिन्न कौन सा संस्कार है ? देखिये — वर्णों से कौन सा (अभिव्यक्ति को छोड़ कर) संस्कार बनेगा ? वेग, वासना या स्थितिस्थापक ? वेग संस्कार का निर्माण शक्य नहीं क्योंकि वह तो मूर्त्त द्रव्यों में ही होता है, स्फोट को तो अमूर्त्त कहा गया है। स्फोट अचेतन होने से ‘वासना’ भी यहाँ नहीं घटेगी 25 क्योंकि वह तो चेतनधर्म है। यदि स्फोट में चैतन्य मान लेंगे तो भवदीय शास्त्रों से विरोध होगा। तीसरा स्थितिस्थापक संस्कार तो मूर्त्तद्रव्य में ही होता है जब कि स्फोट तो अमूर्त्त माना गया है। मतलब, स्फोटवाद में ‘संस्कार’ की वार्त्ता शोभास्पद नहीं है।

### [ स्फोटवाद में संस्कार प्रति विकल्प-असह्यता ]

अथवा, संस्कार किसी भी प्रकार का हो, प्रश्न ये हैं कि वह स्फोटात्मक है या उस का धर्म ? 30 प्रथम विकल्प इस लिये अनुचित है कि संस्कार की तरह स्फोट को भी वर्णजन्य होने की आपत्ति होगी। दूसरे विकल्प में स्फोट-तद्धर्म में भेदाभेद विकल्पों की अनुपपत्ति शक्य बन जायेगी। देखिये—



वा ? यद्यव्यतिरिक्तस्तदा तत्करणे स्फोट एव कृतो भवेदिति तस्याऽनित्यत्वप्रसक्तेः स्वाभ्युपगमविरोधः । अथ व्यतिरिक्तस्तदा तत्सम्बन्धानुपपत्तिस्तदनुपकारकत्वात् । तस्योपकाराभ्युपगमे व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पः तत्रापि पूर्वोक्त एव दोषोऽनवस्थाकारी । न च व्यतिरिक्तधर्मसद्भावेऽपि स्फोटस्यानभिव्यक्तिस्वरूपव्यवस्थितस्य पूर्ववदर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वम् तत्स्वरूपत्यागे वाऽनित्यत्वप्रसक्तिः । अथ न व्यतिरिक्तसंस्कारकृतमुपकारमपेक्ष्य

5 पूर्वरूपपरित्यागादसावर्थप्रतिपत्तिं जनयति किन्तु संस्कारसहायोऽविचलितरूप एव, एककार्यकारित्वस्यैव सहकारित्वाभ्युपगमात् । नन्वेवं वर्णानामप्यन्यकृतोपकारनिरपेक्षणामेककार्यनिर्वर्तनलक्षणसहकारित्ववत् सहकारिसहितानामर्थप्रतिपत्तिजनने किमपरस्फोटकल्पनयाऽप्रमाणिकया कार्यम् ?

किञ्च, पूर्ववर्णैः संस्कारः स्फोटस्य क्रियमाणः किमेकदेशैः क्रियते सर्वात्मना वा ? यद्यैकदेशैः तदा ते ततोऽर्थान्तरभूताः अनर्थान्तरभूता वा ? यद्यर्थान्तरभूताः तदा तेषां तदनुपकारे सम्बन्धासिद्धिः,

10 उपकारे व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तविकल्पोक्तदोषानुषङ्गः । न च समवायाद् अनुपकारेऽपि तेषां सम्बन्धिता तस्यानभ्युपगमात्, परैरभ्युपगमे च स्वकृतान्तविरोधः । अर्थान्तरभूतत्वे चैकदेशानाम् तेभ्य एवार्थप्रतिपत्तेः

धर्मरूप संस्कार स्फोट से भिन्न है या अभिन्न ? यदि अभिन्न है तो अब संस्कार का उत्पादक स्फोट का भी उत्पादक हो गया अतः स्फोट में अनित्यत्व मानने की विपदा आयेगी। तब नित्यत्व के स्वीकार के साथ विरोध होगा। यदि भिन्न मानेंगे तो स्फोट के साथ संस्कार का कोई सम्बन्ध नहीं बनेगा,

15 क्योंकि संस्कार का स्फोट पर कोई उपकार नहीं है। यदि उपकार मानेंगे तो उपकार के ऊपर भी भेदाभेद विकल्प और पूर्वोक्त अनवस्थाकारक दोष नहीं टलेगा। कदाचित् मान ले कि स्फोट से भिन्न (संस्कार या उपकार) धर्म घटित है; फिर भी अनभिव्यक्तिस्वरूपावस्थित स्फोट पूर्वावस्था में जैसे अर्थबोध हेतु नहीं था तो वर्तमानादि अवस्था में भी कैसे होगा ? यदि अनभिव्यक्तिस्वरूप का त्याग कर के अभिव्यक्त बनेगा तो अनित्यता गला पकड़ेगी।

20 यदि कहें — ‘भिन्न संस्कार जनित उपकार को ले कर पूर्व स्वरूप त्याग के द्वारा स्फोट अर्थबोध उत्पन्न करे ऐसा हम नहीं मानते। किन्तु वह अर्थबोधन करता है संस्कार की सहायता से, स्वयं अचल रह कर भी। यहाँ सहकारित्व का इतना ही अर्थ है ‘मिल कर एककार्यकारित्व’। अहो ! इस तरह तो वर्णों से ही अर्थबोध शक्य बन गया — देखिये, अन्यकृत उपकार से निरपेक्ष एक कार्य कारित्वरूप सहकारित्व की तरह सभी वर्ण परस्पर सहकारी बन कर अर्थबोध करा देगा। अब वर्णों

25 से अतिरिक्त नये स्फोट पदार्थ की अप्रमाणिक कल्पना का प्रयोजन क्या ?

### [ स्फोट संस्कार पर एकदेश-सर्वात्मता विकल्प प्रहार ]

और एक बात:- पूर्ववर्णों से स्फोट का जो संस्कार होगा वह एक-एक देशों से होगा या अखण्ड स्फोट सर्वात्मा से ? यदि एक देशों से, तो और दो विकल्प :- स्फोट के वे देश उस से भिन्न है या अभिन्न ? यदि भिन्न हैं तो उन देशों का स्फोट के साथ उपकार के बिना कोई सम्बन्धयोजना

30 सिद्ध नहीं होगी। कारण :- वहाँ भी सम्बन्धि का स्फोट पर उपकार भिन्न होगा या अभिन्न — इन विकल्पों के दोषों को लौंघ नहीं सकेंगे। समवाय से उपकार के बिना ही स्फोटसंसर्गता को आप मानते ही नहीं है। यदि मानेंगे तो आप के सिद्धान्त के साथ विरोध आयेगा। तथा एक देशों को

न स्फोटस्यार्थप्रत्यायकता। अपि चैकदेशानामर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वाभ्युपगमे च वरं वर्णानामेव तदभ्युपगतम् एवं लोकप्रतीतिरनुसृता भवेत्। अथाव्यतिरिक्तास्तदेकदेशास्तदा स्फोटस्यैकेनैव संस्कृतत्वाद् अपरवर्णोच्चारवैयर्थ्यम्। न च पूर्ववर्णसंवित्रभवसंस्कारसहितः तत्स्मृतिसहितो वाऽन्त्यवर्णः स्फोटसंस्कारकः एवंभूतस्यास्यार्थप्रतिपत्तिजननेऽपि शक्तिप्रतिघाताभावात् स्फोटपरिकल्पना निरवसरैव।

अपि च, स्फोटसंस्कारः स्फोटविषयसंवेदनोत्पादनम्, उतावरणापनयनम् ? यद्यावरणापनयनम् तदैक- 5  
त्रैकदाऽऽवरणापगमे सर्वदेशावस्थितैः सर्वदा व्यापिनित्यरूपतयोपलभ्येत तस्य नित्यत्व-व्यापित्वाभ्यामप-  
गतावरणस्य सर्वत्र सर्वदोपलभ्यस्वभावत्वात्। अनुपलभ्यस्वभावत्वे वा न केनचित् कदाचित् कुत्रचिदुप-  
लभ्येत। अथैकदेशावरणापगमः क्रियते; नन्वेवमावृताऽनावृतत्वेन सावयवत्वमस्यानुषज्येत। अथ निर्विभाग-  
त्वादेकत्रानावृतः सर्वत्रानावृतोऽभ्युपगम्यते तदा तदवस्थाऽशेषदेशावस्थितैरुपलब्धिप्रसक्तिः। यथा च निरव-  
यवत्वादेकत्राऽनावृतः सर्वत्राऽनावृतस्तथा तत एवैकत्राप्यावृतः सर्वत्रैवावृत इति मनागपि नोपलभ्येत। 10

किञ्च, एकदेशाः स्फोटादर्थान्तरम् अनर्थान्तरम् वा ? अर्थान्तरत्वेऽपि शब्दस्वभावाः अशब्दात्मका

भिन्न मानने पर यह भी जान लो कि उन देशों से ही अर्थबोध हो जायेगा, स्फोट में अर्थबोधकता मानने की जरूर क्या ?, यदि एक देशों को अर्थबोधक मान लेंगे तो बहेतर है कि वर्णों को ही तथास्वरूप मान लिया जाय। तब लोकमान्य प्रतीति के साथ संवाद भी प्राप्त होगा। यदि एक देशों को अभिन्न मानेंगे तो उन में से एक देश से भी स्फोट संस्कृत हो जाने से अन्य वर्णों का उच्चारण 15  
व्यर्थ ठहरेगा। ऐसा मत कहना कि — ‘पूर्ववर्णज्ञान जन्य संस्कार से समर्थित, अथवा उस संस्कार से जन्य स्मृति से समर्थित अन्त्य वर्ण ही स्फोट को संस्कृत कर देगा’ — निषेध कारण, तथाभूत अन्त्य वर्ण से अर्थबोध के उद्भव के लिये अन्त्यवर्ण की शक्ति का घात करनेवाला कोई न होने से, स्फोटकल्पना निरवकाश ही है।

[ स्फोट में आवृत-अनावृतत्व से सावयवत्व दोष ] 20

यह भी ज्ञातव्य है — स्फोटसंस्कार क्या है ? स्फोटसंबन्धि विज्ञान का उद्भव या स्फोटावारक आवरण का निरसन ? यदि आवरण-निरसनरूप है, तो किसी एक जगह एक बार आवरण का भंग होने पर, नित्य एवं व्यापक होने से स्फोट की उपलब्धि सर्वदेशगत श्रोताओं को सदा के लिये हो जायेगी। कारण :- स्फोट नित्य एवं व्यापक होने से उस का यह स्वभाव है कि आवरणमुक्त होने पर सर्वदेशों में सदा के लिये उपलब्धिगोचर होना। यदि ऐसा उस का (अनुपलब्धि) स्वभाव नहीं 25  
है तो किसी भी श्रोता को कभी भी कहीं भी उस की उपलब्धि नहीं होगी। यदि किसी एक भाग में ही स्फोट के आवरण की मुक्ति मानेंगे तो अन्य भागों में सावरणता होने से, आवृतत्व-अनावृतत्व के कारण सावयवत्व प्रसक्त होगा। यदि स्फोट को निर्विभाग माना जाय तो एक जगह अनावृत होने पर सर्व जगह अनावृत माना जाय— इस के सामने समानतया यह तर्क आयेगा कि अन्य भाग में आवृत होने से सर्व जगह आवृत मानना पड़ेगा। फलतः अल्पतया भी उपलब्धिगोचर नहीं होगा। 30

[ स्फोट और एक देशों का भेदाभेदविकल्प ]

और एक बात :- स्फोट के विविध देश उस से भिन्न हैं या अभिन्न ? भिन्न हैं तो शब्दस्वभाव

वा ? यद्यशब्दात्मका नार्थप्रतिपत्तिहेतवः। अथ शब्दस्वभावास्तत्रापि यदि गो-शब्दस्वभावास्तदा गो-शब्दानेकत्वप्रसक्तिः। अथ अगोशब्दस्वरूपा न तर्हि गवार्थप्रत्यायका भवेयुः। अथाऽव्यतिरिक्तास्तदा स्फोट एव संस्कृत इति सर्वदेशावस्थितैर्व्यापिनस्तस्य प्रतिपत्तिप्रसक्तिरिति पूर्वोक्तमेव दूषणम्। किञ्च, एकदेशा-वरणापाये स्फोटस्य खण्डशः प्रतिपत्तिः प्रसज्येत। अथ स्फोटविषयसंविदुत्पादस्तत्संस्कारः सोऽपि न युक्तः, वर्णानामर्थप्रतिपत्तिजनन इव स्फोटप्रतिपत्तिजननेऽपि सामर्थ्याऽसम्भवात्, न्यायस्य समानत्वात्। यदि च स्फोट उपलभ्यस्वभावः सर्वदोषलभ्येत, अनुपलभ्यस्वभावत्वे आवरणापगमेऽपि तत्स्वभावानतिक्रमाद् मनागपि नोपलभ्येत इत्यर्थाऽप्रतिपत्तितः शाब्दव्यवहारविलोपः।

अनेनैव न्यायेन वायूनामपि तद्व्यञ्जकत्वमयुक्तम् वायूनां च व्यञ्जकत्वपरिकल्पने वर्णवैफल्यप्रसक्तिः, स्फोटाभिव्यक्तावर्थप्रतिपादने वा तेषामनुपयोगात्। स्थिते(?)सिद्धे) च स्फोटस्य वर्णोच्चारणात् प्राक् सद्भावे वर्णानाम् वायूनां वा व्यञ्जकत्वं परिकल्प्येत। न च तत्सद्भावः कुतश्चित् प्रमाणादवगतः इति न तत्कल्पना ज्यायसी। यदपि 'प्रत्यभिज्ञानं स्फोटस्य नित्यत्वप्रसाधकं वर्णोच्चारणात् प्रागप्यस्तित्वमव-

हैं या अशब्दात्मक ? यदि अशब्दात्मक हैं तो अर्थबोध के हेतु नहीं बन सकेंगे। अब उन्हें शब्दात्मक माने जाय तो वहाँ भी यदि गो-शब्दात्मक माने जाय तो जितने देश उतने गो-शब्द प्रसक्त होंगे। यदि गोशब्दात्मक नहीं हैं तो गो-अर्थप्रतीतिजनक नहीं बन सकेंगे।

यदि विविध देश, स्फोट से अभिन्न हैं तब तो एकदेश संस्कृत होने पर तदभिन्न स्फोट ही संस्कृत हो गया, अब तो पुनः वही दोष प्रसक्त होगा कि व्यापक होने से स्फोट की उपलब्धि सर्वदेशीय श्रोताओं को होगी। एवं यह भी दूषण होगा कि एक देश की आवरणमुक्ति होने पर तद्देशावच्छिन्न स्फोट की खण्डित प्रतीति होगी। यदि वर्णों के द्वारा किये जानेवाले संस्कार का यह मतलब हो कि स्फोटविषयकज्ञानोत्पाद, तो वह भी अयुक्त है क्योंकि वर्णों में आप अर्थबोधउत्पादन की शक्ति का इनकार करते हैं तो स्फोटप्रतीति उत्पादन में सामर्थ्य कैसे स्वीकार लिया ? यहाँ न्याय अलग, वहाँ अलग, ऐसा नहीं हो सकता, न्याय तो सर्वत्र समान होता है। स्फोट यदि उपलम्भस्वभाव है तो उस का सदा उपलम्भ चालु रहेगा, यदि अनुपलम्भ स्वभाव है तो उस का आवरण भंग होने पर भी, स्वभाव वही का वही (अनुपलम्भ स्वभाव) होने से किञ्चित् भी उपलम्भ नहीं होगा। अतः स्फोटवाद में किसी भी तरह अर्थबोध सम्भव न होने से समस्त शाब्दिक व्यवहार लुप्त हो जायेगा।

25 [ वायु के द्वारा स्फोट की अभिव्यक्ति का निरसन ]

जैसे वर्णों में स्फोटव्यञ्जकता अघटित है वैसे वायु में भी वह अयुक्त है। उपरांत, वायु में व्यञ्जकता मान लेने पर वर्णों की निष्फलता (व्यर्थता) आ पड़ेगी, क्योंकि न तो अब वे स्फोट की अभिव्यक्ति के लिये उपयोगी हैं, न तो अर्थबोधन के लिये। तथा, वर्णोच्चार के पहले यदि स्फोट तत्त्व का अस्तित्व सिद्ध होगा, तभी वर्णों में या वायु में व्यञ्जकता की कल्पना उचित हैं; किन्तु किसी भी प्रमाण से स्फोट का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं है अतः वह कल्पना भी प्रशस्त नहीं।

ऐसा मानना कि — 'स्फोट की नित्यता का साधक जो प्रत्यभिज्ञा प्रमाण है उसी से वर्णोच्चारपूर्व स्फोट का अस्तित्व भी सिद्ध हो जाता है ('यह वही सकार है' इत्यादि प्रत्यभिज्ञा की यहाँ बात

बोधयति' इत्यभ्युपगतम् तदपि प्रत्यभिज्ञाज्ञानस्य सादृश्यनिबन्धनत्वेनात्र विषये प्रतिपादितत्वाद् असङ्गतम्; एकगोव्यक्तौ संकेतितात् गोशब्दात् गोव्यक्त्यन्तरे अन्यत्रान्यदा च नित्यत्वमन्तरेणापि प्रतिपत्तिर्यथा संभवति तथा प्रतिपादितम् प्रतिपादयिष्यते च। नातोऽपि स्फोटस्य प्राग् व्यञ्जकात् सत्त्वसिद्धिरिति। 'नादेनाहितबीजायामन्त्येन ध्वनिना सह। आवृत्तपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवभासते।।' (वाक्य० प्र० का० श्लो० ८५) इति भर्तृहरिवचो निरस्तं द्रष्टव्यम्। 5

यदपि 'विभिन्नतनुषु वर्णेष्वभिन्नाकारं श्रोत्रान्वय-व्यतिरेकानुविधाय्यध्यक्षं स्फोटसद्भावमवबोधयति' इत्युक्तम् तदप्यसारम्; घटादिशब्देषु परस्परव्यावृत्तानेकवर्णव्यतिरिक्तस्य स्फोटात्मनोऽर्थप्रत्यायकस्यैकस्याऽध्यक्षप्रतिपत्तिविषयत्वेनाऽप्रतिभासनात्। न चाभिन्नावभासमात्राद् अभिन्नार्थव्यवस्था, अन्यथा दूरादविरलानेकतरुष्वेकतरुबुद्धेरेकत्वव्यवस्थाप्रसक्तेः। न चाविरलानेकतरुष्वेकत्वबुद्धेर्बाध्यमानत्वाद् नैकत्वव्यवस्थापकत्वम् स्फोटप्रतिभासबुद्धेरपि बाध्यत्वस्य दर्शितत्वात्। 10

न चैकत्वावभासः स्फोटसद्भावमन्तरेणानुपपन्नः, वर्णत्वान्वयवर्णविषयत्वेनेनाप्येकत्वावभासस्योपपद्यमानत्वात् समझना।) तो यह भी असंगत है क्योंकि प्रत्यभिज्ञा ज्ञान ऐक्यमूलक या नित्यत्वमूलक नहीं होता किन्तु इस प्रस्ताव में वह सादृश्यमूलक होने का प्रतिपादन किया जा चुका है। हमने पहले कह दिया है कि स्फोट में नित्यत्व न होने पर भी सादृश्यमूलक प्रतीति वैसे ही शक्य है जैसे कि किसी एक देश-काल में एक गो-व्यक्ति के लिये संकेतविषय किये गये 'गो' शब्द से अन्य देश-काल में भी नित्यत्व के बिना भी अन्य गो-व्यक्ति की प्रतीति हो सकती है। आगे भी इस तथ्य को कहेंगे। सारांश, प्रत्यभिज्ञा प्रमाण से भी व्यञ्जकवर्णोच्चारपूर्व में स्फोट तत्त्व की सिद्धि नहीं हो सकती। अत एव भर्तृहरि विद्वान् ने वाक्यपदीय में जो कहा है — 15

'अन्त्य ध्वनि (वर्ण) के साथ नाद (=स्फोट ?) के द्वारा बीजाधानप्राप्त एवं पुनः पुनः परिपाकयुत बुद्धि में शब्द प्रतिभासित होता है।।' यह कथन भी निरस्त हो जाता है। 20

### [ स्फोट के प्रत्यक्ष की वार्त्ता असार ]

स्फोटवादी जो यह कहता है कि — 'भिन्न भिन्न स्वरूपवाले वर्णों वर्णों में जो एकाकार, श्रोत्र के अन्वय-व्यतिरेक का अनुसरण करनेवाला प्रत्यक्ष उदित होता है वह एकाकार स्फोट के अस्तित्व का बोधक है' — यह भी निःसार है। जब घटादि शब्द सुनते हैं तब परस्पर भिन्न (क्रमिक) अनेक घकार आदि वर्णों का ही श्रावणप्रत्यक्ष होता है; वहाँ उन वर्णों से पृथक् अर्थबोधकारक एक स्फोटात्मक विषय प्रत्यक्ष ज्ञान में प्रतिभासित नहीं होता। उपरांत, यह ज्ञातव्य है कि एकाकार अवभास मात्र से एकाकार अर्थ की सिद्धि नहीं हो जाती। वैसा मान लेंगे तब तो सान्तर अवस्थित अनेक वृक्षों में दूर से एकत्व बुद्धि उदित होने से वहाँ एकत्वसिद्धि प्रसक्त होगी। ऐसा कहें कि 'सान्तर स्थित अनेक वृक्षों में दूर से जो एकत्व बुद्धि होती है — निकट जाने पर उस का बाध होता है, अतः उस एकत्वबुद्धि से एकत्व का निश्चय नहीं हो सकता।' — यहाँ भी तुल्य है — स्फोटप्रतिभासक बुद्धि की बाध्यता हम दिखा चुके हैं। 25

स्फोट की सत्ता के बिना एकत्व अवभास की अनुपपत्ति नहीं है, वर्णत्वविषयत्व से अथवा 30

निरवयवस्याऽक्रमस्य नित्यत्वादिधर्मोपेतस्य स्फोटस्यैकावभासज्ञानेनाननुभवाद् अन्यथावभासस्य चाऽन्य-  
थाभूतार्थाऽव्यवस्थापकत्वाद् व्यवस्थापनेऽतिप्रसङ्गात्। अवयवद्वयं त्ववयवजन्यत्वेन तदाश्रितत्वेन चाध्यक्ष-  
प्रत्यये प्रतिभासत इति न तत्रायः स्फोटे उत्पादयितुं शक्यः (३१६-२) तन्न स्फोटात्मा शब्दो वर्णभ्यो  
व्यतिरिक्तः। अथ तदव्यतिरिक्तोऽसावभ्युपगम्यते तदा वर्णानानात्वे तन्नानात्वप्रसक्तिः तदेकत्वे वा  
5 वर्णानामप्येकत्वप्रसक्तिः।

[ मीमांसकमतेन शब्दस्वरूपं तन्निरसनं च ]

अथ गकाराद्यनुपूर्वीविशिष्टोऽन्त्यो वर्णः विशिष्टानुपूर्वीका वा गकारौकारविसर्जनीयाः शब्दः। तथा  
च मीमांसकाः प्राहुः - [ श्लो० वा० स्फो० ६९ ]

‘यावन्तो यादृशा ये च यदर्थप्रतिपादकाः। वर्णाः प्रज्ञातसामर्थ्यास्ते तथैवावबोधकाः।।’

10 एतदपि न सम्यक्। यतः आनुपूर्वी यद्यनर्थान्तरभूता तदा वर्णा एव नानुपूर्वी। ते च व्यस्ताः  
समस्ता वाऽर्थप्रत्यायका न भवन्तीत्यावेदितम्। अथार्थान्तरभूता, तदा वक्तव्यम् सा नित्या अनित्या वा ?  
न तावदनित्या स्वसिद्धान्तविरोधात्, वैदिकानुपूर्व्या नित्यत्वेनाभ्युपगमात्—

‘वक्ता न हि क्रमं कश्चित् स्वातन्त्र्येण प्रपद्यते।’ (श्लो० वा० शब्द० श्लो० २८८) इत्याद्यभिधानात्।

अन्त्यवर्णविषयत्व से एकत्वावभास की संगति हो सकती है। एकावभासि ज्ञान में निरवयव अक्रमिक  
15 नित्यत्व आदि धर्मों से युक्त स्फोटतत्त्व का अनुभव नहीं होता। एक प्रकार के अवभास से अन्य  
प्रकार के अर्थ का निश्चय नहीं किया जा सकता। करेंगे तो अश्वावभास से गर्दभ का निश्चय हो  
जायेगा। जो पहले अवयवी की बात की गयी थी उस में तथ्य यह है कि अवयवी द्रव्य अवयवजन्य  
एवं अवयवाश्रित होने से वह तो प्रत्यक्षप्रतीति में भासता है, स्फोट के लिये यहाँ तुल्य न्याय निरवकाश  
है। सारांश, स्फोटात्मक शब्द वर्णों से भिन्न स्वतन्त्रपदार्थ नहीं है। यदि वर्णों से अभिन्न स्वीकारे तो  
20 वर्णों की अनेकता से स्फोट में भी बहुत्व प्रसक्त होगा, अथवा स्फोट को एक मानने पर वर्णों में  
भी एकत्व का अतिप्रसङ्ग आयेगा।

[ आनुपूर्वीस्वरूप शब्द प्रदर्शक मीमांसक का निषेध ]

मीमांसकमत है कि ग-औ-विसर्ग इत्यादि आनुपूर्वीविशिष्ट जो अन्त्यवर्ण विसर्ग (ः) है, अथवा  
आनुपूर्वीविशेषयुक्त जो गकार-औकार-विसर्ग हैं वह या वे ‘शब्द’ हैं - श्लो० वा० शब्दनित्य० श्लो०  
25 ६९ में मीमांसकवर्य कुमारिलभट्ट कहते हैं - व्यक्त सामर्थ्यवाले जैसे जितने जो भी वर्ण प्रतिपाद्य  
हैं वे वैसे ही अर्थावबोधकारी होते हैं।

यह मीमांसकमत सच नहीं। आनुपूर्वी यदि वर्णों से पृथक् नहीं है तो आखिर वर्ण ही ‘शब्द’  
हुए - पहले तो यह कह चुके हैं कि व्यस्त या सामासिक वर्ण अर्थबोधक हो नहीं सकते। यदि वर्ण  
और आनुपूर्वी पृथक् हैं तो पूछना है कि आनुपूर्वी नित्य है या अनित्य ? अनित्य तो आप नहीं कह  
30 सकते क्योंकि आप के (नित्यशब्दवादी) मीमांसक के सिद्धान्त का विरोध होगा। वेदगत आनुपूर्वी को  
आप नित्य मानते हैं। श्लो० वा० शब्द० श्लो० २८८ में कहा है कि ‘किसी भी वक्ता को स्वतन्त्रतया  
क्रम विदित नहीं होता।’ तथा, नित्यत्वस्वीकार में भी स्फोटवादोक्त (३१८-८) सभी दोषों का प्रवेश होगा।

नापि नित्या स्फोटपक्षोदितसमस्तदोषप्रसक्तेः। न च वैदिकवर्णाद्यानुपूर्वी नित्या लौकिकतदानुपूर्व्यविशेषात्। तथाहि— वैदिकवर्णाद्यानुपूर्वी अनित्या वेदानुपूर्वीशब्दवाच्यत्वात् लौकिकवर्णाद्यानुपूर्वीवत्। न च लौकिकानुपूर्व्या विलक्षण्यम्, वैलक्षण्यऽसिद्धेः। तथाहि— किमपौरुषेयत्वमस्या वैलक्षण्यम्, आहोस्विद् विचित्ररूपता ? न तावदाद्यः पक्षः, अपौरुषेयत्वस्य निरस्तत्वात्। नापि वैचित्र्यम् तस्याऽनित्यत्वेनाऽविरोधात् तत्सद्भावेऽपि नित्यत्वाऽप्रसाधकत्वात्। लौकिकवाक्येष्वपि वैचित्र्यस्योपलब्धेश्च।

5

न च वर्णानां नित्य-व्यापिनामानुपूर्वी सम्भवति, देश-कालकृतक्रमानुपपत्तेः। न चाभिव्यक्त्यानुपूर्वी तेषां सम्भविनी, अभिव्यक्तेः प्राग् निरस्तत्वात्। (प्रथमखंडे पृ०१४८-पं०७) पूर्ववर्णसंवित्रभवसंस्कारसहितः तत्स्मृतिसहितो वाऽन्त्यो वर्णः पदम् इत्यभ्युपगमोऽपि न युक्तिसंगतः, संस्कारस्मरणादेरनुपलभ्यमानस्य तदा सहकारित्वकल्पनायां प्रमाणाभावात्। न चार्थप्रतिपत्त्यन्यथानुपपत्तिस्तत्कल्पनायां प्रमाणम्, तत्रप्रतिपत्तेर-न्यथासिद्धत्वात्। न चानुपूर्वीसम्भवेऽपि परपक्षे वर्णा अर्थप्रतिपत्तिहेतुतया सम्भवन्ति, तेषां तत्रप्रतिपत्तिजनन-स्वभावत्वे सर्वदा तत्रप्रतिपत्तिप्रसक्तेः, तज्जननस्वभावस्य सर्वदा भावात्। अतज्जननस्वभावत्वे न कदाचि-दप्यर्थप्रतिपत्तिं जनयेयुः अनपगताऽतज्जननस्वभावत्वात्। न च सहकारिसन्निधानेऽपि तेषामतज्जनन-

10

वैदिक आनुपूर्वी भी नित्य नहीं है क्योंकि लौकिक वर्णानुपूर्वीसदृश ही है। प्रयोग देखिये — वैदिक वर्णानुपूर्वी अनित्य है क्योंकि 'वेदानुपूर्वी गत शब्द से वाच्य है जैसे लौकिकवर्णाद्यानुपूर्वी। वैदिकानुपूर्वी लौकिक वर्णानुपूर्वी से विलक्षण नहीं है क्योंकि वैलक्षण्य असिद्ध है। सुनिये — क्या अपौरुषेयत्व वैलक्षण्य है ? या विचित्ररूपता ? प्रथम पक्ष अतथ्य है क्योंकि पहले खंड में अपौरुषेयत्व का निरसन हो गया है ( )। वैचित्र्य (उत्पत्ति-नाशादिरूप अथवा वैविध्य) रूप वैलक्षण्य भी नहीं है क्योंकि उस को अनित्यत्व के साथ कोई विरोध नहीं है। अतः वैविध्यरूप वैचित्र्य होने पर भी वह नित्यत्व का साधक नहीं बन सकता। लौकिक वाक्यों में भी वैचित्र्य होता है, वहाँ नित्यत्व नहीं होता।

15

### [ नित्य एवं व्यापक वर्णों में आनुपूर्वी सम्भव नहीं ]

20

नित्य एवं व्यापक वर्णों का अनुक्रम सम्भव नहीं है क्योंकि न तो दैशिक क्रम बन सकता है न तो कालिक। कारण :- वर्ण सर्वदेश-सर्वकालवृत्ति हैं। अभिव्यक्ति की आनुपूर्वी भी सम्भव नहीं, क्योंकि अभिव्यक्ति का प्रथमखंड में (पृ०१२९-१४०) निरसन किया जा चुका है। ऐसा मानना — 'पूर्व-पूर्व वर्णसंवेदनजन्य संस्कारव्याप्त अन्त्य वर्ण अथवा तत्संस्कारजन्यस्मृतिव्याप्त अन्त्य वर्ण 'पद' है' — यह भी युक्तियुक्त नहीं है। कारण :- अन्त्य वर्ण क्षण में संस्कार या स्मरण उपलब्धिगोचर नहीं है अतः उस के सहकार की कल्पना में कोई प्रमाण नहीं है। उक्त कल्पना में 'अर्थबोध की अन्यथानुपपत्ति' को प्रमाण नहीं मान सकते क्योंकि यह अन्यथा (पूर्ववर्णज्ञानविशिष्ट अन्त्यवर्णज्ञान से) भी हो सकता है। तथा, आप के (मीमांसक के) पक्ष में किसी तरह आनुपूर्वी की व्यवस्था हो जाय फिर भी वर्णों में अर्थबोधहेतुता का सम्भव नहीं है। प्रश्न यह आयेगा कि वर्ण अर्थबोधजननस्वभाव है या नहीं ? यदि है तो सदा के लिये अर्थबोध चलता रहेगा। यदि नहीं है तो कभी भी उन से अर्थबोध नहीं होगा क्योंकि अर्थबोधअजननस्वभाव मिटनेवाला नहीं है। सहकारिसान्निध्य बल से भी वर्णों का अर्थबोधअजननस्वभाव मिटनेवाला नहीं। यदि मिट गया तो वर्णों में अनित्यत्वापत्तिदोष मीमांसकमत

25

30

स्वभावता व्यपगच्छति अनित्यताप्रसक्तिदोषपत्तेः, 'नित्याश्च' परैस्तेऽभ्युपगता इत्यभ्युपगमविरोधश्च ।

[ वाच्य-वाचकसम्बन्धे नित्यत्वनिराकरणम् ]

न च नित्यसम्बन्धवादिनस्तदपेक्षा वर्णा अर्थप्रत्यायकाः सम्भवन्ति, नित्यस्यानुपकारकत्वेनाऽपेक्षणीयत्वाऽयोगात् । न च नित्यः सम्बन्धः शब्दार्थयोः प्रमाणेनावसीयते, प्रत्यक्षेण तस्याऽननुभवात् । तदभावे नानुमानेनापि, तस्य तत्पूर्वकत्वाभ्युपगमात् । न च शब्दार्थयोः स्वाभाविकसम्बन्धमन्तरेण गो-शब्दश्रवणानन्तरं ककुदादिमदर्थप्रतिपत्तेर्न भवेत् । अस्ति च सा इति शब्दस्य वाचिका शक्तिरवगम्यते इति वाच्यम्, अनवगतसम्बन्धस्यापि ततस्तदर्थप्रतिपत्तिप्रसक्तेः । न च संकेताभिव्यक्तः स्वाभाविकः सम्बन्धोऽर्थप्रतिपत्तिं जनयतीति नायं दोषः; संकेतादेवार्थप्रतिपत्तेः स्वाभाविकसम्बन्धपरिकल्पनावैयर्थ्यप्रसक्तेः । तथाहि- संकेताद् व्युत्पाद्याः 'अनेन शब्देनेत्यंभूतमर्थं व्यवहारिणः प्रतिपादयन्ति' इत्यवगत्य व्यवहारकाले पुनस्तथाभूतशब्द-श्रवणात् संकेतस्मरणे तत्सदृशं तं चार्थं प्रतिपद्यन्ते न पुनः स्वाभाविकं सम्बन्धमवगत्य पुनस्तत्स्मरणे-ऽर्थमवगच्छन्ति । न च वाच्य-वाचकसंकेतकरणे स्वाभाविकसम्बन्धमन्तरेणानवस्थाप्रसक्तिः, बुद्धव्यवहारात् प्रभूतशब्दानां वाच्यवाचकस्वरूपावधारणात् । तथाहि-

में प्रसक्त होगा। उपरांत, मीमांसकमत में वर्णों को नित्य माना गया है अतः यदि अनित्यता मान ली जाय तो अपने सिद्धान्त से विरोध प्रसक्त होगा।

15 [ मीमांसकमान्य नित्य शब्दार्थसम्बन्ध की समालोचना ]

ऐसा नहीं कि नित्यसम्बन्धवादी के मत में नित्यसम्बन्ध के सहयोग से ही वर्ण अर्थबोध करा सके। कारण :- नित्य पदार्थ उपकारक न बन सकने से उस की आशा-अपेक्षा-भरोसा किया नहीं जा सकता। शब्द और अर्थ का नित्य कोई सम्बन्ध प्रमाणसिद्ध नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण से वैसा कोई सम्बन्ध दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रत्यक्ष के बिना अनुमान से भी कोई सम्बन्ध ज्ञात नहीं हो सकता, क्योंकि अनुमान तो प्रत्यक्षपूर्वक ही होता है। यदि कहा जाय - 'शब्द-अर्थ का स्वाभाविक सम्बन्ध न माने तो 'गौ' शब्द को सुनने के बाद खूँधादि उपांगवाले पिण्ड का बोध नहीं होगा। बोध तो वैसा होता है, इस से सिद्ध होता है शब्द में अर्थवाचक कोई शक्ति (यानि सम्बन्ध) है' - तो यह कथन निषेधाह है क्योंकि सम्बन्धज्ञानविहीन पुरुष को भी उस अज्ञात सम्बन्ध से अर्थबोध हो जाने की आपत्ति होगी। यदि कहें - 'स्वाभाविक सम्बन्ध भी जब संकेत के द्वारा अभिव्यक्त होगा तभी अर्थबोध करायेगा। अतः सम्बन्धज्ञानविहीन पुरुष को अर्थबोध हो जाने की आपत्ति नहीं होगी।' - तो हम कहते हैं कि संकेत से ही अर्थबोध मान लो, फिजुल स्वाभाविकसम्बन्ध की कल्पना व्यर्थ है। सुनिये - (संकेत ग्रहण करानेवाले वृद्धज्ञाता को व्युत्पादक कहेंगे और संकेत ग्रहण करनेवाले को व्युत्पाद्य या जिज्ञासु या व्युत्पित्सु कहेंगे) व्युत्पित्सु लोग संकेतबल से 'इस शब्द से इस प्रकार के अर्थ को व्यवहारी जन बोधित करते हैं' इस प्रकार समझ लेने पर व्यवहार प्रयोजन काल में पुनः पुनः पूर्वसदृश अर्थ को जान लेते हैं। यहाँ ऐसा नहीं है कि पहले स्वाभाविक सम्बन्ध का वेदन करे, फिर संकेत को याद करे, बाद में अर्थ का वेदन करे। ऐसा कहना - 'स्वाभाविक सम्बन्ध के बिना वाच्य-वाचक का संकेत हो जायेगा तो उस संकेत के लिये अन्य एक संकेत, उस के लिये अन्य ... अनवस्था प्रसक्त होगी' - निषेधाह है क्योंकि वृद्धज्ञानीयों

एको व्युत्पन्नव्यवहारः तथाभूताय 'गामभ्याज शुक्लां देवदत्त ! दण्डेन' इति यदा व्यपदिशति, द्वितीयस्तु तद्व्यपदेशानन्तरं तथैव विदधाति तदा अव्युत्पन्नसंकेतः शिशुः तं तथाकुर्वाणमुपलभ्यैवमवधारयति - 'अनेन गोशब्दाद् गवार्थः प्रतिपन्नः अभ्याजादिशब्दादभ्याजिक्रियादिकः, अन्यथा कथमपरनिमित्ताभावेऽपि गोपिण्डानयनादिकं वाक्यश्रवणानन्तरं विदध्यात्' एवमपोद्धारकल्पनयाऽव्युत्पन्नानां संकेतग्रहणसम्भवाद् नानवस्थादोषः। न च प्रथमसंकेतविधायिनः स्वाभाविकसम्बन्धव्यतिरेकेण वाच्य-वाचकयोः कुतो वाच्य- 5 वाचकरूपावगतिरिति वक्तव्यम् - अनादित्वादस्य व्यवहारस्यापरापरसंकेतविधायिपूर्वकत्वेन निर्दोषत्वात्। न च वाच्य-वाचकसम्बन्धस्य पुरुषकृतत्वे शब्दवदर्थस्यापि वाचकत्वम्, अर्थवच्छब्दस्यापि वाच्यत्वं प्रसक्तमिति वक्तव्यम्, योग्यताऽनतिक्रमेण संकेतकरणात्।

न च स्वाभाविकसम्बन्धव्यतिरेकेण प्रतिनियतयोग्यताया अभावः; कृतकत्वेऽपि प्रतिनियतयोग्यतावतां भावानामुपलब्धेः। तथाहि— यत्र लोहत्वं छेदिकाशक्तिस्तत्रैव क्रियमाणा दृष्टा न जलादौ, यत्रैव तन्तुत्वमस्ति 10

की कृपा से बहुत सारे शब्दों का वाच्य-वाचकस्वभाव गृहीत हो सकता है। देखिये—

### [ वृद्धव्यवहार से वाच्य-वाचक अवधारण ]

एक व्युत्पन्न व्यवहारी दूसरे व्युत्पन्न पुरुष को आदेश करता है - 'हे देवदत्त ! श्वेत गौआ को दण्ड से हाजिर करो !' वह दूसरा व्युत्पन्न देवदत्त आदेश सुन कर उसी के अनुसार प्रवृत्ति करता है। अब वहाँ एक व्युत्पित्तु बाल खडा खडा सुनता है - देखता है और निश्चय करता है कि 15 'इस देवदत्त को गोशब्द प्रयोग से गौआ का भान हुआ और 'अभ्याज' आदि शब्द से अभ्याजि (हाजिर करना) आदि क्रियादि का भान किया। नहीं तो, कैसे अन्य (अंगुली निर्देशादि) किसी निमित्त के विरह में सिर्फ वाक्य सुन कर गो-पिण्ड के आनयनादि को वह कर देता ?!' इस ढंग से अपोद्धार यानी पृथक्करण की कल्पना से अव्युत्पन्न बालादि को संकेत-ग्रहण शक्य है, पुनः पुनः संकेत बोधन की जरूरत नहीं - अतः कोई अनवस्थादि दोष नहीं है। मतलब, स्वाभाविक सम्बन्ध विनजरूरी है। 20

ऐसा मत कहना कि - 'सब से पहले जो संकेतज्ञान करेगा/करायेगा, उस को स्वाभाविक सम्बन्ध के बिना वाच्य एवं वाचक में क्रमशः वाच्यता और वाचकता का भान कैसे होगा ?' - निषेध का मूल यह है कि इस जहाँ में कोई 'सब से पहला संकेतज्ञ' नहीं है। अनादिकालीन प्रवाह से यह व्यवहार चला आता है अतः नये नये संकेतविधायकों के जरिये यह व्यवहार नितान्त निर्दोष है। ऐसा कहना - 'वाच्य-वाचक सम्बन्ध स्वाभाविक न हो कर पुरुषकृत माना जाय तो शब्द की 25 तरह अर्थ में वाचकत्व और अर्थ की तरह शब्द में वाच्यत्व का प्रसंजन आयेगा।' - निषेधार्ह है क्योंकि संकेतकारक व्युत्पन्न पुरुष संकेत की योग्यता जान कर योग्यता का उल्लंघन न हो इस ढंग से ही संकेत करेगा।

### [ प्रतिनियत योग्यता के लिये स्वाभाविक सम्बन्ध निरुपयोगी ]

योग्यता का यह मतलब नहीं कि स्वाभाविक सम्बन्ध के बिना उस का अभाव हो। प्रयत्नजन्य 30 यानी कृतक होने पर भी पदार्थों में प्रतिनियत योग्यता हो सकती है। कैसे यह देखिये— जिस में लोहत्व होता है छेदनशक्ति वहाँ दिखती है, वह लोह में होती है जलादि में नहीं होती। ऐसे ही



तत्रैव निष्पाद्यते पटोत्पादनशक्तिर्न तु वीरणादौ तत्र तन्तुत्वाभावात्। एवं च यत् यथोपलभ्यते तत् तथैवाभ्युपगन्तव्यम्, दृष्टाऽनुमितानां नियोगप्रतिषेधानुपपत्तेः। तेन यत्रैव वर्णत्वादिकं निमित्तं तत्रैव वाचिका शक्ति संकेतेनोत्पाद्यते यत्र तु तन्नियतं निमित्तं नास्ति तत्र न वाचिका शक्तिरिति न नित्यवाच्य-वाचकसम्बन्धपरिकल्पनया प्रयोजनम्। एकान्तनित्यस्य तु ज्ञानजनकत्वे सर्वदा ज्ञानोत्पत्तिः। तदजननस्व-  
5 भावत्वे न कदाचिद्विज्ञानोत्पत्तिरिति प्राक् (३२४-१२) प्रतिपादितम्। समयबलेन तु शब्दाद् अर्थप्रतिपत्तौ यथासंकेतं विशिष्टसामग्रीतः कार्योत्पत्तौ न कश्चिद् दोषः।

[ शाब्दं प्रमाणमनुमानभिन्नमिति प्रस्थापनम् ]

अत एवानुमानात् प्रमाणान्तरं शाब्दम्। अनुमानं हि पक्षधर्मत्वान्वयव्यतिरेकवल्लिङ्गबलादुदयमा-सादयति, शाब्दं तु संकेतसव्यपेक्षशब्दोपलम्भात् प्रत्यक्षाऽनुमानाऽगोचरेऽर्थे प्रवर्तते। स्वसाध्याऽव्यभिचारित्व-  
10 मप्यनुमानस्य त्रिरूपलिङ्गोद्भूतत्वेनैव निश्चीयते शाब्दस्य त्वाप्तोक्तत्वनिश्चये सति शब्दस्योत्तरकालमिति। किञ्च, शब्दो यत्र यत्रार्थे प्रतिपादकत्वेन पुरुषेण प्रयुज्यते तं तमर्थं यथासंकेतं प्रतिपादयति, न त्वेवं धूमादिकं लिंगं पुरुषेच्छावशेन जलादिकं प्रतिपादयतीत्यनुमानात् प्रमाणान्तरं सिद्धः शब्दः।

जिस में तन्तुत्व होता है वस्त्रोत्पादनशक्ति भी वहाँ ही होती है, कटउत्पादक वीरणादि में नहीं। इस प्रकार प्रतिनियम ऐसा फलित होता है कि जो जैसे जहाँ उपलब्धिगोचर होता है उस का अस्तित्व  
15 वैसे — वहाँ ही, मान्य किया जाता है। जो तथ्य अनेक विद्वानों के द्वारा दृष्ट है या अनुमित है उस के ऊपर न कोई प्रश्न करना चाहिये न तो विरोध। फलितार्थ यह है कि जिस में वर्णत्वादि निमित्त है वहाँ ही संकेत, शक्ति का उत्पादन करता है, जिस में वैसा नियत निमित्त नहीं है वहाँ वाचक शक्ति की उत्पत्ति नहीं होती। अतः शक्ति के लिये नित्य वाच्य-वाचक सम्बन्ध की कल्पना जरूरी नहीं है। एकान्तनित्य सम्बन्ध यदि ज्ञानजनक होगा तो सतत सदा ज्ञान उत्पन्न होता रहेगा।  
20 यदि उस में ज्ञानजननस्वभाव नहीं है तो कभी भी ज्ञानोत्पत्ति उस से नहीं होगी। पहले यह कहा जा चुका है — (३२४-२९)। ऐसा मानना होगा कि संकेत के बल द्वारा शब्द से अर्थबोध होता है और संकेतानुसार विशिष्ट सामग्री से कार्य यानी शाब्दबोध होता है — यहाँ कोई दोष नहीं।

[ शाब्द प्रमाण का अनुमान में अन्तर्भाव अशक्य ]

शब्द संकेत के द्वारा अर्थबोध कारक है, अनुमान में संकेत उपयोगी नहीं होता, इसी लिये शाब्दप्रमाण  
25 अनुमान से भिन्न है, अनुमान में उस का अन्तर्भाव शक्य नहीं। अनुमान तो पक्षधर्मता, अन्वय-व्यतिरेकशालि लिंग बल से उदित होता है — शाब्द तो संकेत सापेक्ष शब्द की उपलब्धि के द्वारा ऐसे परोक्ष अर्थ में प्रवृत्त होता है जहाँ प्रत्यक्ष या अनुमान की पहुँच नहीं होती। यह भी दोनों में भेद है — अनुमान का स्वसाध्याऽव्यभिचारित्व, तीनरूप (पक्षधर्मतादि) वाले लिंग से उत्पत्ति के बल से निश्चित होता है — जब कि शाब्द में स्वबोध्याऽव्यभिचारित्व आप्तोक्तत्व का निश्चय होने पर शब्दश्रवण के बाद  
30 निश्चित होता है। तदुपरांत, जिस जिस अर्थ के प्रतिबोधकतया पुरुष शब्द का प्रयोग करता है तत्तद् अर्थ को, संकेत के अनुसार शब्द प्रदर्शित करता है। अनुमानप्रक्रिया में ऐसा नहीं है कि धूमादि लिंग पुरुषइच्छा के अनुसार जलादि का बोधन करे। इस तरह भी शब्द अनुमान से भिन्न स्वतन्त्र

न च शब्दादर्थप्रतिपत्तौ शब्दस्य त्रैरूप्यमस्ति। यतो न तस्य पक्षधर्मता, यत्रार्थस्तत्र धर्मिणि शब्दस्याऽवृत्तेः, गोपिण्डाधारेण प्रदेशेन शब्दस्याश्रयाश्रयिभावस्य जन्य-जनकभावनिबन्धनस्याभावात्। अतः 'गोपिण्डवानयं देशः गोशब्दवत्त्वात्' इति नाभिधातुं शक्यम्। नापि गोपिण्डे गोशब्दो वर्तते, आधाराधेय-वृत्त्या जन्यजनकभावेन वा गोपिण्डाभावेऽपि गोशब्दस्य दर्शनात्। न च गम्य-गमकभावेन तत्रासौ वर्तते, पक्षधर्मत्वाभावे तस्यैवानुपपत्तेः। वाच्यवाचकभावेन वृत्तावनुमानात् प्रमाणान्तरत्वम्। तेन 'गोपिण्डो गोत्ववान् 5 गोशब्दवत्त्वात्' अयमपि प्रयोगोऽनुपपन्न एव। नापि गोत्वे गोपिण्डविशेषणे वर्तते तत्, सामान्येनाश्रयाश्रयि-भावस्य जन्यजनकभावस्य वाऽस्याभावात्। अतः 'गोत्वं गोपिण्डवत् गोशब्दवत्त्वात्' इत्यपि वक्तुमशक्यम्। विशेषे च साध्ये अनन्वयश्चात्र पक्षे दोषः। न च 'गोशब्दो गवार्थवान् गोशब्दवत्त्वात्' इति प्रयोगो युक्तः

प्रमाण है यह सिद्ध होता है।

### [ त्रैरूप्य के अभाव में अनुमानरूपता अस्वीकार्य ]

10

अनुमान के लिये आवश्यक त्रैरूप्य (पक्षधर्मतादि) यहाँ शब्द से अर्थबोध के लिये शब्द में जरूरी नहीं होता। कारण :- यहाँ शब्द में कोई पक्षधर्मता नहीं है कि वह हेतु हो सके। कारण, अर्थ जहाँ वृत्ति है वहाँ शब्द की वृत्ति नहीं होती। गोपिण्डाधारभूत जो देश है उस के साथ शब्द का न तो आश्रयाश्रयिभाव है न तो उस का हेतुभूत जन्य-जनकभाव है, इस लिये ऐसा परार्थानुमान बोल नहीं सकते कि 'यह देश गोपिण्डाश्रय है क्योंकि गोशब्दवान् है।' तथा, गोशब्द की गोपिण्ड में भी वृत्ति 15 नहीं है, क्योंकि गोपिण्ड के साथ गोशब्द का न तो आधाराधेयभाव है न तो जन्य-जनक भाव है, क्योंकि गोपिण्ड के विरह में भी गोशब्द की उपलब्धि होती है। ऐसा भी नहीं है कि गोपिण्ड में गोशब्द गम्य-गमक भाव से रह जाय, क्योंकि जब पक्षधर्मता ही नहीं है तब गम्य-गमकभाव कैसे होगा ? यदि वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध से अर्थ में शब्द रहने का मानेंगे तो अनुमान से भिन्न शाब्दप्रमाण की अनायास सिद्धि हो गयी। 20

### [ अनुमानरूपता की सिद्धि के व्यर्थ प्रयास ]

यही कारण है कि 'गोपिण्ड गोत्ववान् है क्योंकि गोशब्दवान् है' यह प्रयोग भी असंगत है, क्योंकि इस अनुमान के पहले ही वाच्य-वाचकभाव से गोशब्दवत्त्व मानने पर अनुमानभिन्न शाब्दप्रमाण मान लेना पड़ेगा। जैसे गोपिण्ड में गोशब्द नहीं रहता वैसे गोपिण्ड के विशेषणभूत गोत्व में भी नहीं रह सकता, क्योंकि गोत्व सामान्य के साथ गोशब्द का न तो आश्रय-आश्रयिभाव सम्बन्ध है, 25 न तो जन्य-जनक भाव है। अत एव 'गोत्व गोपिण्डवत् है क्योंकि गोशब्दवत् है' ऐसा प्रयोग भी बोलना उचित नहीं। यदि अनुमान प्रयोग के द्वारा गो-सामान्य नहीं किन्तु गोविशेषवत्त्व को साध्य करेंगे तो अनन्वय यानी व्याप्यत्वसिद्धि दोष जरूर होगा। तथा, अर्थ को पक्ष कर के शब्दवत्त्व को साध्य बना कर प्रयोग करने के बदले अब शब्द को पक्ष कर के अर्थ को साध्य किया जाय जैसे :- 'गोशब्द गोअर्थवान् हैं क्योंकि गोशब्दात्मक है' तो यह भी असंगत है क्योंकि शाब्दबोध में ऐसी प्रतीति 30 किसी को नहीं होती। कोई बोल दे - 'गौआ जा रही है' तो यहाँ गमन क्रिया विशिष्ट गो अर्थ की प्रतीति को नहीं मानेंगे तो किसी भी लोग को ऐसा बोध (अनुमानरूप) हो नहीं सकता कि

तथाप्रतीत्यभावात्। न हि 'गौर्गच्छति' इत्युक्ते गमनक्रियाविशिष्टगवार्थप्रतीतिमन्तरेण गोपिण्डेन तद्वान् शब्दो लोकेनाऽवगम्यते। न च गोशब्दो गवार्थवाचकत्वेन गोशब्दत्वादनुमीयते किन्तु गवार्थप्रतिपत्त्यन्यथानुपपत्त्या गवार्थवाचकत्वं तस्य गम्यते।

प्रतिनियतपदार्थनिवेशिनां तु देवदत्तादिशब्दानां नान्वयः नापि पक्षधर्मता दृष्टान्ताभावात्। दृष्टान्त-  
5 दार्ष्टान्तिकभेदे चानुमानप्रवृत्तेः। न च शाब्दं स्वभावलिङ्गजमनुमानम् शब्दस्यार्थस्वभावत्वासिद्धेः आकार-  
भेदात् प्रतिनियतकरणग्राह्यत्वात् वाचकस्वभावत्वाच्च तस्य। नापि कार्यलिङ्गजम् अर्थाभावेऽपीच्छातः  
शब्दस्योत्पत्तेः। न च न बाह्यार्थविषयत्वेन शब्दस्यानुमानता सौगतैरभ्युपगम्यते अपि तु विवक्षाविषय-  
त्वेनेति वक्तव्यम्, यतो यथा न तदर्थो विवक्षा तथा शब्दप्रामाण्यप्रतिपादनेऽभिहितम् (३२०-५) न  
पुनरुच्यते।

10 [ मीमांसकमतोक्तं वर्णानां वाचकत्वमसंगतम् ]

न च मीमांसकाभिप्रायेण वर्णानां वाचकत्वम् अभिव्यक्तानभिव्यक्तपक्षद्वयेऽपि दोषात्। अनभिव्यक्तानां  
ज्ञानजनकत्वे सर्वपुरुषान् प्रति सर्वे सर्वदा ज्ञानजनकाः स्युः केनचित् प्रत्यासत्ति-विप्रकर्षाभावात्। अभिव्यक्तानां  
गोपिण्ड से अभिन्न अर्थवाला गो शब्द है। (मतलब शाब्दबोध में अर्थविशेष्यक ही बोध होता है  
शब्दविशेष्यक बोध नहीं होता।) वस्तुस्थिति यह है कि गोशब्दत्व हेतु से गो-अर्थवाचकत्वरूप से गोशब्द  
15 की प्रतीति कभी नहीं होती, किन्तु गोअर्थप्रतीतिरूप शाब्दबोध के बाद की अन्यथा अनुपपत्ति से गोशब्द  
में गोअर्थवाचकत्व का अवबोध होता है।

[ शाब्दप्रमाण स्वभावलिङ्गक अनुमान नहीं ]

देवदत्तादि नाम तो ऐसे हैं जो एक-दो व्यक्ति के ही वाचक होते हैं (कोई बड़ा समुदाय नहीं  
जैसे गोशब्द पूरे गोसमुदाय का वाचक होता है) उन के लिये तो कोई अन्वयव्याप्ति बन नहीं सकती,  
20 न पक्षधर्मता हो सकती है और दृष्टान्त भी नहीं मिलेगा, अतः अनुमानप्रवृत्ति भी नहीं हो सकेगी  
क्योंकि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक (पक्ष) एक न होने पर ही अनुमान प्रवृत्त हो सकता है। शाब्द  
बोध स्वभावलिङ्गक अनुमानरूप भी नहीं है, क्योंकि घटादि शब्द कोई घटादिअर्थ का स्वभाव नहीं  
है। शब्द और अर्थ के आकार एक नहीं होते, शब्द सिर्फ श्रोत्रेन्द्रियग्राह्य होता है जब कि अर्थ चक्षुरादि  
अन्य इन्द्रियों से ग्राह्य होता है। अर्थ वाचकस्वभाव नहीं है, शब्द वाचकस्वभाव है — जब इतना  
25 बड़ा भेद है तो शब्द-अर्थ एक कैसे हो सकता है ? 'अनुमान जैसे बाह्यार्थ विषयक है वैसे शब्द  
भी बाह्यार्थविषयक है अतः अनुमानरूप क्यों नहीं ?' ऐसा हम बौद्ध नहीं कहते (क्योंकि उन के  
मत में शब्द बाह्यार्थजन्य न होने से बाह्यार्थविषयक नहीं होता) किन्तु हम कहते हैं कि शब्द विवक्षाविषयक  
होते हैं" — ऐसा कहना निषेधपात्र है क्योंकि शब्दप्रामाण्य के प्रकरण में (३२०-५) हम कह चुके  
हैं कि विवक्षा शब्द का अर्थ नहीं हो सकती — अतः यहाँ पुनरुक्ति नहीं करते।

30 [ मीमांसक मत में वर्णों में अप्रामाण्य की आपत्ति ]

मीमांसक दर्शन में वर्णों का वाचकत्व विकल्पों से संगत नहीं होता। अभिव्यक्त एवं अनभिव्यक्त  
— दोनों पक्षों में दोष लगे हैं। यदि अनभिव्यक्त वर्णों को ज्ञानजनक मानेंगे तो एक के लिये ही

ज्ञानजनकत्वे एक वर्णावरणापाये सर्वेषां समानदेशत्वेनाऽभिव्यक्तत्वात् युगपत् सर्वश्रुतिप्रसक्तिरित्युक्तं प्राक् (प्रथम खण्डे पृ०१५२, अस्मिन् खण्डे-३२०-५)। इन्द्रियसंस्कारपक्षेऽपि पूर्वप्रतिपादितमेव (प्र० खण्डे १५६-४) दूषणमनुसर्तव्यम्। किञ्च, यद्यनवगतसम्बन्धा वर्णा अर्थप्रत्यायकास्तदा नालिकेरद्वीपवासिनोऽप्युपलभ्यमाना अर्थावगतिं विदधुः। अथावगतसम्बन्धाः, तथा सति पदस्य स्मारकत्वमेव स्याद् न वाचकत्वम्। तथा चानधिगतार्थाधिगमहेतुत्वाभावात् न प्रमाणता भवेत्। तदुक्तम् [श्लो०वा०शब्द०श्लो०११७] — 5

पदं त्वभ्यधिकाभावात् स्मारकात् विशिष्यते। अथाधिक्यं भवेत् किञ्चित् स पदस्य न गोचरः।।

तत्र मीमांसकमतेनापि वर्णानां शब्दत्वम्।

कथं तर्हि वर्णाः शब्दरूपतां प्रतिपद्यन्ते ? उक्तम् (प्र० खण्डे ६२४-१) अत्र परिमितसंख्यानां पुद्गलद्रव्योपादानाऽपरित्यागेनैव परिणतानामश्रावणस्वभावपरित्यागाऽवाप्तश्रावणस्वभावानां विशिष्टान्कम-युक्तानां वर्णानां वाचकत्वात् शब्दत्वम् अन्यथोक्तदोषानतिवृत्तेः। वैशेषिकपरिकल्पितपदादिप्रक्रिया त्वन्भुव-बाधितत्वादयुक्ता। न च निरन्वयविनाशिनं विज्ञानहेतुता सम्भवतीत्यसकृत् प्रतिपादितम्। षट्क्षणाव-

जन्हीं सभी पुरुषों के लिये सर्व वर्ण सदा के लिये अनभिव्यक्त होने के कारण ज्ञानजनक बन जायेंगे, क्योंकि अनभिव्यक्त वर्ण न किसी पुरुष से नजदीक हैं न तो दूर हैं। यदि अभिव्यक्त वर्णों को ज्ञानजनक मानेंगे तो एक वर्ण के आवरण दूर होने पर सभी के लिये दूर हो जाने से (एक व्यक्ति के लिये पर्दा हटाने पर सभी व्यक्ति को जैसे पुरोवर्ती दृश्य दिखाई देता है वैसे) समानदेशवर्ती होने से सभी पुरुषों के लिये वर्ण अभिव्यक्त हो जायेंगे, फलतः एक साथ उन सभी को सर्व वर्णश्रावण प्रसक्त होगा। पहले यह कह दिया गया है। वर्ण द्वारा जैसे स्फोट संस्कार की वार्त्ता असंगत ठहरायी है वैसे इन्द्रिय के संस्कार की वार्त्ता के लिये भी पूर्वोक्त दूषण (प्र० खण्डे १५६-१८) यहाँ समझ लेना। 15

और भी विकल्प हैं — यदि सम्बन्ध के अज्ञात रहते हुए भी वर्ण अर्थबोधकारक माने जायेंगे तो नालिकेरद्वीपवासी लोगों को भी (जिन्हें शब्द-अर्थ का सम्बन्ध अज्ञात हैं उन्हें) वर्णों का उपलम्भ होने पर अर्थबोध प्रसक्त होगा। यदि ज्ञातसम्बन्धवाले वर्णों से अर्थबोध मानेंगे तो मतलब यही निकला कि पद सिर्फ अर्थस्मृति के ही जनक हैं, वाचक नहीं हैं। इस स्थिति में पूर्वानुभूत अर्थ के ही स्मृतिबोध कारक ये वर्ण अनधिगत अर्थ बोध हेतु न होने से प्रमाण ही नहीं हो पायेंगे। कहा है श्लोकवार्त्तिक में (शब्दप० श्लो० १०७) — 20

‘अधिकबोधकारकता के विरह में पद तो स्मारक से भिन्न नहीं हुए। यदि कुछ अधिक बोधकारक बनते हैं तो वह पद का गोचर नहीं रह पायेगा।’ सारांश, मीमांसकमताभिप्रेत वर्णों में बोधकता न होने से शब्दता भी हो नहीं सकती। 25

### [ जैनदर्शनानुसार वर्णों की शब्दरूपता संगत ]

प्रश्न :- फिर वर्णसमूह शब्दरूपता कैसे हाँसिल करते हैं। (शब्द बोध के जनक वर्ण नहीं है शब्द है, तो क्षणिक वर्णों से एक शब्द बनेगा कैसे — यह प्रश्न का हार्द है। 30

उत्तर :- पहले कह आये हैं (प्र० खण्डे ६२४-२६) — शब्द पुद्गलद्रव्य (= भूतात्मक) रूप हैं। वर्णों से शब्द इस प्रकार बनता है — पुद्गलद्रव्यरूप उपादान को न छोड़ते हुए, परिमितसंख्यावाले वर्ण पूर्वकाल में अश्रावणस्वभाववाले होते हैं किन्तु ओष्ठादिव्यापार से श्रावणस्वभाव में परिणत होते हैं, उन में विशिष्ट

स्थाथित्वलक्षणमप्यनित्यत्वं तत्परिकल्पितं निरन्वयविनाशपक्षे अर्थक्रियानिर्वर्तनानुपयोगि तेषाम्। न च षट्क्षणावस्थानमपि सम्भवति, प्रथमक्षणसत्ताया द्वितीयक्षणसत्तानुप्रवेशे तत्क्षणसत्ताया अप्युत्तरक्षणसत्तानुप्रवेशपरिकल्पनायां क्षणिकत्वमेव, अननुप्रवेशेऽपि परस्परविविक्तत्वात् क्षणस्थितीनां तदेव क्षणिकत्वमिति कुतः षट्क्षणावस्थानमेकस्य ? अक्षणिकत्वे चार्थक्रियाविरोधः प्रतिपादित एवेति न पदादिपरिकल्पना

5 वैशेषिकपक्षे युक्तियुक्तेति स्थितम्।

ननु भवत्पक्षेऽपि क्रमस्य वर्णभ्यो व्यतिरेके न वर्णविशेषणत्वम् अव्यतिरेके वर्णा एव केवलाः। ते च न व्यस्त-समस्ता अर्थप्रतिपादका इति पूर्वमेव प्रतिपादितमिति न शब्दः कश्चिदर्थप्रत्यायकः। असदेतत्— वर्णव्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्तस्य क्रमस्य प्रतिपत्तेः। तथाहि— न वर्णभ्योऽर्थान्तरमेव क्रमः, वर्णानुविद्धतया तस्य प्रतीतेः। नापि वर्णा एव क्रमः तद्विशिष्टतया तेषां, न च तद्विशेषणत्वेन प्रतीयमानस्य क्रमस्याऽपहनवो

10 युक्तिसंगतः, वर्णेष्वपि तत्प्रसक्तेः। न च भ्रान्तिरूपा प्रतिपत्तिरियम्, वर्णानां तद्विशिष्टतयाऽबाधिताध्यक्ष-

अनुक्रम बना रहता है, इस प्रकार क्रमबद्ध वर्णसमुदाय ही वाचक होने से 'शब्द' कहा जाता है। इस प्रकार शब्द को न मान कर अन्य किसी प्रकार से उस को मानेंगे तो स्फोटवादादि में जो दूषण आते हैं उन का परिहार अशक्य होगा। वैशेषिकों की दर्शायी हुई पटादि प्रक्रिया अनुभवबाधित होने से गलत है। निरन्वयविनाशी वर्णों से विज्ञान जन्म शक्य नहीं है — यह कई बार कहा जा चुका है।

15 वैशेषिकों के मत में वर्णों को निरन्वय विनाशी माने गये हैं अतः उन्होंने जो छः-क्षणजीवित्वस्वरूप अनित्यत्व का निरूपण किया है वह भी अर्थक्रिया सम्पादन में निरुपयोगी है। वैशेषिकमत का यह षट्क्षणजीवित्वमत भी चिरंजीवी नहीं है, क्योंकि यहाँ दो विकल्प हैं — पूर्वक्षणसत्ता का उत्तरक्षणसत्ता में अनुप्रवेश यानी अन्वय है या नहीं ? यदि प्रथमक्षणसत्ता का द्वितीयक्षणसत्ता में अन्वय है, तो उत्तरोत्तर पंचमक्षणसत्ता का षष्ठक्षणसत्ता में अनुप्रवेश मानना ही पड़ेगा, फलतः सभी क्षणों का अन्तिम

20 क्षण में अनुप्रवेश हो जाने से आखिर तो क्षणमात्रजीवित्व ही प्रसक्त हुआ। यदि अनुप्रवेश नहीं है, तो परस्पर सर्वथा एक-दूसरे से पृथक् होने के कारण, सभी वर्ण एकक्षणजीवी ही बन गये, फिर एक एक का षट्क्षणजीवित्व बचेगा कैसे ? यदि वर्णों को अक्षणिक मानेंगे तो उन में अर्थक्रियाकारित्व से विरोध होता है यह पहले कहा जा चुका है, अतः वर्णों से पद... इत्यादि कल्पना वैशेषिक दर्शन की युक्तिसंगत नहीं — यही निष्कर्ष आया।

25 [ क्रम और वर्णों के भेदाभेद से सर्वसंगति ]

‘अरे ! आपने भी विशिष्टानुक्रम का उच्चार किया। पहले तो आपने ही (३१३-२४) में भेद-अभेद विकल्प कर के कहा है — क्रम वर्णों से भिन्न होगा तो वर्णों का विशेषण (सम्बन्धानुपपत्ति के कारण) घटेगा नहीं, यदि अभिन्न होगा तो केवल वर्ण ही बचे। वर्ण तो पृथक् पृथक् या समुदित — एक भी प्रकार से अर्थप्रतिपादक नहीं हो सकते। (३१३-२२) ऐसा आपने ही पहले निरूपण किया

30 है।” — ऐसा विरोधापादन निरर्थक है, क्योंकि हमारा तीसरा पक्ष है, वर्णों से भिन्नाभिन्न क्रम स्वीकृत है, सुप्रतीत है। देखिये — क्रम वर्णों से एकान्त पृथक् नहीं है, क्योंकि वर्णों से ओतप्रोत क्रम सर्व जनों को प्रतीतिसिद्ध है। वर्णों से क्रम सर्वथा अभिन्न भी नहीं है, क्योंकि विशेषण के रूप में क्रम

गोचरतया प्रसाधितत्वात् अर्थप्रतिपत्तिकारणतोऽनुमितत्वाच्च । न चाभावः कस्यचिद् भावाध्यवसायितया विशेषणम्, नाप्यर्थप्रतिपत्तिहेतुः । न च क्रमोप्यहेतुः तथात्मकवर्णोऽर्थप्रतीतेः । ततो भिन्नाभिन्नानुपूर्वीविशिष्टा वर्णा विशिष्टपरिणतिमन्तः शब्दः । स च पद-वाक्यादिरूपतया व्यवस्थितः, तेन विशिष्टानुक्रमवन्ति तथाभूतपरिणतिमापन्नानि पदान्येव वाक्यमभ्युपगन्तव्यम् । तद्व्यतिरिक्तस्य तस्य पदवदनुपपद्यमानत्वात् ।

यच्च 'कथं शब्दो वस्त्वन्तरत्वात् पुरुषादेर्वस्तुनो धर्मो येनासौ तस्य व्यञ्जनपर्यायो भवेत्' इत्युक्तम् 5  
(३१२-९) तत्र नामनयाभिप्रायात् नामनामवतोरभेदात् 'पुरुष' शब्द एव पुरुषार्थस्य व्यञ्जनपर्यायः । यद्वा 'पुरुष' इति शब्दो वाचको यस्यार्थगततद्वाच्यधर्मस्यासौ पुरुषशब्दः स चाभिधेयपरिणामरूपो व्यञ्जन-पर्यायः कथं नार्थधर्मः ? स च व्यञ्जनपर्यायः पुरुषोत्पत्तेरारभ्य आ पुरुषविनाशाद् भवति इति जन्मादि-र्मरणसमयपर्यन्त उक्तः । तस्य तु बालादयः पर्याययोगा बहुविकल्पाः तस्य पुरुषाभिधेयपरिणामवतो बाल-कुमारादयस्तत्रोपलभ्यमाना अर्थपर्याया भवन्त्यनन्तरूपाः । एवं च पुरुषो व्यञ्जनपर्यायेणैको बालादिभिस्त्वर्थ- 10

और तद्विशिष्टरूप से वर्णों की कथंचिद् भेदरूप से प्रतीति होती है। वर्णों के विशेषणरूप से अनुभूयमान क्रम का अपलाप करना युक्तियुक्त नहीं है, अन्यथा तो अनुभूयमान वर्णों का भी अपलाप करना होगा। यह प्रतीति भ्रान्तिरूप नहीं है क्योंकि क्रमविशिष्टरूप से वर्णों की अनिर्बाधप्रत्यक्षरूप से प्रतीति समर्थित है, तथा क्रम से भिन्नाभिन्न वर्णों रूप कारण की अनुमिति भी होती है।

पहले जो पूर्ववर्णध्वंसविशिष्ट अन्त्य वर्ण का कथन किया था (३१६-२६) वहाँ कहना पड़ेगा 15 कि ध्वंसात्मक अभाव, भावात्मकतासंवेदक बोध में विशेषणरूप से प्रतीत नहीं हो सकता। न तो वह भावसंवेदन का हेतु हो सकता है। 'उसी तरह क्रम भी कारण न बन सके' ऐसा मत बोलना, क्रमविशिष्ट (क्रमात्मक) वर्णों से अर्थबोध सुविदित है। सारांश, भिन्नाभिन्न आनुपूर्वी से विशिष्ट वर्ण ही विशेषरूप से परिणत हो कर 'शब्द' बन जाते हैं, जो कभी पदरूप या कभी वाक्यरूप से संविदित होता है। इस प्रकार, विशिष्ट अनुक्रम गर्भित विशिष्टपरिणामापन्न पदसमूह ही वाक्य मानना होगा। 20 इस से भिन्न किसी भी प्रकार का 'पद' भी संगत नहीं है और उसी तरह 'वाक्य' भी संगत नहीं।

### [ व्यञ्जन पर्यायरूप शब्द वाच्य अर्थ का पर्याय ]

यह जो पहले प्रश्न किया था (३१३-११) पुरुष और उस का वाचक शब्द भिन्न भिन्न है तब शब्द पुरुषादिआत्मक वस्तु का धर्म कैसे होगा जिस से कि शब्द पुरुषात्मक अर्थ का 'व्यञ्जनपर्याय' कहा जा सके ? उस का उत्तर यह है कि नामनय (= शब्दनय) का अभिप्राय ऐसा है कि नाम 25 और नामवंत का अभेद होता है। अतः 'पुरुष' शब्द ही स्वयं पुरुषरूप अर्थ का व्यञ्जनपर्याय है। अथवा मूल गाथा में 'पुरुषशब्द' समास का विग्रह ऐसा करो - 'पुरुष' यह 'शब्द' है वाचक जिस का (यानी पुरुषात्मक अर्थनिष्ठ जो पुरुषशब्द वाच्य पुरुषत्व धर्म का) वह धर्म है पुरुषशब्द। वह पुरुषत्व अभिधेय वस्तु का परिणामरूप जो धर्म है वह व्यञ्जनपर्याय भी एक प्रकार से अर्थधर्म क्यों नहीं है ? ऐसा व्यञ्जनपर्याय पुरुषोत्पत्ति से ले कर पुरुषमृत्युपर्यन्त रहता है, अतः ३२ वीं मूल 30 गाथा में 'जन्मादिर्मरणसमयपर्यन्त' ऐसा पूर्वार्ध में कहा है। उत्तरार्ध में कहा है 'उस के बालादि पर्याय योग बहुविकल्प हैं - उस का मतलब यह है कि पुरुष अभिधेयपरिणामयुक्त उस के (पुरुष के) बाल-

पर्यायरनेकः ॥३२॥

यथा पुरुषस्तथा सर्व वस्त्वेकमनेकं वा, सर्वस्य तथैवोपलब्धेः अन्यथाभ्युपगमे एकान्तरूपमपि तत्र भवेदिति दर्शयन्नाह—

(मूलम्-) अत्थिति णिव्वियप्पं पुरिसं जो भणइ पुरिसकालम्मि।

5

स बालाइवियप्पं न लहइ तुल्लं व पावेज्जा ॥३३॥ इति

‘अस्ति’ इति = एवं निर्विकल्पं = निष्क्रान्ताशेषभेदस्वरूपं पुरुषम् एकरूपं पुरुषद्रव्यम् यो ब्रवीति पुरुषकाले = पुरुषोत्पत्तिक्रम एव असौ बालादिभेदं न लभते बालादिभेदरूपतया नासौ स्वयमेव व्यवस्थितिं प्राप्नुयात्। नापि तद्रूपतयाऽपरमसौ पश्येत्। एवं चाभेदरूपमेव तत् पुरुषवस्तु प्रसज्येत। तुल्यं वा प्राप्नुयात् — तदप्यभेदरूपं बालादितुल्यतामेवाऽभावरूपतया प्राप्नुयात् भेदाऽप्रतीतावभेदस्याऽप्यप्रतीतेरभाव इति भावः।

10

यद्वा ‘अस्ति’ इति = एवं निर्विकल्पम्— निश्चितो विकल्पो भेदो यस्मिन् पुरुषद्रव्ये तद् निर्विकल्पं भेदरूपं पुरुषं तत्स्वरूपलाभकाले भणति असौ बालादिविकल्पं न लभेत तुल्यम् इति द्रव्यतुल्यतामेवासाँ

कुमारादि पुरुष में दृश्यमान अर्थपर्याय अनन्तसंख्यक होते हैं। इस से यह फलित हुआ कि पुरुष व्यञ्जनपर्याय से एक है और बालादि अर्थपर्यायों से अनेक भी है ॥३२॥

[ पुरुष की एकानेकरूपता न मानने पर अनिष्टापत्ति ]

15

पूर्व गाथा में यह कहा कि पुरुष जैसे एकानेक रूप होता है, तथैव सर्व वस्तु भी एकानेकरूप होती है क्योंकि सर्व वस्तु का एकानेकरूप से ही उपलम्भ होता है। उपलम्भ की उपेक्षा कर के एकान्त एकरूप या एकान्त अनेकरूप माना जाय तो उस की एकान्तरूपता घट ही नहीं सकेगी — यह ३३ वीं गाथा में दर्शाते हैं —

गाथार्थ :- पुरुषकाल में पुरुष के लिये ‘अस्ति’ ऐसा भेदमुक्त वचनप्रयोग करता है वह बालादि

20 भेद का परिचय नहीं पाता, अथवा समानता ही मिलेगी ॥३३॥

व्याख्यार्थ :- दो प्रकार से गाथा की व्याख्या की गयी है। (१) पुरुषकाल में यानी पुरुषजन्म से ले कर मृत्यु तक जो उस के लिये पुरुष...पुरुष ऐसा एकविध पुरुषद्रव्य का ‘अस्ति’ = है ऐसा प्रयोग करता है उस के मत में बालादिविविधपर्यायों का निश्चितरूप से परिचयलाभ नहीं हो पायेगा। एकान्तभेदरूपता माननेवाले को बालादि कुछ नहीं दिखायी देगा। अन्ततः वह पुरुष वस्तु एकान्त अभेदरूप

25

ही प्रसक्त होगी। अथवा, एकान्तवाद में वह अभेदरूप भी सुस्थित नहीं हो पायेगा, बालादि-तुल्यता

प्रसक्त होगी। मतलब, एकान्तवादी जैसे बालादि का निषेध ध्वनित करता है वैसे अभेदरूप का भी निषेध फनित होगा क्योंकि भेद उपलब्ध नहीं होगा तो अभेदप्रतीति का भी अभाव होने से अभेद का अभाव आ पड़ेगा। जैसे उन्नति-अवनति, एक की प्रतीति के बिना दूसरी प्रतीति नहीं होती। (२) अथवा, निर्विकल्प समास का विग्रह इस तरह करना — निश्चित (सिद्ध) है विकल्प यानी भेद जिस

30

पुरुष द्रव्य में ऐसे निर्विकल्प यानी भेदवाले अर्थात् भेदरूप पुरुष को अपने जन्मादि काल में ‘अस्ति’ ऐसा ही निर्देश करता है (यानी ‘पुरुष’ ऐसा विशिष्ट निर्देश ही करता है) उस को पुरुषभिन्न बालादिविकल्प

प्राप्नुयात्। अत्रापि पूर्ववत् तदग्रहे तदग्रहाद् भेदरूपताया अप्यभाव इति भावः। न चैवमेवास्त्विति वक्तव्यम् सर्वव्यवहारोच्छेदप्रसक्तेरिति भेदाभेदरूपमेव वस्त्वस्तु।।३३।।

अस्यैवोपसंहारार्थमाह-

(मूलम्-) वंजणपज्जायस्स उ पुरिसो 'पुरिसो'त्ति णिच्चमवियप्पो।

बालाडिवियप्पं पुण पासइ से अत्थपज्जाओ।।३४।।

5

शब्दपर्यायेणाऽविकल्पः पुरुषो बालादिना त्वर्थपर्यायेण सविकल्पः सिद्धः इति गाथातात्पर्यार्थः। 'व्यञ्जयति व्यनक्ति वाऽर्थान् इति व्यञ्जनम् = शब्दः, न पुनः शब्दनयः, तस्य ऋजुसूत्रार्थनयविषयत्वात्।' इति केचित् — तस्य पर्यायः आ जन्मनो मरणान्तं यावदभिन्नस्वरूपपुरुषद्रव्यप्रतिपादकत्वम् तद्वशेन तत्प्रतिपाद्यं वस्तुस्वरूपमत्र ग्राह्यमुपचारात्। एवं च द्वितयमप्येतत् पुरुषः 'पुरुषः' इति अभेदरूपतया न भिद्यते — व्यञ्जनपर्यायमतेन पुरुषवस्तु सदा अविकल्पम् भेदं न प्रतिपद्यत इति यावत्। बालादिविकल्पं 10 = बालादिभेदं पुनस्तस्यैव पश्यति अर्थपर्यायः ऋजुसूत्रार्थनयः। अत्रापि विषयिणा विषयः ऋजुसूत्रार्थ-

का लाभ मिलेगा नहीं, सिर्फ उस पुरुष में द्रव्याभिन्नता ही प्राप्त होगी। यहाँ भी प्रथम व्याख्या की तरह एक का (अभेद का) ग्रहण न होने पर दूसरा (यानी भेद) भी गृहीत होता नहीं, अतः भेदरूपता का अभाव प्रसक्त होगा। ऐसा भले हो — यह बोलना मत, क्योंकि भेद या अभेद का उच्छेद होने पर सभी व्यवहारों का उच्छेद प्राप्त होगा। निष्कर्ष, सकल वस्तु भेदाभेदोभयरूप 15 होती है।।३३।।

इस के उपसंहार में गाथा ३४ में ग्रन्थकार कहते हैं —

गाथार्थ :- व्यञ्जनपर्याय से तो पुरुष हरहमेश अविकल्पतया 'पुरुष' है। उस के बालादि विकल्प को तो अर्थपर्याय देखता है।।३४।।

व्याख्यार्थ :- गाथा का तात्पर्यार्थ यह है कि शब्दपर्याय की नजरों में पुरुष अविकल्प (अभेदरूप) 20 है जब कि अर्थपर्याय की नजरों में पुरुष बालादि प्रकार से सविकल्प (सभेद) सिद्ध है।

'व्यञ्जन' की व्युत्पत्ति :- अर्थों को व्यक्त करे यह है व्यञ्जन, यानी शब्द, शब्दनय नहीं। शब्द तो ऋजुसूत्ररूप अर्थनय का विषय है ऐसा कुछ विद्वानों का अभिप्राय है। इस लिये व्यञ्जन का अर्थ शब्दनय नहीं है। 'पर्याय' पद का अर्थ :- जन्म से ले कर मरणपर्यन्त अभिन्न (= एकात्मक) पुरुषद्रव्य का प्रतिपादन करनेवाला — ऐसा पर्याय व्यञ्जन का पर्याय है। यहाँ व्यञ्जन का अर्थ यद्यपि शब्द 25 ही है किन्तु उपचार से यहाँ प्रस्तुत में शब्द के द्वारा दर्शित वस्तुस्वरूप (अभेद पुरुष) का उल्लेख समझना होगा। शब्द और उस का अर्थ इन दोनों ही अर्थों को लक्ष में ले कर ग्रन्थकार गाथा में कहते हैं पुरुष (अर्थ) एवं 'पुरुष' इस प्रकार शब्द अभेदात्मक होने से व्यञ्जनपर्याय के मत में भेद नहीं रखते, अतः पुरुषात्मक वस्तु णिच्चमवियप्पो = सदा अविकल्प यानी भेदमुक्त रहता है।

अर्थपर्याय यानी जो ऋजुसूत्रादि अर्थनय हैं उन की नजरों में उसी पुरुष के बालादिविकल्प यानी 30 बालादि भेद दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ व्याख्या में 'अर्थपर्याय' पद का 'ऋजुसूत्रादिअर्थनय' ऐसा अर्थ



नयविषयः अभिन्ने पुरुषरूपे भेदस्वरूपो निर्दिष्टः उपचारात्। एवं चाभिन्नं पुरुषवस्तु भेदं प्रतिपद्यते इति यावत्॥३४॥

एवं निर्विकल्प-सविकल्पस्वरूपे प्रतिपाद्ये पुरुषादिवस्तुनि तद्विपर्ययेण तद् वस्तु प्रतिपादयन् वस्तुस्वरूपानवबोधं स्वात्मनि ख्यापयतीति दर्शनार्थमाह—

5 (मूलम्-) सवियप्प-णिच्चियप्पं इय पुरिसं जो भणेज्ज अवियप्पं।

सवियप्पमेव वा णिच्छएण ण स निच्छिओ समए॥३५॥

सविकल्प-निर्विकल्पं स्यात्कारपदलाञ्छितं पुरुषद्रव्यं यः प्रतिपादकः तद् वस्तु ब्रूयात् अविकल्पमेव सविकल्पमेव वा निश्चयेन इत्यवधारणेन स यथावस्थितवस्तुप्रतिपादने प्रस्तुतेऽन्यथाभूतं वस्तुतत्त्वं प्रतिपादयन् न निश्चित इति निश्चयो = निश्चितम् तदस्यास्तीति निश्चितः— अर्शआदित्वात् अच्, समये परमार्थेन

10 पूर्ववत् विषयी के साथ विषय यानी ऋजुसूत्रादिअर्थनय का विषय कहा गया, यहाँ अभिन्न पुरुषात्मक वस्तु का भेदप्रदर्शन हुआ है वह भी उपचार से समझना। तात्पर्य, अर्थनय की नजरों में अभिन्न एक पुरुषवस्तु भेदग्रस्त माना गया है॥३४॥

[ सविकल्प-निर्विकल्प उभयरूप से वस्तुप्रतिपादन सत्य ]

15 अवतरणिका :- पुरुषादि वस्तु का सविकल्प (= भेद) अविकल्प (= अभेद) उभयप्रकार से प्रतिपादन किया जाय तो वह सत्य है किन्तु उस से विपरीत एकान्ततः किसी एक प्रकार से जो वक्ता निरूपण करेगा वह सिर्फ अपने, वस्तुस्वरूप के अज्ञान को खुल्ला करेगा — इस तथ्य को दिखाने के लिये कहते हैं —

गाथार्थ :- सविकल्प-निर्विकल्प पुरुष को जो निश्चयतः अविकल्प या सविकल्प ही कहता है वह सिद्धान्त में निश्चयविकल है॥३५॥

20 व्याख्यार्थ :- 'स्यात्' (= कथंचित्) इस पद का उच्चार 'स्यात्कार' है। ऐसे स्यात्कार पद से अलंकृत (= अलंकरणार्ह) सविकल्प-अविकल्प उभयरूप जो पुरुषद्रव्य है उस के निरूपण में जो वक्ता भारपूर्वक निश्चयतः एकान्ततः अविकल्प या सविकल्प ही दिखायेगा वह निश्चितात्मा नहीं है। यहाँ यथार्थवस्तुनिरूपण का प्रस्ताव चल रहा है तब तत्त्व से विपरीत एकान्ततः वस्तुतत्त्व का प्रतिपादन करनेवाला सुनिश्चित कैसे हो सकता है ? सिद्धान्त के बारे में वह परमार्थतः वस्तुसार का ज्ञाता नहीं है। यहाँ 'निश्चित' पद मूल गाथा में है, निश्चय अर्थवाले उस 'निश्चित' पद को तद्वान् (निश्चयवान्) अर्थ में फलित करने के लिये पाणिनिव्याकरणानुसार अर्शआदि पदों से 'अच्' प्रत्यय स्वामित्व अर्थ में होता है उस का आधार प्रदर्शित किया गया है — निश्चित (= निश्चय) है जिस के पास वह है निश्चित। यहाँ 'अच्' प्रत्यय करने पर पद का रूप नहीं बदलता किन्तु 'निश्चयवान्' ऐसा अर्थ निकल आता है।

30 कैसे यह सुनो :- वस्तुतत्त्व का सही निरूपक वही है जो प्रमाणतः निश्चित एवं प्रमाण के

▼. 'अर्शआदिभ्यो अच् (५-२-१२७)' पाणिनि० ।

वस्तुसत्त्वस्य परिच्छेतेति यावत्। तथाहि— प्रमाणपरिच्छिन्नं तथैवाऽविसंवादि वस्तु प्रतिपादयन् वस्तुनः प्रतिपादक इत्युच्यते। न च तथाभूतं वस्तु केनचित् प्रतिपन्नं प्राप्यते वा येन तथाभूतं तद्वचः तत्र प्रमाणं भवेत् तथाभूतवचनाभिधाता वा तज्ज्ञानं वा प्रमाणतया लोके व्यपदेशमासादयेत्॥३५॥

[ गाथापञ्चकेन सप्तभंगीस्वरूपनिरूपणार्थमारम्भः ]

▼परस्परक्रान्तभेदाभेदात्मकस्य वस्तुनः कथञ्चित् सदसत्त्वमभिधाय तथा तदभिधायकस्य वचसः 5 पुरुषस्यापि तदभिधानद्वारेण सम्यग्मिथ्यावादित्वं प्रतिपाद्य, अधुना भावाभावविषयं तत्रैवैकान्तानेकान्तात्मकमंशं प्रतिपादयतो विवक्षया सुनय-दुर्नय-प्रमाणरूपतां तत्रप्रतिपादकं वचो यथानुभवति तथा प्रपञ्चतः प्रतिपादयितुमाह—

यद्वा, यथैव तद् वस्तु व्यवस्थितं तथैव— बौद्ध-कणभुजामिव अभिन्न-भिन्न-परस्परनिरपेक्षोभयवस्तु-स्वरूपाभिधायिनामर्हन्मतानुसारिणामपि 'स्यादस्ति' इत्यादिसप्तविकल्परूपतामनापन्नवचनं वक्तृणां 10 स्यात्कारपदाऽलाञ्छितवस्तुधर्मं प्रतिपादयतामनिपुणता भवेदिति प्रपञ्चतः सप्तविकल्पोत्थाननिमित्तमुपदर्शयितुं गाथासमूहमाह—

साथ अविसंवादी वस्तु का प्रतिपादन करता हो। एकान्तगर्भित किसी एक ही प्रकारवाली वस्तु कदापि किसी ने भी न तो कभी नजर में लिया है न तो ले रहा है, जिस से कि उस का एकान्तवस्तुप्रतिपादक वचन प्रमाण गिना जा सके; अथवा एकान्तवादनिरूपक वक्ता अथवा उस का ज्ञान 'प्रमाण' की मुहर 15 प्राप्त कर सके॥३५॥

गाथा ३६ से ४० में अनेकान्तदर्शनप्रसिद्ध सप्तभंगी प्रमाण का निरूपण किया गया है। यहाँ ३६ वीं गाथा की अवतरणिका दो प्रकार से व्याख्याकार दिखाते हैं —

(१) ग्रन्थकार ने अब तक अन्योन्यअनुविद्ध भेदाभेदात्मक वस्तु में कथञ्चित् सत्त्व-असत्त्व का निदर्शन किया। तथा, एकान्तवादनिरूपक वचन अथवा पुरुष एकान्तवादनिरूपक होने से मिथ्यावादित्व 20 एवं अनेकान्तवादनिरूपक वचन अथवा पुरुष का सम्यग्वादित्व का निरूपण ग्रन्थकार ने कर दिया। अब विस्तार से यह दिखाना है कि जब वक्ता भावाभावविषयक निरूपण करता है, उस में भी एकान्त-अनेकान्तात्मक अंश का निरूपण करता है, तब उस के वचन विवक्षा के अनुसार कैसे दुर्नय होता है, कैसे सुनय बनता है और कैसे प्रमाण बन जाता है —

(२) अथवा, ३६ आदि गाथावृंद से ग्रन्थकार यह दिखाना चाहते हैं कि जो वस्तु जिस प्रकार 25 से अवस्थित होती है उस का उसी प्रकार से निरूपण करनेवाला वक्ता निपुण कहा जाता है। अन्यप्रकार से निरूपण करनेवाले सांख्य-बौद्ध-वैशेषिक जो एकान्त अभिन्न या एकान्तभिन्न अथवा एकान्ततः सर्वथा निरपेक्ष पृथक् भेद और अभेद वस्तु के प्रतिपादक हैं वे अनिपुण ठहरेंगे। एवं तथाकथित जैनमतावलम्बि जन भी यदि 'स्याद् अस्ति' (कथञ्चित् सत् है) इत्यादि सप्त विकल्प विनिर्मुक्त स्यात्कारपद अविभूषित वस्तुधर्म का प्रतिपादन करनेवाले वक्ता भी 'अनिपुण' ही कहा जायेगा। इन के सामने सप्तभंगी वचन 30 कैसे बनता है और उन भंगो के उत्थान का निमित्त क्या है यह विस्तार से दिखाने के लिये गाथापञ्चक

▼. सप्तभंगीविशेषजिज्ञासुभिः शास्त्रावार्त्तासमुच्चये सटीकसप्तमस्तबके हिन्दीविवेचनयुते पृ.१५३ तः पृ.१७८ मध्ये द्रष्टव्यम्।

(मूलम्-) अत्थन्तरभूएहि य णियएहि य दोहि समयवाईहिं ।

वयणविसेसाईयं दव्वमवत्तव्वयं पडइ ।।३६।।

अस्यास्तात्पर्यार्थः - अर्थान्तरभूतः पटादिः निजो घटः ताभ्यां निजार्थान्तरभूताभ्यां सदसत्त्वं घटवस्तुनः प्रथम-द्वितीयभङ्गनिमित्तं प्रधान-गुणभावेन भवतीति प्रथम-द्वितीयौ भङ्गौ १-२ । यदा तु द्वाभ्यामपि युगपत्  
5 तद् वस्तु अभिधातुमभीष्टं भवति तदा अवक्तव्यभङ्गकनिमित्तम्, तथाभूतस्य वस्तुनोऽभावात् प्रतिपादक-  
वचनातीतत्वात् तृतीयभङ्गसद्भावः वचनस्य वा तथाभूतस्याऽभावाद् अवक्तव्यं वस्तु-३ ।

[ भङ्गत्रयसमर्थकाः षोडशापेक्षाभेदाः ]

▼ तथाहि- असत्त्वोपसर्जनसत्त्वप्रतिपादने प्रथमो भङ्गः । तद्विपर्ययेण तत्प्रतिपादने द्वितीयः । द्वयोस्तु धर्मयोः प्राधान्येन गुणभावेन वा प्रतिपादने न किञ्चिद् वचः समर्थम् । यतो न तावत् समासवचनं

10 से कहते हैं -

गाथार्थ :- (मूलगाथा - पूर्वार्ध में अन्त्य अक्षर 'हिं' के बदले 'हुं' ऐसा पाठ टीकाकार एवं उपाध्यायश्री यशोविजय महाराज को मान्य है) स्व से एवं पर से एवं उभय से एक साथ विवक्षित करने पर (सत् असत् और) वचनविशेषातीत द्रव्य अवक्तव्यता को प्राप्त करता है ।।३६।।

व्याख्यार्थ :- अर्थान्तरभूत यानी स्वभिन्न वस्त्रादि, निज यानी स्वभूत घट (यह सब विवक्षाधीन  
15 है ।) उन दोनों स्व और पर को क्रमशः प्रधान-गौणतया विवक्षित किये जाने पर घटवस्तु का 'सत्' यह प्रथमभंग होगा और 'असत्' यह दूसरा भङ्ग होगा । उक्त गाथा का तात्पर्यार्थ यह है कि स्वरूप को प्रधान और पररूप को गौण कर के घटादि को देखा जाय तो 'स्याद् अस्ति' यानी घट 'कथंचित् सत्' ज्ञात होगा एवं पररूप वस्त्रादि को प्रधान कर के घट के स्वरूप को गौण कर के जब घट जिज्ञासा की जाय तो 'स्याद् नास्ति' यानी घट 'कथंचिद् असत्' है' ऐसा ज्ञात होगा । दोनों भंगो  
20 का मूलाधार क्रमशः प्रधान = गौणभाव से तथाभूत वस्तु यानी सत्त्व और असत्त्व है । (१-२)

जब दोनों निमित्त को प्राधान्य दे कर वस्तु घट की एक साथ विवक्षा हो तब वह वस्तु अवक्तव्यभंग का मूलाधार बनी रहेगी । इस के दो कारण हैं - (१) एक साथ दोनों को प्रधान कर के कही जा सके ऐसी कोई वस्तु नहीं है, अगर है तो भी प्रतिपादक वचन मर्यादा से अतीत है । अतः तीसरा भंग फलित होगा । (२) अथवा, उभय की एक साथ विवक्षा के द्वारा घट का निरूपण करना  
25 है किन्तु वैसा कोई वचन नहीं मिलता, फलतः घट-वस्तु अवक्तव्य बन जायेगी ।३ ।

[ सप्तभंगी के प्रथम तीन भंगो का स्पष्टीकरण-१ ]

तृतीय भंग का विस्तार :- पहला भंग तो असत्त्व को गौण रख कर सत्त्व का प्रतिपादन करता है और उस से विपरीत सत्त्व को गौण कर के असत्त्व का प्रतिपादन दूसरा भंग करता है । अब

▼ श्रीभगवतीसूत्र - द्वा. नयचक्र-अनुयोगद्वार -प्रमेयरत्नकोश-तट्टीका-तत्त्वार्थभाष्य-विशेषावश्यकभाष्य-दिगम्बरीयप्रवचनसार-तट्टीका-इत्यादिग्रन्थेषु तृतीयो भंगोऽवक्तव्यतयोक्तः । श्वेता० प्रमाणनयतत्त्वालोक - अलंकार-रत्नाकरावतारिका-स्याद्वादमञ्जरी-नयोपदेश-दिगम्बरीयपञ्चास्तिकाय-तत्त्वार्थराजवार्तिक-श्लोकवार्तिक-सप्तभंगीतरंगिण्यादिग्रन्थेषु चतुर्थस्थानेऽवक्तव्यभंगो निरूपितः । विशेषार्थिभिः पूर्वसंस्करणे पृ.४४२-४३ मध्ये टीप्पणी द्रष्टव्या ।

तत्रप्रतिपादकं नापि वाक्यं सम्भवति। समासषट्के तावद् न बहुव्रीहिरत्र समर्थः तस्यान्यपदार्थप्रधानत्वात् अत्र चोभयप्रधानत्वात्। अव्ययीभावोऽपि नात्र प्रवर्तते तस्यात्रार्थेऽसम्भवात्। द्वन्द्वसमासे तु यद्यप्युभयपदप्राधान्यम् तथापि द्रव्यवृत्तिस्तावद् न प्रकृतार्थप्रतिपादकः, गुणवृत्तिरपि द्रव्याश्रितगुणप्रतिपादकः द्रव्यमन्तरेण गुणानां तिष्ठत्यादिक्रियाधारत्वासम्भवात् तस्या द्रव्याश्रितत्वाद् न प्रधानभूतयोर्गुणयोः प्रतिपाद्यत्वम्। तत्पुरुषोऽपि नात्र विषये प्रवर्तते तस्याप्युत्तरपदार्थप्रधानत्वात्। नापि द्विगुः, संख्यावाचिपूर्वपदत्वात् तस्य। कर्मधारयोऽपि न, गुणाधारद्रव्यविषयत्वात्। न च समासान्तरसद्भावः येन युगपद् गुणद्वयं प्रधानभावेन समासपदवाच्यं स्यात्। अत एव न वाक्यमपि तथाभूतगुणद्वयप्रतिपादकं सम्भवति तस्य वृत्त्यभिन्नार्थत्वात्। न च केवलं

तीसरा भंग अवक्तव्य इस लिये है कि जब सत्त्व-असत्त्व दोनों धर्मों को तुल्य महत्त्व दे कर अथवा तुल्यतया गौण कर के दोनों का एक साथ प्रतिपादन करने की विवक्षा रहने पर भी एक साथ प्रतिपादन करने के लिये कोई वचन सक्षम नहीं मिल सकता। देखिये- (कोई एक पद से तो उभय का एकसाथ प्रतिपादन शक्य नहीं है। या तो दो-पदवाले समास से या वाक्य से सम्भावना की जाय, किन्तु) छः समास में से एक भी समासवचन या एक भी वाक्य एक साथ प्रधानतया (= विशेष्यरूप से) अथवा गौण (विशेषण) रूप से उभय का प्रतिपादन करने में समर्थ नहीं है।

### [ बहुव्रीहि-द्वन्द्व - अव्ययी समास की निष्फलता ]

बहुव्रीहि समास तो अन्यपदार्थ प्रधान होता है और प्रस्तुत में उभय की प्रधानता विवक्षित है अतः बहुव्रीहि यहाँ सफल नहीं होगा। अव्ययीभाव का तो यहाँ सम्भव ही नहीं (क्योंकि उपकुम्भम् इत्यादि समास पूर्वपदार्थप्रधान होता है) अतः यहाँ उस की प्रवृत्ति निरुद्ध है। यद्यपि द्वन्द्वसमास में उभयपदप्राधान्य जरूर होता है, किन्तु जो द्रव्यवृत्ति यानी द्रव्यार्थक पदों का (उदा० धव-खदीरौ) द्वन्द्व होता है वहाँ अन्योन्य उद्देश्यता या विधेयता न होने से अपेक्षित प्रधानता या गौणता नहीं होती अतः इस की प्रस्तुतार्थप्रतिपादकता नहीं हो सकती। गुणवृत्ति यानी गुणार्थक पदों (रक्तपीते) का द्वन्द्व समास भी उभय की प्रधानता या उभय की गौणता से उभय का प्रतिपादन नहीं कर सकता क्योंकि यह द्वन्द्व द्रव्याश्रित गुणों का प्रतिपादन करता है गौण-मुख्यभाव से नहीं। द्रव्य के बिना, गुणों में स्थानादिक्रियाधारता नहीं हो सकती। द्रव्यों में ही स्थानादिक्रियाधारता हो सकती है क्योंकि क्रिया द्रव्याश्रित होती है। (क्रियावाचक तिष्ठति आदि पदों का द्वन्द्व समास नहीं होता।) अतः द्वन्द्व समास से प्रधान या गौण रूप से एक साथ उभय का निरूपण अशक्य है।

### [ तत्पुरुष-द्विगु-कर्मधारय समासों की निष्फलता ]

तत्पुरुष समास उत्तरपदार्थ प्रधान होने के कारण इस विषय में उस की प्रवृत्ति शक्य नहीं। द्विगु समास में पूर्व पद संख्यावाचक होने से उस की भी प्रवृत्ति अशक्य है। कर्मधारय समास गुणाधारभूत द्रव्य का बोधक होने से उभय प्रधान/गौण रूप से अतिरिक्त कोई समास नहीं है जिस से कि एक साथ प्रधानभाव से गुणयुग्म का वाचन उस समास से हो सके। वाक्य का विकल्प (अभिन्नार्थक) ही समास (वृत्ति) होता है, अतः जब समास एक साथ प्रधानभाव से उभय का वाचक नहीं है तो वाक्य भी प्रधानभाव से उभय गुणों का वाचक नहीं हो सकता। विग्रह या समास से भिन्न कोई

पदं वाक्यम् वा लोकप्रसिद्धं तस्यापि परस्परापेक्षद्रव्यादिविषयतया तथाभूतार्थप्रतिपादकत्वाऽयोगात्।

- न च 'तौ सत्' [३-२-१२७ पाणिनि०] इति शतृशानयोरिव संकेतितैकपदवाच्यत्वम्; विकल्पप्रभव-  
शब्दवाच्यत्वप्रसक्तेः। विकल्पानां च युगपदप्रवृत्तेर्नैकदा तयोस्तद्वाच्यतासम्भवः। न च निजार्थान्तरैकान्ता-  
भ्युपगमेऽप्यर्थस्य वाच्यता, तथाभूतस्य तस्याऽत्यन्ताऽसत्त्वात्— सर्वथा सत्त्वेऽन्यतोऽव्यावृत्तत्वात् महा-  
5 सामान्यवद् घटार्थत्वानुपपत्तेः। अर्थान्तरत्वे पररूपादिव स्वरूपादपि व्यावृत्तेः खरविषाणवदसत्त्वादवाच्यतैव।  
न च घटत्वे घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्ते विधिरूपे सिद्धेऽसम्बद्ध एव तत्र पटाद्यर्थप्रतिषेध इति वाच्यम्,  
पटादेस्तत्राभावाभावे घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तस्य घटत्वस्यैवाऽसिद्धेः। शब्दानां चार्थज्ञापकत्वं न कारकत्वमिति

- ऐसा एकाकी पद या वाक्य लोग में सुविदित नहीं है जो एकसाथ अपेक्षित विषय का प्रतिपादक  
हो, क्योंकि जो भी होगा वह तो परस्पर की अपेक्षा से ही द्रव्यादि वस्तु का वाचक होगा। मतलब,  
10 एकसाथ प्रधानतया सत्त्व-असत्त्व उभय धर्मों से अनुविद्ध एक वस्तु का प्रतिपादकत्व उस में या अन्य  
किसी में भी नहीं है — इस लिये तीसरे भंग में वस्तु अवाच्य है।

### [ संकेतित एक पद से भी वाच्यता का असंभव ]

- शंका :- 'तौ सत्' इस पाणिनि सूत्र (३-२-१२७) में शतृ और शान प्रत्ययों की 'सत्' संज्ञा  
की गयी है। यहाँ संकेतित एक 'सत्' पद के द्वारा एकसाथ दो शतृ-शान प्रत्ययों में समप्रधानभाव  
15 से वाच्यत्व मानना पड़ेगा।

- उत्तर :- नहीं। संकेतकरण तो एक विकल्प है, यदि यहाँ आप कहते हैं ऐसा मान लेंगे तो  
सर्वत्र विकल्पजन्यशब्दवाच्यता प्रसक्त होगी। वस्तुतः विकल्प यानी संकेतों से जो अनेक अर्थों में एक  
शब्द की प्रवृत्ति होगी वह एक साथ अनेक का वाचक न हो कर क्रमशः ही अनेक अर्थों का वाचक  
होगा। न्याय तो यह है कि एक बार बोला गया एक शब्द एक बार ही अर्थबोधक होता है। यदि  
20 स्व और (पर =) अर्थान्तर को एकान्ततः शब्दप्रयुक्त अर्थवाच्यता मानने जायेंगे तो यह सम्भव ही  
नहीं क्योंकि एकान्त सत् एकान्त असत् कोई वस्तु ही नहीं होती। वस्तु को एकान्त सत् मानने पर  
(यानी सर्वथा = सर्व रूपों से एकान्त सत् मानने पर) पटादिरूप से भी घट में व्यावृत्ति लुप्त हो  
जायेगी, जैसे महा सामान्य में किसी की व्यावृत्ति नहीं होती। फलतः घट पद में घटार्थत्व की उपपत्ति  
नहीं हो पायेगी।

- 25 [ एकान्त अर्थान्तररूपता से स्व-रूप से व्यावृत्ति की आपत्ति ]

यदि घट को अर्थान्तर (= पर) रूप से एकान्ततः असत् मानेंगे तो स्व-रूप से भी गर्दभर्सींग  
की तरह व्यावृत्ति प्रसक्त होने से असत्त्वापत्ति के जरिये अवाच्यता ही फलित होगी।

- शंका :- 'घट सत् है' इतना कह दिया तो घटशब्दप्रवृत्ति निमित्तभूत घटत्व जो विधिरूप है  
उस का भान यानी सिद्धि हो गयी, अब वहाँ पररूप पटादि अर्थ का निषेध असंगत ही कहा जायेगा,  
30 उस की जरूर ही क्या है ?

उत्तर :- ऐसा मत बोलिये, क्योंकि यदि घट में पटादिअभाव यानी पटादिप्रतिषेध नहीं करेंगे  
तो घटशब्द-प्रवृत्तिनिमित्तभूत घटत्व की स्वातन्त्र्येण सिद्धि ही रुक जायेगी। यह जान लो कि शब्द

तथाभूतार्थप्रकाशनं तथाभूतेनैव शब्देन विधेयमिति नाऽसम्बद्धस्तत्र पटाद्यर्थप्रतिषेधः। अथवा 'सर्वं सर्वात्मकम्' इति सांख्यमतव्यवच्छेदार्थं तत्रप्रतिषेधो विधीयते तत्र तस्य प्रतीत्यभावात्।

यद्वा, नाम-स्थापना-द्रव्य-भावभिन्नेषु विधिस्तिताऽविधिस्तिप्रकारेण प्रथम-द्वितीयौ भंगो। तत्रकाराभ्यां युगपद् अवाच्यम्, तथाभिधेयपरिणामरहितत्वात् तस्य। यतो यदि अविधिस्तिरूपेणापि घटः स्यात् प्रतिनियतनामादिभेदव्यवहाराभावप्रसक्तिः। तथा च विधिस्तिरूपेणापि नात्मलाभः, इति सर्वाभाव एव भवेत्। 5  
तथा, यदि विधिस्तिप्रकारेणाप्यघटः स्यात् तदा तन्निबन्धनव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिरेव। एकपक्षाभ्युपगमेऽपि तदितराभावे तस्याप्यभाव इति अवाच्यः।२।

अथवा स्वीकृतप्रतिनियतप्रकारे तत्रैव नामादिके यः संस्थानादिः तत्स्वरूपेण घटः इतरेण चाऽघटः

अर्थों का कारक हेतु नहीं होता सिर्फ ज्ञापक हेतु होता है, अतः पटादि अर्थव्यावृत्त घट अर्थ का प्रकाशन भी पटादिव्यावृत्तिज्ञापक घटादि शब्द से ही शक्य बन सकता है, अत एव घटशब्द से घट 10  
में घटत्वबोध के साथ पटादिअर्थ निषेध का बोध भी संगत ही है।

अथवा, सांख्यदर्शन के विद्वान् जो मानते हैं कि पुरुषव्यतिरिक्त समस्तपदार्थ एक प्रकृति के ही विकाररूप होने से समस्त वस्तु सर्वात्मक (प्रकृतिरूप) हैं — इस मान्यता के निषेध के लिये, अर्थात् घटादि में प्रकृतिविधया पटादिरूपता का निषेध करने के लिये 'घट' पद से घट में पटादि का असत्त्व दिखाना पडेगा, क्योंकि घटादि में कभी पटादि की अभिन्नतया प्रतीति नहीं होती। 15

### [ निक्षेपों से प्रयुक्त आद्य तीन भंग - २ ]

आद्य तीन भंगो के समर्थन का दूसरा प्रकार :- हर एक वस्तु नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव ऐसे चतुर्विध होती है, जिन्हें निक्षेप कहा जाता है (दे० सन्मति गाथा १-६ पृ० ३७९)। इन में से, जिस रूप से (उदा० नाम रूप से) वस्तु विवक्षित की जाय उस रूप से वह 'सत्' (प्रथमभंगप्रविष्ट) है, अन्य अविवक्षित (उदा० स्थापनादि) रूप से वह 'असत्' (द्वि० भंगपतित) है। उभयरूप से एक साथ विवक्षित 20  
की जाय तो वह अवाच्य (तीसरा भंग) बन जायेगी क्योंकि वस्तु में, एक साथ उभयधर्मों का या तो प्राधान्येन या तो गौणरूप से वाच्य-परिणाम होता नहीं। कारण :- यदि अविवक्षित रूप से भी घट 'सत्' होगा तो घट में समस्त रूपों का प्रवेश होने से प्रतिनियत अमुक ही नामादि प्रकार से वस्तु के व्यवहार का लोप हो जायेगा। फलतः व्यवहार के बिना वस्तु में विवक्षित रूप से भी सत्त्व का लोप हो जाने पर सर्व प्रकार से वस्तु का अभाव प्रसक्त होगा। अतः अविवक्षित रूप से वस्तु 25  
को 'असत्' मानना अतिजरूरी है। तथा, विवक्षित रूप से वस्तु को 'सत्' मानना भी जरूरी है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे, घट को घट मान कर जितने व्यवहार किये जाते हैं उन सभी का लोप प्रसक्त होगा। जैसे मुहर की एक बाजू का निषेध करने पर दूसरी बाजू का भी लोप आ पडता है वैसे ही केवल सत् या असत् रूप का स्वीकार कर के अन्य रूप का अस्वीकार करेंगे तो उभय का अभाव प्रसक्त होने से, इस ढंग से भी वस्तु अवाच्य बन जायेगी।२। 30

### [ नामादि घट के आकार से प्रयुक्त भंगत्रय - ३ ]

ऐसे भी भंगत्रय हो सकते हैं — नामादि घट के प्रत्येक के अपने अपने पृथक् आकार हैं।

इति प्रथम-द्वितीयौ, ताभ्यां युगपदभिधातुमशक्तेरवाच्यः। विवक्षितसंस्थानादिनेव यदीतरेणापि घटः स्याद् एकस्य सर्वघटात्मकत्वप्रसक्तिः। अथ विवक्षितेनाप्यघटः पटादाविव घटार्थिनस्तत्राप्यप्रवृत्तिप्रसक्तिः। एका-  
न्ताभ्युपगमेऽपि तथाभूतस्य प्रमाणाऽविषयत्वतोऽसत्त्वादवाच्यः।३।

यदि वा स्वीकृतप्रतिनियतसंस्थानादौ मध्यावस्था निजं रूपम्, कुशूल-कपालादिलक्षणे पूर्वोत्तरावस्थे  
5 अर्थान्तररूपम् ताभ्यां सदसत्त्वं प्रथम-द्वितीयौ। युगपत् ताभ्यामभिधातुमसामर्थ्याद् अवाच्यलक्षणस्तृतीयो  
भङ्गः। तथाहि— मध्यावस्थावदितरावस्थाभ्यामपि यदि घटः स्यात् तस्य अनाद्यनन्तत्वप्रसक्तिः। अथ  
मध्यावस्थारूपेणाप्यघटः सर्वदा घटाभावप्रसक्तिः। एकान्तररूपत्वेऽप्ययमेव प्रसङ्गः इत्यसत्त्वादेवावाच्यः।४।

अथवा तस्मिन्नेव मध्यावस्थास्वरूपे वर्तमानाऽवर्तमानक्षणरूपतया सदसत्त्वात् प्रथम-द्वितीयभंगौ।  
ताभ्यां युगपदभिधातुमशक्तेरवाच्यलक्षणस्तृतीयः। तथाहि— यदि वर्तमानक्षणवत् पूर्वोत्तरक्षणयोरपि घटः  
10 स्यात् वर्तमानक्षणमात्रमेवासौ जातः, पूर्वोत्तरयोर्वर्तमानताप्राप्तेः। न च वर्तमानक्षणमात्रमपि पूर्वोत्तरापेक्ष्य

अपने अपने आकार से नामादिरूप 'सत्' है (आद्य भंग हुआ) और पराये आकारों से वह 'असत्' हैं (दूसरा भंग हुआ)। दोनों मिल कर एक साथ घट प्रतिपादन न कर सकने से वह अवाच्य है (तीसरा भंग हुआ)। यहाँ भी पूर्ववत् सोचना है कि नामादि घट विवक्षित संस्थान (= आकार) से 'सत्' है ऐसे यदि अन्य संस्थानों से भी 'सत्' होगा तो एक ही घट में सर्व घटा(कारा)त्मकत्व प्रसक्त  
15 होगा। अन्य आकारों से 'असत्' घट यदि स्वाकार से भी असत् (यानी अघट) होगा तो जैसे पटादि में घटार्थी की प्रवृत्ति नहीं होती वैसे घट में भी घटार्थी की प्रवृत्ति शून्य हो जायेगी। यदि एकान्ततः निरपेक्ष आकारों से सत्त्व-असत्त्व माना जायेगा तो वैसा घटादि प्रमाणसिद्ध न होने से, असत् बन जाने से, आखिर वह अवाच्य बनेगा।३।।

### [ मध्य-पूर्वोत्तरावस्थाभेद से तीन भंग - ४ ]

20 और एक नया भेद :- एक बार घट का पृथु-बुध्नाकार स्वीकार लिया, वह है मध्यावस्था, यह घट का स्व-रूप है, पूर्वावस्था कुशूल एवं उत्तरावस्था कपाल (ठीकरा) यह पररूप है। इन रूपों से 'सत्' और 'असत्' क्रमशः दो भंग हुए। दोनों रूपों से एक साथ प्रतिपादन अशक्य होने से अवाच्यता तीसरा भंग आयेगा। भावना :- मध्यावस्था की तरह घट यदि अन्य अवस्थाद्वय से भी 'सत्' माना जाय तो पूर्व-पूर्व उत्तरोत्तर समस्त अवस्थाओं में 'सत्' घट अनादि-अनन्त हो जायेगा। एवं यदि  
25 पूर्वोत्तरावस्था की तरह घट मध्यावस्था में भी असत् होगा तो सदा काल घट का अभाव अचल रह जायेगा। एकान्त सत् या असत् मानने पर भी यही समस्या खड़ी रहेगी, फलतः असत्त्व प्रसक्त होने पर 'अवाच्यता' लब्धावकाश है।४।

अन्य तरह से भङ्गत्रय :- घट की मध्यावस्था में भी वह वर्तमानक्षण में 'सत्' होता है (प्रथम भंग), पूर्वोत्तरक्षण के रूप में तो 'असत्' होता है (द्वितीय भंग)। एक साथ उक्त प्रकारों से सत्त्व-  
30 असत्त्व की विवक्षा रखने पर प्रतिपादन शक्य न होने से घट अवक्तव्य है — यह तीसरा भंग हुआ। स्पष्टता :- वर्तमानक्षण की तरह यदि घट पूर्वोत्तरक्षण में भी 'सत्' माना जाय तो वर्तमान के साथ पूर्वोत्तरक्षण का भी ऐक्य हो जाने से घट वर्तमानक्षणमात्ररूप बना रहेगा, पूर्वोत्तरक्षणों का ही लोप

तदभावेऽभावात्। अथातीतानागतक्षणवद् वर्तमानक्षणरूपतया अप्यघटः, एवं सति सर्वदा तस्याभावप्रसक्तिः। एकान्तपक्षेऽप्ययमेव दोष इत्यभावादेव अवाच्यः।५।

यद्वा क्षणपरिणति रूपे घटे लोचनजप्रतिपत्तिविषयत्वाऽविषयत्वाभ्यां निजार्थान्तरभूताभ्यां सदसत्त्वात् प्रथम-द्वितीयौ भंगौ। ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवाच्यः। तथाहि— यदि लोचनजप्रतिपत्तिविषयत्वेनेव यदीन्द्रियान्तरजप्रतिपत्तिविषयत्वेनापि घटः स्याद् इन्द्रियान्तरकल्पनावैयर्थ्यप्रसक्तिः इन्द्रियसङ्करप्रसक्तिश्च। 5 अथेन्द्रियान्तरजप्रतिपत्तिविषयत्वेनेव चक्षुर्जप्रतिपत्तिविषयत्वेनापि न घटः तर्हि तस्याऽरूपत्वप्रसक्तिः एकान्तवादेऽपि तदितराभावे तस्याप्यभावादवाच्य एव।६।

अथवा, लोचनजप्रतिपत्तिविषये तस्मिन्नेव घटे 'घटशब्दवाच्यता निजं रूपम्, 'कुट'शब्दाभिधेयत्वमर्थान्तरभूतं रूपम्, ताभ्यां सदसत्त्वात् प्रथम-द्वितीयौ। युगपत्ताभ्यामभिधातुमिष्टोऽवाच्यः। यदि हि 'घट'-शब्दवाच्यत्वेनेव 'कुट'शब्दवाच्यत्वेनापि घटः स्यात् तर्हि त्रिजगत एकशब्दवाच्यताप्रसक्तिः घटस्य 10 वाऽशेषपटादिशब्दवाच्यत्वप्रसक्तिरिति घटशब्दवाच्यप्रतिपत्तौ समस्ततद्वाचकशब्दप्रतिपत्तिप्रसङ्गश्च। तथा

होगा। उपरांत, क्षण की वर्तमानता भी पूर्वोत्तरक्षण सापेक्ष ही होती है, पूर्वोत्तरक्षणों का लोप होने पर वर्तमानता भी कैसे बचेगी ? फलतः वर्तमानता के लोप से घट का भी अभाव प्रसक्त होगा। दूसरी ओर, अतीतानागत क्षणों की तरह वर्तमान में भी घट 'असत्' मानेंगे तो सदा काल घट का अभाव ही अचल रह जायेगा, घट तो रहेगा ही नहीं। उभय के एकान्तवाद में भी ये ही दोष प्रसक्त 15 हैं, घट का सत्त्व बचेगा नहीं, आखिर अवाच्यता प्रवेश पायेगी।५।

### [ इन्द्रियग्राह्यत्व-अग्राह्यत्व से तीन भंग - ६ ]

छट्टा प्रकारः- घट जो क्षणपरिणतिरूप है वह नेत्रजन्यप्रतीतिविषयत्वरूप से 'सत्' है और श्रोत्रादिजन्यप्रतीतिविषयत्वेन 'असत्' है। ये पहला-दूसरा भंग हुआ। एक साथ उन दोनों की विवक्षा रखने पर अवाच्य है — यह तीसरा भंग हुआ। स्पष्टता :- यदि घट वस्तु नेत्रजन्यप्रतीतिविषयत्वेन 20 जैसे 'सत्' है वैसे अन्यश्रोत्रादिइन्द्रियविषयत्वेन भी 'सत्' माना जाय तो किसी भी एक इन्द्रियगोचर हो जाने से अतीन्द्रिय अन्येन्द्रियों की कल्पना निरर्थक ठहरेगी, अथवा इन्द्रियों में सांकर्य दोष आ पड़ेगा। मतलब, इन्द्रियों का यह सुननेवाला श्रोत्र, यह देखनेवाला नेत्र ऐसा स्पष्ट विभाग लुप्त हो जायेगा। दूसरी ओर, जैसे अन्येन्द्रियजन्यप्रतीतिविषयत्वरूप से घट असत् होता है वैसे नेत्रेन्द्रियजन्यप्रतीतिविषयत्वेन भी वह असत् होगा तो, घट का रूप किसी भी इन्द्रिय से गृहीत न होने के कारण नीलरूप सिद्ध 25 होगा। सत् या असत् का एकान्त पकडने पर एक के निरसन से दूसरा भी निरस्त हो जाने से आखिर घट अवाच्य बनेगा।६।

### [ घटकुटशब्दवाच्यत्वावाच्यत्व प्रयुक्त तीन भंग - ७ ]

सातवाँ प्रकारः- चाक्षुषविषय घट में 'घट' शब्दवाच्यता स्वरूप है, कुटादिशब्दवाच्यता पर रूप है; (पर्यायभेद से वस्तुभेद वादी समभिरूढ नय से यह भेद हैं।) यहाँ स्वरूप से सत्त्व प्रथमभंग, 30 पररूप से असत्त्व दूसरा भंग, दोनों मिला कर एकसाथ विवक्षित करने पर अवाच्य — तीसरा भंग होगा। घट जैसे यहाँ घटशब्दवाच्यतात्मक स्वरूप से 'सत्' है वैसे कुटादिशब्दवाच्यतात्मक पर-रूप से



घटशब्देनापि यद्यवाच्यः स्यात् घटशब्दोच्चारणवैयर्थ्यप्रसक्तिः। एकान्याभ्युपगमेऽपि घटस्यैवाऽसत्त्वात् संकेतद्वारेणापि न तद्वाचकः कश्चित् शब्द इत्यवाच्य एव।७।

अथवा घटशब्दाभिधेये तत्रैव घटे हेयोपादेयान्तरंग-बहिरंगोपयोगानुपयोगरूपतया सदसत्त्वात् प्रथम-द्वितीयौ। ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवाच्यः। यदि हि हेय-बहिरंगानर्थक्रियाकार्यसंनिहितरूपेणाप्यर्थक्रियाक्षमादि-  
5 रूपेणैव घटः स्यात् पटादीनामपि घटत्वप्रसक्तिः। तद्वद् यद्युपादेयसंनिहितादिरूपेणाप्यघटः स्यात् अन्तरंगस्या वक्तृ-श्रोतृगतहेतुफलभूतघटाकारावबोधकविकल्पोपयोगस्याप्यभावे घटस्याप्यभावप्रसङ्ग इत्यवाच्यः। एकान्ताभ्युपगमेऽप्ययमेव प्रसङ्गः इत्यवाच्यः।८।

अथवा, तत्रैवोपयोगेऽभिमतार्थावबोधकत्वानभिमतार्थानवबोधकत्वतः सदसत्त्वात् प्रथम-द्वितीयौ। ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवाच्यः। विवक्षितार्थप्रतिपादकत्वेनेवेतरेणापि यदि घटः स्यात् प्रतिनियतोपयोगाभावः। तथाभ्युपगमे

10 भी 'सत्' माना जाय तो त्रैलोक्य की सर्व वस्तु में प्रत्येकशब्दवाच्यता प्रसक्त होगी, अथवा घट में पटादिसमस्त शब्दों की वाच्यता प्रसक्त होगी। तथा घट दर्शन से घटशब्दवाच्यता जैसे ज्ञात हो जाती है, पूर्वोक्त रीति से सभी शब्द घट के वाचक हो जाने पर घट में समस्त शब्दों की वाच्यता का भान प्रसक्त होगा। तथा, घट को कुटादिशब्दों से जैसे 'अवाच्य' कहा है वैसे 'घट' पद से भी अवाच्य  
15 न होने से, उस वाचक कोई सांकेतिक शब्द न होने के कारण अवाच्य ठहरेगा।७।

### [ उपादेयादि - हेयादि रूप प्रयुक्त तीन भंग - ८ ]

आठवाँ प्रकार :- घटशब्दवाच्य घट का उपादेय, अन्तरंग, उपयोग ये स्व-रूप है। हेय, बहिरंग, अनुपयोग ये पर-रूप हैं। घटार्थी के लिये अथवा जलाहरणादि अर्थक्रिया के अर्थी के लिये घट उपादेय है, पटादि हेय है। घटाध्यवसाय घट का अन्तरंगरूप है। मिट्टी आदि घट का बहिरंग रूप है। कुलाल  
20 घटनिर्माणकाल में घटोपयोग (यानी घटनिर्माणक्रियाज्ञान) में तन्मय बन जाता है। यदि उस वक्त वस्त्रनिर्माण का विचार करे तो घट में अनुपयोग हो जाता है। उपादेयादि स्व-रूपों से घट 'सत्' है, अनुपादेय यानी हेय आदि पर-रूपों से घट 'असत्' है। उभय की एक साथ विवक्षा रखने पर अवाच्य है। उपादेयादि अर्थक्रियाक्षम-संनिहित रूपों से घट जैसे सत् होता है उसी तरह यदि हेय-बहिरंग-अनर्थक्रिया-क्षम-असंनिहित रूपों से भी घट को 'सत्' मानेंगे तो वैसे पटादि भी घट स्वरूप बन जायेंगे क्योंकि उन रूपों से पटादि  
25 भी 'सत्' होते हैं फिर सत् सत् का अभेद होने से पटादि घटरूप क्यों नहीं होंगे ? वैसे ही यदि उपादेय-संनिहितादि रूपों से भी घट 'असत्' मानेंगे तो वक्ता-श्रोता को कारण-कार्यभूत उभयगत घटाकारा बोधक विकल्पात्मक उपयोग का लोप प्रसक्त होने से घट का भी लोप प्रसक्त होगा, अतः घट अवाच्य बन जायेगा। पूर्ववत् एकान्त सत्/असत् मानने पर भी असत्त्व प्रयुक्त अवाच्यत्व फलित होगा।८।

### [ इष्टार्थबोधकत्व-अबोधकत्वरूप से तीन भंग - ९ ]

30 नववाँ प्रकार :- शब्दजन्य उपयोग में इष्ट यानी विवक्षित अर्थबोधकता होती है, अनिष्ट = अविवक्षित अर्थबोधकता नहीं होती, अतः उपयोगात्मक घट उक्त दो रूपों से 'सत्' और 'असत्' होता है, ये प्रथम एवं द्वितीय भंग निष्पन्न हुए। दोनों रूपों से युगपद् (= एक साथ) विवक्षा रखने पर

विविक्तरूपोपयोगप्रतिपत्तिर्न भवेत्। तदुपयोगरूपेणापि यद्यद्यतो भवेत् तदा सर्वाभावः अविशेषप्रसङ्गो वा। न चैवम् तथाऽप्रतीतेः। एकान्तपक्षेप्यमेव प्रसङ्गः इत्यवाच्यः।१।

अथवा सत्त्वम् असत्त्वं वा अर्थान्तरभूतम् निजं घटत्वम् ताभ्यां प्रथम-द्वितीयौ। अभेदेन ताभ्यां निर्दिष्टो घटोऽवक्तव्यो भवति। तथाहि— यदि सत्त्वमनूद्य घटत्वं विधीयते तदा सत्त्वस्य घटत्वेन व्याप्तेर्घटस्य सर्वगतत्वप्रसङ्गः। तथाभ्युपगमे प्रतिभासबाधा व्यवहारविलोपश्च। तथाऽसत्त्वमनूद्य यदि घटत्वं विधीयते तर्हि प्रागभावादेश्चतुर्विधस्यापि घटेन व्याप्तेर्घटत्वप्रसङ्गः। अथ घटत्वमनूद्य यदि घटत्वं विधीयते तदा घटत्वं यत् तदेव सदसत्त्वे इति घटमात्रं सदसत्त्वे प्रसज्येते तथा च पटादीनां प्रागभावादीनां चाभावप्रसक्तिरिति प्राक्तनन्यायेन विशेषण-विशेष्यलोपात् 'सन् घटः' इत्येवमवक्तव्यः 'असन् घटः'

उपयोगरूप घट अवाच्य बन गया यह तीसरा भंग हुआ। जैसे उपयोगरूप घट विवक्षितार्थबोधकत्वरूप से 'सत्' है वैसे यदि इतर (अविवक्षितार्थबोधकत्वरूप) से भी 'सत्' माना जाय तो भिन्न भिन्न शब्दों से भिन्न भिन्न अर्थनियत उपयोग की संगति नहीं हो सकेगी। कारण :- एक एक शब्द जन्य उपयोग विवक्षित के समान अविवक्षित अर्थों का बोधक बन जायेगा तो तत्तत् शब्द जन्य उपयोग सकल अर्थविषयक हो जायेगा। इस तरह विवक्ति यानी विभिन्नविषयकत्व रूप से उपयोग की प्रतिपत्ति उपपन्न नहीं होगी। तथा यदि उपयोगरूप घट घटपटजन्यज्ञानात्मकनियत रूप यानी इष्टघटबोधकत्व रूप से भी असत् होगा तो अविशेषरूप से अन्य रूप और स्वरूप से सर्व का अभाव प्रसक्त होगा, अथवा उक्त उपयोग में निर्विषयक पदार्थों का वैलक्षण्य लुप्त हो जायेगा। किन्तु ऐसा प्रतीत न होने से मान्य नहीं है। एकान्तमत में तो ये दोष प्रसक्त ही हैं अतः उस में उपयोगघट बिलकुल अवाच्य हो जायेगा।१।

### [ घटत्व एवं सत्त्वासत्त्व स्व-पररूपों से भंगत्रय - १० ]

१० वा प्रकार :- विशेषवादी कहेगा — घटत्व घट का स्व-रूप है (क्योंकि सर्वसाधारण नहीं है) सत्त्वासत्त्व घट का पर रूप हैं (क्योंकि सर्वसाधारण सामान्यरूप है।) यहाँ स्व-रूप घटत्व से घट 'सत्' है — प्रथम भंग हुआ, पररूप सत्त्व या असत्त्व से घट असत् है — यह दूसरा भंग हुआ। अभेदरूप से उभय मिला कर देखें तो घट अवाच्य है। स्पष्टता :- सत्त्व-असत्त्व पर-रूप इसलिये हैं कि यदि सत्त्व को उद्देश कर के घटत्व का विधान करे (यत् सत्त्वं तत् घटत्वम्, यत् असत्त्वं तद् घटत्वम्) तो सत्त्व में तादात्म्य से घटत्व की व्याप्ति प्रसक्त होने से, सत्त्व की तरह घटत्व भी सर्वगत बन जायेगा (घट मात्र में सीमित नहीं रहेगा।) और ऐसा मान्य किया जाय तो पटादि में घटभेद का प्रतिभास होता है उस का बाध प्राप्त होगा। एवं पटादि में घटभिन्नता का व्यवहार होता है उस का लोप होगा। यदि यद् असत्त्वं तत् घटत्वम् इस तरह असत्त्व को उद्देश कर के घटत्व का विधान करेंगे तो असत्त्व में तादात्म्य से घटत्व की व्याप्ति प्राप्त होने से, प्रागभावादि चार प्रकार के असद् रूप अभाव में घटत्व घुस जायेगा।

यदि घटत्व को उद्देश कर के सत्त्व/असत्त्व का विधान करेंगे तो 'यद् घटत्वं तत् सत्त्वम् असत्त्वम् वा' ऐसी व्याप्ति प्राप्त होने से, सत्त्व और असत्त्व सिर्फ घटत्वरूप ही रह जायेंगे (पटत्वादि रूप नहीं रह पायेंगे, फलतः सिर्फ घट में ही सत्त्व/असत्त्व का पर्यावसान होगा। आखिर पटादि का अथवा

इत्येवमप्यवक्तव्यः। न चैतत्त(चैवम/चैकान्त)तोऽवाच्यः, अनेकान्तपक्षे तु कथञ्चिदवाच्य इति न कश्चिद् दोषः।१०।

यद्वा व्यञ्जनपर्यायोऽर्थान्तरभूतः तदतद्विषयत्वात्तस्य, घटार्थपर्यायस्त्वन्यत्रावृत्तेर्निजः, ताभ्यां प्रथम-द्वितीयौ, अभेदेन ताभ्यां निर्देशोऽवक्तव्यः। यतोऽत्रापि यदि व्यञ्जनमनूद्य घटार्थपर्यायविधिः तदा तस्या-  
5 शेषघटात्मकताप्रसक्तिरिति भेदनिबन्धनतद्व्यवहारविलोपः। अथार्थपर्यायमनूद्य व्यञ्जनपर्यायविधिः, तत्रापि कार्य-कारणव्यतिरेकाभावप्रसक्तिः, सिद्धविशेषानुवादेन घटत्वसामान्यस्य विधाने तस्याऽकार्यत्वात्। एवं च घटस्याभावादवाच्यः। अनेकान्तपक्षे तु युगपदभिधातुमशक्यत्वात् कथञ्चिदवाच्यः सिद्धः।११।

यद्वा सत्त्वमर्थान्तरभूतम् तस्य विशेषवदेकत्वादनन्वयिरूपता। अत एव न तद्वाच्यमन्त्यविशेषवत्। अन्त्यविशेषस्तु निजः सोप्यवाच्योऽनन्वयात्। प्रत्येकाऽवक्तव्याभ्यां ताभ्यामादिष्टो घटोऽवक्तव्यः। अनेकान्तपक्षे

10 प्रागभावादि का अभाव प्रसक्त होगा। अतः पूर्वोक्त न्याय से (सत् या असत् से भेद का लोप हो जाने के कारण) विशेषण-विशेष्य का लोप हो जाने पर 'सन् घटः' ऐसा भी वक्तव्य नहीं हो सकेगा, 'असन् घटः' ऐसा भी वक्तव्य न हो पायेगा— आखिर घट अवक्तव्य ठहरेगा। अनेकान्त वाद में सर्वथा ऐसा अनिष्ट प्राप्त न होने से कथञ्चिद् अवाच्य मान सकते हैं।१०।

### [ व्यञ्जनपर्याय-अर्थपर्याय से पर-स्वरूप से भंगत्रय - ११ ]

15 ११ वाँ प्रकार :- घट का व्यञ्जनपर्याय (घट पदात्मक) पर रूप है क्योंकि वह तद्घट (मिट्टी के घट) विषयक होता है और अतद्घट (धातु के घट) विषयक भी होता है मतलब कि साधारण होता है। घट का अर्थ पर्यायस्वमात्रवृत्ति होने से स्वरूप है। इन दोनों रूपों से 'घट सत्' 'घट असत्' ऐसे दो भंग बनेंगे। एक साथ अभेदरूप से दोनों की विवक्षा करने पर अवक्तव्य तीसरा भंग बनेगा। पूर्ववत् (१० वे प्रकार की तरह) यहाँ भी यदि व्यञ्जनपर्याय को उद्देश कर के घट के अर्थपर्याय  
20 का विधान करेंगे तो व्यञ्जन-घट में सकलघटार्थपर्यायरूपता प्रसक्त होगी, तथा भिन्न भिन्न धातु-मिट्टी आदि घटों के भेदमूलक व्यवहार का लोप होगा।

अब यदि घटार्थपर्याय को उद्देश कर के व्यञ्जन पर्याय का विधान करेंगे 'घट ही घटशब्द है' — तो कारणकार्यव्यतिरेक सहचार लुप्त होगा क्योंकि कपालादि के बिना भी घटशब्दात्मक घट उत्पन्न होता है एवं ओष्ठ-तालु आदि के बिना भी मिट्टी घट पैदा होता है। परिणाम यह होगा कि सिद्ध विशेषरूप  
25 मिट्टीस्वरूप घट का अनुवाद कर के व्यञ्जनपर्यायात्मक घटत्व सामान्य का विधान करने पर घट मात्र सामान्यरूप बन जायेगा, सामान्य तो नित्य होने से घट में अकार्यत्व प्रसक्त होगा। अकार्यरूप बन जाने से अवाच्य हो जायेगा (खर-विषाण की तरह।) अनेकान्तवाद में तो पृथक् पृथक् प्रतिपादन से वाच्य होने पर भी एक साथ वाच्य न होने से, कथञ्चिद् अवाच्यत्व सिद्ध हो जाता है।११।

### [ दो अवाच्यों से स्व-पर-रूप से अङ्गत्रय - १२ ]

30 १२ वा प्रकार :- सत्त्व घट का पररूप है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का सत्त्व पृथक् पृथक् होता है जैसे विशेष। पृथक् सत्त्व अन्वयी यानी अनुगत (= साधारण) नहीं होता। अत एव वह शब्दवाच्य भी नहीं होता जैसे विशेष। शब्दवाच्य वही धर्म होता है जो अनेक में अनुगत हो। अन्त्य विशेष

तु कथंचिदवक्तव्यः।१२।

अथवा 'संदुतरूपाः सत्त्वादयो घटः' इत्यत्र दर्शनेऽर्थान्तरभूताः सत्त्वादयः, निजं संदुतरूपम्। ताभ्यामादिष्टो घटोऽवक्तव्यः। यतः संदुतरूपस्य सत्त्वरजस्तमस्सु सत्त्वे सत्त्वरजस्तमसामभावप्रसक्तिः तेषां परस्परवैलक्षण्येनैव सत्त्वादित्वात् सन्दुतरूपत्वे च वैलक्षण्याभावादभाव इति विशेष्याभावादवाच्यः। असत्त्वे त्वसत्कार्योत्पादप्रसङ्गः। न चैतदभ्युपगम्यते, अभ्युपगमेऽपि विशेषणाभावादवाच्यः।१३। 5

अथवा रूपादयोऽर्थान्तरभूताः असंदुतरूपत्वं निजम् ताभ्यामादिष्टोऽवक्तव्यः। य(?)थाहि— अरूपादिव्यावृत्ता रूपादयस्ते। एवं च रूपादीनां घटताऽवाच्या अरूपादित्वाद् घटस्य। न हि परस्पर- विलक्षणबुद्धिग्राह्या रूपादय एकानेकात्मकप्रत्ययग्राह्या रूपादिरूपघटतां प्रतिपद्यन्त इति विशेष्यलोपाद-

घट का स्वरूप है। वह भी अन्वयी न होने से अवाच्य है। (पृथक् सत्त्व और अन्त्य विशेष दोनों अननुगत है फिर भी सत्त्व पर रूप है और अन्त्यविशेष स्वरूप है — यह सब विवक्षा का जादू 10 है।) दोनों अवाच्यों से मिल कर एक साथ वस्तु का निरूपण अशक्य होने से घट अवक्तव्य है — इस प्रकार प्रथम-द्वितीय-तृतीय भंग निष्पन्न हुए। अनेकान्तवाद में तो वस्तुमात्र अनेकान्तात्मक होने से घट को कथञ्चिद् अवाच्य मानने में कोई दोष नहीं है।१२।

### [ संद्रुपता और सत्त्वादि से भंगत्रय - १३ ]

सांख्यदर्शन में, घट सत्त्वादिरूप है जो परस्पर भेद रखते हुए भी एकरूप में परिणत होते हैं 15 जिन्हें 'संदुत' कहा जाता है। अब यहाँ संद्रुतता ही वास्तव में स्वरूप है और अन्योन्य भेद रखनेवाले सत्त्व-रजस्-तमस् ये पर रूप हैं। एक साथ उभय की विवक्षा होने पर घट अवाच्य है। कारण :- सत्त्व-रजस्-तमस् (भिन्न होते हुए भी उन) में संद्रुतता को मानेंगे तो संद्रुतता ही रहेगी, सत्त्वादि तीन का अस्तित्व लुप्त हो जायेगा, क्योंकि अन्योन्य भेद होगा तभी सत्त्वादि का स्व-तत्त्व बचेगा। संद्रुतता होने पर परस्पर विलक्षणता लुप्त हो जायेगी, तब संद्रुतता के विशेष्य भूत सत्त्वादि रहेंगे नहीं अतः 20 घट उन रूपों से अवाच्य बना रहेगा। अब यदि सत्त्व-रजस् आदि का बिलकुल सत्त्व ही नहीं होगा तो असत् की उत्पत्ति को यानी असत्कार्यवाद को मानना पड़ेगा, किन्तु वह सांख्यदर्शन में मान्य नहीं है। अगर उसे मान्य करेंगे तो संद्रुतता रूप विशेषण भाग जायेगा। आखिर घट को अवाच्य घोषित करना पड़ेगा। अनेकान्तवाद में कथंचिद् अवाच्यत्व स्वीकृत है।१३।

### [ रूपादि और असंदुपत्व से भंगत्रयनिष्पत्ति - १४ ]

१४ वा प्रकार :- रूपादि पर रूप हैं, क्योंकि द्रव्य-गुण के अभेदपक्ष में रूपादि समुदाय ही 25 घट है, फिर समुदायरूप से गृहीत न हो कर एक-एक कर के गृहीत होते हैं — अत एव पर रूप हैं। असंदुतरूपत्व घट का स्वरूप हैं क्योंकि समुदितरूप से गृहीत होता है। दोनों रूपों से एक साथ विवक्षा होने पर घट अवाच्य बनेगा। इस प्रकार, प्रथम-द्वितीय और तृतीय भंग निष्पन्न हैं। अन्योन्य विलक्षण बुद्धि से ग्राह्य एक एक रूपादि 'एकानेकात्मक प्रतीति यानी एक समुदायात्मना अनेक को 30 ग्रहण करनेवाले ज्ञान' से ग्राह्य जो अरूपादिस्वरूप घट, उस की अभिन्नता नहीं प्राप्त कर सकते। अतः विशेष्य का लोप होने से, अर्थात् समुदायभावापन्न होने पर रूपादिआत्मकता न रहने के कारण

वाच्यः। अथाप्यरूपादिरूपा रूपादयः। नन्वेवमपि रूपादय एव न भवन्तीति तेषामभावे केऽसंद्रुतरूपतया विशेष्या येनाऽसंद्रुतरूपा रूपादयो घटो भवेत् इत्येवमप्यवाच्यः। अनेकान्ते तु कथञ्चिदवाच्यः।१४।

यदि वा रूपादयोऽर्थान्तरभूताः, मतुबर्थो निजः, ताभ्यामादिष्टो घटोऽवक्तव्यः रूपाद्यात्मकैकाकाराव-  
भासप्रत्ययविषयव्यतिरेकेणापरसम्बन्धानवगतेर्विशेष्याभावात् 'रूपादिमान् घटः' इत्यवाच्यः। न चैकाकार-  
5 प्रतिभासग्राह्यव्यतिरेकेणापर (सम्बन्धानवगतेर्विशेष्याभावात्) रूपादिप्रतिभास इति विशेषणाभावादप्यवाच्यः।  
अनेकान्ते तु कथञ्चिदवाच्यः।१५।

अथवा, बाह्योऽर्थान्तरभूतः, उपयोगस्तु निजः ताभ्यामादिष्टोऽवक्तव्यः। तथाहि— य उपयोगः स  
घट इति यद्युच्येत तर्ह्युपयोगमात्रकमेव घट इति सर्वोपयोगस्य घटत्वप्रसक्तिरिति प्रतिनियतस्वरूपाभावादवाच्यः।  
अथ यो घटः स उपयोग इत्युच्येत तथाप्युपयोगस्यार्थत्वप्रसक्तिरित्युपयोगाभावे घटस्याप्यभावः, ततश्च

10 'समुदायभावापन्नरूपादि' में विशेष्यभूत हो कर प्रतीत होनेवाले रूपादि का अभाव हो जाने से  
समुदायभावापन्न रूपाद्यात्मक घट का अभाव यानी असत् हो जाने से घट सर्वथा अवाच्य बन जायेगा।

यदि कहें कि रूपादि अरूपादिस्वरूप हैं (यानी अरूपादिव्यावृत्त नहीं है।) तो यह गलत है, जब  
वह अरूपादिस्वरूप है वह रूपादिआत्मक कैसे कहे जा सकते हैं ? मतलब रूपादि आत्मक न होने  
से 'असंद्रुतरूपत्व' ऐसा विशेषण भी उन्हें जुड नहीं सकता, यानी घट असंद्रुतरूप भी नहीं हो सकता,  
15 आखिर वह अवाच्य रह गया। अनेकान्तवाद में तो कथञ्चिद् अवाच्य है — यह समझ के चलना।१४।

### [ रूपादि और मतुप् अर्थ से भंगत्रय प्राप्ति - १५ ]

१५ वा प्रकार :- घट रूपादिमान् है ऐसा कहने पर घट और रूपादि का भेद लक्षित होने  
से रूपादि घट का पर-रूप है। मतुप् प्रत्ययार्थ 'सम्बन्धी' यह घट का स्वरूप हैं क्योंकि रूपादिमान्  
और घट का अभेद लक्षित होता है। यहाँ इन स्व-पर रूपों से सत्त्व-असत्त्व प्रथम-द्वितीय भंग हुए।  
20 दूसरी ओर, इन दोनों रूपों से एक साथ विवक्षा करने पर घट अवाच्य है (यह तीसरा भंग हुआ)।  
स्पष्टता :- रूपादि स्वरूप एकाकार अवभास की प्रतीति, मतलब निमित्तभूत विषय जो रूपादि है उस  
के अभाव में मतुप् प्रत्ययार्थ सम्बन्धि घट की विशेष्यरूप से प्रतीति नहीं हो सकती। फलतः 'रूपादिमान्  
घटः' ऐसा व्यवहार लुप्त हो जाने पर सम्बन्धी का भी अभाव हो जाने से आखिर घट अवाच्य  
25 भी हो सकता है।१५।

### [ बाह्य-अभ्यन्तर रूपों से भंगत्रय निष्पत्ति - १६ ]

१६ वा प्रकार :- बाह्य घट घट का पर रूप है (बाह्य होने से।) उपयोगात्मक यानी ज्ञानात्मक  
आन्तर घट घट का स्व-रूप हैं। इन दोनों रूपों से एक साथ विवक्षा करने पर घट अवक्तव्य हो  
जायेगा। ये प्रथम-द्वितीय और तृतीय भंग हुए। स्पष्टता :- 'जो उपयोग है वह घट है' इस व्याप्ति  
30 में तो उपयोगमात्र यानी सभी उपयोग घट है ऐसा फलित होने से घट का कोई नियत स्व रूप  
तय न होने से घट का अभाव आ पड़ेगा तो उस रूप से घट अवाच्य हो गया। एवं, जो घट  
है वह उपयोग है ऐसी व्याप्ति करेंगे तो उपयोग में बाह्यार्थत्व प्रसक्त होने से उपयोग लुप्त हो जायेगा,

कथं नाऽवाच्यः ? 19६।

‘एते च त्रयो भंगा गुण-प्रधानभावेन सकलधर्मात्मकैकवस्तुप्रतिपादकाः स्वयं तथाभूताः सन्तो निरवयवप्रतिपत्तिद्वारेण सकलादेशाः, वक्ष्यमाणास्तु चत्वारः सावयवप्रतिपत्तिद्वारेणाशेषधर्माक्रान्तं वस्तु प्रतिपादयन्तोऽपि विकलादेशाः’ — इति केचित् प्रतिपन्नाः। वाक्यं च सर्वमेकानेकात्मकं सत् स्वाभिधेयमपि तथाभूतमवबोधयति। यतो न तावन्निरवयवेन वाक्येन वस्तुस्वरूपाभिधानं सम्भवति अनन्तधर्माक्रान्तैकात्म- 5 कत्वाद् वस्तुनः। निरवयववाक्यस्य त्वेकस्वभाववस्तुविषयत्वात् तथाभूतस्य च वस्तुनोऽसम्भवात् न निरवयवस्य तस्य वाक्यमभिधायकम्। नापि सावयवं वाक्यं वस्त्वभिधायकं सम्भवति वस्तुन एकात्म- कत्वात्। न च वस्तुनो व्यतिरिक्तास्तदंशाः, तद्व्यतिरेकेण तेषामप्रतीतेः — एकस्वरूपव्याप्तानेकांशप्रति- भासात्। न च तद् एकात्मकमेव, अनेकांशानुरक्तस्यैव एकात्मनः प्रतिभासात्। अतो वस्तुन एकानेक- स्वभावत्वात् तथाभूता एव नैकान्ततः सावयवा उभयैकान्तरूपा वा। 10

तत्र विवक्षाकृतप्रधानभाव-सदाद्येकधर्मात्मकस्यापेक्षितापराशेषधर्मक्रोडीकृतस्य वाक्यार्थस्य स्यात्कार-  
तो उस रूप से भी घट का अभाव प्रसक्त होने से आखिर घट अवाच्यत्व क्यों नहीं होगा ? अनेकान्तवाद में तो कथंचिद् बाह्यान्तर उभय स्वरूप घट की एक साथ विवक्षा करने पर कथंचिद् अवक्तव्य हो सकता है। 19६।

### [ सप्त भंगों में सकलादेश-विकलादेश विभाग ]

“ये आद्य तीन भंग गौण या प्रधानभाव से सकलधर्ममय एक वस्तु के प्रदर्शक हैं। निरवयव (अखंड) बोध कराने के कारण स्वयं इस प्रकार के होते हुए इन तीन भंगों को सकलादेश कहेंगे। शेष अग्रिम ग्रन्थ में कहे जानेवाले चार भंग सावयव (सखंड) बोध द्वारा समस्तधर्ममय वस्तु का प्रदर्शक होने पर भी विकलादेश हैं।” — कुछ विद्वानों का ऐसा अभिप्राय है। जैनदर्शनानुसार सभी वाक्य एकानेकात्मक होते हैं और अपने वाक्यार्थ को भी एकानेकतया ही प्रदर्शित करते हैं। वाक्य भले सावयव हो, बोध 20 सावयव (सखंड), निरवयव (अखंड) दोनों प्रकार से करा सकते हैं। निरवयव वाक्य नहीं होता, निरवयव वाक्य से वस्तु के पूर्ण स्वरूप का प्रदर्शन शक्य नहीं, क्योंकि वस्तु तो अनन्तधर्मगुम्फित एकात्मक होती है, निरवयववाक्य तो एकस्वभाव वस्तु को ही स्पर्श कर सकता है, किन्तु वस्तु कभी एकस्वभाव नहीं होती, अतः (कल्पित) निरवयव (सिर्फ एकात्मक) वस्तु का प्रदर्शन निरवयव वाक्य नहीं कर सकता। ‘तो क्या सावयव वाक्य वस्तु-प्रतिपादक हो सकेगा ?’ नहीं, क्योंकि वस्तु एकात्मक (कथंचिद्) होती 25 है। वस्तु के तथाकथित अवयव वस्तु से भिन्न नहीं होते, क्योंकि वस्तु के साथ भेद से उन की प्रतीति नहीं होती। वस्तु तो एक स्वरूप से रञ्जित अनेकांशमय ही भासित होती है। एकान्ततः वस्तु एकात्मक भी नहीं होती, क्योंकि एकात्मकता भी अनेक अवयवों से व्याप्त हो कर भासित होती है। निष्कर्ष, वस्तु एकानेकस्वभाववाली होने से, तथाप्रकार वस्तु के प्रदर्शक शब्द भी एकानेकस्वभाव ही हो सकते हैं। न तो एकान्ततः सावयव, न तो एकान्ततः उभयरूप यानी सावयव-निरवयवरूप हो सकते हैं। 30

### [ सकलादेश-विकलादेश भंगों का वाक्यार्थ ]

तीन भंग सकलादेश है उन में पहला है ‘स्यात् घटः अस्ति’ (कथंचिद् घट सत् है।) स्यात्

- पदलाञ्छितवाक्यात् प्रतीतेः 'स्यादस्ति घटः १ स्यान्नास्ति घटः २ स्यादवक्तव्यो घटः ३' इत्येते त्रयो भङ्गाः सकलादेशाः। विवक्षाविरचितद्वित्रिधर्मानुरक्तस्य स्यात्कारपदसंसूचितसकलधर्मस्वभावस्य धर्मिणो वाक्यार्थरूपस्य प्रतिपत्तेश्चत्वारो वक्ष्यमाणका विकलादेशाः - 'स्यादस्ति च नास्ति घटः' इति प्रथमो विकलादेशः १, 'स्यादस्ति चाऽवक्तव्यश्च घटः' इति द्वितीयः २, 'स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घटः' इति तृतीयः ३, 'स्यादस्ति च नास्ति चाऽवक्तव्यश्च घटः' इति चतुर्थः ४।

एत एव सप्त भङ्गाः स्यात्पदलाञ्छनविरहिणोऽवधारणैकस्वभावा विषयाभावतो दुर्नया भवन्ति। धर्मान्तरोपादानप्रतिषेधाऽकरणात् स्वार्थमात्रप्रतिपादनप्रवणा एते एव सुनयरूपतामासादयन्ति। स्यात्पदलाञ्छनविवक्षितैकधर्मावधारणवशाद् वा सुनयाः सद्द्रव्यादेरेकदेशस्य व्यवहारनिबन्धनत्वेन विवक्षितत्वात्

- अव्ययपद है उस से विशिष्ट यह जो वाक्य है उस से प्रतीत होने वाला वाक्यार्थ है - सत्त्वभिन्न
- 10 अपेक्षित सकलघटनिष्ठधर्मसमानाधिकरण विवक्षानुसार प्राधान्ययुत एक सत्त्वधर्म विशिष्ट घट है। दूसरे भंग में वाक्य है 'स्याद् घटो नास्ति'। यहाँ 'स्याद्' अव्ययपदगर्भित इस वाक्य से प्रतीत होनेवाला वाक्यार्थ ऐसा है - असत्त्वभिन्न अपेक्षित सकलघटनिष्ठ धर्मसमानाधिकरण विवक्षानुसारप्राधान्ययुत एक असत्त्व धर्म से विशिष्ट घट है। तीसरे भंग में वाक्य है 'स्याद् अवक्तव्यो घटः' (कथंचिद् घट अवाच्य है।) स्याद् अव्ययपदघटित इस वाक्य से प्रतीत होनेवाला वाक्यार्थ इस प्रकार है - अवाच्यत्वभिन्न
- 15 अपेक्षित सकलघटनिष्ठधर्म समानाधिकरण विवक्षानुसारप्राधान्ययुत एक अवाच्यत्वधर्म से विशिष्ट घट है। ये तीन भंग सकलादेश हैं।

### [ विकलादेश के उत्तर चार भंगों का स्वरूप ]

- इसी तरह विकलादेश के चार भंग वाक्य हैं १ - स्याद् अस्ति च नास्ति घटः (घट कथंचिद् सत् एवं असत् हैं)। २ - स्याद् अस्ति चावक्तव्यश्च घटः (घट कथंचिद् सत् एवं अवक्तव्य है) यह दूसरा भंग-वाक्य है। ३ - 'स्याद् नास्ति चावक्तव्यश्च घटः' (घट कथंचिद् असत् और अवक्तव्य है) तीसरा भंगवाक्य हुआ। ४ - चतुर्थ भंगवाक्यः - स्याद् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यश्च घटः (घट कथंचित् सत् है असत् है और अवक्तव्य है)। इन में से चौथे-पाँचवे-छठे भंगवाक्य का वाक्यार्थ पूर्वोक्त रीति से स्यात्पदसंसूचित अन्य सकलधर्मस्वभावसंमिलित, (क्रमशः) विवक्षित सत्त्व-असत्त्व, अथवा सत्त्व-अवक्तव्यत्व, अथवा असत्त्व-अवक्तव्यत्व इन दो धर्मों से विशिष्ट और सातवे भंगवाक्य का सत्त्व-असत्त्व-अवक्तव्यत्व तीन धर्मों से विशिष्ट घट धर्मी है।
- 25 अवक्तव्यत्व तीन धर्मों से विशिष्ट घट धर्मी है।

### [ नय-दुर्नय-सुनय-प्रमाण का विभाग एवं व्यवहारसम्पादन ]

- प्रश्न :- दुर्नय किसे कहते हैं ? सुनय किसे कहते हैं ? प्रमाण किसे कहते हैं ?
- उत्तर :- स्यात् पदसान्निध्यरहित निर्धारण (= जकार) युक्त एकमात्र स्वभाववाले ये ही सात भंग दुर्नय हैं क्योंकि एकान्ततः ऐसा कोई विषय है नहीं। ये ही सात नय जब धर्मान्तरसामानाधिकरण्य का निषेध न करते हुए सिर्फ अपने इष्ट अर्थमात्र का प्रतिपादन करने में मशगुल रहेंगे तब 'सुनय' पदवी प्राप्त करेंगे। अथवा स्यात्पदपूर्वक किसी एक विवक्षित सत्त्वादि धर्म का भारपूर्वक प्रतिपादन करे तो ये सुनय हैं। कारण :- अन्य धर्मों का निषेध नहीं है और 'सत् द्रव्यम्' इत्यादि व्यवहारकारक
- 30 का निषेध न करते हुए सिर्फ अपने इष्ट अर्थमात्र का प्रतिपादन करने में मशगुल रहेंगे तब 'सुनय' पदवी प्राप्त करेंगे। अथवा स्यात्पदपूर्वक किसी एक विवक्षित सत्त्वादि धर्म का भारपूर्वक प्रतिपादन करे तो ये सुनय हैं। कारण :- अन्य धर्मों का निषेध नहीं है और 'सत् द्रव्यम्' इत्यादि व्यवहारकारक

धर्मान्तरस्य चाऽनिषिद्धत्वात्। अतः 'स्यादस्ति' इत्यादि प्रमाणम्, 'अस्त्येव' इत्यादि दुर्नयः, 'अस्ति' इत्यादिकः सुनयो न तु संव्यवहाराङ्गम्, 'स्यादस्त्येव' इत्यादिस्तु नय एव व्यवहारकारणं स्व-पराव्यावृत्तवस्तुविषयप्रवर्तकवाक्यस्य व्यवहारकारणत्वाद् अन्यथा तदयोगात्॥३६॥

[ क्रमशः उत्तरभंगचतुष्कनिरूपणे गाथाचतुष्कम् ]

एवं निरवयववाक्यस्वरूपं भङ्गकत्रयं प्रतिपाद्य सावयववाक्यरूपचतुर्थभङ्गकं प्रतिपादयितुमाह- 5  
(मूलम्-) अह देसो सब्भावे देसोऽसब्भावपज्जवे णियओ।

तं दवियमत्थि णत्थि य आएसविसेसियं जम्हा॥३७॥

अथ इति यदा देशो वस्तुनोऽवयवः सद्भावेऽस्तित्वे नियतः 'सन्नेवायम्' इत्येवं निश्चितः, अपरश्च देशोऽसद्भावपर्याये = नास्तित्वे एव नियतः - 'असन्नेवायम्' इत्यवगतः अवयवभ्योऽवयविनः कथंचिद- 10  
भेदाद् अवयवधर्मैस्तस्यापि तथाव्यपदेशः यथा 'कुण्ठो देवदत्तः' इति। ततोऽवयवसत्त्वाभ्यामवयवी अपि सदसन् सम्भवति। ततः तद् द्रव्यमस्ति च नास्ति चेति भवत्युभयप्रधानावयवभागेन विशेषितं यस्मात्।

एक देश की विवक्षा प्रदर्शित करते हैं। निष्कर्ष :- स्याद् अस्ति अथवा स्याद् नास्ति इत्यादि प्रमाण है, 'अस्ति एव' यह दुर्नय है, सिर्फ 'अस्ति' यह सुनय है। यद्यपि प्रमाण या सुनय व्यवहारसाधक नहीं है, (व्यवहार में प्रचलित नहीं है या लोकव्यवहार में उपयोगी नहीं हैं,) स्याद् अस्ति एव - 15  
ऐसा नय ही व्यवहार कारक होता है, क्योंकि यह नय वाक्य 'स्यात् पद के द्वारा स्व या पर का व्यवच्छेद नहीं (किन्तु संग्रह) करता हुआ विवक्षित वस्तु विषय' का (एव-पद से) उचित भारपूर्वक बोधन या प्रवर्तन करानेवाला होने से व्यवहार सम्पादक बनता आया है। उक्त प्रकार की विषय-वस्तु का बोधन या प्रवर्तन न करे वह व्यवहारसम्पादक नहीं बनता॥३६॥

[ चौथे सावयव अस्ति-नास्ति भंग का विवेचन ]

अवतरणिका :- आद्य तीन भंगों में अस्ति या नास्ति या अवक्तव्य इस प्रकार निरवयव वाक्य 20  
होते हैं, उन का प्रतिपादन कर दिया। अब दो अवयवों वाले चतुर्थभङ्ग का प्रतिपादन करते हैं -

गाथार्थ :- जब एक अंश सत्त्व में और अन्य अंश असत्त्वपर्याय में निर्दिष्ट हो तब वह द्रव्य 25  
यतः आदेश(= अंश)विशेषित है इस लिये अस्ति और नास्ति (हो जाता है)॥३७॥

व्याख्यार्थ :- अथ यानी जब, वस्तु का एक अवयव (= अंश) अस्तित्व से 'यह सत् ही है' 25  
इस प्रकार से नियत यानी निश्चित (= स्थापित) किया जाय, और अन्य देश (= अंश) असद्भाव-पर्याय यानी नास्तित्व से 'यह असत् ही है' इस प्रकार नियत (= स्थापित) किया जाय; यह कैसे देखिये :- अवयव-अवयवी कथंचिद् अभिन्न होते हैं इस लिये देवदत्त के हस्तादिरूप अवयव कुण्ठ होने पर 'देवदत्त कुण्ठ है' ऐसा व्यवहार प्रचलित है। मतलब, अवयवभूत सत्त्व और असत्त्व के अभेद से द्रव्य भी सत्-असत् हो सकता है। अत एव वैसा द्रव्य, उक्त कारण से 'अस्ति' और 'नास्ति' 30  
इस प्रकार उभय प्रधान अवयव अंशतः विशेषित बनता है।

स्पष्टता :- जो द्रव्य जिस जिस अवयव रूप विशिष्ट धर्म से विवक्षित किया जाता है वह



तथाहि— यद् अवयवेन विशिष्टधर्मेण आदिश्यते तद् अस्ति च नास्ति च भवति। तथा, स्वद्रव्यक्षेत्र-काल-भार्वैविभक्तो घटः स्वद्रव्यादिरूपेणास्ति परद्रव्यादिरूपेण च स एव नास्ति। तथा च पुरुषादि वस्तु विवक्षितपर्यायेण बालादिना परिणतम् कुमारादिना चाऽपरिणतमित्यादिष्टम् इति योज्यम्॥३७॥

पूर्वभङ्गकप्रदर्शितन्यायेन पञ्चमभङ्गकप्रदर्शनायाह—

5 (मूलम्-) सद्भावे आइड्डो देसो देसो य उभयहा जस्स।

तं अत्थि अवत्तव्वं च होइ दविअं वियप्पवसा॥३८॥

सद्भावे = अस्तित्वे यस्य घटादर्धमिणो देशो धर्म आदिष्टो अवक्तव्यानुविद्धस्वभावे, अन्यथा तदसत्त्वात्। न ह्यपरधर्माप्रविभक्ततामन्तरेण विवक्षितधर्मास्तित्वमस्य सम्भवति खरविषाणादेरिव। तस्यै-वापरो देश उभयथा अस्तित्व-नास्तित्वप्रकाराभ्यामेकदैव विवक्षितोऽस्तित्वानुविद्ध एवाऽवक्तव्यस्वभावः  
10 अन्यथा तदसत्त्वप्रसक्तेः। न ह्यस्तित्वाभावे उभयाविभक्तता शशशृंगादेरिव तस्य सम्भविनी। प्रथम-तृतीय-भङ्गव्युदासस्तथाविवक्षावशादत्र कृतो दृष्टव्यः। तत्र प्रथम-तृतीययोर्भगकयोः परस्पराविशेषणभूतयोः प्रति-

अस्ति और नास्ति इस प्रकार परिणत होता है। तदुपरांत, जब घट द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव (जैन दर्शन के पारिभाषिक तत्त्व) से विवक्षित किया जाय तब घट स्वद्रव्य = मिट्टी, स्वक्षेत्र = भूतलादि, स्वकाल = प्रातःकालादि, स्वभाव = वृत्ताकारादि रूपों से 'सत्' होता है किन्तु परद्रव्य = जलादि, परक्षेत्र  
15 रज्जु आदि, परकाल = रात्रिकाल अथवा प्रलयकाल, पर भाव = चतुष्कोणादि संस्थान आदि रूपों से जिज्ञासित होने पर वही घट 'नास्ति' बन जाता है। ऐसे ही घट की तरह पुरुषद्रव्य भी (३३ वीं गाथा में जो कहा है तदनुसार) विवक्षित बालादि पर्याय से जब परिणत होता है तब कुमारादि भाव से वही पुरुष अपरिणत भी निर्दिष्ट किया जाता है — यह समझ लेना॥३७॥

[ पंचम भंग अस्ति-अवक्तव्य का निदर्शन ]

20 अवतरणिका :- पूर्वभंगों का सयुक्तिक प्रदर्शन कर के अब वैसे ही सयुक्तिक पंचमभंग का प्रदर्शन किया जाता है—

गाथार्थ :- द्रव्य का एक अंश 'सत्' रूप से और दूसरा अंश एक ही सत्-असत् उभय रूप से निर्दिष्ट करना हो तब वह द्रव्य विकल्प (= जिज्ञासा या विवक्षा) के अनुसार स्याद् अस्ति — स्याद् अवक्तव्य (भंगप्रविष्ट) होता है॥३८॥

25 व्याख्यार्थ :- घटादि धर्मों को एक देश यानी एक धर्म सत्त्व से विवक्षित करें, और अन्य देश यानी एक साथ सत्त्वासत्त्व उभयविवक्षा से अवक्तव्य धर्मअनुरक्त स्वभाव से विवक्षित करे तब वह द्रव्य 'स्याद् अस्ति स्याद् अवक्तव्य' भंग का आह्वान करता है। यदि विवक्षानुसार ऐसा (यानी सत्त्व को अवक्तव्य अनुगतस्वभाव युक्त) न माने तो द्रव्य सर्वथा असत् खपुष्पवत् हो जायेगा। किसी भी द्रव्य का कोई एक धर्म (सत्त्व), अन्य धर्मों से अविभक्तरूप से द्रव्य में रहना पसंद नहीं करेगा  
30 तो उस विवक्षित धर्म का अस्तित्व ही गर्दभशृंग की तरह आपद्ग्रस्त बन जायेगा। सत्त्वरूप से विवक्षित एक द्रव्य में अन्य देश एक साथ अस्ति-नास्तिउभयप्रकार से विवक्षित किया जाय तो वह द्रव्य अस्ति-

पाद्येनाधिगन्तुमिष्टत्वात्, प्रतिपादकेनापि तथैव विवक्षितत्वात् अत्र तु तद्विपर्ययात् अनन्तधर्मात्मकस्य धर्मिण प्रतिपाद्यानुरोधेन तथाभूतधर्माक्रान्तत्वेन वक्तुमिष्टत्वात् तद् द्रव्यमस्ति च अवक्तव्यं च भवति तद्धर्मविकल्पनवशात् धर्मयोस्तथापरिणतयोस्तथाव्यपदेशे धर्म्यपि तद्द्वारेण तथैव व्यपदिश्यते।।३८।।

षष्ठभङ्गकं दर्शयितुमाह-

(मूलम्-) आइडोऽसब्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स।

5

तं णत्थि अवत्तव्वं च होइ दवियं वियप्पवसा।।३९।।

यस्य वस्तुनो देशोऽसत्त्वे निश्चितः 'असन्नेवायम्' इत्यवक्तव्यानुविद्धः अपरश्चासदनुविद्ध<sup>▼</sup> उभयथा 'सन्नसंश्च' इत्येवं युगपन्निश्चितस्तदा तद् द्रव्यं नास्ति च अवक्तव्यं च भवति विकल्पवशात् = तद् व्यपदेश्यावयववशात् द्रव्यमपि तद् व्यपदेशमासादयति। केवलद्वितीय-तृतीय-भङ्गकव्युदासेन षष्ठभंगः प्रदर्शितः।।३९।। सप्तमप्रदर्शनायाह-

10

त्वधर्मानुविद्ध अवक्तव्यस्वभावयुक्त बन जायेगा। इस भंग का प्रथम और तृतीय भंग में अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ जैसे अस्तित्व और अवक्तव्यता में परस्पर अनुविद्धता है वैसी प्रथम-तृतीय भंग में नहीं है। वहाँ तो परस्पर अविशेषणभूत सत्त्व और अवक्तव्यत्व का प्रतिपादन अपेक्षित है, कारण-प्रतिपादक की विवक्षा भी तथाप्रकार की है। यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ तो अनन्तधर्मात्मक द्रव्य वस्तु धर्मी को वाच्यवस्तु के अनुरोध से अन्योन्यानुविद्ध धर्म संकलित स्वरूप से ही दिखाना अभीष्ट है। इस ढंग के तत् तत् धर्म के विकल्पन = विवक्षा वश वह द्रव्य अस्ति और अवक्तव्य हो कर रहेगा। धर्म-धर्मी का अभेद कर के, अन्योन्यानुविद्ध स्वभावपरिणत धर्मों के द्वारा धर्मी(द्रव्य) भी अन्योन्यानुविद्ध स्वभाव परिणत स्वरूप से निर्दिष्ट किया गया है। मतलब, गाथा में द्रव्य यानी धर्मी-प्रधान निर्देश है।।३८।।

15

[ छट्टे भंग की निष्पत्ति एवं स्पष्टीकरण ]

20

अवतरणिका :- छट्टे भंग का निदर्शन करते हैं :-

गाथार्थ :- जिस का अंश असत्त्व और अंश सत्त्वाऽसत्त्व उभय विवक्षित हो तब विकल्प (= विवक्षा) वश वह द्रव्य नास्ति और अवक्तव्य होता है।।३९।।

व्याख्यार्थ :- जिस वस्तु का अंश असत्त्व रूप निश्चित किया, उदा. 'यह असत् ही है'; वह भी अवक्तव्यस्य अनुविद्ध; तथा अन्य अंश अवक्तव्य असदनुविद्ध हो कर 'सद्-असत्' इस प्रकार एक साथ निश्चित यानी विवक्षित हुआ, तब द्रव्य नास्ति और अवक्तव्य भंग विशिष्ट बनेगा। 'विकल्पवश' शब्द का यह भी सूचितार्थ है कि द्रव्य अपने धर्मरूप व्यपदेश्य के अनुरोध से नास्ति-अवक्तव्यव्यपदेश प्राप्य करता है। स्वतन्त्र द्वितीय-तृतीय भंग के व्यवच्छेदपूर्वक यह छट्टा भंग प्रदर्शित किया गया है। मतलब, पंचम भंग में जो कहा है उस के अनुसार इस भंग का द्वितीय-तृतीय भंग में समावेश नहीं होता।।३९।।

25

[ सप्तम भंग का निष्पादन और स्पष्टता ]

30

अवतरणिका :- सातवे भंग का प्रदर्शन करते कहते हैं -

▼. 'न हि अपरमधर्म... इत्यादिभावना अत्रापि कार्या' - बृ० ल० टी०। सा च ३५१-८ मध्ये।

(मूलम्-) सद्भावेऽसद्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स।

तं अत्थि णत्थि अवत्तव्वयं च दवियं वियप्पवसा।।४०।।

यस्य देशिनो देशोऽवयवः देशो धर्मो वा सद्भावे नियतो = निश्चितः अपरस्तु असद्भावे = असत्त्वे तृतीयस्तु उभयथा इत्येवं देशानां सदसदवक्तव्यव्यपदेशात् तद् अपि द्रव्यमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च भवति विकल्पवशात्। तथाभूतविशेषणाध्यासितस्य द्रव्यस्यानेन प्रतिपादनादपरभङ्गव्युदासः। एते च परस्पररूपापेक्षया सप्तभंग्यात्मकाः प्रत्येकं स्वार्थं प्रतिपादयन्ति नान्यथेति प्रत्येकं तत्समुदायो वा सप्तभंगात्मकः प्रतिपाद्यमपि तथाभूतं दर्शयतीति व्यवस्थितम्।

अत्र चाद्यभंगकस्त्रिधा, द्वितीयोऽपि त्रिधैव, तृतीयो दशधा, चतुर्थोऽपि दशधैव, पञ्चमादयस्तु त्रिंशदधिकशतपरिणामाः प्रत्येकं श्रीमन्मल्लवादिप्रभृतिभिर्दर्शिताः। पुनश्च षड्विंशत्यधिकचतुर्दशशतपरिणामास्त एव च द्रव्यादिसंयोगकल्पनया कोटीशो भवन्तीत्यभिहितं तैरेव। अत्र तु ग्रन्थविस्तरभयात् तथा न प्रदर्शितास्तत एवावधार्याः।

**गाथार्थः** :- जिस द्रव्य का एक अंश 'सत्' रूप से, दूसरा 'असत्' रूप से, तीसरा (सत्-असत्) उभयरूप से सह विवक्षित होता है, (अवक्तव्य रूप से) वह द्रव्य विकल्पवश (= विवक्षाधीन) 'स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति स्याद् अवक्तव्य' हो जाता है।।

**व्याख्यार्थः** :- जिस अवयवी का देश यानी अवयव अर्थात् देशरूप अथवा धर्मरूप अवयव सत्स्वरूप से निश्चित किया, दूसरा अंश 'असत्' रूप से तय हुआ, तीसरा उभयथा यानी एक साथ सत्-असत् विवक्षित करने पर अवक्तव्यरूप से तय हुआ, तब उन तीनों का एक मिलित भंग सत्-असत्-अवक्तव्य रूप से निर्दिष्ट होने के कारण उन से अभिन्न द्रव्य भी विकल्प (= तथाविध विवक्षा) अनुसार 'स्याद् अस्ति स्याद् नास्ति स्याद् अवक्तव्य' व्यपदेश को प्राप्त होता है। यहाँ अभेदनिर्देश से सत्त्वादिविशेषणों से आश्लिष्ट द्रव्य का प्रतिपादन किया है उस से अन्य भंगों में इस भंग के समावेश की सम्भावना का निरसन हो जाता है। ये प्रत्येक भंग परस्पर सापेक्ष सप्तभंगी से अभिन्न रह कर अपने अपने अर्थों का प्रतिपादन करते हैं, भिन्न रह कर और निरपेक्ष बन कर नहीं। इस ढंग से ये प्रत्येक भंग अथवा उन का समुदायरूप सप्तभंगी बनती है और उन के प्रतिपाद्य अर्थ भी अन्योन्य कथंचिद् अभेदभाव रखते हैं — यह इस गाथा से प्रदर्शित किया गया है जो सुव्यवस्थित है।

**[ मल्लवादीसूरि के ग्रन्थ में कोटिकोटी उपभेद ]**

द्वादशारनयचक्र ग्रन्थ के कर्ता श्रीमान् मल्लवादीसूरि आदि पूर्वाचार्यों ने इन भंगों के उपभेद अनेक दर्शाये हैं — जैसे :- प्रथम भंग के तीन प्रकार, दूसरे के भी तीन, तीसरे के दश, चौथे के भी दश, पाँच-छ-सात के एक एक के एकसो त्रीश। तथा, इन उपभेदों के भी द्विसंयोगी, त्रिसंयोगी आदि रचना के द्वारा चौदह सो छब्बीस (१४२६) होते हैं और आगे चल कर उपभेदों के प्रतिभेदों से कोटिकोटी संख्या होती है। ऐसा उन महापुरुषों ने अपने द्वादशारनयचक्र आदि ग्रन्थों में कहा है। यहाँ ग्रन्थ विस्तार भय से वे सब नहीं कहते हैं, विस्तरार्थी उन ग्रन्थों में देख सकते हैं।

अथानन्तधर्मात्मके वस्तुनि तत्प्रतिपादकवचनस्य सप्तधा कल्पने अष्टमवचनविकल्पपरिकल्पनमपि किं न क्रियते इति न वक्तव्यम्, तत्परिकल्पननिमित्ताभावात्। तथाहि— न तावत् सावयवात्मकमन्योन्यनिमित्तकं तत् परिकल्पयितुं युक्तम् चतुर्थादिवचनविकल्पेषु तस्यान्तर्भावप्रसक्तेः। नापि निरवयवात्मकमन्योन्यनिमित्तकं तत् परिकल्पनामर्हति प्रथमादिष्वन्तर्भावप्रसक्तेः। न च गत्यन्तरमस्तीति नाष्टभंगपरिकल्पना युक्ता।

किञ्च, असौ क्रमेण वा तद्धर्मद्वयं प्रतिपादयेत् यौगपद्येन वा ? प्रथमपक्षे गुणप्रधानभावेन तत्प्रतिपादने 5  
प्रथमद्वितीययोरन्तर्भावः प्रधानभावेन तत्प्रतिपादने चतुर्थे। यौगपद्येन तत्प्रतिपादने तृतीये, भङ्गकसंयोगकल्पनया भङ्गान्तरकल्पनायां प्रथम-द्वितीयभंगकसंयोगे चतुर्थभङ्गक एव प्रसज्यते। प्रथम-तृतीयसंयोगात् पञ्चमप्रसक्तिः। द्वितीय-तृतीयसंयोगात् षष्ठप्रसक्तिः, प्रथम-द्वितीय-तृतीय-संयोगात् सप्तमः, प्रथम-चतुर्थादिसंयोगकल्पनायां पुनरुक्तदोषः। तस्माद् न कथञ्चिदष्टमभङ्गसम्भवः इत्युक्तन्यायात् वस्तुप्रतिपादने सप्तविध एव 10  
वचनमार्गः।।४०।।

### [ आठवा भंग युक्तिसंगत क्यों नहीं ? – उत्तर ]

प्रश्न :- वस्तु जब अनन्तधर्मात्मक है तब उन एक एक धर्म के प्रतिपादक वचनों के सिर्फ सात ही भंगों की कल्पना क्यों ? आठवे वचन (= भंग) की कल्पना क्यों नहीं किया ?

उत्तर :- ऐसा मत पूछो ! आठवे वचन की कल्पना करने के लिये जो निमित्त मिलना चाहिये 15  
वह नहीं है। देखिये— अन्योन्य अस्तित्वादिनिमित्तों से जो सावयव भङ्गों की कल्पना की गयी है (चार से सात भंग) उन से अतिरिक्त सावयव भंगकल्पना के लिये कोई निमित्त नहीं है, क्योंकि जो भी होगा— चतुर्थादि वचन विकल्पों में ही उन निमित्तों का अन्तर्भाव हो जायेगा। तथा, 9-२-३ भंगों से अतिरिक्त निरवयवात्मक भी अन्योन्यनिमित्त कल्पनाहर्ह नहीं है क्योंकि जो भी वैसा निमित्त खोजेंगे उनका प्रथम-द्वितीय-तृतीय में ही अन्तर्भाव हो जायेगा। और कोई चारा नहीं है अतः आठवे भंग 20  
की कल्पना युक्तिसंगत नहीं है।

और एक बात :- कदाचित् आठवे भंग के निमित्त को खोज डाला :- तो प्रश्न ऊठेगा कि वह क्रमशः धर्म युगल का प्रतिपादन करेगा या एक साथ ? प्रथम क्रमिक पक्ष में, गौण-मुख्य भाव से भङ्ग-प्रतिपादन करने पर पहले और दूसरे भंग में ही अन्तर्भाव हो जायेगा। दोनों धर्मों का क्रमशः प्रधानरूप से प्रतिपादन करेंगे तो चौथे भंग में समावेश कर देंगे। यदि दूसरा पक्ष एक साथ किसी 25  
भङ्ग का प्रतिपादन करना चाहेंगे तो तीसरे भंग में समावेश हो जायेगा। अगर, भंगों के संयोग से नये भंग की कल्पना करने जायेंगे तो प्रथम-द्वितीय के संयोग से चौथे भंग में प्रवेश होगा। प्रथम-तृतीय के संयोग से नया भंग बनाएँगे तो पाँचवे भंग में, द्वितीय-तृतीय के संयोग से नया भंग बनाएँगे तो छठे भंग में, आद्य तीन के संयोग से नया भंग बनाएँगे तो सातवे भंग में प्रवेश होगा। पहला-चौथा इत्यादि संयोग की कल्पना करेंगे तो पुनरुक्ति का ही दोष होगा। सारांश, किसी भी 30  
तरह आठवाँ भंग सम्भव नहीं। अतः पूर्वोक्त तर्कानुसार वस्तु का निरूपण करने में सप्त प्रकार वाला ही वचनमार्ग प्रस्थापित होता है।।४०।।

अन्योन्यापरित्यागव्यवस्थितस्वरूपवाक्यनयानां शुद्ध्यशुद्धिविभागेन संग्रहादिव्यपदेशमासादयतां द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयावेव मूलाधार इति प्रदर्शनार्थमाह-

(मूलम्-) एवं सत्तवियप्पो वयणपहो होइ अत्थपज्जाए।

वंजणपज्जाए उण सवियप्पो णिव्वियप्पो य।।४९।।

- 5 एवं इत्थनन्तरोक्तप्रकारेण सप्तविकल्पः = सप्तभेदः वचनमार्गो वचनपथः भवत्यर्थपर्याये = अर्थनये संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रलक्षणे सप्ताप्यननन्तरोक्ता भंगका भवन्ति। तत्र प्रथमः संग्रहे सामान्यग्राहिणि, 'नास्ति' इत्ययं तु व्यवहारे विशेषग्राहिणि, ऋजुसूत्रे तृतीयः, चतुर्थः संग्रह-व्यवहारयोः, पञ्चमः संग्रह ऋजुसूत्रयोः, षष्ठो व्यवहार-ऋजुसूत्रयोः, सप्तमः संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रेषु। व्यञ्जनपर्याये = शब्दनये सविकल्पः प्रथमे पर्यायशब्दवाच्यताविकल्पसद्भावेऽप्यर्थस्यैकत्वात् (प्रथमः)। द्वितीय-तृतीययोर्निर्विकल्पः

### 10 [ अर्थनय-शब्दनय में सात भंगों की व्यवस्था ]

एक-दूसरे को न छोड़ते हुए अपने अपने स्वरूप में सुस्थित वाक्यात्मक नयों, शुद्ध-अशुद्ध विभाग के द्वारा संग्रह-व्यवहार ... इत्यादि शब्दनिर्देश भले प्राप्त करें किन्तु उन का मूलाधार तो द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक ये दो मूल नय ही हैं — इस तथ्य का ४९ वीं गाथा से निदर्शन किया जाता है—

गाथार्थ :- उक्त रीति से अर्थपर्याय में सप्तप्रकारी वचनमार्ग होता है, व्यञ्जनपर्याय में तो सविकल्प-

- 15 निर्विकल्प होता है।।४९।।

व्याख्यार्थ :- अर्थपर्याय यानी अर्थनय संग्रह-व्यवहार और ऋजुसूत्र, इन का वचनमार्ग यानी वचनव्यवहार पूर्वोक्त गाथाओं के अनुसार सात विकल्पों से चलता है। पहला भंग सामान्यवस्तुग्राही संग्रह नय में प्रविष्ट है, क्योंकि वह सत्त्वमहासामान्यप्रेक्षी है। दूसरा भंग विशेषवस्तुग्राही व्यवहार में प्रविष्ट होगा, क्योंकि वह सत्त्व सामान्य को नजरअंदाज करता है। ऋजुसूत्र लिंगादिभेद से भेद की पृच्छा होने पर मौन रख कर तृतीयभंग अवाच्यता को स्वीकार लेता है। चौथा दो अंशवाला भंग संग्रह और व्यवहार में मिलितरूप से समाविष्ट होगा। उसी तरह पाँचवा मिलितरूप से संग्रह और ऋजुसूत्र में, छठा भंग व्यवहार-ऋजुसूत्र में और सातवाँ मिलित रूप से संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र में समाविष्ट होंगे।

### [ शब्दनय में सविकल्प-अविकल्प सात भंग ]

- 25 व्यञ्जनपर्याय यानी शब्दनय (शब्द, समभिरूढ और एवंभूत)। इस में सात भंगों के दो विभाग होते हैं, सविकल्प और निर्विकल्प। (अर्थनय में तो सब सविकल्प हैं यह फलित होता है।) जिस को पर्यायशब्दवाच्यता मान्य है उस प्रथम शब्दनय में अर्थ एक होता है किन्तु पर्यायशब्दविकल्प मौजूद होने से प्रथम भंग सविकल्प है। दूसरा समभिरूढ नय और तीसरा एवंभूत नय द्रव्यार्थरूप सामान्य से विनिर्मुक्त पर्याय के प्रतिपादक होने से, यानी यहाँ पर्यायशब्दवाच्यता न होने से द्वितीय भंग निर्विकल्प है। समभिरूढ नय में पर्यायभेद से अर्थभेद होता है। एवंभूत नय तो विवक्षित क्रियाकाल में ही तत्तत्क्रिया अन्वित अर्थ का ग्राहक होने से, लिंगभेद से, संज्ञा भेद से और क्रिया भेद से अर्थभेद

द्रव्यार्थात् सामान्यलक्षणान्निर्गतपर्यायाभिधायकत्वात्— समभिरूढस्य पर्यायभेदभिन्नार्थत्वात्— एवंभूतस्यापि विवक्षितक्रियाकालार्थत्वात् लिङ्ग-संज्ञा-क्रियाभेदेन भिन्नस्यैकशब्दाऽवाच्यत्वात्। शब्दादिषु तृतीयः, प्रथम-द्वितीयसंयोगे चतुर्थः, तेष्वेव चानभिधेयसंयोगे पञ्चम-षष्ठ-सप्तमा वचनमार्गा भवन्ति।

अथवा प्रदर्शितस्वरूपा सप्तभंगी संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रेष्वेवार्थनयेषु भवतीत्याह— एवं सत्तवियप्पो इत्यादिगाथाम्। अस्यास्तात्पर्यार्थः —

अर्थनय एव सप्त भङ्गाः, शब्दादिषु त्रिषु नयेषु प्रथम-द्वितीयावेव भङ्गौ। यो ह्यर्थमाश्रित्य संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्राख्यः प्रत्ययः प्रादुर्भवति सोऽर्थनयः अर्थवशेन तदुत्पत्तेः अर्थ प्रधानतयासौ व्यवस्थापयतीति कृत्वा। शब्दं तु स्वप्रभवमुपसर्जनतया व्यवस्थापयति तत्प्रयोगस्य परार्थत्वात्। यस्तु श्रोतरि तच्छब्दश्रवणादु-  
द्गच्छति शब्द-समभिरूढ-एवंभूताख्यः प्रत्ययस्तस्य शब्दः प्रधानम् तद्वशेन तदुत्पत्तेः, अर्थस्तूपसर्जनम्  
तदुत्पत्तावनिमित्तत्वात्, स शब्दनय उच्यते।

तत्र च वचनमार्गः सविकल्प-निर्विकल्पतया द्विविधः— सविकल्पं सामान्यम् निर्विकल्पः पर्यायः

मानता है अतः इन दो (स० ए०) नय में दूसरा भंग निर्विकल्प होता है। शब्दादि तीनों नयों में तीसरा भंग सविकल्प-निर्विकल्प हैं। शब्द और समभिरूढ में मिल कर चौथा भंग (सविकल्प-निर्विकल्प) होता है। शब्दादि तीन में अवक्तव्य के संयोग से शब्द और एवंभूत में मिल कर पाँचवा भंग (सविकल्प-निर्विकल्प) समभिरूढ-एवंभूत में मिल कर छठा (निर्विकल्प) भंग, तथा शब्द-समभिरूढ-एवंभूत में मिल कर सातवाँ सविकल्प-निर्विकल्प भंग समाविष्ट होता है।

### [ अर्थनय में सात भंग, शब्द नय में दो ]

इस ४१ वीं गाथा की दूसरे प्रकार से व्याख्या प्रस्तुत है— दूसरे प्रकार से व्याख्या में ऐसा कहते हैं कि उक्तस्वरूप सप्तभंगी सम्पूर्णतया सिर्फ संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र तीन अर्थनयों में ही होती है यह मूलकार सत्तवियप्पो... इस गाथा से कहना चाहते हैं। उस का तात्पर्यार्थ व्याख्याकार दिखाते हैं —

ज्ञानात्मक नय पक्ष में अर्थ नय में सात भंग पूरे लागू होते हैं किन्तु शब्दनय में (तीनों में) प्रथम-द्वितीय दो भंग ही लागू होते हैं। अर्थनय वक्ता के ज्ञानरूप है और शब्दनय श्रोता के ज्ञानरूप है। अर्थ के विषय में संग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्रसंज्ञक जो बोध वक्ता को होता है वह अर्थनय है क्योंकि वह अर्थवश उत्पन्न होता है और यह नय भी प्रधानरूप से अर्थ का प्रस्थापन करता है। शब्द तो अर्थबोध जन्य होता है इस लिये उस का प्रस्थापन गौणरूप से करता है क्योंकि शब्दप्रयोग हमेशा दूसरे के लिये होता है।

श्रोता को तत्तत् शब्द के श्रवण से जो शब्द-समभिरूढ-एवंभूत संज्ञक बोध उदित होता है वह शब्दनय कहा जाता है, क्योंकि उस में शब्द की प्रधानता होती है, शब्द से वह उदित होता है, अर्थ यहाँ (उत्पत्ति के लिये) गौण है, शब्दबोध की उत्पत्ति में अर्थ यहाँ निमित्त नहीं होता।

### [ शब्द-समभिरूढ नयों में सविकल्प, एवंभूत में निर्विकल्प ]

यहाँ ज्ञानात्मकनय में वचनमार्ग के दो भेद हैं — सविकल्प और निर्विकल्प। सविकल्प यानी

तदभिधानाद् वचनमपि तथा व्यपदिश्यते। तत्र शब्द-समभिरूढौ संज्ञा-क्रियाभेदेऽप्यभिन्नमर्थं प्रतिपादयत इति तदभिप्रायेण सविकल्पो वचनमार्गः प्रथमभंगरूपः। एवंभूतस्तु क्रियाभेदाद् भिन्नमेवार्थं तत्क्षणे प्रतिपादयतीति निर्विकल्पो द्वितीयभङ्गरूपस्तद्वचनमार्गः। अवक्तव्यभङ्गकस्तु व्यञ्जननये न सम्भवत्येव। यतः श्रोत्रभिप्रायो व्यञ्जननयः, स च शब्दश्रवणार्थं प्रतिपद्यते न शब्दाश्रवणात्, अवक्तव्यं तु शब्दाभावविषयः इति नावक्त-

5 व्यभङ्गकः व्यञ्जनपर्याये सम्भवतीत्यभिप्रायवता व्यञ्जनपर्याये तु सविकल्प-निर्विकल्पौ प्रथमद्वितीयावेव भङ्गावभिहितावाचार्येण, 'तु' शब्दस्य गाथायामेवकारार्थत्वात्॥४१॥

इदानीं परस्पररूपापरित्यागप्रवृत्तसंग्रहादिनयप्रादुर्भूततथाविधा एव वाक्यनयास्तथाविधार्थप्रतिपादका इत्येतत् प्रतिपाद्याऽन्यथाभ्युपगमे तेषामप्यध्यक्षविरोधतोऽभाव एवेत्येतदुपदर्शनाय केवलानां तेषां तावन्मतमु-  
पन्यस्यति -

10 (मूलम्-) जह दवियमप्पियं तं तहेव अत्थि त्ति पज्जवणयस्स।

ण य स समयपण्णवणा पज्जवणयमेत्तपडिपुण्णा॥४२॥

सामान्य और निर्विकल्प का अर्थ है पर्याय। सामान्य और पर्याय का प्रतिपादक होने से तद्विषयक वचन को भी सविकल्प-निर्विकल्प कहा गया है। शब्दनय में संज्ञाभेद होने पर भी, एवं समभिरूढ में क्रियाभेद होने पर भी अर्थभेद नहीं माना गया अतः इस अभिप्राय से ये दो नय के परिप्रेक्ष्य

15 में वचनमार्ग सविकल्प हैं जो प्रथमभङ्गरूप हैं। एवंभूतनय क्रियाभेद से अर्थभेद मान कर विवक्षितक्रिया अन्वित अर्थ का ही तत्क्रियाक्षण में प्रतिपादन करता है अतः उस के मत से द्वितीयभंगरूप निर्विकल्प ही वचनमार्ग है। व्यञ्जननयों (= शब्दनयों) में अवक्तव्य भंग सम्भव नहीं। कारण :- व्यञ्जन श्रोता-अभिप्रायरूप है। श्रोता शब्द श्रवण कर के अर्थबोध करता है शब्द सुने विना नहीं। जब कि अवक्तव्य तो शब्दाभावविषयक यानी शब्दबाह्य (= शब्दविनिर्मुक्त) होता है। अतः व्यञ्जनपर्याय में अवक्तव्य

20 भंग का सम्भव नहीं। इसी अभिप्रायवाले आचार्य ने व्यञ्जनपर्याय में सविकल्प = प्रथमभंग और निर्विकल्प = दूसरा भंग ये दो ही प्रतिपादित किये हैं। दो ही - यहाँ 'ही' = एवकारार्थ 'तु' शब्द से गाथा में सूचित किया गया है॥४१॥

अब मूलग्रन्थकार कहते हैं - एक-दूसरे के स्वरूप का अपलाप न करते हुए अपने विषय में प्रवृत्त होनेवाले संग्रहादि (बोधात्मक) नयों से तथाविध ही (परानपलापी) वाक्य नयों का प्रादुर्भाव

25 होता है और ये वाक्यनय भी तथाविध (अन्य सापेक्ष) अर्थ के प्रतिपादक हैं, ऐसा यदि न माना जाय तो प्रत्यक्षतः विरोध प्राप्त होने से उन का अभाव यानी लोप ही प्रसक्त होगा - इस तथ्य को प्रदर्शित करने के लिये सिर्फ स्वमत के आग्रही परनिरपेक्ष ऐसे नय के मत का उपन्यास अग्रिम गाथा ४२ से करते हैं -

[ पर्यायार्थिक नय का द्रव्यविषयक अभिप्राय अनुचित ]

30 गाथार्थ :- पर्यायनय :- द्रव्य जैसे विवक्षित है वह वैसा ही है यह पर्यायनयमात्र में व्याप्त समय = अर्थ की प्ररूपणा नहीं॥४२॥

यथा वर्तमानकालसम्बन्धितया यद् द्रव्यमर्पितं = प्रतिपादयितुमिष्टं तत् तथैवास्ति नान्यथा अनुत्पन्न-  
विनष्टतया भावि-भूतयोरविद्यमानत्वेनाऽप्रतिपत्तेः, अप्रतीयमानयोश्च प्रतिपादयितुमशक्तेरतिप्रसंगाद्  
वर्तमानसम्बन्धिन एव तस्य प्रतीतेः इति पर्यायार्थिकनयवाक्यस्याभिप्रायः। एतद् अनेकान्तवादी दूषयि-  
तुमाह— न इति प्रतिषेधे स इति तथाविधो वाक्यनयः परामृश्यते समय इति सम्यग् ईयते = परिच्छिद्यत  
इति समयोऽर्थः तस्य प्रज्ञापना = प्ररूपणा पर्यायनयमात्रे द्रव्यनयनिरपेक्षे पर्यायनये प्रतिपूर्णा = पुष्कला 5  
सम्पद्यते। न स वाक्यनयः सम्यगर्थप्रत्यायनां पूरयतीति यावत्, पर्यायनयस्य सावधारणैकान्तप्रतिपाद-  
नरूपस्याध्यक्षबाधनात् तद्बाधां चाग्रतः प्रतिपादयिष्यति।।४२।।

द्रव्यार्थिकवाक्यनयेऽप्ययमेव न्यायः इति तदभिप्रायं तावदाह—

(मूलम्-) पडिपुण्णजोव्वणगुणो जह लज्जइ बालभावचरिएण।

कुणइ य गुणपणिहाणं अणागयसुहोपहाणत्थं।।४३।।

10

व्याख्यार्थ :- पर्यायार्थिक नय को ऐसा अभिप्रेत है कि द्रव्य वर्तमानक्षणमात्र में विद्यमानतया ही  
प्रतिपादित किया जाय वह द्रव्य भी तब वर्तमानक्षणमात्रवृत्ति ही होता है, अन्यकालवृत्तित्व मान्य नहीं।  
भावि काल अनुत्पन्न है और भूतकाल विनष्ट है अतः वर्तमानभिन्न काल में विद्यमान रूप से द्रव्य  
का स्वीकार नहीं हो सकता। भूत और भावि काल अदृश्य है अतः उन का या उन में द्रव्यसत्ता  
का प्रतिपादन अशक्य—अयुक्तिक है। किसी तरह आँख मुंद कर करे तो खरविषाण की सत्ता के 15  
प्रतिपादन का अतिप्रसंग होगा। द्रव्य तो वर्तमानकालसम्बन्धितया ही दृश्यमान होता है। — यह पर्यायार्थिक  
नय का अभिप्राय है।

### [ एकान्तवाद की समीक्षा ]

इस पर्यायनय के एकान्तवाद के प्रति अनेकान्तवादी गाथा उत्तरार्ध में दोषारोपण करता है —  
वह वाक्यनय यानी पर्यायनय द्रव्यनयनिरपेक्ष पर्यायनयमात्रप्ररूपणा में प्रतिबद्ध (= प्रतिपूर्ण) है किन्तु 20  
समयप्रज्ञापनारूप नहीं है। जो सम्यक् प्रकार से ज्ञात किया जाय ऐसे अर्थ को 'समय' कहा जाता  
है, प्रज्ञापना यानी प्ररूपणा। गाथा में 'न' पद प्रतिषेधसूचक है और 'स' पद वाक्यनय का परामर्शकारी  
है। भावार्थ यह है कि वाक्यनय सम्यक् अर्थ-प्रतीति की आशा पूर्ण नहीं करता। कारण :- अवधारण  
(= आग्रहपूर्ण) सहित एकान्तमत का प्रतिपादन करनेवाला होने से वाक्य नय प्रत्यक्षतः बाधित है।  
कैसे ? यह अग्रिम ग्रन्थ में कहा जायेगा।।४२।।

25

### [ द्रव्यार्थिकनय का उदाहरण ]

पर्यायार्थिकवाक्यनय का एकान्तवाद में जिस न्याय से अनौचित्य प्रदर्शित किया गया है उसी  
न्याय से अब द्रव्यार्थिकवाक्यनय में भी एकान्तवाद का अनौचित्य सूचित करने के अभिप्राय से ४३  
वीं गाथा में कहते हैं —

गाथार्थ :- प्रतिपूर्ण यौवन गुणशाली जैसे बाल्यभाव आचरण से लज्जित होता है और अब (युवावय 30  
में) भावि सुखप्राप्ति के लिये गुणों का प्रणिधान करता है।।४३।।



प्राप्तयौवनगुणः पुरुषो लज्जते बालभावसंवृत्तात्मीयानुष्ठानस्मरणात् 'पूर्वमहमप्यस्पृश्यसंस्पर्शादिव्यवहारमनुष्ठितवान्' यथा इत्युदाहरणार्थो गाथायामुपन्यस्तः यथैव ततोऽतीत-वर्त्तमानयोरेकत्वमवसीयते। करोति च गुणेषु = उत्साहादिषु प्रणिधानमैकाग्र्यम् अनागतं यत् सुखं तस्योपधानं = प्राप्तिस्तस्यै तदर्थम् 'मयैतस्मात् सुखसाधनात् सुखमाप्तव्यम्' इति। यतश्चैवमतोऽनागत-वर्त्तमानयोरेक्यम् ॥४३॥

5 अत्रापि मते यथावस्थितवस्तुरूपप्ररूपणा न प्रतिपूर्यत इति सूत्रान्तरेणाह-

(मूलम्-) ण य होइ जोव्वणत्थो बालो अण्णो वि लज्जइ ण तेण।

ण वि य अणागयवयगुणपसाहणं जुज्जइ विभक्ते ॥४४॥

न च भवति यौवनस्थः पुरुषो बालः अपि त्वन्य एव, अन्योपि न लज्जते बालचरितेन पुरुषान्तरवत्तेनाऽनन्यः। नाप्यनागतवृद्धावस्थायां सुखप्रसाधनार्थमुत्साहस्तस्य युज्यते अत्यन्ताभेदे। एतदेवाह- विभक्त इति विभक्तिर्भेदः। अकारप्रश्लेषाद् अविभक्ते भेदाऽभावेऽविचलितस्वरूपतया तत्प्रसाधकगुणयत्नाऽसम्भवात्। तस्मान्नाऽभेदमात्रं तत्त्वम् कथंचिद्भेदव्यवहृतिप्रतिभासबाधितत्वात्। नापि भेदमात्रम्

व्याख्यार्थ :- यौवनवयारूढ पुरुष बाल्यकाल की स्वकीय चेष्टाओं के स्मरण से लज्जित होता है 'अरे ! शैशव में मैंने अस्पृश्य मल-मूत्र में हाथ-अंगुलियाँ डालने का पराक्रम किया था !' मूल गाथा में 'यथा' पद से इस लज्जा का उदाहरण सूचित कर के कहना यह चाहते हैं कि भूतकालीन बाल एवं वर्त्तमान युवा एक ही है, पृथक् नहीं। तथा वही पुरुष युवावस्था में भविष्यकालीन सुखप्राप्ति के लिये उत्साहादि गुणों में एकाग्रता - तन्मयता से दत्तचित्त बन जाता है, उदा० 'मुझे इस सुखोपाय से सुख प्राप्त करना है।' यहाँ वर्त्तमान और भविष्यत्पुरुष का ऐक्य ध्वनित होता है। (यह द्रव्यार्थिक नय है वह भी कैसे अनुचित है वह आगे दिखायेंगे) ॥४३॥

[ बाल-युवा-वृद्ध में एकान्त अभेद का निषेध ]

20 इस उदाहृत एकान्त द्रव्यार्थिक नय में भी यथार्थवस्तुरूपरूपणा की आशा पूर्ण नहीं होती, इस तथ्य का दिग्दर्शन ४४ वे गाथासूत्र में करते हैं -

गाथार्थ :- जो युवावस्थाशाली है वह बाल नहीं है, जुदा होने पर भी वह उस (बालचरित) से भी (वर्त्तमान में) शरमीदा नहीं हो जाता। अविभक्तदशा में भावी गुणों का प्रसाधन भी युक्त नहीं है ॥४४॥

25 व्याख्यार्थ :- स्पष्ट दिखता है कि यौवनवर्त्ती पुरुष अब बालक नहीं है किन्तु भिन्न है। यद्यपि भिन्न है फिर भी अनन्य = अभिन्न है, इसी लिये अपने को युवा समझने वाला अपने ही बालचरित से अन्यपुरुष (बालक) की तरह वह शरमीदा नहीं हो जाता। (यहाँ ऐसा अर्थ सुसंगत लगता है कि (देवदत्त) युवान पुरुष यज्ञदत्त की तरह वह अपने बालचरित से अब लज्जित नहीं होता। अतः वह बाल से भिन्न है। व्याख्याकार ने मूलगाथागत 'तेन' शब्द के साथ 'अनन्यः' ऐसी पूर्ति की है।

30 किन्तु भूतपूर्वसम्पादकयुगल ने यहाँ 'तेनान्यः' ऐसा पाठान्तर उद्धृत किया है वह ठीक लगता है। तथा भाविवृद्धावस्था में सुखी बने रहने के लिये जो वर्त्तमान में उत्साह है वह भी वर्त्तमान-

एकत्वव्यवहारप्रतिपत्तिनिराकृतत्वादिति भेदाभेदात्मकं तत्त्वमभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा सकलव्यवहारो-  
च्छेदप्रसक्तिः ॥४४॥

एवमभेदभेदात्मकस्य पुरुषतत्त्वस्य यथा अतीतानागतदोष-गुणनिन्दाभ्युपगमाभ्यां सम्बन्धः तथैव  
भेदाभेदात्मकस्य तस्य सम्बन्धादिभिर्योग इति दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकोपसंहारार्थमाह-

(मूलम्-) जाइ-कुल-रूप-लक्षण-सण्णा-संबंधओ अहिगयस्स । 5

बालाइभावदिद्विगयस्स जह तस्स संबंधो ॥४५॥

जातिः = पुरुषत्वादिका, कुलं = प्रतिनियतपुरुषजन्यत्वम्, रूपं = चक्षुर्ग्राह्यत्वलक्षणम्, लक्षणं  
= तिलकादि सुखादिसूचकम्, संज्ञा = प्रतिनियतशब्दाभिधेयत्वम् एभिर्यः सम्बन्धः = तदात्मपरिणामः,  
ततस्तमाश्रित्य अधिगतस्य ज्ञान(?त)स्य तदात्मकत्वेनाभिन्नावभासविषयस्य, यद्वा सम्बन्धो = जन्यजनकभावः,  
एभिरधिगतस्य तत्त्वभावस्यैकात्मकस्येति यावत् बालादिभावैर्दृष्टैर्विगतस्य तैरुत्पादविगमात्मकस्य तथाभेद- 10

भावी के बीच अत्यन्त अभेद होने पर संगत नहीं हो सकता। उत्तरार्ध में यही कहा है — विभक्त  
पद में विभक्त का अर्थ है भेद, 'जुज्जइ विभक्ते' इस वाक्यांश में बीच में अकारक्षेप (अवग्रह) समझ  
कर व्याख्याकार कहते हैं कि यदि भेदाभाव यानी वर्तमान-भावि अवस्था में एकान्त अभेद होगा तो  
युवावस्था अचलस्वरूप रहने से वृद्धावस्था में सुखी बनने के लिये सुख साधक गुणों (उत्साहादि)  
के लिये प्रयत्न करने की जरूर नहीं रहती। सारांश, सिर्फ (एकान्त) अभेद कोई तत्त्वभूत नहीं है 15  
क्योंकि कथंचिद् भेदप्रसाधक व्यवहार से या प्रतिभास से वह बाधित है।

एकान्त भेद भी नहीं है क्योंकि वह एकत्वव्यवहार या प्रतीति से बाधित है। अतः मानना  
पड़ेगा कि तत्त्व भेदाभेदात्मक है, नहीं मानेंगे तो भेद-अभेद प्रयुक्त सकल व्यवहारों का लोप प्रसक्त  
होगा ॥४४॥

[ दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक का उपसंहार ] 20

अवतरणिका :- उक्त प्रकार से, जिस तरह भेदाभेदात्मक पुरुषतत्त्व का भूत-भावि दोषों की निन्दा  
के साथ और गुणों के अंगीकार के साथ सम्बन्ध युक्तियुक्त है वैसे ही भेदाभेदात्मक पुरुष का सम्बन्धादि  
के साथ भी योग सयुक्तिक है — इस दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिक के उपसंहार में अब कहते हैं-

गाथार्थ :- जाति-कुल-रूप-लक्षण-संज्ञाओं के साथ किसी सम्बन्ध से ज्ञात बालादि दृष्ट भावों का  
जैसा सम्बन्ध होता है वैसे विगत का भी सम्बन्ध होता है ॥४५॥ 25

व्याख्यार्थ :- जाति यानी पुरुषत्वादि सामान्य, कुल यानी व्यक्तिविशेष पुरुष से निष्पन्न संतान,  
रूप जो कि नेत्रवेद्य होता है, लक्षण यानी सुखादि सूचक तल आदि देहचिह्न, संज्ञा का मतलब  
है कि किसी नियतशब्द से वाच्यत्व, इन सभी से जो तदात्मकपरिणामरूप यानी तादात्म्यरूप सम्बन्ध  
के आश्रय से ज्ञात होनेवाला अर्थात् तदात्मकरूपतया अभेदावभास का जो विषय उस का जैसा  
जन्यजनकभावरूप सम्बन्ध होता है; अथवा जाति से लेकर सम्बन्ध, उन से जो अधिगत एकात्मक 30  
वस्तुस्वभाव है उस का जैसे भेदाभेद परिणामरूप सम्बन्ध होता है, वैसे दृष्ट बालादिभावों से जो

प्रतीतेस्तस्य यथा तस्य सम्बन्धो भेदाभेदपरिणतिरूपो भेदाभेदात्मकत्वप्रतिपत्तेर्बाह्याध्यक्षतः ॥४५॥

आध्यात्मिकाध्यक्षतोऽपि तथाप्रतीतेस्तथारूपं तद् वस्त्विति प्रतिपादयन्नाह दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकोपसंहार-  
द्वारेण-

(मूलम्-) तेहिं अतीताणागयदोसगुणदुगुंछणऽब्भुवगमेहिं ।

5

तह बंध-मोक्ख-सुह-दुक्खपत्थणा होइ जीवस्स ॥४६॥

ताभ्यामतीतानागतदोष-गुणजुगुप्साऽभ्युपगमाभ्यां यथा भेदाभेदात्मकस्य पुरुषत्वस्य सिद्धिः तथा दार्ष्टान्तिकेऽपि तह बंध-मोक्ख-सुह-दुक्खपत्थणा होइ जीवस्स इति तथा बन्ध-मोक्ष-सुख-दुःखप्रार्थना तत्साधनोपादानपरित्यागद्वारेण भेदाभेदात्मकस्यैव जीवद्रव्यस्य भवति बालाद्यात्मकपुरुषद्रव्यवत् । न च जीवस्य पूर्वोत्तरभवानुभवितुरभावाद् बन्धमोक्षभावाभावः, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मकस्य तस्यानाद्यनन्तस्य

10 प्रसाधितत्वात् [प्र० खण्डे पृ० ३१९ तः ३२८] ।

तथाहि— मरणचित्तं भाव्युत्पादस्थित्यात्मकम् मरणचित्तत्वात् जीवदवस्थाविनाशचित्तवत् । तथा जन्मादौ चित्तप्रादुर्भावोऽतीतचित्तस्थितिविनाशात्मकः चित्तप्रादुर्भावत्वात्, मध्यावस्थाचित्तप्रादुर्भाववत्, अन्यथा तस्याप्य-  
भावप्रसक्तिः । न चास्याभावः हर्ष-विषादाद्यनेकविवर्त्तात्मकस्यानन्यवेद्यस्यान्तर्मुखाकारतया स्वसंवेदनाध्यक्षतः

विगत यानी उत्पाद-विगमात्मक वस्तु — जिस का उक्त प्रकार से भेद प्रतीत होता है — उस का  
15 सम्बन्ध भेदाभेदपरिणतिरूप होता है क्योंकि बाह्य प्रत्यक्ष से जाति आदि की तरह बालादि भावों में भी भेदाभेदात्मक प्रतीति होती है ॥४६॥

[ भेदाभेदात्मक जीवद्रव्य को दिखाने के लिये दृष्टान्त ]

अवतरणिका :- बाह्य की तरह आन्तरिक प्रत्यक्ष से भी भेदाभेद की प्रतीति होती है अतः वस्तु भेदाभेदात्मक होती है, दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक के उपसंहार द्वारा इस का प्रतिपादन मूलग्रन्थकार करते हैं—

20 गार्थ :- वे जो भूतभावि दोष-गुण की (क्रमशः) जुगुप्सा और स्वीकार (भिन्नाभिन्न) है उसी तरह जीव की बन्ध-मोक्ष-सुख-प्रार्थना भी (भिन्नाभिन्न) हैं ॥४६॥

व्याख्यार्थ :- जिस तरह भूत-भविष्यद् दोषों की जुगुप्सा और गुणों के स्वागत के द्वारा यह सिद्ध होता है कि पुरुष भेदाभेदात्मक है; वैसे ही दार्ष्टान्तिक में भी बन्ध-मोक्ष, सुख-दुःख, प्रार्थना ये सब, उन के उपायों के स्वागत या त्याग के द्वारा भेदाभेदस्वरूप जीवद्रव्य में होते हैं, उदा० बालादिस्वरूप पुरुषद्रव्य है । ऐसा  
25 बोलना मत कि — 'पूर्व-उत्तर भावों के अनुभव करनेवाला कोई जीवद्रव्य सिद्ध नहीं है' — हमने प्रथमखंड में (पृ० ३१९ से ३२८) उत्पाद-विगम-स्थैर्यात्मक अनादि-अनन्त जीवद्रव्य की सिद्धि पहले ही कर दिया है ।

[ उत्पादादि के द्वारा आत्मतत्त्व की स्थिति ]

जीवसिद्धि के लिये कुछ यहाँ भी याद कर ले — जन्म और जन्मान्तर के बीच एक अनुगत पदार्थ सिद्ध हो जाय तो आत्मा सिद्ध होगा । उस के लिये यह अनुमानप्रयोग — मरणसमयवर्त्ती (यानी  
30 विनाशाभिमुख) चित्त (= चेतना) भावि उत्पत्ति-स्थिति-संलग्न है क्योंकि मरणचित्तात्मक है जैसे जीवत अवस्था में विनाशचित्त (युवाचित्त उत्पत्ति के पहले बालचित्तविनाश) । इस से अग्रिमभवचेतना का ऐक्य

शरीरवैलक्षण्येनानुभूतेः। न च तथाप्रतीयमानस्याप्यभावः शरीरादेरपि बहिर्मुखाकारतया प्रतीयमानस्या-  
 भावप्रसक्तेः। न च नित्यैकान्तरूपे आत्मनि जन्म-मरणे अपि संभवतः कुतो बन्ध-मोक्षप्रसक्तिः ? न  
 च नित्यस्याप्यात्मनोऽभिनवबुद्धिशरीरेन्द्रियैर्योगो जन्म तद्वियोगो मरणमिति कल्पना सङ्गता, अस्याः पूर्वं  
 निषिद्धत्वात्। न चैकान्तोत्पादविनाशात्मके चित्ते इहलोक-परलोकव्यवस्था बन्धादिव्यवस्था वा युक्ता यत्  
 ऐहिककायत्यागेनाऽऽमुष्मिकतदुपादानमेकस्य परलोकः पूर्वग्रामपरित्यागावाप्ततदन्तरैकपुरुषवत्। न च 5  
 दृष्टान्तेष्वेकत्वमसिद्धम् उभयावस्थयोस्तस्यैकत्वेन प्रतिपत्तेः। न चेयं मिथ्या बाधकाभावात् विरुद्धधर्म-  
 संसर्गादिर्बाधकस्याध्यक्षबाधादिना निरस्तत्वात्।

न च पूर्वावस्थात्याग एकस्योत्तरावस्थापादानमन्तरेण दृष्टः, पृथुबुध्नोदराद्याकारविनाशवत् मृद्द्रव्यस्य

सिद्ध हुआ। तदुपरांत, जन्म समय में चित्त (= चेतना) का आविर्भाव भूत (= विगत) चित्तस्थिति विनाशसंलग्न  
 है क्योंकि चित्तप्रादुर्भावात्मक है, जैसे मध्या(= युवा)वस्था का चित्तप्रादुर्भाव (युवावस्था के चित्त के 10  
 प्रादुर्भाव के पहले बाल्यावस्था के चित्त की स्थिति अवश्य थी, उस के विनाश के बाद मध्य यानी  
 युवावस्था के चित्त का प्रादुर्भाव होता है। इस दृष्टान्त से पूर्वभवचेतना का ऐक्य सिद्ध होता है।)  
 यदि विगतचित्त (बालचित्त) की स्थिति और विनाश नहीं मानेंगे तो मध्यावस्था (युवा) चित्त का भी  
 सत्त्व लुप्त हो जायेगा। 'मध्यावस्था का अभाव भी मान लेंगे' यह नहीं चलेगा, क्योंकि हर्ष-विषाद  
 आनंद-शोक... इत्यादि अनेक विवर्तमय, अन्यो के लिये परोक्ष, चेतनतत्त्व (बाल या मध्यादि अवस्था 15  
 में) शरीरभिन्नत्वेन अन्तर्मुखतया स्वसंविदित प्रत्यक्ष से अनुभवसिद्ध है। अनुभवसिद्ध का भी इनकार  
 करेंगे तो बहिर्मुख आकार से प्रतीत होनेवाले शरीरादि का भी निषेध प्रसक्त होगा।

### [ एकान्तनित्य आत्मवाद में जन्मादि लोप की आपत्ति ]

नैयायिकादि कहें कि आत्मा का स्वीकार तो कर लेते हैं किन्तु वह एकान्त नित्य माना जाय- अरे !  
 तब तो आत्मा के जन्म-मरण का भी लोप हो जायेगा, फिर बन्ध और मोक्ष की तो बात कहाँ ? 20

**नैयायिक :-** नित्य आत्मा के साथ नये नये शरीर-इन्द्रिय और तज्जन्य ज्ञान का योग ही जन्म  
 है और उन का वियोग ही मरण है।

**जैन :-** यह कल्पना असंगत है पहले इस का निरसन हो चुका है। चित्त के उत्पाद-विनाश  
 के बारे में एकान्तवाद स्वीकारेंगे तो न तो इहलोक-परलोक की संगत व्यवस्था होगी, न बन्धादि  
 की। कारण :- परलोक का मतलब है इहलौकिक काया का त्याग कर के किसी एक जीव द्वारा पारलौकिक 25  
 देह को अपनाना। जैसे कोई ग्रामीण पुरुष अपने एक गाँव को अलविदा कर के दूसरे गाँव रहने  
 को चला जाय। मत कहना कि - 'यहाँ गाँव भेद से पुरुष भिन्न है एक नहीं' - क्योंकि पूर्वोत्तरग्रामनिवास  
 अवस्थाओं में भी एक पुरुष अनुगत होने की प्रतीति सभी को होती है। मत कहना कि 'वह प्रतीति  
 मिथ्या है', क्योंकि उस में कोई बाधक नहीं है, संभवित बाधक विरुद्ध धर्मसंसर्ग तो यहाँ प्रत्यक्षबाधित  
 होने से निरस्त है।

30

### [ कपालोत्पत्ति घटविनाश कथंचिद् एक ]

किसी भी एक पदार्थ में पूर्वावस्था का परित्याग उत्तरावस्था अंगीकार के विना दृष्टिगोचर नहीं

कपालोपादानमन्तरेण तस्याऽदर्शनात्। न च कपालोत्पादमन्तरेण घटविनाश एव न सिद्धः घटकपाल-  
व्यतिरेकेणापरस्य नाशस्याप्रतीतेरिति वक्तव्यम्, कपालोत्पादस्यैव कथञ्चिद् घटविनाशात्मकतया प्रतिपत्तेः।  
अत एव सहेतुकत्वं विनाशस्य, कपालोत्पादस्य सहेतुकत्वात्। न च कपालानां भावरूपतैव केवला  
घटाऽनिवृत्तौ तद्विविक्ततायास्तेष्वभावप्रसक्तेः। न चैकस्योभयत्र व्यापारविरोधः दृष्टत्वात्। न च घट-  
5 निवृत्ति-कपालयोरेकान्तेन भेदः कथञ्चिदेकत्वप्रतीतेः। न च मुद्गरादेर्नाशं प्रत्यव्यापारे क्वचिदप्युपयोगः।  
कपालेषु न तदुपयोगः अन्त्यावस्थायामपि घटकक्षणान्तरोत्पत्तिप्रसक्तेः, तस्य तदुत्पादनसामर्थ्याऽविनाशात्  
'तस्य स्वरसतो विनाशात् तदव्यतिरिक्तसामर्थ्यस्यापि विनाशः।' न, पूर्वं तद्विनाशेऽपि तस्याऽविनाशात्।  
विरोधिमुद्गरसन्निधानात् समानजातीयक्षणान्तरं न जनयतीति चेत् ? न, 'घटविरोधी न च तं विनाशयति'  
इति व्याहृतत्वात्।

10 है, जैसे चौड़ा-गोल उदरादि आकार का विनाश। कपालावस्थाअंगीकार के विना मिट्टी में उक्त आकार  
का विनाश दिखता नहीं। ऐसा मत बोलना कि — 'कपालोत्पत्ति के विना घटविनाश ही सिद्ध नहीं  
होता, क्योंकि घट और कपाल से पृथक् किसी नाश का अनुभव नहीं होता' — कारण :- कपालोत्पत्ति  
ही कथंचित् घटविनाशरूप ज्ञात होती है। यही हेतु है कि विनाश निहेतुक नहीं सहेतुक होता है,  
15 क्योंकि कपालोत्पत्ति सहेतुक है। कपालों को विनाशरूप नहीं केवल भावरूप ही माने जाय — ऐसा  
नहीं हो सकता क्योंकि सिर्फ भावरूप ही मानेंगे तो जब तक भावात्मक घट की निवृत्ति नहीं होती  
तब तक कपालों में घटप्रतियोगिक विविक्तता = पृथक्ता का लोप प्रसंग होगा। मतलब घटविनाश और  
कपालोत्पाद कथंचिद् एक हैं। एक मुद्गरप्रहार को घटविनाश और कपालोत्पत्ति दोनों का हेतु मानना  
अथवा दोनों के लिये सक्रिय मानने में विरोध नहीं है क्योंकि जो निर्बाधरूप से दृष्टिगोचर होता  
है उस में कोई अनुपपत्ति नहीं लगती। घटनाश और कपालों में एकान्त भेद नहीं होता क्योंकि कथंचिद्  
20 एकत्व सुप्रतीत है।

यदि मोगर आदि को नाश के प्रति सक्रिय न माना जाय तो वह (मोगर आदि) बिलकुल  
निरुपयोगी बन जायेगा क्योंकि कपालोत्पत्ति के लिये तो वह उपयोगी नहीं है। फलतः घट की अन्तिम  
पलों में भी न विनाश होगा न कपालोत्पत्ति होगी तो आखिर मोगर आदि प्रहार होने पर भी घट  
के नये क्षण की ही उत्पत्ति प्रसक्त होगी; क्योंकि प्रहार होने पर भी घट में नये घटकक्षण की उत्पत्ति  
25 के सामर्थ्य का विनाश होनेवाला नहीं है। यदि कहें कि — 'प्रहार के विना भी घट अपने स्वभाव  
से ही दूसरे क्षण में विनष्ट हो जायेगा, फलतः नये घटकक्षण की उत्पत्ति का सामर्थ्य भी तदभिन्न  
होने से नाश हो जायेगा, अतः नये घटकक्षण के उत्पाद का संकट नहीं होगा।' — तो यह ठीक नहीं  
है, ऐसा स्वभावतः नाश तो पहले भी पल-पल में होता ही था, किन्तु तदभिन्न नूतनघटकक्षणोत्पत्ति  
का नाश नहीं होता था, नये घटकक्षणसन्तान उत्पन्न होता ही रहता था। यदि कहें कि — 'पूर्व क्षणों  
30 में विरोधि मोगर सान्निध्य न होने से घट से नये घटकक्षण की उत्पत्ति चलती थी किन्तु अंतिम पलों  
में विरोधीमोगरसंनिधान प्राप्त होने से समानजातीय घट क्षण की उत्पत्ति नहीं हो सकती' — अहो  
वाक् चातुर्य ! मोगर को घटविरोधी कहते हो और विरोधी होने पर भी वह घट का नाश नहीं

न च तद्धेतुत्वात् सामर्थ्याभावः तथाविधकार्यजननसमर्थहेतोर्भावात्। अन्यथा प्रागपि तथाविध-  
फलोत्पत्तिर्न भवेत्। न च स्वहेतुनिर्वर्तित एव दण्डादिसंनिधौ सामर्थ्याभावः, दण्डादिसंनिधिमपेक्षमाणस्य।  
तस्य तद्धेतुत्वोपपत्तेः, अन्यत्रापि तद्भावस्य तन्मात्रनिबन्धनत्वात्। न च तद्व्यापारानन्तरं तदुपलम्भात्  
तस्य तत् कार्यत्वे मृद्द्रव्यस्यापि तत्कार्यताप्रसक्तिः, तस्य सर्वदोपलम्भात्, सर्वदा तस्यानभ्युपगमे उत्पाद-  
विनाशयोरभावप्रसक्तिश्चेति प्रतिपादितत्वाच्च। तस्यैव तद्रूपतया परिणतौ कथंचिदुत्पादस्यापीष्टत्वात्। यदा 5  
च पूर्वोत्तराकारपरित्यागोपादानतयैकं मृदादिवस्त्वध्यक्षतोऽनुभूयते तदा तत् तदपेक्षया कारणम् कार्यम्  
विनष्टम् अविनष्टं च उत्पन्नम् अनुत्पन्नं च एककालम् अनेककालं च भिन्नम् अभिन्नं चेति कथं  
नाभ्युपगमविषयः ?

न चात्र विरोधः, मृदव्यतिरिक्ततया घट-कपालयोरुत्पन्नविनष्टस्थितिस्वभावतया प्रतीतेः। न च  
करता — अद्भुत कल्पना ! कैसा वदतो व्याघात !

### [ दण्डादिसंनिधान में हेतुत्व की उपपत्ति ]

ऐसा नहीं कहना कि — ‘अन्तिमपलों में नये घटकषण की उत्पत्ति का हेतु कोई न होने से अंतिम  
घटकषण में सामर्थ्याभाव सिद्ध होता है’ — क्योंकि अंतिम कहे जाने वाले घटकषण में भी (अंतिमत्व  
सिद्ध न होने से) नये घटकषण रूप कार्यात्पादक समर्थ हेतु हाजिर है। ऐसा यदि नहीं माने तो  
पहले भी उन घटकषणों से नये नये घटकषणों की उत्पत्ति नहीं होती। ऐसा नहीं कहना कि — 15  
‘दण्डादिसंनिधान में उपान्त्यघटकषण रूप हेतु से ही अन्तिम क्षण में सामर्थ्याभाव प्रसज्जित होता है’  
— यदि सामर्थ्याभाव (यानी सामर्थ्यनाश) में यदि उपान्त्य क्षण दण्डादिसंनिधान की अपेक्षा करता है  
तो दण्डादिसंनिधान में सामर्थ्याभावहेतुत्व स्वीकारना पड़ेगा, क्योंकि अन्यत्र भी कारण-कार्यभाव कारण  
के सांनिध्यमूलक ही माना जाता है। ऐसा नहीं कहना कि — दण्ड व्यापार के बाद घटविनाश की  
उपलब्धि होने से यदि घटनाश को दण्डप्रहार का कार्य मानेंगे तो घटनाश काल में दण्डव्यापार के 20  
बाद मिट्टीद्रव्य की उपलब्धि होने से मिट्टी द्रव्य को भी दण्डप्रहार का कार्य मानना पड़ेगा’ — क्योंकि  
मिट्टीद्रव्य तो पहले भी था, सदा उपलब्धिगोचर है; घटनाश तो दण्डव्यापार के बाद उपलब्धि गोचर  
होता है। यदि ऐसा (मिट्टीद्रव्य सदा उपलब्ध) नहीं मानेंगे तो घट की उत्पत्ति और विनाश की वार्त्ता  
ही खतम हो जायेगी यह पहले कह दिया है। हाँ, मिट्टी द्रव्य ही कथंचिद् कपालोत्पत्ति या घटनाशरूप  
से परिणत हो जाने से, दण्डप्रहार से कथंचिद् मिट्टी की उत्पत्ति भी हमें स्वीकार्य है। जब मिट्टी 25  
द्रव्य, पूर्वाकार (घटाकार) का त्याग, उत्तराकार (कपालादि) का अंगीकार, इस प्रकार एक ही मिट्टी  
द्रव्य के विवर्त्त प्रत्यक्ष से अनुभवसिद्ध है तब तत्तद् अपेक्षा के अनुसार वही मिट्टी द्रव्य कारण है  
— कार्य है, विनष्ट भी है — अविनष्ट भी है, उत्पन्न है — अनुत्पन्न भी है, एककालीन है — अनेककालीन  
भी है, भिन्न है तो अभिन्न भी है (सब कथंचिद्।) ऐसा स्वीकार क्यों न किया जाय ?

### [ स्याद्वाद में विरोधादि दोषों का परिहार ]

अनेकान्तवाद में वस्तुमात्र बहुपक्षक (अनन्तधर्मी) होती है, चाहे उन पक्षों में कितना भी विरोध  
हो, किन्तु उचित अपेक्षा से विरोध गल जाता है। विरोध दोष यहाँ सावकाश नहीं। (अन्य अन्य

प्रतीयमाने वस्तुस्वरूपे विरोधः, अन्यथा ग्राह्य-ग्राहकाकाराभ्यामेकत्वेन स्वसंवेदनाध्यक्षतः प्रतीयमानस्य संवेदनस्य विरोधप्रसक्तेः। न, च संशयदोषप्रसक्तिरपि उत्पत्ति-स्थिति-निरोधानां निश्चितरूपतया वस्तुन्य-वगमात्। न च 'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' इति प्रतिपत्ताविव प्रकृतनिश्चये 'सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाऽप्रत्यक्षात् विशेषस्मृतेश्च संशयः' [वेशे० द०-२।२।१७] इति निमित्तमस्ति। न च व्यधिकरणतादोषासक्तिरपि, घट-  
5 कपालविनाशोत्पादयोर्मूद्द्रव्याधिकरणतया प्रतिपत्तेः। न चोभयदोषानुषङ्गः, त्र्यात्मकस्य वस्तुनो जात्यन्त-रत्वात्। सङ्करदोषप्रसक्तिरपि नास्ति, अनुगत-व्यावृत्त्योस्तदात्मके वस्तुनि स्वस्वरूपेणैव प्रतिभासनात्। अनवस्थादोषोपि न सम्भवी भिन्नोत्पाद-व्यय-ध्रौव्यव्यतिरेकेण तदात्मकस्य वस्तुनोऽध्यक्षे स्वयमतदात्मक-स्यापरयोगेपि तदात्मकतानुपपत्तेरन्यथातिप्रसङ्गात्। तथाप्रतिभासादेव अभावदोषोऽपि न सम्भवी अबाधि-  
तप्रतिभासस्य तदभावेऽभावात्, भावे वा न ततो वस्तुव्यवस्थितिरिति सर्वव्यवहारोच्छेदप्रसक्तिः।

10 दर्शनकारों ने अनेकान्तवाद पर विरोधादि आठ दोष थोप दिया है — उन का अब व्याख्याकार निराकरण करते हैं कि विरोध नहीं है।) मिट्टी द्रव्य एक है, घट और कपाल ये मिट्टी के पर्याय मिट्टी द्रव्य से पृथक् नहीं है। कपालापेक्षा मिट्टी की उत्पत्ति, घटापेक्षा मिट्टी का नाश और द्रव्यापेक्षा मिट्टी की स्थिति इस तरह मिट्टी द्रव्य अन्योन्यविरोधीस्वभावात्मक एकरूप से अनुभवसिद्ध है फिर विरोध कहाँ ? अनुभवसिद्ध वस्तुस्वरूप में विरोधपिशाच को प्रवेश ही नहीं है। फिर भी विरोध... विरोध ...  
15 करेंगे तो एक ही संवेदन में स्वसंविदित प्रत्यक्ष से अन्योन्यविरुद्ध ग्राह्याकार-ग्राहकाकार युक्त होने पर भी एकत्व अनुभवसिद्ध है उस में विरोध का प्रवेश हो जायेगा।

उत्पन्न है विनष्ट भी है ऐसे स्याद्वाद में संशय दोषापत्ति भी नहीं है क्योंकि एक वस्तु में उक्त प्रकार से उत्पत्ति-स्थिति-व्यय निश्चितरूप से ज्ञात होते हैं। 'यह टूटा है या आदमी' इस संशय में तो वैशेषिक दर्शन के सूत्र (२-२-१७) अनुसार सामान्यदर्शन, विशेषादर्शन तथा विशेषद्वय की स्मृति  
20 ये निमित्त होते हैं, किन्तु प्रस्तुत निश्चय में वैसा कोई निमित्त नहीं होने से 'संशय' आपत्ति निरवकाश है।

व्यधिकरणता दोष :- नाश घट का है, उत्पत्ति कपाल की है और स्थिति मिट्टी की है, तीनों ही उत्पत्ति आदि व्यधिकरण है तो एक में अनेक विरुद्धधर्म समावेश रूप अनेकान्त कहाँ रहा ? यह दोष भी निरवकाश है; एक मिट्टी द्रव्य अधिकरण में घटनाश और कपाल की उत्पत्ति के अधिकरणरूप से मिट्टी की प्रतीति होती है।

25 प्रत्येकपक्ष में होनेवाले दोष, उभयपक्ष में प्रसक्त होंगे ऐसा भी नहीं है क्योंकि स्याद्वाद में जो तथाकथित उभय पक्ष है। वह प्रत्येकरूप नहीं किन्तु जात्यन्तररूप ही है। असमानाधिकरण तथा कथित विरोधी धर्मों के एकत्र समावेश मानने पर संकर दोष का आरोपण भी जूठा है क्योंकि अपेक्षाभेद से एकाधिकरण में रहनेवाले तथाकथित विरुद्ध धर्मों की अनुवृत्ति और व्यावृत्ति अपने अपने स्वरूप से जब स्पष्ट भासित होती है तब दोष क्या है ? वस्तु में उत्पादादिलक्षण, उन लक्षण के भी उत्पादादि

30 लक्षण... इस तरह अनवस्था दोष का आरोपण भी अनुचित है क्योंकि उत्पादादि वस्तु से भिन्न नहीं है जिस से कि उन के उत्पादादि मानने पर अनवस्था प्रसक्त हो, उत्पादादित्रयात्मक ही वस्तु प्रत्यक्ष में भासित होती है। वस्तु स्वयं यदि उत्पादादिमय नहीं होगी तो भिन्न उत्पादादि से भी तदात्मकता

न च त्रयात्मकत्वमन्तरेण घटस्य कपालदर्शनाद् विनाशानुमानं सम्भवति, तत्र तेषां प्रतिबन्धानवधारणात्। न हि तद्विनाशनिमित्तानि तानि मुद्गरादिहेतुत्वात् अभावस्य कारणत्वाभावाच्च। यद्यपि घटहेतुकानि तानि तथापि घटसद्भावमेव गमयेयुः न तदभावम् ? न हि धूमः पावकहेतुकस्तदभावगमक उपलब्धः। न चाभिन्ननिमित्तजन्यता तयोः प्रतिबन्धः अभावस्याऽकार्यताभ्युपगमात्। नापि तादात्म्यलक्षणः तयोः तादात्म्यायोगात्। न च घटस्वरूपव्यावृत्तत्वात्तेषां तदभावप्रतिपत्तिजनकत्वम् सकलत्रैलोक्याभाव- 5 प्रतिपत्तिजनकत्वप्रसक्तेः तेषां ततोपि व्यावृत्तस्वरूपत्वात्। न च घटविनाशरूपत्वात्तेषां नायं दोषः, तेषां वस्तुरूपत्वात् विनाशस्य च निःस्वभावत्वात् तथा च तादात्म्यविरोधः अन्यथा घटानुपलम्भवत् तेषामपि तदानुपलब्धिर्भवेत्। तस्मात् प्रागभावात्मकः सन् घटः प्रध्वंसाभावात्मकतां प्रतिपद्यत इत्यभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा पूर्वोक्तदोषानतिवृत्तिः।

नहीं बन सकती। यदि भिन्न उत्पादादि से भी तदात्मकता हो सके तो पूरे विश्व में सर्व में सर्वात्मकता 10 दोष प्रसक्त होगा।

अभावदोष भी नहीं है क्योंकि वस्तु है और वस्तु की त्रयात्मकता भी भासित होती है फिर उस का अभाव कैसे ? यदि त्रयात्मक वस्तु का अभाव हो तो वस्तु का जो निर्बाध प्रतिभास होता है वह लुप्त हो जायेगा। वस्तु न होने पर भी निर्बाध प्रतिभास की सत्ता मानी जाय तब तो सर्वशून्यता प्रसक्त होने से सकल शिष्ट व्यवहारों का उच्छेद प्रसक्त होगा। 15

### [ घट को त्रि-आत्मक न मानने पर दोष-परम्परा ]

त्रि-आत्मकता के विना कपालदर्शन से घट के नाश का अनुमान सम्भव नहीं होगा। कारण :- दर्शन में घट के नाश का व्याप्तिसम्बन्ध गृहीत नहीं होगा। कपाल के कारणों को घट के विनाश के हेतु नहीं मान सकेंगे क्योंकि कपाल तो मोगरप्रहारादिहेतुक है, विनाशात्मकाभाव तो निष्कारण होता है। यद्यपि कपाल घटहेतुक होते हैं किन्तु वे घटाभाव का ज्ञान कैसे करायेंगे ? प्रत्युत, कपाल तो घट 20 के अस्तित्व का भान करायेंगे। अग्निहेतुक धूम अग्नि के अस्तित्व का भान करा सकता है न कि अग्नि के अभाव का। नाशात्मक अभाव को बौद्धमत में कार्य नहीं माना जाता, अतः कपाल और घटविनाश में अभिन्नकारण (दण्डादिप्रहार अथवा घट) जन्यता रूप प्रतिबन्ध भी नहीं हो सकता। तादात्म्यात्मक प्रतिबन्ध भी नहीं घट सकता, क्योंकि आप के मत में भाव (कपाल) और विनाशरूप अभाव का तादात्म्य मान्य नहीं। यदि कहें कि — ‘दोनों ही घटस्वरूप से व्यावृत्त होने से कपालों से घटविनाश प्रतीति 25 हो जायेगी’ — तो यह गलत है क्योंकि सारा त्रैलोक्य घटव्यावृत्त होने से सकल त्रैलोक्याभाव की प्रतीति कपालों से प्रसक्त होगी क्योंकि कपाल भी घटव्यावृत्तिस्वरूप हैं। ‘कपाल भी घटविनाशरूप होने से उक्त दोष नहीं होगा’ — ऐसा मत कहना क्योंकि कपाल तो वस्तुरूप है जब कि विनाश तो स्वभावविहीन है — दोनों की एकरूपता होगी कैसे ? एकरूपता के विरह में तादात्म्य प्रतिबन्ध मानना विरोधप्रस्त 30 है। फिर भी तादात्म्य मानेंगे तो नाशकाल में घट का उपलम्भ नहीं होता तो कपालों का भी उपलम्भ नहीं होगा। आखिर ऐसा मानना पड़ेगा कि पहले प्रागभावात्मक सत् घट अब प्रध्वंसाभावात्मकता को आत्मसात् करता है, ऐसा नहीं मानेंगे तो पूर्वोक्त सभी दोषों की आवृत्ति चलती रहेगी।



सत्त्वलक्षणस्यापि हेतोर्गमकत्वमनेनैव प्रकारेण सम्भवति, अन्यथा उत्पत्त्यभावात् स्थित्यभावः, तदभावे विनाशस्याप्यभावः, असतो विनाशायोगात् — इति त्र्यात्मकमेकं वस्त्वभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा तदनुपपत्तेरिति प्राक् प्रदर्शितत्वात् पुनरुच्यते। यथा चात्मनः परलोकगामित्वं शरीरमात्रव्यापकत्वं च तथा प्रतिपादितमेव (प्रथमखण्डे पृ०२९३)। ननु शरीरमात्रव्यापित्वे तस्य गमनाभावाद् देशान्तरे तद्गुणोपलब्धिर्न भवेत्।  
 5 न, तदधिष्ठितशरीरस्य गमनाविरोधात्, पुरुषाधिष्ठितदारुयन्त्रवत्। न च मूर्त्तामूर्त्तयोर्घटाकाशयोरिव प्रतिबन्धाभावात् मूर्त्तशरीरगमनेपि नामूर्त्तस्यात्मनो गमनम् इति वक्तव्यम्, संसारिणस्तस्यैकान्तेनाऽमूर्त्तत्वासिद्धेः, तत्प्रतिबद्धत्वाभावासिद्धेः ॥४६॥

एतदेवाह—

(मूलम्-) अण्णोण्णाणुगयाणं 'इमं व तं व' त्ति विभयणमजुत्तं।

10 जह दुद्ध-पाणियाणं जावंत विसेसपज्जाया ॥४७॥

अन्योन्यानुगतयोः = परस्परानुप्रविष्टयोः आत्म-कर्मणोः 'इदं वा तद् वा' इति = 'इदं कर्म अयमात्मा' इति यद् विभजनं तद् अयुक्तम् = अघटमानकम् प्रमाणाभावेन कर्तुमशक्यत्वात्। यथा दुग्ध-

क्षणिकत्व के साधक सत्त्व हेतु का भी गमकत्व त्रि-आत्मकत्व पर ही निर्भर है। अन्यथा, उत्पत्ति के विना स्थिति का लोप और स्थिति के विना विनाश का भी लोप प्रसक्त होगा, क्योंकि असत् का कभी विनाश नहीं होता। अतः वस्तु मात्र को त्रि-आत्मक मानना ही होगा, अन्यथा सत्त्व में गमकत्व की संगति नहीं हो सकेगी यह पहले कह दिया है अतः पुनरुक्ति का काम नहीं। त्रि-आत्मक आत्मा किस तरह परलोकप्रवासी होता है और कैसे शरीरमात्र व्यापक होता है यह पहले (खंड 9 पृ० २९३ आदि) में कहा जा चुका है। यदि कहें कि — 'आत्मा शरीरमात्रव्यापी होगा तो अन्य देश में उस के ज्ञानादि गुणों का उपलम्भ नहीं होगा क्योंकि आत्मा गतिकारक नहीं होता।' — तो यह निषेधार्ह है क्योंकि आत्माधिष्ठित शरीर हो तब शरीरगति से आत्मा की भी गति हो सकती है जैसे दारुयन्त्र (शकट) की गति से तदधिष्ठाता किसान की भी गति होती है। ऐसा मत कहना कि — घट और आकाश की तरह मूर्त्त और अमूर्त्त का सम्बन्ध न होने से (घट की गति होने पर भी गगन की गति नहीं होती उसी तरह) मूर्त्त शरीर की गति होने पर भी अमूर्त्त आत्मा की गति नहीं हो पायेगी।' — निषेध का कारण:- सिद्धात्मा अमूर्त्त एवं शरीरमुक्त होने से उन की गति नहीं होती किन्तु संसारी आत्मा एकान्त अमूर्त्त नहीं होता, किन्तु कथंचिद् मूर्त्त भी होता है अतः देह से सर्वथा अप्रतिबद्धत्व असिद्ध है ॥४६॥

अन्योन्यानुविद्ध मूर्त्तामूर्त्त को ही स्पष्ट करते हैं —

गाथार्थ :- अन्योन्यप्रविष्ट (आत्मा और कर्म) में यह (जीव) — और वह (कर्म या शरीर) ऐसा विभाजन अयुक्त है। (चरम) विशेषपर्यायों तक जैसे दूध और पानी का ॥४७॥

30 व्याख्यार्थ :- एक-दूसरे आत्मा और कर्म का अन्योन्यप्रवेश है तब तक 'यह कर्म है — यह आत्मा है' ऐसा पृथक् विभागीकरण घट नहीं सकता क्योंकि प्रमाणसिद्ध नहीं है। उदा० एक-दूसरे में प्रदेशों का अनुप्रवेशवाले दूध और जल का। प्रश्न :- जीव और कर्मप्रदेशों का यह अविभाग कहाँ तक

पानीययोः परस्परप्रदेशानुप्रविष्टयोः। किंपरिणामोऽयभविभागो जीव-कर्मप्रदेशयोः ? इत्याह— यावन्तो विशेषपर्यायास्तावान्। अतः परमवस्तुत्वप्रसक्तेः अन्त्यविशेषपर्यन्तत्वात् सर्वविशेषाणाम् 'अन्त्यः' इति विशेषणान्यथानुपपत्तेः।।४७।।

जीव-कर्मणोरन्योन्यानुप्रवेशे तदाश्रितानामन्योन्यानुप्रवेश इत्याह—

(मूलम्) रूआइपज्जवा जे देहे जीवदवियम्मि सुद्धम्मि।

5

ते अण्णोण्णाणुगया पण्णवणिज्जा भवत्थम्मि।।४८।।

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादयो ये पर्याया देहाश्रिता जीवद्रव्ये विशुद्धस्वरूपे च ये ज्ञानादयस्तेऽन्योन्यानुगता जीवे रूपादयो देहे ज्ञानादय इति प्ररूपणीया भवस्थे = संसारिणि अकारप्रश्लेषाद् वाऽसंसारिणि। न च संसारावस्थायां देहात्मनोरन्योन्यानुबन्धात् रूपादिभिस्तद्व्यपदेशः मुक्त्यवस्थायां तु तदभावात् नासौ युक्त इति वक्तव्यम्, तदवस्थायामपि देहाद्याश्रितरूपादिग्रहणपरिणतज्ञानदर्शनपर्यायद्वारेणात्मनस्तथाविधत्वात् 10 तथाव्यपदेशसम्भवात् आत्म-पुद्गलयोश्च रूपादिज्ञानादीनामन्योन्यानुप्रवेशात् कथञ्चिदेकत्वम् अनेकत्वं च, मूर्त्तत्वम् अमूर्त्तत्वं चाव्यतिरेकात् सिद्धमिति।।४८।।

अयुक्त समझना ? उत्तर :- जितने भी विशेषपर्याय हैं वहाँ तक। सकल विशेष पर्यायों से आगे चले तो अवस्तु ही हाथ पड़ेगी। अतः फलितार्थ हुआ — सर्व विशेषों में चरम विशेष की सीमा तक। चरम विशेष तक न ले तो 'अन्त्य' विशेषण की संगति नहीं हो सकेगी।।४७।।

15

[ संसार या मोक्ष दशा में रूपादि-ज्ञानादि का प्रवेश ]

जीव और कर्म का जैसे अन्योन्य संमिश्रण है वैसे उन में रहनेवाले धर्मों का भी अन्योन्य संमिश्रण होता है इस तथ्य का ४८ वीं गाथा में प्रतिपादन करते हैं —

गाथार्थ :- देहगत जो रूपादिपर्याय और शुद्ध जीवद्रव्यगत जो (ज्ञानादि पर्याय) हैं, संसारवासीयों में वे अन्योन्यानुगत होते हैं ऐसा प्रतिपादनार्ह है।।४८।।

20

व्याख्यार्थ :- रूप रस गन्ध स्पर्श ये जो देहाश्रित पर्याय हैं और शुद्धस्वरूपवाले जीवद्रव्य में जो ज्ञानादि पर्याय हैं वे सब अन्योन्याप्रविष्ट जान लेना। मतलब, जीव में ज्ञानादि उपरांत रूपादि का प्रवेश मानना चाहिये, एवं देह में रूपादि उपरांत ज्ञानादि का भी प्रवेश मानना चाहिये। सिर्फ भवस्थित जीव में ही नहीं भवमुक्त जीव में भी। मूल गाथा में 'भवत्थम्मि' पद के आगे अवग्रह समझ कर अकारवृद्धि कर लेना।

25

प्रश्न :- संसार अवस्था में देह-आत्मा के अन्योन्य अनुबद्धता कारण जीव में रूपादि प्रवेश ठीक है, लेकिन मुक्तिदशा में देह नहीं है तब जीव में रूपादि प्रवेश क्यों मानना ?

उत्तर :- ऐसा मत बोलना। मुक्तावस्था में भी स्वकीय भूतकालीन देह के रूपादि अथवा अन्य संसारी जीवों के रूपादि के ग्रहण में मुक्तिकालीन ज्ञान दर्शनपर्याय परिणत ही हैं अतः स्वविषयक ज्ञान-दर्शन उपयोगवत्त्व सम्बन्ध से मुक्तावस्था में भी रूपादि का जीव में प्रवेश युक्तिसंगत होने से 30 'रूपादिमान् मुक्तात्मा' ऐसा निर्देश या व्यवहार सम्भव है। तथा, आत्मा और पुद्गल में भी रूपादि

एतदेवाह-

(मूलम्-) एवं 'एगे आया एगे दंडे य होइ किरिया य।'

करणविसेसेण य त्रिविहजोगसिद्धि वि अविरोद्धा ॥४९॥

5 एवं इत्यनन्तरोदितप्रकारेण मनो-वाक्-कायद्रव्याणामात्मन्यनुप्रवेशाद् आत्मैव न तद्व्यतिरिक्तास्ते इति तृतीयाङ्गैकस्थाने 'एगे आया' [स्थानांग] इति प्रथमसूत्रप्रतिपादितः सिद्धः एक आत्मा एको दण्डः एका क्रियेति भवति मनो-वाक्-कायेषु दण्डक्रियाशब्दौ प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयौ करणविशेषेण च मनो-वाक्-कायस्वरूपेणात्मन्यनुप्रवेशावाप्तत्रिविधयोगस्वरूपत्वात् त्रिविधयोगसिद्धिरपि आत्मनः अविरोद्धैवेति एकस्य सतस्तस्य त्रिविधयोगात्मकत्वाद् अनेकान्तरूपता व्यवस्थितैव।

10 न चान्योन्यानुप्रवेशाद् एकात्मकत्वे बाह्याभ्यन्तरविभागाभाव इति अन्तर्हर्ष-विषादाद्यनेकविवर्त्तात्म-कमेकं चैतन्यम् बहिर्बाल-कुमार-यौवनाद्यनेकावस्थैकात्मकमेकं शरीरमध्यक्षतः संवेद्यत इत्यस्य विरोधः बाह्याभ्यन्तरविभागाभावेऽपि निमित्तान्तरतः तद्व्यपदेशसम्भवात् ॥४९॥

एवं ज्ञानादि का अन्योन्यप्रवेश संगत होने पर कथंचिद् एकत्व-अनेकत्व, मूर्त्तत्व-अमूर्त्तत्व अभेदभाव से सिद्ध होते हैं ॥४८॥

[ स्थानांग सूत्र कथित आत्मा आदि के एकत्व का समर्थन ]

15 अन्योन्यप्रवेश ही अधिक स्पष्ट करते हैं -

गाथार्थ :- उक्त प्रकार से एक आत्मा, एक दंड, एक क्रिया करणविशेष से त्रिविधयोगसिद्धि भी निर्विरोध है ॥४९॥

20 व्याख्यार्थ :- पूर्वसूत्रोक्त प्रकार से मन-वचन-काया द्रव्यों का भी आत्मा में अनुप्रवेश होने से वे द्रव्य और आत्मा एक ही है जुदा नहीं है। अत एव तीसरे अंग-आगम स्थानांग में प्रथमसूत्र से प्ररूपित एक आत्मा, एक दंड, एक क्रिया इस प्रकार से सभी का अन्योन्य एकत्व सिद्ध होता है। यहाँ मन-वचन-काया के साथ दण्ड और क्रिया जोड़ कर मनदंड वचनदंड कायदंड, मनःक्रिया वचनक्रिया कायक्रिया ऐसा शब्दवृंद समझ लेना। एकत्व सिद्ध होने से, मन-वचन-कायात्मक करणविशेष रूप से आत्मा में अनुप्रवेश होने पर योगत्रयरूपता प्राप्त होने से आत्मा की त्रिविधयोगरूपता भी निर्विरोध सिद्ध होती है। फलतः एक सत् आत्मा की योगत्रयरूपता के द्वारा अनेकान्तरूपता निश्चित 25 होती है।

प्रश्न :- अन्योन्यानुप्रवेश के जरिये कायादि के साथ एकात्मकता का स्वीकार करने पर, बाह्य-अभ्यन्तर ऐसा जो पदार्थभेद है उस का लोप हो जायेगा। यह स्पष्ट प्रत्यक्ष संवेदन होता है कि भीतर में हरख-शोक आदि अनेक विवर्त्तों से अनन्य एक ही चैतन्य है और बाहर में बाल-कुमार-यौवन आदि अनेक दशाओं में अनन्य एक शरीर है। इस प्रकार के भेद के साथ एकात्मकता का 30 विरोध प्रसक्त क्यों नहीं होगा ?

उत्तर :- बाह्य-अभ्यन्तर विभाग, उपरोक्त एकात्मकता के साथ विरोध होने से भले शून्य हो जाय

एतदेवाह-

(मूलम्-) ण य बाहिरओ भावो अब्भंतरओ य अत्थि समयम्मि।  
णोइंदियं पुण पडुच्च होइ अब्भंतरविसेसो ॥५०॥

आत्म-पुद्गलयोरन्योन्यानुप्रवेशाद् उक्तप्रकारेण अर्हत्प्रणीतशासने न बाह्यो भावः अभ्यन्तरो वा सम्भवति, मूर्त्ताऽमूर्त्तरूपादितयाऽनेकान्तात्मकत्वात् संसारोदरवर्तिनः सकलवस्तुनः। 'अभ्यन्तरः' इति 5  
व्यपदेशस्तु नोइन्द्रियं = मनः प्रतीत्य, तस्यात्मपरिणतिरूपस्य पराऽप्रत्यक्षत्वात् शरीर-वाचोरिव।

न च शरीरात्मावयवयोः परस्परानुप्रवेशात् शरीरादभेदे आत्मनोपि तद्वत् परप्रत्यक्षताप्रसक्तिः; इन्द्रिय-  
ज्ञानस्याशेषपदार्थस्वरूपग्राहकत्वायोगात् इत्यस्य प्रतिपादयिष्यमाणत्वात्। अतः 'शरीरप्रतिबद्धत्वमात्मनो न  
भवति अमूर्त्तत्वात्' अत्र प्रयोगे हेतुरसिद्धः। यदि चात्मपरिणतिरूपमनसः शरीरादात्यन्तिको भेदः स्यात्  
तद्विकाराऽविकाराभ्यां शरीरस्य तत्त्वं न स्यात्, तदुपकारापकाराभ्यां वात्मनः सुख-दुःखानुभवश्च न भवेत्, 10

किन्तु दूसरे भी ऐसे निमित्त हैं जिन के आधार से दूसरे ढंग से बाह्य और अभ्यन्तर ऐसा विभाग  
जिन्दा रहेगा ॥४९॥

[ जैन दर्शन में न कुछ बाह्य न अभ्यन्तर ]

अवतरणिका :- पूर्वोक्त बाह्य-अभ्यन्तर की स्पष्टता करते हैं -

गाथार्थ :- सिद्धान्त में न कुछ बाह्य है न कोई अभ्यन्तर भाव है। फिर भी नोइन्द्रिय (= मन) 15  
को लेकर 'अभ्यन्तर' विशेष होता है ॥५०॥

व्याख्यार्थ :- अरिहंत प्रभु के प्रकाशित शासन में आत्मा और पुद्गल (= जड़) का अन्योन्य  
अनुप्रवेश पूर्वोक्तप्रकार से प्रसिद्ध है अत एव न कोई बाह्य भाव संभव है न तो अभ्यन्तर।  
कारण :- संसारान्तर्गत सकल चीज-वस्तु मूर्त्त-अमूर्त्त इत्यादिरूप होने से अनेकान्तमय होती है।

प्रश्न :- लोक में 'अभ्यन्तर' (और बाह्य) ऐसा विशेष यानी व्यवहार कैसे होता है ? कौन 20  
सा निमित्त है ?

उत्तर :- मन को जैनदर्शन में नोइन्द्रिय कहा गया है, वह मन क्या है - आत्मा की परिणति  
है। ऐसा मन अन्य लोगों को प्रत्यक्ष नहीं होता, शरीर और वचन तो अन्य लोगों को प्रत्यक्ष होता  
है। मतलब इस मन के आधार पर बाह्य-अभ्यन्तर भेद व्यवहृत होता है।

[ देहाभिन्न आत्मा की परप्रत्यक्षतापत्तिनिरसन ]

शंका :- यदि शरीर और आत्मा के प्रदेशों अन्योन्य संमिश्र है तो देह से अभिन्न आत्मा का  
भी देहवत् अन्य लोगों को प्रत्यक्ष क्यों नहीं होगा ?

उत्तर :- नहीं, प्रत्यक्ष इन्द्रियज्ञान में इतनी अमर्यादित शक्ति नहीं होती की वह सकल पदार्थों  
का साक्षात्कारी हो सके। इस तथ्य का निरूपण अग्रिम खंड में किया जानेवाला है। (इन्द्रियप्रत्यक्ष

शरीरविभागकृतश्च हिंसकत्वमनुपपन्नं भवेत्, शरीरपुष्ट्यादेः रागाद्युपचयहेतुत्वम् शरीरस्य 'कृशोऽहम् स्थूलोऽहम्' इति प्रत्ययविषयत्वं च दूरोत्सारितं भवेत्। पुरुषान्तरशरीरस्येव घटाकाशयोरपि प्रदेशान्योन्या-प्रवेशलक्षणो बन्धोऽस्त्येवेत्ययुक्तो घटाकाशयोरपि प्रदेशान्योन्याप्रवेशलक्षणो बन्धोऽस्त्येवेत्ययुक्तो दृष्टान्तः अन्यथा घटस्यावस्थितिरेव न भवेत्।

- 5 न चान्योन्यानुप्रवेशसद्भावेप्याकाशवत् शरीरपरतन्त्रता आत्मनोऽनुपपन्ना, मिथ्यात्वादेः पारतन्त्र्य-निमित्तस्यात्मनि भावात् आकाशे च तदभावात्। न च शरीरायत्तत्वे सति तस्य मिथ्यात्वादिबन्ध-हेतुभिर्योगः तस्माच्च तत्प्रतिबद्धत्वम् इतीतरेतराश्रयत्वम् अनादित्वाभ्युपगमेनास्य निरस्तत्वात्। न च शरीरसम्बन्धात् प्रागात्मनोऽमूर्तत्वम् सदा तैजस-कर्मणशरीरसम्बन्धित्वात् संसारावस्थायां तस्य अन्यथा

- में योग्यता की कारणता कही जायेगी। आत्मा में इन्द्रियप्रत्यक्षयोग्यता नहीं है।) पहले (पृ.३६७-५) कहा था कि — 'आत्मा शरीरप्रतिबद्ध नहीं होता क्योंकि अमूर्त होता है, घट-आकाश का प्रतिबद्धत्व नहीं होता' — इस प्रयोग में अमूर्तत्व हेतु असिद्ध है आत्मा कथंचित् मूर्त और अमूर्त है। यदि आत्मपरिणतिस्वरूप मन और शरीर का अत्यन्त भेद मानेंगे तो मन के विकार या अविकार से शरीर में विकार-अविकार दिखता है वह नहीं हो सकेगा। तथा शरीर के उपकार-अपकार से आत्मा को सुख या दुःख का अनुभव भी नहीं हो सकेगा। तथा शरीर के उपकार-अपकार से आत्मा को सुख या दुःख का अनुभव भी नहीं हो सकेगा। तथा शरीर विघातकारी को आत्महिंसकत्व का आरोप नहीं लगेगा। तथा शरीर की पुष्टि/अपुष्टि से आत्मा में रागादि का उपचय-अपचय नहीं होगा। तथा अहंपदार्थ आत्मा के साथ अभेदभाव से शरीर में 'मैं कृश हूँ-मैं स्थूल हूँ' इस अनुभव कि विषयता दूर भाग जायेगी। जैसे अन्यपुरुष का अपने शरीर के प्रदेशों के साथ बन्धात्मक अन्योन्यानुप्रवेश होता है वैसे घट और आकाश का भी अन्योन्यप्रवेशरूप बन्ध होता ही है अतः आत्मा में शरीरअप्रतिबद्धत्व को दर्शाने के लिये घट-आकाश का दृष्टान्त दिया है वह अयुक्त ही है। यदि घट-आकाश का उक्तलक्षण बन्ध नहीं मानेंगे तो घट को कहीं भी अवस्थिति या स्थिरता प्राप्त नहीं होगी।

### [ संसारी आत्मा में देहपरतन्त्रता की उपपत्ति ]

- शंका :- घट-आकाशवत् देह-आत्मा का अन्योन्यानुप्रवेश मान लेने पर भी जैसे आकाश को घटपरतन्त्रता नहीं होती तथैव आत्मा को देहपरतन्त्रता संगत नहीं होगी।
- 25 उत्तर :- ऐसा नहीं है, आकाश में कोई पारतन्त्र्य का निमित्त नहीं है किन्तु आत्मा में मिथ्यात्वादि पारतन्त्र्यनिमित्त मौजूद है अतः आत्मा में पारतन्त्र्य सयुक्तिक है।
- शंका :- आत्मा शरीरपरतन्त्र होने से आत्मा में मिथ्यात्वादिबन्धहेतु का संयोग सिद्ध होगा, किन्तु दूसरी और मिथ्यात्वादिबन्धहेतु से शरीरपारतन्त्र्य सिद्ध होगा — अन्योन्याश्रय दोष स्पष्ट है।
- उत्तर :- नहीं, यह अन्योन्यहेतुता प्रवाहतः अनादिकालीन स्वीकृत होने से अन्योन्याश्रय निरस्त हो जाता है। ऐसा नहीं है कि — 'इस शरीर के साथ सम्बन्ध होने के पहले अशरीरी होने से आत्मा अमूर्त था' — आत्मा को अपनी संसार दशा में हमेशा तैजस-कर्मणशरीर का योग चालु ही है। इस को नहीं मानेंगे तो तैजसादि शरीर के विना भवान्तर में आत्मा को स्थूल शरीर का सम्बन्ध

भवान्तरस्थूलशरीरसम्बन्धित्वाऽयोगात् पुद्गलोपष्टम्भव्यतिरेकेणोर्ध्वगतिस्वभावस्यापरदिग्गमनासम्भवात् स्थूलशरीरेणातिसूक्ष्मस्य रज्ज्वादिनेवाकाशस्य सम्बन्धाऽयोगात् संसारिशून्यमन्यथा जगत् स्यादिति संसार्यात्मिनः सूक्ष्मशरीरसम्बन्धित्वं सर्वदाभ्युपगन्तव्यम्।

अथ शरीरात्मनोस्तादात्म्ये शरीरावयवच्छेदे आत्मावयवस्यापि छेदप्रसक्तिः अच्छेदे तयोर्भेदप्रसङ्गः। न, कथंचित्तच्छेदस्याभ्युपगमात् अन्यथा शरीरात् पृथग्भूतावयवस्य कम्पोपलब्धिर्न भवेत्। न च छिन्ना- 5 वयवानुप्रविष्टस्य पृथगात्मत्वप्रसक्तिः, तत्रैव पश्चादनुप्रवेशात् छिन्ने हस्तादौ कम्पादितल्लिङ्गाऽदर्शनादियं कल्पना। न चान्यत्र गमनात् तस्य तल्लिङ्गानुपलब्धिः, एकत्वादात्मनः शेषस्यापि तेन सह गमनप्रसक्तेः। न चैकत्र सन्ततावनेक आत्मा अनेकज्ञानावसेयानामेकत्रानुभवाधारेऽप्रतिभासप्रसक्तेः, शरीरान्तरव्यवस्थितात्मान्तरवत्। न च पृथग्भूतहस्ताद्यवयवस्थितोऽसौ तत्रैव विनष्ट इति कल्पनापि युक्तिसंगता, शेषस्याप्येकत्वेन तद्वद् विनाशप्रसक्तेः ततोऽन्यत्राऽगतेः तत्राऽसत्त्वात् अविनष्टत्वाच्च तदनुप्रवेशोवसीयते 10

ही घट नहीं सकेगी। स्वतन्त्र आत्मा की गति ऊर्ध्व होती है, पुद्गल प्रभाव के विना आत्मा की अन्य अन्य दिशाओं में गति का सम्भव ही नहीं होगा। कारण :- रज्जुआदि स्थूल द्रव्य का सूक्ष्म आकाश के साथ बन्ध नहीं होता वैसे ही यदि स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्मशरीर का बन्ध नहीं होने का मानेंगे तो एक स्थूल शरीर का अन्त होने पर सब मुक्त हो जाने से सारा जगत् संसारिजीवशून्य हो जायेगा। अतः संसारी आत्मा को हर हमेश सूक्ष्म शरीर का बन्ध मानना पडेगा। 15

### [ आत्मा के अवयवों के छेद की आपत्ति का समाधान ]

शंका :- देह और आत्मा का अभेद मानेंगे तो देह के हस्तादि अवयवों का छेद होने पर आत्मा के भी भेद = विभाजन की आपत्ति होगी, यदि छेद नहीं होगा तो शरीर से उस का भेद मानना पडेगा।

उत्तर :- नहीं। हमें कथंचिद् आत्मा का छेद स्वीकार्य है। अन्यथा, छीपकली के शरीर से कट 20 जाने पर पुच्छावयव में जो कम्पन दिखते हैं वे नहीं दिखेंगे। ऐसा मत समझना कि — 'छिन्न पुच्छ में अनुप्रविष्ट अवयव में पृथग् आत्मा को मानना पडेगा' — जब पुच्छावयव का कम्पन खतम हो जाता है तब उस अवयव में प्रविष्ट आत्मप्रदेश शेष भागवाले शरीर में प्रवेश कर लेते हैं — ऐसी कल्पना निराधार नहीं है, छिन्न हस्तादि अवयव में पहले जो कम्पन स्वरूप लिंग दिखता था वह अब कुछ काल के बाद नहीं दिखता है। उस छिन्न अवयव में जो कम्पन लिंग नहीं दिखता उस 25 का मतलब ऐसा नहीं समझना कि 'तद्गत आत्मा अन्यत्र चला गया।' — यदि ऐसा होता तो शेष भाग से भी आत्मा का निर्गमन अन्यत्र गमन मानना पडेगा क्योंकि छिन्न हस्तादि और शरीर में आत्मा तो एक ही था। एक देह सन्तान में अनेक आत्मा की कल्पना शक्य नहीं है, क्योंकि अनुभव के आधारभूत एक शरीर व्यक्ति में अनेक ज्ञानों से बोध्य विषयों का जो प्रतिभास होता है उन का लोप होगा, जैसे कि अन्य शरीर में प्रविष्ट अन्य आत्मा को उक्त प्रतिभास नहीं होते। 'छिन्न 30 हस्तादिवयव में प्रविष्ट आत्मा, कम्पन खतम हो जाने पर वहाँ ही नष्ट हो गया' — ऐसी कल्पना भी संगत नहीं है क्योंकि शेष जो छिन्न शरीरभाग है उस में भी छिन्न हस्तादि की तरह आत्मनाश

गत्यन्तराभावात् ।

न चैकत्वे आत्मनो विभागाभावाच्छेदाभाव इति वक्तव्यम्, शरीरद्वारेण तस्यापि सविभागत्वात्, अन्यथा सावयवशरीरव्यापिता तस्य कथं भवेत् ? न चारभ्यमूर्त्तद्रव्यावच्छिन्नावयवस्य (?) सर्वदैव तस्य

- 5 न चासावारभ्यमूर्त्तद्रव्यवद् द्रव्यणुकादिप्रक्रमेणावस्थितसंयोगैस्तैरारब्धः येन तद्वत् तस्य तथैव भावप्रसक्तिः । न चानारब्धत्वात् तस्य निरवयवत्वम् शरीरसर्वगतत्वाभावप्रसक्तेः । न च शरीराऽसर्वगतोऽसौ, तत्र सर्वत्रैव स्पर्शोपलम्भात् । न तदव्यापकस्य तच्छेदे छेदः अतिप्रसङ्गात् । न च तदवयवच्छेदे न छिन्नः, तत्र कम्पाद्युपलब्धेः, अतस्तत्रैवानुप्रविष्ट एकत्वादिति ज्ञायते । कथं छिन्नाछिन्नयोः संघटनं पश्चादिति चेत् ? न, एकान्तेन छेदाभावात् पद्मनालतन्तुवदविच्छेदाभ्युपगमात् संघटनमपि तथाभूतादृष्टवशादविरुद्धमेव ।

- 10 हो जाने की विपदा होगी। आखिर मानना पडेगा कि छिन्न हस्तादि अवयव से तद्गत आत्मा अन्यत्र कहीं गया नहीं, न वहाँ उपलब्ध होता है — इसलिये शेष शरीर भाग में आत्मा का अनुप्रवेश मानना होगा, और कोई चारा नहीं है।

[ एक आत्मा में विभाग के विना भी छेद की उपपत्ति ]

- 15 प्रश्न :- यदि आत्मा एक है तो उस का मतलब कि कोई विभाजन है नहीं तो फिर छेद कैसे हुआ ?

उत्तर :- ऐसा मत बोलो, शरीरछेद के द्वारा आत्मा भी एक होते हुए भी सविभाग (सावयव) है, अन्यथा सावयवशरीर में वह व्याप्त हो कर रहेगा कैसे ?

- 20 शंका :- आरभ्य यानी अवयवनिष्पन्न मूर्त्तद्रव्य (कपालादि या शरीरादि से) अवच्छिन्न (= विशिष्ट) सावयव द्रव्य (घटादि या आत्मादि) में भी हर हमेश (अवयवजन्य मूर्त्तद्रव्यत्व या) सखण्डत्व की आपत्ति होगी।

- उत्तर :- नहीं हस्तादि छिन्न अवयव के कम्पन समाप्त होने पर भावि काल में तत्तद् हस्तादि अवयवप्रयोजित क्रियादि से उपलब्ध अर्थ का पूर्ववत् ही स्मरण शेषभाग निष्ठ आत्मा को होता है, यदि छिन्न अवयवगत आत्मा सर्वथा पृथक् ही होता तो यह स्मृतिदर्शन होता ही नहीं। आत्मा द्रव्यणुकादि क्रमपरम्परानिष्पन्न बड़े बड़े अवयवों के संयोगों से अवयवारब्ध घटादि मूर्त्तद्रव्य की तरह आरब्ध नहीं है कि जिस से घटादि के भेद = अवयवविभाजन की तरह आत्मा के अवयवों का भी विभाजन हो जाय। 'यदि इस तरह आत्मा को अनारब्ध मानेंगे तो वह निरवयव ही होगा' — ऐसा बोलना नहीं क्योंकि तब आत्मा शरीर के प्रत्येक अवयवों में व्याप्त हो कर रह ही नहीं पायेगा। 'वह तो शरीर में अव्याप्त ही है' — ऐसा भी नहीं है कि क्योंकि शरीर के प्रत्येक अवयवों में आत्मा की स्पर्शना (चैतन्य का चमकारा) अनुभूत होती है। यदि आत्मा को पूर्णतया देहव्याप्त न माने तो देह के छेद से आत्मा का छेद मान ही नहीं सकेंगे क्योंकि तब अतिप्रसंग होगा, काँच के बरतन का

▼. संदर्भोऽस्य भूतपूर्वसम्पादकयुगलटीप्पणानुसारेण प्रमेयकमलमार्त्तण्ड-रत्नाकरावतारिकापरि.७- स्या. मञ्जरीश्लोक ९-शास्त्रवा. समु.स्त. ३ स्या. कल्प. आदि ग्रन्थेषु विभावनीयः।

न चात्मनः शरीरमात्रव्यापकत्वेऽन्यत्र शरीरान्तरसम्बन्धन्यथानुपपत्त्या गतिक्रियाप्रसक्तेरनित्यत्वप्रसक्ति-  
 दोषः; कथंचित्तस्येष्टत्वात् गृहान्तर्गतप्रदीपप्रभाक्त्वं संकोच-विकाशात्मकत्वेन तस्य न्यायप्राप्तत्वात्। न च  
 देहात्मनोरन्योन्यानुबद्धत्वे देहभस्मसाद्भावे आत्मनोऽपि तथात्वप्रसक्तिः, क्षीरोदकक्त्वं तयोर्लक्षणभेदतो  
 भेदात्। न हि भिन्नस्वरूपयोरन्योन्यानुप्रवेशे सत्यप्येकक्षयेऽपरस्य क्षयः यथा क्वाथ्यमाने क्षीरे प्रथममुदकक्षयेऽपि 5  
 न क्षीरक्षयः। न चेह लक्षणभेदो नास्ति। तथाहि— रूप-रस-गन्धस्पर्शादिधर्मवन्तः पुद्गलाः चेतनालक्षणस्थ्यात्मेति  
 सिद्धस्तयोर्लक्षणभेदः। यथा चैकान्तामूर्त्तादिरूपत्वेऽर्थक्रियादेर्व्यवहारस्याभावस्तथा प्रतिपादितमनेकघेति  
 मूर्त्तामूर्त्ताद्यनेकान्तात्मकत्वमात्मनोऽभ्युपगन्तव्यम्॥५०॥

भेद होने पर भी तद्गत तैलादि अवयवी को अविभक्त मानना पडेगा। पुरुष के हस्तादि अवयव  
 का छेद होने पर भी तद्गत आत्मा का छेद नहीं मानेंगे तो छिन्न हस्तादि में कम्पन आदि का उपलम्भ  
 नहीं होगा। आखिर मानना पडेगा कि छिन्न हस्तादिगत विभक्त आत्मा पुनः शेष शरीरभाग में प्रविष्ट 10  
 हो जाता है क्योंकि उस विभक्त दशा में भी आत्मा तो एक ही है।

**प्रश्न :-** अछिन्न शरीर और छिन्न हस्तादि गत आत्मा का विभाजन हो जाने के बाद पुनः उस  
 का संघटन किस तरह से होगा ?

**उत्तर :-** अरे ! यहाँ कोई एकान्ततः छिन्नता है ही नहीं, पद्मनाल तन्तु जैसे पहले अकड होता  
 है, कोई हाथ में लेकर दोनों छोर को मिलावे तो कुछ टूटता है फिर भी सम्पूर्ण खण्डित नहीं होता, 15  
 इस तरह यहाँ आत्मा विघटन होने पर भी तथा प्रकार के अदृष्ट से पुनः संघटित होने में कोई  
 भी विरोध नहीं है।

### [ आत्मा में गमनक्रिया से अनित्यत्वप्राप्ति निर्दोष ]

**शंका :-** आत्मा यदि देहमात्रव्यापक होगा तो भवान्तर में अन्य देह के साथ सम्बन्ध की गमनक्रिया  
 के विना उपपत्ति हो नहीं सकेगी, फलतः गति से अनित्यत्व भी प्रसक्त होगा। 20

**उत्तर :-** कथंचिद् अनित्यत्व स्वीकारते हैं। जैसे गृहान्तर्वर्त्ती प्रदीप की प्रभा खिडकीयों के खोल-  
 बन्द करने से संकोच-विकासशाली फिर भी एक, किन्तु कथंचिद् अनित्य होती है वैसे आत्मा में भी  
 वह न्यायसंगत है।

**शंका :-** देह-आत्मा अन्योन्यप्रविष्ट होंगे तो देह के भस्मीभूत होने पर आत्मा भी भस्मीभूत  
 हो जायेगा। 25

**उत्तर :-** नहीं लक्षणभेद से क्षीर-उदक की तरह उन दोनों में कथंचिद् भेद स्वीकार्य है। भिन्न  
 भिन्न स्वरूप (= लक्षण) वाले अन्योन्यमिलित दो द्रव्यों में एक का नाश होने पर दूसरे का भी  
 नाश होना जरूरी नहीं है। उदा० अन्योन्यमिलित जल और दूध को उबाला जाय तब पहले जल  
 का नाश होता है उस वक्त दूधत्त्व का नाश नहीं होता। प्रस्तुत में देह-आत्मा में लक्षणभेद का  
 इनकार नहीं हो सकता। देह पुद्गलमय है उस का लक्षण रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादिधर्म हैं, आत्मा का 30  
 लक्षण चेतना है — इस प्रकार दोनों का लक्षणभेद सिद्ध है। पहले अनेक बार यह कह आये हैं  
 कि यदि आत्मादि द्रव्य को एकान्ततः अमूर्त्तादिरूप मानेंगे तो आकाश की तरह उस में ज्ञानादि अर्थक्रिया



अस्य च मिथ्यात्वादिपरिणतिवशोपात्तपुद्गलाङ्गाङ्गिभावलक्षणो बन्धः तद्वशोपनतसुख-दुःखाद्यनुभव-स्वरूपश्च भोगः अनेकान्तात्मकत्वे सत्युपपद्यते अन्यथा तयोरयोगः इति प्रतिपादनार्थमाह— दव्वट्टियस्स इत्यादि—

5 अथवा परस्परसापेक्षद्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकयोः प्ररूपणा प्रदर्शितन्यायेन सम्भविनी निरपेक्षयोः कथं सा ? इत्याह—

(मूलम्-) दव्वट्टियस्य आया बंधइ कम्मं फलं च वेएइ।

बीयस्स भावमेत्तं ण कुणइ ण य कोइ वेएइ।।५१।।

10 द्रव्यास्तिकस्येयं प्ररूपणा - आत्मा एकः स्थायी कर्म ज्ञानादिविबन्धकं बध्नाति = स्वीकरोति, तस्य कर्मणः फलं च कार्यरूपं वेदयते = भुङ्क्ते आत्मैव। द्वितीयस्य तु पर्यायार्थिकस्येयं प्ररूपणा - नैवात्मा स्थाय्यस्ति किन्तु भावमात्रं = विज्ञानमात्रमिति न करोति न च कश्चित् वेदयते उत्पत्तिक्षणा-न्तरध्वंसिनः कर्तृत्वाऽनुभवितृत्वायोगात्।।५१।।

तथेयमपि तयोस्तथाभूतयोः प्ररूपणेत्याह—

के व्यवहारों का पूरा लोप प्रसक्त होगा। अतः आत्मद्रव्य को मूर्त्त-अमूर्त्त आदि अनेकान्तमय स्वीकार लेना ही चाहिये।।५०।।

15 अवतरणिका (१) — आत्मा को अनेकान्तस्वरूप मानने पर आत्मा को मिथ्यात्वादि आश्रवपरिणति से आकर्षित कर्म पुद्गल का अङ्गाङ्गिभावस्वरूप बन्ध होना घट सकता है। तथा कर्मपुद्गल के उदय से प्राप्त सुख/दुःखादि अनुभवात्मक भोग भी घट सकता है। अनेकान्तात्मक न मानने पर बन्ध और भोग की संगति नहीं हो सकती। इस तथ्य को दिखाने के लिये गाथा ५१ में दव्वट्टियस्स इत्यादि कहते हैं -

20 अवतरणिका :- (२) अथवा अनेकान्तसाधक उक्त विस्तृत युक्तियों के बल से परस्पर सापेक्ष द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिक नयों की प्ररूपणा संगत हो सकती है। परस्परनिरपेक्ष नयों के पक्ष में उस का सम्भव ही कहाँ ? - यही दिखाते हैं -

गार्थ :- द्रव्यार्थिक नयानुसार आत्मा कर्म बाँधता है और फल भोगता है। पर्यायार्थिक नय से (क्षणिकविज्ञानस्वरूप) भावमात्र है (अतः) न कोई (बन्ध) करता है और न कोई भोगता है।

25 व्याख्यार्थ :- द्रव्यास्तिक नयानुसार प्ररूपणा ऐसी है कि एक (प्रत्येक) आत्मा स्थायी है, वह ज्ञानादिप्रतिबन्धक कर्मों का बन्ध यानी उपार्जन करता है। तथा उस कर्म का कार्यरूप फल भी वही आत्मा भोगता है। द्वितीय पर्यायार्थिकनय का मत ऐसा है - आत्मा स्थायी नहीं है किन्तु भावमात्र क्षणिकविज्ञानस्वरूप ही है। अतः न तो वह कर्म का कर्त्ता है न तो उस के फल का भोक्ता है क्योंकि उत्पन्न होते ही दूसरे क्षण में नष्ट हो जाने से कर्त्तृत्व और उपभोक्तृत्व का योग उस में संभव नहीं है।।५१।।

[ दोनों नयों के अनुसार कर्त्ता-भोक्ता का अभेद और भेद ]

अवतरणिका :- उक्त प्रकारवाले दोनों नयों की एक और प्ररूपणा को कहते हैं -

(मूलम्-) द्रव्यद्वियस्स जो चेव कुणइ सो चेव वेयए णियमा।

अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ पज्जवणयस्स।।५२।।

य एव करोति स एव वेदयते नित्यत्वात् द्रव्यास्तिकस्यैतन्मतम्। अन्यः करोत्यन्यश्च भुङ्क्ते क्षणिकत्वात् पर्यायनयस्य। ननु पूर्वगाथोक्तमेव पुनरभिदधता पिष्टपेषणमाचार्येण कृतं भवेत् ! न, उत्पत्तिसमनन्तरध्वस्तेन करणम् भोगो वाऽसम्भवतीति प्राक् प्रतिपादितम्— इह तु उत्पत्तिक्षण एव कर्त्ता 5 तदनन्तरक्षणश्च भोक्तेति न पुनरुक्तता। उक्तं च परैः 'भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव वोच्यते' [ १ ] इति।।५२।।

इयमसंयुक्तयोरनयोः स्वसमयप्ररूपणा न भवति या तु स्वसमयप्ररूपणा तामाह-

(मूलम्-) जे वयणिज्जवियप्पा संजुज्जंतेसु होन्ति एएसु।

सा स-समयपणवणा तित्थयराऽऽसायणा अण्णा।।५३।।

10

ये वचनीयस्याभिधेयस्य विकल्पास्तत्रतिपादका अभिधानभेदाः संयुज्यमानयोरन्योन्यसम्बद्धयोर्भवन्त्यनयोः

**गाथार्थ :-** द्रव्यार्थिक मत में जो करता है वही अवश्य भोगता है। पर्यायार्थिक मत में एक करता है दूसरा भोगता है।।५२।।

**व्याख्यार्थ :-** द्रव्यास्तिकनय कर्त्ता को नित्य मानता है अतः उस के मतानुसार जो कर्म करता है वही उस के फल को भोगता है। पर्यायनय क्षणिकवादी है अतः उस के मतानुसार कोई एक कर्म 15 करता है तो दूसरा उस का फलभोग करता है।

**प्रश्न :-** यही बात मूलग्रन्थकार ने पूर्व गाथा में कर दिया है, पुनः उसी बात को इस गाथा में कर के पिष्टपेषण नहीं किया ?

**उत्तर :-** नहीं, पूर्वगाथा में उत्तरार्थ से, उत्पन्न होते ही नष्ट हो जानेवाले क्षणिक पदार्थ में करण और भोग असम्भवी है यह कहा है, इस गाथा में बात अलग है — उत्पत्तिक्षण को कर्त्ता कहा है 20 और तदुत्तरक्षण को भोक्ता बताया है इस लिये कोई पुनरुक्ति नहीं है। अन्य विद्वानोंने भी यही कहा है — 'उन की उत्पत्ति वही अर्थक्रिया है और वही कारक भी है ( )'।।५२।।

**अवतरणिका :-** असंयुक्त दोनों नयों की यह बात स्वसमयप्ररूपणा नहीं है। स्व-समयप्ररूपणा कैसी होती है यह दिखाते हैं—

**गाथार्थ :-** अन्योन्यसम्बद्ध दोनों नयों में जो अभिधेय के (अभिधायक) प्रकार होते हैं वह स्वसिद्धान्त 25 की प्ररूपणा है। उस से विपरीत तीर्थकर की आशातना है।।५३।।

**व्याख्यार्थ :-** अन्योन्य सम्बद्ध द्रव्यास्तिक-पर्यायार्थिक नयों के जो अभिधेय अर्थ अनुसारी 'कथंचिद् नित्य है आत्मा कथंचिद् अमूर्त्त है' इत्यादि जो प्रतिपादन प्रकार हैं — वह स्वसिद्धान्त यानी उस

▼. क्षणिकाः सर्वसंस्कारा अस्थिराणां कुतः क्रिया। भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव वोच्यते।। इति बोधिचर्या. प्रज्ञापार. पञ्चि. परि. ९, ब्रह्म. भामती, रत्नाकराव.परि. १-१५, स्या. मञ्जरी श्लो. १६, मध्यमकवृ. इत्यादि ग्रन्थेषु — इति भूतपूर्वसम्पादकयुगलटीप्पणे।

= द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकवाक्यनययोः, ते च— 'कथंचित्रित्य आत्मा कथंचिदमूर्तः' इत्येवमादयः। सा एषा स्वसमयस्येति तदर्थस्य प्रज्ञापना = निदर्शना। अन्या तु निरपेक्षयोरनयोरेव नययोर्या प्ररूपणा सा तीर्थकरस्य आसादना = अधिकक्षेपः।<sup>▼</sup> 'एगमेगे णं जीवस्स एएसे अणंतेहिं णाणावरणिज्जपोगालेहिं आवेढियपवेढिए' [ ] इति तीर्थकृद्वचने प्रमाणोपपन्ने सत्यपि — [ ]

5 'नाऽमूर्तं मूर्ततामेति मूर्तं नायात्यमूर्तताम्। द्रव्यं कालत्रयेऽपीत्थं च्यवते नात्परूपतः॥' इति तीर्थकृन्मतमेवैतन्नयवादनिरपेक्षमिति कैश्चित् प्रतिपादयद्भिस्तस्याधिकक्षेपप्रदानात्॥५३॥

परस्परनिरपेक्षयोरनयोः प्रज्ञापना तीर्थकरासादना इत्यस्यापवादमाह—

(मूलम्-) पुरिसज्जायं तु पडुच्च जाणओ पण्णवेज्ज अण्णयरं।

परिकम्मणाणिमित्तं दाएही सो विसेसं पि॥५४॥

10 पुरुषजातं = प्रतिपन्नद्रव्यपर्यायान्यतरस्वरूपं श्रोतारं वा प्रतीत्य = आश्रित्य ज्ञकः = स्याद्वादवित् प्रज्ञापयेत् = आचक्षीत अन्यतरत् पर्यायं द्रव्यं वा। अभ्युपेतपर्यायाय द्रव्यमेव, अङ्गीकृतद्रव्याय च पर्यायमेव के प्रतिपाद्य अर्थों की प्ररूपणा = निदर्शन है। उस से विपरीत, अन्योन्यनिरपेक्ष उन्हीं दो नयों की जो (एकान्त) प्ररूपणा है वह तीर्थकरप्रभु की आशातना यानी अधिकक्षेप = अवज्ञारूप है।

तीर्थकर प्रभु का (भगवतीसूत्रादि में) यह प्रमाणसिद्ध वचन मिलता है कि एगमेगं णं.... इत्यादि 15 जिस का भावार्थ है कि — 'जीव के प्रदेश अन्योन्य ज्ञानावरणीय अनंत पुद्गलों से आवेष्टित-परिवेष्टित (यानी अन्योन्यप्रविष्ट) हैं'। ऐसा मूर्तामूर्त उभयात्मक स्वरूप के निर्दर्शक वचन प्रसिद्ध होने पर भी कुछ विद्वानों ने — \*'अमूर्त कभी मूर्ततापन्न नहीं होता, मूर्त कभी अमूर्ततापन्न नहीं होता। तीन काल में भी इस ढंग से द्रव्य अपने स्वरूप से च्युत नहीं होता' — इस प्रकार नयवादनिरपेक्ष यह तीर्थकरों का ही वचन है ऐसा प्रतिपादन करते हुए तीर्थकरों के ऊपर आरोप लगाया है, अतः वह तीर्थकर 20 प्रभु की आशातना है ऐसा ग्रन्थकर्ता को कहना पडा है॥५३॥

[ व्यक्तिविशेष के लिये एक नय की प्ररूपणा निर्दोष ]

अवतरणिका :- सामान्यरूप से कहा कि परस्परनिरपेक्ष दो नयों की प्ररूपणा तीर्थकर की आशातना है। इस में जो अपवाद है वह गाथा ५४ से दिखाते हैं —

गाथार्थ :- व्यक्ति विशेष को लक्षित कर के ज्ञाता किसी एक नय की प्ररूपणा कर सकता है।

25 एवं बुद्धिपटुता के लिये वह विशेष को भी दिखायेगा॥५४॥

व्याख्यार्थ :- द्रव्य या पर्याय में से किसी एक को ही पकड लेने वाले व्यक्ति विशेष अथवा तथाविध श्रोता को लक्ष में रख कर अनेकान्तवादनिष्णात किसी एक द्रव्य या पर्याय का व्याख्यान कर सकता है। जो पर्याय को पकड कर बैठा है उस के सामने केवल द्रव्य का व्याख्यान करे, जो

▼. प्र० एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिए परिवेढिए सिया ? उ० गोयमा सिय आवेढियपरिवेढिए सिय नो आवेढियपरिवेढिए ... नियमा अणंतेहिं...भगवती. श. ८, उ. १० सू. ३५९॥) \* . 'परः शंकते' इति निर्दिश्य शा.वा. समु. स्त.३ मध्ये पद्यमिदमुद्धृतम् तत्रोत्तरार्थस्तु 'यतो बन्धाद्यतो न्यायादात्मनोऽसंगतं तथा॥' इति निर्दिष्टः॥ (भूतपूर्वसम्पादकयुगलनिर्देशः।)

कथयेत्। किमित्येकमेव कथयेत् ? परिकर्मनिमित्तं = बुद्धिसंस्कारार्थम्। परिकर्मितमन्तये दर्शयिष्यत्यसौ स्याद्वादाभिज्ञः विशेषमपि द्रव्य-पर्याययोः परस्परऽविनिर्भागरूपम्, एकांशविषयविज्ञानस्थान्यथा विपर्ययरूपताप्रसक्तिः स्यात् तदितराभावे तद्विषयस्याप्यभावात्॥५४॥

इति तत्त्वबोधविधायिन्यां सम्मतिटीकायां प्रथमकाण्डम्॥

द्रव्य को पकड कर बैठा है उस के प्रति केवल पर्याय का निरूपण करे।

5

प्रश्न :- क्यों ऐसे केवल एक का कथन करे ?

उत्तर :- श्रोता की (या शिष्य की) बुद्धि की परिकर्मणा (शिष्यबुद्धिवैशद्य) के लिये स्याद्वादाविज्ञ वक्ता किसी एक का निरूपण कर सकता है। हाँ, जब श्रोता परिकर्मित बुद्धिवाला हो जायेगा तब उस के सामने विशेष प्ररूपणा भी करेगा – यानी द्रव्य और पर्याय दोनों परस्पर अविभाज्य हैं यह भी दिखायेगा। कारण :- उभयात्मक पदार्थ का उभयरूप से बोध या निरूपण करने के बदले एकांशविषयक ही बोध या निरूपण करेगा तो उस बोध में या निरूपण में विपरीतता प्रसक्त होगी क्योंकि अन्य 10 अंश के विना ज्ञात या निरूपित अंश की हस्ती ही नहीं हो सकती॥५४॥

इस प्रकार सम्मति० ग्रन्थ की तत्त्वबोधविधायिनी टीका का प्रथम काण्ड समाप्त हुआ।

सिद्धान्तमहोदधि-प.पू.आ.प्रेमसूरीश्वर-पट्टधरन्यायविशारद प.पू.आ.भुवनभानुसूरिपट्टधरसिद्धान्तदिवाकर प.पू. गीतार्थमूर्धन्यआ. श्री विजय जयघोषसूरिशिष्य आ. जयसुंदरसूरिविरचित हिन्दीविवेचन समाप्त। वि.सं. २०६६ श्रा.सु. ५ रविवारे श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथजैनसंघे घाटकोपर (पूर्व) मध्ये जयालक्ष्मी जैन आराधना 15 भवने। शुभं भवतु।

## परिशिष्ट - १ व्याख्यान्तर्गत उद्धृतपाठ-अकारादि

उद्धरणांशः	पृष्ठ/पंक्ति	उद्धरणांशः	पृष्ठ/पंक्ति
अत्रे(?त्र) द्वो(?द्वौ) वस्तुसाधनौ (न्या०बि०२-१९) .....	१०१/८	ज्ञानमात्रार्थकरणेऽप्य...( ) .....	१७६/८
अनष्टाज्जायते कार्यं...( ) .....	४७/८	तत्र(त)पूर्वार्थविज्ञानं...( ) .....	६/६
अनादिनिधनं ब्रह्म...(वा०पदी०१-१) .....	१६८/५	तत्राऽपूर्वार्थविज्ञानं...(प्र०वा०भाष्य २-१५८) २०४/३	
अभिघाताग्निसंयोग... ( ) .....	११/३	तत्रात्मनि सुखादीनां...( ) .....	१३७/२
अयमेव हि भेदो...( ) .....	३४/१	तदेव(? थेद)ममृतं...( ) .....	१७५/४
अयमेवेति यो ह्येष...		तौ सत् (३-२-१२७ पाणिनि०) .....	३३८/२
(श्लो०वा०अभा०लो०१५) .....	९६/२	देशकालादिभेदेन...(श्लो.वा.प्रत्यक्ष. २३३) .....	७/५
अविभागोऽपि बुद्ध्यात्मा...		न तावदिन्द्रियेषा....	
(प्र०वा०२-३५४) .....	२६४/३	(श्लो०वा०अभाव०लो०१८) .....	१००/७
इदानीं तनमस्तित्वं...(श्लो.वा.प्रत्यक्ष. २३४) .....	७/६	न सोऽस्ति प्रत्ययो....	
इदानीं तनमस्तित्वं...		(वाक्यप० १-१२४) .....	१६९/७, १७२/७
(लोकवार्तिक प्र० २३४ पू०) .....	६०/२	न हि अवश्यं कारणानि...( ) .....	८६/१
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्...		न हि स्मरणतो...(श्लो.वा.प्रत्यक्ष.२३४) .....	६/११
(तत्त्वार्थ० ५-२९) .....	१७/९	नाऽक्रमात् क्रमिणो...(प्र.वा.१-४५) .....	५७/४
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं...(तत्त्वार्थ० ५-२९) २५८/२		नाऽमूर्त्तं मूर्त्ततामेति....( ) .....	३७६/५
एगमेगे पां जीवस्स.... ( ) .....	३७६/३	नादेनाहितबीजायाम....	
औत्पत्तिकस्तु शब्दस्या...(मी०द०१-१-५) . १८०/७		(वाक्य० प्र० का० लो० ८५) .....	३२१/४
कः शोभेत वदन्नेवं...		निश्चीयमानाऽनिश्चीयमान...( ) .....	१८०/१
(हेतुबिन्दुटीका - पृ०१३१) .....	३९/१	निर्विशेषं हि सामान्यं...	
कतमत् संवृतसत्त्वं...( ) .....	१६५/९	(श्लो० वा० आकृति०लो० १०) .. २४२/७	
कार्यं धूमो हुतभुजः...(प्र.वा.३-३४) .....	१४/६	पक्षधर्मत्वम् सपक्षे सत्त्वम्...(न्यायप्र.सू. ) .....	४/७
क्रमेण युगपच्चैव .....	३९/५	पदं त्वभ्यधिकाभावात्...	
कच्चित्तदपरिज्ञानं...(प्र.वा.१-१०४) .....	४/६	(श्लो०वा०शब्द०लो०११७) .....	३२९/६
गतोदके कः खलु सेतुबन्धः ( ) .....	१६५/३	परमात्माऽविभागो.. .....	२६४/५
गत्वा गत्वा च तान्...(श्लो०वा०अर्था०३८) . १३/७		पलालं न दहत्य .....	३/२
गृहीतमपि गोत्वादि...(श्लो.वा.प्रत्यक्ष. २३२) .. ७/४		प्रतिभासतोऽध्यक्षतः ( ) .....	१५०/२
गृहीत्वा वस्तुसद्भावं...		प्रतिभासोपमाः सर्वे धर्माः ( ) .....	१५०/४
(श्लो०वा०अभा०ला०२७) .....	१४३/९	प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा ( ) .....	४/८
ग्राह्य-ग्राहकसंवित्ति...(प्र.वा.२/३५४) .....	२२६/५	प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्षः ( ) .....	१००/१०
घटादिषु यथा (दृष्टाः)....( ) .....	८५/४	बाधाज्ञाने त्वनुत्पन्ने...( ) .....	६९/६
		भावा येन निरूप्यन्ते...(प्र०वा०२-३६०) ... १६३/९	

उद्धरणांशः	पृष्ठ/पंक्ति	उद्धरणांशः	पृष्ठ/पंक्ति
भावान्तरविनिर्मुक्तो... ( ) .....	११/६	वार्यते केनचिन्नापि....(श्लो.वा.प्रत्यक्ष.२३६) .	६/१५
भावे ह्येष विकल्पः...(प्र० वा० ३-२७९) .	४८/१०	विभाषा ग्रहः (३-१-१४३ सिद्धान्त	
भूतिर्येषां क्रिया सैव.....( ) .....	३७५/६	कौ० अं० २९०५) .....	२४०/८
मायोपमाः सर्वे धर्माः ( ) .....	१६३/१०	विशेषहेतवस्तेषां प्रत्ययाः...	
यत् क्वचिद् दृष्टान्(टम्)...		(हेतुबिन्दुटीका-पृ०१३१) .....	३९/३
(हेतुबिन्दु टीकाग्रन्थे पृ०१६ मध्ये) ....	१६/८	षट्केन युगपद्ययोगात्...( ) .....	१६२/२
यथा विशुद्धमाकाशं...( ) .....	१७५/३	स एवाऽविनाभावो... ( ) .....	२०३/३
यथाऽसादृश्ये (पाणि० २-१-७).....	२८२/२	स हि बहिर्देशसम्बन्धः(?द्धः)...	
यन्न निश्चीयते रूपं... (त.सं.पंजिकायामुद्धृतः)	१७२/५	(मीमां० द० ७/२३) .....	१२०/१
यस्माद् उच्चरितात्...( ) .....	३१२/१	संसरति निरुपभोगं भावैर...	
यावन्तो यादृशा ये च...		(सांङ्ख्य का० ४०) .....	२७३/४
(श्लो०वा० स्फो० ६९) .....	३२२/९	सर्व एवायमनुमाना...( ) .....	१६५/३
लक्षणयुक्ते बाधासम्भवे...( ) .....	२०६/२	सर्वदा सदुपायानां वादमार्गः...(श्लो० वा०	
वक्ता न हि क्रमं.....		निरा० लो० १२८-१२९) .....	१६४/६
(श्लो० वा० शब्द० लो० २८८) ३२२/१३		सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषा.....	
वचनं राजकीयं वा...(लो.वा.प्रत्यक्ष.२३५) ...	६/१३	(वैशो० द०-२।२।१७) .....	३६४/३
वाग्रूपता चेद् व्युत्क्रामेद.....		स्वभावेऽप्यविना...(प्र.वा.३-३९) .....	१४/४
(वाक्यप०१-११५) .....	१७०/१		

## परिशिष्ट-२ प्रथमकाण्ड - तृतीयखंडे मूलगाथा - अकारादि

गाथा-आद्यांश	गाथा/पृष्ठ	गाथा-आद्यांश	गाथा/पृष्ठ
अण्णोण्णानुगयाणं इमं .....	४७/३६६	तह सव्वे गयवाया .....	२५/२८१
अत्थंतरभूएहि य णियएहि .....	३६/३३६	तेहिं अतीताणागय .....	४६/३६०
अत्थित्ति णिव्वियपं .....	३३/३३२	दव्वं पज्जवविउयं दव्वविउत्ता .....	१२/२४८
अह देसो सव्भावे .....	३७/३४९	दव्वड्ढिओ त्ति तम्हा .....	९/२४५
आइड्ढोऽसव्भावे देसो .....	३९/३५१	दव्वड्ढियवत्तव्वं अबत्थु .....	१०/२४६
इहरा समूहसिद्धो .....	२७/२८४	दव्वड्ढियवत्तव्वं सव्वं .....	२९/३०६
उप(प्प)ज्जंति विर्यंति य .....	११/२४८	दव्वड्ढियस्य आया बंधइ .....	५१/३७४
एए पुण संगहओ .....	१३/२६८	दव्वड्ढियस्स जो चेव .....	५२/३७५
एगदवियम्मि जे अत्थ .....	३१/३०९	नामं ठवणा दविएत्ति .....	६/१६७
एवं एगे आया एगे .....	४९/३६८	पज्जवणयवोक्कन्तं बत्थुं .....	८/२४४
एवं सत्तवियप्पो .....	४१/३५४	पज्जवणिससामण्णं वयणं .....	७/२४१
कम्मं जोगनिमित्तं बज्झइ .....	१९/२७३	पडिपुण्णजोव्वणगुणो जह .....	४३/३५७
जह एए तह अण्णे .....	१५/२६९	पुरिसज्जायं तु पडुच्च .....	५४/३७६
जह दवियमप्पियं तं .....	४२/३५६	पुरिसम्मि पुरिससद्दो .....	३२/३१०
जह पुण ते चेव मणी .....	२४/२८१	बंधम्मि अपूरन्ते संसार .....	२०/२७५
जाइ-कुल-रूब-लक्खण .....	४५/३५९	मूलम्मिमेवं पज्जवणयस्स .....	५/१
जे वयणिज्जवियप्पा .....	५३/३७५	रूआइपज्जवा जे देहे .....	४८/३६७
ज य तइओ अत्थि .....	१४/२६८	लोइय-परिच्छयसुहो .....	२६/२८३
ज य दव्वड्ढियपक्खे .....	१७/२७१	वज्जणपज्जायस्स उ पुरिसो .....	३४/३३३
ज य बाहिरओ धावो .....	५०/३६९	सव्भावे आइड्ढो देसो .....	३८/३५०
ज य होइ जोव्वणत्तो .....	४४/३५८	सव्भावेऽसव्भावे देसो .....	४०/३५२
जियववयणिज्जसव्वा सव्वनया .....	२८/३०५	सवियप्प-णिव्वियपं इय .....	३५/३३४
तम्हा सव्वे वि णया .....	२१/२७६	सव्वणयसमूहम्मि वि णत्थि .....	१६/२७०
तह णियवावसुविणिच्छिया .....	२३/२८०	सुह-दुक्खसम्पओगो ज .....	१८/२७२
		सो उण समासओ च्चिय .....	३०/३०७

## सन्मतितर्कप्रकरण काण्ड-१

पृष्ठ

	भूतपूर्व सम्पादकसंगृहीतानि परिशिष्टानि-१३ .....	३८२-४८४
१.	सन्मतिमूलगाथानामकाराद्यनुक्रमः .....	३८२-३८३
२.	श्वेताम्बर-दिगम्बरजैनाचार्यैः स्वे स्वे ग्रन्थे समुद्धृतानां यथोपलब्धानां च सन्मतिगाथानां सूचिः। .....	३८४
३.	यशोविजयोपाध्यायैः स्वरचिता अनेके ग्रन्थाः सन्मतिप्रकरणमाश्रित्यैव कृता इति सूचनाय तद्ग्रन्थोद्धृतानां सन्मतिगाथानां सूचिः। .....	३८५-३८६
४.	सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः। .....	३८७-४०९
५.	सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि .....	४१०-४४०
६.	सन्मतिटीकानिर्दिष्टा ग्रन्था ग्रन्थकृतश्च .....	४४१-४४५
७.	सन्मतिटीकागता वादिनो वादाश्च .....	४४६-४४८
८.	सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः। .....	४४९-४६६
९.	सन्मतिटीकागताः केचिद् विशिष्टाः शब्दाः .....	४६७-४६८
१०.	टीकायामनिर्दिष्टस्थलानामवतरणानां सम्पादकैः संशोधितानि स्थलानि .....	४६९
११.	सन्मत्यादर्शगतानि सम्पादकीयानि च टिप्पणानि .....	४७०-४७१
१२.	सन्मतिटिप्पणी निर्दिष्टा ग्रन्थकृतो ग्रन्थाश्च .....	४७२-४८०
१३.	सन्मतिसम्पादने उपयुक्तानां ग्रन्थानां सूचिः। .....	४८१-४८३

इति



## भूतपूर्वसम्पादकसंगृहीतानि परिशिष्टानि - १

## सन्मतिमूलगाथानामकाराद्यनुक्रमः ।

गाथा	गाथांक	गाथा	गाथांक	गाथा	गाथांक
अगु दुभगुएहिं दन्वे	१-१९	गुणसरुमंतरेणावि	३-१४	ण य होइ जोम्भगत्यो	१-४४
अण्णायं पासंतो	२-१३	चक्खुअचक्खुअवहि-	२-२०	ण वि अतिय अण्णवारो	३-२५
अण्णोण्णाणुगयाणं	१-४७	चरण-करणप्पहाणा	३-६७	ण हु सासणमत्तीमेत्तएण	३-६३
अत्थि अविणासबम्मी	३-५५	जइ ओगगहमेत्तं	३-२३	णाणं अणुत्ते अणिसये	३-२५
अत्थि ति पिच्चियप्पं	१-३३	जइ सन्वं सायारे	२-१०	णाणं किरियारहियं	३-६८
अत्थंतरभूएहि य	१-३५	जह एए तह अण्णे	१-१५	णियमेण सद्धंतो	३-२८
अहिंत्तं अण्णायं च	२-१२	जह कोइ सट्टिवरिसो	२-४०	णिययवयणिजसन्ना	१-२८
अह देत्तो सन्भावो	१-३७	जह जह बहुत्सुओ संमओ य	३-६६	तग्दा अण्णो जीवो	२-३८
अह पुण पुच्चपयुत्तो	२-३९	जहऽणियलक्खणगुणा	१-२२	तग्दा अहिययसुत्तेण	३-६५
आहोऽसन्भावो	१-३९	जह दवियमणियं तं	१-४२	तग्दा चउम्बिभागो	२-१७
इहरा समुहसिद्धो	१-२७	जह दसपु दसगुणम्मि य	३-१५	तग्दा सन्वे वि णया	१-२१
उप्पज्जमाणक्खलं	३-३७	जह पुण ते चेच मणी	१-२४	तह णिययवायसुविपिच्छिया	१-२३
उप (प)जंति विर्यति य	१-११	जह संबन्धविसिट्ठो	३-१८	तह सण्वे णयवाया	१-२५
उप्पाओ दुवियप्पो	३-३२	जाइ-कुल-रुव-सक्खण-	१-४५	तिण्णः नि उपायाई	३-३५
एए पुण सद्दहओ	१-१३	जावइया बयणवहा	३-४७	तित्थयरत्तयणसंगह-	१-३
एगदवियम्मि जे अत्थ-	१-३१	जीवो अणाइणिहणो केवल-	२-३७	ते उ अयणोवणीया	३-५१
एगसमयम्मि एगदवियस्स	३-४१	जीवो अणाइणिहणो जीव-	२-४२	तेहिं अतीताणाणय-	१-४६
एगंतणिविसेसं	३-२	जुजइ संबन्धनसा	३-२१	दम्भट्टिओ ति तग्दा	१-९
एयंतपक्खवाओ	३-१६	जेण मणोविसययाण	२-१९	दम्भट्टिओ वि होऊण	३-२
एयंताऽसन्भूयं	३-५९	जेण विणा ओगस्स (पाठान्तर) पृ०	७५९	दम्भट्टियनयपयदी	१-४
एवं एगे आया	१-४९	जे बयणिजवियप्पा	१-५३	दम्भट्टियवत्तन्नं अवत्सु	१-१०
एवं ज्जिणपणत्ते	२-३२	जे संतवाय दोसे	३-५०	दम्भट्टियवत्तन्नं सन्नं	१-२९
एवं जीवइवं	२-४१	जे संघयणाईया	२-३५	दम्भट्टियवत्तन्नं सामण्यं	३-५७
एवं सत्तवियप्पो	१-४१	जो आलं चणकालो	३-३६	दम्भट्टियस्स आया	१-५१
एवं सेसिंदियदंसणम्मि	२-२४	जो हेउवायपक्खम्मि	३-४५	दम्भट्टियस्स जो चेच कुणइ	१-५२
कम्मं जोगनिमित्तं	१-१९	जं अप्पुट्टा भावा	२-२९	दम्भत्थंतरभूया	३-२४
क्याय-मण-वयपाकिरिया-	३-४२	जं अप्पुट्टे भावो	२-३०	दम्भंतरसंजोगाहि	३-३८
कालो सद्दाव णियइं	३-५३	जं काविलं दरिसणं	३-४८	दम्भस्स ठिई जम्म-विग्गमा	३-२३
कुंभो ण जीवदवियं	३-३१	जं च पुण अरिइया	३-११	दम्भं खितं कालं	३-६०
केई अणंति जइया	२-४	जं पच्चक्खगहणं	२-२८	दम्भं जहा परिणयं	३-४
केवलणाणमणंतं	३-१४	जंपन्ति अतिय समये	३-१३	दम्भं पज्जवत्तियं	१-१२
केवलणाणावरणक्खय-	२-५	जं सामण्णगहणं	२-१	दुबिहो धम्मात्ताओ	३-४३
केवलणाणं साई	२-३४	णत्थि ण णिओ ण कुणइ	३-५४	दूरे ता अण्णतं	३-९
कोवं उप्पायंतो	३-७	ण य तहओ अत्थि णओ	१-१४	दो उण णया भयवया	३-१०
गइपरिगयं गइ चेच	३-२९	ण य दम्भट्टियपक्खे	१-१७	दोहि वि गएहि णीमं	३-४५
गुणम्मिअतियसणा	३-३०	ण य बाहिरओ भावो	१-५०	इंतणणाणावरणक्खए	३-९

१ - सन्मतिमूलगाथानामकाराद्यनुक्रमः ।

गाथा	गाथांक	गाथा	गाथांक	गाथा	गाथांक
दंसणपुन्वं णाणं	२-२२	बंधम्मि अपूरन्ते	१-२०	समयपरमत्यवित्थर-	१-२
दंसणमोग्गहमेत्तं	१-२१	मण्णइ खीणावरणे	१-६	सम्मण्णाले नियमेण	२-३३
नत्थि पुढवीविसिद्धो	३-५२	भण्णइ जह चउणापी	२-१५	सम्मइंसणम्मिणमो	३-६३
नामं ठवणा दविए ति	१-६	भण्णइ विसमपरिणयं	३-२२	सवियप्प-णिवियणं	१-३५
पञ्चुप्पणम्मि वि पज्जयम्मि	३-६	भण्णइ संबंधवसा	३-२०	सव्वणयसमूहम्मि वि	१-१६
पञ्चुप्पन्नं भावं	३-३	भहं मिच्छइंसणसमूह-	३-६९	साई अपज्जवसियं	२-३१
पज्जवणयबोक्कंतं	१-८	भयणा वि हु भइयम्भा	३-२७	साभाविओ वि समुदयकओ	३-३३
पज्जवणित्सासणं	१-७	मविओ सम्मइंसण-	३-४४	सामण्णम्मि विसेसो	३-१
पडिपुण्णजोन्नणगुणो	१-४३	मइसुयणाणमिमिसो	२-२७	साहम्मउ व्व अत्यं	३-५६
पण्णचणिज्जा भावः	२-१६	मणपज्जवणाणंतो	२-३	सिद्धत्तणेण य पुणो	२-३६
परपज्जवेहिं असरिसगमेहिं	३-५	मणपज्जवणाणं दंसणं	२-२६	सिद्धं सिद्धत्याणं	१-१
परवत्तम्भयपक्खा	२-१८	मूलणिमेणं पज्जव-	१-५	सीसमईविप्फारण-	३-२५
परिगमणं पजाओ	३-१३	रुआइपज्जवा जे देहे	१-४८	सुत्तं अत्यनिमेणं	३-६४
परिसुद्धो नयवाओ	३-४६	रुव-रस-रंघ-फासा	३-८	सुत्तम्मि चैन साई	२-७
परिसुद्धं सायारं	२-११	लोइयपरिच्छयसुद्धो	१-२६	सुद्ध-दुक्खसम्पजोगो	१-१८
पावेक्कनयपद्दगयं	३-६१	बंजणपजायस्स उ	१-३४	सो उण समासओ चिय	१-३०
पिउ-पुत्त-णत्तु-भम्भय-	३-१७	विगमस्स वि एस विही	३-३४	संखेज्जमसंखेज्जं	२-४३
पुरिसज्जायं तु पडुच्च	१-५४	सन्भावाऽपुक्कभावे	१-४०	संतम्मि केवले दंसणम्मि	२-८
पुरिसम्मि पुरिससदो	१-३२	सन्भावे आइटो	१-३८	हेउविउओवणीअं	३-५८
चहुयाण एगसवे	३-४०			दोज्जाहि दुगुणमहुरं	३-१९

२

## श्रेताम्बर-दिगम्बरजेनाचार्यैः स्वे स्वे ग्रन्थे समुद्धृतानां यथोपलब्धानां च सन्मतिगाथानां सूचिः ।

जिनमद्रगणी क्षमाश्रमण		सन्मति०	हरिभद्र	पञ्चसु	सन्मति०	हेमचन्द्र
सन्मतिप्रकरण	विशेषावयवक					
१,११	गाथा २५४८	३,५३		गाथा १०४९	३,४९	प्रमाणमीमांसा पृ० ४०
१,१९	१९३५			उपदेशपद		
१,६	२९४०	३,५३		पृ० १४०		
२,१५	१४१			दशानै० टीका		मलधारी हेमचन्द्र
२,४३	७७४			पृ० ३२		विशेषान० टीका
३,४७	२२६५	३,५३		३८	३,५२	पृ० ३३
३,५२	२१०४	१,१८			१,४७	"
३,४९	२१९५				१,३	१२४६
			शीलाङ्क			
	सिद्धक्षमाश्रमण	सन्मति०	आचाराङ्गटीका			मल्लिवेण
सन्मति०	नयचक्रटीका	१,२१	पृ० ८०		सन्मति	स्यद्वादमञ्जरी
	(लिखित प्रेसकोपी)	१,१२	८५		३,४७	पृ० २११
१,३१	पृ० २	३,४७	१४७			
१,४७	८	१,३	१७१			
१,२८	५०		सूत्रकृतान्गटीका			विद्यानन्दी
३,६९	१२३ अने १०३२	३,५३	पृ० २११		सन्मति०	तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक
१,३	३५९	१,२२	"		३,४५	पृ० ३
३,५८	६६०	१,२३	"			
१,४७	७४८	१,२५	"		सन्मति०	अनन्तवीर्य
१,६	७६०	१,२५	"			सिद्धिविनिधयटीका
१,५	९२८	१,२५	"			(लिखित)
१,५ अने ३,४५	९०१				३,५०	पृ० ३२४
	सिद्धसेनगणी (गन्धहस्ती)	सन्मति	वादिवेताल शान्तिस्त्रि			
सन्मति०	तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति	१,३ अने १,६	उत्तराण्ययनपाद्वटीका			अमृतचन्द्र
१,३८ अने १,२० अ० १ सू० ७ पृ० ५३		३,४७	पृ० २१		६७	पञ्चास्तिकायटीका
					३,६७	पृ० २५०

३

यशोविजयोपाध्यायैः खरचिता अनेके ग्रन्थाः सन्मतिप्रकरणमाश्रित्यैव  
कृता इति सूचनाय तत्तद्ग्रन्थोद्धृतानां सन्मतिगाथानां सूचिः ।

सन्मति०	शास्त्रवार्तास० टीका	३,५७	२५६ प्र०	१,३५	५१
१,१५	पृ० २५२ द्वि०	३,३८	३६ प्र०	१,८	५४
१,४७	११५ प्र०	३,९	२६१ द्वि०	१,९	"
१,१७	२५३ प्र०	३,१०	"	१,१०	५५
१,१९	"	३,११	२७४ प्र०	१,११	"
१,११	२३१ द्वि०	३,१	२५ प्र०	१,१२	"
१,४९	११५ द्वि०	३,११	२६१ द्वि०	१,१३	"
१,५३	११६ प्र०	३,४०	२३५ प्र०	१,१४	"
१,५०	११५ द्वि०	३,२७	२२३ द्वि०	१,१५	"
१,४४	२५८ प्र०	३,४४	५८ प्र०	१,१६	"
१,६	२४२ प्र०	३,८	२६१ प्र०	१,२१	५६
१,२८	२३० द्वि०	३,३४	२२१ द्वि०	१,२२	५७
	२४३ "	३,३३	२२० द्वि०	१,२३	"
१,२१	२३० प्र०	३,५६	२५६ प्र०	१,२४	"
१,५२	११६ प्र०	सन्मति०	नयोपदेश	१,२५	"
१,१०	२३१ द्वि०	१,१३	पृ० ३५ द्वि०	१,२६	५८
१,५१	११६ प्र०	१,३१	३ द्वि०	१,२७	"
१,९	२३१ प्र०	१,४१	१३ द्वि०	१,२८	५९
१,१२	२२४ प्र०	१,१५	३६ द्वि०	१,५	१०२
१,४३	२५८ प्र०	१,५३	८८ प्र०	१,४१	१०८
१,५४	११६ प्र०	१,१४	३५ द्वि०	१,५३-५४	१२३
१,४८	११५ प्र०	१,२८	३८ द्वि०	१,३६	१३०
१,४०	१५३ द्वि०	१,३	२९ प्र०	१,३७-३८	१३२
१,४८	" द्वि०	१,१०	३१ प्र०	१,३९	१३३
२,३५	३४२ प्र०	१,९	३० द्वि०	१,४०	१३४
३,३६	" द्वि०	१,१२	३५ द्वि०	१,४१	१३५
३,३९	३६ प्र०	१,८	३० द्वि०	३,४९	७
३,३२	२१९ वि०	१,५४	१५ द्वि०	३,५-६	१३९
३,५३	७९ द्वि०	१,३४	१२ प्र०	३,७	१४०
३,२१	२६० प्र०	१,३५	"	३,८-१५	१४१-१४३
३,२९	२५९ द्वि०	१,३६	३६ प्र०	३,३९	१४३
३,३०	"	३,३७	४३ द्वि०	३,३१	१४३
३,१४	२६१ द्वि०	३,५३	९२ द्वि०	३,१९	"
३,१५	२६१ द्वि०	३,४७	८९ प्र०	३,१९-२०	१५४
३,४७	२७४ प्र०	३,५४	८९ द्वि०	३,२१	"
३,५०	२४ द्वि०	३,२८	९६ द्वि०	३,२२-२३	१५५
३,४८	२७४ प्र०	३,६	१९ द्वि०	३,२४-३५-२६	१५६
३,११	२६१ द्वि०	३,२५	१५ द्वि०	३,२७	१५७
३,१३	"	सन्मति०	अनेकान्तव्यवस्था	३,२८-२९	१५८
३,२८	२५९ प्र०		(लिखित प्रेसकोपी)	३,३०-३१	१६०
३,३५	३५ प्र०	१,४	पृ० ३०	३,६७	"

## ३ - षडोविजयोपाध्यायैः स्वग्रन्थेषु द्यूतानां सन्मतिगाथानां सूचिः ।

५

सन्मति०	ज्ञानविन्दु	२,११	१५८ प्र०	३,१३	९	१२
१,८	पृ० १५२ द्वि०	२,१५	१५९ प्र०	३,३८	९	२१
१,३५	"	२,२७	१६२ प्र०	३,१०	२	१२
२,१२	१५८ द्वि०	२,३	१५४ द्वि०	३,४९	५	६
२,१३	"	२,२६	१६२ प्र०	३,१२	२	११
२,३२	१६३ द्वि०	२,३३	१६३ द्वि०	३,३४	९	२६
२,३४	१६१ द्वि०	२,३१	"	३,३३	९	२०-२३
१,४	१५५ प्र०	२,७	१५६ द्वि०	सन्मति०		महावीरस्तव
२,१४	१५९ प्र०	२,८	१५७ प्र०	१,२८		पृ० ५४ प्र०
२,५	१५६ प्र०	सन्मति०	ब्रह्मगुणपर्यायिनो रास	१,८		४२ द्वि०
२,२०	१६० द्वि०	१,४७	दा० १३	गा० १०	३,२९	१६ द्वि०
२,२३	१६१ द्वि०	१,४१	४	१३	३,६	५६ प्र०
२,१०	१५८ प्र०	२,३५	९	१४-१५	३,२५	५४ द्वि०
२,१९	१६२ द्वि०	२,३६	९	१४-१५	सन्मति०	धर्मपरीक्षा
२,२८	१६२ द्वि०	३,३९	९	२१	१,३	पृ० ८९
२,३०	"	"	१४	१६	३,४९	८८
२,२९	१६३ प्र०	"	९	१२	३,४८	"
१,२५	१६१ द्वि०	३,३७	९	१९	३,२७	२४०
२,९	१५७ प्र०	३,३२	९	१२	सन्मति०	गुरुतत्त्वविनिश्चय
२,२२	१६१ प्र०	३,१४	२	२	१,२८	पृ० १२ द्वि०
२,२१	१६० द्वि०	३,६७	१	२	३,५४	१८० प्र०
१,१६	१५९ प्र०	३,१५	२	१२	३,२७	१७ द्वि०
२,१८	१६० प्र०	३,११	२	१२		

४

## सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	शाय	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	शाय	व्या. पृ.
		अ					
अंतरेण	३	१४	६३५	अपेग	३	१२	
अक्रुसला	३	३८	६४५	अपेगकरणं	३	१२	६३५
अकत्वयं	२	१७	६१६	अपेगन्ते	१	१४	४१६
अगई	३	२९	६४०	अपेय	१	२२	४२१
अग्गहणं	३	२४	६३८	अपेयलक्खणगुणा	१	२२	४२१
अचक्खु	२	१०		अणोचम	१	१	
अजुत्तं	१	१८, ४७	४१७, ४५२	अणोचमसुद्धं	१	१	१३३, १५० १६६
अणणो	३	५२		अणं	३	१	६२७
अणत्तं	३	३५	६३५	अणत्तं	२	२२	६१८
अणत्तं	२	४३	६२१		३	९	६३४
	३	६, १९	६३०	अणयरे	१	५४	४५६
अणत्तकप्पं	२	४३	६२५	अणवात्तो	३	२६	६३८
अणत्तकप्पा	३	६	६३०	अण्णा	१	५३	४५५
अणत्तपुणकालयं	३	१९	६३७		२	२०	६१७
अणत्तपुणो	३	१३		अण्णायं	२	१३, १३	६०९
अणत्तं	२	१४, १७, ३७	६१६, ६२३	अण्णे	१	१५	४१६
अण्ण	२	३७, ४१, ४२			२	३६, ४३	६२३, ६२५
अण्णइण्हण	२	४१	६३४	अण्णो	१, ३	४४, ५२	४५०, ४५५
अण्णइण्हणो	२	३७	६२३		२	३८	६२३
अण्णइण्हणो	२	४२	६२४		३	५२	७१०
अण्णाययइयनिसयेसु	२	२५	६१९	अण्णोणं	३	५६	७२५
अण्णाय	१	३१, ४३, ४४, ४६	४४१, ४५०	अण्णोण्ण	१	२, ३, २१, २३, ४७, ४८	
अण्णायवयगुणवसाहणं	१	४४	४५०		२	१६	
अण्णायसुहुबद्धान्त्यं	१	४३	४४९		३	३१, ४९	६४०
अण्णायारं	२	१४	२१०	अण्णोण्णिसिआ	१	२१	४१९
अण्णायारं	२	११		अण्णोण्णनिरदेक्खा	३	४९	७०४
अण्णायवरणं	२	१७	६१६	अण्णोण्णपक्खणि एवेक्खा	१	२३	४२१
अण्णिच्छियं	३	५९	७२६	अण्णोण्णविलक्खणा	२	१६	६१५
अण्णियमा	३	३३	६४१	अण्णोण्णविसेसिया	३	३१	६४०
अण्णु	३	३९	६४६, ४८	अण्णोण्णाणुमया	१	४८	४५३
अण्णुमया	१	४८		अण्णोण्णाणुमयाणं	१	४७	४५३
	३	८		अतीत	१	४६	
अण्णुमयाणं	१	४७		अतीताणाययदोसगुणो-			
अण्णुत्तरं	३	५१	७०९	दुग्गं मड्ढमुबगमेहि	१	४६	४५०
अण्णुत्तरं	१	११	४०९	अण्णुत्तोस	३	६२	७३३
अण्णुत्तरं	३	२०	६३७	अण्णुत्तोसनिण्डा	३	६२	७३३
अण्णुत्तरं	३	३९	६४८				

## ४ - सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
अत्य	१	३०, ११, ३४, ४१		अपच्छिन्न	१	८	
"	२	१, २७, ३६	६२३, ६३०, ७४६	अपच्छिन्नवियपनिन्वयणो	१	८	४०८
	३	५, ६४, ६५	६३०, ७४६	अपज्वसियं	२	७, ३१, ३४	६०७, ६२१
अत्यलवलंभो	२	२७	६१९	अपज्वसु	३	२८	६४०
अत्यं	१	२	१७३	अपरिणभ	१	१९	४१८
अत्यजो	२	३३	६२२	अपरिणवच्छिण्णेषु	१	१९	४१८
अत्यगई	३	६४	७४६	अपरिसुद्धो	३	२२	६४१
अत्यगईअ	२	१८	६१६	अपुट्टे	२	२५	६१८
अत्यगओ	१	३०	४३०	अपूरन्ते	१	२०	
अत्यणिअओ	१	३०	४३०	अप्यिअं	१	४२	४४९
अत्यंतर	१	३६		अप्युट्टा	२	२९	६२०
	३	३४		अप्युट्टे	२	३०	६२०
अत्यंतरं	३	३५	६३६	अन्भंतर	१	५०	
अत्यंतरभावगमणं	३	३४	६४३	अन्भंतरओ	१	५०	४५३
अत्यंतरभूएहि	१	३६	४४१, ४४२, ४४६	अन्भंतरमिसेसो	१	५०	४५३
				अन्भुवगमेहिं	१	४६	
अत्यनिमेषं	३	६४	७४५	अमविया	३	४३	
अत्यपज्या	१	३१	४३०	अभिणिबोहे	२	३२	६२१
अत्यपज्याए	१	४१	४४८	अभिण्णकाला	३	३५	६४३
	३	५	६३०	अभिण्णं	३	३५	६४३
अत्यपज्याओ	१	३४	४४०	अभिण्णो	१	३०	४३०
	२	३६	४५७, ६२३	अभीरू	२	४	६०५
अत्यपडिवती	३	६४	७४६	अमयसारस्स	३	६९	
	३	५६	७१९	अमुत्ता	३	२४	६३८
अत्यम्मि	२	२५	६१८	अमुत्तिसु	३	२४	६३८
अत्यसंपायणम्मि	३	६५	७४६	अयं	३	२५	६३८
अत्या	२	२८	६१९	अरहा	२	१३, १५	६१०
अत्यि	१	७, १४, ३३	४०७, ४१६	अरिहया	३	११	६३५
		३७, ३८, ४०	४४०, ४४६	अलवखणं	१	१३	४१५
		४२, ५०	४४७, ४४९, ४५३	अलिए	१	२८	
	३	४, ५, १३, २२,	६३०, ६३५	अवत्तव्वं	१	३८, ३९	४४७
		२६, ५५	६३७, ६३८, ७१८, ७१९	अवत्तव्वयं	१	३६, ४०	४४२, ४४७
				अवत्थुं	१	१०	४०९
अत्यो	१	२७	४२३	अवमण्णता	३	२६	६३८
	२	३९	६२३	अवलंभाणा	२	४	६०५
अदवियं	३	३१	६४०	अवसेसो	१	७	४०७
अदव्वं	३	३०	६४०	अवहिं	२	२०	
अदिट्ठं	२	१३, १३	६०९	अवि	३	५, १४	६३०, ६३५
अणहा	३	२९	६४०	अविकोविय	३	६१	७३२
अन्तो	२	३	५९६	अविकोवियसामत्था	३	६१	७३२
अणो	३	४५	६५१	अविण्णं	१	११	४०९
				अविणास	३	५५	७१८

४ - सन्मतिमूलगायागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
अविणाद्यधम्मी	३	५५	७१८
अविभिच्छब्दो	३	६६	
अविभ्रता	३	१८	६४०
अवियत्	२	११	६०९
अवियत्पं	१	२९, ३५	४२९, ४४१
अवियत्पो	१	३४	४४०
अविददा	१	४९	४५३
अविरोहेण	३	३७	६३९
अविसए	२	५५	६१८
अविसिट्टा	२	१८	६१६
अविसेसओ	२	३०	६२०
अविसेसियं	२	४१	६२४
असञ्जेवं	२	४३	६२५
असञ्जान	१	३७	
असञ्जानगजवे	१	३७	४४६
असञ्जाने	१	३९, ४०	४४७
असञ्भूयं	३	५९	७२६
असमत्या	३	६८	
असमाण	३	८	६३३
असमाणगहणलक्षण	३	८	६३३
असरिस	३	५	
असरिसगमेदि	३	५	६३०
असञ्जाए	३	५०	७०५
असञ्जाया	३	५६	७२५
अद्	१	२६, ३७	४२२, ४४६
	२	२४, ३९	६१८
	३	१६	६३६
अद्वा	२	१०	६०८
अद्दिगम्मस्स	३	६९	
अद्दिगय	३	६५	७४६
अद्दिगम्भ	३	१५	६३६
अद्दिगयसुतेण	३	६५	७४६
अद्दिगयस्स	१	४५	४५०
अद्देउवाओ	३	४३	६५०
आ			
आह	२	३६	
आहट्टो	१	३८, ३९	४४६, ४४७
आदिणं	३	११	६३५
आदिंया	३	६	६३०
आदिंदि	१	३६	
आउंञ्चण	३	३९	
आउंञ्चणओ	३	३६	६४४
आउय	२	४२	६२४

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
आएस	१	३७	
आएसविसेसियं	१	३७	४४६
आगम	१	२	१७३
आगममेत्तव्य	३	४६	६५५
आगममेत्तव्यसाहओ	३	४६	६५५
आगमिओ	३	४५	६५१
आगमे	३	४५	६५३
आगासाईआणं	३	३१	६४१
आणं	१	१६	
आयरिय	३	६५	७४६
आयरियधीरद्वत्या	३	६५	७४६
आया	१	४९, ५१	४५३, ४५५
आरद्धे	३	३९	६४६
आरद्धो	१	२९	४२९
आनरण	२	५, ९	६०६
आसायणा	१	५३	४५५
	२	४, ७	
आसि	३	५२	७१०
इ			
इअ	२	३७	६२३
इच्छंति	२	३४, ३६	६२२, ६२३
	३	८, २९, ३८	६३३, ६४०
			६४६
इणं	२	३९	६२३
इणमो	३	६२	७२२
इन्ति	२	२८	६१९
इंदिय	३	१८	६३६
इंदियगयं	३	१८	६३६
इमं	१	४७	४५२
	२	३३	६२२
इय	१	३५	
इह	२	२६	६१९
इहारा	१	२७	४२२
	३	२५	६३८
उ			
उ	१	५, ६, ९, १६,	३४९, ३७९,
		३२, ३४	४०८, ४१६,
			४४०
	२	२, १६, १७,	६१६, ६२२,
		१८, ३३, ४१	
	३	३३, ३२, १४,	६३८, ६४३
		४३, ४८, ५१	६४०, ६५६
उआहरणमितं	३	१६	६३६



## ४ - सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
उच्छिष्णोसु	१	१९	४१८	उवगायाणं	१	१	१३३, १५०
उच्छेअ	१	१७					१६६
उच्छेअवाह्वा	१	१७		उवणीओ	१	१६	
उज्जुय	१	५	३१७, ३१८, ३४९, ३६६, ३७८	उवणीयं	३	१२, ५८	६३७, ७२९
उज्जुयबयणविच्छेदो	१	५	११७	उवणीया	३	५१	७०९
उहू	३	२९	६४०	उवलंभो	२	२७	
उहुगईयं	३	२९	६४०	उवबणं	२	३३	६२२
उण	१	२१, २८, ३०, ४१	४१९, ४२९, ४३०	उवसमियाई	२	२६	६१३
	३	१०, १६, २१, ६४	६३४, ६३६, ६३७, ७४६	उवसमियाईलवखणवि- सेसओ	२	३६	६२३
उण्णा	२	३४	६२२	उवाओ	३	५५	
उणेधुं	१	२	१७३	उस्सग्गओ	३	४१	६४९
उप्पज्जति	१	११	४०९				
उप्पज्जमाण	३	३७	६४५	एए	१	१३, १५	४१५, ४१६
उप्पज्जमाणकालं	३	३७	६४५		३	५५, ५७	७२५
उप्पणमं	३	३७	६४५	एएसु	१	५३	४५५
उप्पणो	२	३६	६३३	एक्कससएण	३	१०	६०८
उप्पाओ	२	९, ३१	६०८, ६२१	एग	१	३१	४३०
	३	३२, ४०, ८२	६४१, ६४९, ६५०		२	११, ३१	६०८, ६२१
उप्पाय	१	१२			३	१७, ४०, ४१	६३६, ६४९
उप्पायट्ठिभंगा	१	१२	४१०, ४१५	एगणुण	३	६	६३०
उप्पायत्था	३	३८		एगणुणाईया	३	६	६३०
उप्पायत्थाकुसला	३	३८	६४६	एगणुणो	३	१३	६३५
उप्पायानो	३	७	६३१	एगदवियम्मि	१	३१	४३०
उप्पायं	३	३८	६४६	एगदवियस्स	३	४१	६४९
उप्पायसमा	३	४१	६४९	एगंत	२	३९	
उप्पाया	३	४१	६४९		३	२	६३७
उप्पायादे	२	३५	६४३	एगंतमिठ्विसेसं	३	२	६२७
उभय	१	१६		एगंतपक्खपडिसेहे	२	३९	६३३
उभयत्थ	२	४०	६०४	एगंता	१	१४	४१६
उभयव्वायपणवओ	१	१६	४१६		३	५३	७१०
उभयहा	१	३८, ३९, ४०	४४६, ४४७	एगंतिओ (एगतिओ)	३	३३	६४१
उयाहरणं	२	३९	६२३	एगंडुच्छेयम्मि	१	१८	४१७
उल्लएण	३	४९	६५६	एगंतो	१	३३	६३१
उल्लया	३	५०		एगपुरिससंबंधो	३	१७	६३५
उवउत्तो	२	२९	६२०	एगयरम्मि	२	१७	६१९
उवएसम्मि	३	२६	६३८	एगविभागम्मि	३	४०	६४९
उवओगा	२	९	६०८	एगसदे	३	४०	६४९
उवओगो	१	८		एगसमयंतदप्पाओ	२	३१	६२१
				एगसमयम्मि	२	१२	६०९
					३	४१	६४९

४ - सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
एगस्स	३	१७	६३६	कप्पा	३	६	६३०
एगे	१	४९	४५३	कम्मं	१	१९, ५१	४१८, ४५५
एत्तं	२	२४	६१८	कयं	३	५४	७१८
एत्तिभं	२	२१	६१७	करण	१	४९	
एतो	३	१०	६३४	करणं	३	१२	
एत्थ	२	२१	६१७	करणविसेसेण	१	४९	४५३
	३	२२	६३७	करेह	१	५२	४५५
एयंत	३	२, १६	६३५		३	५५	७१८
	३	५९	७२६	कसायबसा	१	१९	४१८
एयंतपक्खवाओ	३	१६	६३६	कस्स	२	९	६०८
एयंतविसेसियं	३	२	६२८	कह	२	१३, ३७	६०९, ६२३
एयंतासब्भयं	३	५९	७२६		३	२२	६३७
एयं	१	१२	४१०	कहा	३	२५	६३८
	२	१, १५	४५७, ६१०	कहामुहं	३	२५	६३८
	३	३, १५, १६,	६२८, ६३६	काय	३	४२	६५०
		२१, २२	६३७, ६५६	कायमणवयणकिरियाहू-			
		४८		वाइगइ विसेसओ	३	४२	६५०
एव	१	१०, २४, ३५	४०९, ४२१	का(ओ)	३	७	६३१
			४४१	कारण	३	५३	७१०
	२	१२, २३	६०९, ६१८	कारणं	१	१९	
	३	७	६३१	कारणंगंता	३	५३	७१०
एवं	१	४१, ४९	४४८, ४५३	काल	१	३२	
	२	१०, २३, २४	६०८, ६१८	कालंतरं	३	३६	६४४
		३१, ३२, ४१	६२१, ६२४	कालं	३	३७, ६०	७४५, ७२७
	३	२३, २५, २७	६३८, ६३९	कालम्मि	१	३३	
		३०	६४०	कालयं	३	१९	
एष	१	६	३७९	काला	३	२५	६४३
	२	३६	६२३	कालो	३	२६, ५३	७११, ७१७
	३	३४	६४२	कामिलं	३	४८	६५६
एसो	२	१	४५७	किं	२	१३	६०९
		ओ			३	९	६३४
ओरगहमेत्तं	२	२१, २३	६१७, ६१८	किरिआ	३	६८	
ओष	१	९०		किरिआमित्तं	३	६८	
ओहि	२	१६	६१५	किरिआरहिधं	३	६८	
ओहिण्णाणस्स	२	२९	६२०	किरिया	१	४९	४५३, ६५०
ओहिण्णाणे	२	२९	६२०		३	४२	६५०
ओहिमणपज्जवाण	२	१६	६१५	कुणइ	१	४३, ५२	४४९, ४५५
		क			२	१८	६३६
कओ	३	२५	६३८	कुंभ	३	५४	७१८
कओ	३	४४	६५१	कुंभदवियं	३	३१	६०
कत्तो	२	२७	६१९	कुंभो	३	३१	६४०
कप्पं	२	४३	६१५	कुल	१	४५	४५०
				कुसमय	१	१	६५

## ४ - सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	
कुसमयन्त्रिसावर्णं	१	१	६५, ६६, ६७ ६८, ६९, ७०	गयं	३	१८, ११	६१६	
केइ	२	३४, ३६	६२३, ६२३	गहेणं	३	६४	७४६	
		८, २९	६३३, ६४०	गुण	१	२४, ४३, ४४, ४६	४४९	
केई	२	४	६०५					
केन्वि	३	३८	६४६			६, ८, ९	६३३, ६३४	
केण	३	५८	७२६			१०, १२, १३	६३५, ६३८	
केवलपाण	२	५				१६, १९, २३	६४०	
केवलपाणार्दसपा	२	२०	६१७	गुणद्विय	३	१०	६३४	
केवलपाणं	२	३, १६, ३४	५९६, ६२२ ६३३	गुणद्वियणओ	३	१०	६३४	
केवलपाणम्मि	२	८	६४७	गुणणिव्वलियसण्णा	३	३०	६४०	
केवलपाणावरणकखय	२	५	६०६	गुणपणिहाणं	१	४३	४४९	
केवलपाणावरणकखयजायं	२	५	६०६	गुणलक्खणं	३	२३	६३८	
केवलभावं	२	३६	६२३	गुणविसेसभागपडिबद्धा	१	२४	४२१	
केवलं	२	५, ७, १७, ३६	६०७, ६१६ ६२३	गुणविसेसे	३	१०	६३४	
				गुणविसेसो	३	१३	६३५	
केवलाण	२	२०, २१	६१७	गुणसण्णा	३	९	६३४	
केवलि	२	३५१	६२२	गुणसहं	३	१४	६३५	
केवल्लिणो	३	२३	६३८	गुणसहे	३	९, १५	६३४, ६३६	
केवल्लिपज्जाओ	२	४१	६२४	गुणा	१	२२	४२१	
केवली	२	१२, ३०	६०९, ६२०			३	२४	६३८
केवले	२	८	६०७	गुणो	१	४३		
कोई	१	९, ११	४०८, ४५५	गोयम	३	११	६३५	
				गोयसाईणं	३	११	६३५	
कोवं	३	७	६३१	गहण	२	१	४५७	
कखए	२	९	६२४			३	८	६३१
कखय	२	५		गहणाहि	२	१४	६०९	
		ख						
खित्तं	३	६	७२७	घडादओ	२	२४	६१९	
खीणावरणिजे	२	६, ११	६०७, ६०९	घलो	२	२१	६१७	
खीणावरणे	२	५	६०७			३	५२	७१०
		ग		वेण्ह	२	२४	६१८	
गइं	३	६, २९	६३०					
गइपत्तिगयं	३	२९	६४०	च				
गइं	३	२९, ४३, ६४	६४०, ६५० ७४६	च	१	२४, २७, ३८	४४७, ४५५ ३९, ५१	
गइयं	३	२९	६४०			२	७, १२, १३, ६०९, ६२०, ३०, ३१, ३३, ६२२ ४३	
गओ	१	३०				३	१, २, ३, ११	६२७, ६२९
गण	३	६६					३४, ३५, ५९	६३५, ७२६
गंध	३	८					६०, ६८	७२७
गमविसेसा	३	६	६३०	चउणाणि	२	१५	६१०	
गमेहिं	३	५		चउण्णिमागो	२	१७	६१६	

४ - सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
चक्रसु	२	३०	६१७	जह	१	२,१५,२२, १७३,४१६, २४,४३,४३, ४२१,४४९, ४५,४७, ४५०,४५२	
चक्रसुअचक्रसुअवहिजे-							
बलाण	२	२०	६१७				
चक्रसुमि	२	१४	६१८				
चरणकरण	३	६७	७५५				
चरणकरणप्यहाणा	३	६७	७५५				
चाणकरपत्स	३	६७	७५५				
चरिएण	१	४३		जहंति	१	२४	४२१,
चैव	१	२४,२७,५२	४२८,४५५				
	२	७,२१	६१७	जहा	३	४,३०,६१	६३७,६४०, ७३२
	३	९,१५,२५,२६	६३४,६३६ २९,३२,३६ ६३८,६४० ४६,४७ ६४४,६५५	जहागमभिभ्रतपखिवत्ती	३	६१	७३२
चेवा(व)	३	५३		जहाणुरूव	१	२५	
चिचय	१	३०		जहाणुरूवविणिउत्तव-			
				त्तवा	१	२५	४२१
				जहिं	१	२७	४२३
				जहेव	२	१४,१५	६१०
				जाइ	१	४५	४५०
					३	१६	
				जाइकुरुवलवखणसण्णा-			
				संबंधओ	१	४५	४५०
				जाओ	२	४०	६२४
					३	३९	६४८
				जाणइ	२	४,१०,१३, ६०५,६०८, ३० ६०९,६३०	
				जाणओ	१	५४	४५६
					२	१८	६१६
					३	६३	
				जाणणा	३	४३	३५०
				जाय	२	४०	
				जायं	१	५४	
					२	५	६०६
					३	३८	
				जायसद्धो	२	४०	६२४
				जाव	१	८	४०८
				जावइया	३	४७	६५५
				जानंत	१	४७	४५३
				जिण	३	२६,६९	६३८
				जिणपण्णत्ते	२	३२	६२१
				जिणनयणत्से	३	६९	
				जिणाणं	१	१	८,५,२६, २९,४३, ६८,६९
					३	८,१२	६३३,६३५
					१	३८,३९,४०, ४४६,४५७,	
वत्स	१	३८,३९,४०, ४४६,४५७,					



४ - सन्मतिभूलागाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड - गाथा	व्या. पृ.
णय	१	८, १६, २५		णित्तो	३	५४
		४२		णित्तएण	१	३५
	३	४७	६५५	णित्तओ	३	६२
णययाद्	३	२१	६३७	णित्तं	२	१९
णययाद्द्विसेसगओ	३	२१	६३७	णित्तोसं	३	६३
णयवाय	३	६४	७४६	णित्तं	१	५४
णयवायगद्दणतीणा	३	६४	७४६		२	१२
णयवाया	१	२५	४२१		३	५२
	३	४७	६५५	णित्तो	२	२७
णयस्स	१	५, १०, ११		णित्तं	१	५
		१७, ४२, ५२		णित्तं	२	५
णया	१	१३, १५, २१	४१९, ४२१	णियआवरणकखय	२	५
		२३		णियआवरणकखयस्सवे	२	५
	३	१०	६३४	णियइ	३	५३
णयाण	१	१६		णियएहि	१	३६
	२	१	४५७	णियओ	१	३७
णयानं	१	१५		णियतेइ	३	२
णराद्दिओ	२	४०	६३४	णियम	२	१०
णवरं	३	१६	६३५	णियमओ	२	४२
णाण	२	९, १६, १७	६१५, ६१६	णियमपरित्तं	२	१४
		२२, २७	६१७	णियमा	१	५२,
		३६			२	१५, १९, २०
णाणमित्तं	२	२२	६१७			६१०, ६१७,
णाणदंसण	२	१७	६१६		३	४१, ४४, ६३
णाणदंसणज्जिणाणं	२	१७	६१६			६४९, ६५१,
णार्ण	२	१, ३, ५, १९	४५७, ४५८	णियमेइ	३	१
		२१, २२	४५९, ५५९	णियमेण	१	१०
		२३, २४, २५	६०६, ६१७		२	२३
		२६, ३०	६१८, ६१९		३	५, २८, २९
		६१०				६३०, ६३९,
						६४०
णाणस्स	२	३, ८	५१६, ६०७	णियमो	३	२७
णाणाएणज्जवा	२	३६	६२३	णियय	१	२३, २८
णाणाण	२	२२	६१८	णिययवयणिअ	१	२८
णाणे	२	२	५९६	णिययवयणिअणवा	१	२८
णाम	१	९	४०८	णिययवायसुविणिच्छया	१	२३
णामं	३	६३	७३२	णियया	३	११
णायन्वा	३	३५	६३५	णिरयिसओ	३	१८
णिओओ	१	३०		णिरवेक्खा	१	२३
णिअ	१	१८		णिव्वण्णणा	२	२१
णिअं	१	२९, ३४	४२९, ४४०	णिव्वत्तिय	३	३०
	३	५	६३०	णिव्वानं	३	५४, ५५
णिव्ववाय	१	१८		णिव्वियप्यं	१	३३, ३५
णिव्ववायपक्खम्मि	१	१८	४१७	णिव्वियप्यो	१	४१

## ४ - सन्मतिमूलगाथागवाः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
गिञ्चिसेसं	३	२	६२७	तद्वा	२	१५	६१०
गिहतामण्यं	१	७	४०७	तद्देय	३	१५	६३६
गिस्सिआ	१	२१		तद्देव	१	४२	४४९
गिस्सियं	३	३	६२९	ता	३	९	६३४
गिहणं	२	४१		ताव	३	९	६३४
गिहणो	२	३७		तावद्दयं	१	३१	४३०
णसिअं	३	४९	६५६	ति	२	३,७,२३,	५९६,६०७,
णव	१	१७				२६,३१,	६१८,६२१,
णो	३	२३	६२८			३३,३४,३९	६२२
णोइदियं	१	५०	४५३			२३,३१,	६४०,६४५,
णोइदियम्मि	२	३६	६१९			३७,२९	६४६
		त		तिअणुयं	३	३९	६४६
तइओ	१	१४	४१६,	तिकाल	३	३७	
तइणुणो	३	१४	६३५,	तिकालविसयं	३	३७	६४५
तइआ	२	४	६०५	तिण्णि	३	३५	६४३
तओ	२	३५	६२२,	तिण्हं	३	३१	६४१
	३	५२	७१०	तिण्यर	१	३,५३	२७१,४५५
तत्तो	३	७,३९,	६३१,६४७,	तित्थय्यरवयणसंगह्विसे-	१	२	२७१
तत्थ	२	२४	६१८,	सपत्थारमूलवागरणी			
	३	३२,४३	६५०	तित्थय्यासायणा	१	५३	४५५
तं	१	२,२७,३१,	१७३,४२८,	तित्थय्यरासायणाभीरु	२	४	६०५
		३७,३८,	४४६,४४७,	तित्थिय	२	३१	६२१
		३९,४०,	४४९,४५२,	तिथिह	१	४९	४५३
		४२,४७,		तिथिहजोगसिद्धी	१	४९	४५३
	२	७,३०	६२०,	तीय	१	३१	४३०
	३	१८,२२,२३,	६३७,६३८,	तीयाणागयभूया	१	३१	४३०
		२६,२९,५८	६४०,७२६	तीसइ	२	४०	
तम्मि	३	४	६३०	तीसइवरिसो	२	४०	६२४
तम्हा	१	९,१३,२१	४०८,४१५,	तु	१	५४	
			४१९		२	१९,२२,३६	६१७,६२२
	२	८,१७,२८,	६०७,६१६,			३७	
		२९,३०,३८	६१९,६२०,			१४,१६,	६४०
			६२०,६२३			१९,३०	
	३	८,१३,३१,	६३३,६३५,			३३	४४०
		६५	६४०,७४६			१५,२४,२७,	४१६,४२१,
तयं	३	१	६२७			२८,४८	४२३,४२९,
तव्वाओ	३	२६	६३८				४५३
तस्स	१	४,५,३२,४५	३४४,४३१,				
			४४०,४५०,				
	२	३६,४१	६२३,६२४				
तह	१	१०,१५,२३,	४१६,४२१,				
		२५,४६	४५०				
	२	७,६,१४,	६०६,६०७,				
		३९,४३	६२३,६२५				

४ - सम्प्रतिमूलगाथाः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	पाया	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	पाया	व्या. पृ.
	२	२०,३१,३५	६१७,६२१, ६३२	दंसणसदो	२	२४,२९,३२	६१९,६२०, ६३१
	३	८,२०,२४, ५०,५१,५३	६३७,६३८, ७०४,७०९ ७१०	दंसणस्स	२	८	६०७
तेण	१	३६,४४	४५०	दंसणा	२	१६	६१५
	२	२०,२२,३६	६१७,६१९	दंसणे	२	२,३३	५९६,६३२
	३	११,५२	६३५,७१०	दट्ठन्नं	३	१५	६३६
तेत्तियमित्त	२	३४	६२२	दट्ठन्नयं	२	७	६०७
तेत्तियमित्तोत्तूणा	२	३४	६२२	दट्ठन्वा	३	३०	६४०
तेसि	२	१८,२७	६१६,६१९	दट्ठे	१	४९	४५३
	३	३६,५०	६४४,७०४	ददिसणं	३	४८	६५६
तेसु	१	१४	४१६	ददिसणस्स	२	३	५९६
	२	१८	६१६	ददिसि	१	८	४४७
	३	११	६३५	ददिसिं	१	६	३८७,४०६
तेहिं	१	४६	४५०,४५२	ददिसिओवओगो	१	८	४०८
तो	२	१९	६१७	ददिय	१	१२	
त्ति	१	६,७,९,२४, ३६,४७,३३, ३४,४२,४७	३७९,४०७, ४०८,४२१, ४२८,४४०, ४४९,४५१	ददियं	१	३७,३९,४०, ४४६,४४७, ४४९	
	२	४,१३,२१, ४२	६०५,६१७, ६२४	ददियमि	३	२,२९,३१, ३७	६२८,६४०, ६४५
	३	४,८,१२,१४, १७,२२,३९, ४४,५२	६३३,६३५, ६३६,६३७, ६४८,६५१	ददियमिं	१	३१,४८	४३०
त्थंतरभूया	३	३४		ददियलवखणं	१	१२	४१५
	४			ददियस्स	३	२३,३८,४१, ४२	६३८,६४६
भोरमि	२	३७	६२३	ददियाहिं	३	३५	६३५
	३			दद्व	१	१२	
दंसण	२	९,१७,२०, २३,२८,३२	६१६,६१८, ६१९,६२१	दद्वगुणजाइमेयमि	३	१६	६३६
दंसणणायाण	२	३२	६१७	दद्वजायाण	२	१९	६१७
दंसणणायाणरत्तए	२	९	६०८	दद्वट्ठिओ	१	३,९	२७१,२७२, २८५,४०८
दंसणपुच्चं	२	२२	६१७		२	२	५९६
दंसणं	१	२	४१९	दद्वट्ठिय	१	१०,१७,२९	४०९,४२९
	२	१,३,५,६, ११,१४,१९, २१,२२,२३, २५,३६,३७, ३०,३३	४५७,५९६, ६०६,६०७, ६०९,६१७, ६१८,६१९, ६२०,६२२,		३	१०,५७	६३४,७२५
दंसणमि	२	८	६०७	दद्वट्ठियनय	१	४	३१५
दंसणमिषणा	२	३०	६१७	दद्वट्ठियनयपयसी	१	४	३१५
				दद्वट्ठियनयस्स	१	१०	४०९
				दद्वट्ठियपक्खे	१	१७	४१७
				दद्वट्ठियपज्जट्ठिया	३	१०	६३४
				दद्वट्ठियवत्तव्व	१	१०,२९	४०९,४२९
				दद्वट्ठियस्स	३	५७	७२५
					१	६,७,८,११, ५१,५२	३७९,३८६, ४०८,४०९, ४५५



## ४ - सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
	३	४८	१५६	दुविहो	३	४३	१५०
दम्बत्थंतरभ्या	३	२४	६३८	दुवे	१	१४	४१६
दम्बं	१	१२, ३१, ३६	४१०, ४३०, ४४२	दुवेण्हं	१	१३	४१५
	३	४, ६, १८,	६३०, ६३६, १९, ३०, ६०	दूरे	३	९	६३४
दम्बंतर	३	३, १८	६४६	देवालय	२	४२	६२४
दम्बंतरणिसिसयं	३	३	६२९	देवालयजीनियविसिद्धो	२	४२	६२४
दम्बंतरसंजोगाहि	३	३८	६४६	देस	३	६०	७२७
दम्बपरिणामं	३	१	६२७	देसणा	३	१२	६२५
दम्बविचरा	१	१२	४१०	देसो	१	१७, १८, ३९	४४६, ४४७
दम्बस्स	३	२, २३	६२७, ६३८			४०	
दम्बाई	३	२७		देहे	१	४८	४५३
दम्बाणुगया	३	८	६३३	दो	१	१३	४१५
दम्बे	३	३९	६४६		२	३१	६२१
दसगुणम्मि	३	१५	६३६		३	१०, ३१, ५१	६३४, ६४०
दसगुणो	३	१३				६८	७१०
दसत्तणं	३	१५	६३६	दोणवि	३	५६	७२५
दससु	३	१५	६३६	दोणिग	३	४६	६५५
दहणादओ	३	१०	६४०	दोण्ह	२	१	४५७
दादंतो	३	५८	७२६	दोत	१	४६	
दाहयं	२	३४, ३६	६२३, ६२३		२	४३	
दाएइ	३	१	६२७	दोसे	३	५०	७०४
दाएही	१	५४	४५६	दोहि	१	३६	४४२
दिट्ठ	१	२८, ४५	४२९, ४५०		३	४६	६५६
दिट्ठसमओ	१	२८	४२९	द्वं	२	४१	
दिट्ठी	१	१३, २१				४	
दुअणुएहि	३	३९	६४६	धम्म	३	४३	६५०
दुए	२	९	६०८	धम्मावाओ	३	४३	६५०
दुकल	१	१८, ४६	४१७	धम्मी	३	५५	७१८
	३	५१	७१०	धम्मो	३	१४	
दुकखंत	३	४४	६५१	धीरदत्था	३	६५	७४६
दुक्खंतकओ	३	४४	६५१			न	
दुक्खं	३	६८		न	१	२२, ३३	४२१, ४४०
दुगुंछण	१	४६			२	१२	६०९
दुगुण	३	१९	६३७		३	२८, ५१, ६४	६३९, ७१०
दुगुणमहुरं	३	१९	६३७			६७	७४६
दुणया	१	१५	४१६	नत्थि	१	९	४०८
दुण्णिण्णो	३	४६	६५५		२	६	६०७
दुइ	१	४७			३	५, ५२	६३०, ७१०
दुइयाणियाणं	१	४७	४५२	नय	१	४	
पुरभिनाम्मा	३	६४	७४६	नयपहं	३	६१	
दुवियणो	३	३२, ३४	६४१, ६४२	नयवाओ	३	४६	६५५
				नयस्स	१	१०	

४ - सन्मतिमूलगाथागता। शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
नया	१	२८	४२९		३	११,१४,४८	
नाणं	३	६८		पञ्चजोया	१	३२	४३१,४४०
नामं	१	६	४०६	पञ्चवृद्धिभस्स	१	६	३७१
निक्खेवो	१	६	३७९,३८६ ३९७	पञ्चवृद्धिओ	१	९	४०८
					२	२	५९५
निच्छओ	१	४		°पञ्चवृद्धिया	३	१०	६३४
°निच्छय	१	२६		पञ्चवणओ	१	३	२७१,२८५, ३१०
	३	६७		°पञ्चवणय	१	८	४०८
निच्छयवयणपडिबत्ति-					३	१२	६३५
मग्गो	१	२६		पञ्चवणयदेसणा	३	१२	६३५
निच्छयपुद्दं	३	६७		पञ्चवणयमेत्तपडिपुण्णा	१	४२	४४९
नित्तिओ	१	३५	४४१	पञ्चवणयवोक्तं	१	८	४०८
निप्फणं	२	३३		पञ्चवणयस्स	१	५,१०,११	३१७,३४९
निमित्तं	१	१९				१७,४२,५२	४०९,४१७
नियत्तेह	३	५८	७२६				४४९,४५५
°नियम	१	९	४०८	पञ्चवणिस्सामणं	१	७	४०७
निययेण	१	११,२७	४०९,४२९	पञ्चवभयणा	१	७	४०७
	२	२४	६१८	पञ्चववत्तज्जमग्गो	१	२९	४२९
नियया	३	१०	६३४	पञ्चववत्तु	१	१०	४०९
निरत्तेक्खा	३	४९		पञ्चवविअप्पो	३	४८	६५६
निम्बयणो	१	८		पञ्चवविउयं	१	१२	४१०
निहणो	२	४९		पञ्चवविसेससंखाणं	३	१४	६३५
		प		पञ्चवसण्णा	३	११	६३५
°पओग	३	३१	६४१	पञ्चवस्स	३	५७	७२५
पओगज्जणिओ	३	३१	६४१	°पञ्चवा	१	१२,४८	४१०,४५३
°पकस	१	२३			२	३६	
	२	३६		पञ्चवादि	३	२	६२८
पकसम्मि	१	१८		पञ्चवादिओ	३	९	६३४
	३	४५		°पञ्चवे	१	३७	
°पकसनाओ	३	१६	६३६		३	२,९	६२७,६३४
°पकसा	२	१८	६१६	°पञ्चवेहिं	३	५	
°पकसे	१	१७		°पञ्जा	३	६०	७२७
	३	१,४६	६५५	°पञ्जाए	१	४१	
पञ्चओ	३	३३	६४१		३	५	६३०
पञ्चकखम्मार्हणं	२	२८	६१९	°पञ्जाओ	१	३४	
पञ्चकखा	२	२९	६२०		२	३६	६३३
पञ्चुप्पम्मिय	३	६	६१०	°पञ्जाय	३	१२	६३५
पञ्चुपणं	३	३	६२८	°पञ्जायस्स	१	३४	४४०
पञ्चुपहि	३	४	६३०	°पञ्जाया	१	४७	
°पञ्चन्तो	१	३२			२	३५,४३	६२२
पञ्चयम्मि	३	६	६३०				
°पञ्चया	१	३१					
°पञ्चव	१	७,१२,२९, ३१,४३	४०७,४२९				

## ४ - सन्मतिभूलायागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
	३	११	६३५	°पत्यार	१	३	२७१
°पञ्जबासण	१	२	१७३	°पक्षबाणा	१	४२	४४९
पञ्चगाणी	२	१५	६१०	°पयदी	१	४	३१५
पडह	१	३६		°पयुतो	२	३९	६२३
	३	६,५९	६३०,७२६	°पर	२	१८,३१,	११६,६२१,
पडिकुट्टा	३	५६	७२५		३	५,२२,३३,४७,	६३७,६४१,
°पडिकुट्टो	३	१६	६३६				६५५
°पडिजोअणं	२	३९	६२३	परणिसितं	३	२२	६३७
°पडिणीओ	३	६६		परतित्थियवतम्बं	२	३१	६२१
°पडिपुण्ण	१	४३		परपञ्चओ	३	३३	६४१
पडिपुण्णं	१	१४	४१६	परपञ्चवेहिं	३	५	६३०
पडिपुण्णजोअणगुणो	१	४३	४४९	°परमत्थ	१	२	
°पडिपुण्णा	१	४२	४४९	परमत्थो	१	६	३७९
°पडिबद्धा	१	२१,२४	४२१	परमाणु	३	२४	६३८
पडिरुवे	१	४	३१६	परम्मि	३	७	६३१
°पडिवत्ति	१	२६		परवत्तन्वयपक्खा-			
	३	४४		अविसिट्ठा	२	१८	६१६
°पडिबत्ती	३	३६,४६,६१	७४६,७२२	परबियालणे	१	२८	४२९
पडिवतीविगमे	३	३६	६४४	°परसमय	३	६७	
पडिसिद्धं	३	३०	६४०	परसमया	३	४७	६५५
°पडिरुहे	२	३९		°परिकम्मणा	१	५४	
पडुच्च	१	५०,५४	४५३,४५६,	परिकम्मणाणि-			
	२	२,३५,	५९६,६२३,	मितं	१	५४	४५६
	३	३,५०,	७२७	परिगमणं	३	१२	६३५
पडुच्चत्रयणं	३	३	६२८,६३९,	°परिगयं	३	२९	
°पणिद्धानं	१	४३	४४९	°परिच्छय	१	२६	
पणत्तं	२	१७		°परिच्छयार्णं	३	५९	७२६
°पण्णमओ	१	१६		°परिणयं	३	४,२२	६३०,६३७
	३	४५	६५१	°परिणाम	१	२७	
°पण्णवण	३	६०	७२७	°परिणामं	३	१	६२७
पण्णवणपज्जा	३	६०	७२७	परिणामकओ	१	२७	४२२,४२३
°पण्णवणा	१	२६,५३,	४५५	°परिणामो	३	१३,२१	
	३	६३	७३२	°परितं	२	१४	३१०
पण्णवणाणिच्छिओ	३	६३	७३२	परिपठिया	२	२०	६१७
पण्णवणाविसउ	१	२६		परिपुंजह	१	५३	४५५
पण्णवणिज्जा	१	४८	४५३	परिपुदं	२	११	
	३	१६	६१५	परिपुदो	३	४५,४८	६५५,६५६
पण्णवणे	१	१५		°परुवणा	१	४,६	३१५,३७९
पण्णवयंतो	३	३७	६४५	परो	३	५६,५८	७१९,७२६
पण्णवेज्ज	१	५४	४५६	पसारियत्सव	३	३६	६४४
पत्तेय	१	१६		°पसाहणं	१	४४	४५०
पत्तेयं	१	१३,१५	४१५,४१६	°पसाहा	१	५	
°पत्थणा	३	२०,४६		°पहे	३	१५९	

४ - सन्मतिपुलगाथागताः शब्दाः १-

शब्द	काण्ड	पाथा	व्या. पृ.
पहो	१	४१	
पाकिन्न	१	१४	
पाकिन्न	१	१३	४१५
	३	५१	७१०
पाकिन्नसम्पाद	१	१४	४२१
पादेन्न	३	६१	
पादेन्न	२	१	४५७
पादेन्नयपहृग्यं	३	६१	७३१
पाणियाणं	१	४७	
पास्च्छं	३	१	६३४
पावेजा	१	११	४४०
पावेति	१	१३	४२१
पासद्	१	१४	४४०
	२	४, ११, २०,	६०५, ६०६, ६२०
पासंतो	२	११	६०९
पि	१	११, ५४	४५६
	३	५, १४, १५	६०६, ६१०
	३	५, १५, २९	६३०, ६३६, ६४०
पिउ	३	१७०	
पिउपुत्तनुभन्वय-			
भाउणं	३	१७	६३६
भ्विय	३	१७	६३६
पिया	३	१७	६३६
पुढवी	३	५१	७१०
पुढवीविशिद्धो	३	५३	७१०
पुण	१	४, १३, २४,	३१६, ४२१
	२	३४, ५०	४४०
	२	१, १९	५९३
	३	५, ११, २५,	६३०, ६३५
		३९, ५३	६४४
पुणो	२	२६	६२३
पुत्त	३	१७	
पुरिल्लो	३	५८	७२६
पुरिस	१	१२, १३, ५४,	
	२	४२	६२४
	३	१७, ५३,	६३६, ७१०
			७१५
पुरिसं	१	३३, ३५	४४०, ४४१
पुरिसकालम्मि	१	३३	४४०
पुरिसज्जायं	१	५४	४५६
पुरिसभाव	३	१८	६३६
पुरिसभावपिरहसओ	३	१८	६३६

शब्द	काण्ड	पाथा	व्या. पृ.
पुरिसम्मि	१	३२	४३१
पुरिससरो	१	३२	४३१, ४४०
पुरिसस्स	२	३२	६२१
पुरिसाउयजीओ	२	४२	६२४
पुरिसो	१	३४	४४०
	३	७, १८, १९,	६३१, ६३६
			६३७
पुव्व	२	३९	६२३
	३	१६	६३५
पुव्वअरे	२	९	६०८
पुव्वं	३	५२	७१०
पुव्वकयं	३	५३	७१०, ७१४
पुव्वगडिक्खो	३	१६	६३६
पुव्वपयुत्तो	२	३९	६२३
पूरैति	३	५१	७१०
प्यहाणत्तणेण	३	५९	
प्यहाणा	३	६७	
फलं	१	५१	४५५
फासा	३	८	
वज्जइ	१	११	४१८
बंध	१	१९, ४६	४१८
बंधइ	१	५१	४५५
बंधट्टिरकारणं	१	१९	४१८
बन्धट्टिइ	१	१९	४१८
बन्धं	१	३०	४१९
बन्धमोक्खसुहदुक्ख-			
पत्यणा	१	४६	४५०, ४५१
बंधम्मि	१	३०	४१९
बहु	१	३२	
बहुय्यण	३	४०	६४९
बहुया	३	४१	६४९
बहुवियप्पा	१	३२	४३१, ४४०
बहुत्सुओ	३	६६	
बालभाब	१	४३	
बालभावन्नरिण	१	४३	४४९
बालाइ	१	३३, ३४	
बालाइभाब	१	४५	४५०
बालाइभाबदिट्ठविगयस्स	१	४५	४५०
बालाइवियणं	१	३३, ३४	४४०
बालाइया	१	३२	४३१, ४४०
बालो	१	४४	४५०

## ४ - सन्मतिसूत्रगाथागतः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
°बाहिरणो	१	५	४५३	°भविस्सेहि	३	१,४	
बिति	१	१६		°भन्वय	३	१७	
बीयस्व	१	५१	४५५	भाह	३	६८	
बिति	३	२८	६४६	°भाऊणं	३	१७	
		म		°भाग	१	२४	
°मन्	१	२०		°भान	१	४५	
मइयन्वा	३	१७	६३८	भावओ	२	३२	६२१
मइयन्वो	१	१०	४३०		३	२८	६३९,
	३	७	६३१	°भावगमणं	३	१३४	
°मओष	१	१०	४१९	भाबं	३	१,६०	६२८,७२७
भगनओ	३	६९		भाबमेतां	१	५१	४५५
भगनया	३	१०	६३४	मावा	१	११	४०९
°भंगा	१	१२			२	१६,१९	६१५,६२०
भणह	१	३३	४४०		३	४३	६५०
मणह	१	२४	४२१	भाबणं	३	६०	७२७
	२	६,१५,२६	६०७,६१०, ६१९	मावे	२	१०,३२	६२०,६२१
	३	१२,१३,२०, २२	६३५,६३७	भावो	१	५०	३७९,४०६, ४५३
मणंति	२	४	६०५	भासइ	२	१२	६०९
	३	५०	७०४	°भिष्ण	३	३५	
भणेज्ज	१	३५	४४१	भिष्णकाला	३	३५	६३५
भत्तीमेत्तएण	३	६३	७३२	°मीरुहि	२	७	
भहं	३	६९		°भूरहि	१	३५	
मयह	३	२७	६३८	°भूया	१	३१	
भयणा	१	७	४०१	मेयं	३	६०	७२७
	३	४,६,२७,५१	६३०,६३८, ७०९	°मेयओ	३	४२	
भयणागहं	३	६	६३०	°मेयम्मि	३	१६	
भयणाय	१	९	४०८	°मेया	१	५	
भयणिल्लं	२	३३	६२२			म	
भयणोवणीया	३	५१	७०९	°मइ	२	२७	
°भन्न	१	१	६९	मइणणं	२	६,२३	६०७,६१८
	३	५१	७१०	मइसुयणाणमिभित्तो	२	२७	६१९
भवजिणाणं	१	१	६९,१०२	°महं	३	२५	
°भबरथ	२	३५	६२२	°मगो	१	२६,२९	४२९
भवत्यकेवल्लिभित्तेस-				°मण	३	४२	६५०
पजाया	२	३५	६२२	°मणपज्जव	२	१९	६१७
भवत्यम्मि	१	४८	४५३	मणपज्जवणाणं	२	३,१९,२६	५९६,६१७ ६१९
भवदुक्खविमोक्खं	३	५१	७१०	मणपज्जवणाणंतो	२	३	५९६
मविओ	३	४४	६५१	°मणपज्जवाण	२	१६	६१५
°मविय	३	४३		मणी	१	२२,३४	४२१
मवियाभविद्यादओ	३	४३	६५०	°मणो	२	१९	६१७
				मणोविसयगयाण	२	१९	६१७

४ - सन्धिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
मण्यता	३	२६	६३८
मण्यसि	२	२३	६१८
०मरण	१	३२	
	३	६८	
मरणकालपञ्चन्तो	१	३२	४३१
०मलार	१	२	१७३
०महगघ	१	२२	
महगघमुला	१	२२	४२१
महलो	३	१९	६३७
महाणं	३	६५	७४६
०महुरं	३	१९	६३७
मा	३	६८	
०मिच्छ	१	१३	
मिच्छतं	१	२७	४२९
	३	५९, ५३	६५७, ७१०
मिच्छदिद्धी	१	१३	४१५
०मिच्छा	१	२१	
मिच्छादिद्धी	१	२१	४१९
०मिच्छहंसण	३	६९१	
मिच्छहंसणसमूहमहअस्स	३	६९	
मिच्छत्तस्स	३	५४, ५५	७१८
०मुक्खावावा	३	६७	
मुत्ता	३	२४	६३८
०मुला	१	२२	
०मुहं	३	२५	
०मूल	१	३, ५, १३	३१७
		१५, १६	
मूलगया	१	१३	४१५
मूलगयाण	१	१६	४१६
मूलगयाणं	१	१५	४१६
मूलणिमेणं	१	५	३१७
०मूलनागरणी	१	३	२७१, २७२
०मेत्तं	१	४२	
०मेत्तयो	३	२५	
०मोक्ख	१	२०, ४६	
	३	५५	
मोक्खसुहपत्थणा	१	२०	४१९
मोक्खो	१	२०	४१९
मोक्खोबाओ	३	५४, ५५	७१८
मोज्झं	१	२०	४१९
मोत्तण	२	२५	६१८
मोहा	१	२८	४२९
	२	४३	

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
य	१	१, ९, ११,	४०८, ४१०,
		१२, १४, १७,	४१६, ४१७,
		१८, १९, २०,	४१८, ४१९,
		२५, १९, ३०,	४२९, ४३०,
		३५, ३७, ३८,	४४६, ४४९,
		३९, ४०, ४१,	४५०, ४५५
		४२, ४३, ४४,	
		४५, ५०, ५१	
	२	३, ८, ११,	५९५, ६०९
		१४, २४, २५,	२१०, ६१८,
		२६, ३०, ३६,	६१९, ६२०,
		४२, ४३	६२५
	३	१, १०, १५,	६२७, ६३४,
		१७, २३, २४,	६३६, ६३८,
		२६, ३९, ३३,	६४३, ६५१,
		३५, ३९, ४२,	७१८, ७२५,
		४३, ४५, ५०,	
		५४, ५५, ५७	
याणंति	३	२५, २७	६३८
याणाइ	२	१०	६०८
		२	
०यणानलि	१	२२, २४	४२१
यणानलिव्वएसं	१	२२	४२१
०रस	३	८	
०रहिअं	३	६८	
०राग	२	४३	
०रागदोसमोहा	२	४३	६२५
रायसरिसो	२	४१	६२४
०रूआइ	१	४८	४५३
रूआइपज्जवा	१	४८	४५३
०रूव	१	४५	४५०
	३	८	
रूबरसगंघफासा	३	८	५३३
०रूवाइ	३	१८, २१, ४२	६३६, ६३७,
			६५०
रूवाइविसेसणं	३	१८	६३६
रूवाइविसेसणपरिणामो	३	२१	६३७
रूवाइ	३	१३	६३५
		३	
०लक्खण	१	२२, ४५	४२१, ४५०
०लक्खणं	१	१२	
	३	१३, ४४	६३८, ६५१

## ४ - सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
लक्षणावितेसब्धे-	२	३६	६२३	वयणवितेसार्थं	१	३६	
लक्षणा	३	८		वयणविही	१	७	४०७
लज्ज	१	४३, ४४	४४९, ४५०	वयणस्य	३	६९	
लह	१	३३	४४०	वयणिज्ज	१	२८, ५३	
	३	१८	६३६		३	५९, ६२	७३२
लहंति	१	२३, २५	४२१	वयणिज्जपहे	३	५९	७२६
लिंगबो	२	२५	६१८	वयणिज्जं	१	८	४०८
लीण	३	६४	७४६		३	५८	७२६
लोदय	१	२६		वयणिज्जवियम्पा	१	५३	४५५
	३	५९	७२६	वयमाणो	३	२, ५९	६२७, ६३८, ७२६
लोदयपरिच्छयसुद्धो	१	२६	४२२				
लोदयपरिच्छयाणं	३	५९	७२६	वरिस	२	४०	
				वरिसविभारं	२	४०	६२४
व	१	२०, २७, २८, ४२८, ४४०, ३३, ४७	४५२	वरिसो	२	४०	
	३	२२	६३७	ववएस	१	२२	
वञ्जण	१	३०, ३४, ४१	४४०	ववएसो	३	४९	४४६
वञ्जणओ	३	५	६३०	ववहारो	१	४	३१६
वञ्जणणिक्षओ	१	४३	४३०	वसा	१	३८, ३९, ४०	
वञ्जणपज्जाए	१	४१	४४८		३	२०, २१	६३७
वञ्जणपज्जायस्स	१	३४	४४०	वहा	३	४७	६५५
वञ्जणवियप्पो	१	३०	४३०	वा	१	२८, ३१, ३५	४३०, ४४१
वत्तन्व	१	२९	४२९		२	१३	६०९
वत्तन्वं	१	१०, २९	४२९		३	४, १९, ५६	६३०, ६३७, ७१९
	२	३१	६३१	वाइया	१	१७	
	३	२३, ४८, ५७	६५६, ७२५	वाएउं	३	६८	
वत्तन्वय	२	१८	११६	वाओ	३	४३	६५०
वत्तन्वा	१	२५		वागरणी	१	३	
वत्तन्वो	२	४२	६२४	वागरिया	३	११	६३५
वायुं	१	८	४०८	वारी	३	५९	७२६
वय	१	४४		वाय	१	१६, १८, २३	४२१
वयण	१	३, ५, ७, २६, ३१, ३६, ४१	२७१, ३१७	वायस्स	३	४४	
	३	१०, ४२, ४७	६३७, ६५०, ६५५	वाया	१	२५	
					३	४७	६५५
वयणं	१	७	४०७	वायी	१	१७	
	३	३		वायो	३	३२	
वयणत्यनिरुद्धओ	१	४	३१६	वावडा	१	१५	४१६
वयणपज्जया	१	३१	४३०	वावि	३	४२	
वयणपहो	१	४१	४४८	वि	१	१३, १५, १६	४१५, ४१६
वयणवहा	३	४७	६५५			२१, २३, २३	४१९
वयणविणित्तो	३	१	६३७			३१, ४४, ४९	४२१, ४५०
वयणवियप्पो	२	१२	६०९				४५३

४ - सन्मविमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
	३	१,२,२१,२४	४५७,५९६	विभयणा	३	४	६३०
		२७,२८,३९	६१७,६१८	०विभाग	३	३८	६४६
		३१,३९,४३	६१९,६२०	०विभागं	२	४०	
			६२१,६२३	निभागजायं	३	३८	६४६
			६२५	*विभागमेतं	३	३४	६४१
	३	६,१०,१५	६३०,६३४	विभागमिम	३	४०	६४९
		२६,२७,३८	६३६,६३८	विभागो	१	२९	४२९
		३०,३१,३३	६४०,६४१	०निमोक्त्वं	३	५१	७१०
		३४,३५,३६	६४२,६४९	विश्रंजणं	२	१८	६१६
		४०,४१,४६	६५५,६५६	*वियत्ति	१	१७	४१७
		४९,५०,५१	७०४,७१०	वियंति	१	११	४०९
		५६,६३,६८	७१९,७२२	*वियप्य	१	८,३८,३९,	
						४०	
०बिभ्रप्पा	२	२०		०वियप्यं	१	३३,३४	
०विभ्रप्पो	३	४८		वियप्पणं	१	१८	४१७
*विडता	१	१२		वियप्पवसा	१	३८,३९,४०	४४७
०विडयं	१	१२		०वियप्पा	१	३,३२,५३	२७२,४५५
विगच्छंतं	३	१७	६४५	*वियप्पो	१	३०,४१	
विगमस्स	३	३४	६४३	वियानंतो	२	१३	६०९
वियमा	३	२३,४१	६३८,६४९	०विराद्धो	३	४५	
०वियमे	३	३६		बिलंबेन्ति	३	६५	७४६
०वियम	३	३४		विबरीयं	२	२	५९६
०वियमं	२	३५	६२२	०विसउ	१	२६	
	३	३७	६४५	०विसओ	१	४	३१५
विगयमविस्सेहि	३	३,४	६२८,६३०		२	१५,१६	६१५
०वियमस्स	१	४५	४५०	बिंसजुता	१	२२	४२१
०बिच्छेदो	१	५	३१७	०विसम	३	२२	६३७
विजाणओ	३	५१	७३२	विसमपरिणयं	३	२२	६३७
विणह्वा	३	६२	७३२	०विसयं	३	३७	
विणा	१	२०	४१९	०विसयगयाण	२	१९	६१७
विणासेति	३	६२	७३२	*विसासणं	१	१	
०विणिउत्त	१	२५		०विसेट्ठो	२	४२	६२४
विणिनेसो	३	१	६२७		३	१८,५२	६३६,७१०
०वित्थर	१	२	१७३	०विसेत्त	१	३,२४,२५,	
विधम्मह	३	४६	६५५			४७	
०विष्कारण	३	२५			३	१०,१४,२१	
विभएयग्गो	३	७	६११	*विसेत्तओ	२	६	६०७
विभच्चमाण	१	१४	४१६		३	४२	६५०
विभच्चवार्यं	३	५७	७२५	विसेत्तं	१	५४	४५६
०विभत्त	३	६१	७३२		२	३४	६२२
विभत्ते	१	४४	४५०	०विसेत्तओ	३	२१	६३७
विभत्तो	३	१९	६४८	विसेत्तणं	२	२१	६१७
विभयद्	१	२८	४२९		३	१८	६३६
विभयणं	१	४७	४५२				



## ४ - सन्मतिमूलगायागवाः सम्नाः ।

शब्द	क्रमांक	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	क्रमांक	गाथा	व्या. पृ.
*विशेषणं	३	२०,२१		संस्त्राणं	३	१४,५०	७०४
विशेषणकले	३	१	६२७	संस्त्राणसत्यधम्मो	३	१४	६३५
विशेषणज्याया	१	४७	४५२	संस्त्रेजं	२	४३	६३५
*विशेषणपरिणामो	३	२१	६३७	°संगह	१	३,४	३१५
विशेषणगाओ	१	२५	४३१	संगहलो	१	१३	४१५
*विशेषा	३	६		संगहपरुक्कणाविसओ	१	४	३१५
°विशेषाईयं	१	३६		*संगहविशेष	१	३	२७१
विशेषिअं	२	३३	६१८	संघयणाईजा	२	३५	६३२
*विशेषियं	१	१६,३७		संजुअंतेसु	१	५३	४५५
	२	१	४५७,४५८, ५६५	*संजोगाहि	३	३८,४०	६४६,६४९
	३	२		°संजोगे	३	६	७२७
°विशेषिया	३	३१	६४०	*संजोय	३	४१	
°विशेषे	२	३७	६३३	संजोयभेयओ	३	४२	६५०
	३	१०,२०	६३४,६३७	संतम्मि	२	८	६०७
विशेषेइ	२	४०	६३४	°संतवाय	३	५०	७०४
	३	३७	६४५	संतवायदोषे	३	५०	७०४
विशेषेण	१	४६		°संतुट्ठा	३	६१	७३२
विशेषेणंति	३	५७	७२५	संपओगो	१	१८	४१७
°विशेषेतो	१	१,५०	४०८	°संपओ	३	४४	
	२	१	५६६	°संपरिवुवो	३	६६	
	३	१,१३,५७	६३७,७२९	°संपायणम्मि	३	६५	
विहम्मओ	३	५६	७१६	°संबंध	३	१८,२०,२१	६३६,६३७
°विहाड	१	२०	१७३	°संबंधओ	१	४५	४५०
°विही	१	७			३	१९	६३७
	३	३४	६४३	संबंधबसा	३	२०	६३७
बीसत्यं	१	२६		संबंधविच्छिट्ठो	३	१८	६३६
बीससा	३	३२		संबंधविशेषे	३	२०	६३७
जुतं	२	७		°संबंधि	३	२०,२१	
वेएइ	१	५१	४५५	संबंधिलणं	३	२०	६३७
	३	५४	७१८	संबंधिविशेषणं	३	२०,२१	६३७
वेएए	१	५२	४५५	°संबंधो	१	४५	४५०
वेरुलियाई	१	२३	४२१		३	१७	६३६
*बोअंतं	१	८	४०८	संभनइ	२	६,१२	६०७,६०९
बोअं	२	३६	६२३	संभनो	२	८	६०७
भव	१	२७	४२२	सम्मओ	३	६६	
	३	३३,५६	६४१,७१६	सम्मणार्णं	३	३३	६२२
		स		सम्मणार्णे	३	३३	६२२
स	१	३५,४२	४४१,४४१	°सम्मत्त	१	३१	
सइ	२	३३	६१८	सम्मत्तं	१	१४	४१६
	३	३३	६३८		३	५३	७१०,७१७
संखा	३	५०	७०४	सम्मत्तसंभाना	१	२१	४१६
°संस्त्राण	३	१४		सम्मत्तस	३	५५	७१८(पं. ३९)
		१०१ सं० प०		( पाठान्तर अभयदेव )			

४ - सन्मत्तिसूक्तगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
°सम्मर्हसण	१	२५		°सम्भावा	१	२१	४१९
°सम्मर्हसणं	१	२३		सम्भावाभुम्भावे	१	४०	४४७
	३	५१,६२	७०९,७३२	सम्भावे	१	३७,३८	४४६
°सम्मर्हसणणाचरित	३	४४		सम्भूयं	३	५९	७२६
सम्मर्हसणणाचरितपडि-				समए	१	३५	४४१
नत्तिंयणो	३	४४	६५१		३	६६	
सम्यर्हसणसर्हं	१	२३,२५	४३१	°समओ	१	२८	४२१
°सम्मिया	२	२८	६१९	समं	२	९	६०८
°संन्मिया	३	६९			३	१५	६३६
संन्मियासुद्धादिगम्मत्स	३	६९		समणोर्	३	३	६२८
°संसार	१	२०	४१८	°समल	२	१६	६१५
संसारमओषदन्सणं	१	२०	४१९		३	६२	७३२
संसारो	१	१७	४१७	°समत्तसुयणण	२	१६	६१५
°सुह	३	५०		समत्तसुयणणसण्णत्ति-	२	१६	६१५
सकोल्लया	३	५०	७०४	राओ			
°सुवा	१	२८	४२९	°समव	१	२,४२	४४९
	३	५०	७०४		३	२७	६३९
सुवे	१	२८	४२९	समयं	१	३६	
°सुद्धि	२	४०		°समयंतर	२	३१	६२१
सुद्धिनरिसो	२	४०	६२४	समयणवणणा	१	४२	४४९
सुद्धिणाए	२	८	६०७	°समयपरम्पद्य	१	२	१७३
°सुज्जा	१	४५	४५०	समयपरमत्यवित्तरविहा-	१	२	१६९,१७९
	३	९,११,३०	६४०	डजणपजुणासणसयणो			१७३,२७०
°सुग्गामो	१	२४,२५		समयमारिंही	१	३६	
°सुत्त	१	४१		°समयम्मि	१	५०	
सुत्तवियण्यो	१	४१	४४८		२	१३,२०	६०९,६१७
°सुत्थ	३	१४			३	४०,४१	६३०,६४९
सुत्थं	३	४९	६५६	°समया	३	४७	६५५
°सुह	३	३६	७३२	समयाविरोहेण	३	२७	६३९
°सुहं	१	२३,२५		समये	२	२५	६२२
सुहह	३	२८	६३९		३	१३	६३५
सुहहतो	३	१८	६३१	समा	३	६०	७२७
सुहहणा	३	२८	६४०	समार्णं	२	३	५१६
सुहहमाणस्स	२	३२	६२१	समाणाम्मि	२	९	६०८
सुहहणा	१	५	३४९,३७८	समासओ	१	३०	४३०
°सुहो	३	९			३	५३	७१०
°सुहो	१	३२		°समुदय	३	३२,३३,३४	६४३
	२	३२,४०	६१८,६२१	समुदयकओ	३	३३	६४१
°सपवव	१	२१		समुदयजणियम्मि	३	३४	६४३
°सपववखण्डिबदा	१	११	४१९	मुदयवायो	३	३९	६४१
सपडिबवओ	१	७	४०७	समुदयविभागमेसं	३	३४	६४३
°सन्भाष	१	४०	४४७	समुक्कओ	३	२५	६३८
				°समुह	१	२७	४२२
				°समुहमएभएए	३	६९	

## ४ - सन्मतिमूल्याभाषणाः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	श्लोका	व्या. पृ.	शब्द	काण्ड	श्लोका	व्या. पृ.
°समूहमि	१	१६		सागारगह्वणादि	२	१४	६१०
समूहसिद्धो	१	२७	४२२, ४२३	साभावितो	३	३३	६४१
समोवणीया	३	७	७२५	°सामण्य	२	१	४५७
सयं	३	७	६३१	सामण्यगह्वर्यं	२	१	४५७, ४५९, ५९५
°सयज्ञो	१	२	१७३	सामण्यं	३	५७	७२५
°सयल	३	६२	७३२	सामण्यमि	३	१	६२७
सयले	२	२८	६१९	°सामत्या	३	६१	७३२
सयलं	२	१७	६१६	साथारे	२	१०, ११	६०८
सयलसमतवयमिज्जिरोसं	३	६२	७३२	थारं	३	६३, ६७	
सया	१	११	४०९	साक्षणं	१	१	१, ८, २१, ४, ३ ६८, १०-२, (पं-३०)
सयावि	२	१०, १२	६०८, ६०९	साक्षणमत्तीमेक्षण	३	६२	७३२
सरिसोदि	३	५	६३०	°सासय	१	१७	
सलाहमाणा	३	६३	७३२	सासयवियतिवायी	१	१७	४१७
°सवियप्प	१	३५		°साहओ	३	४६	६५५
सवियप्यं	१	३५	४४१	°साह	१	५	
सवियप्पणिम्बियप्यं	१	३५	४४१	साहपसाहा	१	५	३४९, ३७८
सवियप्पो	१	४१	४४८	साहम्मठ	३	५६	७१९
°सविसम्भ	३	४९		साहेज	३	५६	७१९
सविसम्भप्पहाणत्तणीण	३	४९	७०४	सि	१	३	१७३
सविसो	२	४१	६३४	सिञ्जद	३	१४	६३५
°सम्भ	१	१६		°सिञ्जमाण	२	३५	६२२
	३	२७		सिञ्जमाणसमये	२	३५	६२२
सम्भं	१	११, २९	४०९, ४२९	सिद्धं	१	१	१ (पं-३०) ८, ४३
	२	१०	६०८		२	३०	६२०
सम्भणयसमूहमि	१	१६	४१६		३	३०	
°सम्भणु	२	१३	६०९	°सिद्धंत	३	४५, ६३, ६६	७३२
सम्भणु	२	१०	६०८	सिद्धंतजाणओ	३	६३	७३२
सम्भरग्वाइं	३	२७	६३८	सिद्धंतपङ्गिणीओ	३	६६	
सम्भनया	१	२८	४२९	सिद्धंतविराहओ	३	४५	६५१
सम्भे	१	१५, २१, २३	४१९, ४२१	सिद्धत्तणेण	२	३६	६२३
	३	२५		सिद्धत्याणं	१	१	६८
	३	५०	७०४	°सिद्धी	१	४९	
सम्भेण	१	२९	४२९	°सिद्धो	१	२७	४२२
°ससमय	१	५३	४५५	°सीस	३	२५, ६६	
	३	४५, ६७	६५१	सीसगणसंपरिवुडो	३	६६	
ससमयमि	३	२५	६३८	सीसमईविष्कारणमेतत्थो	३	२५	६३८
ससमयओ	२	३१	६३१	°सुत्त	२	७	
ससमयपणवणा	१	५३	४५५	सुत्तं	२	४	६०५
ससमयपरसमयमुक्कणावारा	३	६७			३	६१, ६४	७३१, ७४६
°सहाव	३	५३	७१०, ७११	सुत्तमेतेण	३	६४	७४६
सा	१	५३	४५५	सुत्तमि	२	७	६०७
साहयं	२	३७	६२३				
साई	२	७, ३१, ३४	६०७, ६२१, ६२२				
°सागार	२	१४					

४ - सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
°सुतहर	३	६१	७३२
सुतहरखरसंतुष्टा	३	६१	७३२
सुतासायनमीरुद्वि	२	७	६०७
सुतासायना	२	७०	
सुते	२	३४, ३६	६२२, ६२३
°सुतेन	३	६५	७६
सुतेषु	२	१८	६१६
	३	११	६३५
°सुतं	३	६७	
सुदम्भि	१	४८	४५३
सुदजाश्रयो	१	९	४०८
सुदा	१	४	३१५
सुदोमणतमभस्व	३	४८	६५६
°सुय	२	१६, २७	२१५
°सुयणाण	२	२८	६१९
सुयणाणसम्भिया	२	२८	६१९
सुयणाणे	२	२८	६१९
°सुविणिच्छिया	१	२३	४२१
सुविणिच्छियामो	२	२२	६१८
सुवियत्तं	२	११	६०९
°सुह	१	१८, २०, ४६	४१७
	३	६९	
°सुहं	१	१	
सुहदुस्ववियप्पणं	१	१८	४१७
सुहदुस्ववसम्भयोगो	१	१८	४१७
°सुहम	१	५	
सुहयमेया	१	५	३४९, ३७८
सुहो	१	२६	
सुहोबहाणत्वं	१	४३	४४९
से	१	३४	४४०
सेसयाणं	३	१७	६३६
सेसा	१	३	२७३
(संप्रह-नेगमो)			३१०
(न्यबहारः)			३१०, ३११
(ऋजुपुत्रं)			३११, ३१२
(शब्दनयाः)			३१२
(समभिरुदं)			३१३
(एवंभूतं)			३१४
सेसिदियदंसणम्मि	२	२४	६१८
सो	१	३०, ३३, ५३	४३०, ४६०
		५४	४५५, ४५६
	३	१८, ३४, ३६	६१६, ६४३
		४५, ४६	६४४, ६५१
			६५५
°स्तेवे	२	५	६०६

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
		ह	
हंति	१	१२, १५	४१०, ४१६
	२	९	६०८
	३	६५	७४६
हंती	२	१२	
	३	२८	
हरा	१	३१	४३०
	२	२१, ३१, ३२	६१७, ६२१
हन्ति	१	२१	४१९
°हियओ	१	२	
हु	१	१५	४१६
	३	२७, ६३	७३२
°हेव	२	३९	६२३
	३	४४	
हेउओ	३	४५	६५१
हेउपखिजोभणं	२	३९	६२३
हेउशओ	३	४६	६५०
°हेउबाय	३	४५	६५१
हेउबायस्स	३	४५	६५१
हेउविसओनणीयं	३	४८	७२६
°हेउविसय	३	४८	७२६
होइ	१	२, ३८, ३९	१७३, ४४७
		४१, ४६, ४६	४४८, ४५०
		४९, ५०	४५३
	२	३, ७, १३	५२६, ६०७
		२३, २४, २५	६०९, ६१८
		२६, ३७, २८	६१९, ६२२
		३३, ३५, ३७	६२३
	३	७, १७, १९	६३१, ६३६
		२२, २७, २८	६३७, ६३९
		३०, ३१, ३९	६४०, ६४८
		४०, ४६, ६३	६४९, ६५५
			७३२
होऊण	२	२	५९६
होऊ	२	९	६०८
	३	९, ३४	६३४, ६३८
होजाहि	३	१९, ३१	६३७, ६४१
होति	१	५३	४५५
	२	२९, ३५	६२०, ६२२
	३	३१, ४१, ४७	६४०, ६४९
		५१, ५३	६५५, ७०९
			७१०
होदिर	३	२९	६३७

## सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

अ

अगृहीतविशेषणा च विशेष्ये बुद्धिर्नोपजायते ।  
[ ] पृ. ४७९ (४)\*

अगृहीताण च भावात् प्रमेयाभावनिर्ययः ।  
तद्गृहोऽप्यन्यतो भावादनवस्था दुरुत्तरा ॥  
[ ] पृ. ५८७

अगोतो विनिवृत्तश्च गौर्विलक्षण इष्यते ।  
भाच एव ततो नायं गौरगौर्मे प्रसज्यते ॥  
[ तत्त्वसं० का० १०८५ ] पृ. २१५ (७,८)

अगोनिवृत्तिः सामान्यं नाच्यं येः परिकल्पितम् ।  
गोलं बस्त्वेन तैरुक्तमगोपोद्दगिरा स्फुटम् ॥  
[ श्लो० वा० अपो० श्लो० १ ] पृ. १८७ (११,१२)

अमिलभावनः शाकस्य मूर्द्धा यणभिररेव सः ।  
अयानमिखभावोऽसौ धूमस्तत्र कथं भवेत् ॥  
[ ] पृ. ५०

अभिहोत्रं जुहुयात् । [ ] पृ. १९

अमेरुर्ध्वज्वलनम्, बायोस्तिर्यक्यवनम्,  
अणुमनसोश्चायं कर्मादृष्टकारितम् ।  
[ वैशेषिकद० अ० ५-२-१३ ] पृ. १०५

अचेतनः कथं भावस्तदिच्छामनुवर्तते ।  
[ ] पृ. ९९, १२१

अज्ञातस्यापि चाक्षय प्रमाहेतोः प्रमाणता ।  
प्रमाभावनस्त्वसामर्प्याभ्राज्ञातोऽभाववेदकः ॥  
[ ] पृ. ५८७

अज्ञेयं कल्पितं कृत्वा तद्व्यवच्छेदेन ज्ञेयेऽनुमानम् ।  
[ हेतु० ] पृ. १९९ (७), २२० (२०, २१)

अद्वारस्य पुरिसंयुक्तं वीषं इत्थीषु ।  
[ ओषधि० गा० ४८३ ] पृ. ७५२ (३)

अणंते केवलणगे अणंते केवलदंसणे ।  
[ ] पृ. ६१० (१)

‘अत इदम्’ इति यतस्तद् दिशो लिङ्गम् ।  
[ वैशेषिकद० २-२-१० ] पृ. ६६९ (३)

अतद्रूपपरावृत्तबस्तुमात्रप्रसाधनात् ।  
सामान्यविषयं प्रोक्तं लिङ्गं भेदाप्रतिष्ठिते ॥  
[ ] पृ. २११ (९, ७, ८)

अतीतानागताकारकालसंस्पर्शवर्जितम् ।  
वर्तमानतया सर्ववृत्तसूत्रेण सूत्रते ॥  
[ ] पृ. ३१२

\* परिशिष्टेऽस्मिन् कोष्ठकान्तर्गता अद्वास्तत्तद्वृष्टगतटिप्पण्यद्भूतकाः ॥

अतीतानागतौ कालौ वेदकारविभर्जितौ ।  
कालत्वात् तद्यथा कालो वर्तमानः समीक्ष्यते ॥  
[ ] पृ. ३१

अतीन्द्रियानसंवेधान् पश्यन्त्याख्येण चक्षुषा ।  
ये भावान् बचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ॥  
[ ] पृ. ७५३

अत्यन्तासम्भविनो न विरोधगतिः । [ ] पृ. ५५८

अत्र द्वौ बस्तुसाधनौ [ न्यायबिन्दु० परि० २ सू० १९ ]  
पृ. ३५२ (२)

अथान्यथा विशेष्येऽपि स्याद् विशेषणकल्पना ।  
तथापति हि यत् किञ्चित् प्रसज्येत विशेषणम् ॥  
[ श्लो० वा० अपो० श्लो० ९० ] पृ. १९३.

अथान्यदप्रयत्नेन सम्यगन्वेषणे कृते ।  
मूलाभावात् विज्ञानं भवेद् बाधकबाधनम् ॥  
[ तत्त्वसं० का० २८६९ ] पृ. १९

अथासत्यपि साहच्ये स्यादपोहस्य कल्पना ।  
गवाशयोरयं कस्माद्गोपोहो न कल्प्यते ॥  
[ श्लो० वा० अपो० श्लो० ७६ ] पृ. १९० (८)

अथास्त्वतिशयः कश्चिद् येन मेदेन वर्तते ।  
स एव दधि सोऽन्यत्र नास्तीत्यनुभयं परम् ॥  
[ ] पृ. २४२ (३४)

अदृष्टं स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे कर्म आरभते, एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वात्, यो य एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणः स स स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे कर्म आरभते, यथा वेगः तथा चादृष्टम्, तस्मात् तदपि स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे कर्म आरभते इति । न चासिद्धं क्रियाहेतुगुणत्वम्, ‘अमेरुर्ध्वज्वलनम्, बायोस्तिर्यक्यवनम्, अणुमनसोश्चायं कर्म देवदत्तविशेषगुणकारितम्, कार्यत्वे सति देवदत्तस्योपकारकत्वात्, पाण्यादिपरिस्फन्दवत्, एकद्रव्यत्वं चैकस्यात्मनस्तदाश्रयत्वात्, एकद्रव्यमदृष्टम्, विशेषगुणत्वात्, शब्दवत् ।

‘एकद्रव्यत्वात्’ इत्युच्यमाने रूपादिभिर्ब्यभिचारस्तन्निवृत्त्यर्थम् ‘क्रियाहेतुगुणत्वात्’ इत्युक्तम् । ‘क्रियाहेतुगुणत्वात्’ इत्युच्यमाने मुगलहस्तसंयोगेन स्वाश्रयाऽसंयुक्तस्तम्भादिबलनहेतुना व्यभिचारः, तन्निवृत्त्यर्थम् ‘एकद्रव्यत्वे सति’ इति विशेषणम् । ‘एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुत्वात्’ इत्युच्यमाने स्वाश्रयासंयुक्तलोहादिक्रियाहेतुनाऽयस्त्वान्तेन व्यभिचारः । तन्निवृत्त्यर्थम् ‘गुणत्वात्’ इत्यभिधानम् । [ ] पृ. १४२ (२)

५ - सन्मतिटीकागतान्यनवरणानि ।

अदृष्टमेवायस्कान्तेनाहृष्यमाणकोहृदयाने  
सुखवपुसो निःशाल्यत्वेन तत्कियाहेतुः ।  
[ ] पृ. १४४  
अदृष्टेऽर्थविकल्पनमात्रम् । [ ] पृ. ३०० (१५)  
अधिकारोऽनुपपत्त्यात् न वदते शून्यवादिनः ।  
[ श्लो० वा० निरात्मन्व० श्लो० ११९ ]  
पृ. ३७७ (४)  
अनधिगताऽर्थपरिच्छिन्निः प्रमाणम् । [ ] पृ. ५५४  
अनर्थः खल्वपि कल्पनासमारोपितो न किञ्चन,  
तथा पक्ष एवायं पक्षसपक्षयोरन्यतरः । [ ] पृ. ७२१  
अनकारार्थनलं पदयत्नपि न तिष्ठेत् नापि प्रतिष्ठेत् ।  
[ ] पृ. २०५  
अनष्टाज्जायते कार्यं हेतुश्चान्येपि तरक्षणम् ।  
क्षतिकत्वात् स्वभावेन तेन नास्ति सहायित्वः ॥  
[ ] पृ. ३३२ (१९,२०)  
अनादित्वात् मायायाः जीवविभाषण्य च बीजादुरसम्तान-  
योरेव नेतरैतराश्रयदोषप्रसक्तिरत्र । तथा चाहुः—“अनादिर-  
प्रयोजनाऽविद्या अनादित्वादितरेतराश्रयदोषपरिहाराः, निष्प्रयो-  
जनत्वेन भेदप्रपञ्चसंसर्गप्रयोजनपर्यनुयोजनावकासाः ।  
[ ] पृ. २७८ (२,३,४)  
अनादिनिषेधं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।  
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रकिया जगतो यतः ॥  
[ वाक्यप० श्लो० १ प्रथमका० ] पृ. ३७९ (१२)  
अनिर्दिष्टकलं सर्वं न प्रेक्षापूर्वकारिभिः ।  
शास्त्रमाश्रियते तेन वाच्यमग्रे प्रयोजनम् ॥  
[ ] पृ. १६९ (१)  
अनुत्पन्नाश्च महामते सर्वधर्मः(र्माः)अक्षरसत्तोरनुपपत्त्यात् ।  
[ ] ३०३ (२,३)  
अनुपपत्तिश्चरसता । [ ] पृ. २८८  
अनुपपत्तिश्चिः स्वभावः कार्यं च । [ च. ग्या. सू. ११-१२. ] पृ. ३.  
अनुमानतुरत्यभरारथो नानुमानस्य । [ २-१-३८ वात्स्या० भा० ]  
पृ. ५६३ (५)  
अनुमानं विवक्षायाः शब्दादन्यत्र विद्यते । [ ]  
पृ. १८५ (२,३)  
अनुमानमप्रमाणम् । [ ] पृ. ७०  
अनेकगुणजात्याविविकारा र्थानुरजिता ।  
[ श्लो० वा० वाक्याधि० श्लो० ३३१ ]  
पृ. ७४२  
अनेकपरमाणुपादानमनेकं चेद् विज्ञानं सन्तानान्तरवदेकपरा-  
मर्शाभावः । [ ] पृ. १४९  
अनेकान्ताभावनतो विविष्टप्रदेशे क्षयसरीरादिलामो निःश्रेय-  
धम् । [ ] पृ. १५५

अनेकान्तात्मकत्वाभावेऽपि केवलानि सत्त्वात् यत् सत् तत्  
सर्वमनेकान्तात्मकमिति प्रतिपादकस्य शासनस्याव्यापकत्वात्  
कुसमयविवाहितं तस्यासिद्धम् । [ ] पृ. १२५  
अन्तरङ्ग-बहिरङ्गयोरन्तरङ्गस्यैव बलीयस्त्वात् ।  
[ ] पृ. ४७९ (५)  
अन्यतरकर्मजः उभयकर्मजः संभोगश्च संयोगः ।  
[ विशेषिकद० ७-२-९ ] ७०४ (३)  
अन्यत्र दृष्टो धर्मः कन्विदमिति विधीयते निश्चिद्यते च ।  
[ ] पृ. १०९  
अन्यत्र हिंसा अपायहेतुः । [ ] पृ. ७३१  
अन्यथाऽनुपपत्तत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ।  
नान्यथाऽनुपपत्तत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ? ॥  
[ ] पृ. ६९, ५६९ (७)  
अन्यथैकेन शब्देन व्यास एकत्र वस्तुनि ।  
बुद्ध्या वा नान्यविषय इति पर्यायता भवेत् ॥  
[ ] पृ. २२० (७,८,९)  
अन्यथेषामिष्टम्बन्धाद् दाहं दग्धोऽभिमान्यते ।  
अन्यथा दाहशब्देन दाहार्थः सम्प्रतीयते ॥  
[ वाक्य० प० द्वि० का० श्लो० ४२५ ]  
पृ. १७७ (४), २६० (१०)  
अन्यदेव हि सामान्यमभिज्ञानकारणम् ।  
विशेषोऽप्यन्य एवेति मन्यते निगमो जयः ॥  
[ ] पृ. २११ (३)  
अन्यदेवेन्द्रियमात्रं अन्यच्छब्दस्य गोचरः ।  
शब्दात् प्रत्येति भिन्नासो न तु प्रत्यक्षमीक्षते ॥  
[ ] पृ. २६० (८,९)  
अन्यान्यत्वेन ये भावा हेतुना कारणेन वा ।  
विशिष्टा भिन्नजातीयैरघञ्जीर्णा विनिश्चिताः ॥  
[ तत्त्वसं० का० १०६१ ] पृ. २१२ (२१)  
अन्ये लाहुः—क्षेत्रज्ञानां नियतार्थविषयग्रहणं सर्वविद-  
धिष्ठितानाम् । यथाप्रतिनियतशब्दादिविषयग्राहकाणामिन्द्रिया-  
णामनियतविषयसर्वविदधिष्ठितानां जीवच्छरीरे । तथा च  
इन्द्रियवृत्त्युच्छेदलक्षणं केचिद् मरणमाहुषेतनानधिष्ठितानाम् ।  
अस्ति च क्षेत्रज्ञानां प्रतिनियतविषयग्रहणम् तेनाप्यनियतविषय-  
सर्वविदधिष्ठितेन भाव्यम् । योऽसौ क्षेत्रज्ञाधिष्ठायकोऽनियत-  
विषयः स सर्वविशीश्वरः । नन्वेवं तस्यैव सकलक्षेत्रेष्वधिष्ठाय-  
कत्वात् किमन्तर्गदुस्थानीयैः क्षेत्रज्ञैः कृत्यम् ? न किञ्चित् प्रमा-  
णसिद्धतां मुक्त्वा । नन्वेवमनिष्ठा—यथेन्द्रियाधिष्ठायकः क्षेत्र-  
ज्ञस्तदधिष्ठायकश्चेश्वरः एवमन्योऽपि तदधिष्ठायकोऽस्तु, भवत्व-  
निष्ठा यदि तत्साधकं प्रमाणं किञ्चिदस्ति; न त्वनिष्ठासाधकं  
किञ्चित् प्रमाणमुत्पश्यामः तावत् एवानुमानसिद्धत्वात् । भाग-  
मोऽप्यस्मिन् वस्तुनि विद्यते—तथा च भगवान् व्यासः—  
द्रविमौ पुहणौ लोके क्षरणाक्षर एव च ।  
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥  
[ भग० जी० अ० १५ श्लो० १६ ]

## ५ - सन्मतिटीकागतान्तरणानि ।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्तः परमात्म्येयदाहृतः ।

यो लोकत्रयमाविश्य निमर्त्यन्वय ईश्वरः ॥

[मग० गी० अ० १५ श्लो० १७]

तथा श्रुतिश्च तत्प्रतिपादिका उपलभ्यते—

विश्वतश्चरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुस्त विश्वतस्यात् ।

सं बाहुभ्यां भ्रमति सं पतत्रैर्यावाभूमी जनयन् देव एक आस्ते ॥

[श्रिताश्वत० उ० अ० ३, ३]

न च स्वरूपप्रतिपादकानामप्रामाण्यम्, प्रमाणजनकत्वस्य सङ्कावात् । तथाहि—प्रमाजनकत्वेन प्रमाणस्य प्रामाण्यं न प्रवृत्तिजनकत्वेन तेषोहास्त्येष । प्रवृत्ति-निवृत्ती तु पुरुषस्य सुख-दुःखसाधनत्वाप्यवसाये समर्थस्यार्थित्वाद् भवत इति । अथ विधानज्ञानादमीनां प्रामाण्यं न स्वरूपार्थत्वादिति चेत्, तदसत्; स्वार्थप्रतिपादकत्वेन विष्यज्ञत्वात् । तथाहि—स्तुतेः स्वार्थप्रतिपादकत्वेन प्रवर्तकत्वम्, निन्दायास्तु निवर्तकत्वमिति । अन्यथा हि तदर्थपरिज्ञाने भिदित-प्रतिषिद्धेष्व-विशेषेण प्रवृत्तिनिवृत्तिर्भा स्यात् । तथा विधिवत्कृत्यापि स्वार्थ-प्रतिपादनद्वारेणैव पुरुषप्रेरकत्वं दृश्यम्, एवं स्वरूपपरेष्वपि वाक्येषु स्यात्, वाक्यस्वरूपताया अविशेषात् विशेषहेतुभा-भावादिति । तथा स्वहार्थानामप्रामाण्ये “मेच्या आपः, दर्शाः पवित्रम्, अमेच्यमशुचि” इत्येवंस्वरूपापरिज्ञाने विष्य-ज्ञतायामप्यविशेषेण प्रवृत्ति-निवृत्तिप्रसङ्गः, न चैतदस्ति; मेच्ये-त्वेन प्रवर्तते अमेच्येषु च निवर्तते इत्युपलम्बनात् । तदेवं स्वरू-पाथेभ्यो वाक्येभ्योऽर्थस्वरूपात्रयोपे सति इष्टे प्रवृत्तिदर्शनात् अनिष्टे च निवृत्तेरिति ज्ञायते—स्वरूपार्थानां प्रमाजनकत्वेन प्रवृत्ती निवृत्ती वा विधिसद्व्यवहारमिति, अपरिज्ञानात् प्रवृत्ता-वृत्तिप्रसङ्गः । अथ स्वरूपाथानां प्रामाण्ये “प्राबाणः प्लवन्ते” इत्येवमादीनामपि यथार्थता स्यात्, न; मुख्ये बाधकोपपत्तेः । यत्र हि मुख्ये बाधकं प्रमाणमस्ति तत्रोपचारकल्पना, तदभावे तु प्रामाण्यमेव । न चेश्वरसङ्कावप्रतिपादनेषु क्विचिदस्ति बाधक-मिति स्वरूपे प्रामाण्यमभ्युपगन्तव्यमित्यागमादपि सिद्धप्रामा-ण्यत् तदवगमः । ईश्वरस्य च सत्तामात्रेण स्वविषयप्रहणप्रवृ-त्तानां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठायकता यथा स्फटिकादीनामुपभानाकार-प्रहणप्रवृत्तानां सवित्प्रकाशः । यथा तेषां सावित्रं प्रकाशं विना नोपभानाकारप्रहणसामर्थ्यं तथेश्वरं विना क्षेत्रविदां न स्वविषयप्रहणसामर्थ्यमित्यस्ति भगवानीश्वरः सर्ववित् ।

[ श्रिताश्वत० उ० अ० १५ (१, २) ]

अन्वयेन विना तस्मात्प्रतिरेकः क्वं भवेत् ।

[ श्रिताश्वत० उ० अ० ५७५ ]

अन्वयो न च शब्दस्य प्रमेयेण निरूप्यते ।

व्यापारेण हि सर्वेषामन्वेष्टृत्वं प्रतीयते ॥

[ श्रिताश्वत० उ० अ० ५७५ (३) ]

अपक्षधर्मस्यापि हेतुर्गेमकले चाधुपलमपि शब्दे निखलस्य गमकं स्यात् । [ श्रिताश्वत० उ० अ० ५९३ (९) ]

अपरस्मिन् परं युगपद् अयुगपत् चिरं क्षिप्रमिति कालक्षिप्रानि ।

[ विश्वेश्वर० उ० अ० ३-३-६ ]

अप णिपादो जवनो प्रदीता परश्वल्यबभुः स शृणोत्यङ्गणः ।

स वेति विश्वं नहि तस्य वेत्ता तमादुरम्यं पुरुषं महान्तम् ॥

[श्रिताश्वत० उ० अ० १९] पृ. ५६

अपि वैकल्य-नित्यत्व-प्रत्येकसमयायिज्ञाः(ताः) ।

स्वास्थ्येनपोहेषु कुर्वतोऽपूत्रकः पटः ॥

[ श्रिताश्वत० उ० अ० १९३ ] पृ. ३०१ (१०, ११)

तपोद्वारदस्यायं वाक्यादर्शो विवेचितः ।

वाक्यार्थः प्रतिभाक्योऽयं तेनादापुपजन्त्यते ॥

[ श्रिताश्वत० उ० अ० १९८ (६) ]

अणोदः शब्दार्थ इत्युक्तम् अन्वयापकत्वात् । यत्र दैवार्थं भ-वति तत्रैतत्प्रतिषेधादितरः प्रतीयते, यथा—‘गौः’ इति पदाद् गौः प्रतीयमानः अगौर्निबिध्यमानः; न पुनः सर्वेषु एतदस्ति, न हासर्षं नाम क्विचिदस्ति यत् सर्वेशब्देन निवर्तते । अथ मन्यसे एकादि असर्षं तत् सर्वेशब्देन निवर्तते इति, तत्र; स्वार्थप्रतिपादकोप-पत्त्वात् । एवं होकादिन्युदासेन प्रवर्तमानः सर्वेशब्दोऽज्ञप्रतिषे-धादन्वयतिरिक्तस्याज्ञिनोऽनभ्युपगमादनर्थकः स्यात् । अज्ञ-ब्देन होकदेश उच्यते; एवं सति सर्वं समुदायशब्दा एकदेशप्रति-षेधरूपेण प्रवर्तमानाः समुदायित्यतिरिक्तस्यान्यस्य समुदायस्या-नभ्युपगमादनर्थकाः प्राप्नुवन्ति । आयादिशब्दानां तु समुच्चय-विषयत्वादेकादिप्रतिषेधे प्रतिषिध्यमानार्थानामसमुच्चयत्वादनर्थ-कत्वं स्यात् । [ अ० २ भा० २ सू० ६७ न्यायशा० पृ० ३२९ ]

[ अ० १२-२३ ] पृ. २०० (१, २, ३, ४, ५)

अपोहमेवाद् भिजाभां स्वार्थमेदगतौ जडा ।

एकलाभिकार्यत्वाद् विशेषणविशेष्यता ॥

[ श्रिताश्वत० उ० अ० ११६ (१, १०, ११) ]

अपोहोः स बहिःसंस्थितैर्भवेत् ।

[ श्रिताश्वत० उ० अ० ११४ ]

अप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिध्यति ।

[ श्रिताश्वत० उ० अ० ८१ ]

अप्रामाण्यकारित्वे नक्षुभो दूरव्यवस्थितस्यापि प्रहणप्रसङ्गः ।

[ श्रिताश्वत० उ० अ० १४३ (३) ]

अप्यु गन्धो रसश्चाग्नौ वायो रूपेण तौ सह ।

व्येक्षन्ति सत्सर्वाता ते च न चेदस्य प्रमाणता ॥

[ श्रिताश्वत० उ० अ० ५८१ (३, ४, ५) ]

अभावगम्यरूपे च न विशेष्येऽस्ति नस्तुता ।

विशेषितमपोहेन नस्तु वाच्यं न तेऽस्त्यतः ॥

[ श्रिताश्वत० उ० अ० ९१ ] पृ. १९३

अभावोऽपि प्रमाणाभावः ‘नास्ति’ इत्यर्थस्यासङ्गदृष्टस्य ।

[ १-१-५ शाबरभा० ] पृ. ५८०

अभिघाताग्नि संयोगनाशप्रत्ययसङ्घिषिम् ।

विना संसर्गितां याति न विनाशो घटादिभिः ॥

[ श्रिताश्वत० उ० अ० ३२० (२२, २३, २४) ]

अभिधानप्रसिद्धार्थपर्यायत्वात्कोषितात् ।

शब्दे वाचकसामर्थ्यात् तन्नित्यत्वप्रमेयता ॥

[ श्रिताश्वत० उ० अ० ५ ] पृ. ५७५

५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

अभ्यासात् पकविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः ।  
 केवलं काम्ये निषिद्धे च प्रवृत्तिप्रतिषेधतः ॥  
 [ ] पृ. १५१ (१)  
 अभ्यासात् प्रतिभाहेतुः शब्दः न तु बाह्यार्थप्रत्यायकः ॥  
 [ ] पृ. १८२ (४)  
 अर्थ चागोहः प्रतिषस्त्वेकः, अनेको वेति शक्यम् । यदे-  
 कत्वादनेकोद्वयसम्बन्धी गोलमेवासौ भवेत् । अयनेक-  
 स्ततः पिण्डबदानन्त्यादास्यानानुपपत्तेरवाच्य एव स्यात् ।  
 [ न्यायवा० पृ० ३३० पं० १५-१७ ] पृ. २०१ (५)  
 जयमेव मेदो मेदहेतुर्वा, यदुत विद्वद्धर्मोप्यासः क्षुरण-  
 मेदश्च, स चेन्न मेदको विश्वमेकं स्यात् ॥ [ ] पृ. ३  
 अयमेव हि मेदो मेदे हेतुर्वा विद्वद्धर्मोप्यासः कारणमेदश्च ।  
 [ ] पृ. ३२७.  
 जयमेवेति यो शेष भावे भवति निर्णयः ।  
 नैव बस्त्वन्तराभावसंविद्ययुगमादत्ते ॥ [ श्लो० वा० अभाव०  
 श्लो० १५ ] पृ. ३४९ (२५) ५५८  
 अर्थक्रियाधिपतिलक्षणफलविशेषहेतुर्हानं प्रमाणम् ।  
 [ ] पृ. १५  
 अर्थजात्यभिधानेऽपि सर्वे जातिविधायिनः ।  
 व्यापारलक्षणा यस्मात् पदार्थाः समवस्थिताः ॥  
 [ वाक्यप० तु० का० श्लो० ११ ] पृ. १२२ (७,८)  
 अर्थवत् प्रमाणम् । [ वाक्य० भा० अ० १ आ० १ सू० १ ]  
 पृ. १०९, १२६, १६१, ५४१, ५४२, ५५०  
 अर्थविवक्षा शब्दोऽनुमापयति ।  
 [ ] पृ. १८५ (१)  
 अय शब्दोऽर्थवत्त्वेन पक्षः कस्मात् कल्प्यते ॥  
 [ श्लो० वा० शब्दप० ६२ ] पृ. ५७५  
 अर्थस्यासन्निकृष्टस्य प्रसिद्धार्थं प्रमान्तरम् ।  
 प्रमाभावमभावार्थं वर्णयन्ति तथाऽपरे ॥  
 [ ] पृ. ५७९ (५)  
 अर्थस्यासम्भवेऽभावात् प्रत्यक्षेऽपि प्रमाणता ।  
 प्रतिबद्धत्वभावस्य तदेतत्त्वे समं द्रव्यम् ॥  
 [ ] पृ. १७ (२), ७३, ५५५ (१,२)  
 अर्थः सहकारी यस्य विशिष्टप्रमितौ प्रमातृप्रमेयाभ्यामर्थान्तरं  
 तदर्थवत् प्रमाणम् । [ ] पृ. ५४१  
 अर्थानर्थविनेचनस्यानुमानायतत्वात् [ ] पृ. ४६९.  
 अर्थान्तरनिवृत्त्या कश्चिदेव ननुनो भागो गम्यते ।  
 [ ] पृ. २१३  
 अर्थान्तरनिवृत्त्या निश्चिष्टानिति यत्नः ।  
 प्रोक्तं लक्षणकारेण तत्रार्थोऽयं विवक्षितः ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०६८ ] पृ. २१२ (२२)  
 अर्थोपतिरपि दृष्टः श्रुतो नाऽऽन्यथा नोपपद्यत इत्यदृष्टार्थ-  
 कल्पना । [ १-१-५ शाबरवा० ] पृ. ५७८ (११)  
 अर्थोभिधानप्रशयास्तुत्यनामधेयाः । [ ] पृ. ४०७

अर्थेन चटयत्वेनां नहि मुक्तार्थरूपताम् ।  
 तस्यात् प्रमेयाधिगतैः प्रमाणं मेयरूपता ॥  
 [ ] पृ. ३१२ (२) ५१०  
 अर्थोपयोगेऽपि पुनः स्मार्तं शब्दानुयोजनम् ।  
 अक्षणीयधरेत सोऽर्थो व्यरहितो भवेत् ॥  
 [ ] पृ. ५२५ (१)  
 अर्थधीनामनिर्णयतेर्नियतात्ते न शक्यता ।  
 सत्त्वे च नियमस्तासौ (युक्तः) सावधिको ननु ॥  
 [ तत्त्वसं० का० २ ] पृ. ३०२ (१)  
 'अवयवी अवयवेषु वर्तते' इति समवायरूपा प्रातिपत्येते ।  
 [ ] पृ. ६६६  
 अवयवेषु क्रिया, क्रियातो विभागः, ततः संयोगविनाशः,  
 ततोऽपि इत्यविनाशः । [ ] पृ. १४९  
 अवयवं भावनियमः कः परस्यान्यथा परैः ।  
 अर्थान्तरनिमित्ते वा धर्मं वाससि रागवत् ॥  
 [ ] ७६ (४,५) पृ. ५५९ (१)  
 अवयवं भाविनं नाशं निद्धि सम्प्रत्युपस्थितम् ।  
 अयमेव हि ते कालः पूर्वमावीदनागतः ॥  
 [ ] पृ. ५३९  
 अवलुलादपोहानां नैव मेदः । [ ] पृ. १९४  
 अवस्तुविषयेऽप्यस्ति चेतोमात्रविनिर्मिता ।  
 विचित्रकल्पनामेदरचितेभिर वासना ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०८६ ] पृ. २१५ (१४)  
 अवस्था-देश-कालानाम् । [ वाक्यप० प्र० का० श्लो० ३२ ]  
 पृ. ७० (५)  
 अवाचकत्वे शब्दानां प्रतिज्ञाहेत्वोप्युच्यते ।  
 [ अ० २ आ० २ सू० १७ व्यायवा० पृ. ३२७ पं. ६-७ ]  
 पृ. १७५ (१)  
 अविनाभावसम्बन्धस्य प्रहीतुमशक्यत्वात् । [ ] पृ. ७०  
 अविनाभाविता चात्र तदैव परिगृह्यते ।  
 न प्रागवगतेत्येवं सत्यप्येषा न कारणम् ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ५ अर्थापत्ति० श्लो० ३ ] पृ. ४७  
 अविभागोऽपि बुद्ध्यतामा विपर्यासितदर्शनैः ।  
 प्राद्यप्राहकसंभित्तिमेदवानिव लक्ष्यते ॥  
 [ ] पृ. ४१४ (६)  
 अविभुनि इत्ये समानेन्द्रियप्राह्याणां विशेषगुणानामसम्भवात् ।  
 [ ] पृ. ७०८  
 अवेतविषयस्मृतिहेतुस्त्वदनन्तरं धारणा ।  
 [ ] पृ. ५५३ (६)  
 अन्यभिचारद्विबिषेणविशिष्टाद्यौषलविध्वजनिष्ठा सामग्री प्रमा-  
 णम् । [ ] पृ. ४७१  
 अशक्यसमयो ह्यात्मा नामादीनामनन्यभाक् ।  
 तेषामतो न चान्यत्वं कथमिदुपपद्यते ॥  
 [ ] पृ. १८५ (११,१२)



## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

अग्रान्दे वापि नाक्यार्थे न परार्थेष्वशब्दता ।  
 वाक्यार्थेष्वेव नैतेषां निमित्तान्तस्तम्भान् ॥  
 [श्लो० वा० वाक्यार्थेषु श्लो० २३०] पृ. ७३८  
 अशेषसाक्षिप्रचित्वात् प्रधानदेव केवलात् ।  
 कार्यभेदाः प्रवर्तन्ते तदुपा एव भावतः ॥  
 [तत्त्वसं० का० ७] पृ. २८० (१२)  
 अत्रापि यथा रूपं विद्युत्ताडयन्नात्र यथा ।  
 [तत्त्वसं० का० १०४२] पृ. २०८ (०६)  
 अर्थं विरूपयतो गोदर्शनात् न तदा गोशब्दसंयोजना तस्या-  
 रदानुभावात्, युगपद्विरुद्धाद्युत्पत्तेश्च निर्विकल्पकगोदर्शन-  
 सद्भावात्तदा । [ ] पृ. ५०४ (५,६,७)  
 असंस्कार्यतदा पुम्भिः सर्वथा साक्षिर्भवेत् ।  
 सद्धारोपगमं व्यक्तं गजज्ञानमिदं भवेत् ॥  
 [ ] पृ. ११  
 अपत्त. सत्त्वेन प्रतिभासनमस्य ।  
 [ ] पृ. ४८९ (१२, १७)  
 अमदकरणदुपादानमहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।  
 शक्यस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम् ॥  
 [साहचर्यका० ९] पृ. २८२  
 अममनो विधिः । [हेतु० ] पृ. २१७ (८)  
 अमायनाहवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः ।  
 निग्रहस्थानमन्यदि न युक्तमिति नेष्यते ॥  
 [ ] पृ. ७६१ (१)  
 असत्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याश्रयलक्षणम् ।  
 अपूर्वदेवताशब्देः समप्रा(मा)दुर्गवादिषु ॥  
 [वाक्या० दि० का० श्लो० १२१] पृ. ३१५ (१७)  
 आट्टतिर्जातिलिङ्गात्स्यात् । [न्याय० अ० २ आ० २ सू० ६७]  
 पृ. १७८  
 अचेयक(तु)हेतिय ।  
 [गीतकम्पभाष्य गाथा १९७२] पृ. ७४६ (४,५)  
 आ मय मे हि भावानां कारणापेक्षिता भवेत् ।  
 त एवना स्वकार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु ॥  
 [श्लो० वा० सू० २ श्लो० ४८] पृ. ४  
 अत्र श्रोतव्यो ज्ञातव्यो मन्तव्यो निदिध्यातितव्यः ।  
 [सुहृदा० उ० २-४-५] पृ. ७३१  
 अत्र केचनानात् परमात्मनि लयः सम्पद्यते इति श्रुते ।  
 अत्र केचनानात् परमार्थान्, ततोऽन्येषां भेदे प्रमाणाभावात्;  
 परमार्थ एव परमार्थानां सद्भावनप्राप्तकेव न भेदस्य इत्यविद्यास-  
 मारोपित एतार्थं भेदः । [ ] पृ. १५५  
 आद्यवन्ते य यत्रास्ति वर्तमानेषुपि तत् तथा ।  
 नित्येः सद्गताः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः ॥  
 [गौडपा० का० ६ पृ० ७० बैतथ्याहप्र० ]  
 पृ. २७३ (१)  
 आद्ये परोक्षम् । [तत्त्वार्थ० १-११] पृ. ५१५ (४)  
 १०२ सं० प०

आद्ये पूर्वविदः । [तत्त्वार्थ० १-२९] पृ. ७५५ (१)  
 आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च मोक्षेऽभिव्यज्यते ।  
 [ ] पृ. १५१  
 आत्माभिहितसाक्षिदेवसिवाद्कलायोगादप्रमाणत्वाभावनि-  
 थयनिश्चिताभावादप्रवर्तकत्वं प्रयोजनवाक्यस्य प्रेक्षापूर्वकारिणा  
 प्रति । [ ] पृ. १७२ (१२)  
 आत्रापस्य किमर्थत्वत्त्वाद् आनर्थक्यमतदर्शनात् ।  
 [जैमि० १-२-१] पृ. ९२, ७४४  
 आशङ्कते हि यो मोहादजातमपि बाधकम् ।  
 स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ॥  
 [तत्त्वसं० का० २८७२] पृ. ८  
 आ सर्गप्रलयादेका बुद्धिः । [ ] पृ. ३०० (९)  
 आत्मनिरोधः संवदः । [तत्त्वार्थ० १-१] पृ. ७३५  
 आदुर्विधात् प्रत्यक्षं न निषेद्ध विप्रथितः ।  
 नैकत्वे आगमस्तेन प्रत्यक्षेण विवच्यते ॥  
 [ ] पृ. २७३ (१३)

इतरेतरभेदोऽस्य बीजं चेत् पक्ष एष नः ॥

[तत्त्वसं० का० १०५] पृ. १८१ (१९,२०)  
 इतश्चायुक्तोऽपोदः विकल्पाद्यनुपपत्तेः । तथाहि—योऽथमगो-  
 रपोदो गवि स किं गोव्यतिरिक्तः भाहोस्विदव्यतिरिक्तः ? । यदि  
 व्यतिरिक्तः स किमाश्रितः अथानाश्रितः ? । यथाश्रितस्तदाऽऽ-  
 श्रितत्वाद् गुणः प्राप्तः ; ततश्च गोशब्देन गुणोऽभिधीयते 'न  
 गोः' इति-'गोस्तिष्ठति' 'गोर्गच्छति' इति न सामानाधिकरण्यां  
 प्राप्नोतीति । अथानाश्रितस्तदा केनार्थेन 'गोरगोपोदः' इति वष्टी  
 स्यात् । 'अथाव्यतिरिक्तस्तदा गोरैवासाविति न किञ्चित् कृतं  
 भवति' ।  
 [न्यायवा० पृ. ३३, पं० ८-१४]

इत्यादिना प्रयेदेन विभिन्नाधिनिबन्धनाः ।

व्यावृत्तयः प्रकल्पन्ते तजिष्ठाः (ष्टाः) श्रुतयस्तथा ॥

[तत्त्वसं० का० १०४३] पृ. २०८ (२७), २०९ (१)

'इदं तावत् प्रष्टव्यो भवति भवान्-किमपोदो वाच्यः अथा-  
 वाच्य इति । वाच्यत्वे विधिरूपेण वाच्यः स्यात् अन्य-  
 व्यावृत्तया वा । तत्र यदि विधिरूपेण तदा नैकान्तिकः  
 शब्दार्थः 'अन्यापोदः शब्दार्थः' इति । अथान्यव्यावृत्त्येति पक्ष-  
 स्तदा तस्याप्यन्यव्यवच्छेदस्यापरेणान्यव्यवच्छेदरूपेणानिधानम्  
 तस्याप्यपरेणैत्यवस्था स्यात् । अथान्यास्तदा 'अन्यशब्दार्था-  
 पोदं शब्दः करोति' इति व्याहन्येत ।

[न्यायवा० पृ० ३३ पं० १८-२२] पृ. २०१ (७)

इदानींतनमस्तित्वं नहि पूर्वेषुया गतम् ।

[श्लो० वा० सू० ४ श्लो० २३४] पृ. ५६, ३१९

इन्द्रियाणां ससम्प्रयोगे बुद्धिजन्म प्रत्यक्षम् ।

[जैमि० अ० १-१-४] पृ. ७

इन्द्रियाणि वसीन्द्रियाणि स्वविषयग्रहणलक्षणानि ।

[ ] पृ. ५२८

५ - सन्मतिटीकागताम्बतरणानि ।

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नम् [ न्यायद० १-१-४ ] पृ. ५५०  
इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानम् । [ न्यायद० १-१-४ ]

पृ. ७०४

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसा-  
यात्मकं प्रत्यक्षम् । [ न्यायद० १-१-४ ] पृ. ११९, ५१८  
इन्द्रो मायाभिः पर(पुत्र)रूप ईयते ( ऋग्वे० मण्ड० ५ पृ०

४७ ऋ० १८ ] पृ. २७३ (५)

इयती च सामग्री प्रमाणोत्पादिका । [ ] पृ. ३

इष्टानिष्टार्थसाधनयोग्यतालक्षणो वर्माधर्मो ।

[ ] पृ. ५०५ (८)

इष्टा समूहसिद्ध- [ प्र० का० गा० २७ ] पृ. ६२८ (३)

उ

उपक्षेपणम्, अपक्षेपणम्, आकुञ्चनम्, प्रसारणम्, गगन-  
मिति कर्माणि । [ वैशेषिकद० १-१-७ ] पृ. ६८६

उत्तमः पुष्टपस्त्वन्व्यः परमात्मैरयुदाहृतः ।

यो लोकत्रयमाविश्य निभर्त्यन्व्य ईश्वरः ॥

[ भग० गी० अ० १५ श्लो० १७ ] पृ. ९८

उत्तरकालभाविनः संवादप्रत्ययात् जन्म प्रतिपद्यते वाकि  
लक्षणं प्रामाण्यमिति खत्र उच्यते न पुनर्विज्ञानकारणात्तोपजा-  
यते । [ ] पृ. १०

उत्पाद व्यश्र-ध्रौव्ययुक्तं सत् ।

[ तद्वार्थ० अ० ५ सू० २९ ] पृ. ५९, ३२३, ४१२

उदधाविव सर्वैर्गिन्धवः समुद्रीणोस्त्वयि नाथ दृष्टयः ।

न च तासु भवान् प्रदृश्यते, प्रविभक्तासु सरिस्त्रिवोदधिः ॥

[ चतुर्थेन्द्रात्रिषिकाया श्लो० १५ ] पृ. २९

उपमानमपि सादृश्यादसन्निकृष्टार्थं बुद्धिसुत्यादयति यया  
भव्यदर्शनं गोस्मरणस्य [ १-१-५ वाचरामा० ] पृ. ५७६ (१)

उपयुक्तोपमानस्तु तुल्यार्थप्रदो सति ।

विशिष्टविषयत्वेन सम्बन्धं प्रतिपद्यते ॥

[ ] पृ. ५८४ (८)

उपलब्धिः सत्ता । [ ] पृ. २९३

उपलब्धिः सत्ता सा नोपलभ्यमानवस्तुयोग्यता तदाश्रया  
वा ज्ञानवृत्तिः । [ ] पृ. २९१

उपलम्भः सत्ता । [ ] पृ. ७१०

उपोढ(गणेषु) - [ ध्व० लो० उ० १ पृ० ३५ ] पृ. १३३

उप्याय-द्विद्-भंगा हंदि दवियलकलणं एयं ।

[ प्र० का० गा० १२ ] पृ. ६२३, ६२८ (४)

उभयम् । [ पाणिनि० ] पृ. १७९ (४)

ऊ

ऊर्णनाभ इवांशुतां चन्द्रकात् इवाऽम्भसाम् ।

प्ररोहणासिध्नः स हेतुः सर्वजन्मिनाम् ॥

[ ] पृ. ७१५ (३)

ऊर्ध्वमूलमधःशालमधत्वं प्राहुरन्यम् ।

ऊर्ध्वासि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

[ गीता अ० १५ श्लो० १ ] पृ. ३१०

ऊ

ऊशीणामपि यज्जानं तदप्यागमपूर्वकम् ।

[ वाक्यप० प्र० का० श्लो० ३० ] पृ. ५३८ (८)

ए

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।

[ अमृतचिन्दु उपनि० प० १२ पृ० १५ ] पृ. ३७

एकद्वयम् अगुणम् संयोग-विभागेध्वनयेत्यम् कारणम् इति  
कर्मलक्षणम् । [ वैशेषिकद० १-१-१७ ] पृ. ६७२

एकधर्मान्वयासत्वेऽप्यपोह्योह्योचराः ।

वैलक्षण्येन गम्यन्तेऽभिन्नप्रत्यनमर्शता ॥

[ तत्त्वसं० का० १०५० ] पृ. २१०

एकप्रत्यवमर्शो हि केचिदेवोपयोगिनः ।

प्रकृत्या भेदवन्तोऽपि नान्य इत्युपपादितम् ॥

[ तत्त्वसं० वा० १०५१ ] पृ. २१० (१०, ११)

एकगोत्राद्वितीयम् । [ छान्दो० उ० अ० ६ खं० २ म० १ ]

पृ. २७३ (५)

एकगोत्रेऽ संविद्रूपं हर्ष-विवादाद्यनेकाकाराविवर्तं समुत्प-  
रयामः तत्र यथेष्टं संज्ञाः क्रियन्ताम् । [ ] पृ. २७

एकशोनयश्च पाकजाः । [ ८-१-५ वगस्य० भा० ]

पृ. ५२१ (१)

एकश्रोत्रप्रवेशे च नान्येषा च पुनः श्रुतिः ।

न चावान्तरवर्णानां नानालस्यास्ति कारणम् ॥

[ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ११३ ] पृ. ३८

एकसामर्थ्य-मीनत्वाद् ह्यादे रपतो गतिः ।

हेतुधर्मांशुमानेन धूमैः धनविचारवत् ॥

[ ] पृ. ५५९ (५)

एकस्मिन्नपि दृष्टेऽर्थे द्वितीयं परयतो वने ।

सादृश्येन सद्देकास्त्रैवैवोत्पद्यते सतिः ॥

[ श्लो० वा० उपमान० श्लो० ४६ ] पृ. ५७७ (५, ६)

एकस्मिन्नवयवनि कृत्स्नैकदेशान्दप्रवृत्त्यसम्भवात् अयुक्तोऽयं  
प्रश्नः—'किमेकदेशेन वर्तते, अथ कृत्स्नो वर्तते' इति ।

'कृत्स्नम्' इति हि सत्त्वेकस्य अशेषामिधानम् । 'एकदेशः'  
इति च अनेकत्वे सति कस्यचिदभिधानम्, तावित्तो कृत्स्नैक-  
देशशब्दौ एकस्मिन्नवयवनि अनुपपन्नौ ।

[ २-१-३२ न्यायवा० ] पृ. ६६८

एकस्मिन् भेदाभावात् सर्वशब्दप्रयोगानुपपत्तिः ।

[ ] पृ. ६६३

एकस्यापि ध्वनेर्वाच्यं सदा तन्नोपपद्यते ।

क्रियानेदेन भिन्नत्वादेवम्भूतोऽभिन्नमन्यते ॥

[ ] पृ. ३१४ (५)

एकस्यार्थस्वभावस्य प्रत्यक्षस्य सतः स्वयम् ।

कोऽन्यो न दृष्टो भागः स्यात् यः प्रमाणैः परीक्ष्यते ॥

[ ] पृ. ५०७ (६)

एकादश जिने । [ तत्त्वार्थ० अ० ९ सू० ११ ] पृ. ६१५

## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

एकादिव्यवहारहेतुः सङ्ख्या ।

[ प्रशस्त० भा० पृ० १११ पं० ३ ] पृ. ५१९

एकेन तु प्रमाणेन सर्वज्ञो येन कल्प्यते ।

नूनं स चक्षुषा सर्वत्रसादीन् ( सर्वान् रसादीन् ) प्रतिपद्यते ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११२ ] पृ. ४३

एको भावस्त्वत्वतो येन दृष्टः सर्वे भावाः सर्वेषां तेन दृष्टाः ।

सर्वे भावाः सर्वेषां येन दृष्टा एको भावस्त्वत्वतस्तेन दृष्टः ॥

[ ] पृ. ६३ (७)

एकेको वि सयविद्दो ।

[ आवश्यकनि० उच्यते ० गा० ३६ ] पृ. ७५७ (४)

एकगुणकालए दुगुणकालए-

[ भगवतीसू० शत० ५ उ० ७ सू० २१७ ] पृ. ६३५ (४)

एगदभियम्मि- [ प्र० का० गा० ३१ ] पृ. ६३८ (२)

एगमेगेमं जीवस्स पएसे अणंतेहिं पाणावरणिजपोसगहेहिं  
भावेद्वियपवेद्वि । [ ] पृ. ४५५-४५६ (३)

एगे आया । [ स्थाना० प्रथमस्था० सू० १ ]

पृ. ९३, ४५३ (२)

एगे भवं दुने भवं । [ भगवतीसूत्र शतक १८ उ० १० ]

पृ. ६२५ (१)

एते च त्रयो भक्ता गुण-प्रधानमावेन सकलवर्मात्मकै-  
वदुप्रतिपादकाः स्वयं तथाभूताः सन्तो निरवयवप्रतिपत्तिद्वारेण  
सकलादेशाः, वक्ष्यमाणान्नु चत्वारः सावयवप्रतिपत्तिद्वारेणाशो-  
षधर्मोक्तान्तं वस्तु प्रतिपादयन्तोऽपि विकलादेशाः ।

[ ] पृ. ४४५ (११, १२)

एवं त्रिचतुरज्ञानजन्मनो नाधिका मतिः ।

प्रार्थ्यते तावतैवैकं स्वतः प्रामाण्यमभ्युते ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ९१ ] पृ. ८

एवं धर्मैर्विना धर्मिणामुद्देशः कृतः ।

[ प्रशस्त्यादमा० पृ० २६ पं० १ ] पृ. ६६१ (३)

एवं परीक्षकज्ञानत्रितयं नातिवर्तते ।

तत्रश्चाजातवाधेन नाशङ्क्यं बाधकं पुनः ॥

[ तत्त्वसं० का० २८७१ ] पृ. १९

एवं परोक्षसम्बन्धप्रत्याख्यानं कृते सति ।

नियमो नाम सम्बन्धः स्वमतेनोच्यतेऽधुना ॥

[ ] पृ. २०

एवं यत् पक्षधर्मत्वं ज्येष्ठं हेत्वङ्गमित्यते ।

तत् पूर्वोक्तान्यधर्मत्वदर्शनाद् व्यभिचार्यते ॥

[ ] पृ. ५७०

एष प्रत्यक्षधर्मश्च वर्तमानार्थतैव या ॥

[ श्लो० वा० निरा० श्लो० ११४ ] पृ. ५३७ (१०)

एषार्थेन्द्रियकलेऽपि न तादृष्येण धर्मता ।

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० १३ ] पृ. ५०५ (१०)

औ

औत्पत्तिकसु शब्दस्याप्येन सम्बन्धः ।

[ मीमां० १-१-५ पृ० ५ ] पृ. ३८६

क

कद्विद्दे णं भंते । आया पण्णते ?

गोयमा ! अट्टविद्दे । तं जहा-दवि ए आया ।

[ भगवतीसू० शत० १२ उ० १० ] पृ. ६३१ (१)

कतमत् संवृत्तिसर्वं यावन्नोकव्यवहारः ।

[ ] पृ. ३७०

कम्मं जोगनित्तं । [ प्र० का० गा० १९ ] पृ. ७३३ (८)

कर्तुः कार्यावादानोपकरणप्रयोजनसम्प्रदानपरिज्ञानात् ।

[ ] पृ. १०१

कर्तुः प्रियहितमोक्षहेतुर्धर्मैः, अधर्मैस्तु अप्रियप्रत्ययावहेतुः ।

[ प्रशस्त्या० भा० पृ० २७३ पं० ८ तथा पृ० २८० पं० ४ ]

पृ. ६८५

कर्तृकलदायी आत्मगुण आत्म-मनःसंयोगजः स्वकार्यविरोधी  
धर्मोऽधर्मरूपतया भेदवान् अट्टाख्यो गुणः ।

[ ] पृ. ६८५ (६)

कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षम् । [ न्यायवि० १-४ ] पृ. ५०८ (१)

कल्पनीयान्नु सर्वज्ञा भवेत्पूर्वद्वस्तव ।

य एव स्यादसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न बुध्यते ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० १३५ ] पृ. ५३

कस्मात् साक्षादिमत्त्वेनं गोवं यस्मात् तदात्मकम् ।

तादात्म्यमस्य कस्मात् चेत् स्वभावादिति गम्यताम् ॥

[ श्लो० वा० आकृ० श्लो० ४७ ] पृ. २४० (६)

कस्यचित्तु यदीष्येत स्वत एव प्रमाणता ।

प्रथमस्य तथाभावे प्रद्वेषः केन हेतुना ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ७६ ] पृ. ६

कः कण्टकानां प्रकरोति तैःस्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां वा ।

स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामचारोऽस्ति कृतः प्रयत्नः ॥

[ ] पृ. ७१२ (१)

कः बोधेत वदन्नेवं यदि न स्यादहोक्ता ।

अह्ना(त्)ता वा यतः सर्वं क्षणिकेषुपि तत्समम् ॥

[ हे० वि० पृ० १२९ ] पृ. ३२९ (१७)

कारणमस्त्वय्यकम् । [ साङ्ख्यका० १६ ] पृ. २८४

कारणसंयोगिना कार्यमवश्यं संयुज्यते ।

[ ] पृ. १४९

कारण्यत्तु भगवतः प्रवृत्तिः । नन्वेवं केवलः सुखरूपः प्राणि-

सर्गोऽस्तु, नैवम्; निरपेक्षस्य कर्तृत्वेऽयं दोषः सापेक्षत्वे तु क्य-

मेकरूपः सर्गः ? यस्य यथाविधः कर्माण्यः पुण्यरूपोऽपुण्यरूपो

वा तस्य तथाविधफलोपभोगाय तत्साधनान् शरीरादीस्तथावि-

धास्तत्सापेक्षः सृजति । [ ] पृ. ९९

कार्यं धूमो हुतधुजः कार्यं धर्मोऽनुवृत्तितः ।

[ ] पृ. ५७ (४) ५८

कार्यं धूमो हुतधुजः, कार्यं धर्मोऽनुवृत्तितः ।

स तदभावेऽपि भवन् कार्यमेव न स्यात् ॥

[ ] पृ. २०

५ - सम्मतिटीकागतान्यत्रणानि ।

कार्य धूमो हुतभुजः कार्यधर्मावुत्तितः ।  
 सम्भवंस्तदभावेऽपि हेतुमतां विलङ्घयेत् ॥  
 [ ] पृ. ३२२ (१,२,३), ५६९ (३)  
 कार्यकारणभावादिसम्प्रधानां द्वयी गतिः ।  
 नियमानियमाभ्यां स्यादनियमादतद्गता ॥  
 [ ] पृ. २१  
 कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा निशामकात् ।  
 अविनाभावनियमोऽदर्शनात् न दर्शनात् ॥  
 [ ] पृ. ७६, ५५८ (१४)  
 कार्यत्वान्यल्लेशेन यत् साध्यासिद्धिदर्शनं तत् कार्यसमम् ।  
 [ ] पृ. ११५ (६)  
 कार्यस्यैवमयोगाच्च किं कुर्वत् कारणं भवेत् ।  
 ततः कारणभावोऽपि मीजादेर्नावव्यत्यते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १३ ] पृ. २८३ (३४)  
 कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ।  
 कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥  
 [ महाभा० आदिप० अ० १ श्लो० २७३, २७५ ]  
 पृ. ७११ (४, ५)  
 कालाच्चनोरत्यन्तसंयोगे । [ पा० २-३-५ ] पृ. ६०५ (२)  
 कालो य होइ सुदुमो । [ ] पृ. ६५५  
 किं स्यात् सा चित्रतैकस्यां न स्यात् तस्यां मतावपि ।  
 [ ] पृ. २४१ (१४)  
 किन्तु गौर्गवयो हस्ती वृक्ष इत्यादिवाच्यतः ।  
 विधिरूपावसायेन मतिः शान्दी प्रवर्तते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १११ ] पृ. १८६ (१)  
 किन्तु विध्यनष्टाद्यस्माद् विकृतो जायते षनेः ।  
 पश्चाद्गोदृशान्दार्थनिषेधे जायते मतिः ॥  
 [ तत्त्वसं० का० ११६४ ] पृ. २२७ (४)  
 किल सामग्री करणं तच्च कर्तृकर्मपेक्षम् सामग्रीजनकत्वेन  
 तयोर्भ्यां तृतेरर्धन्तरभूतयोरभावात् किमपेक्ष्य साधकतमत्वमा-  
 सादयेत् । [ ] पृ. ४७२ (९, १०)  
 केचिदेव निरात्मनो बाह्या इष्टा घटादयः ।  
 गमनं कस्यचिन्नैव भ्रान्तैस्तद्विनिवर्त्यते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० ११८७ ] पृ. २२९ (१७-१८)  
 केवल एव धर्मो धर्मिणि साध्यस्तथेष्टसमुदायस्य सिद्धिः  
 कृता भवति । [ ] पृ. ५५४  
 केवलणाणुवत्ता जाणंति ।  
 [ प्रज्ञाप० द्विती० प० सू० ५४ गा० १६१ ]  
 पृ. १०८ (६, ७)  
 केवलनाणे केवलदंसणे । [ ] पृ. ६१७  
 केवलणाणे षं भंते ! । [ ] पृ. ६०७ (२)  
 केवली षं भंते । इमं रयणपत्रं पुढविं आयारेहिं पमाणेहिं  
 हेऊहिं संठाणेहिं परिवारेहिं जं समयं जाणह नो तं समयं  
 पासइ ? हुंता गोयथा । केवली षं । [ ] पृ. ६०५

को हि मानधर्म हेतुमिच्छन् भावं वेच्छेत् ।  
 [ ] पृ. ८८० (४)  
 क्रमेण युगपन्नैव यतस्तेऽर्थक्रियाकृतः ।  
 न भवन्ति ततस्त्रेषां व्यर्थैः क्षणिकताध्रमः ॥  
 [ ] पृ. ३२९  
 क्रियारूपलादपोहस्य विषयो वक्तव्यः । तत्र 'अर्गोर्न भवति'  
 इत्ययमपोहः किं गोविषयः अथागोविषयः ? यदि गोविषय-  
 कथं गोर्गोव्यवाभावः ? अथागोविषयः कथमन्यविषयादपोह इ-  
 न्यत्र प्रतिपत्तिः, नहि खद्विरे छियमाने पलासे छिदा भवति ।  
 अथागोर्वि प्रतिषेधो 'गौरगोर्न भवति' इति, केनागोर्न प्रयक्त-  
 यत् प्रतिषिध्यत इति । [ न्यायवा० पृ० ३२९ पं० २४-२७  
 ३३० पं० ४ ] पृ. २०० (११, १२)  
 क्रियावद् गुणवत् समवायिकारणं द्वयम् ।  
 [ वैशेषिकद० १-१-१५ ] पृ. ६३३ (३)  
 क्रीडा हि रतिमधिन्द्रताम्, न च रत्यर्था भगवान् दुःखाभा-  
 वात् । [ न्यायवा० पृ० ४६२ ] पृ. १९  
 क्लेशकर्मविपाकाशयैरपामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।  
 [ योगद० पा० १ सू० २४ ] पृ. ६९, १३३.  
 क्लेशेन पक्षधर्मत्वं यस्तत्रापि प्रकल्पयेत् ।  
 न सन्नच्छेत् तस्यैतल्लक्षणेण सह लक्षणम् ॥  
 [ ] पृ. ५७०  
 क्वचित् तदपरिज्ञानं सदृशापरसम्भवात् ।  
 भ्रान्तेरपरयत् (?) भेदं मायागोलकभेदवत् ॥  
 [ ] पृ. ३१८ (३)  
 क्व वा श्रुतिः । [ तत्त्वसं० का० ९०७ ] पृ. १८५  
 क्षणिकाः सर्वेऽस्काराः । [ ] पृ. ७०६  
 क्षणिकाः सर्वेऽस्काराः विज्ञानमात्रमेवेदं भो जिनपुत्रा । यद्  
 इदं त्रैधातुकम् । [ ] पृ. ७२१  
 क्षणिका हि सा न कालान्तरमवतिष्ठते ।  
 [ ] पृ. २५  
 क्षणिका हि सा न कालान्तरमास्ते । [ ]  
 पृ. ५४ (१)  
 क्षीरे दधि भवेदेव दधि क्षीरे घटे पटः ।  
 शशो शृङ्गं पृथिव्यादौ चैतल्यं मूर्तिरात्मनि ॥  
 [ श्लो० वा० अभावप० श्लो० ५ ] पृ. ५८१ (२)  
 क्षीरे दध्यादि यत्नास्ति प्रागभावः स उच्यते ॥  
 [ श्लो० वा० अभावप० श्लो० २ ] पृ. १८६ (११) ५८१ (१)  
 ग  
 गतोदके कः खलु सेतुबन्धः । [ ] पृ. ३७७  
 गत्वा गत्वा च तान् देशान् ययर्थो नोपलभ्यते ।  
 तदान्यकारणाभावादसञ्चित्ववगम्यते ॥  
 [ श्लो० वा० अर्थो० श्लो० ३८ ] पृ. २३, ३२१  
 गम्भीरज्ञानवत्त्वे सति । [ १-१-५ न्यायवा० पृ० ४७ ]  
 पृ. ५६३

## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

गवयश्चाप्यसम्बन्धप्र गोष्ठिज्ञत्वमृच्छति ।  
 सादृश्यं न च पूर्वेण पूर्वं दृष्टं तदन्यथि ॥  
 [ श्लो० वा० उपमान० श्लो० ४५ ] पृ. ५७७ (४)  
 गवये गृह्यमाणं च न गवार्थाद्युमापकम् ।  
 प्रतिज्ञार्थैकदेशत्वाद् गोगतस्य न छिन्नता ॥  
 [ श्लो० वा० उपमान० श्लो० ४६ ] पृ. ५७७ (२,३)  
 गवयोपमिताया गोस्तज्ज्ञानप्राप्त्यशक्तता ॥  
 [ श्लो० वा० अर्थाप० श्लो० ४ ] पृ. ५७९ (३)  
 गवाश्वप्रमृतीनि च । [ पाणि० २-४-११ ] पृ. १९० (९)  
 गव्यसिद्धे लघोर्नास्ति तदभावेऽपि गो. कुतः ।  
 [ श्लो० वा० अपो० श्लो० ८५ ] पृ. १९१ (१२,१३)  
 गामहं ज्ञातवान् पूर्वमथं जानाम्यहं पुनः ।  
 [ श्लो० वा० सू० ५ आदम० श्लो० १२२ ] पृ. ८८  
 गीयत्यो य विहारो बीओ गीयत्यमीसओ भणिओ ।  
 [ ओघनियुक्ति गा० १२१ ] पृ. ७५३ (५)  
 गुणार्थायवद् द्रव्यम् । [ तत्त्वार्थ० अ० ५ सू० ३७ ]  
 पृ. ६३६  
 गुणविशेषाणां रूप-रस-गन्ध-स्पर्शानां गुणल-द्रव्यल-घनल-  
 संस्काराणाम् अव्यापिनश्च परिमाणविशेषस्याश्रयो यथासम्भवं  
 तद् द्रव्यं मूर्तिः (मूर्तिः) मूर्च्छितानयनत्वात् ।  
 [ न्यायद० वात्स्या० भा० पृ० २२४ ] पृ. १७८  
 गुणाः सन्ति न सन्तीति पारुष्येषु चिन्त्यते ।  
 वेदे कर्तुरभावात् गुणाशङ्कैव नास्ति नः ॥  
 [ ] पृ. ११  
 गुणे भावाद् गुणलमुक्तम् ।  
 [ वैशेषिकद० अ० १ आ० २ सू० १३ ] पृ. १४०  
 गुणेभ्यो दोषाणामभावस्तद्भावाद् अप्रामाण्यद्वयसत्त्वेनो-  
 त्सर्गोऽनयोदित एवास्ति । [ ] पृ. १० (३)  
 गूढसिद्धिं संधि पठं समभंगमहीरगं च छिष्यरहं ।  
 साधारणं सरीरं तद्विवरिणं च पत्तयं ॥  
 [ जीवविज्ञा० गा० १२ ] पृ. ६५४  
 गृहीतमपि गोलादि स्थितिसृष्टं च यद्यपि ।  
 तथापि व्यतिरेकेण पूर्वबोधात् प्रतीयते ॥  
 [ श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३२ ] पृ. ३१९ (५)  
 गृहीत्वा बस्तुसङ्घातं स्पृत्वा च प्रतियोगिनम् ।  
 [ श्लो० वा० अभावप० श्लो० २७ ] पृ. ३६९  
 गृहीत्वा बस्तुसङ्घातं स्पृत्वा च प्रतियोगिनम् ।  
 मानसं नास्तिज्ञानं जायतेऽक्षानपेक्षया ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ५ अभावप० श्लो० २७ ] पृ. २३, २७६,  
 गोलसम्बन्धात् प्राग् न गोः नाप्यगौः, गोलयोगाद् गौः ।  
 [ न्ययना० पृ० ३१८ पं० २१ ] पृ. १०६  
 गोमानिलेखं मलेन भाव्यमश्वत्ताऽपि किम् ।  
 [ ] पृ. ७०  
 ग्राह्यप्रादुर्बन्धितमेदवातिव लक्ष्यते ॥  
 [ ] पृ. ४०१ (२)

ग्राह्यमाहूकोभयशूलं तत्त्वम् । [ ] पृ. ७३१  
 घ  
 घटादिषु (?) यथा हेतवो ध्वंसकारिणः ।  
 नैवं नाशस्य सो हेतुस्तस्य सजायते कथम् ॥  
 [ ] पृ. ३४६ (८,९,१०)  
 घटादीनां न वाकारात् (न) प्रत्यापयति वाचकः ।  
 बस्तुमात्रनिवेशित्वात् तदतिर्नान्तरीयकैः ॥  
 [ वाक्यर० द्वि० का० श्लो० १२५ ] पृ. ३१६ (१,२)  
 च  
 चक्षुः प्रनीत्य रूपादि चोत्पद्यते चक्षुर्विज्ञानम् ।  
 [ ] पृ. ३०९ (५)  
 चक्षुःश्रवसो भुजङ्गाः । [ ] पृ. ५७  
 चक्षुः-श्रोत्र-सनघामप्रासाधकारिणम् ।  
 [ ] पृ. ५४५  
 चक्षुषो घटेन संयोग एव युतसिद्धत्वात् द्रव्यसमवेतानां  
 गुणादीनां संयुक्तसमवाय एव । [ ] पृ. ५४५  
 चतुर्ध्रुव मेदविधासु तत्त्वं परिसमाप्यते-यदुत प्रमाता प्रो-  
 यम् प्रमाणम् प्रमितिः । [ ] पृ. २९५ (८)  
 चतुरस्रयती आयक्षरलोपश्च ।  
 [ पाणि० अ० ५ पा० २ सू० ५१ वार्ति० ] पृ. २२५ (२६)  
 चित्रप्रतिभासाऽप्येकैव बुद्धिः, बाह्यचित्रविलक्षणत्वात् ।  
 [ ] पृ. २४१  
 चित्रया यजेत पशुकामः । [ ] पृ. ७३० (३)  
 चैतन्यं पुरुषस्य स्वल्पम् ।  
 [ ] पृ. ३०७ (८), ५८८ (२)  
 चैत्रस्य त्रगरोहणे । [ ] पृ. ९५  
 चोदनाजनिता बुद्धिः प्रमाणं दोषवर्जितैः ।  
 कारणैर्जन्यमानत्वाद्भिन्नाऽऽसौकाक्षबुद्धितत् ॥  
 [ श्लो० वा० सू० २ श्लो० १८४ ] पृ. ८  
 चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः । [ मीमांसाद० १-१-२ ] पृ. ७३१  
 छक्रायदयान्तो वि संजओ दुल्लहं कुणइ बोहि ।  
 आहारे— [ ओघनियुक्ति गा० ४४१ ] पृ. ७४९  
 ज  
 जंक्यमुक्त्यं । [ ] पृ. ६०६  
 जं कालिं ररिषणं एयं दन्वट्टियस्स वत्तन्वं ।  
 [ तृ० का० गा० ४८ ] पृ. २८५  
 जं समयं च णं समणे भगवं महावीरे ।  
 [ ] पृ. ६०५  
 जं समयं पासइ णो तं समयं जाणइ ।  
 [ ] पृ. ६१६  
 जं समयं पासइ नो तं समयं जाणइ ।  
 [ ] पृ. ६१६  
 जाणइ बज्जेऽणुमाणाओ । [ विशेषा० भा० गा० ८१४ ]  
 पृ. ६१९ (४)

५ - सन्मतिटीकागतन्यतरणानि ।

जातिभेदश्च तेनैव संस्कारो व्यतिष्ठते ।  
 अन्याथप्रेरितो वायुर्यथाऽन्यं न करोति वः ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ८ ] पृ. ३६ (१)  
 जातिः पदार्थः । [ बाजपयानः ] पृ. १७९ (१,२)  
 जातेऽपि यदि विज्ञाने तावन्नाथोऽवधार्यते ।  
 [ ] पृ. १३ (२)  
 जानेऽपि यदि विज्ञाने तावन्नाथोऽवधार्यते ।  
 यावत् कारणशुद्धत्वं न प्रमाणान्तराद्भवत् ॥  
 [ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ४२ ] पृ. ५  
 जारिसयं गुरुर्लिङ्गं सीसेण वि तारिषेण होयव्यं ।  
 [ धर्मसङ्ग्रहणी गा० ११०८, ११११ ] पृ. ७५० (८)  
 जाव अणेगभूयभावभविण भवं ।  
 [ भगवतीपुत्र वा० १८ उ० १० ] पृ. ६२५  
 जिज्ञासितविशेषो धर्मा पक्षः । [ न्यायवि० २, ८ ] ५९२ (१)  
 जिणा बारसत्त्वा उ थेरा चोहमरुविणो ।  
 भज्जाणं पण्णवीसं तु अओ उट्टुमुवग्गहो ॥  
 [ ओघनिर्धुक्ति गा० ६७१ ]  
 [ पञ्चव० गा० ७७१ ] पृ. ७५१ (१,२)  
 जीनाजीवाश्रवन्धसंनरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ।  
 [ तत्त्वार्थसू० १-४ ] पृ. ६५१  
 जीवानामविद्यासम्बन्धः न परात्मनः अगौ सदा प्रयुद्धो  
 नित्यप्रकाशो नागन्तुकार्थः अन्यथा मुक्त्यवस्थायामपि नावि-  
 निवृत्तिः । यतोऽस्मिन् दर्शने ब्रह्मैव संसरति मुच्यते च ।  
 अत्रैकमुक्तौ सर्वैर्युक्तिप्रसङ्गं अमेदात् परमात्मनः, यतस्तस्य  
 भेददर्शनेन संसारः अभेददर्शनेन च मुक्तिः अत एकस्यैव  
 परमात्मनः परमस्वास्थ्यमापत्तित्तु तस्मात् ब्रह्मण संसारः ।  
 जीवात्मान एवाऽजायविद्यायोगिनः संसारिणः कथञ्चिद् विद्यो-  
 दये विमुच्यन्ते तथा स्वाभाविकविद्याकलुषीकृतानां बिलक्षण-  
 प्रत्ययविद्योदये नाविद्यानिवृत्तेरनुपपत्तिः यतो न तेषु स्वाभा-  
 विकी विद्या अविद्यावत् अतस्तथा निवृत्तिः स्वाभाविकया  
 आयविद्यायाः । [ ] पृ. २७८ (२५, २२, २३)  
 जीवो अणाद्भिहणो । [ धर्मसङ्ग्रहणी गा० ३५ ] पृ. ७४६  
 जुगवं दो णत्थि उवओगा । [ आबश्यकनि० गा० १७९ ]  
 पृ. ४७८ (२)  
 जे एणं जाणइ ।  
 [ आवा० प्र० शु० अ० ३ उ० ४ सू० १२२ ] पृ. ६३  
 जे जत्तिआ इ हेळ भवस्स ।  
 [ ] पृ. ७४८ (५)  
 जे भिवयू कसिणं नत्थं पडिगाहेइ ।  
 [ ] पृ. ७५१  
 ज्ञातसम्बन्धस्यैकदेशदर्शनादसन्निकृष्टेऽप्ये बुद्धिः ।  
 [ ] पृ. २० (३, ४, ५)  
 ज्ञातसम्बन्धस्यैकदेशदर्शनादसन्निकृष्टेऽप्ये बुद्धिरनुमानम् ।  
 [ १-१-५ शाबरभा० ] पृ. ५७२ (४)  
 ज्ञान-विकीर्षा-प्रयजानां समवायः कर्तृता ।  
 [ ] पृ. ९८

ज्ञानमप्रतिघ्नं यस्य ऐश्वर्यं च जगत्पतेः ।  
 वैराग्यं चैव धर्मश्च सहसिद्धं चतुष्टयम् ॥  
 [ ] पृ. ५९  
 ज्ञानमात्रार्थकरणेऽप्ययोग्यं ब्रह्म च। मृतम् ।  
 तद्योग्यतयाऽरूपं तदा वस्तुषु (२) लक्षणम् ॥  
 [ ] पृ. ३८४ (८, ९, १०)  
 ज्ञानवान् गृह्यते कश्चित् तदुक्तप्रतिपत्तेः ।  
 अज्ञोपदेशकरणे विप्रलम्भनसङ्घिभिः ॥  
 [ ] पृ. १२८  
 ज्ञानादव्यतिरिक्तं च कथमर्थान्तरं वजेत् ।  
 [ ] पृ. १८४ (९)  
 ज्ञे( अज्ञे )य कश्चित् कृत्वा तद्व्यवच्छेदेन ज्ञेयऽनुमानम् ।  
 [ हेतु० ] पृ. २२८ (२०, २१)  
 ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञः स्याद् असति प्रतिघ्नपरि ।  
 सत्येव दास्ये नत्तामिः कश्चिद् दृष्टो न दाहक ॥  
 [ ] पृ. ६३  
 ण  
 णमिणस्स वा वि । [ दशवैकालिक गा० २७३ ] पृ. ३५१  
 णमिणस्स वा वि सुण्डस्स ।  
 [ दशवैकालिक गा० २७३ ] पृ. ७४७  
 णत्थि णएण विहूणं सुत्तं अत्थो य जिणमये किञ्चि ।  
 आसज्ज उ सोआरं णए णयविहारो वूआ ॥  
 [ आबश्यकनि० उवग्गयानि० गा० ३८ ] पृ. ७४६ (१)  
 णीया लोवमभूया आणीया दो वि विदु दुग्गभावा ।  
 अत्यं वईति तं विय जो चिय ति पुव्वनिदिट्ठो ॥  
 [ ] पृ. ६०६ (२)  
 णो वप्यइ निरग्गयस्स णिग्गंथीए वा अग्गि तालपलंत्ते  
 पडिगाहितए । [ कण्णसू० उ० १ सू० १ ] पृ. ७५२ (२)  
 त  
 तं तद्व्यग्यविसुद्धं जं चरणगुणट्टिओ साह ।  
 [ आबश्यकनि० सामादअलि० गा० १०२ ] पृ. ७५६ (४)  
 तनथ वासनाभेदाद् भेदः सद्रूपतापि न ।  
 प्रकल्पतेऽप्यपोहाना कलनारचितेऽपि च ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०८७ ] पृ. २१५ (१५, १६)  
 ततः परं पुनर्वस्तुधर्मैः ।  
 [ श्लो० वा० सू० १ श्लो० १२० ] पृ. ७४  
 ततो निरपवादत्वात् तेनेत्यां बलीयम् ।  
 थायते तेन तस्यैव प्रमाणत्वमप्योपपत्तेः ॥  
 [ तत्त्वसं० वा० २८ ] पृ. १९  
 ततोऽपि विकल्पात् तदध्यवसायेन वस्तुन्ते प्रवृत्तेः प्रवृत्तौ  
 च प्रत्यक्षेणाभिन्नयोगक्षेमत्वात् ।  
 [ ] पृ. ४६८ (७, ८)  
 ततो भवत्प्रयुक्तेऽस्मिन् साधने यावदुच्यते ।  
 सर्वत्रोत्पद्यते बुद्धिरिति दूषणता भवेत् ॥  
 [ श्लो० वा० निरा० श्लो० १७२ ] पृ. ५६४

## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

तत्त्वदर्शनं प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा ।

[ ] पृ. १४ (७)

तत् परिच्छिनत्ति अन्यद् व्यवच्छिनत्ति प्रकारान्तराभावं च सूचयति । [ ] पृ. २८५ (११)

तत्पूर्वैकमनुमानम् । [ ] पृ. ५६०

तत्पूर्वैकं त्रिविधमनुमानम् । [ ] पृ. ५९०

तत्पूर्वैकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोऽदृष्टं च ।

[ न्यायद० १-१-५ ] पृ. ५५९ (१०)

तत् प्रमाणे । [ तत्त्वार्थ० १,१० ] पृ. ५९५

तत्र ज्ञानान्तरोरयाद प्रतीक्ष्यः कारणान्तरात् ।

यावद्धि न परिच्छिन्ना बुद्धिस्त्वावदसत्समा ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ५० ] पृ. ५

तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञातात् दाहाद्दहनशक्तिता ।

बहेरनुगितात् सूर्ये यानात् तच्छक्तियोगिता ॥

[ श्लो० वा० भाष्योप० श्लो० ३ ] पृ. ५७२ (२)

तत्र महद् द्विविधम्-नित्यम् अनित्यं च । नित्यम् आकाश-  
काल-दिगात्मणु परममदृत्वम्, अनित्यम् अणुकादिषु द्रव्येषु ।  
अणु अपि नित्यानित्यभेदात् द्विविधम्-परमाणु-मनस्सु परि-  
माणोऽल्यलक्ष्यं नित्यम्, अनित्यम् अणुक एव । दुबला-  
ऽऽमलक-विल्वदिषु तु महद्वस्वपि तत्प्रकर्षाभावमपेक्ष्य भाको-  
ऽणुचयवहार । तथाहि-यादहं त्रिव्वे महत् परिमाणम् तादहं  
न आमलके यादहं च तत् तत्र न तादहं दुबल इति ।

ननु महद् दीर्घयोरुणुकादिषु वर्तमानयोः ह्यणुके च  
अणुच हल्लयोः को विशेषः । महत्सु 'दीर्घमानीयताम्'  
दीर्घेषु 'महद् आनीयताम्' इति व्यवहारभेदत्रतीतेरस्ति तयोः  
पास्वरतो भेदः । अणुल्लहल्लयोरु लो विशेषो योगिनां तदार्थि-  
नामभ्युपेक्ष एव । [ ] पृ. ६७५ (३)

तत्रसुषुप्तनीतिः स्यात् शुद्धपर्यायसंश्रिताः (ता) ।

नश्रुत्यैव भावस्य भावा(वात्)स्थितिवियोगतः ॥

[ ] पृ. ३११ (७,८,९)

तत्र शब्दान्तरापोहे सामान्ये परिकल्पिते ।

तथैवावस्तुरूपसामान्यभेदो न कल्प्यते ॥

[ श्लो० वा० अपो० श्लो० १०४ ] पृ. ११५ (१६)

तत्रामनि सुखादीनां यथा वितिः फलान्तरम् ।

तथा सर्वत्र संयोज्या मानमेयफलस्थितिः ॥

[ ] पृ. ३६५ (२३,२३)

तत्रापवाद्निर्मुक्तिर्वैकभावाह्वयीयसी ।

वेदे तेनाप्रमाणत्वं नाशङ्कामपि गच्छति ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ६८ ] पृ. १२ (५)

तत्रापि त्वपवादस्य स्यादपेक्षा क्वचित् पुनः ।

आताशङ्कस्य पूर्वेण साऽप्यन्येन निवर्तते ॥

[ तत्त्वसं० का० २८६७ ] पृ. १९ (१)

तत्रापूर्वार्थविज्ञानं निश्चितं बाधवर्जितम् ।

अदुष्टकारणारब्धं प्रमाणं लोकसम्मतम् ॥

[ ] पृ. १३,३१८ (१८), ३१४

तथा ध्वन्यन्तराज्ञेपो न ध्वन्यन्तरसारिभिः ।

तस्यादुल्लस्यभिन्यतयोः कार्यार्थापत्तितः समः ॥

[ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ८२ ] पृ. ३६

तथाऽन्यत्रणैर्घंस्कारशक्तौ नान्यं करिष्यति ।

अन्येऽल्लादिघंयोगान्यो वर्णा यथैव हि ॥

[ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ८१ ] पृ. ३६

तथाविधस्य तस्यापि बस्तुनः क्षणवृत्तिनः ।

ब्रूते समभिःकट्टु घंज्ञाभेदेन भिन्नताम् ॥

[ ] पृ. ३१३ (१५)

तथाहि-पञ्चतीत्युक्ते नोदातीनोऽवतिष्ठते ।

भुक्ते दीन्यति वा नेति गम्यतेऽन्यनित्यतम् ॥

[ तत्त्वसं० का० ११४६ ] पृ. २२४ (१४,१५,१६)

तदनन्तरं तदीहिनविशेषनिर्णयोऽवयवः ।

[ ] पृ. ५५३ (५)

तदा प्रवर्तने चक्षुरो न होयः ।

[ ] पृ. ४९६

तद् इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।

[ तत्त्वार्थ० अ० १ सू० १४ ] पृ. ८०

तदेवममृतं (तथेदममलं) मग्न निर्विकरमविद्यया ।

कल्पवृत्तमिवापनं भेदरूपं विवर्तते ॥

[ ] पृ. ३८३ (१०,११,१२)

तद्गुणैरपहृष्टानां शब्दे संकल्पसम्भवात् ।

यद्वा वस्तुभवेन न स्युर्योना निराश्रयाः ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ६३ ] पृ. १९

तद्गुणैव दृष्टेषु संवित्साध्यभ्यामिजिनः ।

स्मरणादभिलाषेण व्यवहारः प्रवर्तते ॥

[ ] पृ. १५ (११) ४९८ (६)

तद्रूपारोपमन्याव्यावृत्त्याऽधिगतैः पुनः ।

शब्दार्थोऽर्थ एवैति वचनेन विदध्यते ॥

[ ] पृ. १८१ (११)

तद्गतो न वाचकः शब्दः, अस्वतन्त्रवात् ।

[ ] पृ. १९७ (१२)

तन्मात्राकाङ्क्षाद् भेदः स्वसामान्येन नोज्झितः ।

नोपात्तः संशयोत्पत्तेः सैव चैकार्थता तयोः ॥

[ ] पृ. १९६ (१३,१३,१४,१५,१६)

तपता निर्जरा च । [ तत्त्वार्थ० ९-३ ] पृ. ७३५,७३७

तमोनिरोधे वीक्षन्ते तमसाऽनादृतं (वृत्तं) परम् ।

पटादिकम्-। [ ] पृ. ५४४ (१)

तद्विद्व-ल्लिङ्गिपूर्वकम् । [ साङ्ख्यका० ५ ] पृ. ५७२ (३)

तस्यात् तद् द्रव्यमेष्टव्यं प्रतिबिम्बादि सांश्रुतम् ।

तेषु तद् व्यभिचारित्वं दुर्निवारमतः स्थितम् ॥

[ तत्त्वसं० का० १०९४ ] पृ. २१६ (२२)

तस्मात् तन्मात्रसम्बन्धः स्वभावो भावमेव वा ।

निवर्तयेत् कारणं वा कार्यमव्यभिचारतः ॥

[ ] पृ. ५५९ (७)

५ - संनमतिटीकागतान्यवतरणानि ।

तस्मात् सर्वेषु यद्गुणं प्रत्येकं परिनिष्ठितम् ।  
 गोबुद्धिस्तद्धिमिता स्याद् गोलान्दन्व्यत्र नास्ति तत् ॥  
 [ श्लो० वा० अपो० श्लो० १० ] पृ. १८७ (१५)  
 तस्मात् स्वतः प्रमाणत्वं सर्वत्रौत्सर्गिकं स्थितम् ।  
 बाधकारणदुष्टलज्जानाभ्यां तदपोयते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० २८९२ ] पृ. १८  
 तस्मादननुमानत्वं शब्दे प्रत्यक्षवद् भवेत् ।  
 ग्रहप्यरहितत्वेन तादृशिवचयवर्जनात् ॥  
 [ श्लो० वा० शब्दप० श्लो० १८ ] पृ. ५७४ (७)  
 तस्माद् यतो यतोऽर्थाणां व्यावृत्तिस्तन्निबन्धनः ।  
 जातिभेदाः प्रकृत्यन्वये तद्विशेषावगाहिनः ॥  
 [ ] पृ. २४३ (२३, २४)  
 तस्माद् यत् स्पर्शते तत् स्यात् सादृश्येन बिभोषितम् ।  
 प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम् ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ६ उपमान० श्लो० ३७ ] पृ. ४६, ५७६ (५)  
 तस्माद्यत्वेन संस्कारं नियमेनानुवर्तते ।  
 तन्मान्तराधिक्यं चित्तमतश्चित्तसमाश्रितम् ॥  
 [ ] पृ. ७७, १५९ (४)  
 तस्माद् यस्यैव संस्कारं नियमेनानुवर्तते ।  
 शरीरं पूर्वदेहस्य तत् तदन्यथि युक्तिमत् ॥  
 [ ] पृ. ९२  
 तस्माद् गोष्वेव शब्देषु नञ्प्रयोगस्तेषु केवलम् ।  
 भवेदन्यनिवृत्त्यंशः स्वल्पेनान्यत्र गम्यते ॥  
 [ श्लो० वा० अपो० श्लो० १६४ ] पृ. २०१ (१२)  
 तस्माद् व्याख्याज्ञमिच्छद्भिः सहेतुः सप्रयोजनः ।  
 ब्राह्मणवतारसम्बन्धो बाध्यो नान्यस्तु निष्कलः ॥  
 [ श्लो० वा० सू० १ श्लो० २५ ] पृ. १६९ (११)  
 तस्य शक्तिशक्तिर्वा या स्वभावेन संस्थिता ।  
 नित्यत्वाच्चिकित्सस्य कृतां क्षपयितुं शमः ॥  
 [ ] पृ. ४८२ (६), ६८४ (७)  
 तस्यापि कारणानुद्देशेन ज्ञानस्य प्रमाण्यात् ।  
 तस्याप्येवमितीत्यं तु न कश्चिद्व्यवतिष्ठते ॥  
 [ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ५१ ] पृ. ५  
 तस्यैव चैतानि निःश्रुतानि ।  
 [ बृह० उ० अ० २ ब्रा० ४ सू० १० ] पृ. ३२  
 तस्यैव व्यभिचारार्थां शब्देऽप्यर्थानि चारिणि ।  
 शेषवत् साधनं हेतुं कर्तुं नो तस्त्वपिदितः ॥  
 [ ] पृ. ३०९  
 तस्योपकारकत्वेन वर्ततेऽप्रकृत्येनरः ।  
 उभयोरेपि संबन्धोऽभ्युपगमोऽस्ति तु ॥  
 [ श्लो० वा० अनादप० श्लो० १४१ ] पृ. ५८१ (७)  
 तादात्म्यं चेद् मतं जातेत्येकजन्मन्यजातता ।  
 नाशेऽनाशश्च केनेष्टस्तद्वत्त्वा न लघो न किम् (१) ॥  
 [ ] पृ. २४० (१०)

तादृक् प्रत्यवमर्शाथ यत्र नैवास्ति वस्तुति ।  
 अगोशब्दाभिधेयत्वं विसृष्टं तत्र गम्यते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०६३ ] पृ. २१२  
 तादृक् प्रत्यवमर्शाथ विद्यते यत्र वस्तुति ।  
 तत्राभावेऽपि गोऋतेरगोपोहः प्रवर्तते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०६० ] पृ. २११ (१५)  
 तामभावोत्थितामन्यामथापत्तिमुदाहरेत् ।  
 [ श्लो० वा० अर्थोप० श्लो० ९ ] पृ. ५७९  
 ताश्च व्यावृत्तयोऽर्थाणां कल्पनाच्छिक्तिनिर्मिताः ।  
 नापोह्याधारभेदेन भिद्यन्ते परमार्थतः ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०४६ ] पृ. २०३  
 तासां हि बाह्यरूपत्वं कर्तितं न तु वास्तवम् ।  
 भेदाभेदात् च तद्वेन वस्तुत्वेन व्यवस्थितौ ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०४७ ] पृ. २०९  
 ता हि तेन विनोत्पन्ना मिथ्याः स्युर्विचयादृते ।  
 न लन्येन विना वृत्तिः सामान्यश्रेह दुष्यति ॥  
 [ श्लो० वा० आहृ० श्लो० ३८ ] पृ. २४०  
 तित्थणामं काउं ।  
 [ अ वदयकनि० समवस० गा० ४५ ] पृ. ७१४ (३)  
 नुयं तु तद्विनिर्जोऽसौ पचतीत्यवसीयते ।  
 तेनात्र विधिवाक्येन एवमन्यनिवर्तनम् ॥  
 [ तत्त्वसं० का० ११५८ ] पृ. २२५ (२३)  
 तेन जन्मैव विषये बुद्धेर्व्यापार उच्यते ।  
 तदेव च प्रमाहं तद्वती करणं च धीः ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ४ श्लो० ५६ ] पृ. १०  
 तेन यत्राप्युभौ धर्मौ ।  
 [ श्लो० वा० अनु० श्लो० ४ ] पृ. ९४  
 तेन सम्बन्धवेलाया सम्बन्धन्यत्रो ध्रुवम् ।  
 अर्थापत्त्यैव मन्तव्यः पथदस्त्वनुमानता ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ५ अर्थोपत्ति० श्लो० ३३ ] पृ. ४७ (२)  
 तेन सर्वत्र दृष्टत्वाद्वातिरेकस्य चागते ।  
 सर्वैशब्देरशोषार्थप्रतिपत्तिः प्रसज्यते ॥  
 [ श्लो० वा० शब्दप० श्लो० ८८ ] पृ. ५७५  
 तेनायमपि शब्दस्य स्वार्थ इत्युपचर्यते ।  
 न च साक्षादयं शब्दै द्वि(वैद्वि)विधोऽपोह उच्यते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०१५ ] पृ. २०३ (२७, २८)  
 तेषामदृश्यमानानां कथं च रचनाक्रमः ।  
 कीदृशाद् रचनाभेदात् वर्णभेदश्च जायताम् ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० १०९१ ] पृ. ३८  
 तेषामेवानेन ह्येव व्यवस्थितत्वात् तदव्यतिरिक्तं विकारमात्रं  
 कार्यं त एव । [ ] पृ. ४२२  
 तैरेव गृह्यते शब्दो न दूरस्थैः कथञ्चन ।  
 [ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ८६ ] पृ. ३५  
 तो सत् । [ पा० सू० ३-२-१२७ ] पृ. ४४३



## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

त्रिगुणमविनेकिनिययः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि ।

व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्य च पुमान् ॥

[ साङ्ख्यका० ११ ] पृ. २८१

त्रियैव सः । [ ] पृ. ५५८, ५५९,

त्रिरूपाणि च त्रीण्येव लिङ्गानि । [ ख० न्या० सू० ११ ] पृ. ३

त्रिरूपाणि त्रैवैव । [ ] पृ. ४८०

त्रिरूपाणि त्रिभिः त्रिभिः ज्ञानमनुमानम् ।

[ ] पृ. ५०२ (६)

त्रिरूपाणि त्रिभिः त्रिभिः ज्ञानमनुमानम् ।

[ ] पृ. ३

नैगुण्यस्याविशेषेऽपि न सर्वं सर्वकारकम् ।

[ तत्त्वसं० का० २८ ] पृ. ३०१ (११)

द

दर्शनेन क्षणिकाक्षणिकलसाधारणस्यार्थस्य निषयीकरणत्  
कृतश्चिद् भ्रमनिमित्तादक्षणिकत्वोपेऽपि न दर्शनमक्षणिकत्वे  
प्रमाणम् किन्तु प्रयुताप्रमाणम् विपरीतावसायाकान्तत्वात्  
क्षणिकत्वेऽपि न तद् प्रमाणं अनुरूपाव्यवसायाजननात् नील-  
रूपे तु तथाविधनिषेधकरणात् प्रमाणम् ।

[ ] पृ. ४७१

द्वन्द्वद्वयाए सासया, पञ्चद्वयाए असासया ।

[ ] पृ. ६३९

दिग्देशाद्यविभागेन सर्वान् प्रति भवन्नपि ।

तथैव यत्समीपस्थैर्नादैः स्याद् यस्य संस्कृतिः ॥

[ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ८६ ] पृ. ३५

दु खरूपत्वात्तानुकरण्या प्रवृत्तिः अवाप्तकामत्वात् क्रीडायां  
हृत्वेतरपि पविद्धतमविशालेन, यतो नासौ प्रयोजनमपेक्ष्य प्र-  
वर्तते, नहि गन्धर्वेनगरादिविभ्रमाः समुद्दिष्टप्रयोजनानां प्रादुर्भ-  
वन्ति । [ ] पृ. २७८ (५)

दु खे विपर्ययसमतिस्तृष्णा वाऽन्यकारणम् ।

जन्मिनो यस्य ते न स्तो न स जन्माधिगच्छति ॥

[ ] पृ. १४८

दृश्यमानव्यपेक्षं चेद् दृष्टज्ञानं प्रमान्तरम् ।

तत्पूर्वमसादित्यादि प्रमाणान्तरसिष्यताम् ॥

[ ] पृ. ५८३

दृश्यमानाद् यद्यन्यत्र विज्ञानमुपजायते ।

सादृश्योपाधितत्त्वहौरुपमानमिति स्पृष्टम् ॥

[ ] पृ. ५७५

दृश्यात् परोक्षे सादृश्यधीः प्रमाणान्तरं यदि ।

वैधर्म्यमतिरप्येवं प्रमाणं किं न सप्तमम् ॥

[ ] पृ. ५८३

दृष्टः पञ्चभिरप्यसाद् भेदेनोक्ता श्रुतोद्भवा ।

प्रमाणप्राहिणीत्वेन यस्मात् पूर्ववैलक्षण्यम् ॥

[ श्लो० वा० अर्थाप० श्लो० २ ] पृ. ५७८

दृष्टः श्रुतो वाऽर्थोऽन्यथा नोपपद्यते ।

[ नीमांसाद० अ० १ पा० १ सू० ५ शाबरभा० ] पृ. ७१

१०३ सं० ५०

दृष्टः श्रुतो वाऽर्थोऽन्यथा नोपपद्यते इत्यदृष्टार्थकल्पनाऽर्था-  
पत्तिः । [ मीमां० शाबर० सू० ५ पृ० ८ पं० १७ ] पृ. ४६

देवदत्तोपकरणभूतानि मणिमुक्ताफलादीनि द्वीपान्तरसम्भू-  
नि देवदत्तगुणकृतानि, कार्यत्वे सति देवदत्तोपकारकत्वात्,  
शकटादिभत् । न च तद्देशोऽसन्निहिता एव तद्गुणास्त्वात्  
न्युत्पादयितुं समर्थाः, नहि पटदेशोऽसन्निधानवन्तस्तन्तु-तुति-  
कुमिन्दादयः पटमुत्पादयितुं क्षमाः । आत्मगुणानां च तद्देश-  
सन्निधानं न तद्गुणिसन्निधिमन्तरेण सम्भवि भगुणलप्राप्तेः  
ततस्तस्यापि तद्देशत्वम् । [ ] पृ. १४६

देशकालस्वभावनियमो न स्यात् ।

[ ] पृ. ८

देशकालादिभेदेन तदाऽस्त्यवसरो भित्तेः ।

[ श्लो० वा० सू० ४ श्लो० २३३ ] पृ. ५६ (४)

देश-कालादिभेदेन तत्रास्त्यवसरो भित्तेः ।

यः पूर्वमवगतो नाशः ( नाशः ) स च नाम प्रतीयते ॥

[ श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३३ ] पृ. ३१९ (६, ७, ८)

देवरक्षा हि किंशुक्राः । [ ] पृ. १२ (५)

दोषाः सन्ति न सन्तीति पौरुषेयेषु चिन्त्यते ।

वेदे कर्तुरभावात्तु दोषासाद्वैव नास्ति नः ॥

[ तत्त्वसं० का० २८९५ ] पृ. ११ (३)

द्वन्द्वेन विना वैषां संश्लेषः कल्प्यतां कथम् ।

आगच्छतां च विश्लेषो न भवेद् वायुना कथम् ॥

[ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ११० ] पृ. ३८

द्वन्द्वत्वादिभिरनिर्धारितरूपैर्यैः सम्बन्धो दम्बादीनां । स  
शब्दार्थः; स च सम्बन्धिना शब्दार्थत्वेनासत्यत्वाद्दस्य इत्यु-  
च्यते । यद्वा तपः श्रुतारीना मेचकवर्णवर्देक्येन भासनादिभावेन  
परस्परमसत्यः संसर्गः । [ ] पृ. १८० (६)

दम्बम् । [ व्याधिः ] पृ. १७९ (३)

द्वन्द्वधर्म्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्षः ।

[ वैशेषिकद० १-२-३६ ] पृ. ६३३, ६७३

दाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥

[ भग० गी० अ० १५ श्लो० १५ ] पृ. ९८

द्विष्टसम्बन्धसंवित्तिर्नैकरूपप्रवेदनात् ।

[ ] पृ. २ (७), २६५

द्विष्टसम्बन्धसंवित्तिर्नैकरूपप्रवेदनात् ।

द्वयस्वरूपग्रहणे सति सम्बन्धवेदनम् ॥

[ ] पृ. ४८३ (११)

द्वीन्द्रियप्राप्ताप्राप्तं विमल्यधिकरणभावापरं बुद्धिमत्कारण-  
पूर्वकम्, स्वारम्भकावयवसन्निवेशनिशिष्टत्वात्, घटादिभत् वैध-  
र्म्येण परमाणवः ।

[ ] पृ. १०० (४, ५)

द्वौ प्रतिषेधौ प्रकृतमर्थं गमयतः ।

[ ] पृ. १०९

## ५ - सन्मतिटीकागतान्यमतरणानि ।

ध

धर्मयोर्भेद इद्यो हि धर्ममेवेऽपि नः स्थिते ।  
 उद्भवाभिभावात्मत्वाद् ग्रहणं चावतिष्ठते ॥  
 [ श्लो० वा० अभावप० १-२० ] पृ. ५८१ (१२, १३)  
 धर्मस्याव्यभिचारस्तु धर्मोपान्यत्र दश्यते ।  
 तत्र प्रसिद्धं तद्युक्तं धर्मिणे गमयिष्यति ॥  
 [ ] पृ. ५५४ (८)  
 धर्माधर्मक्षयं करी वीक्षा । [ ] पृ. ५३२  
 धर्मो धर्मविक्षिपुश्च लिङ्गीत्येतच्च साधितम् ।  
 न तावत्तुमानं हि यावत्प्रतिषयं न तत् ॥  
 [ श्लो० वा० शब्दप० ५६ ] पृ. ५७५ (१)  
 न  
 न कार्यं कारणे विद्यते इति तेभ्यस्तत् पृथग्भूतम् न हि  
 कारणेषु कार्यरूपेण व्यतिष्ठते परिणमते वा ।  
 [ ] पृ. ४२२  
 नक्षत्र-प्रहपञ्जरमहर्निशं लोककर्मविक्षिप्तम् ।  
 भ्रमति शुभाशुभमशिलं प्रकाशयत् पूर्वजन्मकृतम् ॥  
 [ ] पृ. ९१  
 न च कार्यम् कारणं नास्ति इत्यमात्रमेव तत्त्वम् ॥  
 [ ] पृ. ४२२  
 न च स्मरणतः पञ्चादिन्द्रियस्य प्रवर्तनम् ॥  
 [ श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३५ ] पृ. ४९६  
 न च स्याद् व्यवहारोऽयं कारणादिभिर्भागतः ।  
 प्रागभावादिभेदेन नाभावो यदि भिद्यते ॥  
 [ श्लो० वा० अभावप० श्लो० ७ ] पृ. ५८० ( ६, ७ )  
 न चागमविधिः कश्चिन्नित्यः सर्वज्ञोऽथकः ।  
 न च मन्त्रार्थवादानां तात्पर्यमवकल्पते ॥  
 [ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११८ ] पृ. ४५  
 न चागमेन सर्वज्ञत्वादीयेऽन्योन्यसंभ्रयात् ।  
 नरान्तरपणीतस्य प्रामाण्यं गम्यते कथम् ॥  
 [ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११९ ] पृ. ४५  
 न चात्रान्यत्रा भ्रान्तिरुपचारेण वेद्यते ।  
 दृढत्वात् सर्वथा बुद्धेर्भ्रान्तिष्वपि भ्रान्तिवादिनाम् ॥  
 [ श्लो० वा० आहू० श्लो० ७ ] पृ. २३२ (७)  
 न चान्यरूपमन्यादकं कुर्याज्ज्ञानं विशेषणम् ।  
 कथं चान्यादशो ज्ञाने तदुच्येत विशेषणम् ॥  
 [ श्लो० वा० अपो० श्लो० ८९ ] पृ. १९२ (१५)  
 न चान्यविनिर्मुक्ता प्रवृत्तिः शब्द-लिङ्गयोः ।  
 [ ] पृ. १९०  
 न चापि लिङ्गतः पञ्चादिन्द्रियस्य प्रवर्तनम् ।  
 बाधते केनचिन्नापि तदिदानीं प्रदुष्यति ॥  
 [ ] पृ. ४९९  
 न चान्यश्चादिशब्दो जायतेऽप्योद्बोधनम् ।  
 विशेष्यबुद्धिरिदं न चाज्ञातविशेषणा ॥  
 [ श्लो० वा० अपो० श्लो० ६८ ] पृ. १९२

न चावस्तुन एते स्युर्भेदास्तेनाऽस्य वस्तुनि ( वस्तुता )  
 [ श्लो० वा० अभा० परि० श्लो० ८ ] पृ. १८६  
 न चावस्तुन एते स्युर्भेदास्तेनाऽस्य वस्तुता ।  
 कार्योदीनामभावः को मानो यः कारणादि न ॥  
 [ श्लो० वा० अभावप० श्लो० ८ ] पृ. ५८० (८)  
 न चासाधारणं वस्तु गम्यतेऽप्योद्भवत्तया ।  
 कथं वा परिकल्प्येत सम्बन्धो बह्ववस्तुनोः ॥  
 [ श्लो० वा० अपो० श्लो० ८६ ] पृ. १९२ (१३, १४)  
 न चेश्वरत्वव्याघातः सापेक्षत्वेऽपि, यथा सवितृप्रकाशस्य  
 स्फटिकाद्यपेक्षस्य, यथा वा करणाधिष्ठायकस्य क्षेत्रज्ञस्य, सापे-  
 क्षत्वेऽपि तेषु तस्येश्वरता द्वादत्रापि ( तद्वत्रापि ) नेश्वरता-  
 विषं( विषं ) घातः । [ ]  
 पृ. ९९ (३, ४)  
 न चैकस्यैव सर्वास्तु गमनं दिक्षु युज्यते ।  
 [ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ११३ ] पृ. ३८  
 न चैतस्यागुमानत्वं पक्षधर्मस्यसम्भवात् ।  
 प्राक् प्रमेयस्य सादृश्यं न धर्मत्वेन गृह्यते ॥  
 [ श्लो० वा० उपमान० श्लो० ४३ ] पृ. ५७७ (१)  
 न जातिशब्दो मेदानां वाचकः आनन्त्यात् ।  
 [ ] पृ. १७५ (६)  
 न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।  
 हविषा कृष्णबल्लेव भूय एवाभिनर्धते ॥  
 [ महाभा० आदिप० अ० ७८ श्लो० १२ ] पृ. १५३  
 न तदात्मा परात्मेति सम्बन्धे सति वस्तुभिः ।  
 व्यावृत्तबह्वधिगमोऽप्यधीदेव भवत्यतः ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०-१४ ] पृ. २०३ (२५, २६)  
 न तावदिन्द्रियेणैषा नास्तीत्युत्पाद्यते मतिः ।  
 भावादीनेव संयोगे योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि ॥  
 [ श्लो० वा० अभावप० श्लो० १८ ] पृ. ३५१, ५८० (५)  
 न तावच्च देवोऽसौ न तत्कालेऽप्यगम्यते ।  
 भवेन्नित्यविभुत्वाच्च सर्वार्थेष्वपि तत्समम् ॥  
 [ श्लो० वा० शब्दप० ८७ ] पृ. ५७५ (४)  
 न त्वेकारमन्युपेयानां हेतुरस्ति बिलक्षणः ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ५ श्लो० ८६ ] पृ. २७८  
 नदीपूरोऽप्यधीदेशे दृष्टः सन्नूपरिस्थिताम् ।  
 नियम्यो गमयत्येव वृत्तां वृष्टिं नियामिकाम् ॥  
 [ ] पृ. ५७० (३)  
 ननु गुणव्यतिरेको गुणी उपलभ्यत एव तद्रूपदिगुणा-  
 प्रद्वेऽपि तस्य प्रद्वणात् । तथाहि मन्दमन्दप्रकारो तद्वत्सि  
 तारिरूपानुपलम्भेऽपि उपलभ्यते बलाकादिः, स्वगतशुद्धगुणा-  
 प्रद्वेऽपि च सन्निहितोपधानानस्वार्थां गृह्यते स्फटिकोपलः,  
 तथाऽऽप्रपदीनकश्चकान्चक्षत्रातीरः पुमास्वद्वत्तद्यामादिरूपा-  
 प्रतिभासेऽपि 'पुमान्' इति प्रत्ययोत्पत्तेः प्रतिभात्येव, कुङ्कुमा-  
 दिरक्तं च वस्त्रं तद्रूपस्य संघर्गिरूपेणाऽभिभूतस्य अप्रकारोऽपि

## ५. - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

प्रकाशत एव 'वन्नम्' इति प्रत्ययव्युत्पत्तेः अध्यसत एव गुण  
गुणिनोर्भेदः सिद्धः । तथा, अनुमानतोऽपि तयोर्भेदः ।  
तथाहि—यद् यत्नवच्छेयत्वेन प्रतीयते तत् ततो मित्रम्,  
यथा देवदत्ताद् अश्वः, गुणिव्यवच्छेयत्वेन प्रतीयन्ते च नीलो-  
त्पलस्य रूपादय इति । तथा, पृथिव्यप्-तेजो-वायवो द्रव्याणि  
रूप-रस-गन्ध-स्पर्शभ्यो भिन्नानि, एकवचन-बहुवचनविषय-  
त्वात्, यथा 'चन्द्रः' 'नक्षत्राणि' इति, तथा च 'पृथिवी' इति  
एकवचनम् 'रूप-रस-गन्ध-स्पर्शः' बहुवचनमुपलभ्यते इति  
तयोर्भेदः । भवयवाऽवयविनोरप्यनुमानतः सिद्धो भेदः ।  
तथाहि—विवादाधिकरणेष्वस्तन्तुभ्यो भिन्नः पटः भिन्नकूर्च-  
कलात् घटादिनत्, भिन्नशक्तिक्त्वाद् वा विषागद्वत्,  
पूर्वोत्तरकालभावित्वाद् वा पितापुत्रवत्, विभिन्नपरिमाणत्वाद्  
वा कुवल-निल्ववत् इति । विरुद्धधर्माध्यासानिबन्धनो  
हायत्रापि साबारानां भेदः, स च अप्यस्ति इति कथं न भेदः ?  
यदि चावयवौ अवयवभ्यो भिन्नो न भवेत् स्थूलप्रतिभासो  
न स्यात्, परमाणूनां सूक्ष्मत्वात् । न च अन्याद्व्यभूतः प्रति-  
भासः अन्याद्व्यवस्थापकः अतिप्रपञ्चात् । न च स्थूला-  
भावे 'परमाणुः' इति व्यपदेशोऽपि सम्भवी, स्थूलापेक्षित्वाद्  
अणुत्वस्य । [ ]

पृ. ६५८ (९), ६५९ (१,२,३,४,५,६,७,८.)

ननु ज्ञानफलाः शब्दाः । [ ]

पृ. २०४ (१८)

ननु ज्ञानफलाः शब्दा न वैकस्य फलद्रव्यम् ।

अपवाद-विधिज्ञानं फलमेकस्य वः कथम् ॥

[ भाष्यार्थं परि० ६ श्लो० १८ ] पृ. १८६ (४,५)

ननु भावादभिन्नत्वात् सम्प्रयोगोऽस्ति तेन च ।

न ह्यत्यन्तमभेदोस्ति रूपादिबहिर्हापि नः ॥

[ श्लो० वा० अभावप० १९ ] पृ. ५८१ (११)

न नैवमिति निर्देशो निषेधस्य निषेधनम् ।

एवमित्यनिषेधं तु स्वरूपेणैव तिष्ठति ॥

[ ] पृ. १९९

नन्वन्यापोहकृच्छन्दो युष्मत्पक्षेनुर्गमितः ।

निषेधमात्रं नैवेह प्रतिभासैव ( सेऽन ) गम्यते ॥

[ तत्त्वसं० का० १० ] पृ. १८५ (१४,१५,१६)

न प्रत्यक्षपरोक्षाभ्यां मेयत्वान्यस्य सम्भवः ।

तस्यात् प्रमेयद्विधेन प्रमाणद्विलिप्यते ॥

[ ] पृ. ५७४

न प्रत्यात्मवेदनीयस्य सुखस्य प्रतीतेः प्रत्याख्यानम् ।

[ ] पृ. १५३

न याति न च तत्रासीदस्ति पश्चात्त वांशवत् ।

जहाति पूर्वं नापारमदो व्यसनसन्ततिः ॥

[ ] पृ. ६९१ (२)

नयास्तव स्थापदलाच्छना इमे रसोपविद्धा इव लोहधातवः ।

भवन्त्यभिप्रेतफला यतस्ततो भवन्तमार्थाः प्रणता हितैषिणः ॥

[ इहस्तयम्भूतोत्रम् ६५ ] पृ. ७५७

न रेखाकादयः बाहिरत्वेन कानीनां गमनाः, एवं रेखागव-  
यादयोऽपि न गवयान्नेन सत्यगवयादीनाम्; अपि तु साहस्य्यात्  
एवंरूपा गवयादयः सत्याः, वर्णप्रतिपत्त्युपाया अपि रेखाका-  
दयः पुरुषसमायात् वर्णानां स्मारकाः न तु तेषां वर्णत्वेन  
वर्णप्रतिपादकत्वम्, रेखादिरूपेण च सत्त्वाद् गृहीतसमयानां  
पुनरुपलभ्यमानाः समयं स्मारयन्ति समयग्रहणाद् यथैव  
श्रुत्युत्पन्नानां बालादिषु प्रवृत्तिः । [ ]

पृ. २७९ (१८,१९,२०)

नर्ते तदागमात् सिध्द्ये न च तेनागमो विना ।

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० १५२ ] पृ. ५१

न बाच्यं वाचकं चास्ति परमार्थेन किञ्चन ।

क्षणमात्रेषु भावेषु व्यापकत्वविद्योगतः ॥

[ तत्त्वसं० का० १०९० ] पृ. २१६ (९,१०)

न विकल्पानुबद्धस्य स्पष्टार्थप्रतिभासिता ।

स्वप्नेऽपि स्मर्यते स्मार्ते न च तत् तादृगर्थदृग् ॥

[ ] पृ. ५०२ (१४)

न वै किञ्चिदेकं जनकम् । [ ]

पृ. ४०० (१०), ५२७ (४)

न वै हिलो भवेत् । [ ]

पृ. ७३१ (२)

न व्यकशक्तिरीशोऽयं क्रमेणाप्युपपद्यते ।

व्यकशक्तिरतोऽन्यथेतु भावो ऐक्यः कथं मनेत् ॥

[ ] पृ. ७१७ (१)

न शाबलेयाद् गोबुद्धिः ततोऽन्यालम्बनापि वा ।

तदभावेऽपि सद्भावाद् घटे पार्थिवबुद्धिबत् ॥

[ श्लो० वा० नन० श्लो० ४ ] पृ. ६९५

न स त्रिविधादेतोरन्यत्रास्तीत्यत्रैव नियत उच्यते ।

[ ] पृ. ५५८ (९)

न सदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।

शक्यस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम् ॥

[ सां० का० ९ ] पृ. २७ (११)

न सर्वलोकसाक्षिकं सुखं प्रत्याख्यातुं शक्यम् ।

[ ] पृ. १५३ (४)

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादिते ।

अनुविद्धात्मैव ज्ञानं सर्वशब्देन भासते ॥

[ वाक्यप० श्लो० १२४ प्रथमका० ] पृ. ३८० (९,१०)

न हि तत् केवलं नीलं न च केवलमुत्पलम् ।

समुदायाभिधेयत्वात् । [ ]

पृ. १९६ (२१)

नहि तत् क्षणमप्यास्ते जायते वा प्रमातृकम् ।

येनाप्यग्रहणे पश्चात्प्रियेतेन्द्रियादिबत् ॥

[ श्लो० वा० सू० ४ श्लो० ५५ ] पृ. १०

नहि दृष्टेऽनुपपन्नम् । [ ]

पृ. ७५

५ - अन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

नहि भिन्नावभासित्वेऽप्यर्थान्तरमेव रूपं नीलस्यानुभवात् ।  
 [ ] पृ. ३६४  
 न हि स्वरणतो यत् प्राक् तत् प्रत्यक्षमिद्रीदशम् ॥  
 [ श्लो० ना० प्रत्यक्ष० श्लो० ३३४ ] पृ. ३१९  
 न हेतुरस्तीति नदत्त घट्टेत्तुर्कं ननु प्रतिज्ञां स्वयमेव बाधते ।  
 अथापि हेतुप्रणयालसो भवेत् प्रतिज्ञया केवलयाऽस्य किं भवेत् ॥  
 [ ] पृ. ७१२-१४  
 नद्यप्रत्यक्षे कार्ये कारणभावात्तः ।  
 [ ] पृ. १४  
 नद्यवश्यं कारणानि फलवन्ति । [ ] पृ. ३४६  
 न ह्यस्य दृष्ट्यदेतद् मम गौरं रूपं सोऽस्मिन्मिति भवति  
 प्रत्ययः, केवलं मनुज्योपं कृत्वैर्न निर्दिशति ।  
 [ न्यायना० पृ० ३४१ पं० २३ ] पृ. ८०  
 नद्याभ्यामर्थं परिच्छिद्य प्रवर्तमानोऽर्थक्रियायां निसंवाद्यते ।  
 [ ] पृ. ४६८  
 न हेतुं किञ्चिजनकम्, सम्प्रती वै जनिका ।  
 [ ] पृ. १२  
 नाकारणं विषयः । [ ] पृ. ६५८  
 नाकमात् क्रमिणो भावः ।  
 [ ] पृ. १८४ (१५)  
 नाकमात् क्रमिणो भावो नाप्यपेक्षा विशेषिणः ।  
 क्रमाद्भवन्ती धीर्हेयात् क्रमं तस्यापि सेत्स्यति ॥  
 [ ] पृ. ३३६ (२२, २३)  
 नापृहीतविशेषणा विशेष्ये बुद्धिः ।  
 [ ] पृ. ८४, ५७४ (७), ६१६, ७२४,  
 नातीन्द्रियार्थप्रतिषेधो विशेषस्य कस्यचित् साधनेन निरा-  
 करणेन वा कार्यः—तदभावे विशेषसाधनस्य तन्निराकरणहेतो-  
 र्बाऽऽप्रयासिद्धत्वात्—किन्त्वतीन्द्रियमर्थमभ्युपगच्छंस्तत्सिद्धौ प्र-  
 माणं प्रष्टव्यः । स चेत् तरिसिद्धौ प्रयोजकं हेतुं दर्शयति 'ओम्'  
 इति कृत्वाऽसौ प्रतिपत्तव्यः । अथ न दर्शयति प्रमाणाभा-  
 वादेवासौ नास्ति, नतु विशेषाभावात् ।  
 [ ] पृ. ९८  
 नातोऽसतोऽपि भावलमिति क्लेशो न कश्चन ।  
 [ तत्त्वसं० का० १०८४ ] पृ. २१४ (२४)  
 नादेनाऽऽहितधीजायामन्येन च्चनिना सह ।  
 भावस्यपरिपाकायां बुद्धौ शब्दोऽवभसते ॥  
 [ वाक्यप० प्र० का० श्लो० ८५ ] पृ. ४३५ (२)  
 नाधारविषयवृत्त्यादिसम्बन्धव्याप्यमानयोः ॥  
 [ श्लो० ना० अपो० श्लो० ८५ ] पृ. १९१ (१६)  
 नानुभूतान्वयव्यतिरेकं कारणं नाका(नाकर)णं विषयः ।  
 [ ] पृ. ३१२, ५१० (१) ५७३ (६) ७२८  
 नाप्योऽनुभाव्यो बुद्ध्यास्ति तस्या नानुभनोऽपरः ।  
 प्राग्भावाद्भवैधुर्यात् स्वयं सैव प्रकाशते ॥  
 [ ] पृ. ४८३ (७, ८, ९)

नापोह्यलमभावात्तानुभावाभावानवर्जनात् ।  
 व्यफोऽपोहान्तरेऽपोहस्तस्मात् सामान्यवस्तुतः ॥  
 [ श्लो० ना० अपो० श्लो० ९५ ] पृ. १९४  
 नाभावोऽपोहते हेतवं नाभावो भाव इत्ययम् ।  
 भावस्तु न तदात्मैति तत्त्वैवमपोहता ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०८१ ] पृ. २१४  
 नाशुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।  
 [ ] पृ. १५०  
 नायूर्णं मूर्त्ततामेति मूर्त्तं नायात्यमूर्त्तताम् ।  
 दस्यं कालत्रयेऽपीत्यं च्यवते नात्मरूपतः ॥  
 [ ] पृ. ४५६ (१)  
 नार्थशब्दविशेषस्य वाच्यवाचकतेष्यते ।  
 तस्य पूर्वमदृष्टत्वात् सामान्यं तद्गदेक्ष्यते ॥  
 [ ] पृ. १९५ (१२, १४)  
 नावश्यं कारणानि तद्वन्ति भवन्ति ।  
 [ ] पृ. ५६२  
 नासिद्धे भावधर्मोऽस्ति ।  
 [ ] पृ. ४८० (३), ५६२ (९)  
 नासौ न पचतीत्युक्ते गम्यते पचतीति हि ।  
 औदासीन्यादियोगश्च तृतीये नभि गम्यते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० ११५७ ] पृ. २२५  
 नास्तिता पयसो दग्धि प्रच्छंसाभावलक्षणम् ।  
 गवि योऽश्वायभावस्तु सोऽन्योन्याभाक् उच्यते ॥  
 [ श्लो० ना० अभावप० श्लो० ३ ] १८६ (१२), ५८१  
 नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वाऽहेतोरन्यानपेक्षणात् ।  
 अपेक्षतो हि भावानां कादाचित्कजसम्भवः ॥  
 [ ] पृ. ६९, ७४  
 नित्य-नैमित्तिके कुर्यात् प्रत्ययव्यतिहासया ।  
 मोक्षार्था न प्रवर्तते तत्र काव्य-निषिद्धयोः ॥  
 [ ] पृ. १५१  
 नित्य-नैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ।  
 शानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन तु पाचयेत् ॥  
 [ ] पृ. १५०  
 नित्यमेकमण्डल्यापि निष्क्रियम् ।  
 [ ] पृ. ७३१  
 नित्यानुमेयत्वात् समवायस्यानुमानगोचरता, तेनायमदोष  
 इति । तच्चानुमानम्—'इह तन्मुषु पटः' इति बुद्धिस्तन्मुषु-  
 पट-व्यतिरेकसम्बन्धपूर्विका 'इह इति बुद्धित्वात्' इह कंसपात्र्यां  
 जलबुद्धिवत् । [ ] पृ. १०७  
 'निरंशं बस्तु सर्वाभिमना विषयीकृतं नांशेन' इत्येवं विकृत्यो  
 नानतरति, सर्वैशान्दस्यानेकार्थविषयत्वात् एकशब्दस्य चावयव-  
 वृत्तित्वात् । [ ] पृ. २२०  
 निरन्वयविनशरे बस्तु प्रतिक्षणमवैशमाणोऽपि नावधारयति ।  
 [ ] पृ. ७१६

## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

निराकारमेव ज्ञानमर्थोन्मुखमुपलभ्यमानं प्रतिनियमेन कृतं  
सर्वसाधारणमिति सिद्धः प्रतिकर्मप्रत्ययः ।

[ ] पृ. ५६३

निराकारो नो बुद्धिः । [ ] पृ. ५६२

निराकारो बोधोऽर्थसद्विधान्येकसामान्यधीनस्तत्रार्थे प्रमाणम् ।

[ ] पृ. ५५९

निर्गुणा गुणाः । [ ] पृ. ६७६ (५)

निर्बिंबो हि सामान्यं भवेच्छराविषाणवत् ॥

[ श्लो० वा० आकृति० श्लो० १० ] पृ. ५०७

यत्र निर्वीयते रूपं तत् तेषां विषयः कथम् ॥

[ ] पृ. ३८२ (२)

निर्धीयमाननिर्धीयमानयोर्भेदानिश्चयकं बाध्यक्षं परपक्षे ।

[ ] पृ. ३८६ (२,३)

निर्बेधमात्रं वेवेह शब्दे ज्ञानेऽवभासते ।

[ तत्त्वसं० का० १-१३ ] पृ. २०१ (१३)

निष्पत्तेरपराधीनमपि कार्यं स्वहेतुना ।

सम्बन्धते कल्पनया किमकार्यं कथञ्चन ॥

[ ] पृ. ६३

निःसामान्यानि सामान्यानि ।

[ ] पृ. २२२ (६), ५६६

नीलोत्पलादिसाब्दा अर्थान्तरनिवृत्तिविशिष्टानयोनाहुः ।

[ ] पृ. १९१, २१२ (२०, २१)

नेदं प्रत्यक्षलक्षणविधानं किन्तु लोकप्रसिद्धप्रत्यक्षानुवादेन  
प्रत्यक्षस्य धर्मं प्रत्यनिमित्तत्वविधानम् ।

[ ] पृ. ५३५ (३)

नेष्टोऽसाधारणस्तानद् विशेषो निर्विकल्पकतात् ।

तथा च शान्तेयादिरसामान्यप्रसङ्गतः ॥

[ श्लो० वा० अयो० श्लो० ३ ] पृ. १८७ (१५, १६, १७, १८)

नेह नानास्ति किञ्चन ।

[ बृहदा० उ० अ० ४ ब्रा० ४ मं० १९ ] पृ. २७३ (७)

नेरुदेशत्राससाहचर्येभ्योऽर्धन्तरभावात् ।

[ न्यायद० २-१-३८ ] पृ. ५६३

नेरुह्या मतिगौले मिथ्या नक्तुं च शक्यते ।

नात्र कारणदोषोऽस्ति बाधकः प्रत्ययोऽपि वा ॥

[ श्लो० वा० वन० श्लो० ४९ ] पृ. ६९६

नेकात्मतां प्रपद्यन्ते न भिद्यन्ते च खण्डशः ।

स्वल्पशणात्मका अर्था विकल्पः प्रवृत्ते लघौ ॥

[ तत्त्वसं० का० १-७९ ] पृ. २०९ (१६, १७)

नेगम-सङ्गद-व्यवहारलुप्त-शब्द-समभिरुद्धैवम्भूता नयाः ।

[ तत्त्वार्थ० १-३३ ] पृ. ६५५, ६५६

नेव दानादिचिन्तात् स्वर्गः यदि ततो भवेत् तदनन्तरमेवासौ  
भवेत् अन्यथा मृताच्छिञ्जिनः केकायितं भवेत् तस्मात् ततो  
धर्मस्तस्माच्च स्वर्गः ।

[ ] पृ. ५०५ (७)

नो चेद् भ्रान्तिनिमित्तेन संयोज्येत् गुणान्तरम् ।

शुणौ वा रजताकारो रूपसाधर्म्यदर्शनात् ॥

[ ] पृ. ५०७

नोभयमनर्थकम् । [ ] पृ. १५२ (१)

प

पक्षधर्मतानिश्चयः प्रत्यक्षतः कश्चित् ।

[ ] पृ. ५१२ (१२)

पक्षधर्मतानिश्चयः प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा ।

[ ] पृ. ७६

पक्षधर्मसदंशेन न्यातो हेतुत्रिषैव सः ।

अभिनाभावनियमादेलागासास्तोऽपरे ॥

[ ] पृ. ५५६ (३)

पञ्चविंशतितत्त्वसो यत्र तत्राश्रमे रतः ।

शिखी मुष्ठी जटी बाऽपि मुच्यते नात्र संवायः ॥

[ ] पृ. २८१ (८)

पदमप्यधिकाभावात् स्यारकात् विधिष्यते ।

[ श्लो० वा० शब्दप० श्लो० १०७ ] पृ. ७४२

पदं लभ्यधिकाभावात् स्यारकात् विधिष्यते ।

अयाधिक्यं सवेत् किञ्चित् स पदस्य न गोचरः ॥

[ श्लो० वा० शब्दप० श्लो० १०७ ] पृ. ४३९ (८, ९, १०)

पदार्थपूर्वकस्वत्वाद् वाक्यार्थोऽयमवस्थितः ।

[ श्लो० वा० वाक्याधि० श्लो० ३३६ ] पृ. ७४३

पदार्थानां तु मूलत्वमिष्टं तद्भावभावतः ।

[ श्लो० वा० वाक्याधि० श्लो० १११ ] पृ. ७४३

परमाणुत्वात्कामिमत्तं कारणं सदमोषितं न भवति, सत्त्व-  
प्रतिपादकप्रमाणाविषयत्वात्, शशाशङ्कतत् ।

[ ] पृ. ६५८

परमात्माऽभिमाणोऽप्यविशविद्वतमानसैः ।

सुख-दुःखादिभिर्भागेभेदानि च लक्ष्यते ॥

[ ] पृ. ४१४

परलोकिनोऽभावात् परलोकाभावात् ।

[ ] पृ. ७३१ (५)

पराधीनेऽपि चैतस्मिन्ज्ञानवश्या प्रसज्यते ।

प्रमाणाधीनमेतद्धि स्वतस्त्वं प्रतिष्ठितम् ॥

[ तत्त्वसं० का० २८५३ ] पृ. १८

परानुप्रहार्यमीश्वरः प्रवर्तते यथा कश्चित् कृतायो मुनिरारम-  
हिताऽहितप्राप्ति-परिहारायांसम्भवेऽपि परहितार्थमुपदेवादिर्कं  
करोति, तथा ईश्वरोऽपि आत्मीयार्थेष्वभिभूतिं विख्याप्य  
प्राणिनोऽनुप्रहरीष्यन् प्रवर्तते इति अथवा शक्तिसामान्यात् यथा  
कालस्य वसन्तादीनां पर्यायेण अभिव्यक्तौ स्थावर-जङ्गमवि-  
कारोत्पत्तिः स्वभावतः तथैव ईश्वरस्यापि आभिर्भावाऽनुप्रह-  
संहारवाचीनां पर्यायेण अभिव्यक्तौ प्राणिनामुत्पत्ति स्थिति-  
प्रत्ययहेतुत्वम् । [ ] पृ. ७१६ (७, ८)

परार्थाच्चक्रादयः । [ ] पृ. ३०९

५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

प्राथं प्रयुज्यमानाः शब्दा वृत्तिमन्तरेणापि तमर्थं गमयन्ति ।  
 [ ] पृ. १३३  
 परिणामवर्तना-विधिपराऽपरत्वे ।  
 [ प्रथमर० प्र० श्लो० २१८ ] पृ. ६४ (५,६)  
 परिमाणव्यवहारकाणं परिमाणं महद्, अणु, धीर्घम्, ह्रस्व-  
 मिति चतुर्विधम् । [ ] पृ. ६७५ (२)  
 परोऽप्येव ततश्चास्य सम्बन्धवदनादिता ।  
 तेनेयं व्यवहारात् स्यादकौटस्थोऽपि नित्यता ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० २८९ ] पृ. ३९  
 पलालं न दहत्यभिर्दशते न गिरिः क्वचित् ।  
 नासंयतः प्रव्रजति भव्यजीवो न सिद्धपति ॥  
 [ ] पृ. ३१७ (११,१२)  
 पश्चादुपलभ्यते बुद्धिः [ ] पृ. ३६३ (६)  
 परयतः श्वेतमारूपं हेषाशब्दं च शृण्वतः ।  
 पदविक्षेपशब्दं च श्वेताश्वो धावतीति पी. ॥  
 [ श्लो० ना० चाक्याधि० श्लो० ३५८ ] पृ. ७४१ (३)  
 परयन्नपि न परयति । [ ] पृ. २४५,५०६  
 पिण्डं सेजं च कर्तयं च चउत्थं पायमेव य ।  
 अकपियं ण इच्छेज्जा पडिगाहेज्ज कपियं ॥  
 [ दशवै० अ० ६ गा० ४७ ] पृ. ७५१  
 पिंडविषोही समिद्धं भावण-पडिमाद् इंदियनिरोहो ।  
 पडिलेहण-गुतीओ अभिगगहा चैव करणं तु ॥  
 [ ओपनि० गा० ३ ] पृ. ७५५ (३)  
 पिण्डभेदेषु गोबुद्धिरैकगोलनिबन्धना ।  
 गवाभासेकरूपाभ्यामैकगोपिण्डबुद्धिवत् ॥  
 [ श्लो० वा० वन० श्लो० ४४ ] पृ. ६९५ (३,४)  
 पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमा ।  
 सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥  
 [ ] पृ. ५५, ५७० (४)  
 पीनो दिवा न भुङ्क्ते इत्येवमादिवचःश्रुतौ ।  
 रात्रिभोजनविज्ञानं श्रुतार्थोपतिष्ठन्त्येते ॥  
 [ श्लो० वा० अथोप० श्लो० ५१ ] पृ. ५७९  
 पुनरनग्रहीतविषयाकाङ्क्षणीहा ।  
 [ ] पृ. ५५३ (४)  
 पुरुष एवेदं सर्वम् ।  
 [ श्वेताश्वत० उ० अ० ३, १५ ] पृ. ३१०  
 पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतम् ।  
 [ ऋक्ष० मण्ड० १० सू० ९० ऋ० २ ] पृ. २७३ (१०)  
 पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।  
 [ ऋ० ने० म० १० सू० १० ] पृ. ७१५ (४)  
 पुरुष एवैकः सकललोकस्थिति-सर्ग-प्रलयहेतुः प्रलयेऽपि अलुप्त-  
 क्षानातिशयशक्तिः ।  
 [ ] पृ. ७१५ (२)

पुरुषस्य दर्शनार्थं केवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।  
 पश्यन्धवदुभयोरभिसंयोगात् तत्कृतः सर्गः ॥  
 [ साङ्ख्यका० २१ ] पृ. ३०७ (१६)  
 पुरुषो जन्मिना हेतुर्नोत्पत्तिकलत्ततः ।  
 गगनाम्भोजत्रत् सर्वमन्यथा युगपद् भवेत् ॥  
 [ ] पृ. ७१५ (७)  
 पुंसि दुष्णिष्णाणं दुष्पडिकंताणं कडाणं कम्माणं ।  
 [ ] पृ. ९३ (३)  
 पूर्वरूपसाधर्म्यात् तत् तथाप्रसाधितं नानुमेयतामतिपतति ।  
 [ ] पृ. ७५ (२)  
 पूर्वोपरीभूतं भावमाख्यातमाचष्टे ।  
 [ नि० अ० १ ख० १ ] पृ. ७३९  
 पृथिव्यादिगुणा रूपादयस्तदर्थाः ।  
 [ ] पृ. ५१९ (१६)  
 दिव्यादिप्रहणेन त्रिविधं द्रव्यमुपलब्धिलक्षणप्राप्तं गृह्यते  
 गुणप्रहणेन सर्वो गुणोऽस्यदाद्युपलब्धिलक्षणप्राप्त आश्रितत्व-  
 विशेषणत्वाभ्याम् । [ ] पृ. ५१९  
 प्रकृतीशादिजन्यत्वं न हि बलु प्रसिद्धयति ।  
 [ तत्त्वसं० का० १०८३ ] पृ. २१४ (३३)  
 प्रकृतेर्महान् महतोऽईकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः ।  
 तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥  
 [ सांख्यका० का० २२ ] पृ. २८१ (१) ७३३ (४)  
 प्रतिज्ञार्थैकदेशो हि हेतुस्तत्र प्रसज्यते ।  
 पक्षे धूमविशेषे हि सामान्यं हेतुरिष्यते ॥  
 [ श्लो० वा० शब्दप० ६३ ] पृ. ५७५  
 प्रतिपिपादसिचित्तिसोपो धर्माः ।  
 [ ] पृ. ५९२  
 प्रतिभाघतोऽप्यक्षतः । [ ] पृ. ३७१ (६)  
 प्रतिभासोपमाः सर्वे धर्माः ।  
 [ ] पृ. ३७१ (८)  
 प्रतिसूर्यश्च काल्यनिकः प्रकाशकिया कुर्वन् दृष्ट एव ।  
 [ ] पृ. २८० (८)  
 प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम् ।  
 [ ] पृ. ५१८ (१५)  
 प्रत्यक्षं कल्पनापोढं प्रत्यक्षैरेव सिध्यति ॥  
 [ ] पृ. ५०३  
 प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा । [ ] पृ. ३१८  
 प्रत्यक्षनिराकृतो न पक्षः । [ ] पृ. ३५१ (६)  
 प्रत्यक्षमन्यत । [ तत्त्वार्थ० १-१२ ] पृ. ५९५  
 प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणम् । [ ] पृ. ७३,५५६

## ५ - सम्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

प्रत्यक्षस्याभावविषयत्वनिरोधान्न ततः प्रमाणान्तराभावो-  
ऽवसादुं शक्यः नापि कार्यस्वभावलक्षणादनुमानात् कार्य-  
स्वभावयोर्विधिसाधकत्वेनाभावसाधने व्यापारानभ्युपगमात्  
कारणव्यापकानुपलब्धोस्तु अत्यन्तासत्तयोपगतौ प्रमाणान्त-  
रेऽभावसाधकत्वेन व्यापार एव न सङ्गच्छते अत्यन्तासत्तस्य  
कार्यत्वेन व्याप्यत्वेन वा कस्यचिदसिद्धेः । तयोश्च कार्यकारण-  
व्याप्यव्यापकभावसिद्धावेव व्यापाराद् विरुद्धविधिरप्यत्रासम्भवी  
सद्धानवस्थानलक्षणस्य विरोधस्यात्यन्तासत्तसिद्धेः ।

[ ] पृ. ५७२ (४)

प्रत्यक्षदेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभावा उच्यते ।  
सात्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं बान्यवस्तुनि ॥  
[ श्लो० वा० अभावप० श्लो० ११ ] पृ. २२, ५८० (३)  
प्रत्यक्षाद्यवनाश भावांशो गृह्यते यदा ।  
व्यापारस्तदनुत्पत्तेरभानांशे जिष्टक्षित ॥  
[ श्लो० वा० अभावप० श्लो० १७ ] पृ. ५८१ (८, ९, १०)  
प्रत्यक्षाऽनुपलम्भसाधनं कार्यकारणभावम् ।

[ ] पृ. ९५

प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि सादृश्ये गवि च दृश्यते ।  
विशिष्टस्यान्यतोऽसिद्धेरुपमानप्रमाणात् ॥  
[ श्लो० वा० उपमान० श्लो० ३८ ] पृ. ५७६  
प्रत्यक्षेऽपि यथा देशो स्पर्शमात्रे च पावके ।  
विशिष्टविषयत्वेन नानुमानाप्रमाणात् ॥

[ श्लो० वा० उपमान० श्लो० ३९ ] पृ. ५७६

प्रत्येकसमवेताऽपि जातिरेकैव बुद्धितः ।  
'नञ्'युक्तेष्विव वाक्येषु प्राङ्मणादिनिवर्तनम् ॥

[ श्लो० वा० नन० श्लो० ४७ ] पृ. ६१६

प्रत्येकसमवेतार्थविषयैवाध गोमतिः ।  
प्रत्येकं कृत्स्नरूपत्वात् प्रत्येकस्यचिदुद्धितम् ॥

[ श्लो० वा० नन० श्लो० ४६ ] पृ. ६१५ (५)

प्रमाणं हि प्रमाणेन यथा नात्येन साध्यते ।  
न सिध्यत्यप्रमाणत्वप्रमाणात् तथैव हि ॥

[ तत्त्वसं० का० २८६४ ] पृ. १८

प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भ- [ न्यायद० १, २, १ ]

पृ. ५६० (२)

प्रमाणातोऽर्थप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिसामर्थ्यादर्थवत् प्रमाणम् ।

[ चाट्या० भा० अ० १ सू० १ ] पृ. ११०, ५०९

प्रमाण-नयैरधिगतः । [ तत्त्वार्थ० अ० १ सू० ६ ]

पृ. ४२०

प्रमाणनिबन्धना प्रमेयव्यवस्थितिः ।

[ तत्त्वोपप्लव ] पृ. ७३-७४

प्रमाणपञ्चकं यत्र ।

[ श्लो० वा० सू० ५ अभाव० श्लो० १ ] पृ. ४१

प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपे न जायते ।

बल्लुसत्तावयोधार्थं तत्राभावप्रमाणात् ॥

[ श्लो० वा० सू० ५ अभावप० श्लो० १ ] पृ. २१, ५८०

प्रमाणमविविधं । [ ]

पृ. ४६५ (६)

प्रमाणमविविधं ज्ञानम् । [ ]

पृ. १४, १५

प्रमाणमविविधं ज्ञानम् अपरैक्याधिधितिरविविधानम् ।

[ ] पृ. १५, ५१३ (५)

प्रमाणपदरुचिज्ञातो यत्रार्थो नान्यथा भवेत् ।

अदृष्टं कल्पयत्यन्यं साऽद्यापत्तिरदाहृता ॥

[ श्लो० वा० अर्थोप० श्लो० १ ] पृ. ५७८ (१२, १३, १४)

प्रमाणस्य प्रमाणेन न बाधा नाप्यनुपहः ।

बाधायामप्रमाणत्वमानर्थक्यमनुग्रहः ॥

[ ] पृ. ४५९ (११, १२)

प्रमाणस्य सतोऽत्रैवान्तर्भावोद्दे एव प्रमाणे ।

[ ] पृ. ५९०

प्रमाणस्यागौणत्वादनुमानार्थनिश्चयो दुर्लभः ।

[ ] पृ. ७० (२)

प्रमाणाधीना हि प्रमेयव्यवस्था । पृ. ३८४ (१)

प्रमाणाभावनिर्णयतत्रैवाभावविशेषितात् ।

गेहात्त्रैवहिर्भावसिद्धिर्मा लिव दृशिता ॥

[ श्लो० वा० अर्थोप० श्लो० ८ ] पृ. ५७९

प्रमातृ-प्रमेयाभ्यामर्थान्तरमव्यवदेयाव्यभिचारिव्यवसाया-  
त्मकज्ञाने कर्त्तव्येऽर्थः सद्कारी विद्यते यसा तद् अर्थवत्

प्रमाणम् । [ ] पृ. १०९

प्रमेया च तुलाप्रामाण्यवत् । [ न्यायद० २, १, १५ ]

पृ. ५२२, ५२८ (३)

प्रयोगनियम एव एकलक्षणो हेतुः ।

[ ] पृ. ७२६

प्रसज्यप्रतिषेधस्तु गौरगौरं भवत्ययम् ।

इति विस्मृत् एवायमन्यापोहोऽवगम्यते ॥

[ तत्त्वसं० का० १०१० ] पृ. २०२ (१७, १८)

प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम् ।

[ न्यायद० १, १, ६ ] पृ. ५७७ (८)

प्रहाणे नित्यपुत्रागत्याप्रतिकूलत्वम् । नास्य नित्यसुखा-  
भावः ( नित्यपुत्रभावः ) प्रतिकूल इत्यर्थः । यथेवं मुक्तस्य

नित्यं सुखं भवति, अद्यापि न भवति नास्मोभयोः पक्षयोर्मो-  
क्षधिगमाभावः ।

[ वाट्या० भा० अ० १ आ० १ सूत्र २२ ]

पृ. १४४, १५४ (७)

प्राक् शब्दयोजनात् मतिज्ञानमेतत् शेषमनेकप्रमेद ( वं )  
शब्दयोजनादुपजायमानमविशदं ज्ञानं श्रुतम् ।

[ ] पृ. ५५३

प्रागर्गोरिति विज्ञानं गोरैवन्वशाभिणो भवेत् ।

येनैवो. प्रतिषेवाय प्रवृत्तो गोरिति ध्वनिः ॥

[ भासहासं० परि० ६ श्लो० १९ ] पृ. १८६ (६, ७)

५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

प्रापणशक्तिः प्रामाण्यम् तदेव च प्रापकत्वम् अन्यथा  
ज्ञानान्तरस्वभावेन व्यवस्थितायाः प्राप्तेः कथं प्रवर्तकज्ञान-  
शक्तिसम्भवात् ? तत्र यद्यपि प्रत्यक्षं बलुक्षणप्राप्तिं तद्वाह-  
कत्वं च तस्य प्रवेशकत्वं तथापि शक्तिरूपेण तस्याप्राप्तेः  
तत्सन्तान एव प्राप्यत इति सन्तानाध्यवसायोऽध्यक्षस्य प्रद-  
र्शकव्यापारो दृश्यः, अनुमानस्य तु बलुप्रदाहकत्वात् तत्प्राप-  
कत्वं यद्यपि न सम्भवति तथापि स्वाकारस्य बाह्यबलव्यवसा-  
येन पुरुषप्रवृत्तौ निमित्तभावोऽस्तीति तस्य तत्प्रापकमुच्यते ।

[ तत्त्वसं० का० ४६८ (२,३,४,५) ]

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण सौम्यः  
सोऽवश्यं भवति वृणां शुभोऽशुभो वा ।  
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने  
नाभावं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः ॥

[ तत्त्वसं० का० ७१४ (७) ]

प्रामाण्यं व्यवहारेण । [ ]

[ तत्त्वसं० का० १११, ४१७ (१२) ]

प्रामाण्यं व्यवहारेण शास्त्रं मोहनिवर्तनम् ।

[ तत्त्वसं० का० ५०८ (३) ]

प्रामाण्यं व्यवहारेणार्थक्रियालक्षणेन ।

[ तत्त्वसं० का० १५ ]

प्रामाण्यप्रहणात् पूर्वं स्वरूपेणैव संस्थितम् ।

निर्पेक्षं स्वकार्यं च । [ श्लो० बा० सू० २ श्लो० ८३ ]

[ तत्त्वसं० का० ७ (७,८) ]

प्रेरणाजनिता बुद्धिर्न प्रमाणं न चाप्रमा ।

गुण-दोषनिर्मुक्तकारणेभ्यः समुद्भवात् ॥

[ तत्त्वसं० का० ११ ]

प्रेरणाजनिता बुद्धिरप्रमा गुणवर्जितैः ।

कारणैर्जन्यमानत्वाद्वाऽऽप्तौ कबुद्धिबत् ॥

[ तत्त्वसं० का० ११ ]

प्रेरणाजनिता बुद्धिः प्रमाणं दोषवर्जितैः ।

कारणैर्जन्यमानत्वाद्वाऽऽप्तौ काशुद्धिबत् ॥

[ श्लो० बा० सू० २ श्लो० १८४ ] [ तत्त्वसं० का० ११ ]

प्रेरणैव धर्मं प्रमाणम् । [ ]

[ तत्त्वसं० का० ४१ ]

च

बन्धवियोगो मोक्षः । [ ]

[ तत्त्वसं० का० ७३६ (१) ]

बहुव्ययेण बुवयणं । [ ]

[ तत्त्वसं० का० २७२ (८) ]

बहुव्ययिभ्यलेन तत्सङ्घेतानुसारतः ।

सामान्य-भेदवाच्यत्वमप्येषां न विवक्ष्यते ॥

[ तत्त्वसं० का० १०५५ ] [ तत्त्वसं० का० २०९ ]

बह्वारम्भपरिप्रदत्वं च नारकस्य ।

[ तत्त्वसं० का० ६ सू० १६ ] [ तत्त्वसं० का० १२ (२) ]

बाधकप्रत्ययस्वावर्धन्यत्वावधारणम् ।

सोऽनपेक्षप्रमाणत्वात् पूर्वज्ञानमयोद्वेते ॥

[ तत्त्वसं० का० २८९९ ] [ तत्त्वसं० का० ११ ]

बाधकान्तरमुत्पन्नं यद्यस्यान्विच्छतोऽपरम् ।

ततो मध्यमबाधेन पूर्वस्यैव प्रमाणात् ॥

[ तत्त्वसं० का० २८९८ ] [ तत्त्वसं० का० १९ ]

बाधाज्ञाने त्वनुत्पन्ने का शब्दा निरप्रमाणात् ।

[ तत्त्वसं० का० ३४१ (९) ]

बाधं तपः परमदुश्चरमाचरत्स्वमाध्यात्मिकस्य तपसः परि-  
चृदणार्थम् । [ स्वयंभूतो० ८३ ] [ तत्त्वसं० का० ७५० (१) ]

बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितं महाभूतादिकं व्यक्तं सुख-दुःख-  
निमित्तं भवति, भवेत्तन्नात्, कार्यत्वात्, विनाशित्वात्,  
रूपादिमत्त्वात्, नात्यादिवत् ।

[ न्यायना० प्र० ४५९ ] [ तत्त्वसं० का० १०१ ]

बुद्धिरुपलब्धिज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ।

[ न्यायद० १-१-१५ ] [ तत्त्वसं० का० ४६२, ६८३ (२) ]

बुद्धौ योऽर्था निवर्तन्ते तानाह जननादयम् ।

निवृत्त्या च विशिष्टत्वमुक्तमेवामन्तरम् ॥

[ तत्त्वसं० का० १०७१ ] [ तत्त्वसं० का० २१२ (२५) ]

बुद्ध्यादीनां नवानां विशेषगुणानामात्यन्तिकः क्षय आत्मनो  
मुक्तिः । [ तत्त्वसं० का० ११३ ] [ तत्त्वसं० का० ११३ ]

बुद्ध्याहमेनाकारं बाह्यबलुविषयं बाह्यबलुतया यद्वि-  
बुद्धिरुपत्वेनाभिभावितं शब्दार्थम् ।

[ तत्त्वसं० का० १८१ (२,३) ]

ब्रह्म-जीवात्मनाममेदेऽपि विम्ब-प्रतिविम्बवत् विद्याऽवि-  
द्यान्यवस्थां वर्णयन्ति । कथं पुनः संसारिषु विद्याया भाग-  
न्तुक्त्याः सम्भवः श्रवण-मनन-ध्यानाभ्यास-तत्साधनयम-  
नियम-ब्रह्मचर्यादिसाधनत्वात्, तस्य पूर्वमसत्त्वादविद्यावत् ।

स च श्रवण-मनन-पूर्वकध्यानाभ्यासोऽखिलभेदप्रतियोगी  
सुव्यक्तमेव वेदे दर्शितः- 'स एष नेति न' [ चृददा० उ० अ० ३ ]

ना० ९ म० २६ ] इत्यादिना सप्रतियोगित्वाद् भेदप्रपञ्चं  
निवर्तयताऽऽत्मनापि प्रलीयते, यतः श्रोतव्यादीनामभावे न

श्रवणादीनामुपपत्तिः, स तु तथाभूतोऽभ्यस्यमानः स्वविषयं  
प्रविलापयन्तारमोपघाताय कल्पते तदभ्यासस्य परिशुद्धात्मप्र-

काशफलत्वात् यथा रज सम्पर्ककलुषे उदके द्रव्यविशेषवृणी-  
रजः प्रक्षिप्तं रजोऽन्तराणि संहरत् स्वयमपि संह्रियमाणं

स्वस्थां स्वरूपावस्थां मुपनयति एवं श्रवणादिभिर्भेदातिरिक्त-  
विशेषात् स्वगतेऽपि भेदे समुच्छिन्ने स्वरूपे संसार्थवतिष्ठते

यतोऽविद्ययैव परमात्मनः संसार्थमा भिद्यते तन्निरवृत्तौ कथं न  
परमात्मस्वरूपता यथा घटादिभेदे व्योमः परमाकाशादेव भव-

त्यवच्छेदकव्यावृत्तौ ? तत्रैतत् स्यात्-श्रवणादिभेदविषयत्वाद्-  
विद्यास्वभावः कथं वा अविद्यैव अविद्या निवर्तयति ? उक्तमत्र

यथा रजसा रजसः प्रसामः एवं भेदातीतब्रह्मश्रवणमनन-  
ध्यानाऽभ्यासानां भेददर्शनविरोधित्वादविद्याया अप्यविद्यानिव-

र्तकत्वम् । तथा च तत्त्वविद्विरत्रार्थे निदर्शानान्युक्तानि-यथा  
पयः पयो जरयति स्वयं च जीर्यति, यथा विषं विषान्तरं



## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

शामयति स्वयं च शाश्यति [ ] एवं श्रव-  
णादिषु प्रष्टव्यम् । [ ]

पृ. २७८, २७९ (१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२)

प्राज्ञाणादिसन्देशयो-जाति-श्रुतादिसमुदायो विना विकल्प-  
समुच्चयाभ्यामभिधीयते, यथा वनादिशान्देशबादयः ।

पृ. १८० (२, ३)

प्राज्ञाणो न हन्तव्यः । [ ]  
पृ. ७३१ (१)

अ

भर्तुं सिन्धुसणसमूहमहस्यस्य जगयसारस्य ।  
जिणवयणस्य भगवजो संविगगसुदाहिगम्मस्य ॥

[ स० त० का० ३ गा० ६९ ] पृ. २९

अननु सांख्यकारिकं विशदमध्यक्षम् अनुमानादिकं त्वच-  
रितरूपत्वादिप्रमाणाभावाच्च प्रमाणमनुपपन्नमिति कथं वाच्यसंयो-  
जनात् श्रुतं स्थूत्याद्युपपत्तिम् ? तदुक्तम्—प्रमाणस्यागौणत्वा-  
दनुमानादर्शनिर्णयो दुर्लभः ।

[ चार्वाकाः ] पृ. ५५४ (१, २)

अविष्यं वैषोऽयं न ज्ञानकालेऽस्तीति न प्रतिभाति ।

[ ] पृ. ४९६ (५)

अविष्यति न दृष्टं च, प्रत्यक्षस्य वनागपि । सामर्थ्यम् ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११५ ] पृ. ३१ (२)

अव्या नि ते अणता सिद्धिर्हं जे ण पावेति ।

[ ] पृ. ७५१

भारतेऽपि भवेदेवं कर्तृस्त्वत्वा तु बाध्यते ।

वेदे तु तत्स्मृतिर्या तु साऽर्थबादनियन्धना ॥

[ श्लो० वा० सू० ७ श्लो० ३६७ ] पृ. ४०

भावतस्तु न पर्याया नापर्यायाश्च बाचकाः ।

न श्लेकं वाच्यमेतेषामनेकं चेति नर्णितम् ॥

[ तत्त्वसं० का० १०३३ ] पृ. २०७ (७, ८, ९, १०)

भावनेव हि वाक्यार्थः सर्वत्राख्यातवत्या ॥

[ श्लो० वा० वाक्यार्थि० श्लो० ३३० ] पृ. ७४३

भावान्तरविनिर्मुक्तो भावोऽत्रानुपलम्भवत् ।

अमारः सम्मतस्तस्य हेतोः किं न समुद्भवः ॥

[ ] पृ. १० (४), ३२० (१६)

भावान्तरात्मकोऽभावो येन सर्वो व्यवस्थितः ।

तत्राश्रयार्थनिवृत्त्यात्माऽभावः क इति कथ्यताम् ॥

[ श्लो० वा० अयो० श्लो० २ ] पृ. १८७ (१३, १४)

भावा येन निरूप्यन्ते तद्रूपं नास्ति तत्त्वतः ।

यस्मादेकमनेकं वा रूपं तेषां न विद्यते ॥

[ ] पृ. ३७६ (१५)

भावे चो विकल्पः स्याद् विधेर्वैतलनुरोधतः ।

[ ] पृ. ३३३ (११)

भाष्याणाम् - - - - -

[ ] पृ. ७४१

१०४ सं० ५०

भुवनदेतवः प्रधान-परमाण्वदृष्टाः स्वकार्योत्पत्तावतिरायबुद्धि-  
मन्तमधिष्ठातारमपेक्षन्ते; स्थित्वा प्रवृत्तेः, तन्तु-तुर्यादिवत् ।

[ न्यायवा० पृ० ४५७ ] पृ. १०१

भूतियेषां क्रिया सैव कारकं सैव बोध्यते ।

[ ] पृ. ४५५ (१)

भूतेभ्यः । [ न्यायद० १-१-१२ ] पृ. ५३१

मेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तिः प्रवृत्तेषु ।

कारणकार्यनिभागादविभागाद् वैश्वरूपस्य ॥

[ साङ्ख्यका० १५ ] पृ. २८४ (१)

मेदे हि कारणं किञ्चिद् नस्तु धर्मतया भवेत् ।

अमेदे तु विरुद्धेते तस्यैकस्य क्रियाऽक्रिये ॥

[ ] पृ. ३०१ (१४)

भोगाभ्यासमनुवर्धन्ते रागाः, कौशलाणि चेन्द्रियाणाम् ।

[ पात० यो० पा० २ सू० १५ व्यासभा० ] पृ. १५३

भ्रान्तिरपि सम्बन्धतः प्रमा ।

[ ] पृ. ४८१ (५), ५०८ (१८)

भ्रान्तिर्षट्शतिसंज्ञानमनुमानानुमानिकम् ।

सार्ताभिलाषिकं चेति प्रत्यक्षाभं सतैमिरम् ॥

[ ] पृ. ५३७

म

मण्ड इ तमेव सत्त्वं पितृसंकं जं जिणेहि पन्नतं ।

[ धर्मसं० ८१२ ] पृ. ७५६

मति-श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्यस्वधर्पर्यायोऽपि ।

[ तत्त्वार्थ० अ० १ सू० २७ ] पृ. १६१ (१), ७३२

मति-श्रुताऽवधि-मनःपर्याय-केवलानि ज्ञानम् ।

[ तत्त्वार्थ० १, ९ ] पृ. ५५५

मत्तिस्मृतिर्ज्ञानाचिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।

[ तत्त्वार्थ० १-१३ ] पृ. ५५३ (८)

ममेव प्रतिभासो यो न संस्थानवर्जितः (?) ।

एवमन्यत्र दृष्टत्वादनुमानं तथा सति ॥

[ ] पृ. २५९ (१८)

महत्यनेकद्रव्यवत्त्वाद् कृपाक्षोपलम्बिवः ।

[ वैशेषिकद० अ० ४-१-६ ] पृ. १००, १०३, ६५८

महाभूतादिव्यक्तं चेतनाधिष्ठितं प्राणिनां सुख-दुःखनिमित्तम्,  
रूपादिमत्त्वात्, तुर्यादिवत् । तथा पृथिव्यादीनि महाभूतानि  
बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितानि स्वाद्य धारणायाद्यु क्रियाद्यु प्रवर्तन्ते,  
अनित्यत्वात् वास्यादिवत् ।

[ न्यायवा० पृ० ४६७ ] पृ. १००

मायोपगाः सर्वे धर्माः ।

[ ] पृ. ३७७, ४८८ (८)

मालादौ च महत्त्वादिदिष्टो यत्रौपचारिकः ।

मुक्याऽनिशिष्टनिज्ञानमाश्रयानौपचारिकः ॥

[ ] पृ. १७९

५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

श्रियाऽप्यारोपहार्यं यकोऽसत्यपि मोक्षते ।  
 [ ] पृ. १६२, ४१८  
 मुष्ठाः सर्वत्र तिष्ठन्ति व्योमवत् तापवर्जिताः ।  
 [ ] पृ. १३३  
 मुख्यसंख्यहारेण संवादि विरादं मतम् ।  
 ज्ञानमप्यक्षमन्यदि परोक्षमिति सङ्ग्रहः ॥  
 [ ] पृ. ५९५  
 मूर्च्छां परिग्रहः । [ तत्त्वार्थ ७-१२ ] पृ. ७४७  
 मूर्ति-सर्वादिमहत्त्वं च तेषामभिभव. सताम् ।  
 जगत्प्राणतन्मये च सूक्ष्मा भाषाः प्रकृतिरताः ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० १०८ ] पृ. ३८  
 मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदायाः प्रकृति-विकृतयः सप्त ।  
 बोधशक्त्यु विचारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुष्पः ॥  
 [ साङ्ख्यका० ३ ] पृ. २६  
 मूलप्रकृतेः कारणत्वमेव, भूतेन्द्रियलक्षणस्य बोधशक्त्यणस्य  
 कार्यत्वमेव, महत्त्वरूपरतन्मःप्राणां च पूर्वोत्तरापेक्षया कार्यत्व-  
 कारणत्वे च । [ ] पृ. २९६ (५)  
 मृत्पिण्ड-दण्ड-चक्रादि षटो जन्मन्यपेक्षते ।  
 चरकादरणे तस्य तदपेक्षा न विद्यते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० २८५१ ] पृ. ५ (९)  
 मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।  
 [ बुद्धदा० उ० ७-४ ब्रा० ४ मं० १९ ] पृ. २७३ (८)  
 मेयादिना सन्नितृप्रकाशः सन्निता वा सप्रकाश एवाच्छाद्यते ।  
 [ ] पृ. १५३  
 मेयामावात् प्रमाभावनिर्णयेऽन्योन्यसंश्रयः ।  
 मेयामानात् प्रमाणस्य तस्मात् तस्य विनिर्णयात् ॥  
 [ ] पृ. ५८७  
 मोक्षे भवे च सर्वत्र निःस्पृहो मुनिःततमः ।  
 [ ] पृ. १६३  
 य  
 "य एव पर्यायः स एव गुणः" [ ] पृ. ६३५  
 य एव लौकिकाः शब्दास्त एव वैदिकाः ।  
 [ ] पृ. ३९  
 य एव व्यावृत्तः क्षेत्र व्यावृत्तिः । [ ] पृ. २३६  
 य एव श्रेयस्करः स एव धर्मान्देनोच्यते ।  
 [ भीमासाह० १-१-२ शार० पृ० ४ पं० १५ ] पृ. ५०५  
 यन्वीररत्नमीपत्यैर्नादैः स्याद् यस्य संस्कृतिः ।  
 तैर्यथा श्रूयते शब्दस्तथा रूपात्तैर्न किम् ॥  
 [ ] पृ. ३५  
 यज्जातीयेः प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनम् ।  
 दृष्टं सम्प्रति ज्ञेयस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत् ॥  
 [ श्लो० वा० सू० १ श्लो० ११३ ] पृ. ४६, ४९  
 यत् कश्चिद् दृष्टान्तस्य (दृष्टं तस्य) यत्र प्रतिबिम्बः तद्विदः  
 तत्र तद् गमकं तत्रेति. वस्तुगतिः ।  
 [ ] पृ. ३२२ (३१)

यज्जतः प्रतिबेध्या नः पुरुषाणां स्वतन्त्रता ।  
 [ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० २९० ] पृ. ३९  
 यत् पुनरनुमानं प्रत्यक्षऽऽगमविरुद्धं न्यायाभासः स इति ।  
 [ वात्स्यायनभा० पृ० ४ पं० ५ ] पृ. ७२१  
 यत्र जलवासेः 'इदं कर्तव्यम्' इति पुरुषाः प्रतीततदासभा-  
 वा नियुज्यन्ते तत्रानधीरिततत्प्रेरणाऽतथाभावविषयविचारस्तद-  
 मिहितं वाक्यमेव बहु मन्यमाना अनादृतप्रयोजनपरिग्रहा  
 एव प्रवर्तन्ते, विनिश्चिततदासभावानां प्रत्यवस्थानासम्भवात् ।  
 [ ] पृ. १७२ (७)  
 यत्र धूमोऽस्ति तत्राग्नेरस्तिस्वेनान्वयः स्फुटः ।  
 न त्वेवं यत्र शब्दोऽस्ति तत्रार्थोऽस्तीति निश्चयः ॥  
 [ श्लो० वा० शब्द प० ८६ ] पृ. ५७५  
 यत्र विशेषकिया नैव श्रूयते तत्रास्तिर्भवन्तीपरः प्रथम-  
 पुरुषेऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति गम्यते ।  
 [ ] पृ. ३१६ (३)  
 यत्राप्यतिशयो दृष्टः । [ ] पृ. ५२७ (१)  
 यत्राप्यतिशयो दृष्टः स स्वायोनितिलङ्घनात् ।  
 दूर-सूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तितः ॥  
 [ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११४ ] पृ. ४९ (१)  
 यत्रासौ वर्तते भावत्वेन सम्बध्यते न च ।  
 तदेतन्न च न्यायोति किमप्येतद् महाद्वतम् ॥  
 [ ] पृ. ६९१  
 यत्रैव जनयेदेना तत्रैवाप्य प्रमागता ।  
 [ ] पृ. ५१२ (७)  
 यत्सभिधाने यो दृष्टस्तदुष्टेस्तदुनौ स्मृतिः ।  
 [ ] पृ. ५२३ (४, ५)  
 यथा तुल्येऽपि भिन्नत्वे केचिद् दृश्यवृत्तितः ।  
 गोत्वादेरनिमित्ताऽपि तथा बुद्धेर्भविष्यति ॥  
 [ श्लो० वा० आहु० श्लो० ३६ ] पृ. २४० (१७, १८, १९)  
 यथादर्शनमेव इयं मानयेयव्यवस्थितिः न पुनर्थेषात्तत्त्वम् ।  
 [ ] पृ. ७२८ (२)  
 यथा पयः पयो जलयति स्वयं च जीर्यति, यथा विषं विषा-  
 न्तरं शमयति स्वयं च शाम्यति एवं श्रवणादिषु दृष्टव्यम् ।  
 [ ] पृ. २७१ (११, १२)  
 यथा प्रभुः सेवामेदाजुरोषेन फलमेदप्रदो नाप्रभुस्तपेश्वरे-  
 ऽपि कर्माशयापेक्षः फलं जनयतीति 'अनीश्वरः' इति न  
 युज्यते नक्तुम् । [ ] पृ. ९९  
 यथा बुद्धिमत्तायामीश्वरस्य प्रमाणसम्भवः, तैर्न धर्मादिति-  
 ल्ले प्रमाणमस्ति ।  
 [ न्यायवा० पृ० ४६४ पं० १४ ] पृ. १३१  
 यथा महानसे वेद विद्यतेऽधूममेदि तत् ।  
 तस्मादनभिती भिन्नं विद्यतेऽत्र स्वत्त्वम् ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०५४ ] पृ. २१० (१८, १९)

## ५ - सम्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

यथा यथा पूर्वकृतस्य कर्मणः फलं निधानस्यमिवावतिष्ठते ।  
तथा तथा तत्प्रतिपादनेद्यतः प्रदीपहोत्रे मतिः प्रवर्तते ॥

[ ] पृ. ७१४ (८)

यथा लोकप्रसिद्धं च लक्षणैरनुगम्यते ।  
लक्ष्यं हि लक्षणैरेतदपूर्वं न प्रसाध्यते ॥

[ ] पृ. ५७०

यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपहृतो जनः ।  
सङ्कीर्णमिन्द्रमात्राभिन्नाभिः अभिमन्यते ॥

[ ] पृ. ३८३ (९)

यथा श्रमासाध्यान्वयीनां स्वत एव अशुचितम् अन्येषां च  
भावानां तथोगात् तत् तथेहापि तादत्त्यात् विशेषेषु स्वत  
एव न्यावृत्तप्रत्ययहेतुत्वम् परम्पणादिषु तु तथोगात् । किञ्च,  
अतदात्मकेभ्यः अन्यनिमित्तः प्रत्ययो भवत्येव यथा प्रदीपात्  
पटादिषु न पुनः पटादिभ्यः प्रदीपे एवं विशेषेभ्य एव अण्वाद्  
निशिष्टप्रत्ययः न अण्वादिभ्य इत्यादिकम् ।

[ ] पृ. ६९९ (३)

यथासङ्केतमेवातोऽसङ्कीर्णार्थाभिधायिनः ।

शब्दा विवेकतो वृत्ताः पर्याया न भवन्ति नः ॥

[ तत्त्वसं० का० १०४४ ] पृ. २०९ (२,३,४)

यथैधासि तमिद्धोऽमिर्मससात्कुरुते क्षणात् ।

ज्ञानाभिः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥

[ भग० गी० अ० ४ श्लो० ३७ ] पृ. १५०

यथैव प्रथमं ज्ञानं तत्संवादमपेक्षते ।

संवादेनापि संवादः पुनर्मृग्यस्तथैव हि ॥

[ तत्त्वसं० का० २८५४ ] पृ. ६ (५)

यथैकोत्पद्यमानोऽयं न सर्वैर्गवगम्यते ॥

[ श्लो० ना० सू० ६ श्लो० ८४ ] पृ. ३५

यदसलोपाधि सत्यं स वाच्चादौ ।

[ ] पृ. १८० (८,९)

यदा ज्ञानं प्रमाणं तदा हानादिसुख्य फलम् ।

[ १-१-२ व सू० सा० ] पृ. ५३०

यदाऽपि पूर्वं दुःखं नास्ति तदाऽपि भलापस्य दुःखलभावात्  
तन्निवर्हणस्यैवं सुखम् ।

[ ] पृ. १५३ (२)

यदा वा शब्दान्यालान्न व्यक्तं तदा तदा ।

तदाऽपेक्षितं सामान्यं तस्यापेक्षा च तस्युता ॥

[ श्लो० वा० अ० १ श्लो० ९५ ] पृ. १९४ (१)

यदा स्वतः प्रमाणत्वं तदाऽन्यत्वं न गम्यते ।

निवर्तते हि सिध्यात्वं दोषाज्ञानाव्ययतः ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ५२ ] पृ. १८

यदि गौरित्ययं शब्दः समर्थोऽन्यनिवर्तने ।

जनको गति गोमुदेर्भयतामपरो ध्वनिः ॥

[ सामहलं० परि० १ श्लो० १७ ] पृ. १८६ (२३)

यदि चाविद्यमानोऽपि मेदो बुद्धिप्रकल्पितः ।

साध्यसाधनधर्मदिव्यवहाय कल्पते ॥

[ श्लो० वा० निरा० श्लो० १७१ ] पृ. ५६४ (१०)

यदि प्रतीतिरन्यथा न स्यात् सर्वं भोमेत, दृष्टा च पक्षधर्म-  
सम्बन्धनमात्राद् प्रतिज्ञाबन्धनमन्तरेणापि प्रतीतिरिति कस्य-  
स्योपयोगः । [ धर्मकीर्तिः ] पृ. ९७

यदि विरुद्धधर्माध्यासः पदार्थानां भेदको न स्यात् तदाऽ-  
न्यस्य तद्भेदकस्याभावाद् विश्वमेकं स्यात् ।

[ ] पृ. १०२

यदि शब्दस्यापोहोऽभिधेयोऽर्थत्वाऽभिधेयार्थव्यतिरेकेणास्य  
स्वार्थो बक्तव्यः, अथ स एव स्वार्थस्तथापि व्याहृतमेतत्  
अन्यशब्दार्थोपोहं हि स्वार्थं कुर्वती श्रुतिरभिधत्त इत्युच्यते  
इति, अथ हि वाक्यस्यायमर्थस्तदानीं भवत्यभिधानाभिधत्त  
इति । [ न्यायना० अ० २ आ० २ सू० ६७  
पृ० ३३० पं० २२-पृ० ३३१ पं० ३ ] पृ. २०४ (१,२)

यदि शब्दान् पक्षयसि तदा 'आनन्त्यात्' इत्यस्य नस्तुध-  
र्मत्वाद् व्यधिकरणो हेतुः, अथ मेदा एव पक्षीक्रियन्ते तदा  
नान्यथी न व्यतिरेकी दृष्टान्तोऽस्तीत्यहेतुरानन्त्यम् ।

[ न्या० वा० अ० २ आ० २ सू० १७ पृ० ३३१ पं० १६ ]  
पृ. १७५ (८,९)

यदि षड्भिः प्रमाणैः स्यात् सर्वज्ञः ।

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० १११ ] पृ. ५७

यदि षड्भिः प्रमाणैः स्यात् सर्वज्ञः केन वार्यते ।

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० १११ ] पृ. ५९

यदि संयोगो नार्थान्तरं भवेत् तदा क्षेत्रीयोदकादयो  
निर्विशिष्टलात् सर्वदैवकुटादिकार्यं कुर्युः, न चैनम्, तस्मात्  
सर्वदा कार्यानारम्भात् क्षेत्रीयान्यङ्कुरोत्वतो कारणांतरसापे-  
क्षाणि, यथा मृत्पिण्डादिसामग्री घटादिकरणे कुलालादिसापेक्षा;  
योऽसौ क्षेत्रादिभिरपेक्ष्यः स संयोग इति सिद्धम् । किञ्च, जसौ  
संयोगो द्रव्ययोर्विशोभणभावेन प्रतीयमानत्वात् ततोऽर्थान्तर-  
त्वेन प्रत्यक्षसिद्ध एव । तथाहि-कश्चित् केनचित् 'संयुक्ते इत्ये-  
वाद्' इत्युक्ते यथोरेव द्रव्ययोः संयोगमुपलभते ते एवा-  
द्वरति न द्रव्यमात्रम् । किञ्च, दूरतत्त्वार्त्तिनः पुंसः सान्तरोऽपि  
वने निरन्तररूपावसायिनी बुद्धिश्चयमासादयति, सेयं सिध्या-  
बुद्धिः मुख्यपदार्थानुभवनमन्तरेण न कञ्चिदुपजायते । न ह्यनु-  
भूतगोदर्शनस्य गन्धे 'गौः' इति विभ्रमो भवति । तस्मादनर्थं  
संयोगो मुख्योऽभ्युपगन्तव्यः । तथा, 'न चैत्रः कुण्डली' इत्य-  
नेन प्रतिषेधनाक्येन न कुण्डलं प्रतिविध्यते, नापि चैत्रः,  
तयोरन्यत्र देशादौ सत्त्वात् । तस्माच्चैत्रस्य कुण्डलसंयोगः  
प्रतिविध्यते । तथा, 'चैत्रः कुण्डली' इत्यनेनापि विविधाक्येन  
न चैत्रकुण्डलयोरन्यतरविधानम्, तयोः सिद्धत्वात्, पारिषो-  
ध्यात् संयोगविधानम् । तस्मादस्त्वेव संयोगः ।

[ न्यायना० पृ० ११९ ] पृ. ११४

५ - सन्मतिटीकागामान्यवतरणानि ।

यथैव दधि तत् क्षीरं च त् क्षीरं तद् दधीति च ।  
 वरता निन्ध्यवासित्वं क्षयापितं निन्ध्यवासिना ॥  
 [ ] पृ. २१६ (८)  
 यद् यथैवाविसंबादि प्रमाणं तत् तथा मतम् ।  
 विसंबाद्यप्रमाणं च तदप्यक्ष-परोक्षयोः ॥  
 [ ] पृ. ५१५ (१,३)  
 यद् यदा कार्यसुरिपरिणु तत् तदोत्पादनात्मकम् ।  
 कारणं शक्तिभेदेऽपि न भिन्नं क्षणिकं यथा ॥  
 [ ] पृ. २५७  
 यद्यपि नित्यमीश्वराख्यं कारणमविकलं भावानां सञ्चितं  
 तथापि न युगपदुत्पत्तिः ईश्वरस्य बुद्धिपूर्वकारित्वात् । यदि  
 हीश्वरः सत्तामात्रेणैवाऽबुद्धिपूर्वं भावानामुत्पादकः स्यात् तदा  
 स्यादेतच्चोद्यम् यदा तु बुद्धिपूर्वं करोति तदा न दोषः तस्य  
 खेच्छया कार्येषु प्रवृत्तेः अतोऽनैकान्तिकतैव हेतोः ।  
 [ ] पृ. १२७  
 यद्यप्यव्यतिरिक्तोऽयमाकारो बुद्धिरूपतः ।  
 तथापि बाह्यरूपत्वं भ्रान्तैस्त्वानुवसीयते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०२६ ] पृ. २०६  
 यद् यथैव गुण-दोषान् नियमेनानुवर्तते ।  
 तत्तान्तरियकं तत् स्यादतो ज्ञानोद्भवं वचः ॥  
 [ ] पृ. ५८  
 यद्दत्तं तुरगः सस्त्वप्याभरणविभूषणेष्वनभिषक्तः ।  
 तद्बहुपप्रवृत्तानपि न सन्नमुपयाति निर्ग्रन्थः ॥  
 [ प्रशमर० का० १४१ ] पृ. ७४९  
 यद्वाऽनुवृत्तिव्यावृत्तिबुद्धिप्राप्तौ यतस्त्वयम् ।  
 तस्माद् गवादिबद्धं वस्तु प्रमेयत्वाच्च गृह्यताम् ॥  
 [ श्लो० वा० अभाषण० श्लो० ९ ] पृ. ५८० (९)  
 यथा जातिर्जातिलिङ्गानि च व्याख्यायन्ते तामाकृतिं विद्यात्  
 सा च सत्त्वावयवानाम् । तदवयवानां च नियतो व्यूहः ।  
 [ बांस्या० भा० पृ० २२५ ] पृ. १७८  
 यथायमगोऽपोद्गोर्भे भवतीति गोशब्दस्यार्थः स किञ्चिद्  
 भावः, अथाभावः? भावोऽपि सन् किं गौः, अथागौरिति ।  
 यदि गौरिति नास्ति विवादः । अथागौः, गोशब्दस्यागौरर्थे  
 इत्यतिशब्दार्थकीशलम् । अथाभावः, तन्न युक्तम्, प्रैष-  
 सम्प्रतिपत्त्योरनिषयत्वात्; नहि शब्दप्रथमादभावे प्रैषः-प्रति-  
 पादकेन भ्रौतुरर्थे चिनियोगः-प्रतिपादकधर्मः, सम्प्रतिपत्त-  
 (त्ति)श्च भ्रौतृधर्मो-भवेत् । अपि च, शब्दार्थः प्रतीय-  
 प्रतीयते, न च गोशब्दादभावं कश्चित् प्रतिपद्यते ।  
 [ न्यायवा० पृ० ३२९ पं० ५-११ ]  
 पृ. २०० (६,७,८,९,१०)  
 यः प्रागजनको बुद्धेरुपयोगविशेषतः ।  
 स पश्चादपि तेन स्यादर्थापायेऽपि नेत्रधी ॥  
 [ ] पृ. ५२५ (२)  
 यस्मात् प्रकरणचिन्ता । [ न्यायद० १-२-७ ] पृ. ७९०

यस्मात् प्रकरणचिन्ता स प्रकरणसमः ।  
 [ न्यायद० १-२-७ ] पृ० ७१९ (१)  
 यस्माद् उच्यते तत् कुरुदादिमदर्थप्रतिपत्तिः स गान्धः ।  
 [ ] पृ. ४३१ (९)  
 यस्मिन्धूमतो भिन्नं विद्यते हि स्वलक्षणम् ।  
 तस्मिन्नप्रितोऽप्यस्ति पराश्रयं स्वलक्षणम् ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०५३ ] पृ. २१०  
 यस्य ज्ञाने प्रतिभासस्त्वस्य तत्र तत्कारणत्वं निमित्तमभिधीयते  
 न त्वप्रतिभासमानस्य समवायदेत्सनिमित्तः प्रतिभासो सवत्  
 इत्यासन्नयितुं युक्तम् । [ ] पृ. ५०९  
 यस्य तत्र यदोद्भूतिर्जिघृक्षा चोपजायते ।  
 चेत्सतेऽनुभवस्त्वस्य तेन च व्यपदिश्यते ॥  
 [ श्लो० वा० अभाषण० श्लो० १३ ] पृ. ५८१  
 यस्य निर्विशेषणा मेधाः गान्धैरभिधीयन्ते तस्याऽयं दोषः  
 अस्माकं तु सत्ताविशेषणानि इत्य-गुण-कर्म्मोप्यभिधीयन्ते ।  
 तथाहि-यत्र यत्र सत्तादिकं सामान्यं पर्ययति तत्र तत्र सदादि-  
 शब्दं प्रयुक्ते, एकमेव च सत्तादिकं सामान्यम्, अतः सामा-  
 न्योपलक्षितेषु भेदेषु समयक्रियासम्भवाद्कारणमानन्त्यम् ।  
 [ न्या० वा० अ० २ भा० २ सू० ६७ पृ० ३२३ पं०  
 ११ ] पृ० १७५  
 यस्य यावती मात्रा । [ ] पृ. ९०  
 याज्ञवल्क्य इति होवाच ।  
 [ वृह० उ० अ० २ ब्रा० ४ सू० १ ] पृ. ३२  
 यादृशोऽर्थान्तरापोद्दः प्रतिनिम्ब्यात्मको वाच्योऽयं प्रतिपादितः ।  
 शब्दान्तरव्यपोद्दोऽपि तादृशेव प्रतिनिम्ब्यात्मक एवावगम्यते ॥  
 [ तत्त्वसं० का० १०८८ ] पृ. २१५ (२६) २१६ (१,२)  
 यावज्जीवेत् सुखं जीव । [ ] पृ. ५०१ (६)  
 यावत् प्रयोजनेनास्य सम्बन्धो नाभिधीयते ।  
 असम्बद्धपलापित्वाद् भवेत् तावदसन्निति ॥  
 [ श्लो० वा० सू० १ श्लो० २० ] पृ. १६९  
 यावदर्थो वै नामधेयशब्दराः । [ १-१-४ वात्स्या० भा० ]  
 पृ. ५२२ (२)  
 यावन्तो यादृशा ये च यदर्थप्रतिपादकाः ।  
 वर्णाः प्रज्ञातसामर्थ्यास्ते तथैवावबोधकाः ॥  
 [ श्लो० वा० स्फोटवा० श्लो० ६९ ] पृ. ४३५ (४)  
 युगपद् ज्ञानानुत्पत्तिः [ न्या० सू० १-१-१५ ] पृ. ६१६  
 युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो छिन्नम् ।  
 [ न्यायद० १-१-१६ ] पृ. ४७७, ५३१, ६६९ (६), ७०४  
 येन येन हि नाम्ना वै यो यो धर्मोऽभिलष्यते ।  
 न स सविद्यते तत्र धर्मोऽपि सा हि धर्मता ॥  
 [ ] पृ. १७४ (५,६,७,८)  
 येऽपि सातिशब्दा ह्यः प्रज्ञामेवादिभिर्नराः ।  
 [ ] पृ. ५१७ (२)

## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

येऽपि सातिशया दृष्टाः प्रज्ञा-भेदादिभिर्नराः ।

स्वीकृस्तोऽन्तरलेन न लतीन्द्रियदर्शनात् ॥

[ ] पृ. ४९

येषामप्यनवगतोत्पत्तीनां भावानां रूपमुपलभ्यते तेषां तन्तु-  
व्यतिषन्नजनितं रूपं दृष्ट्वा तन्मतिषन्नविमोचनात् तद्विनाशाद्  
वा विनश्यतीत्यनुमीयते ।

[ ] पृ. ९४ (६)

योगिप्रत्यक्षं सम्बन्धमाहकमाहुः ज्योतिः सकलाक्षेपेणावगमात् ।

[ ] पृ. ७५-७६

यो ज्ञानप्रतिभासमन्यव्यतिरेकाननुकारयति ।

[ ] पृ. ५२४

यो नाम न यदात्मा हि स तस्यापोष्ण उच्यते ।

न भावोऽभावरूपश्च तदपोद्दे न नस्तुता ॥

[ तत्त्वसं० का० १०२ ] पृ. २१४ (१७,१८)

यो ह्यन्यरूपसंभेद्यः संवेद्येतान्यथाऽपि वा ।

स भ्रान्तो न तु तेनैव यो नित्यमुपलभ्यते ॥

[ ] पृ. ३७

र

एतत् गृह्यमाणं हि चिरस्थायीति गृह्यते ।

[ ] पृ. ५३९ (२)

रत्नादिकारणेष्ववस्थादिकार्यं सदेव ।

[ साहच्यः ] पृ. ४२२

एयण्यभा सिभा सासया सियाऽसासया ।

[ जीनाजीनाभि० प्रतिप० ३ उ० १ सू० ७८ ] पृ. ६३९ (१)

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वम्  
संयोग-विभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुख-दुःखे दृच्छा-द्वेषौ  
प्रयत्नश्च गुणाः । [ वैशेषिकद० १-१-६ ] पृ. ९७२ (५)

रूपासंस्काराभावाद् वायवानुपलब्धिः ।

[ वैशेषिकद० अ० ४-१-७ ] पृ. १००

रूपादिलक्षणविषयमिन्द्रियज्ञानम् आर्यसत्यचतुष्टयगोचरं  
योगिज्ञानम् । [ ] पृ. ४९९

रूपभावेऽपि चैकलं कल्पनानिमित्तं यथा ।

बिभेदोऽपि तथैवेति कुतः पर्यायता ततः ॥

[ तत्त्वसं० का० १०३२ ] पृ. २०७ (५)

रुं पुण पासद् अपुडं तु ।

[ आनन्दकनि० गा० ५ ] पृ. ५४५ (५)

ल

लक्षणयुक्ते भासासम्भवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात् ।

[ ] पृ. ३७५ (६)

लघवोऽन्यथा हेतवे निबद्धा न च केनचित् ।

दृशाद्यभिहतानां तु विक्षेपो लोष्टवद् भवेत् ॥

[ श्लो० बा० सू० ६ श्लो० १११ ] पृ. ३८

लम्भात्मनां स्कार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु ।

[ ] पृ. १०

लिखितं साक्षिणो मुक्तिः प्रमाणं त्रिभिधं दृष्टतम् ।

[ ] पृ. ४५९ (३,३) ४७५

लिङ्ग-लिङ्गिस्थितोरेवं पारम्पर्येण वस्तुनि ।

प्रतिबन्धात् तदाभासशून्ययोरप्यबन्धनम् ॥

[ ] पृ. ३०५ (१)

घ

नक्ता नहि क्रमं कश्चित् स्वातन्त्र्येण प्रपद्यते ।

[ श्लो० ना० शब्दानित्य० श्लो० २८८ ] पृ. ४३५ (७)

नक्ता नहि क्रमं कश्चित् स्वातन्त्र्येण प्रपद्यते ।

यथैवास्य परैरुक्तः तथैवेनं विवक्षति ॥

[ श्लो० ना० सू० ६ श्लो० २८८ ] पृ. ३९

नचनं राजकीयं वा लौकिकं नापि विद्यते ।

न चाऽपि स्मरणात् पश्चादिन्द्रियस्य प्रवर्तनम् ॥

[ श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३५ ] पृ. ३१९ (३)

वृष्णपञ्जवेहिं गंधपञ्जवेहिं । [ भगवतीसू० यत० १४ उ० ४

सू० ५१३ ] पृ. ६३५ (१,२)

वत्सनिवृद्धिमिसित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य ।

पुत्रविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य ॥

[ साङ्ख्यका० ५७ ] पृ. ३०९

वय-समणधम्म-संजम-नेयाचं च नंमपुत्तीओ ।

णाणादितियं तव-कोहणिणगद्दई चरणमेयं ॥

[ ओचनि० गा० २ ] ७५५ (२)

वर्णाकृत्यक्षराकारशून्यं गोत्वं हि गीयते ।

[ ] पृ. २४३ (२)

वर्तमानानभासि सनं प्रत्यक्षम् । [ ] पृ. ५९३

वस्तुलाद् द्विविधस्यात्र सम्भवो दुष्टकारणात् ।

[ श्लो० ना० सू० २ श्लो० ६४ ] पृ. ८ (७-८)

वस्तुत्वे सलेष दोषः स्यात् नासिद्ध वस्तु बलन्तरसिद्धये

सामर्थ्यमापादयतीति, सायामात्रे तु नेतरैतराश्रयदोषप्रसङ्गः ।

नहि मायायाः कथञ्चिदनुपपत्तिः-अनुपपद्यमानायैव हि माया

लोके प्रसिद्धा उपपद्यमानार्थत्वे तु यथार्थभावाच्च माया ।

[ ] पृ. २७७ (२१) २७८ (१)

वस्तुमेदप्रसिद्धस्य शब्दसाम्यादमेदिनः ।

[ ] पृ. ४३

वस्तुमेदे प्रसिद्धस्य । [ ] पृ. ४८४

‘वस्त्रस्य रागः’ बुद्धुमादिद्वेष्येण संयोग उच्यते, स च अव्या-

प्यवृत्तिः तत एकत्र रते न सर्वेष्य रागः न च शरीरादेरेकदे-

शावरणे सर्वस्य आवरणं युक्तम् । [ ] पृ. ६६४

वस्त्वसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यसमाश्रया ॥

[ श्लो० ना० सू० ५ अभावप० श्लो० २ ] पृ. २४

वस्त्वसङ्करसिद्धिश्च तत्प्रामाण्यसमाश्रिता ।

[ ] पृ. १६५

वाक्यार्थं तु पदार्थेभ्यः सम्बन्धानुगमाद् ऋते ।

बुद्धिरुपपद्यते तस्माद् भिन्ना साऽप्यक्षबुद्धिवत् ॥

[ श्लो० ना० शब्दप० श्लो० १०९ ] पृ. ७३८

५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

वाक्येष्वदृष्टेष्वपि सार्थकेषु पदार्थचिन्मात्रतया प्रतीतिम् ।  
दृष्टानुमानन्यतिरेकमीताः क्रिष्टाः पदाभेदविचारणायाम् ॥

[ श्लो० वा० शब्दप० श्लो० १११ ] पृ० ७३८  
वाप्रपता चेद् व्युत्क्रामेदनबोधस्य शाश्वती ।  
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्दिनी ॥

[ वाक्यप० प्र० का० श्लो० १२५ ] पृ० १८०  
(१३), ४८९ (२)

वार्थते केनचिन्नापि तदिदानीं प्रदुष्यति ।

[ श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३६ ] पृ० ४९६ (६)

वार्थते केनचिन्नापि तत् तदानीं प्रदुष्यति ।

तेनेन्द्रियार्थसम्बन्धात् प्रागूर्ध्वं वापि यत् स्मृतेः ॥

[ श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३६ ] पृ० ३१९ (४)

विकल्पप्रतिनिम्बमेव सर्वशब्दानामर्थः, तदेव चाभिधी-  
यते व्यवच्छिद्यत इति च ।

[ ] पृ० १९९ (१९, १२)

विकल्पोऽवस्तुनिर्भासाद् विषयवादादुपपन्नः ।

[ ] पृ० ५०० (८), ५११ (१०)

विग्रहग्रहमावण्णा । [ ] पृ० ६१३ (१)

विज्ञप्तिमात्रमेव नार्थव्यवस्था । [ ] पृ० ४६१

विज्ञानं जायते सर्वं प्रत्यक्षमिति गम्यताम् ।

[ श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३७ ] पृ० ३१९

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म । [ बृहदा० उ० अ० ३ ब्रा० ९ मं०  
२८ ] पृ० १५१

विधानाश्रिते साध्यः पुरुषार्थो न लभ्यते ।

भुतः स्वर्गदिवाक्येन धालयं साधयता वजेत् ॥

[ श्लो० वा० औपत्तिकसू० श्लो० १४ ] पृ० ७४० (१)

विधिरूपश्च शब्दार्थो येन नाभ्युपगम्यते ।

न भवेद् व्यतिरेकोऽपि तस्य तत्पूर्वको ह्यसौ ॥

[ श्लो० वा० अपो० श्लो० ११० ] पृ० १९६ (७, ८)

विनावाकाले न तस्य किञ्चिद् भवति, न भवत्येव केवलम्,  
अन्यथा कस्यचिद् विधाने न भावो निवर्तितः स्यात् ।

[ ] पृ० ३४६-३४७ (१, २)

विभागोऽपि भन्त्यतरोभयकर्म-विभागजः ।

[ ] पृ० ७०४ (४)

विभाषाप्रहः । [ पा० सू० ३।१।१४३ सिद्धान्तकौ०  
अ० २९०५ ] पृ० ४०६

विषदं हेतुमुद्गाध्य वादिनं जयतीतरः ।

[ ] पृ० ७५

वितोषिलिङ्ग-सङ्ख्यादिमेदाद् मिश्रस्वभावताम् ।

तस्यैव मन्यमानोऽयं शब्दः प्रत्यवतिष्ठते ॥

[ ] पृ० ३१३

विकल्पणोपपाते हि नश्येत् स्वाभाविकं क्वचित् ।

[ ] पृ० २७८

विवशातः कारकमि भवन्ति । [ ] पृ० ४७१ (१०)

विशिष्टरूपानुभवात्तान्यतोऽपि निराक्रिया ।

[ ] पृ० २७४ (६, ७)

विशिष्यत इति विशेषः गुणोभ्यो विशेषो गुणविशेषः कर्मो-  
भिधीयते, द्वितीयश्चात्र गुणविशेषशब्द एकशेषं कृत्वा निरिष्टः  
तेन गुणपदार्थो गृह्यते—गुणाश्च ते विशेषाश्च गुणविशेषाः—

विशेषग्रहणमाकृतिनिरासार्थम् । तथाहि—आकृतिः संयोग-  
विशेषस्वभावा, संयोगश्च गुणपदार्थोन्तर्गतः ततश्चावति विशेष-  
ग्रहणे आकृतेरपि ग्रहणं स्यात्, न च तस्या व्यकावन्तर्भाव  
ह्ययते पृथक् स्वशब्देन तस्या उपादानात् । आश्रयशब्देन

द्रव्यमभिधीयते—तेषां गुणविशेषाणामाश्रयस्तदाश्रयो इत्यभि-  
त्यर्थः । सूत्रे 'तद्'शब्दलोपं कृत्वा निर्देशः कृतः, एवं च  
विशेषः कर्मव्यः—गुणविशेषाश्च गुणविशेषाश्चेति गुणविशेषाः  
तदाश्रयश्चेति गुणविशेषाश्रयः, समाहारद्रव्यत्वायम् लोकाश्रय-

त्वात् लिङ्गस्य [ अ० २ पा० २ सू० २९ महाभाष्ये  
पृ० ४७१ पं० ८ ] इति ननुसकलिङ्गाऽनिर्देशः । तेनायमर्थो  
भवति—योऽयं गुणविशेषाश्रयः सा व्यक्तिश्चोच्यते मूर्तिश्चेति ।

तत्र यदा द्रव्ये मूर्तिशब्दस्तदाऽविकरणसाधनो द्रव्यः—  
मूर्च्छन्त्यस्मिन्नवयवा इति मूर्तिः, यदा तु रूपादिषु तदा कर्तृ-  
साधनः—पृच्छन्ति द्रव्ये समवयन्तीति रूपादयो मूर्तिः । व्यक्ति-  
शब्दस्तु द्रव्ये कर्मसाधनः रूपादिषु करणसाधनः ।

[ न्या० वा० अ० २ अ० २ सू० ६८ पृ० ३३२ पं०  
३-२४ ] पृ० १७७ (९, १०, ११)-१७८ (१, २)

विशेषणं विशेष्यं च सम्बन्धं लौकिकी स्थितिम् ।

यहीला सङ्कलयैतत् तथा प्रत्येति नान्यथा ॥

[ ] पृ० ५१५ (१), ५२५ (४)

विशेषहेतवस्तेषां प्रत्यया न कथञ्चन ।

नित्यानामिव युज्यन्ते क्षणानामविवेकता ॥

[ ] पृ० ३२९ (१८)

विशेषेऽनुगमाभावः सामान्ये सिद्धसाधनम् ।

[ ] पृ० ५५४

विश्वतश्चक्षुरत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुयत विश्वतस्यात् ।

स बाहुभ्या धमति सं पतत्रैर्यावाभूमी जनयन् देन एक आस्ते ॥

[ श्वेताश्वत० उ० अ० ३, ३ ] पृ० ९८

विषयविषयिसन्निपातानन्तरमायं ग्रहणमवप्रहः ।

[ ] पृ० ५५२ (७)

विषयेण हि बुद्धीनां विना नोत्पत्तिरिष्यते ।

वशेषादन्यदिच्छन्ति सामान्यं तेन तद् ध्रुवम् ॥

[ श्लो० वा० आकृ० श्लो० ३७ ] पृ० २४०

यज्ञादिना इतान् ध्यानस्तद्वावाध्यवसायिनः ।

ज्ञानस्योत्पादनादितज्जात्यादेः प्रतिषेधनम् ॥

[ तत्त्वसं० का० १०७० ] पृ० २१२ (२४)

वेदाध्ययनं सर्वं तदध्ययनपूर्वकम् ।

वेदाध्ययनवाच्यत्वाद्गुनाध्ययनं यथा ॥

[ श्लो० वा० अ० ७ श्लो० १५५ ] पृ० ११७

## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

वेदाध्ययनमखिलं पुर्वैष्ययनपूर्वकम् ।  
 वेदाध्ययनश्चाव्यलादधुनाऽध्ययनं यथा ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ७ श्लो० ३६६ ] पृ. ४०  
 बोसद्वन्तदेवो विहरा गामाणुगामं तु ।  
 [ भाव० लि० गा० ३१६ ] पृ. ७५०  
 व्यक्तिजन्मन्यजाता चेदागता नाश्रयान्तरात् ।  
 प्रागासीद् न च तद्देशे सा तथा सज्ञता कथम् ॥  
 [ ] पृ. २४० (११)  
 व्यक्तिसाधने चेष्यता गता व्यत्यन्तरं न च ।  
 तत् शून्ये न स्थिता देशे सा जातिः क्वेति कथ्यताम् ॥  
 [ ] पृ. २४० (१२)  
 व्यक्तिरूपावसायेन यदि वाऽशोह उच्यते ।  
 तत्किञ्चाप्यभिसम्बन्धो व्यक्तित्वात्तस्य विद्यते ॥  
 [ तरुवसं० का० ११४३ ] पृ. २२४  
 व्यक्तिगुणविशेषाश्रयो मूर्तिः ।  
 [ न्यायप० अ० २ आ० २ सू० ६६ ] पृ. १७७  
 व्यक्तेर्जात्यादियोगेऽपि यदि जातेः स नेष्यते ।  
 तादात्म्यं कथमिदं स्यादनुपप्लवचेतसाम् ॥  
 [ ] पृ. २४० (१३,१४)  
 व्यत्याकृतिजातयस्तु पदार्थः ।  
 [ न्यायद० अ० २ आ० २ सू० ६५ ] पृ. १७७  
 व्यञ्जकानां हि वायूनां भिन्नावयवदेशता ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ७९-८ ] पृ. ३९  
 व्यवहारस्तु तामेव प्रतिबन्धुव्यवस्थिताम् ।  
 तमेव इयमानत्वाद् व्यवहारयति देहिनः ॥  
 [ ] पृ. ३११ (५,६)  
 व्यापकत्वं च तस्यैदमिष्टमाध्यवसायिकम् ।  
 विध्यावभासिनो ह्येते प्रत्यग्राः शब्दनिर्मिताः ॥  
 [ तरुवसं० का० १२१२ ] पृ. २३१ (२१,२२)  
 व्यावहारिकस्य चैतत् प्रमाणस्य लक्षणमुक्तम् ।  
 [ ] पृ. ४९७  
 वा  
 वाक्यः सर्वभाषानां कार्यार्थापत्तिगोचराः ।  
 [ श्लो० वा० सू० ५ श्लो० २५४ ] पृ. ५४  
 वाच्य एवाभिजल्पलमागतः शब्दार्थः ।  
 [ ] पृ. १८० (११)  
 वाच्यज्ञानादसन्निकृष्टेऽर्थे बुद्धिः शब्दम् ।  
 [ १-१-५ शाबरभा० ] पृ. ५७४ (३)  
 वाच्यत्वं गमकं नाम गोशब्दत्वं निषेत्स्यते ।  
 व्यक्तिरेव विशेष्याऽतो हेतुर्थैका प्रसज्यते ॥  
 [ श्लो० वा० शब्दप० ६४ ] पृ. ५७५  
 वाच्यस्य कृतेः सर्वत्र पञ्चानामपि न क्वचित् ।  
 प्रमाणागामभाषोऽतो भाषोभावविनिश्चयः ॥  
 [ ] पृ. ५८७

वाच्यस्यागमनं तावददृष्टं परिकल्प्यते ॥  
 [ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० १०७ ] पृ. ३८  
 वाच्यदुरेति यद् ज्ञानमप्रत्यक्षेऽपि वस्तुनि ।  
 वाच्यं तदिति मन्यन्ते प्रमाणात्तरवादिनः ॥  
 [ ] पृ. ५७४ (४)  
 वाच्ये दोषोद्भवस्तावद् बह्वच्रीन इति स्थितम् ।  
 तदभावः क्वचित् तावद् गुणवद्भवत्कालतः ॥  
 [ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ६२ ] पृ. १९  
 वाच्ये नागम्यमानं च निरोप्यमिति साहसम् ।  
 तेन सामान्यमेष्टव्यं विषयो बुद्धि-शब्दयोः ॥  
 [ श्लो० वा० अ० श्लो० ९४ ] पृ. १९३ (६)  
 वाच्येन(व्यापृताक्षस्य बुदावप्रतिभासनात् ।  
 अर्थस्य दृष्टाविव तदनिर्देशस्य वेदकम् ॥  
 [ ] पृ. २५० (११,१२) ५२५ (७)  
 वारीरान्तरेऽपि तदज्ञानासम्बन्धिनि तद्गुणा उपलभ्यन्ते  
 इत्यभिदधति । तथाहि-‘देवदत्ताज्ञानां देवदत्तगुणपूर्वकम्,  
 कार्यत्वे सति तदुपकारकत्वात्, प्रासादिवत् । कार्यदेशे च सन्नि-  
 दितं कारणं तत्त्वने व्याप्रियतेऽन्यथाऽतिप्रसङ्गादिति तदज्ञाना-  
 प्रादुर्भावदेशे तत्कारणतद्गुणसिद्धिः । तथा तदन्तराले च प्रती-  
 यन्ते तथाहि-जमेरुर्ध्वज्वलनम्, वायोस्तिर्यक् पवनं तद्गुण-  
 पूर्वकम्, कार्यत्वे सति तदुपकारकत्वात्, वल्लादिवत् । यत्र च  
 तद्गुणास्तत्र तद्गुणप्यनुमीयत इति ‘खदेह एव देवदत्तात्मा’ इति  
 प्रतिज्ञा अनुमानवाधिता । ततोऽनुमानवाधितकर्मनिर्देशानन्तर-  
 प्रयुक्तत्वेन कात्वाल्यापदिष्टो हेतुः ।  
 [ ] पृ. १४६-१४७ (१)  
 वाच्येयाश्च भिन्नत्वं बाहुल्येयाश्रयोः समम् ।  
 सामान्यं नान्यदिष्टं चेत् कापोऽवोहः प्रवर्त्तनाम् ॥  
 [ श्लो० वा० अ० श्लो० ७७ ] पृ. १९० (१०)  
 वाच्यस्य तु फले दृष्टे तत्प्राप्त्याभावशीकृताः ।  
 प्रशानन्तः प्रवर्त्तन्ते तेन वाच्यं प्रयोजनम् ॥  
 [ ] पृ. १६९ (१०)  
 वाच्यार्थप्रतिज्ञाप्रतिपादनपर आदिवाक्योपन्यासः ।  
 [ ] पृ. १७२ (१)  
 वाच्योऽवयवा निम्ना वृद्धि-काठिन्यवर्जिताः ।  
 शशयुक्तादिरूपेण सोऽत्यन्ताभाव उच्यते ॥  
 [ श्लो० वा० अ० परि० श्लो० ४ ] पृ. १८६, ५८१  
 वाच्यः क्वचिदमीष्टं वस्तुनि प्रवर्त्तमाना अभीष्टदेवताविशेष-  
 पक्षविविधानपुरस्सरं प्रवर्त्तन्ते । [ ] पृ. १  
 वाच्यं दन्त्यं समाश्रित्य सङ्ग्रहस्तदशुद्धितः ।  
 नेगमव्यवहारौ स्ता शेषाः पर्यायमाश्रिताः ॥  
 [ ] पृ. ३११ (२)  
 वाच्यमात्राश्रयस्यापिलम् ।  
 [ प्रशस्त० क० पृ० १०३ पं० ६ ] पृ. ७०८ (१)

## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

श्रेयःसाधनता तेषां नित्यं वेदात् प्रतीयते ।

ताद्रूप्येण च धर्मत्वं तस्मान्निद्रियगोचरः ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० १४ ] पृ. ५०५

श्रेयो हि पुरुषप्रीतिः सा इत्युपगुणकर्मभिः ।

चोदनासूक्ष्णैः साध्या तस्मादेष्वेव धर्मता ॥

[ श्लो० वा० सू० १ श्लो० १९१ ] पृ. ५०५

श्रोत्रधीरप्रमाणं स्यादितराभिरसङ्गतेः ।

[ श्लो० सू० २ श्लो० ७७ ] पृ. १६

श्रोत्रादिवृत्तिरनिकल्पिका ।

[ ] पृ. ५३३ (१)

च

पदकेन युगपयोगात् परमाणोः षडंशता ।

[ ] पृ. १०५, ३७६ (९)

षडेव धर्मिणः प्रोक्ताः । [ ] पृ. ६६१ (७)

स

स एवाविनामानो दृष्टान्ताभ्यां दर्यते ।

[ ] पृ. ३९४

संयोगसिद्धीए फलं वयंति ।

[ आनन्दयकनि० एवमाव० गा० २३ ] पृ. ७५७ (१)

संयोगस्य त्रय्योर्विशेषणत्वेन अभ्यक्षतः प्रतीयमानत्वात् ।

तथाहि-कश्चित् केनचित् 'संयुक्ते द्वये आहुर' इत्युक्तो ययोरेव

त्रय्ययोः संयोगमुपलभ्य(म)ते, ते एव आहुरति न द्वयमात्रम्

अन्यथा हि यत् किञ्चिद् आहरेत् । एतद् विभागसाधनेऽपि

विपर्ययेण सर्वं समानम् । किञ्च, यदि अर्थान्तरभूतौ संयोग-

विभागौ वस्तुनो न स्याताम् तदा वस्तुमात्रनिबन्धनौ 'सान्तर-

मिदम्' 'निरन्तरम्' इति च प्रत्ययौ नोत्प्रेष्यताम् न हि

विशेषप्रत्ययौ वस्तुविशेषमन्तरेण सम्भविनौ सर्वदा सर्वत्र भाव-

प्रसङ्गात् । अपि च दूरदेशवर्तिनः प्रमातुः सान्तरावस्थितेऽपि

धर-बदिरादौ निरन्तरावस्थायिनी बुद्धियौत्पद्यते या च शास्त्रि-

णिसरावसंके बलाकादौ सान्तरत्वाभ्यवसायिनी समुपजायते;

द्विविधाऽपि इयम् 'अतस्मिन्नात्' इति प्रवृत्तिर्मथ्याबुद्धिः । न

च असौ मुख्यपदाथानुभवमन्तरेण कश्चिद् उपजायमाना संल-

क्ष्यते न हि अननुभूतरजतस्य शुक्तिकायाम् 'रजतम्' इति विभ्रमः

इति कश्चित् मुख्यो भावो विभ्रमधियो निमित्तमभ्युपगन्तव्यः;

तदभ्युपगमे च संयोग-विभागसिद्धिः तस्यतिरेकेण अन्यस्य

एतद्बुद्धेरनिबन्धनस्य असम्भवात् । तथा 'कुण्डली देवदत्तः' इति

मतिः किनिबन्धना उपजायते इति वक्तव्यम् । न पुरुष-कुण्डल-

मात्रनिबन्धना, सर्वदा तयोस्तस्या उत्पत्तिप्रसङ्गात् । अपि च

यदेव कश्चित् केनचित् उपलब्धं सत्त्वेन; तस्यैव अन्यत्र

विधिः प्रतिषेधो वा दृष्टः । यदि च संयोगो न कदाचिद् उप-

सन्धः कथं विभागेन अस्य 'चैत्रोऽकुण्डलः कुण्डली वा' इत्येवं

प्रतिषेधः विधिश्च भवेत्? यत्. 'अकुण्डलश्चैत्रः' इति न

कुण्डलं प्रतिविध्यते तस्य अन्यदेशादौ विद्यमानस्य प्रतिषेद्धमग

क्यत्वात्, अत एव न चैत्रः ततश्चैत्रस्य कुण्डलसंयोगः प्रतिवि-

ध्यते । एवं 'कुण्डली चैत्रः' इत्यत्रापि चैत्र-कुण्डलयोर्नाम्य-

तरस्य विधिः तयोः सिद्धत्वात् । ततः पारिवोप्याद् नप्रतीतस्य

तत्-संयोगस्यैव विधिरिति संयोगादिर्षास्त्वः समस्यैव यद्-

शाद् विभक्तविधि-प्रतिषेधप्रवृत्तिः 'चैत्रः कुण्डली' इत्यादि-

प्रयोगेषु । किञ्च, यदि संयोगः अर्थान्तरे न भवेत् तदा बीजा-

दयः-अविशिष्टत्वात्-सर्वदेवं स्वकार्यमङ्कारादिकं निरप्युः न

चैवम् सर्वदा तेषां कार्यानाम्भात्; अतो बीजादयः स्वकार्य-

निर्वर्तने कारणान्तरसम्यपेक्षाः सृष्टिष्व-दण्ड-वक्र-सूत्रादव

इव घटादिकरणे; योऽसौ अपेक्ष्य - संयोगः ।

[ ] पृ. ६७७(४,५)-६७८(१,२,४)-६७९(१,२)

संयोगादिषु येष्वस्ति प्रतिबन्धो न तादृशः ।

न ते हेतव इत्युक्तं व्यभिचारस्य सम्भवात् ॥

[ ] पृ. ५५९

संवादस्याय पूर्वेण चवादत्वात्, ाणता ।

अन्योऽन्याश्रयभावेन न प्रामाण्यं प्रकल्पते ॥

[ ] पृ. ९

संभितिः संभितितथैव संवेद्या न संवेद्यतया ।

[ ] पृ. ७९

संभित्याह्वयं फलं हातृव्यापारसङ्गाने सामान्यतो दृष्टं लिङ्गम् ।

[ ] पृ. २७

संसद्रुमसंसद्रा उद्ध तद् अप्पलेभिया चैव ।

उगद्विया पग्गहिया उज्जियद्दमया य सत्तभिया ॥

[ ] पृ. ४,५

संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ।

[ साङ्ख्यका० ४० ] पृ. ४१७ (८)

संसर्गमोहितधियो विभिकं धातुगोचरात् ।

भावात्मानं न पश्यन्ति ये तेभ्यः स विविच्यते ॥

[ ] पृ. ७३९

संसृजेत् शुभमेवैकमनुकम्पाप्रयोजितः ।

[ श्लो० वा० सू० ५ सम्बन्धा श्लो० ५२ ]

पृ. १००

संसृज्यन्ते न भिद्यन्ते स्वतोऽर्थोः पारमार्थिकाः ।

रूपमेकमनेकं वा तेषु बुद्धेरप्यवः ॥

[ ] पृ. २१० (१,१,३,४)

संस्त्यान-प्रसव-स्थितिषु यथाक्रमं स्त्री-पुं-नपुंसकव्यव-

स्थाति (स्था । इति ) [ ] पृ. २२१ (११)

सद्व्यस्य सर्वतश्चिन्तां स्तिमितेनान्तरात्मना ।

स्थितोऽपि चक्षुषा रूपं नीक्षते साक्ष्या मतिः ॥

[ ] पृ. ५०३ (८)

सङ्केतस्मरणोपायं दृष्टसङ्कलनात्मकम् ।

पूर्वापरपरामर्शान्ये तन्नाक्षुषे कथम् ! ॥

[ ] पृ. ५१५ (३) ५२५ (५)



## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

सङ्ख्या-परिमाणानि पृथक्त्वम् संयोग-विभागौ परत्वाऽपरत्वे  
कर्म च रूपि(द्वय)समन(याच्चा)धुनाणि ।

[ वैशेषिकद० ४-१-११ ] पृ. ११३, ६७३ (३) ६८६ (३)

स चेदगोतिवृत्त्यात्मा भवेदन्त्योन्यसंश्रयः ।

सिद्धयेद् गौरपोहार्थं वृथापोहप्रकल्पनम् ॥

[ श्लो० वा० अपो० श्लो० ८४ ] पृ. १११ (११)

सत्ता-द्वयत्वसम्बन्धात् सद्रव्यं बलु ।

[ ] पृ. ७३१

सत्ता-स्वकारणाऽऽलम्बकरणात् कारणं किल ।

सा सत्ता स च सम्बन्धो नित्यौ कार्यमयेह किम् ॥

[ ] पृ. ३०३ (७)

स त्वसम्पादकस्तादृशस्तु सम्बन्धहानितः ।

न शब्दा. प्रत्ययाः सर्वे भूतार्थोप्यवसायिनः ॥

[ तत्त्वसं० का० ११६५ ] पृ. २२७ (६)

सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत् प्रत्यक्षम् ।

[ जैमि० सू० १-१-४ ] पृ. ४८, ८०, ५३४ (८)

सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्य इन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत् प्रत्यक्षमनि-  
मित्तम्, विद्यमानोपलम्भन्त्वात् ।

[ जैमिनीयसू० १-१-४ ] पृ. ३१

षट्कारणवन्नित्यम् ।

[ वैशेषिकद० ४-१-१ ] पृ. ६४७, ६५६, ७३१

सदुपलम्भकप्रमाणगम्यत्वं षण्णामस्तिलमधीयते, तच्च षट्-  
पदार्थविषयं ज्ञानम् तस्मिन् सति 'सत्' इति व्यवहारश्च्युते ।

एवं 'ज्ञानजनितं ज्ञानज्ञेयत्वम्' 'अभिधानजनितम् अभिधेयत्वम्'  
द्वयैवं व्यतिरेकनिबन्धना षष्ठी सिद्धा, न चाऽनवस्था, न च

षट्पदार्थव्यतिरेकपदार्थान्तरप्रसक्तिः ज्ञानस्य गुणपदार्थेऽन्तर्भा-  
वात् । [ ] पृ. ६६१ (१०)

सदेव न जन्त्यते । [ ] पृ. ५७

सङ्गुणप्रत्ययरूपेण रूपादेरेकतेष्यते ।

स्वरूपापेक्षया चैवा परस्परं विभिन्नता ॥

[ श्लो० वा० अभावप० श्लो० २४ ] पृ. ५८८ (१३)

सद्रूपतानतिक्रान्तस्वस्वभावमिदं जगत् ।

सत्तारूपतया सर्वं संगृह्य संग्रहो मतः ॥

[ ] पृ. ३११ (४)

स द्विविधोऽश्चरुभेदः ।

[ तत्त्वार्थ० अ० २ सू० ९ ] पृ. ६१८

सन्तानविषयत्वेन वस्तुविषयत्वं द्वयोरुक्तम् ।

[ ] पृ. ४६८ (९)

सन्ति पञ्च महद्भूयाः ।

[ सूत्रक० प्र० श्रु० प्र० अ० प्र० उ० गा० ७ ] पृ. ५९

सन्निकृष्टविशेषात् तद्ग्रहणम् ।

[ ] पृ. ५२८

सन्निकृष्टार्थश्रुतित्वं न तु ज्ञानान्तरेष्वयम् ।

[ श्लो० वा० निरा० श्लो० ११५ ] पृ. ५३७ (११, १२)

१०५ सं० ५०

सन् बोधगोचरप्राप्तस्तद्भावेनोपलभ्यते ।

नश्यन् भावः कथं तस्य न नाशः कार्यतामियात् ॥

[ ] पृ. २२१ (५, ६)

सप्त भुवनान्येकबुद्धिनिमित्तानि, एकवस्त्वन्तर्गतत्वात्, एका-  
वसधान्तर्गतानेकापवरकवत्; यथैकावसधान्तर्गतानामपवरकाणां

सूत्रधारैकबुद्धिनिमित्तत्वं दृष्टं तथैकस्मिन्नेव भुवनेऽन्तर्गतानि  
सप्त भुवनानि, तस्मात् तेषामप्येकबुद्धिनिमित्तत्वं निश्चीयते;

यद्बुद्धिनिमित्तानि चैतानि स भगवान् महेश्वरः सकलभुवनैक-  
सूत्रधारः । [ ] पृ. १३२

स बहिर्देशसम्बन्धो विस्मृष्टमुपलभ्यते ।

[ ] पृ. १९९

समवायिन श्वैत्यात् श्वैयमुदेः श्वेते बुद्धिः ।

[ वैशेषिकद० ८-१-९ ] पृ. ६९३ (२)

समानप्रत्ययप्रमवाग्मिका जातिः ।

[ न्यायद० अ० २ आ० २ सू० ६८ ] पृ. १७८ (७)

समाना इति तद्ग्रहात् ।

[ ] पृ. २४२ (२०)

समुच्चयादिर्यैश्चार्यैः कश्चिन्नादेरभीरिसतः ।

तदन्यस्य विकल्पादेर्भवेत् तेन व्यपोहनम् ॥

[ तत्त्वसं० का० ११५९ ] पृ. २३६ (५)

सम्बद्धं वर्तमानं च दृष्टते च्युतादिना ।

[ श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० ८४ ] पृ. ५६, ५३० (९)

सम्बद्धबुद्धिजननं तेषां सम्बन्ध एव च ।

[ ] पृ. १०७ (५, ६)

सम्प्रयत्नं च संशन्दो दुष्प्रयोगनिवारणः ।

[ श्लो० वा० सू० ४ प्रत्यक्ष० श्लो० ३८ ] पृ. ५३५ (१)

सम्प्रदर्शन-ज्ञान-चारित्र्याणि मोक्षमार्गः ।

[ तत्त्वार्थसू० १-१ ] पृ. ६५१

सर्ग-स्थित्युपसंहारान् युगपद् व्यकशक्तितः ।

युगपच्च जगत् कुर्यात् नो चेत् सोऽव्यकशक्तिकः ॥

[ ] पृ. ७१६ (९, १०)

सर्गशौ पुरुषाणां व्यवहारोऽन्योपदेशपूर्वकः, उत्तरकालं प्रवृ-  
द्धानां प्रत्ययनियतत्वात्, अप्रसिद्धवागव्यवहाराणां कुमाराणां

गवादिषु प्रत्ययनियतो वागव्यवहारो यथा मात्राद्युपदेशपूर्वकः ।

[ ] पृ. १०१ (३)

सर्वे एवायमनुमानानुमेयव्यवहारः सांघृतः ।

[ ] पृ. ३०७

सर्वे एवायमनुमानानुमेयव्यवहारो बुद्धयारूढेन भर्मधिर्भेदेन ।

[ ] पृ. ५९४ (९)

सर्वचित्त-चैतानामात्मसंबेदेन प्रत्यक्षम् ।

[ न्या० श्लो० १-१० ] पृ. ५०१ (३) ५०८ (१६)

सर्वचित्तचैतानामात्मसंबेदेन प्रत्यक्षमविकल्पम् ।

[ ] पृ. ५०६, (१, २)

५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीम् — ।

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११७ ] पृ. ५५

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।

दृष्टो न वैकदेशोऽस्ति लिङ्गं वा योऽनुमापयेत् ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११७ ] पृ. ५५

सर्वज्ञो नावनुदधेद् येनैव स्थात तं प्रति ।

तद्वाक्यानां प्रमाणत्वं मूलाज्ञानेन वाचयन्वत् ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० १३५ ] पृ. ५३ (२)

सर्वज्ञोऽयमिति ह्येतत् तत्कालेऽपि युयुत्सुभिः ।

तज्ज्ञानज्ञेयनिज्ञानरहितैर्गम्यते कथम् ॥

[ श्लो० वा० सू० २ श्लो० १३४ ] पृ. ५३

सर्वत्र पर्यनुयोगपराभ्येव सूत्राणि बृहस्पतेः ।

[ ] पृ. ६९, ७४

सर्वत्राभेदादाश्रयस्यानुच्छेदात् कृत्स्नार्थपरिसमाप्तेश्च यथाक्रमं  
जातिधर्म्या एकल-नित्यल-प्रत्येकपरिसमाप्तिलक्षणम् अपोद्  
एनानतिघ्नन्ते; तस्माद् गुणोत्कर्षादर्थान्तरापोद् एव शब्दार्थः  
सायुः । [ ] पृ. ३०१ (८)

सर्वदा सदुपायानां वादमार्याः प्रवर्तन्ते ॥

[ श्लो० वा० निरालम्ब० श्लो० १२८ ] पृ. ३७७

सर्वभावाः स्वभावेन स्वस्वभावव्यनस्थितेः ।

स्वभाव-परभावाभ्यां यस्माद् व्यावृत्तिभागिनः ॥

[ ] पृ. २४३ (२०, २१, २२)

सर्वमालम्बने भ्रान्तम् ।

[ ] पृ. ५१२ (२)

सर्वमेकं सलक्षणं च तद्द्वयम् ।

[ ] पृ. २७३ (३)

सर्वैवस्तुषु बुद्धिश्च व्यावृत्त्यनुगमात्मिका ।

जायते द्वात्मकत्वेन विना सा च न युज्यते ॥

[ श्लो० वा० आकृ० श्लो० ५ ] पृ. २३३

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो नाऽपि कस्यचित् ।

यान्वत् प्रयोजनं नोक्तं तान्वत् तत् केन गृह्यते ॥

[ श्लो० वा० सू० १ श्लो० १२ ] पृ. १६९ (७, ८)

सर्वस्योभयरूपत्वे तद्विशेषनिराकृतेः ।

चोदितो दधि खादेति किमुद्गं नाभिधावति ॥

[ ] पृ. २४२ (३३)

सर्वे भर्मा निरात्मानः सर्वे वा पुरुषा गताः ।

सामस्त्यं गम्यन्ते तत्र कश्चिदंशस्त्वपोह्यते ॥

[ तत्त्वसं० का० ११८६ ] पृ. २२९

सर्वेऽप्यनियमा ह्येते नानुमोत्पत्तिकारणम् ।

नियमात् केवलदेव न किञ्चिन्नानुमीयते ॥

[ ] पृ. २१

सन्वियप्प-मिन्वियप्पं । [ प्र० का० गा० ३५ ]

पृ. ६२८ (५)

सन्वापारप्रतीतत्वात् प्रमाणं फलमेव सत् ।

[ ] पृ. ५२९ (११)

सन्वापारमित्राभाति व्यापारेण स्वकर्मणि ।

[ ] पृ. ४५९ (७) ५२९

सन्वत्थोवा तित्थयरिसिद्धा तित्थयरित्थे भतित्थयरिसिद्धा  
असंखेज्जगुणा । [ ] पृ. ७५२

सन्वाओ लद्धीओ । [ विशेषाव० भा० गा० ३०८९ ]

पृ. ६०८ (८)

सन्वे नि एगदूसेण णिगगया जिणवरा ।

[ आवदयकसू० गा० २२७ ] पृ. ७५० (२)

स सर्वो (सर्वो) मिथ्यावभासोऽयमर्थ इतीष्यत एव यथो-  
क्तेष्वेका (मर्थेष्वेका)त्मकप्रहः । इतरेतरमेदोऽस्य मीजं संज्ञा  
यदर्थिका ॥ [ ] पृ. १८१ (१६, १७, १८)

सद्भाविनो गुणाः क्रमभाविनः पर्यायाः ।

[ ] पृ. १७८ (५)

सद्वनतिनो गुणाः । [ ] पृ. १४७

सह सुषा । [ अ० २ पा० १ सू० ४ पाणि० व्या० पृ०

१६० अ० ६४९ ] पृ. २७१

सहस्रनर्त्ता सामवेदः । [ ] पृ. ७३१ (३)

सान्वयहारिकस्य च प्रमाणस्यैतल्लक्षणम् ।

[ ] पृ. ४७०

साकारे से णाणे अणागारे दंसणे ।

[ ] पृ. ६०५

साक्षादपि च एकस्मिन्नेवं च प्रतिपादिते ।

प्रसज्यप्रतिषेधोऽपि सामर्थ्येन प्रतीयते ॥

[ तत्त्वसं० का० १०१३ ] पृ. २०३ (१६, १७, १८, १९)

सागारमणागारं लक्षणमेभ्यं तु सिद्धाणं ।

[ प्रज्ञाप० द्विती० प० सू० ५४ गा० १६० ]

पृ. ६०८ (५)

साहृदयस्य च वस्तुत्वं न शक्यमववाधितुम् ।

भूयोऽवयवसामान्ययोगो जात्यन्तरस्य तत् ॥

[ श्लो० वा० उपमान० श्लो० १८ ] पृ. ५७६

साधने पुरुषार्थस्य सन्निरन्ते त्रयीविदः ।

बोधविधौ समायत्तम् — । [ ] पृ. ७४१

'साध्यसद्भावे एव सर्वत्र साधनसद्भावाः' इत्येवं भूतान्वयाऽ-  
प्रसिद्धौ 'साध्याभावे सर्वत्र साधनस्य अभावाः' इति सकला-  
क्षेपेण व्यतिरेकस्यासम्भवात् । [ ] पृ. ६७१

साध्यसाधनम् । [ न्यायद० १-१-६ ] पृ. ५७८ (९)

सामर्थ्यभेदः सर्वत्र स्यात् प्रयत्नविषयोः ।

[ श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ८३ ] पृ. ३१

सामान्यं नान्यदिष्टं चेत् तस्य ह्येतेनियामकम् ।

गोत्सेनापि विना कस्माद् गोबुद्धिर्न नियम्यते ॥

[ श्लो० वा० आकृ० श्लो० ३५ ] पृ. २४० (१५, १६)

## ५ - सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रसिद्धिरनुमानात् ।  
 [ साङ्ख्यका० ६ ] पृ. ५६६  
 सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् विशेषस्मृतेश्च संगण्यः ।  
 [ वैशेषिकद० २,३, १७ ] पृ. ४१२ (१)  
 सामान्यमपि नीलत्वादि नीलाशाकारमेव अन्यथा 'नीलम्'  
 'नीलम्' इति अनुवृत्तिप्रत्ययो न स्यात् इति हेतोरसिद्धत्वात्  
 नानुमानत्वात् । [ ] पृ. ६९३  
 सामान्यविषयत्वं हि परस्य स्थापयिष्यते ॥  
 [ श्लो० बा० शब्दप० ५५ ] पृ. ५७५  
 सिद्धागोरपोहोत गोनिषेभामकथ सः ।  
 तत्र गोरैव वक्तव्यो नया यः प्रतिबिध्यते ॥  
 [ श्लो० बा० अपो० श्लो० ८३ ] पृ. १९१ (१०)  
 सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्धः ।  
 [ न्यायद० अ० १ आ० २ सू० ६ ] पृ. ९७  
 युज्यमानाकारं विज्ञानं मेयबोधनम् ।  
 शक्तिः कियानुमेया स्यात् यूनः कान्तासामागमे ॥  
 [ ] ४७८ (६)  
 सुविचेचितं कार्यं कारणं न व्यभिचरति ।  
 [ ] पृ. ११८, २६६, ५६३,  
 सुविचेचितं कार्यं कारणं न व्यभिचरति अतस्त्वदवधारणे यतो  
 विधेयः । [ ] पृ. ९०  
 सोमिला । एगे वि अहं जाव अणेगभूयभावभविण्य य अहं ।  
 से केणद्वेण भंते । एणं वुच्चइ । एगे वि अहं ।  
 [ भग० वा० १८ उ० १० सू० ६४७ ] पृ. ६२५  
 सोमिला । दध्वद्वयाए एगे अहं, णाणदंसणद्वयाए तुवे अहं ।  
 [ भगवती० वा० १८ उ० १० सू० ६४७ ] पृ. ६२५  
 सोऽयं प्रमाणाथोऽपरिसङ्ख्येयः ।  
 [ बात्स्या० भा० पृ० १ पं० १२ ] पृ. ५१४  
 सो य तवो कायचो जेण मणो मंगुलं न चित्तेइ ।  
 [ पञ्चन० पृ. ३५ गा० २१४ ] पृ. ७४९ (२)  
 श्रीलादयो गोलादय इव सामान्यविशेषाः ।  
 [ ] पृ. २२२ (३)  
 स्पष्टानुमानागमसंशयप्रतिभास्वप्नज्ञानोदाः सुखादिप्रत्यक्ष-  
 मिच्छादयश्च मनसो लिङ्गानि । [ १-१-१६ बात्स्या० भा० ]  
 पृ. ५६२  
 स्वकर्मणा युक्त एव सर्वो ह्युत्पद्यते नरः ।  
 स तथाऽऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ॥  
 [ ] पृ. ७१५  
 स्वकारणसम्बन्धकालः प्रथमः ततः स्वसामान्याभिन्वय-  
 कालः ततः अनयनकर्मकालः ततः अनयनविभागकालः ततः  
 स्वारम्भकावयवसंयोगविनाशकालः ततः प्रव्यविनाशकालः ।  
 [ ] पृ. ६८७  
 स्वकीयरूपानुभावान्यान्यतोऽन्यनिराकिया ।  
 [ ] पृ. १६६ (१)  
 स्वगृहान्निर्गतो भूयो न तदाऽऽगन्तुमर्हति ।  
 [ ] पृ. ७५

स्वतः सबैप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम् ।  
 नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते ॥  
 [ श्लो० वा० सू० २ श्लो० ४७ ] पृ. ४  
 स्वबीजानेकविच्छिन्नस्तुसङ्घैतशक्तिः ।  
 विकल्पास्तु निमित्तान्ते तद्रूपान्यनसायिनः ॥  
 [ तत्रसं० का० १०४८ ] पृ. २०९ (१४, १५)  
 स्वभावेऽप्यक्षतः सिद्धे यदि पर्यनुयुज्यते ।  
 तत्रोत्तरमिदं युक्तं न दृष्टेऽनुपपन्नता ॥  
 [ ] पृ. २६  
 स्वभावेऽप्यविनाभावो भावमात्रानुरोधिति ।  
 तदभावे स्वयं भावस्याभावः स्यादनेदतः ॥  
 [ ] पृ. ३२१ (२९) ५६९ (४)  
 स्वभावोऽपि स तस्यैतं येनापेक्ष (?) निवर्तते ।  
 (?) विरोधिर्न यथाऽन्येषां प्रवाहा सुहरादिकम् ॥  
 [ ] पृ. ३४८  
 स्वयमेव भावो न भवेत् । [ ] पृ. ४२५  
 स्वरूप-पररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके ।  
 वस्तुनि ज्ञायते किञ्चिद् रूपं कैश्चिद् कदाचन ॥  
 [ श्लो० वा० अमान प० श्लो० १२ ] पृ. ५८१ (६)  
 स्वरूपसत्त्वमात्रेण न स्यात् किञ्चिद् विशेषणम् ।  
 स्वरूप्या रज्यते येन विशेष्यं तद् विशेषणम् ॥  
 [ श्लो० वा० अपो० श्लो० ८७ ] पृ. १९२  
 स्वरूपस्य स्वतो गतिः । [ ] पृ. १५, ४६५, ४८३, ५१३  
 स्वरूपेण निर्देयः । [ ] ५९२  
 स्वयंवेद्यमनिर्देयं रूपमिन्द्रियगोचरः ।  
 [ ] पृ. १८७ (५)  
 स्वाभाविकीमवियां तु नोच्छेत्तुं कश्चिदर्थेति ।  
 [ श्लो० नातिक० सू० ५ ] पृ. २७८  
 स्वाश्रयेन्द्रियसन्निकर्षापेक्षप्रतिपत्तिकं सामान्यम् ।  
 [ ] पृ. ६९४  
 ह्ययं णाणं कियाहीणं ह्या अण्णाणओ किया ।  
 पासंतो पंगुलो डडुओ धावमाणो य अंधओ ॥  
 [ आवश्यकति० पदमान० गा० २२ ] पृ. ७५६ (८)  
 हिताहितप्राप्ति-परिहारयोः । [ ] पृ. ४६९  
 सर्वज्ञः— । [ ] पृ. ४६  
 हिरण्यगर्भः समवर्ततामे । [ ऋग्वेद अष्ट० ८ मं० १० सू०  
 १२१ ] पृ. ३२, ४०, ४२  
 हेतुना यः सममेण कार्योत्पादोऽनुमीयते ।  
 अर्थान्तरानपेक्षत्वात् स्वभावोऽनुवर्णितः ॥  
 [ ] पृ. ५६३  
 हेतुमदनित्यमव्यापि सत्क्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् ।  
 सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमन्यक्तम् ॥  
 [ साङ्ख्यका० १० ] पृ. २८१ (१८)  
 हेलाथये डडु । [ ] पृ. २७१ (४)

६

## \*सन्मतिटीकानिर्दिष्टा ग्रन्था ग्रन्थकृतश्च ।

अ

अक्षपाद ५३९-२९  
 अक्षपादकणभुगमतानुसारिन् ४७५-१७, ७१८-३२  
 अत्र ६१४-१६  
 अत्राहुः ९३-३२, ९५-३४  
 अच्ययन ३३२-१५, ४७१-२८, ५०२-३३, ५६७-१७,  
 ६२९-१३ (२)  
 अन्य ९७-२३, ९८, ९९, १०९, १५५, १८०-२२ (८, ११),  
 १८१ (२), १८२ (४), १८५ (१), २२२-४ (३),  
 २७८, ३५३, ५६२ (५), ७१५ (२), ७४०-६  
 अमर १६-२८, १४६, १८० (२०), २३२, २३३, २७८,  
 ३१०, ३४०, ४२२, ४२८, ५२३, ५३१, ५६०, ५६२-१० (२),  
 ५६५-२६, ५६६-३२, ६२८-१४ (२)  
 अभयदेव ७६१-२४  
 अर्हत १-२०, ४४, ६३४-१७  
 अर्हत्प्रणीतशासन ४५३-३०  
 अर्हत्-सर्वज्ञशासन ६८-२६  
 अर्हदागम ६५१-३, ७५३-३८  
 अर्हद्वचन ६२१-२५, ६५१-१  
 अर्हन्मतानुसारिन् ४४१-२१  
 अविद्वर्ण १००-३३, ३३२-१५, ६५८-३ (४), ६७४-१९  
 अष्टकादि ४०-३३, ४२-५

आ

आगम ९३-२, २७३-४, २९५-१०, ३१३-३४, ६१९-११,  
 ७४६-९, ७५१-१३, ७५६-३२  
 आगमविद् ७३२-२७  
 आचारार्थग ७५०-१९, ७५१-२  
 आचार्य २७-२८, ६८-१९, २८४-३३, ३१६-११  
 आचार्य ( निज्ञप्तिमात्रतासिद्धिकार ) ३७६-३०  
 आचार्य ( दिग्गज ) २०४-१०, २१२-१९ ( १९ ), २१३-  
 १०, २१७-१२, २२८-२०, २३१-८, ३६५-२२, ३७७-१९,  
 ३८८-२२  
 आचार्य ( सिद्धसेन दिवाकर ) १-१६, २९-२५, ४३-३१,  
 ६७-३९, ६८-१८, ६९-३, १३३-२८, ३७९-७, ४४८-२८,  
 ४५५-१९, ४५७, ६१२-१५, ६४२-१२, ६५०, ७०४-२०

\* परिशिष्टेऽस्मिन् स्थूला अङ्काः पृष्ठाङ्कसूचकाः, सूक्ष्मा  
 अङ्काः पङ्क्त्यङ्कविदकाः, क्रोष्टकान्तरीताः आङ्काष्टिष्पण्यङ्कनिवेदका  
 ज्ञेया इति ॥

आचार्याय ( दिग्गजीय ) २०४-८  
 आम्राय २७३-१४  
 आयुर्वेद ७३१-१३  
 आर्हत २९-२४

इ

इन्द्रियसूत्र ( न्या. सू. ) ५३१-५

ई

ईश्वरकृष्ण २८०-३४, २८२-१९, २२६-१६, ५६६-२६

उ

उद्योतकर ( जुओ वार्तिककार अने वार्तिककृत ) १०१-  
 १६, १०६-२३, ११४-५, १३२-१९, १२७-१३, १७४-२८,  
 १७५-१५, २००-२ ( १ ), २०४-३, २२०-४, २२९-१४,  
 ३२२-१५, ४७१, ५१९-३, ६५९-१३, ६६३-२३ ( ३ ),  
 ६६८-४ ( ३ ), ६१९-८, ६६६-११  
 उद्योतकरादि २०१-२१, ६५९-१३  
 उद्योतकराध्ययनप्रमृति ४७१-२८  
 उल्लूक ६५६-१७ ( ३ ), ७०४-२८

ए

एक ९६-२३, ३४०-३१, ५६०-२ ( १ )

औ

औलूक्य १४०-४

क

कणभुगमत ६५६-१३  
 कणभुगमतानुसारिन् ३९०-१३  
 कणभुज् ( जुओ वैशेषिकशास्त्रप्रणेत् ) ४४१-२१, ४७५,  
 ७१८-३३  
 कपिलमतानुसारिन् ७१८-३१  
 कपिलादि १३३-११  
 कपिलादिप्रणीतसिद्धान्त ६९-५  
 काणाद ६७६-२१, ७२४-२७  
 कादम्बर्यादि ४०-३०, ४२-९, ५३६-२८  
 कापिल २८०-२७, २८२-२६, २९६-९, ३००-३३, ६५६-७  
 कालिदासकृतत्व ४०-११  
 कीर्ति ( धर्मकीर्ति ) ५०६-३  
 कुमारसम्भवादि ४०-३१

## ६ - सन्मतिटीकानिर्विष्टा ग्रन्था ग्रन्थकृतश्च ।

कुमारिक १८७-१२, १९०-९, २०४-१९, २२३-१, २२९-११, २४०-२५, ५६४-१४, ५७०-१४, ५७८-३३, ६९५-२२ (२)

कुमारिलचक्रन २०४-१९ (१९)

केचित् ७५-४०, ९१-६, ९७-२१, १०९-२४, १४६-४१, १६८-२६, २७८-३१, ३२४-१८, ४०५-१०, ४४०-२९, ४४५-३१, ५२२-१८, ५३१, ५३८-४, ५५३-१४ (९), ६११-२, ६४०-९, ७१४-११ (५)

कैश्चित् ३६-१४, ७९-३५, १४२-१५, ३१०-१९, ३४१-९, ४५६-५

केषांचित् ५६६-३१, ५९७-२ (१)

ग

गणधरादि ७५१-२४, ७५४-३३

गन्धहस्तिप्रभृति ५९५-२४, ६५१-३१

गोयाचार्य ५६४-३४ (१७)

गोयम ६०५-३

गौतम ( इन्द्रभृति ) ६०५-१०

गौतमादि ( इन्द्रभृति आदि ) ६३५-२

च

चतुर्थोपध्याय ( वा. भा. ) ५२१-२

चतुर्दशपूर्व ७५२-३३

चतुर्दशपूर्वविपद् १७३-६

चतुर्दशपूर्वसंविद्वाग्मिनी ७५१-२७

चार्वाक ४३-२६, ६९-३९, ७३-५, ९३-३१, ९४-२६, ९५-३२, ११७-८, ११८-१६, १३२-४१, १४९-१३, ५०५-६, ५३९-२८, ५४६-१, ५५४-१

चार्वाकमत ९४-३७, ५५६-२, १६३-१६

चार्वाकमीमांसकदृष्टि ९४-२६

चार्वाकादि ५०५-५

चिकित्साशास्त्र ६१-३७, १७०-२३

ज

जिन ८-२६, २२-२०, ४३-३२, ६८-३०, ६९-८, १३३-१२

जिनपुत्र ( बौद्ध ) ७३१-३३

जिनप्रणीत ४३-२२

जिनप्रणीतत्व १६९-५

जिनभद्रगणिकामाश्रमणपूज्य ६०८-२१

जिनमतानुसारिन् ८०-२५

जिननचन ७५७-७, ७६१-१५

जिनवचनमहोदधि १-१४

जिनशासन ६९-८

जिनोपदेश ६३८-२६

जैन ५८-४३, ६९-३३, ९०-४, १०७-८, २६५-२०, ४६५-२५, ४७४-७, ४७८-१४, ४८९-१५

जैनपक्ष ६४८-१२

जैनमत ४७८-१३, ५२४-११, ५५१-८

जैसिनि ४८-१५, ५६-२, ६५-१३, ५३४-११, ७१८

जैसिनीय ८०-२३, ९४-३६, १३२-४१, ४६६-९, ४६७-१८ ( १, १० ), ५५२-२३

जैसिनीयम् ५३९-२८

त

तत्त्वचिन्तक ५६८-२२

तत्त्वबोधविधायिनी ७६१-२९

तत्त्वविद् २७२-२६, २७९-१०, २८०-१

तत्त्वार्थसूत्रकृत ( उमाखाति ) २६१, ७४९-१०

तद्वादिन् ( अनेकव्यक्तिय्यापिसामान्यवादिन् ) ११२-२०

तान्त्रिकलक्षण ७२-१५, ७५-२२, ७६-४

तार्किक ७६-३, ८९-३०

तीर्थकर २७१-१२, ४५५-३१, ६०५-२४

तीर्थकृत १-२३, ६३५-१२, ७४६-२५

तीर्थकृदचन ४५६-१

तीर्थकृन्मत ४५६-५

तीर्थान्तरीय ७३६-३४

तृतीयसूत्र ( न्या. सू. ) ५६७-१५

तृतीयानैकस्थान ( स्थानाङ्गसूत्र ) ४५३-१७

त्रयी ४४-८

त्रयीविद् ७४१-२९

द

दिग्म्बर ७४७-१९, ७५४-३३

दिग्माण ( जुओ आचार्य ) १७५-१३, १९१-२०, २०१-१३, २०४-२

दिव्यासस् ७४६-२४, ७५५-५

दृष्टिवाद ६५१-१९

द्राविणिका ६९-३१

द्रादशास्त्र १-३०, ६८-३०, ६९-७, २७१-१०, ६१५-१९, ६३८-२६

द्रादशास्त्रवाक्य ६१५-२९

द्रादशास्त्री ७५१-२०, ७५२-१६

द्रादशास्त्रैकश्रुतस्कन्ध ६१६-३३

ध

धर्मकीर्ति ( जुओ कीर्ति ) ६७-३०, ६९-२९, ७६-३३, १४९-१५, २४२-३१, २४५-१५, ४६५-११

धर्मोत्तर ४७१-१५

न

नास्तिक-मीमांसक ७५३-४०

नास्तिक-याज्ञिक ७१८-३१

निर्मन्थी ७५१-२५, ७५४-१०

६ - सन्मतिटीकानिर्विद्धा ग्रन्था ग्रन्थकृतम् ।

नैयायिक ८४-३३, ९३-१३, १०२-२, १२६-३०, १३८-२, १५९-२०, १६१-४१, १६२-३९, १७७-१९, ४७१-१८ ( ७ ), ४७५-२३, ५०२-१९, ५१८-३२, ५२२-२२, ५२५-२६, ५२९-३३, ५३६-१३, ५३८-२२, ५३९-१२, ५५२-१३, ५५९-२६, ५६५-३४, ५८४-१, ५८९-३१, ६७१-२९, ७२१-२८  
 नैयायिकत्व १५२  
 नैयायिकदृष्टि ५६५-३४  
 नैयायिकादि ७५-२७, ४७५-२१, ४८४-३३, ४८५-८, ५०५-८  
 न्यायभाष्यकृत् ७२१-२५  
 न्यायवादिन् ७५६-६  
 न्यायविद् ९४-३३, ११६-१७, २७०-७, २७१, ३२५-४

प

पतञ्जलि ६९-१३, १५३-१८  
 पदार्थप्रवेशकग्रन्थ ६११-१ ( २ )  
 पर ३०८-१९, ३२५-२९, ३३६-११, ४५५-२०  
 पाणिनि १७९-२ ( ४ )  
 पाणिन्यादिकम् ४३-१३  
 पाणिन्यादिकप्रणीतव्याकरण ४३-११  
 पाशुपत ७४७-१८  
 पूरण ७१८-३१  
 पूर्वान्वय ( जैन ) ३३-१७, ६८-३८  
 प्रकरणकार ( जुओ आचार्य अने सिद्धसेन विवाहर ) ६०७-३१, ६०८-२५  
 प्रकृतिकारणिक २९६-१३  
 प्रज्ञाकर २६५-२६  
 प्रज्ञाकरमतानुसारिन् २६५-२६  
 प्रज्ञाकराभिप्राय ५००-१८, ५०१-१०, ५१२-१२  
 प्रत्यक्षसूत्र ५३१-११, ५६७-२०  
 प्रथमपूज्याख्यान् ( न्या. सू. ) ५६७-१७  
 प्रद्युम्नसूत्रे ७६१-२९  
 प्रमाणबार्तिक ५७१-२१  
 प्रवास्तमति १०१-१९, १३२-५, ७१६-१८  
 प्रवास्तमतिप्रभृति १०१-२९, १३२-२८  
 प्राभाकर २९-१३

ब

बाण ४०-३१  
 बुद्ध ४४-१६, ६८-२१  
 बुद्धादिशासन ६८-२६, ६९-४  
 बुद्धादिसंज्ञपूर्वकल ६८-२१  
 बृहस्पति ७४-११, ५५५-१४  
 बृहस्पतिमतानुसारिन् ६९-३२, ७३-३९, ७७-१७, ७१८-१ ७५१-२३

बृहस्पतिवृत्त ७०-१८  
 बोटिकादि ७५६-६  
 बीज १५, ५४, ७६, ७७-९, ८४, ८६, ९३, ११५, ११७, १६१, १७३, ३०८-१०, ३०९, ३६३, ४७०, ४७५-२२, ४८६, ५०१, ५२९, ५४६-२, ६७४-६, ७०६, ७०७, ७०९, ७१८-२, ७२७  
 बौद्धदृष्टि ८४-८  
 बौद्धमतानुसारिन् ८६-२२  
 ब्रह्मभाषित ६४१-३३  
 ब्राह्मण ( बृहदारण्यक ) २७३-६

भ

भगवत् ( जैनतीर्थंकर ) ६११, ६१६-३०, ६३४, ६३५, ६३९, ७५१-४, ७५२, ७५४, ७६१-१६  
 भगवत् ( बुद्ध ) ३७७-१, ३७८-२  
 भट्ट ( कुमारिल ) १८-२८, १९१-२०, २०१-२१, ५०५-११  
 भद्रोद्द्योतकरादि २०१-२१  
 भर्तृहरि ३७९-२३, ७५३-२९  
 भर्तृहरिचरित् ४३५-८  
 भारत ५६-१०, ५३६-२८ ( ७ )  
 भारतादि ४०-३३, ४१-२, ४२-१३  
 भाष्य ( वा. भा. ) १०२-३, १२०-२, ५०९-१८  
 भाष्यकार ( वात्स्यायन ) ( जुओ न्यायभाष्यकृत् अने भाष्य-कृत् ) ९९-४०, ७८-५  
 भाष्यकार ( शबर ) ( जुओ भाष्यकृत् ) ३५८-१८  
 भाष्यकारमत ( वा. भा. ) १७८-५  
 भाष्यकृत् ( वात्स्यायन ) १५३-२६, ५२२-१५, ५२४-८  
 भाष्यकृत् ( शबर ) ९४-२८  
 भाष्यकृत् प्रभृति ( जिनभद्रगणिसाम्प्रदायप्रभृति ) ६५३-४ ( ३ )  
 भाष्यनचन ( शबरभाष्य ) ५७८-३३  
 भाष्यवाक्य ( वात्स्यायनभाष्य ) १५४-२०  
 भाष्यविरोध ( वा० भा० ) ५६३-१०  
 भिक्षु ७४६-३१  
 भुवनयुक्त ( तीर्थंकर ) १-२२

म

मण्डलिन ७१८-७  
 मन्त्रब्राह्मणरूप २९५-१०  
 मन्त्रार्थवाद ४०-३६, ४२-२५  
 मल्लवादिन् ४४७-२३, ६०८-२१  
 माध्यमिक ३७८-९  
 माध्यमिकदर्शनावलम्बिनन् ३६६-१३  
 माहेश्वर ११९-२६  
 मीमांसक २-२, १३-३७, ४२, ४८, ५०-४१, ६८-३६, ७४, ११७, २१५, २६७, ३८६-१३, ४३५, ५०५-१, ५५२, ५७४, ७३८-८, ७४१  
 मीमांसकमत २९-१४, ३५२-१४, ५१३-५

## ६ - सन्मतिटीकानिर्विष्टा प्रन्या प्रन्यकृतम् ।

मीमांसकादिप्रसिद्ध ७४-४०

मीमांसकानिप्रय ७४१-२८

य

यदप्यत्राहुः ७९-४

यदाह १४-२१, १८५-६

यः ७८-१०, १०७-२०

याज्ञिक ७१८-६

ये १०-८, ९६-२८, १५३, १९९-१२ ( १२, १३, १६ ),

६७९-२१

येः २४०-६, ५३५-४ ( ३ )

योगाचार ३७८-८, ४६३-१९

र

रक्तपट ७४६-३०

रामायण ५६-१०

रामायणादि ५३६-२८ ( ६ )

ल

लक्षणकार २१७-९

लोकयतवाञ्छ ३९-२३

व

वर्धमानार्क १-८

वानकमुख ( उमास्वाति ) ८०-२७, ९३-४, ५९५-१९,

७४९-११

वानकमुखसूत्र ( उ० स्वा० कृत त० सू० ) ६३६-२

वाजपयान ( जुओ अध्ययन ) १७९-२ ( २ )

वादिदृष्टभङ्गतिष्ठत् ७५७-२० ( २ )

वार्तिक ( श्लोकवार्तिक ) ३१-१६

वार्तिककार ( न्या० वा० उद्द्योतकर ) १००-२९, ५३४-

२० ( ९ )

वार्तिककारप्रभृति ( न्या० वा० उद्द्योतकर ) ५३४-२० ( ९ )

वार्तिककारमत ( न्या० वा० उ० ) १७७-२२

वार्तिककारीय ( श्लो० वा० कारीयकुमारिल ) ९९-४०

वार्तिककारीयदूषण ( श्लो० वा० ) १३०-३१

वार्तिककृत ( कुमारिल ? ) ८-१३, ४९-३, ५७-१०

वार्तिककृत ( न्या० वा० उ० ) ८०-१०, ९९-२९, १३०-

१५, ५६३-२१

विन्ध्यवासिल २९६-२२, ५३३-३

विश्वामित्र ६९७-२५

वेद ३०, ३२-९, ३९-२६, ४०-८, ४१, ४२-३, ४३, ११७,

३८०-४, ७३१-६

वेदवचसू ३२-२

वेदार्थज्ञ ६५-१३

वैदिक ३९-२३

वैदिकी ४२-३८, ९४-४०, ९५-१

वैभाषिक १८५-१६, ३७८-६, ३९७-३२, ४५८-१४,

४५९-१२

वैयाकरण १०९-२१, २२२-९, ३८०-१९, ४३१-१५, ४८९-

२, ५६६-६

वैशेषिक १२९, १३३, १३८, ३२१-४, ४३२-३०, ४३९,

४७२, ५२९, ५५२, ५७१, ६२९, ६८५ ( ६ ), ७०७-३८,

७०८, ७०९, ७२७-३७

वैशेषिकमत ५१९-१०

वैशेषिकशास्त्रप्रणेत् ( कणाद ) ६५६-१७

वैशेषिकसिद्धान्त २२२-८

वैशेषिकादि ३०३-५, ४००-६, ५५२-२३, ४२२-१६, ६१६-

२८, ६३३-२ ( १ ), ७१९-३५

वैशेषिकाभिप्रायतः ६२९-१४

व्याकरणप्रणेत् ४३-१२

व्याख्याप्रस्ताव्यायज्ञ ६१४-१६

व्याप्ति १७९-३ ( ३ )

व्यास ९८-३०, ६९७-२५

श

शाङ्करस्वामिन् ६६४-१५ ( ७ ), ६९३-५ ( १ )

शाबरस्वामिन् ( जुओ भाष्यकार अने भाष्यकृत ) ५०५-११

शाक्य ८९-१७, ९४-१६, १००-२७

शाक्यदृष्टि ९४-२४, ५३३-३

शाक्योद्धरण ७०४-२८

शाबर ( जुओ भाष्यवचन ) ५०५-९

शास्त्र ६५७-६, ७०९-३५

शास्त्रकृत ३६४-१३

शास्त्रान्तर ४५९-२

शौक्योदनि ६५६-८

श्रुति ९८-३६

श्वेतमिश्र ७४६-३३, ७५०-३७, ७५१-१३

श्वेतवासस ७४६-२७

श्वेताम्बर ७४७-४

स

सकलशास्त्रन्याख्यातृ ५८-१२

सन्मति ७६१-२३ ( ११ )

सन्मतिटीका ७६१-२२ ( १ )

सम्बन्धवादिन् २६४-२२

सन्मतिटीका १-९

सन्मतिवृत्ति १-८

सन्मत्याख्यप्रकरण १-१७

सहस्रवर्त्मन् ( सामवेद ) ७३१-६

साङ्ख्य १०१-७, २८०-२१, २९७-२९, ३०८-३३, ३०९,

४२२, ४८६, ५१२-१७, ५४६, ५७२, ६१६, ७०४-२९, ७०५-

३, ७१८-३

## ६ - सन्मतिटीकानिर्दिष्टा ग्रन्था ग्रन्थकृतश्च ।

साङ्ख्यज्ञान ६०६-५  
 साङ्ख्यदर्शन १११-४०, १३५-२७, २८०-२३, ३१०-६,  
 ५३४-१  
 साङ्ख्यबौद्धकरणभुज् ४४१-२१  
 साङ्ख्यमत ४१७-३०, ५००-३, ५०७-२८, ६५६-७  
 साङ्ख्यमतप्रतिकेपक २९६-९  
 साङ्ख्यमतानुसारिन् ५३४-१६  
 साङ्ख्यविशेष ४२२-१४  
 साङ्ख्यसौगतमत ६५६-१३  
 साङ्ख्याये कान्तवादिदर्शनसमूहमय ७५७-२३  
 सामवेद ७३१-७  
 सितपट ७४६-२९  
 सिद्धसेनदिवाकर ( जुओ आचार्य प्रकरणकार, अने सूरि ) १-१७  
 सिद्धसेनाचार्यवचन ७५७-२० ( २ )  
 सिद्धान्त ( जैन ) ६३५-१७  
 सुगत ५०२-२६  
 सुगतज्ञान ६०६-७  
 सुगतसुत ११८-३८, १३२-३८  
 सुगतसुताभ्युपगम ३३३-२१  
 सुरगुप्तमत्तानुप्रवेश २८०-८  
 सूत्र ( मीमांसासूत्र ) ३१-१३, ४८-१५, १०६-१  
 सूत्र ६१३-३४  
 सूत्र ( आचार्यगादिसुत ) ७३२-५  
 सूत्र ( न्या० सू० ) ९७-७, १७८-१०, ५२८-१९, ५३०-  
 १४, ५६०-२ ( १ ), ६६९-२०  
 सूत्र ( पञ्चवणासुत ) ६०५-१ ( १ )  
 सूत्र ( पाणिनिसूत्र ) ४०६-७  
 सूत्र ( नृहस्पतिसूत्र ) ५५५-१४ ( ९ )  
 सूत्र ( भगवतीसूत्र ) ६२५-१०  
 सूत्र ( वैशेषी सू० ) ६६९-७, ६७२-१५, ६७३-१७, ६८५-  
 २६, ६८६-१४  
 सूत्रकार ( न्या० सू० अक्षपाद ) ५२८-३, ५६३-२०, ५७८-  
 २६, ७२०-३६  
 सूत्रकृत ( न्या० सू० अक्षपाद ) ५२८-१३, ६२१-८  
 सूत्रभर ७३२-१४

सूत्रनिर्देश ( जैनसूत्र ) ६१७-४  
 सूत्रपत्रक ( न्या० सू० ) ५३१-१७  
 सूत्रयुक्तिविरोध ( जै० सू० ) ६१७-२०  
 सूत्रविरोध ( तत्त्वार्थसूत्र ) ६१८-१७  
 सूत्रसमूह ( आगमनां सूत्र ) ६१४-१५  
 सूत्रसमूह ( तत्त्वार्थसूत्र ) ५९५-२४  
 सूत्रसमूह ( न्या० सू० ) ५३१-१३  
 सूत्रसंदर्भ ६१३-२ ( १ )  
 सूरयः ९७-३६  
 सूरि ( सिद्धसेन दिवाकर ) ६५-२५, ६८-२३, १३३-११,  
 १६९-५, ३१५-४, ५९६-२२, ६०९, ६१५, ६२१-२५  
 सेश्वरसाङ्ख्य २८०-२८  
 सैदान्तिक ५५३-१४ ( १० ), ६५१-२६  
 सौगत ३-१, ४२-११, ८१-१३, ९०-४, १३८-३८, १४५-  
 ३, १४८-१२, १४९, २०२, २६८-१६, ३१८, ३२०, ३४९-  
 २०, ३८४-९, ३८७-२१, ३८८-२२, ३८९-१६, ३९९-३२,  
 ४००-४, ४३९-४, ४६७-२०, ४८०-३, ४८३-२३, ४८४-  
 ७, ४८६-२३, ४८८-२१, ५१८-२७, ५४५-२२, ५५२-२१  
 ५५४-१४, ५६३-१, ५६५-३४, ५६६-२, ५६७-२९, ५७२-  
 ३६, ५९१-३१, ६२९-९, ६८२-८, ७३८-८, ७४५-२९  
 सौगतदर्शन २७०-११  
 सौगतपक्ष ५११-१२  
 सौगतप्रसिद्ध १३८-४१  
 सौगतमत ४७८-१२, ५१०-२, ५४३-६  
 सौत्रान्तिकमत ४०१-८  
 सौत्रान्तिकयोगाचार ४६३-१९  
 सौत्रान्तिकवैभाषिक ३७८-६  
 सौत्रान्तिकवैभाषिकमत ४००-३६  
 स्फटिकसूत्र ( न्या० सू० ) ५२७-१३ ( ५ )  
 स्तुतिकृत ७५०-१  
 स्वयूथ्य ( जैन ) ६३३-२ ( २ ), ७३२-५

ह

हेतुमुख १९९-८, २१७-९  
 हेतुलक्षणप्रणेतृ ६८-३८



## \*सन्मतिटीकागता वादिनो वादाश्च ।

अ  
 अकृतसम्बन्धवादिन् ३८६  
 अक्रमोपयोगवादिन् ६०८  
 अक्षणिकवादमत ४२८  
 अक्षणिकवादिन् २५३  
 अद्वैत ७४, २७६  
 अद्वैतपक्ष २८०  
 अद्वैतप्रतिपादक २७३  
 अद्वैतवाद ४१९  
 [ अद्वैतवाद ] ४२८  
 अद्वैतवादावतार २९५  
 अद्वैतवादिन् ३७, २७६  
 अद्वैतकान्त ६१६  
 अनर्थान्तरभूतपरिणामवाद ४२३  
 अनुमानवादिन् ७२, ७३  
 अनेकधर्मात्मकैकवस्तुवादिन् २६५  
 अनेकान्त ६४०  
 अनेकान्तपक्ष ४४५  
 अनेकान्त( वाद ) १०७, २६२, ४१४,  
 ४४५, ६०९, ६३८, ६३९, ७२५,  
 ७३०  
 अनेकान्तवादव्याघात ६४३  
 अनेकान्तवादापत्ति ४७३, ७०५  
 अनेकान्तवादाभ्युपगम ४७१  
 अनेकान्तवादिन् २६१, ४१३, ४२४,  
 ४७४, ६३७  
 अन्यापोहवादिन् २६३  
 अपोह ( वाद ) १७३, १७४, १८५,  
 २००, ३०२  
 अपोहवादिन् १८१, १९४, १९६  
 अप्रामाण्यवादिन् ४३  
 अभानवादिन् ५०  
 अभिजल्पपक्ष १८४ ( १ )  
 [ अभिजल्पपदार्थवाद ] १८०, १८४  
 अभेदपक्ष ६०८

जमेदवादिन् २७९, २९४  
 अमेदाद्वैत ६१७  
 ( अमेदैकान्तवाद ) ६३७  
 अमेदैकान्तवादिन् ६३६, ६३७  
 अभ्युपगमवाद ४९, ९१, २६०, ३०१  
 अभ्युपगमवादिन् ७०७  
 अर्थवादिन् ३७७, ४६६  
 अच्यभिचारवादिन् ५४७  
 अशुद्धन्यास्तिकप्रकृतियवहारमतावल-  
 म्बिन् ३८६  
 असत्कार्यवाद २९७, ३०२, ७०६ ( ३ ),  
 ७०७  
 असत्कार्यवादिन् २९७, ३०१  
 [ असत्यसम्बन्धपदार्थवाद ] १८०,  
 १८३  
 [ असत्योपाधिसत्यपदार्थवाद ] १८०,  
 १८३  
 [ असत्वाद ] ७०५  
 असमानजातीयगुणानारम्भवादिन् ७०८  
 असम्बन्धवादिन् २५३  
 असर्बगतात्मवादिन् १४५  
 [ अस्तित्वादिवादपक्ष ] ७१८-१९  
 अस्त्यर्थपदार्थवाद १७९, १८१  
 अखसंविदितविज्ञानाभ्युपगमवादिन् ५६८  
 [ अहेतुवाद ] ६५०, ६५१  
 अहेतुहेतुवाद ६५०  
 आ  
 आगमप्रमाणवादिन् २९५  
 आगमप्रामाण्यवादिन् ९३  
 [ आत्मपरिमाणवाद ] १३३-१४९  
 आत्मप्रत्यक्षवादिन् ५२८  
 इ  
 इन्द्रियार्थसन्निकर्षवादिन् २४४  
 ई  
 ईश्वरकृतजगद्वादिन् ६९

ईश्वरवादिन् ७१६  
 ईश्वरसिद्धि १०५, १२९  
 [ ईश्वरस्वरूपवाद ] ६९-११३  
 उ  
 उत्पत्तिवादिन् ३५  
 [ उपयोगवाद ] ५९६-६१०  
 ए  
 एकसम्बन्धानभ्युपगमवादिन् २६४  
 एकत्वानिन् ६१०  
 एकत्ववादिन् ३७१-६१०  
 एकनयवादिन् ७३२  
 एकलक्षणहेतुवादिन् ७२६  
 एकार्थवादिन् २७८  
 एकान्तनित्यवाद ४७४  
 एकान्तवाद ४४४, ५१५, ५९२, ७१८,  
 ७२५  
 एकान्तवादिन् २६२, ४१८, ४२२, ५०९,  
 ५२४, ५५२, ५९२, ७१९, ७२५,  
 ७२६, ७२७, ७३३, ७३५, ७३९,  
 ७४५, ७६१  
 एकान्तवादिवाक्य ७३७  
 एकान्तसत्कार्यवाद ७०७  
 क  
 कथात्रय ५६२  
 कमण्डलुटट्टिकादिलिङ्गधारिन् ७५०  
 कर्मवादिन् ७१४  
 [ कर्मैककारणवाद ] ७१४-१५  
 कर्मैकान्तवाद ७१५  
 [ क्वलाहारवाद ] ६१०-६१५  
 कारकहेतुप्रतिश्लेषवादिन् ७१४  
 कारणभिन्नं कार्यं तत्रासत्त्वाद् ४२४  
 कारणात्मकपरिणामवाद ४२३  
 [ कार्योत्पत्तिवाद ] ४२४  
 कालवादिन् ७११  
 कालायेकान्तवाद ७१०

\* परिशिष्टेऽस्मिन् सर्वेऽप्यङ्काः पृष्ठाङ्के सूचयन्ति, ( ) एतच्चिह्नान्तर्यता अङ्कादिषुप्यङ्के सूचयन्ति, [ ] एतच्चि-  
 ह्नान्तर्गताः शब्दाः ग्रन्थाभिप्रायं समीक्ष्य सम्पादकैर्योजिताः ॥  
 १०६ सं० प०

७ - सन्मतिटीकागत वादिनो वादाश्च ।

कालाभ्युपगमवादिन् ३२४  
 कृतकसम्बन्धवादिन् ३८६  
 कर्मवादित्तीर्ण ६१०  
 [ कर्मोपयोगद्वयवाद ] ६०७  
 कर्मोपयोगवादिन् ६०७, ६०८  
 [ क्षणभङ्गवाद ] ३१८-३४९, ३८७  
 क्षणभङ्गवादिन् ३४४  
 क्षणिकभावान्भ्युपगमवादिन् ७०६  
 क्षणिकवाद ४७०  
 क्षणिकवादहानिप्रसक्ति ४७०  
 क्षणिकवादिन् २५५, ४२७, ६६२  
 क्षणिकैकान्तवाद ७०६, ७२७  
 क्षणिकैकान्तवादिन् ७२८  
 ग  
 गणितशास्त्र ६३५  
 ग  
 चार्वाकमत ९४  
 चार्वाकमतप्रसक्ति १६३  
 चार्वाकमीमांसकदृष्टि ९४  
 चार्वाकभिमतैकवादीरभ्यपदेशभाषनेकरण-  
 रमाणुपादानानेकविज्ञानभाव १४९  
 ज  
 ज्ञानप्रमाणवादिन् ५२९  
 ज्ञानप्रामाण्यवादिन् ५२८  
 ज्ञानमात्रवादिन् २७७  
 ज्ञानवाद ३६५  
 ज्ञानाद्वैतवाद २९४  
 [ ज्ञानानेकान्तवाद ] ४०८  
 ज्ञानान्तरप्रत्यक्षवादिन् १६१, २५५  
 त  
 [ तत्त्वाद्वैत ] ४२८  
 तिर्यक्सामान्यवादिन् ५८  
 त्रिलक्षणहेतुप्रदर्शनवादिन् ७२६  
 त्रैवर्णिकप्रवाद ६९८  
 द  
 दूषणवादिन् ७२५, ७२६  
 दृष्टिवाद ६५१  
 दैतप्रसङ्ग २७७  
 दैतवाद ४२८  
 दैतापत्ति २७८  
 दैतिव २८०  
 द्रव्यगुणान्वयवादिन् ६३५  
 द्रव्यवाद १०५  
 [ द्रव्याद्वैत ] ४२८

द्रव्याद्वैतवादिन् ६३७  
 द्रव्यार्थान्तरभूतगुणवादिन् ६३८  
 द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयद्वयावलम्बिन्  
 ६५६  
 द्रव्यार्थिकमतानलम्बिन् ३७९  
 न  
 [ नयवाद ] २७१-३१४, ३१५-३१६  
 नयवाद ४२१, ६५५, ७४६  
 [ नास्तित्वादिकादबद्ध ] ७२७-७२८  
 [ निग्रहस्थानचर्चा ] ७५९  
 नित्यवादिन् ७२०  
 नित्यसम्बन्धवादिन् ४३६  
 नित्यबुलाभ्युपगम १५३  
 निन्दार्थवाद २७३  
 नियति ७१४  
 नियत्येककारणवाद ७१४  
 निराकारज्ञानवादिन् ४६०  
 [ निराकारविज्ञानवाद ] ४५८-४६३  
 निर्णयात्मकानुभववादिन् ५०६  
 निर्विकल्पकप्रत्यक्षवादिन् २६५  
 निश्चयारम्भाध्यक्षवादिन् ५०७  
 [ निषेधमात्राम्यापोहवाद ] १८५, ३०३  
 प  
 पञ्चलक्षणयोग्यविनाभावपरिसमाप्तिवा-  
 दिन् ७२३  
 पञ्चलक्षणहेतुवादिन् ७१९  
 पञ्चभिन्नातितन्त्र २८१  
 परतःप्रामाण्यवादिन् २, १५  
 परतीर्थिक ७४७  
 परलोकवादिन् ७५  
 परस्परनिरपेक्षकनयावलम्बिन् ६५६  
 परोक्षज्ञानवादिन् १२ ( ४ )  
 पथीयास्तिकमतानुसारिन् २९५  
 पाषण्डिन् ७१८  
 पुरुषवादिन् ७१५, ७१७  
 पुरुषाद्वैतवाद ३८५  
 पुरुषाद्वैतसिद्धि ३७  
 [ पुरुषैककारणवाद ] ७१५-७१७  
 पूर्वपक्षवादिन् ७२६  
 प्रकृतीश्वरकालादिकृतल २१५  
 प्रतिभापक्ष १८४ ( १० )  
 [ प्रतिभापदार्थवाद ] १८२, १८४  
 प्रतिभासाद्वैतवाद ५१३  
 [ प्रतिभावाद ] ७५४

प्रतिवादिन् ३०, १५६, ७५९, ७६१  
 प्रत्यक्षानुमानप्रमाणद्वयवादिन् ५५४  
 प्रत्यक्षेकप्रमाणवादिन् ७३  
 [ प्रधानाद्वैत ] ४२८  
 प्रधानाद्वैतवाद ४२८  
 प्रमाणव्यवहारिन् २६७  
 प्रमाणबहुवाद ४७  
 प्रमाणसप्तवादिन् ८४  
 [ प्रामाण्यवाद ] २-२९  
 प्रेरणाप्रामाण्यवादिन् ४३  
 व  
 बहिरर्थवादिन् ४८५  
 बाह्यार्थवाद ३६५, ४०१  
 बाह्यार्थवादिन् २७७, ३०४, ३१७, ४६३,  
 ६६३  
 बुद्धिक्षणिकलवादिन् १३९  
 बुद्ध्याकारवादिन् १८१, १८२  
 [ बुद्ध्यबुद्ध्यारूढाकारपदार्थवाद ] १८१,  
 १८४  
 बौद्धदृष्टि १४७  
 बौद्धपक्ष ५२९  
 बौद्धयुक्ति २९  
 बौद्धाभिमतसंवेदनाद्वैत ७४  
 बौद्धाभ्युपगम ४०१  
 ब्रह्मवादिन् २७७  
 ब्रह्माद्वैतवाद ७७, ४२८  
 भ  
 भावविशेषणवादिन् ३८६  
 भेदवादिन् २७६, २८६, २९३, २९६  
 भेदाभेदवाद ६३६  
 [ भेदैकान्तवाद ] ६३७  
 भेदैकान्तवादिन् ६३७  
 म  
 मिथ्यावाद ४२९, ६३६  
 मिथ्यावादिन् ६३८  
 [ मुक्तिस्वरूपवाद ] १५०-१६६  
 य  
 यथाप्रदर्शितवत्त्वभ्युपगमवादिन् २९६  
 युगपदुपयोगवादिन् ६०८  
 युगपदुपयोगद्वयवादिन् ६१०  
 र  
 रूपाद्वैतविज्ञानमात्रशून्यवाद ७३०  
 ल  
 लोकरूपवाद ५७

## ७ - सन्मतिटीकागता वादिनो वादाश्च ।

लौकिक ३९, १५३, ११६, ११९, ४५८,  
४६८  
लौकिकी ६२९

च

चाद ३७७, ६५०  
चादमागैप्रवृत्ति ३७७  
चादिन् ३०, ८९, ४८४, ४८७, ६४६,  
७२६, ७५९, ७६०  
चादिप्रतिवादिन् १४२, ५३७, ५५५, ७६०  
चादिप्रतिवादिप्राश्निक २९५, ३७७  
[ विकल्पप्रतिबिम्बपदार्थवाद ] १९९  
[ विज्ञप्तिमात्रवाद ] ३४९-३६६  
विज्ञानवाद ३६५, ३७२, ३७६, ४६३  
विज्ञानवादप्रसक्ति ६६३  
विज्ञानवादिन् ४०० ( ११ ), ४६१,  
५५३ ?  
विज्ञानशून्यतावाद ४८८  
विज्ञानशून्यवाद १०५  
विज्ञानशून्यवादानुकूलता २९४  
विज्ञानाद्वैत ५१४  
[ विधिवाद ] १७४-१७५ ई.  
विधिवादिन् १७३  
विपक्षवादिन् २६८  
विभज्यवाद ७२५  
विभागजोत्पादानभ्युपगमवादिन् ६४६  
विवक्षा ( वाद ) १८५ ( १ )  
[ विवक्षापदार्थवाद ] १८५  
विशेषगुणोच्छेदविशिष्टात्मस्वरूपमुक्त्य-  
भ्युपगम १५१  
विशेषणविशेष्यालम्बनभिन्नज्ञानवादिन्  
५२९  
वेदान्तवादिन् ३२१  
[ वेदापौरुषेयत्ववाद ] २९-४३  
वैदिकहिंसा ७३०  
[ वैभाषिकमत ] १८५  
वैभाषिकमत ४०१  
वैयाकरणन्याय १०९

वैशेषिकप्रक्रिया २२३  
व्यावृत्तवस्तुवादिन् २५४

श

[ शब्दब्रह्मवाद ] ३७९  
शब्दब्रह्मवादिन् ३७९  
[ शब्दब्रह्माद्वैतवाद ] ४२८  
शब्दसमयवेदिन् ३१६  
शब्दाद्वैत ४२८  
[ शब्दार्थतत्सम्बन्धवाद ] १७३-२७०  
शाक्यदृष्टि ९४  
शून्यतावाद ४२८  
शून्यवाद २७, २८, ३३५  
[ शून्यवाद ] ३६६-३७८  
शून्यवादिन् ३७२, ३७७

ष

[ षट्पदार्थचर्चा ] ६५६-७०४

स

[ संविद्वपुरन्यापोहपदार्थवाद ] २३३,  
२६५  
संनृतिपक्ष २२४  
संसारमोचक ७३१  
[ संकेतविधि-तद्विषयवाद ] ३७९  
सत्कार्यवाद २९७, २९८, २९९, ३००,  
३०१, ४२३, ५३४, ७०६ ( ४ ),  
७०७, ७२५  
[ सत्कार्यवाद ] ४२३  
सत्कार्यवादप्रसक्ति ७०६  
सत्कार्यवादाभ्युपगम ३०१  
सत्यवादस्वरूप ७२५  
[ सद्वाद ] ७०७  
सद्वादिन् ७२६  
[ समुदायपदार्थवाद ] १८०, १८३  
समुदायवाद ६४१  
समुदायाभिधानपक्ष १८३  
सम्बन्धाभाववादिन् ६६४  
सम्यगवाद ४२९  
सामयिकशब्दार्थचिद् ६१३

[ सर्वज्ञवाद ] ४३-६९  
सर्वज्ञप्रतिक्षेपवादिन् ६८  
सर्वज्ञवादिन् ४८, ५०  
सर्वज्ञापवादिन् १३२  
सर्वप्रवादिन् २७७  
सविकल्पप्रत्यक्षवादिन् २६५  
[ सहोपयोगद्वयवाद ] ६०७  
साकारज्ञानप्रमाणवाद ४६६  
[ साकारज्ञानवाद ] ४५८-४६३  
साकारज्ञानवादिन् ४६०, ४६५  
[ सामग्रीप्रामाण्यवाद ] ४७१-७२  
सामान्यज्ञानापकारकसामान्यवादिन् २५९  
सामान्यवादप्रसक्ति २६३  
[ सामान्यविशेषात्मकशब्दार्थवाद ] २३७  
साध्रवन्चितसन्ताननिरोधलक्षणमुक्तिवा-  
दिन् १६१  
सिद्धान्तवादिन् ६३५, ६३७  
सुगतविनेय ७४६  
( चीवरादिलिङ्गधरिन् )  
स्थिरग्रहणवादिन् ५३९-  
स्याद्वाद ७३२, ७३५  
स्याद्वादप्ररूपणा ७४५  
स्याद्वादरूपा ७२७  
स्याद्वादिन् ७५८  
स्वभावकालयदृच्छादिवाद ३१०  
स्वभावैकान्तवाद ७१४  
[ स्वभावैककारणवाद ] ७११-७१४  
स्वरूपविशेषणवादिन् ५६२  
स्वलक्षण ( वाद ) १०७  
स्वसंवित्तिमात्रवाद ८२  
स्वसंविदितज्ञानवाद ४७९  
स्वसंविदितविज्ञानवादिन् ९०

ह

[ हेतुवाद ] ६५०-६५१  
हेतुवाद ६५०, ६५१  
[ हेत्वाभाससंख्यावाद ] ७१९

८

\*सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

अ  
 अकारणा-कार्योत्पत्ति ४२४  
 अक्ष-प्रभव-उपयोग ६५०  
 अक्षर ३७९  
 अजीतार्य ७५६  
 अचेतन ३८७  
 अचेतनपदार्थाधिष्ठानी १२७  
 अचेतन-सत्त्व १४१  
 अचेतनाधिष्ठायकत्व १२८  
 अचेतनपरीषद् ७४७  
 अचेतनपरीषद्जेतु ७५१  
 अजीव ६५४, ७३२, ७३३  
 अजीवत्व ६४०, ६४१  
 अजीवविचय ७३४  
 अणु ६४६, ६४८  
 अतत्त्विकानाथविद्योच्छेदार्थमुमुक्षु-  
 यज्ञ २७६  
 अतीतानागतपर्यायाधार ४०५  
 अत्यन्ताभाव ५८१  
 अदृष्ट-कारण ७१५  
 अदृष्ट-कारणत्व ९५  
 अदृष्टपरिकल्पनाविकल्प्यापत्ति ४७६ ( ९ )  
 अदृष्टप्रेषित ४७६  
 अदृष्ट-सत्त्व ११९  
 अदृष्टास्थ-गुण ६८५  
 अदृष्टाध्यारोप १९९  
 अद्वैत ३७१, ४२८ ( ६ )  
 अद्वैतमात्र-तरु ४२८  
 अद्वैतापत्ति ३७१, ३७४  
 अधर्म-अधर्मनिमित्तविपर्यास १३०,  
 ६४१, ६५४, ७३२, ७३४  
 अधःसप्तमनरकप्राप्ति-प्रसङ्ग ७५३  
 अभिकरण ४२५  
 अभिघात १०१  
 अध्यक्ष ५०९  
 अध्यक्ष-ग्रहणव्यवस्था ३४०

अध्यक्षप्रमाण ५५२  
 अध्यक्षमति ५३३ ( १, २ )  
 अध्यक्षसाय २६१  
 अध्यक्षसायवशा ३४०  
 अध्यारोप ३६१  
 अध्येषणादि ७४१  
 अध्येषणाभाव ७४०  
 अनधिगतार्थाधिगन्तृता ५७६  
 अनधिगतार्थाधिगन्तृत्व ४६६, ४६७  
 अनन्तधर्माध्यासित-बस्तुस्वरूप १६६  
 अनन्तपरमाणुपचितमनोवर्गीणापरिणतिप्र-  
 तिलम्भ-मनउत्पाद ६५०  
 अनन्तपर्याय-बस्तु ४१४  
 अनन्तपर्यायात्मक-द्रव्य ६४९  
 अनन्तवीर्य ६११  
 अनन्तवीर्यत्व ६१५  
 अनन्तसुखस्वभाव १३२  
 अनभिहितप्रयोजन-याव १६९  
 अनवस्था २, ६, १२, १५, १८, ५०, ५४,  
 ५८, ११४, १२२, १२९, १३२, १३८,  
 १४३, १६५  
 अनवानादि ७५५  
 अनाकार ६१०  
 अनाकार-दर्शन ४५८  
 अनादिकाला-प्रान्ति ३४४  
 अनादिवासनासमुत्प ३७६  
 अनिकायत्व ६३९  
 अनित्य ३४१  
 अनित्यत्वादिक ७५५  
 अनिर्वचनीया २७७  
 अनुत्तमसंहनन ७४७  
 अनुपदेशपूर्वकत्वविशेषणासिद्धि ६६  
 अनुपलब्धिप्रसूत ३५२  
 अनुपलब्धिद्विगुणप्रभव २.  
 अनुपलब्धि-हेतु ३३३  
 अनुपलम्भ २१

अनुभूयमानता २६  
 अनुमान २, १७, ४३, ३३४, ३५२, ३८४,  
 ५५४, ५५५, ५६१, ५६७, ५६९,  
 ५७०, ५७३, ( ६ ), ५९०, ५९२  
 अनुमानतः ३४८, ३४९  
 अनुमानपूर्विका-अर्थापत्ति ५७९  
 अनुमानप्रवृत्ति २६८  
 अनुमानबुद्धि ४  
 अनुमानलक्षण ५६०, ५६७, ५७३ ( ३ )  
 अनुसंधानप्रत्यय ३२०  
 अनुसंधानप्रत्ययलक्षणहेतु ८७  
 अनुसंधानप्रत्ययलिङ्ग ९०  
 अनुस्मरण ४६२  
 अनेकार्थकसत्त्व ४४५  
 अनेकान्त १०७, १६६, ४१६, ७६१  
 अनेकान्तज्ञान १५५  
 अनेकान्ततत्त्वव्यवस्थापक ७२९  
 अनेकान्तपक्ष १६४  
 अनेकान्तभावभावन ४०८  
 अनेकान्तमतानुप्रवेश ७४५  
 अनेकान्तरूपता ६३१  
 अनेकान्तरूपबस्तुसाम्य ७२२  
 अनेकान्तवाद ६२४, ६३८, ७२५  
 अनेकान्तवादप्रसक्ति २६२  
 अनेकान्तवादव्याघात ६४३  
 अनेकान्तवादसिद्धि ७०९  
 अनेकान्तवादापत्ति ४२५, ४६४, ४७३  
 अनेकान्तवादाभ्युपगम ४७१  
 अनेकान्तवादिमतानुप्रवेश ४७४  
 अनेकान्तसिद्धि २५५, ४१४, ४२४  
 अनेकान्तात्मक ५९, ६०, ६८  
 अनेकान्तात्मकता ६३१  
 अनेकान्तात्मकत्व ४५५, ६२८  
 अनेकान्तात्मकत्वस्तु २६१, ५२४, ६५५,  
 ७१९, ७२६, ७३०, ७३२

\* मध्ये-एतच्चिह्नभाजः शब्दाः प्रत्याभिप्रायानुसारेण निर्दिष्टाः । ( तिप्पण्यई सूचयन्ति ।।

) एतच्चिह्नान्तर्गता अङ्काः

## ८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाम् ४७६:।

अनेकान्तात्मकयत्तुमाहिनय ४१०  
 अनेकान्तात्मक-न्युतत्त्व ४२८  
 अनेकान्तात्मक सत्त्व ४१४  
 अनेकान्तात्मकार्यप्रतिपादकत्व ७४६  
 अनेकान्तिक ७२०  
 अनैकान्तिक-हेतु ७२२, ७२३  
 अनेकान्तिकहेत्वाभास ५५८  
 अन्तर्ज्यावसानप्रबोध १७४  
 अन्य ५८०  
 अन्यत्व ६३४  
 अन्यापोह १९९ ( २ ), २३१, २३६, २३७, २६१  
 अन्यापोहप्रतिपत्ति १९८  
 अन्यापोह-रूपपदार्थ १६६  
 अन्यापोह-शब्दार्थ १७३  
 अन्यावृत्ति २१३ ( २१ )  
 अन्योन्यनिश्चित ४२०  
 अन्योन्यविशेषित ६४०  
 अन्योन्यव्यतिरिक्तकालोत्पाद-विगम-घ्रा-  
 न्याव्यतिरिक्त-एकत्वरूप-द्रव्य ६४३  
 अन्योन्याभास १८७  
 अन्योन्याश्रय ६, १३८  
 अन्यव्यतिरेकनिबन्धन-कार्यकारणभाव  
 २९६  
 अन्यव्यतिरेकानुविधान-कार्यकारणभा-  
 व-न्यवस्थानिबन्धन १२४  
 अन्वितक्रिया ७४३  
 अन्वितानुविधान ७४३, ७४४  
 अन्वितार्याभिधायकत्व ७३४  
 अपक्षधर्म-हेतु ५९३  
 अपक्षेपण ६८५, ६८६  
 अपरत्व ६८१ ( २ )  
 अपरसमवायनिमित्त ७०३  
 अपरिशुद्धनयवाद ६५५  
 अपरीतता ६१०  
 अपरोक्षप्रकाशमानता ३६६  
 अपवर्ग १३३  
 अपायविचय ७३४  
 अपोह १८५, १८६, १८८, ( ८ ), १८९, १९०, १९२, १९३, १९४, ( २ ) १९५, १९६, १९७, १९८, २००, २०१, २०२ ( १ ) २०३, २०४, ( १ ), २०९, २१०, २११, २१२, २१४, २१५, २२४, २२५ ( ३ ) २३०, २३१, २३२

अपोहकल्पना १८९  
 अपोहत्व २६१  
 अपोह-शब्दार्थ १७३, २२७  
 अपोहभेद ६६  
 अपोरुच्यत्व ८, ११, १९, ३३, ४०, ४१, ७३१  
 अपोरुच्यविधिनाक्यप्रभवा ४  
 अपोरुच्यशब्दार्थ-सम्बन्ध २६७  
 अप्रत्यक्षार्थविषयप्रमाण ५७३  
 अप्रशस्त-भारमपरिणाम ७३४  
 अबोधिभीजत्व ७४९  
 अभाव २८८, ५८०, ५८१  
 अभावज्ञान ३०  
 अभावपूर्विका-अर्थापत्ति ५७९  
 अमानसिद्धि ३५२  
 अभावाकार ३६९  
 अभावाख्यप्रमाण २२, २४, ३६९, ५८०, ५८७ ( ५ )  
 अभिप्रह ७५५  
 अभिजल्प १८० ( ११ ), १८१  
 अभिजन्यपक्ष १८४ ( १ )  
 अभिधानोपलक्षि ३८६  
 अभिधेयप्रयोजनप्रतिपादकत्व १७२  
 अभिनवकर्मोत्पत्ति ७३७  
 अभिमान ५२९, ५५२  
 अभिमानमात्र २३७  
 अभिलाप ३८४  
 अभिव्यक्ति ३४, ३००  
 अभिसमयसंवृत्ति ३७८  
 अभिहितान्वय ७४३, ७४४  
 अमेद ३६३  
 अमेद-तास्विकत्व २७९  
 अमेदपक्ष २८०  
 अमेदाभ्यवसायि-शब्दप्रत्यय १७८  
 अभ्यास १८२ ( ४ ), २६४  
 अभ्यासावस्थ १७  
 अमरपर्याय ९३  
 अमूर्त ६३८  
 अयत्नत्व ७४८  
 अयोगिकेचलिन् ७३६  
 अर्थ ३६५  
 अर्थक्रिया १६, २३४, २७२, ३३५, ३५०, ३६७, ३९९, ४००, ४०३, ४२७, ४९८

अर्थक्रियाकारिन् ३२५  
 अर्थक्रियाज्ञान ६, ७, १४  
 अर्थक्रियाज्ञानसंबाद ४  
 अर्थक्रियादि ४५४  
 अर्थक्रियानिबन्धन-भावसत्त्व ३५०  
 अर्थक्रियाकारिलक्षणसत्त्व ३९९  
 अर्थक्रियायां ७  
 अर्थक्रियार्थिन् ४  
 अर्थक्रियालक्षण-सत्त्व ४०२, ( १४ ), ७२८, ७२९  
 अर्थक्रियालक्षणसत्त्व-विशिष्टकृतकत्व २५५, २५८  
 अर्थक्रियाविरोध १५८, ४१३  
 अर्थ-संविद्-सहोपलम्भ ३५२  
 अर्थक्रियासाधन ४६८  
 अर्थक्रियासामर्थ्य ३२३, ३२७  
 अर्थक्रियास्थिति ५१३  
 अर्थचिह्नरूप १८५  
 अर्थतथात्वपरिच्छेदरूप ४  
 अर्थतथात्वप्रकाशक २, ८  
 अर्थनय ३१२, ४४८  
 अर्थनियत ४३०  
 अर्थपर्याय ४३०, ४४०, ४५७  
 अर्थप्रकटता १४  
 अर्थप्रकटतालक्षणहेतु २२  
 अर्थप्रकाशता २६  
 अर्थराशि ७४६  
 अर्थवादकल्पना ३६५  
 अर्थवादादिवाक्य ७४४  
 अर्थविवक्षा १८५ ( १ )  
 अर्थव्यञ्जनपर्याय ४३१  
 अर्थव्यतिरिक्तज्ञानाकार-अनुपपत्ति ४६५  
 अर्थव्यवस्था ४६६  
 अर्थशून्याभिजल्प २३१  
 अर्थशून्याभिजल्पवापना-प्रबोध २२२  
 अर्थसवेदन १४  
 अर्थसत्ता २९३, ३६८  
 अर्थसाक्षात्करण ४९० ( १० )  
 अर्थानपेक्ष २०६  
 अर्थान्तर्भूत ४४२ ( २ )  
 अर्थान्तरानर्थान्तररूप ६४४  
 अर्थापत्ति २७, ४६२, ५७८, ५७९, ५८६  
 अर्थापत्तिपूर्विका-अर्थापत्ति ५७९  
 अर्थाभिधानरूपभेद-द्वयात्मकत्व ४५७

८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

अर्थोपलम्भ ६१९  
 अर्थोपलब्धि ३८६  
 अलिङ्गपूर्वकत्व ६६  
 अवकथ्य ४४५  
 अवकथ्यभङ्ग ४४२  
 अवकथ्यत्वभाव ४४६  
 अवग्रह ५५२ ( ७ ), ५५३, ६१७,  
 ६१८, ६१९, ६२१  
 अवग्रहादि ६२०  
 व्यनप्रहादिमतज्ञान ६२०  
 अवधि ६१५, ६५०  
 अवधिज्ञान ६२०  
 अवधिज्ञानावरणकर्म-क्षयोपशम ६२०  
 अवभासशून्यता ३७१  
 अवयव १०५, ६७१, ७३३  
 अवयवसन्निवेश ११३  
 अवयवानवयवि-समानदेशत्व १०३  
 अवयवि-द्रव्य १५८ ( ८ )  
 अवयविन् १०५  
 अवाच्य ४४४  
 अवान्तरसामान्य ११०  
 अवाप्तकामत्व-ईश्वरत्व १३०  
 अवाय ५५२, ५५३ ( ५ )  
 अविकल्परिज्ञाप्ति ७११, ७५२  
 अविद्या १५४, २७६, २७७, २७८, २७९,  
 २९५, ३८५, ४१९  
 अविद्याशुद्ध २७९  
 अनिद्यासंसर्ग १५१  
 अनिद्यास्वभाव ४१४  
 अविनाभाव ५५८, ५५९, ५९३  
 अविनाभावपरिसमाप्ति ५६९  
 अविनाभाववैकल्य ५५८  
 अविनाभावसम्बन्ध ५६१  
 अविनाभावसम्बन्ध-स्मृतिविभाग ५६३  
 ( १० )  
 अविनाभावानन्यापेक्षलिङ्ग ४  
 अविनाशधर्मिन् ७१८  
 अविमर्श-ब्रह्मात्मक-तत्त्व ३८३ ( ६ )  
 अविरोधि ७४७  
 अविरोधिन् २८१ ( ११ )  
 अविरोधादकत्व ४६९  
 अविरोधादन ५१३ ( ५ )  
 अविरोधादित्व ६६, ७२  
 अवीत ५९४

अव्याप्ति ५३१ ( ९ )  
 अव्याप्ति-लक्षणदोष ४५९  
 अशुद्धद्रव्यार्थिक २८०, ४०७  
 अशुद्धद्रव्यास्तिकप्रकृति ३८६  
 अशुद्धद्रव्यास्तिकसंख्यमतप्रतिक्षेपक-  
 पर्यायास्तिक २९६, ३१०  
 अशुभासन ७३५  
 अशोषकर्मक्षय ६११  
 अशोषकर्मक्षयनिबन्धनाध्यवसाय ७५२  
 अशोषकर्मक्षयलक्षणफल ७५६  
 अशोषकर्मक्षयाध्यवसायनिवर्तक ७५३  
 अशोषकर्मनिर्जरणरूप १६०  
 अशोषकर्मपरिक्षयसामर्थ्य-उपपत्ति ७३६  
 अशोषकर्मविनामस्वरूपसिद्धत्व ६२३  
 अशोषकर्मनियोगलक्षण-मोक्ष ७३७  
 अष्टधाचरण ७५५  
 अष्टविधकर्मार्तमककर्मणशरीर ७३६  
 अष्टविध-पारमार्थिक-कर्मप्रवाहरूपाना-  
 थ-विद्यात्यन्तिकनिवृत्ति १६०  
 अष्टविध-बन्ध ७३३  
 असत्कारण-कारण ७०५  
 असत्कार्यवाद २८३  
 असत्ख्याति ३७३  
 असत्यसम्बन्ध १८३ ( १८ )  
 असत्यसंसर्ग १८० ( ७ )  
 असत्योपाधिसत्य १८३ ( १९ )  
 असत्योपाधि-शब्दप्रकृति-निमित्त १८०  
 ( ८ )  
 असदकरण २८२ ( ११ )  
 असमानग्रहणलक्षण-गुण ६३३  
 असिद्धविद्दानैकान्तिकहेलाभास ७१९  
 असिद्ध-हेलाभास ५५८  
 अस्ति ४४१  
 अस्ति च अवकथ्य ४४७  
 अस्ति च नास्ति च अवकथ्य ४४७  
 अस्मर्थमाणकर्तृकत्व ४१, ४२, ४३  
 अद्वैत ८०, २८३, ( ४ ), २८२  
 अद्वैतल्य ८६, २७४  
 अद्वैतप्रत्यय ८०  
 अद्वैतप्रत्ययानपह्नव ८०  
 अद्वैतवाद ६५०  
 अद्वैतवादत्व ६५१  
 आ  
 आकार २२९

आकारमेव २७३, २७४ ( १३ )  
 आकारलक्षणत्व ३७३  
 आकाश ६५४, ७३२, ७३४  
 आकाशादि ६५६  
 आकाशान ६८५, ६८६  
 आकृति १७७, १७८  
 आख्यात ७३९  
 आगम ५७८  
 आगमपूर्विकाप्रसिद्धि ५७८  
 आगमप्रतिपाद्य ६५५  
 आगमसन्नैश्वर्यम्परा ६०  
 आगमिगति विशेष-उत्पत्ति ६५०  
 आचार्याराधनादि ७५५  
 आचेलकथ ७५१  
 आचेलकथपद ७४६  
 आचारविचय ७३५  
 आतिवाहिकादि ७३६  
 आत्म-अन्त-करणसम्बन्ध ५२०  
 आत्मकर्मन् ४५२  
 आत्मगुण-बुद्धि १३५  
 आत्मचैतन्यलक्षण-भान ४१८  
 आत्मद्वय ६६९  
 आत्मद्वयपर्याय ६३१  
 आत्मन् ७१, ८५, ११३, १३३, १३५,  
 १४४, १५०, २७८, ३१०, ३४२,  
 ६२०, ६२३, ६२४, ६३१, ७१७,  
 ७१८, ७३१, ७३३  
 आत्मपर्याय ६३१  
 आत्म-पुद्गल ४५३, ६२२  
 आत्मप्रच्युतिलक्षणधर्म ३९३  
 आत्म-विभुत्व १३३  
 आत्मविभुत्वप्रसाधक १४५  
 आत्मविभुत्वसिद्धि १४२, १४६,  
 आत्मविशेषगुण-सन्तान १५०  
 आत्मसिद्धि ९१  
 आत्मस्वरूपत्वं १५३  
 आत्मानन्द-रूपता १६१  
 आत्मैकज्ञानत्व १५५  
 आदिवाक्य १६९, १७२  
 आदिवाक्योपन्यास १७०, १७२  
 आद्यशुद्ध्यानद्रय ७५४  
 आधाराधेयप्रतिनियम ७०२  
 आध्यात्मिक-धर्मध्यान ७३४  
 आध्यात्मिकभान ७१२

## ८ - सन्मतितर्कागत दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

भाष्यात्मिक-रूप ३७७  
 भाष्यात्मिकशुद्धिग्रहण ७३५  
 भानन्दरूपात्मस्वरूप १६०  
 भाभिनिबोधिकज्ञान ६२१  
 व्यायुष्कर्मन् ६१२  
 आर्तैल्यान ७३४  
 आर्तैल्यानोपगत ७४८  
 आर्यसत्य ७३३  
 आर्यसत्यचतुष्टय ४९९  
 आर्ष ७३१  
 आलम्बन ५१२ ( २ )  
 आचरण ३००  
 आचरणविनाश ४२३  
 आचरणपगम ६७८  
 आचारक ३५, ३८, ५१  
 आचारकल ५१, ६०, १६१  
 आश्रुति १५३  
 आसन ७३२ ( ३ ), ७३३, ७३६, ७३७  
 आसनानि-प्रतिपत्ति ७३७  
 आहारविरह ६१४  
 आहारव्यवस्थिति ६१२  
 इ  
 इच्छातः ७४१  
 इतरेतराभाव ५८१  
 इतरेतराश्रय २, ५, ३१, ३२, ४४, ४६,  
 ५०, ५२, ५४, ७०, ११८, १२३,  
 १२९, १४१, १६४, ७३३  
 इदानीन्तनपति ७५०  
 इन्द्रियज्ञान ४९९  
 इन्द्रियवृत्ति १२२  
 इन्द्रियव्यापार ५३९  
 इन्द्रियार्थसन्निकर्ष ५२३  
 इहजन्ममरणचित्त ८९  
 इहबुद्ध्यावसेयसमवाय १५६  
 ई  
 ईश्वरमित्यादि ७५५  
 ईश्वर ३१, ६९, ९५, १६, ९९, १०२,  
 १२५, १२६, १२७, १२८, १३१,  
 १३२, ४७६, ५०६, ७१५, ७१६,  
 ७१७  
 ईश्वरकल्पनावैयर्थ्य १२९  
 ईश्वरज्ञान १२५, ४७९  
 ईश्वरज्ञानत्वासिद्धि ४७९ ( १ )  
 ईश्वरज्ञानादितेतुक-अगत १२६

ईश्वर-निमित्तकारण ११९  
 ईश्वरपरिकल्पनावैयर्थ्यप्रसक्ति ४७६  
 ईश्वरप्रेरित ४७६  
 ईश्वरबुद्धि १२७  
 ईश्वरसाधक ११७  
 ईश्वरसाधक-प्रमाणाभाव १३२  
 ईश्वरसिद्धि १५, १०५, १२९  
 ईश्वराख्य-कारण १२७  
 ईश्वराख्य-सर्वज्ञ १३३  
 ईश्वरादि ४७९  
 ईश्वरादिप्रेरणा ७१६  
 ईश्वरादिविकल्प ५००  
 ईश्वराद्यनुमान ४८६  
 ईश्वरानेकत्वप्रसङ्ग १००  
 ईश्वरावगम ९३  
 ईश्वरावगम-प्रमाणाभाव १२४  
 ईश्वरोपदेष्टुल १३२  
 ईहा ५५३, ५५३ ( ४ )  
 ईहादिक ६२१  
 उ  
 उत्प्लेपण ६८५ ( १ ), ६८६ ( ३ )  
 उत्तमसंहरन ७५३  
 उत्तरपर्यायोत्पादात्मक-पूर्वपर्यायविनाश  
 ४२६  
 उत्पत्ति ४८१  
 उत्पत्तिविनाशास्थितिलभाव ६४४  
 उत्पत्तिसत्तासम्बन्ध ६४८  
 उत्पत्ति-स्थिति-निरोध ४५१  
 उत्पत्तिस्थितिप्रलयात्मक-विचित्र-क्रीडो-  
 पाय ७१६  
 उत्पत्तौ परतःप्रामाण्य ११  
 उत्पत्तौ स्वतःप्रामाण्य ९  
 उत्पत्त्यभिव्यक्तिपक्ष ३६  
 उत्पन्नप्रतीतिप्रामाण्य ७६  
 उत्पन्नादिकालत्रय ६४५ ( ३ )  
 उत्पाद ६०८, ६४१, ६४९  
 उत्पादविगमधौव्य ६२३  
 उत्पाद-विनाश ६२३  
 उत्पादविनाशास्थित्यात्मकत्व ६४२  
 उत्पादविनाशास्थित्यात्मकभाव ६५०  
 उत्पाद-विनाशास्वभावभाव ४०९  
 उत्पादव्ययधौव्य ३२३, ३६७, ४१२,  
 ४२८, ४२९, ४५१  
 उत्पादव्ययधौव्य-लक्षण ९२

उत्पादव्ययधौव्यारम्भकोपयोग ६१६  
 उत्पादव्ययस्थिति ६४५  
 उत्पाद-स्थिति-भङ्ग ४१०, ४१५  
 उदयव्ययवती-अर्थमात्रा ३८१  
 उदयवतीस्मृति ३४३  
 उपलब्ध ५११ ( १० )  
 उपयोग ४५७  
 उपयोग-अनाकारता-साकारता ४५८  
 उपमान ५७५ ( ६ ), ५७६, ५७८,  
 ५८२  
 उपमानपूर्विका-अर्थापत्ति ५७९  
 उपमानलक्षण ५७७  
 उपलब्धि २९१, २९३, ३६२,  
 उल्लिखलक्षणप्राप्तस्वभाव ३२५  
 उपलब्ध्याख्य ३  
 उपलम्भे २८७  
 उपसामकक्षपकगुणस्थानभूमि ७३५  
 उपसामनबान्छा ६११  
 उपादानकारण ८८  
 उपादानमहण २८२ ( १५ )  
 उपादानत्व ८८, ८९  
 उपादान-सहकारित्वलक्षणशक्ति ४०१  
 उपादानादि १०१  
 उपादानाद्यधिष्ठान ९६  
 उपाधि-तद्भव २६४  
 उपाधिविशिष्ट-उपाधिमत २६५  
 उपाधिविचय ७३४  
 उभय १७९  
 उभयवाक्यप्ररूपक-नयाभाव ४१६  
 उभयात्मकवस्तु ४१६, ४१७  
 ऊ  
 ऊर्ध्वगतिपरिणामस्वाभाव्य ७३६  
 ऊह ५९४ ( ४ )  
 ऊहाख्यप्रमाण ७७, ३९७  
 ऊ  
 ऊजुसूत्र ३८५, ३१०, ३११, ३१२, ३१३,  
 ३६६, ३७८  
 ऊजुसूत्रनय ४०७, ४३०, ४४०, ४४८  
 ऊजुसूत्रबचननिच्छेद ३४९  
 ए  
 एक आत्मन् ४५३  
 एककार्यकारित्व ३५५  
 एक-क्रिया ४५३  
 एकज्ञानिन् ६१०

८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाम् शब्दाः ।

एकलप्राप्तिम् ३४१  
 एकलप्रतिपत्ति ३४२  
 एकलचित्तकर्षिचार ७३५  
 एकलव्यवहारभ्रान्तता ४०४  
 एकलसिद्धि ८७  
 एकदण्ड ४५३  
 एकरूपीपलम्भ ३६३  
 एकविज्ञानजनक-क्षण २६३  
 एकसन्तान ३६७  
 एकसन्तानसमाश्रय २४७  
 एक-समनाय ६५७  
 एकसामर्थ्यधीनत्व १२२  
 एकसूत्रभारनियमित-अनेकस्थपत्यादिनि-  
 वर्त्य १३१  
 एकाकारप्रत्ययगोचर ३४१  
 एकाकारासविद् ३०५  
 एकादश-इन्द्रिय २८०, २८२  
 एकान्तनिर्मतविशेष ६२७  
 एकान्तविशेष ६२८  
 एकान्तोच्छेद ४१७  
 एवम्भूत २८५, ३१०, ३१४, ३४९, ३७८  
 एषणीय ७५१  
 ऐ  
 ऐकलिकउत्पाद ६४१, ६४२  
 ऐकमत्य १००, १३१  
 ऐश्वर्य ९  
 औ  
 औचिकोपाधि ७५१  
 औत्पत्तिक ३८६  
 औदारिकव्यपदेश ६११  
 औदारिकशरीरल ६१२  
 औदारिकावशेषशरीर ७३६  
 औपचारिक ८०, २६१  
 औपशामिकभाव ५९६  
 क  
 कथञ्चित्प्रतिपक्षसङ्ग्रह ७१८  
 कथञ्चित्साहस्य २५५  
 कथा ४०५  
 कथात्रय ५६३  
 करण ७५५  
 कारणत्व ४७३  
 कल्पना १००  
 कल्पनाप्रवृत्त १३०  
 कर्तृ ९७, १०१, ७१८

कर्तृता ९८, ११२, ४७३  
 कर्तृ-भोक्तृ-लभाभ ७१८  
 कर्म-उपभोग १५९  
 कर्मकर्तृक्रियाव्यवस्था ३५५  
 कर्मकर्तृरूपलासिद्धि ४६१  
 कर्मक्षय १००, १३३  
 कर्मक्षयकारण ७५४  
 कर्मक्षयार्थ ६१५  
 कर्मल ४७३ ( ४ )  
 कर्मन् १०२, ११०, १५०, ४१८, ६८६  
 ( १ ), ७१४, ७१५, ७३३  
 कर्मपरतन्त्र १३०  
 कर्मप्रकृति ७३५  
 कर्म-प्रक्षय १५९  
 कर्मफल ३०७  
 कर्मबन्ध ७३७  
 कर्मबन्धहेतुता ७४९  
 कर्मयोग्यपुद्गलात्मकप्रदेश ७३६  
 कर्मलक्षण १५०  
 कर्मवर्गणापुद्गल ७३३  
 कर्मविनाश १५०  
 कर्मादि-सामर्थ्यभाव १३१  
 कर्माशय ९९, १००  
 कर्मन्धन ७४९  
 कर्मैकान्तवाद ७१५  
 कर्मोत्पत्ति ११४  
 कल्पना २७०  
 कल्पनाविरचितलिङ्गप्रभाव ५६४  
 कबलाहार ६११, ६१२  
 कबलाहारपरिकल्पना ६१५  
 कबलाहारित ६११  
 कषाय ७४७  
 काकतालीयन्याय ५७  
 कादाचित्कता ४०५  
 कायक्रियोत्पत्ति ६५०  
 काय-विज्ञाननैलक्ष्य ९०  
 कायोत्पत्ति ६५०  
 कारक २५  
 कारकव्यापारसाफल्य ४२३  
 कारकसाकल्य ४७२, ४७३  
 कारण ११८, २५४, २८१, ७१४  
 कारणकलाप ४७१  
 कारणकार्यविभाग २८४ ( ८ )  
 कारणजातिभेद ४७४

कारणत्रयाभाव १२६  
 कारणत्व ५४  
 कारणनिवृत्ति ४९४  
 कारणभेद ३, ७७  
 कारणव्यापार ४२३  
 कारणसमवाय १०८  
 कारणसामर्थी ४१४, ५३०  
 कारणस्वरूप-प्रागभाव ३४५  
 कारणतात्मिकाकारिक ३८५  
 कारणानुपलम्भ २१  
 कारणायत्त-कार्यस्वभाव ४०१  
 कारण्यप्रेरित ९९  
 कार्यगशरीर ९२, ७३६  
 कार्य ३, २८६  
 कार्यकारण ८९  
 कार्यकारणभाव ४९, ५७, ८७, ११, २६८,  
 ३३२, ३३३, ७२७  
 कार्यकारणव्यवस्था १२४  
 कार्यकारणव्यवस्थानिबन्धन १२४  
 कार्यक्रमाभ्युपगम ४००  
 कार्यक्रिया-अभोग ४२६  
 कार्यगम्य-नियतत्व २७०  
 कार्यता ४८१  
 कार्यभेद ४७४  
 कार्यत्वलक्षण-हेतु १२४  
 कार्यलिङ्गप्रभव ३५२  
 कार्यशून्यता ७०५  
 कार्यहेतुसमुत्थ २, ३  
 कार्यतमा-ध्वंसाभाव ३४५  
 कार्योभिव्यक्त ४२३ ( ६ )  
 कार्योत्पत्त्व २८३  
 कार्यात्पादन ४२३  
 कार्योत्पादानुमाल ५६२  
 काल २५७, ५७१, ६५४, ६५५ ( १ ),  
 ६६८ ( ६ ) ७११, ७१४, ७१६,  
 ७१७, ७३२, ७३४  
 कालकृतपरत्वापरत्व ६८१  
 कालत्रयप्रदर्शप्रत्यक्ष ३३८  
 कालत्रयशून्य ७३९  
 कालभेद २७३, २७४, २८७, २९४  
 कालव्यतिरेक २५८  
 कालस्वभाव-नियति-पूर्वकृत-पुरुषकार-  
 णरूप ७१० ( ५ )  
 कालाख्ययापदिष्टत्व ७३३



## ८ - सन्मतिदीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकान् शब्दाः ।

कालालय्यापदिष्टलाविदोष ७१९  
 कालालय्यापदिष्टलाभास ७२१  
 कालायेकान्त ७१७  
 कालासिद्ध २९४  
 कालाभ्युपगम ४००  
 काल्पनिक १४५  
 कृतप्रमयध्वनि २५०  
 कृपापरतन्त्रता ७१६  
 केवलकेवलिन् ६१६  
 केवलज्ञान ५९५, ६०७, ६१७, ६२१,  
 ६२२  
 केवलज्ञानदर्शन ६०७  
 केवलज्ञानसम्पद् १, १२३  
 केवलज्ञानाल्य-क्षर्यपर्याय ६२३  
 केवलज्ञानावरणक्षय ६-६  
 केवलज्ञानोत्पत्ति १६०  
 केवलज्ञानोपयोगकाल ६१२  
 केवलदर्शन ६०७, ६१२, ६१७, ६२१  
 केवलव्यतिरेकिन् ७२४  
 केवलान्वयिन् ७२४  
 केवलानबोध ६१७, ६२१  
 केवलित्पर्याय ६२४  
 केवलिन् ६१३, ६२०, ७३६  
 केवलिभुक्ति ६१४  
 केवलिभुक्तिसिद्धि ६११, ६१४  
 केवलोपयोग ६०६, ६५०  
 कोपपरिणति ६३१  
 क्रम ३२४, ३३६  
 क्रमभाविन् ६३५  
 क्रमयोग ३२९  
 क्रम-योगपथ १५८, २९६, ३९८, ४००,  
 ४१२, ४१३  
 क्रमवत् ३३१  
 क्रमवत् ज्ञानदर्शनोपयोग ६१०  
 क्रमवत्युपयोगपक्ष ६०९  
 क्रमसंवेदन ३३६  
 क्रमाक्रमविभाग ६१६  
 क्रमाक्रमोपयोगद्वयाभ्युपगम ६०९  
 क्रमोत्पाद ६०७  
 क्रमोपयोग ६०७, ६१२  
 क्रमोपयोगद्वयात्मक ६१६  
 क्रमोपयोगप्रवृत्त ६१०  
 क्रिया ३५  
 क्रियातुमेव-शक्ति १४७  
 क्रियामात्र ७५६

१०७ सं० ५०

क्रियाहितज्ञान ७५६  
 कीडा ७१६  
 कीडावर्था-भगवत्प्रवृत्ति ७१७ (२)  
 कीडावर्थाप्रवृत्ति ३७८  
 कीडार्थिकषायषोडशकनिग्रह ७५५  
 क्लिष्टकर्मन् १  
 क्लिष्टकर्मसम्बन्धहेतुता ७३१  
 क्लिष्टकर्मान्तराय १६९  
 क्लिष्टपरिणामवत्पुरुष ७५३  
 क्लेश १५३  
 क्षण २५७  
 क्षणक्षयसिद्धि ३९८  
 क्षणक्षयाधिगम ३४९  
 क्षणक्षयानभास ३९८  
 क्षणक्षयित् ३८८  
 क्षणपरम्परा २९२  
 क्षणभङ्गप्रसङ्ग ३३२  
 क्षणभङ्गभङ्ग ५२७  
 क्षणमाप्रवृत्ति-वस्तु ३४९  
 क्षणविशारुता ३२१  
 क्षणविशारुत ५६६  
 क्षणस्थिति ४११  
 क्षणिक ९१, ७३१  
 क्षणिकता ३२९, ३९२  
 क्षणिकताव्याप्त ३९९  
 क्षणिकल ४०१, ७१८  
 क्षणिकलव्यवस्थिति ३४९  
 क्षणिकविज्ञप्तिमात्रावलम्बिन् ३६६  
 क्षणिकाभिव्यक्ति ३१९  
 क्षयोपशम ५९, ५१७, ७४५  
 क्षयोपशमकार्य ६१२  
 क्षयोपशमनिबन्धनक्रम ६१८  
 क्षयोपशमलक्षण-अभ्यास ६३  
 क्षयोपशमविशेषाभिर्भूतज्ञान २६८  
 क्षयोपशमविशेषाभिर्भूतप्राक्प्रदर्शितव्या-  
 प्ति-प्रहणस्वरूपज्ञान- २५०  
 क्षयोपशमिकमान ६२३  
 क्षायिक ६१५  
 क्षायिक-ज्ञानदर्शन ५९६  
 क्षायिकज्ञानदर्शनचारित्र ७५०  
 क्षायिकज्ञानदर्शनचारित्रवीर्यातिशयसम्प-  
 त्समन्वित ७३६  
 क्षायिकल ६१२  
 क्षायिकभाव ५९६, ६२३  
 क्षायोपशमिक ६१५

क्षायोपशमिकमान ५९६  
 क्षायोपशमिकभूमि ७३५  
 क्षीणावरणभासम् ६२१  
 क्षीणावरणल ६०६  
 क्षुदादिपरिबहैकादशक ६१५  
 क्षेत्रज्ञ ९८  
 क  
 क्वाति ३६१  
 ग  
 गच्छतृणस्पर्शानुत्पत्त्य १६३  
 गतिक्रियापरिणतजीवत्वव्य ६४०  
 गतिक्रियापरिणामवद्व्य ६४०  
 गमन ६८६  
 गुण ६३१ (४), ६३३, ६३५, ६७२  
 (५) ६७६ (३, ४)  
 गुणरूपता ६८३  
 गुणशब्द ६३४  
 गुणाधिकनय ६३४ (४), ६३५  
 गुणास्तिकनय ६३४, ६३५  
 गुप्ति ७३५  
 गुह्य ६८३ (४, ५)  
 गृहीतसम्बन्धलिङ्गप्रभव ३  
 प्रहणव्यवस्था ३४०  
 प्राह्यप्राहकभावव्यवस्था ४६१  
 घ  
 घातिकर्मक्षय ७५४  
 घातिकर्मक्षयप्रभवसंवेदशतापि ६१३  
 घातिकर्मचतुष्टय ६२२  
 च  
 चक्रक ४, ५, ६, १३, १६, ४१, ५१, १३६,  
 १४०  
 चक्षुरादिकरणपथकसंभवप्रतिकेखन ७५५  
 चतुर्ज्ञानिन् ६१०  
 चतुर्थभङ्ग ४४६, ७५८  
 चतुर्दशभक्तनिषेध ६१४ (२)  
 चतुर्लक्षणलिङ्ग ५५५  
 चतुर्निघकार्यद्वयाभ्युपगम ६४६  
 चतुर्विधमतिज्ञान ५५३  
 चतुःसंख्य-परमाण्वात्मक-विलयव्य  
 ६५८  
 चरण ७५५  
 चरणकरण ७५६  
 चरण-करणप्रधान ७५५  
 चतुर्वैधर्म्यभ्रमणसङ्घ ७५४  
 चारित्र ७५७

८ - सन्मतिटीकागता 'दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

चित्तचेत-नानात्र २६१  
 चित्तपरिणति ७५१  
 चित्तसन्तति १६२  
 चित्ताचेत-संबन्धिता ३६४  
 चिखभानता १५१,१६०  
 चिन्ता ५५३  
 चिन्मात्रपरिज्ञान ११९  
 चेतन ३८७  
 चेतनत्व ११९  
 चेतन-बनस्यति ६५२ ( १ )  
 चेतन-सत्त्व १४१  
 चेतनाचेतन-द्रव्य ६३०  
 चेतनाभिष्टातृत्वव्यतिरेक १२६  
 चेतना-लक्षण ७३२  
 चेतनालक्षण आत्मन् ४५४  
 चेतनग्रहणप्रतिषेध ७४६  
 चैतन्य १५१,२९६,२९८,३०७  
 चैतन्यपरिणति ७३७  
 चैतन्यप्रतिपत्ति ६५९  
 चैतन्यमात्र ६५४  
 चैतन्यलक्षण ६५१  
 चैतन्यलक्षणआत्मन् ७१८  
 चैतन्योच्छेद १६०  
 चोदना ४१,४३,६२,५३९,७३१,७४०,  
 ८४२,७४३  
 चोदनाप्रभन १९  
 चोदनाबत् ५१  
 चोदनासदृशात्म्य ३२  
 छ  
 छद्मस्य ६१०,६१२ ( १ ), ६१९  
 छद्मस्थानस्था ६१६,६१८,६२०  
 छद्मस्थानस्थाभावित् ६२५  
 छल ७७१,७३३  
 छायास्थिकज्ञान ५२ ( ४ ) ६४  
 छायास्थिकोपयोग ६२०  
 ज  
 जगत् ८९  
 जगत्-अदृश्यताप्रसक्ति ६४७  
 जगत्-एकत्व २७६  
 जगत् कारण ७११  
 जगत् कारणत्व ७१७  
 जगत्कर्तृत्वानुपपत्ति ११९  
 जगत्कर्तृत्वानुपपत्ति १२०  
 जगद्विघातुल १२८

जगद्वैविध्य ९५,११८  
 जडस्वरूप ७१८  
 जन्मान्तरशरीरसंसार ७१  
 जय-पराजय ७६०  
 जल्प ६७१,७३३  
 जाति १११,११३,११३,१७४,१७८,  
 १७९ ( १ ) २०७,२२३,२३३,२३४,  
 २३८,६७१,७३३  
 जातिमत् १७४  
 जातिरूप ११३  
 जातिव्यक्ति १११  
 जातिव्यवस्था २२२  
 जिन १३३,६१६  
 जिनकल्पिक ७५१  
 जीव ६२०,६२४,६३१,७३२,७३३  
 जीव-कर्मन् ४५३  
 जीवकर्मप्रदेश ४५२  
 जीवद्रव्य ४५१,४५३,६४०,६४१  
 जीवल ६५१  
 जीव-पुद्गलप्रदेश ६३९  
 जीव-बन्धमोक्ष १६२  
 जीवविचय ७३४  
 जीवाजीवपदार्थद्वय ७३७  
 जीवात्मन् २७८  
 जीवादितत्त्व ६५१  
 जीवादितत्त्वप्रकाशक ७४५  
 जीवादित्व ४३०  
 जैनमतानुप्रवेश ५५१  
 ज्ञप्ति ७  
 ज्ञातृव्यापार २,८,२०,२१,२२,२५  
 ज्ञातृव्यापारलक्षणप्रमाणसिद्धि २५  
 ज्ञान ३४३,४५७,४८०,६०६,६१८  
 ज्ञानग्रहण ५२० ( ६ )  
 ज्ञानचिकीर्षोधारता ४७३  
 ज्ञानचिकीर्षोप्रयत्नसमवाय ९८,१२५  
 ज्ञान-दर्शन ६२३  
 ज्ञानदर्शनएकत्व ६०९,६१०  
 ज्ञानदर्शनचारित्र ७५५  
 ज्ञानदर्शाचारित्रत्रितय ६५१  
 ज्ञानदर्शनचारित्रात्मक ७५६  
 ज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मकमुक्तिमार्ग ७३१  
 ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयात्मक ६२१  
 ज्ञानपरमाणु १०५,२६९,४२७  
 ज्ञानप्रकर्षतारतम्य ५८

ज्ञानप्रयत्नचिकीर्षोसमवाय ११९,१२२  
 ज्ञानरूप १४  
 ज्ञानरूपता ४८०  
 ज्ञानवाद ४६६  
 ज्ञानसन्तति ८९  
 ज्ञानाकार २३२,३५१,४६०,४६१,  
 ज्ञानाकारनिबन्धना-वस्तुप्रज्ञप्ति ३८०  
 ज्ञानादि-उत्पत्ति-समवायिकारण, अच-  
 मनायिकारण-निमित्तकारण १२६  
 ज्ञानादित्रितय ७५५  
 ज्ञानाद्यानारकघातिकर्मचतुष्टय ६२  
 ज्ञानानुपगृह्यमनिमित्तशरीरस्थित्यादिहेतु-  
 ता ७४७  
 ज्ञानावरणादि ७३६  
 ज्ञानावरणीयादि ७३३  
 ज्ञानावरणीयादिकर्मन् ७३७  
 ज्ञानोपयोग ६२०  
 त  
 तत्त्व ३४२,७३२,७३३  
 तत्त्वचिन्तक ५६८  
 तत्त्वव्यवस्था २६६  
 तत्त्वसंभृति ३७७  
 तथाख्याति ३८५  
 तदुत्पत्ति २०,५२४  
 तदुत्पत्ति-तादात्म्यलक्षणसम्बन्ध २६६  
 तद्योग ( जातियोग ) १७४  
 तन्त्रयुक्ति ५३१  
 तमसछायादि ६७१ ( ७ )  
 तमस ५४३  
 तर्क ६७१,७३३  
 तात्पर्यार्थज्ञातृ ७४५  
 तात्त्विक ८०  
 तात्त्विकत्व ३१६  
 तात्त्विकविनाश ३३३ ( ६ )  
 तादात्म्य २०,२४१,२६८,५६४,५९४  
 तादात्म्य-तदुत्पत्ति ५५८  
 तादात्म्यतदुत्पत्तिलक्षणप्रतिबन्ध ३२१,  
 ५६८  
 तादात्म्य-तदुत्पत्तिव्यवस्थापकप्रमाण  
 ५६९  
 तार्किक ८९  
 तीर्थक-पर्याय ९३  
 तीर्थकसामान्य २६७  
 तीर्थ २७१,७५४

## ८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

तीर्थकृदासादना ४५७  
 तीर्थप्रवर्तन ६११  
 तुच्छरूप-अर्थसत्त्व ३६८  
 तुलाप्रामाण्य ५२२ (३)  
 तृतीयनयाभाव ४१६  
 तृतीयमन्त्र ४४२, ७५८  
 तैमिरिकज्ञान ५०९  
 त्रिंशदधिकशतपरिमाणमन्त्र ४४७  
 त्रिकालता ६४५  
 त्रिकालशून्यविधि ७४०  
 त्रिगुणात्मक १४  
 त्रिगुणात्मकपुरुष ३०५  
 त्रिगुणात्मकबस्तु ३०४  
 त्रितय ३५४  
 त्रिधामुक्ति ७५५  
 त्रिधाहेतु ५५६ (२), ५५७  
 त्रयकारपक्षधर्म ५५९  
 त्रिप्रकारलित्रालम्बन ५६७  
 त्रि-मन्त्र ४४५  
 त्रिलक्ष्यत् ७२४  
 त्रिलक्षणलिङ्ग ५५५  
 त्रिलक्षणहेतु ५६९  
 त्रिविधअनुमान ५५९, ५६०, ५६२  
 त्रिविधयोगसिद्धि ४५२  
 त्रिविधसंस्कार ६८४ (१)  
 त्रिविधहेतु ५५८  
 त्रैगुण्य २८१, २८२  
 त्रैधातुक ७३१  
 त्रैरूप्य ४३७, (७), ७३०, ७२४, ७५२  
 त्रैरूप्य-अविनाभावपरिसमाप्ति ७१९  
 त्रैरूप्यसद्भाव ७२१  
 त्रैरूप्याभ्युपगम ७२३  
 त्रैलक्षण्य ५९१  
 त्रैलक्षण्यसद्भाव ७३९  
 त्रयणुक ६४६  
 त्रयणुकादि ६४९  
 त्रयात्मक ६४४ (३)  
 त्र  
 दर्शनस्मरणरूपा-सामग्री २७६  
 देशकालाकारबस्तु ४६९  
 दर्शन २९३, ४५७, ५५३, ६१८  
 दर्शनज्ञानस्वरूपद्वय-पर्याय ५९६  
 दर्शन-ज्ञानात्मन् ६२७  
 दर्शनज्ञानोपगम ५९६

दर्शनपर्याय ४५२  
 दर्शनस्मरणएकाधिकरणता ३४२  
 दर्शनावरणक्षय ६०६  
 दर्शनावस्था ३४३  
 दर्शनोपयोग ६२०  
 दशधाक्षान्त्यादि ७५५  
 दशधावैयर्थ्य ७५५  
 दानहिंसाविरतचेतस् ३८८  
 दिक्कालसाधन ९७० (३)  
 दिक्कृत-परत्वापरत्व ६८१  
 दिश ६९९ (२)  
 दीक्षा ७३०, ७३१, ७३२  
 दुःख ७३३  
 दुर्नय ४१६, ४४६, ७५७  
 दूरयानुपलम्भ २१  
 दृष्टसाहचर्यव्यभिचार ७०  
 दृष्टान्त ६७१, ७३३  
 दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकसाम्य ४२२  
 दृष्टापत्ता १९९  
 देवायुष्कजीव ६२४  
 देश-कालभेद २७४  
 देशकालसन्तानाकार ३७६  
 देशकालाकारभेद २८६, ४७०  
 देशकालावस्थाभेद ७०  
 देशान्तरन्तर्य-सादृश्य २६३  
 देशभेद २७३  
 देशव्यतिरेक २५८  
 देहमात्रव्यापक १३५  
 दोषाभाव १०  
 दवल ६८३ (४)  
 द्रव्य १३६, १७९, २८४, ३८७, ४०५,  
 ४०६, ४०९, ४१०, ४४७, ४४९,  
 ४५६, ५१९, ६२७, ६३८, ६३९,  
 ६३१, ६३६, ६३८, ६४३, ६५६,  
 द्रव्यक्षेत्रकालभाव ४४६, ६३७,  
 द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-पर्याय-देश-  
 सयोग-भेद ७२७  
 द्रव्य-गुण-कर्मन् ७०१  
 द्रव्यगुणकर्मवृत्ति-सत्तासामान्य ६७२  
 द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवा-  
 यास्यप्रद्वयदार्थ ६५७  
 द्रव्यगुणकर्मस्वरूप १५६  
 द्रव्यगुणकर्मात्मकपदार्थत्रय ६८७  
 द्रव्य-त्रैकाल्य ६४५  
 द्रव्यत् ६४४

द्रव्यनय ४४९  
 द्रव्यपरमाणु ७३५  
 द्रव्यपरिणति ६२७  
 द्रव्य-पर्याय २७१, ६२३  
 द्रव्यपर्यायरूप ३८६  
 द्रव्यपर्यायात्म-अर्थ ५५२  
 द्रव्यपर्यायात्मकानन्तार्थग्रहण ६१६  
 द्रव्यपर्यायात्मकेकबस्तुत्व ७१०  
 द्रव्यप्रतिपादकनयप्रत्ययराशिमूलव्याकर-  
 णिन् २८५  
 द्रव्यभावेन्द्रिय ६२०  
 द्रव्यमनस् ६१५  
 द्रव्यरूपता ६३३  
 द्रव्यलक्षण ४१०, ४१५  
 द्रव्यबस्तु ४०५  
 द्रव्यसम्पत्त्व ७३२  
 द्रव्यस्वरूप ६४५  
 द्रव्यादि ११०, १७३, ६१५  
 द्रव्यादिषट्पदार्थव्यवस्था ७२९  
 द्रव्याद्वैत ४२८  
 द्रव्यान्तर ६२९  
 द्रव्याभाव ६७२ (२)  
 द्रव्यार्थपर्यायात्म्यलक्षणनयवाद ७४६  
 द्रव्यार्थिक २८४, (१५) ३७९, ४०६,  
 ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४१५,  
 ४१७, ४४८, ४४९, ४५७  
 द्रव्यार्थिकनय ६३४, ६५६  
 द्रव्यार्थिकनिक्षेप ३८७, ४०५, ४०६  
 द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक २७२  
 द्रव्याविरहि-पर्याय ४०७  
 द्रव्यास्तिक २७२, २८५, ३४९, ४०७,  
 ४०८, ४०९, ४१५, ४१७, ४५५,  
 ४५७, ५९५  
 द्रव्यास्तिकनय ३१०, ३११, ३१५, ६५६,  
 ७०४, ७०९, ७२५  
 द्रव्यास्तिकपर्यायनय २७२  
 द्रव्यास्तिकप्रकृति ३१६  
 द्रव्येन्द्रिय ५५३ (१)  
 द्रव्योपयोग ४०८  
 द्रव्यसंवेदन २७५  
 द्वादशधा-तत्पस् ७५५  
 द्वादशभावना ७५५  
 द्वादशायतन ३२३  
 द्वितीयमन्त्र ४४३, ७५८

८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

द्विप्रमाण ५९५  
 द्विरूप ६२५  
 द्विविध-उपयोग ६५०  
 द्विविधसामान्य ६५७, ६८८ (१)  
 द्विष्टल ५९  
 द्विष्ट-भेद २७५  
 द्वैराग्य २००, २५५  
 द्वैराग्यव्यवस्थापन ३२६ (४)  
 द्वैराग्यव्यवस्थिति ३२२  
 ह्यणुक ६४६  
 ह्यणुकादि ६४५, ६५६  
 धर्म ४१, ५०५, ६६१, (१), ७३१, ७४०  
 ७४२, ७४३, ७५४  
 धर्मकल्पद्वय १  
 धर्मव्यान ७३४, ७३५  
 धर्मानुपेक्षा ७३५  
 धर्मोपेतन ३२३  
 धर्मोस्तिकाय ६४१, ६५४, ६५५, (३),  
 ७३२, ७३४  
 धर्मिन् ५९२  
 धालर्यमात्र ७४०  
 धारणा ५५२, ५५३ (६)  
 ध्रौव्य ४१०  
 ध्वंस ३८९

न

नमल ७५१  
 नय २७२, ३१०, ४२०, ४२९, ४५७  
 नयद्वय ४०९  
 नयप्रमाणाभिप्राय ७५५  
 नयराशि २७१  
 नयनाद ४२१, ६५५, ७४६  
 नय-शातविधल ७५७  
 नयसमूहविषयसम्यग्ज्ञान ७५७  
 नयस्वरूप ४०८  
 नचद्रव्य ६७२  
 नवपुराणाद्यनेककर्मभाविपर्यायाक्रान्त-  
 घट २६०  
 नव-ब्रह्मगुप्ति ७५५  
 नानाभूत-एकलप्राहिप्रमाण ३९६  
 नाम स्थापना-द्वय-भाव ३७९, ४४३ (६)  
 नामाक्षय १८५  
 नारकपर्याय ९३  
 नास्ति ४४२  
 नास्ति च भवकव्य ४४७

निक्षेप ३७९  
 निप्रहस्थान ६७१, ७३३, (३)  
 नित्यद्रव्यवृत्ति ६९८, (१), ६९९, (१)  
 नित्यसुखसंवित्ति १५४  
 नियति ७१४  
 निरंशाक्षणिकैकान्त ७२८  
 निरंशाक्षणिकैकपरमाणुसंवेदन ५१५  
 निराकार ८४  
 निराकार-ज्ञान ४०५, ४६१, ४६२, ४६४  
 निराकारबोध ४५९  
 निराकारविज्ञान ४६०  
 निराकारा अर्थबुद्धि ४६२  
 निरोध ७३३  
 निर्जरा ७३२, ७३५, ७३७  
 निर्णय ६७१, ७३३  
 निर्वाण ७१८  
 निर्वाणप्राप्ति ७५४  
 निर्वाणफलहेतुसम्यग्दर्शनचारित्र्य ७५१  
 निर्विकल्प ४३१  
 निर्विकल्पकस्वसंवेदनवादिन् २५०  
 निर्विकल्पज्ञान ३४१  
 लिखितप्रामाण्य १  
 निषेध १९८  
 नील-तब्दी ३६२, ३६३, ३६४  
 नैगम ३१०, ३११, ३८६  
 नैगमनय २८५  
 नैगम-सङ्ग्रह-व्यवहारसुत्र-शब्द-सम-  
 भिरुद्धैवम्भूतनय ६५५  
 नैगमादि २७२, ७५७  
 नैयायिकाभ्युपगतपदार्थ ६७१ (६)  
 नैरात्म्य ११०  
 नैरात्म्यनिषेध १०९  
 नैरात्म्यप्रतिपादन ३६६  
 नैर्प्रन्थय ७४७, ७४८  
 नैर्प्रन्थयाभावन ७४६  
 नोइन्द्रिय ६१९

प

पक्ष ३५१, (६), ५९२  
 पक्षधर्म ५५६ (२)  
 पक्षधर्मता ५७०  
 पक्षधर्मतानिश्चयहेतुज ५७१  
 पक्षधर्मलादित्रिलक्षणयोगिन् ५९० (३)  
 पक्षधर्मान्वयव्यतिरेकलक्षण ५६२  
 पक्ष-सपक्ष ७२१

पक्ष-सपक्ष-विपक्ष-व्यवहार ७२०  
 पक्षकर्मन् ६५७, ६८५, (१)  
 पक्षज्ञानिन् ६१०  
 पक्ष-तन्मात्र २८०, २८२  
 पक्षधा-समिति ७५१  
 पक्षपदार्थवृत्तिरूपसमवाय ६७२ (४)  
 पक्षमभङ्ग ४४६, ७५८  
 पक्षलक्षणलिङ्गाप्ति ५६२  
 पक्षमिश्रिति-तत्त्व २८१  
 पक्षनत २८०, ७५५  
 पक्षास्रवविरमणादिसंयम ७५५  
 पदार्थ १७४, (१५), १७७, २०६, ३२५,  
 ५२२, ७४३  
 पदार्थकादाचित्कल ७४  
 पदार्थपञ्चक ७०२  
 पदार्थप्रवेदाकमन्य ६६१ (२)  
 पदार्थभेदक ७७  
 पदार्थव्यवस्था ६५७  
 पदार्थपटक ६५७  
 पदार्थतद्भ्रमप्रसङ्ग ७०२  
 पद्मलेख्या ७३५  
 परतत्र २८२  
 परतः-अप्रामाण्य ८, १०, ११  
 परतःप्रामाण्य १७, १९, २८, ७३  
 परत-प्रामाण्यनिश्चय ७, १८  
 परपक्ष ७६०  
 परपर्याय ६३०  
 परप्रकर्षप्राप्ति ६१  
 परभ्रमप्रातुर्भाव ६२१  
 परमशुद्ध-यान ७३५  
 परमाणु १०५, १३५, १४५, २५२, २८७,  
 ४११, ६४६, ६४७, ६५६, ६९८,  
 ७३६  
 परमाणुपर्यन्तल ६४८ (३)  
 परमाणुपर्यन्तविनाश ६४९  
 परमाणुपारिमाणुद्वयादि २७०  
 परमाणुप्रभवल ३१०  
 परमाणुरूपादि १३५  
 परमाणुपङ्कसम्बन्ध २५२  
 परमाणुसमूहात्मक १४  
 परमाणुखलक्षण ३८८  
 परमाण्वादि १२४  
 परमाण्वादिखलभावव्यवस्थिति ६९८  
 परमानन्दखभावता १५१

## ८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

परमार्थ ४०६  
 परमार्थसत् ३६७, ४१४  
 परमाह्लादरूपानुभव १६१  
 परलोक ७१, ७५  
 परलोकन्यवस्था ७४  
 परलोकसद्भान ६९  
 परलोक-सिद्धि ७७  
 परस्परपरिहारस्थितिलक्षण २४१  
 परस्परस्वरूपोपादान ४१५  
 परामर्शज्ञान २३८, ५६३, (१२), ५७८  
 परामर्शप्रत्यय २०८  
 परिच्छिन्ति ५२२  
 परिणति २९६, ३९३, ४५१, ५३४  
 परिणाम २९७, ३८३, ७५९  
 परिणामकृत-अर्थ ४२३  
 परिणामकृतसमूह ४२२, ४२३  
 परिणामप्रसाधकप्रमाण २९, ३  
 परिणामसामान्य १६४  
 परिणामसिक्कारणता ७४१  
 परिमण्डलादि ६०५  
 परिभाषा ५२५  
 परिशेष ५६६ (१०), ५७१  
 परिषद् ७४७, ७५१  
 परिषद्दोषसर्गोक्तिभवा ७५४  
 परोक्ष ५९५  
 परोक्षा ३५८  
 परोक्षोपयोग ६५०  
 पर्यनुयोग ७०, ७२, ७३  
 पर्यनुयोगमात्र ६९  
 पर्यवनय २७१  
 पर्याय ३१२, ४०९, ४१०, ४४०, ४५३,  
 ४५६, ६२४, ६२७, ६२८, ६३०,  
 ६३५ (३), ६४०, ६४१  
 पर्यायनय ३१७, ३४९, ४०७, ४०८,  
 ४०९, ४४८, ४५५  
 पर्यायनयमेव २८८, ३१०, ३११, ३१७,  
 पर्याययोग ४३१, ४४०  
 पर्यायनकस्यमार्ग ४२९  
 पर्यायनिशेष ६५६  
 पर्यायसंज्ञा ६३५  
 पर्यायाक्रान्तबस्तु ४०८  
 पर्यायामिमत ४१०  
 पर्यायार्थिक ३७९, ४०६, ४०८, ४१५,  
 ४१७, ४३०, ४४८, ४४९, ४५५,  
 ४५७

पर्यायार्थिकनय ६३४, ६५६  
 पर्यायाशून्य-द्रव्य ४०७  
 पर्यायास्तिक २८५, ३१४, ३४९, ३८०,  
 ४५७, ५१६  
 पर्यायास्तिकनय ३८६, ४०७, ४०९,  
 ४१५, ४५५, ६५६, ७०९, ७२५  
 पर्यायास्तिकाभिमतपूर्वापरक्षणविविक्तम-  
 ध्यक्षणमात्रवस्तु ४०५  
 पर्युदास २९, ४२८  
 पर्युदासरूपनिषेध २२४  
 पर्युदासरक्षणअपोह २०२, (१)  
 पर्युदासवृत्ति १०  
 पश्यन्तीवाच् ४९३  
 पापघ्नान ७३४  
 पारतन्त्र्य १०  
 पारमार्थिक १४५  
 पारमार्थिक-प्रमाणलक्षण ४६५  
 पारमार्थिक-ब्रह्मस्वरूप-साधन ३८४  
 पारमार्थिकस्त्वान १  
 पारमार्थिकाद्वैतसिद्धि २९५  
 पारमार्थिकानेकाकार-ज्ञानाभ्युपगम  
 ३६२  
 पारिणामिकादि ६२३  
 पारिभाषिक १०३, ५२५  
 पारिमाण्डल्य ४११  
 पारिमाण्डल्यलक्षण-नित्यत्व ६७५  
 पारिषेध २४६, २५६, ४०५, ४१२,  
 ५१९, ५२२, ५४१, ६७७ (१)  
 पिण्डविशुद्ध्यादि ७५५  
 पीतलेदया ७३५  
 पुण्यापुण्यबन्धहेतुता ७३३  
 पुद्गल ३७८, ४५४, ४५५, ६१५, ६४०,  
 ६५४, ७३२, ७३४  
 पुद्गलता ६३९  
 पुद्गलद्रव्य ४३०, ६३१  
 पुद्गलद्रव्यात्मकत्व ६७२, (१)  
 पुद्गलधर्मत्व ८६  
 पुद्गलपरिणति ६११  
 पुद्गलपरिणामत्व ७८  
 पुद्गलरूप-कर्मन् ७३६  
 पुद्गललक्षणविलक्षणता ७१८  
 पुद्गलविकारत्व ९०  
 पुद्गलात्मककर्मन् ७३४  
 पुद्गलास्तिकाय ६५४, ६५५, (२)

पुरुष ११२, २८२, (१६), ३०६, ३१०,  
 ६३१, ७१५  
 पुरुषजीव ६२४  
 पुरुषविशेष-ईश्वर १३३  
 पुरुषवेदापरिक्षय ७५२  
 पुरुषाद्वैतसिद्धि ३७  
 पुरुषायुष्मजीव ६२४  
 पुरुषेच्छा ३९  
 पुरुषेच्छानिबन्धनत्व ४७१  
 पूर्वजन्मसिद्धि ९२  
 पूर्वधर ७५४  
 पूर्ववत् ५५९, ५६०, ५६४, ५६७, ५९४  
 पूर्वनिद् ७३६  
 पूर्वोपरदर्शनानुषेय-बस्तु ३७३  
 पूर्वोपरैकत्वमाहिदर्शन ३४०  
 पृथक्त्वमितिकेनीचार ७३५  
 पृथगुपलम्भ ३६३  
 पृथिव्यादि-मनःपर्यन्त-द्रव्यनवक ६७१  
 पृथिव्यादि-मनुष्यपर्यन्त-वद्विभजीवनि-  
 काय ६५१  
 पृथिव्यादिस्थावर ६५२  
 पौद्गलिक ६०  
 पौद्गलिकत्व ३८, ३९  
 पौद्गलिकत्वविचारणा १०८  
 प्रकरण ७१९  
 प्रकरणसम ७२०  
 प्रकरणसमता ७२१  
 प्रकरणादि २३६  
 प्रकाशता ४६३, ४६४, ४८०  
 प्रकाशतानुप्रसिद्धता ४६६  
 प्रकाशाख्यामेदोल्लेख ३६५  
 प्रकृति ३०७  
 प्रकृति-ईश्वर-कालादि-कृतत्व २१५ (१)  
 प्रकृतिविकारमेव २८२ (४)  
 प्रक्रिया ३८० (१)  
 प्रचय ६४७  
 प्रच्युति ३८९, ३९१, ३९२  
 प्रच्युतिमात्र-प्रचरंसाभाव ३२१  
 प्रज्ञामेधा ७१, ७४, ७७, ७८  
 प्रणवस्वरूप ३८०  
 प्रतिक्षणभावित्व ३८१  
 प्रतिक्षणविशारत् ८७, ८९, ३३१, ७१८  
 प्रतिनियतदेशकालहेतुता ७१३  
 प्रतिपक्षव्युदास ७१८

८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

प्रतिपत्ति ४८९  
 प्रतिपत्तिप्रमोषकल्पना ३७२  
 प्रतिपत्ति-प्रवृत्ति-प्राप्ति-लक्षणव्यव-  
 हार २६७  
 प्रतिपत्ति-विगम ६४४  
 प्रतिबिम्बक २०९, २१७, २३०  
 प्रतिबिम्बात्मक-अपोह २०६, (१६)  
 प्रतिबिम्बात्मन् २०३ (११)  
 प्रतिबिम्बोद्भव्याय ३०८  
 प्रतिभा १८२ (४), ३५०  
 प्रतिभाख्य-अपोह ३०६  
 प्रतिभातः ५४७  
 प्रतिभापक्ष १८४ (१०)  
 प्रतिभास ३७१, ३७६  
 प्रतिभासन २७४  
 प्रतिभासमेद ८३, ३६४  
 प्रतिभासमानता २९१  
 प्रतिभासवपुष् ३७१  
 प्रतिभाससंवेदन ३८७ (१३, १४)  
 प्रतिभासाद्वैत ४८७  
 प्रतिभासोपमल ३७१, ४८८  
 प्रतिभासोपलब्धि ३८८  
 प्रतिभा ७५५  
 प्रतियोगियुगात्मक १०  
 प्रतिरूप ३१६  
 प्रतिषेध ७४१  
 प्रतीति १११  
 प्रतीत्यवचन ६२८, ६२९, ६४१  
 प्रत्यक्ष १३, ११९, २४५, २८७, ३३४,  
 ३४३, ५०८ (१), ५१८, ५२०,  
 ५२४, ५३१, ५९५, ६२०  
 प्रत्यक्षतः ३४९  
 प्रत्यक्षनिराकृत ३५१ (६)  
 प्रत्यक्षपूर्विकाधीपति ५७९  
 प्रत्यक्षप्रतीति ११३  
 प्रत्यक्षप्रामाण्यलक्षण ७२, ५३४ (९)  
 ५३९  
 प्रत्यक्षानुमानप्रतीतिभेद ५६६  
 प्रत्यक्षानुमानभेद ५१८  
 प्रत्यक्षानुमानलक्षणद्विप्रमाण ५७३  
 प्रत्यक्षानुमानादि भेद २८५  
 प्रत्यक्षोपयोग ६५०  
 प्रत्यभिज्ञा ३३, ३४, ३७, १०४, ११२,  
 २८६, २८९, २९०, २९१, ३१८,  
 ३१९, ३४४, ३९४

प्रत्यभिज्ञादि ६४१  
 प्रत्यभिज्ञान ७८, ८६, ९२, १३६, २८६,  
 ३३५, ३४३, ३७३, ३९४, ३९६,  
 ४३५, ५३८  
 प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष ५६, ३३७  
 प्रत्यभिज्ञाप्रमाण ३३४  
 प्रत्यय ३१९, ३८०, ६१८  
 प्रत्ययत्व ८९  
 प्रत्ययहेतुत्व १५६  
 प्रत्युत्पन्नभाव ६२८  
 प्रथमभङ्ग ४४२, ४४३, ७५८  
 प्रधान २८०, २८१, २८४, (३), २९६,  
 ३०६  
 प्रधानकारणिक-जगत् ३१०  
 प्रधान-पुरुष २८२  
 प्रधानाद्वैत ४२८  
 प्रध्वंस ३८९  
 प्रध्वंसाभाव ५८१  
 प्रमा ४६६, ४८१, (५) ५०८ (१८)  
 प्रमाण २, ५, ८, १३, १५, २०, ३९, ४१,  
 १२०, २८५, ३३९, ४२१, ४५८,  
 ४६५, (६) ४६६ (७), ४६७ (११)  
 ४७१, ४७२, ४७५, ४८८, ५०९,  
 ५१३, ५३७, ५५४, ५५५, २८४,  
 ६७१, ७३३, (२)  
 प्रमाणता ५५३  
 प्रमाणत्रयसम्पाद्य-सङ्गत्यवगम ३२  
 प्रमाणद्वयनिबन्धन ३१८  
 प्रसाण-नय ४२०  
 प्रमाणनयप्रमाणद्वार ७४५  
 प्रमाणनयस्वरूपाधारण ७४६  
 प्रमाणनिबन्धनल ७१०  
 प्रमाणनिबन्धना ७३, ७४  
 प्रमाणवक्षक २३, ४१  
 पदमालक्षण १४, ४६७ (११) ४६९,  
 ४७१  
 प्रमाणशब्द ४५९  
 प्रमाणसामान्यलक्षणप्रस्ताव ५५१ (१०)  
 प्रमाणादिव्यवस्था ३६५  
 प्रमाणाधीन ३८४  
 प्रमाणाधीनत्व ७०९  
 प्रमाद ७४७  
 प्रमितिक्रिया ३६५  
 प्रमेय ६७१, ७३३

प्रमेयव्यवस्था ३८४, ७०९  
 प्रमेयव्यवस्थिति ७३, ७४, ७१०  
 प्रयोगजनितविगम ६४३  
 प्रयोजन १७१, ६७१, ७३३  
 प्रत्यकाल १३२  
 प्रवाहरूपसन्तानत्व १५७  
 प्रव्यक्तचेतनत्रसन्निकाय ६५१  
 प्रवज्यापरिणाम ७५०  
 प्रसज्यप्रतिषेध २९, २०३, ४२८  
 प्रसज्यप्रतिषेधलक्षण अपोह ३०२ (१६)  
 प्रसज्यप्रतिषेधवृत्ति ५८  
 प्रसज्यरूप-प्रतिषेध्य १९९ (१७)  
 प्रसज्यलक्षण १८७  
 प्रसवधर्मिन् २८१  
 प्रसङ्गप्रतिषेधलक्षण-अपोह १०२ (२)  
 प्रतारण ३८५, ६८६  
 प्राक्तनाशेषकर्म-सद्योगाभाव ७३७  
 प्रागभाव ३८९, ५८१, ७०५  
 प्राणतिपातविरमणादिमहात्रत ७४९  
 प्रतिभ ५३७ (४), ५३८ (१३), ५५२  
 प्रापकत्व ४६९  
 प्रासार्थप्रकाशकत्व ५४५  
 प्रामाण्य २, ४, ९, १४, ४६६, ४६८, ४७१,  
 ५७६  
 प्रामाण्यप्रकृति ७  
 प्रेक्षापूर्वकारित्व १५२  
 प्रेरकत्वानुपपत्ति ७३९  
 प्रेरणा ११, १९, ४१, ७४०  
 प्रेरणाजनितज्ञान ६०  
 प्रेरणाजनिता बुद्धि ८  
 प्रेरणाबुद्धि ४, १९  
 प्रेरणावाक्य ११  
 फ  
 फल १३, २५, ५३१, ५६७  
 फलता ५५३  
 फलवत्-कारण ३४६  
 फलविशेषणपक्ष ५२० (४, ६)  
 च  
 चङ्गमुक्तव्यवस्था २८०  
 चन्ध ४९८, ४९९, ७३२ (३), ७३३  
 चन्धमोक्षलक्षणवस्तुत्वं ७४५  
 चन्धमोक्षव्यवस्थिति ३८५  
 चन्धमोक्षसुखदुःखप्रार्थना ४५१  
 चन्धहेतुत्व १५२  
 वहिरर्थसंस्पर्सरहित ३६६

नाधकप्रत्यय १८  
 नाध्यनाधकभाव ४८८  
 बाल्य-अर्थ २१३  
 बाल्यधर्मध्यान ७३४  
 बाल्य-रूप ३७७  
 बाल्यशुद्धध्यान ७३५  
 बाह्याभावा ३५१  
 बाह्यार्थव्यवस्था ३७७  
 बाह्यार्थव्यवस्था ३६२  
 निम्बप्रतिनिम्बवत्-विद्या-अविद्याव्य-  
 वस्था ३७८  
 बुद्धि ८,८४,२३७,२८०,२८१(३)  
 १८२,३५८,३५९,४६२  
 बुद्धि-चैतन्याभेद ३०९  
 बुद्धिदर्पणसक्रान्त ३०८(२)  
 बुद्धिपूर्विका-ईश्वरप्रकृति १३०  
 बुद्धिप्रतिनिम्बक २१३  
 बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितवृत्तिभ्यादिमहाभूत  
 १३१.  
 बुद्धिमात्र १०८  
 बुद्धि-पदक्षणलयायिल १३९  
 बुद्ध्याधिकरण-द्रव्य १३३  
 बुद्ध्याकार १७४,१८३,१८२,२०५  
 बुद्ध्याकारालम्बनाबुद्धि १८८  
 बुद्ध्यादिसन्तान १५९  
 बुद्ध्यारूढ-अर्थ २१३  
 बुद्ध्यारूढाकार १८१(२)  
 बोध ८१,८२,८३,८४,८८,१९३,  
 ३५५,३६४,३८०,४६२  
 बोधमात्र ४५८,४५९  
 बोधरूपता ४९३(१)  
 बोधात्मकता ३५८  
 बोधात्मन् २७५  
 प्रज्ञान २७७,२७८,२७९,३८०,३८२  
 (७),३८३,३८५,४१९  
 ब्रह्मादिस्वरूप २३८  
 ब्रह्माद्वैत ४२८  
 अ  
 भजन ६३९  
 भजना ४०८  
 भजनाप्रकार ६४०  
 भयौघ ४१९  
 भव ७२,९३,६३१  
 भवगुणप्रत्ययाधिष्ठानावरणकर्मक्षयोप-  
 श्राम ६२०

भवजिन १३३  
 भवविचय ७३५  
 भवस्थकेवलिन ६१२  
 मनोपग्राहिकर्मन् १६०,७३६  
 मनोपग्राहिन १३३  
 भव्य ६५१  
 भव्याभव्यस्वरूप ६५०  
 भाव ८९,३७९,४०६,६२१  
 भाव-क्षणक्षय ३४९  
 भावना ४०७,६८४,७४१  
 भावनाप्रकर्षपर्यन्त ५१  
 भावनिक्षेपप्रतिपादकपर्यायास्तिकाभिप्राय  
 ३८६  
 भावनोपनेयजन्मसुखादि ४६३  
 भावपरमाणु ७३५  
 भावप्रसक्ति ३६८  
 भावरूप-पदार्थ १६५  
 भावसम्बन्ध ७३२  
 भाविजन्मचित्तोपादानत्वं ८९  
 भाविपरलोकसिद्धि ९२  
 भावेन्द्रिय ५५३  
 भाषावर्गणारूपपरिणतपुद्गल-परिणाम  
 ३८  
 भिन्नरूपसंवेदन ३५४  
 भिन्नसन्तान ८९  
 भिन्नाभिन्नकाल ६४४  
 भिक्षोपयोगपक्षि ६१६  
 भिक्षोपयोगरूप ६१५  
 भुक्तिप्रकल्पना ६१२  
 भुक्तिप्रकल्पना ६१०  
 भुवनहेतु-प्रधानपरमाण्वदृष्ट १०१  
 भूतभाविपयोग्यकारणत्वं ३८७  
 भेद ३,१०३,१८९  
 भेदपरिमाण २८४(४)  
 भेदप्रपञ्च २७९  
 भेदवेदनाध्यकार्य २७६  
 भेदव्यवस्था ३१०  
 भेदसिद्धि २८३  
 भेदहेतु ३  
 भेदान्वयदर्शन २८४(५)  
 भेदाभेदरूपवस्तु ४४०  
 भेदाभेदव्यवहारव्यवस्था २४२  
 भेदाभेदशून्य ३७१  
 भेदासम्बन्धता २७९

भोक्तु ३०७,७१८  
 भोक्तृत्वं २८०,३०८  
 भोग्यत्वं २८१  
 भ्रान्त ५१२(२)  
 भ्रान्ति २६३,४८१,(५), ५०८  
 म  
 मति ५५३,६१५  
 मतिज्ञान ५५३,५९५,६१७,(२),  
 ६१८,६२१  
 मतिज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमादिनामप्री-  
 प्रभव ६२०  
 मतिभेद-प्रत्यक्षता ५९५  
 मतिरूप ६५०  
 मतिरूपबोध ६१७  
 मति-श्रुत ६१५  
 मतिश्रुतज्ञाननिमित्त ६१९  
 मत्यावरणादि ७३३  
 मनस् २८१(६)  
 मनस्कार २५४,२६३,४०१,४०२  
 मनस्कारक्षण ४०१,४०२  
 मनःपर्याय ६५०  
 मनःपर्यायज्ञान ५९५,५९६,६१५,६१७,  
 ६१९,६२०  
 मनःपर्यायज्ञानावरणकर्मक्षयोपशमा ६२०  
 मनोद्रव्य ६६९(५)  
 मनोधर्मोपतन ३२३  
 मनोवर्गणाद्य ६१९  
 मनो-वाक्-कायद्रव्य ४५३  
 मनोवाक्कायसंवरण ७५५  
 मनोवाग्बादरकाययोग ७३६  
 मनोव्यापारज-प्रत्यक्ष १४  
 महत् २८१(२)  
 महत्त्व ६४७  
 महदादि २८०  
 महदादिरूप २९६  
 महदादि-लिङ्ग ३०७(१४)  
 महाप्रतपरिणामवत् ७५०  
 महान्तसम्बन्ध ७५१  
 महासवरसामर्थ्य ७३१  
 महेश ११८,१३१  
 महेशज्ञान १२६  
 महेशबुद्धि १३१  
 महेश्वर १२०,१२१,१३०,१३१,१३२  
 महेश्वरवस्तु ११९

८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

मानस ६१९  
 मानसप्रत्यक्ष १३८, ५१९  
 मानसी अक्षमिकलभ्रान्ति २४१  
 माया २७८  
 मायागरवादिभूयस्त्व ७५४  
 मायोपम ४८८  
 मायोपम-धर्म ३७७(१)  
 मार्ग ७३३  
 मिथ्यात्व ४१९  
 मिथ्यात्व-अभिरति-प्रमाद-कथायादिवि-  
 ण्ति ९५०  
 मिथ्यात्वाविप्रवृत्ताष्टविध-कर्मसम्बन्ध  
 ७४७  
 मिथ्यादृष्टि नय ४१९  
 मिथ्याप्रतिपत्ति ८  
 मिथ्यार्थज्ञान ३७९  
 मिथ्यावाद ४२४, ४२९  
 मिथ्यास्थान ७१८  
 मुक्तमनस ६९८  
 मुक्तात्मन् १०७, ११९, ६९८  
 मुक्ति १५५, १६३, ७३९, ७५७  
 मुक्तिप्राप्ति ७५२  
 मुक्तिभाक्त्व ७५२  
 मुक्तिभाक् स्त्री ७५१  
 मुक्त्यवस्था १६१  
 मुल्लवह्निकाद्युपकरणप्रत्युपेक्षण ७५५  
 मुमुक्षु १२८, १५२, १६०, ७३४  
 मुमुक्षुप्रवृत्ति १५२  
 मुमुक्षुबन्ध-प्रसङ्ग १५८  
 मुमुक्षुयत्न १५१  
 मूर्त ६३८  
 मूर्तत्व ७३६  
 मूर्तत्वप्रसङ्ग १४५  
 मूर्ति १४५, १७८  
 मूलनय ४१५, ४१६  
 मूलप्रकृत्यवस्था ३०६  
 मूलव्याकरणिन् २७१, २७२, ३१७, ३७९  
 मृषानन्द ७३४  
 मोक्ष १५४, १६०, ४१९, ७३३, ७३६,  
 ७३७  
 मोक्षकारण ७३६  
 मोक्षमार्ग ६५१  
 मोक्षाध्वन् ७५०  
 मोक्षावस्था १५१, १६०

मोक्षावृत्ति १५२  
 मोक्षोपाय ७१८  
 मोह ४२९  
 मोहनीय ७३५  
 य  
 यति ७४७, ७४९, ७५१  
 यथानुरूपविनियुक्तकन्यनयवाद ४२१  
 यथार्थत्वलक्षण ३  
 यावत्-नयवाद, तावत्-परसमय ६५५  
 युगपज्ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयात्मकैकोपयोग  
 ६२१  
 युगपद्युगपद्वाविपर्याय ६३६  
 योग ७३५  
 योग-कथाय ४१९  
 योगज-ज्ञान ३८४  
 योगनिमित्त ४१८  
 योगिज्ञान ४९९, ५०९  
 योगिन् ३८४, ४७६, ६९८, ७५३  
 योगिप्रतिपत्ति ३७८  
 योगिप्रत्यक्ष ७५, ५३६, ५६८  
 योगिप्रभवविशेषप्रत्ययबल ६९८  
 योग्यता २४६, ५३९  
 योग्यतानुमान ५६३  
 योग्यपथ ३२४, ३२९  
 र  
 रचना ११३  
 रत्नत्रय ७४८  
 रसादिविशेषपरिणाम ६३७  
 रागादि ५१  
 रागादिसंवेदन ५२  
 रामात्यावरण ९९  
 रासिद्वय ४६९ (६)  
 रूपादिभावमामपरिणाम ३८०  
 रूपादि-विशति-गुण ६५७  
 रूपादिनिषयग्रहणपरिणति ६२०  
 रूपालोकमनस्कार २६३  
 रूपालोकमनस्कारसाकृत्य १२१  
 रौद्रध्यान ७३४  
 लय १५५  
 लिङ्ग २९, २८२, ३३३, ४८१, ५६२,  
 ५६३, ५६५, ५६८,  
 लिङ्गप्रभव-उपयोग ६५०  
 लिङ्गिन् ५६५

लिट्प्रत्यय ७४०  
 लिङादियुक्तवाक्यजनितविज्ञान ७३९  
 लोकप्रतीति ४३४, ४६७, ४७६  
 लोकप्रतीतिबाधा ५५५  
 लोकप्रसिद्धव्यवहारानुसरण ८१  
 लोकव्यवहारसमाश्रय ९  
 लोकसंवृत्ति ३७७  
 लौकिक १०३, १५३, ४६८  
 लौकिक-परीक्षक १४७, ७१९  
 लौकिकपरीक्षकादि ११५  
 लौकिकवाक्य ४३६  
 लौकिक-वैदिकीत्वेना ११८  
 लौकिकशब्द ३९  
 व  
 वचनपर्याय ७३०  
 वचनविनिवेश ६२७  
 वचनविधि ४०७  
 वचनार्थनिश्चय ३१६  
 वनस्पतिपर्यन्त ६५२  
 वर्ण ३५, ३६, ४३१, ४३२  
 वर्णक्रमपरौह्वयत्व ३९  
 वर्तमानपरिणाम ६३०  
 वर्तमानविज्ञप्तिक्षण २५३  
 वसतिप्रमार्जनादि ७५५  
 वसत्यादि ७५५  
 वस्तु ७०५, ५५२  
 वस्तुत्वहानि ६२३  
 वस्तुरूपावृद्धि २०६  
 वस्तुव्यवस्थिति ४५२  
 वस्तुलक्ष्य-वाच्य १७३  
 वस्त्रादिग्रहण ७४६  
 वाक्यनय ४३०, ४४८  
 वाक्यार्थ २२६  
 वाग्रूपता ४८९  
 वाचकत्व २६८  
 वाचिकावृत्ति ३२  
 वाच्यवाचकभाव २३७  
 वाद ६७१, ७३३  
 नादकथा ६७  
 वादमार्गप्रवृत्ति ३७७  
 वादिनिग्रहस्थान ७६०  
 वादिप्रतिवादिप्राप्तिक १९५  
 वाचना १९५, ३८५  
 वासनाप्रतिबद्धत्व ३७६



## C - सन्मतिटीकागता पार्श्वनिका। पारिभाषिकाश्च शब्दाः।

वासनारूप ४३३  
 वाचीचन्दनकल्प १६१  
 वास्तव ५२५, ५२६  
 विकलादेशमत्र ४४६  
 विकल्प ४८९, ४९४, ५०३, ५११, ५२५  
 विकल्पज्ञान ४९३  
 विकल्पत्व ५२५  
 विकल्पप्रतिबिम्ब १९९  
 विकल्पप्रतिबिम्बकमात्र २६१  
 विकल्पमात्र ५०३  
 विकल्पलक्षण ५०३  
 विगम ६४२  
 विजिगीषु ७६०  
 विज्ञप्ति ८४, ४६२  
 विज्ञप्तिपरमायुषस्य ४२७  
 विज्ञप्तिमात्र ३५९, ३५४, ३७३, ४६१  
 विज्ञप्तिमात्रक ३६६  
 विज्ञप्तिमात्रता ३६२, ३६५  
 विज्ञप्तिमात्रसिद्धि ३५२, ३५४  
 विज्ञान १५२, ३६४, ३६६, ३६७, ४०१,  
 ५११ (१)  
 विज्ञानमात्र ३५२, ३७८, ४१३, ७३०,  
 ७३१  
 विज्ञानाद्वैत ५१४  
 वितण्डा ७३३  
 विद्यासम्भल २७६  
 विद्यासम्भावत्व २७८  
 विधि १८८, १९१, १९८, १९९, २१७,  
 २३०, ७३९, ७४०, ७४१  
 विधिप्रतिषेधरूपविरुद्धधर्मसंसर्ग ४०२  
 विधिरूप १८८  
 विधिरूप-शब्दार्थ २१७, २२७  
 विधिनाक्य ३२, ९९, ७४४  
 विनाश ६४३, ६४९  
 विपरीतख्याति २७, २८, ६४, ११३,  
 ३६०, ३६१, ३७२, ३७३  
 विपरीतख्यातिता ३७४  
 विपरीतख्यातित्व ३६९  
 विपर्यय ५२३  
 विपर्ययज्ञान ५२८  
 विपर्ययकारण-रामादि १३०  
 विपाकविचय ७३४  
 विभजन ४५२  
 विमन्यवाद ७३५  
 १०८ सं० प०

विभु १३३, १३६  
 विभुत्व १३५  
 विभुत्वसाधन १४२  
 विभुत्वादिधर्म ६६९  
 विरुद्धधर्माभ्यास ३, ७७, ६२३  
 विरुद्धधर्माभ्यासव्यापक १०३  
 विरुद्धविधि २१  
 विरुद्धहेलाभास ५५८  
 विवक्षा १८५  
 विवर्त ३७९, ३८०, ३८३  
 विशिष्टकर्मोदयादिसामग्री ६१२  
 विशिष्टक्षयोपशमनीर्यविशेषप्रभवप्रभाव-  
 योग ७५४  
 विशिष्टधर्मोदयोपदेशविधायीश्वर-  
 सर्वज्ञ-उपासना १२८  
 विशिष्टपुद्गलपरिणतिरूप-अर्थ ५५३  
 विशेष ६२७, ६५७, ६९८, ६९९, ७२५  
 विशेषणविशेष्यभाज १९६, १९७, २६५  
 विशेषणस्य ६२७  
 विशेषणपर्याय ४५२  
 विशेषप्रस्तार ३१७  
 विशेषविरहिणी सत्ता ४०८  
 विषयान्कारपरिणति ५३४  
 विसंबाद ४१३  
 विसदृशगम ६३०  
 विसदृशपरिणतिलक्षणविशेष २४१  
 विसृष्टाजनिता उत्पाद ६४१  
 विहितपर्यङ्गासन ७३४  
 वीचर ७३५  
 वीत ५१४  
 वीतप्रयोग २८४ (२)  
 वीतवीत ५९४ (३)  
 वीर्य १४७, ६१५  
 वृक्षायुर्मेद ६५३ (१)  
 वृत्तिलक्षण-परिणाम ४२३  
 वृद्धव्यवहार ४३६  
 वेग ६८४ (१)  
 वेगाख्यसंस्कार ४३३  
 वेदनीयकर्मप्रभञ्जभसातानुभव ६१५  
 वेदनोपशमादि ७४७  
 वैखरी ४६१ (३)  
 वैदिकशब्द ३९  
 वैदिकहिंसा ७३०  
 वैदिकानुपूर्वी ४३५

वैधर्म्य ७११  
 वैराग्यविचय ७३५  
 वैश्वरूप्याविभाग ३८४ (११)  
 व्यक्त २८१, २८२  
 व्यक्ति ३८, ३९, ७६, १७७, १७८, २२२,  
 २३३, २३५, २३९, २५९  
 व्यक्तित्वभाज २४०  
 व्यक्त्यव्यक्तशक्तिप्रतिनियम ७०२  
 व्यक्त ३५, ३६, ३७  
 व्यञ्जन ७३५  
 व्यञ्जनतः ६३०  
 व्यञ्जननियत ४३०  
 व्यञ्जनपर्याय ४४०, ४४५, ४४८,  
 व्यञ्जनविकल्प ४३०  
 व्यभिचार ५२४  
 व्यभिचारित् ५२३  
 व्यवहार २८६, ३१०, ४९८ (५), ५६५  
 व्यवहारकाल १३३, २३६  
 व्यवहारनय २८४, २८५, ३१०, ३११,  
 ३१५, ३१६, ४३०, ४४८  
 व्यवहारनयमतार्थबलम्बित् २८०  
 व्यवहारमात्रक ३७६  
 व्यवहारबिज्ञेय ३६५  
 व्यापकानुपलम्भ २१  
 व्यापार १२२  
 व्याप्ति ७, ५५९  
 व्याप्तिप्रवृत्त ५६९  
 व्याप्तिव्यवस्थापकप्रमाण ५६९  
 व्यावहारिकप्रमाणलक्षण ४६५  
 व्यावृत्तबुद्धिहेतुत्व ६१८  
 व्युत्पत्तिकाव्यतिरेकित् ७२५ (३)  
 व्रतसमूह ७४९  
 व्रतानुचरणनैरर्थक्यापत्ति ७५६  
 वा  
 शक्ति ९, ३४, ३५, ५४, ९८३, २८४,  
 ३०१, ३४८, ५२७  
 शक्तिः प्रवृत्ति २८४ (५)  
 शक्तिमत् ३४८  
 शक्ति-व्यक्तिरूप ४११  
 शब्द ३२, ३९, ४४, ३८६, ३८७, ४३७  
 (६) ६६८ (५)  
 शब्दनय २८५, ३१०, ३१२, ३१७, ३७८,  
 ४३०  
 शब्दनिश्चल ३३

८ - सन्मतिटीकागतां दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

शब्दपरिक्रमणा ६१५  
 शब्दपरिणामरूपज्ञ ३८०  
 शब्दपर्याय ४४०  
 शब्दप्रवृत्ति ७५  
 शब्दबुद्धि १७७  
 शब्दब्रह्मन् ३८१, ३८२, ३८४, ५२३  
 (५)  
 शब्दमयत्न ३८१  
 शब्दमयब्रह्मन् ३८० (३)  
 शब्दसंकेत १७६  
 शब्दात्मता ३८२  
 शब्दादिनय ३१७, ३४९  
 शब्दाद्वैत ४२८  
 शब्दाद्वैतज्ञान १५५  
 शब्दाद्यै १८३, २०१, २०६ (२), ३३१  
 शब्दार्थ-तादात्म्य ३८६  
 शब्दार्थत्व १७४, (१४), १७८  
 शब्दार्थप्रतिभासित्व ५२४  
 शब्दार्थब्राह्मणसंबन्ध १७३  
 शब्दार्थव्यवस्था १९८, (२०), २१९  
 शब्दार्थसंबन्ध ३८६, ४३६  
 शमसुखरसावस्था ७१८  
 शरीरपरिणाम-आत्मन् शरीरप्रायोग्यपु-  
 द्गलमहण ६१३  
 शरीरन्यपदेद्यभागनेक-परमाणुपादानने-  
 कविज्ञानभाव १४९  
 शरीरसंबन्ध-ईश्वर-कार्यकर्तृत्व १२५  
 शरीरसंपुक्त-आत्मप्रवेश १४५  
 शरीरान्तर्गतसंवेदन ९१  
 शरीरात्मिकपरमाणु १४४  
 शब्द ५७४ (३), ५८३  
 शब्दप्रतिभास २७०  
 शब्दप्रत्यय १७३  
 शब्दप्रमाणान्तर ४३७, ५७५, (५)  
 शब्दिक ७४३  
 शान्दीप्रतीति ३७९  
 शान्दीबुद्धि २१२  
 शासन १  
 शासनप्रामाण्यप्रतिपादन ६५  
 शासनभक्तिमान् ७३२  
 शासनार्थोभिव्यक्ति १  
 शास्त्र १७०, १७१  
 शास्त्रपरमदृढय-नयद्वय ४०७  
 शास्त्रप्रयोजन १७१

शास्त्रचिन्तन ३८८  
 शुक्लतरलेइया ७३५  
 शुक्लान्ता ७३४, ७३५, ७३६  
 शुक्लान्ताभि ७४९  
 शुद्धतरपर्यायास्तिक ४०५  
 शुद्धतरपर्यायास्तिकमताबलम्बन् ३७८  
 शुद्धन्यास्तिकमत-प्रतिक्षेपिपर्यायास्तिक-  
 काभिप्राय २१६  
 शुद्धन्यास्तिकामितनाम-निक्षेप ३८६  
 शुद्धपर्यायास्तिकमेद ३६६  
 शुद्धबोध-अप्रतिभासन २७४  
 शुद्धामन् १३३  
 शून्यता २६७, ३७१, ३७७, ३७८, ४१२  
 ४८८  
 शून्यताप्रसक्ति ४२६  
 शून्यत्व ३७१, ३७६  
 शून्यप्रतिभास ३७७  
 शून्यरूप ३६६  
 शेषवत् ५५९, ५६०, ५६५, ५६६, ५६७  
 ५९४  
 शैलेइयवस्था १३३, १६०, ७५२  
 श्रदान ७५७  
 श्रमण ७५५  
 श्रुत ५५३, (१३), ५५४, ६१५  
 श्रुतज्ञान ५९५, ६१९, ७३५  
 श्रुतज्ञानावरणकर्मक्षयोपवाम ६२०  
 श्रुतरूप ६५०  
 श्रुतायावरणक्षयोपवाम ६०६  
 श्रुतार्थापत्ति ५७९  
 श्रुतानधिमतःपर्यायकेवलित्व ६०६  
 श्रुतोपयोग ६५०  
 श्रोतुसन्तान २६६

षट्काय ६३९  
 षट्क्षणानवस्थायितलक्षण ४३९  
 षट्जीवनिर्काय ६३९  
 षट्पक्ष ७१९  
 षट्पदार्थाभ्युपगम ६६० (१३)  
 षट्प्रकारा-अर्थापत्ति ५७९, ५८५  
 षट्प्रमाणवादाभ्युपगम २७  
 षड्भावविकार ६५३ (२)  
 षड्विधजीवनिर्काय ७४७  
 षड्विंशत्यधिकचतुर्दशशतपरिमाणभङ्ग  
 ४४७  
 षट्स्थानकप्रतिपत्ति ४३० (३)

षष्ठमङ्ग ४४७, ७५८  
 स  
 संयोग ११४, ६७७(५), ७०३, ७०४  
 संयोगविभाग-उत्पत्ति ६५०  
 संरक्षणानन्द ७३४  
 संवर ७३६  
 संवरनिर्जरा ७३७  
 संवरनिर्जालक्षणपरार्थद्वय ७३७  
 संवररूप ७३५  
 संवाद ४, ५, १३, १७०, ७२३  
 संवादक ६  
 संवादकत्व ४७१  
 संवादप्रत्यय १०, १४  
 संविति २४१, ३००, ३०४, ४१४  
 संवित्याख्यलिङ्ग १७  
 संविद् ३१२  
 संविदाकार ४१५  
 संविद्रूप २७  
 संविद्रूपरन्यापोह २३३  
 संविद्वैचित्र्य ८३  
 संवेदन २४१, ३६४  
 संवेदनमेद ३६४  
 संवेदनाख्यलिङ्ग १४  
 संवृतत्व ४०१  
 संवृत्ति २५५, ३७६, ४७० (२)  
 संवृत्तिपक्ष २२४  
 संवृत्तिरूप १४, ४१४  
 संवृत्तिसह ४०१  
 संशय १७०, ४५२, ६७१, ७३३  
 संशयज्ञान ५२४  
 संशीति ६११  
 संसार ३७८, ४१७, ४१९  
 संसारकाल २८२  
 संसारावच्छेद १५०  
 संसारापवर्ग ३८५  
 संसारानवस्था १५१, १६१  
 संसारित्व १०७  
 संसारित् २७८, २७९  
 संस्कारस्कन्ध ३२३  
 संस्थानवत्त्वं ६४  
 संस्थानविचय ७३५  
 संस्कारगतकर्तृत्वसिद्धि ११६  
 सत्त्वज्ञ ६०

## ८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

सकलदेशभङ्ग ४४६  
 सकलधर्मात्मकैकवस्तुप्रतिपादक ४४५  
 सकलनयसमूह ४१९  
 सकलभुवनैकसूत्रधार १३२  
 सकललोकस्थितिस्वर्गप्रलयहेतुता ७१५  
 सकलशास्त्रार्थज्ञताविकल्पत्रय ७५६  
 सकलशून्यताप्रसङ्गि ४८३  
 सकलसन्तानशून्य ८९  
 संकल्प ७३४  
 संकल्पवृत्ति-मनस् २८१  
 सङ्घाय ७३३  
 संकीर्णोष्ठा ३१६  
 संकेत १६१, २६१, २६७, ३७९, ३८६, ३८७  
 संकेतकाल २३२  
 संकेतवैकल्य २३२  
 संकेताभिव्यक्तसंबन्ध ४३६  
 संकेतासम्भव १९०  
 संख्या ६७३ (४)  
 संगल्यभगम ३२  
 संग्रह ४१६, ४२९, ७३०, ४४८  
 संग्रहः ४१५  
 संग्रहनय २७२, ३११, ३१०, ३१५, ३१६  
 संग्रह-निर्गोच २७१  
 संग्रह-व्यवहार २७१  
 संग्रह २७१  
 संग्रहतरूप ३०७  
 संग्रहितकर्मक्षय १५९  
 संज्ञा ५५३, ६४०  
 संज्ञा-संख्या-स्वलक्षण-अर्थक्रियाभेद ६३६  
 संज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञान ५७८  
 सत्ता ११०, १११, २८७, २९१, २९३, ३८९, ३९९, ४०३  
 सत्ता-क्षणिकत्व-अविनाशानसिद्धि ३९७  
 सत्ताख्यपरसामान्य ६८८  
 सत्तामात्र १२९  
 सत्ताविकल्पविशेष ४०८  
 सत्ता-समवाय ११३  
 सत्यता ३७०  
 सत्यवाद ७२५  
 सत्यस्वप्नज्ञान ५४३, ५५२  
 सत्त्व ९२, २६२, ३९८, ३९९, ४१२, ४२८

सत्त्वक्षणिकत्वतादात्म्य ५५५  
 सत्त्व-रजस्-तमस् १८०, २८२, (६) २९६  
 सत्त्व-रजस्-तमोलक्षणगुण ३०६ (८)  
 सत्त्वलक्षण-समावहेतु ३२९  
 सदसत्य ४४१, ४४२  
 सदसदनेकाकारानुगत ७०९  
 सदसदात्मकवस्तु ५८१  
 सदसदात्मकवस्तुप्रतिभास १६६  
 सदसद्रूपत्व ७०७  
 सदसद्विशेषात्मकत्व ४२९  
 सदशपरिणामलक्षणसामान्य ३८, १४१, २४१, २४२, २४३  
 सन्ततिभिच्छिति ४१२  
 सन्तान ८७, ३६७, ४७०, ५१०  
 सन्तानकल्पना ४०४  
 सन्तानत्व १५२, १५६  
 सन्ताननिवृत्ति ८८  
 सन्तानभेद ८३  
 सन्तानशब्दोक्तआत्मन् १६२  
 सन्तानादि ६८२  
 सन्तानादिकल्पना ७२७  
 सन्तानाध्यवसाय ४६८  
 सन्तानापेक्ष-कार्यकारणभाव ७०६  
 सन्तानोच्छित्तिरूपनिःश्रेयस १५५  
 सन्निकर्ष ४७५, ५२९, ५४०  
 सप्तदशभेद-श्रमणधर्म ७५५  
 रासभङ्ग ४४६, ४४७  
 रासभङ्गी ४४७, ४४८, ७५७, ७५८  
 रासविकल्पवचनपथ ४४८  
 रासविकल्पोत्थाननिमित्त ४४१  
 रासविष ४४७  
 सप्रतिधाकारता ४६२  
 समग्रहेतु ५६२  
 समनन्तरप्रत्ययत्व ८८  
 समनिरूढ २८५, ३१०, ३१३, ३१७, ३४९, ३७८, ४३०  
 समय १७५, १७६, १७७, १७९, १९०, २५०, ४२९  
 समयनिबन्धना-आकाशादिसंज्ञा ६४२  
 समयपर्यालोचन ७५५  
 समवाय १०६, १०७, ११०, १५६, ७०० (१), ७०१, (६) ७०२, ७०३, ७०४, ७२९, ७३३

समवायबुद्धि १५७  
 समवायलक्षणवृत्ति ६९१  
 समवायितद्रूप्यसमवाय १६४  
 समवायिन् १०६  
 समस्तसंस्कारप्रभवान्मृष्टि ४३२  
 समानपरिणतिरूपता २६१  
 समानासमानाकारपरिणतात्मकवस्तु ३७९  
 समानासमानपरिणामात्मकपट २६०  
 समानासमानपरिणामात्मकैकवस्तुप्रतिपा-  
 दकत्व ७४५  
 समासपङ्क ४४३ (१)  
 समिति ७३५  
 समुच्चय १८०  
 समुच्चयात्मक-प्रत्यय १६४  
 समुदय ७३३ (५)  
 समुदयकृत उत्पाद ६४१  
 समुदायाभिधानपक्ष १८३ (१७)  
 समूहकृत-अर्थ ४२३  
 समूह-संतानादि ६८२ (४)  
 सम्प्रयोग १३  
 सम्बन्ध ५१, १५६, १९२  
 सम्बन्धवेदन २३६  
 सम्मुखनज-जन्तु ७४८  
 सम्यक्त्व ४१६, ४१९, ४२०, ७१०, ७१७, ७१९  
 सम्यग्ज्ञान ६२२  
 सम्यग्ज्ञान-क्रियावत् ७५७  
 सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रात्मक-परमरत्न-  
 य १  
 सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मकहेतु १६०  
 सम्यग्ज्ञानवत् ६२१  
 सम्यग्ज्ञानवैराग्य ६१, ६२  
 सम्यग्ज्ञानादि ७३७  
 सम्यग्ज्ञानादित्रितयनयसमूह ७५७  
 सम्यग्दर्शन ६२१, ६२२, ७३२  
 सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपत्ति ६५१  
 सम्यग्दर्शनाभाव ४२१, ६२०  
 सम्यग्वाद ४२९  
 सर्गवैविध्य २८२  
 सर्वकर्मनिर्जातवत् ७३७  
 सर्वगत-आत्मन् २८०  
 सर्वजगत्कर्तृ ३१  
 सर्वजगत्ज्ञातृ ३१  
 सर्वज्ञ ४५, ४६, ५२, ५३, ५५, ६२, ६५, ९७, १००

८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः †

सर्वज्ञताप्रतिबन्धिघातिकर्म-चतुष्टयस्य १३३  
 सर्वज्ञत्व ४५, ६२, १२८, ६०९  
 सर्वज्ञप्रणीतत्व ४३  
 सर्वज्ञप्रणीतसासन ६९  
 सर्वज्ञ-वीतराग ५०  
 सर्वज्ञत्वसिद्धि ४५, ६५  
 सर्वज्ञमात्रसिद्धि ६८  
 सर्वज्ञवचन ६२८  
 सर्वज्ञसत्ता ४४  
 सर्वज्ञसत्त्वप्रतिपादक-हेतु ६५  
 सर्वज्ञसिद्धि ४४, ५३९ (३), ५५२  
 सर्वधर्मैरिदृ ३७८  
 सर्वेनयवाद ४०६  
 सर्वेभन्धाखननिरोध ७३६  
 सर्वेभाव-प्रतिभासोपमत्व २६७  
 सर्वलोकसाक्षिक ८०  
 सर्वेभिद् १९  
 सर्वेभिद्विज्ञान ६५  
 सर्वसंस्कार ७३१  
 सर्वसमयसमुदात्मक २९  
 सर्वेषां वयोर्योगप्रत्याख्यान ७५०  
 सर्वानुपलब्धिप्रसक्ति ६४८  
 सर्वाथैक्षणीकृता ३१८ (४)  
 सर्वोपसंहार ५६९  
 सर्वोपाख्याविरहलक्षण-दुःखाभाव १५३  
 सर्वोपाधिविरपेक्षवस्तुस्वरूप ३०२  
 सलक्षण-एक-ब्रह्मन् २७६ (१३)  
 सविकल्प ४३१  
 सविकल्प-प्रमाण ३४१  
 सहकारिकारण ८८  
 सहभाविचित्तचैत २६२  
 सहभाविच्य ६३५  
 सहाननस्थानलक्षणविरोध २४१  
 सहोपलम्भ ३५३, ३६३  
 सहोपलम्भनियम ३६३, ३६४  
 सांघृत ८९, १७४, २१६, २१७, २२०, २९५, ३७७  
 सांघृतत्व ९०, २१६  
 सांख्यद्वारिक १५  
 सांख्यद्वारिक-अध्यक्ष ५५४  
 सांख्यद्वारिक-प्रमाण ४७०  
 सांख्यद्वारिकविनाश ३३३ (६)  
 साकल्य ४७४

साकार ६०८  
 साकारग्रहण ६१०  
 साकार-ज्ञान ४५८, ४६१  
 साकारज्ञानवादिन् २६२  
 साकारज्ञानाभ्युपगम ४६५  
 साकारबोध ४५८, ४५९  
 साकारविज्ञान ४६०, ४६३  
 सांकेतिक ३०  
 सातजनक १६०  
 सातवेदनीय ६१५  
 सादृश्य २६३, २७३, ४१३  
 सादृश्यज्ञान ५७६  
 साधुपर्यवसान ६०७  
 साधुपर्यवसित ६२२  
 साधन २९९ (३)  
 साधर्म्य २५४, ७१९  
 साधारणानैकान्तिक ७२०  
 सान्त्वया चित्तसंतति १६१, १६२  
 सामग्री १२, ११३, ४००, ४७२, ४७४, ४७५ (१), ५२३  
 सामग्रीतः ४२७  
 सामग्रीवत्ता ३५१  
 सामग्रीविशेषणपक्ष ५३० (२)  
 सामर्थ्य २५६, २५८  
 सामर्थ्यमेव ३६  
 सामानाधिकरण्य १९६, १९७, २२०  
 सामान्य ११२, २०५, २२२, २३७, २४२, २५८, २५९, २८१, २८४, ४१५, ५५४, ६२७, ६५६, ६८७ (७), ७२५, ७३०, ७३३  
 सामान्यग्रहण ४५७  
 सामान्यतोदृष्ट ७०, ५५९, ५६०, ५६२, ५६७, ५६८, ५९४  
 सामान्य-अनुमान ५६६  
 सामान्यविशेषणैयसंसारिन् ६०९  
 सामान्यविशेषणरूपता ४५७  
 सामान्यविशेषणानन्द-बान्य-संप्रह-विशेष ३७१  
 सामान्यविशेषात्मक ५९६, ६०५  
 सामान्यविशेषात्मक-बहु २६५, ७२९  
 सामान्यविशेषात्मकस्तुप्राहिन् ५०७  
 सामान्यविशेषात्मकस्तुतत्त्व ४०८, ७५७  
 सामान्यविशेषकान्त ७२५

सामान्यविशेषोपयोगिकरूपत्व ६१७  
 सामान्यकार २४३  
 सामान्यलम्बिदर्शन ६०५  
 सामायिकमात्रपदभिद् ७५६  
 साम्यावस्था २८०  
 सारूप्यज्ञान ५२८  
 सावयव २८२  
 साधुवचित्तसन्तान-निरोधलक्षण १६२  
 सिद्ध १  
 सिद्ध-समूह ४२२, ४२३  
 सिद्धान्त ६७१, ७३३  
 सिद्धान्तज्ञान ७३२, ७४५  
 सुख १५३, ५२३  
 सुखदुःखमोहावेदकत्व २८३ (१४),  
 सुखदुःखसम्प्रयोग ४१७  
 सुखदुःखोपलम्भव्यवस्था २८०  
 सुखादिवेदन ४६३  
 सुनय ७५७  
 सुनय-दुर्नय-प्रमाणरूपता ४४१  
 सुविचेचित्तकार्य ११८, ५६३  
 दृष्टुप्तायवस्था १६३  
 सुषुप्तावस्था १५५, ५०९, ५२९, ६१६  
 सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिन् ७३५  
 सेनाप्रत्यय ६७४  
 श्वशुरनिरीश्वरमेव ३१०  
 स्कन्ध ६०५  
 स्कन्धत्रय ३२३  
 स्कन्धसन्तानादि ४९७  
 सेत्यानन्द ७३४  
 शील ७५१, ७५२  
 श्रीनिर्वाणप्रतिपादक ७५३  
 श्रीवेदपरिक्षय ७५३  
 श्रीवेदपरिक्षयाभाव ७५२  
 श्रीवेदोदय ७५२  
 स्थविरकल्पिक ७५१  
 स्थानु ( जुओ श्वशुर ) ६९  
 स्थापना ३७९, ३८७  
 स्थानरजप्रमत्तिकारोत्पत्ति ७१६  
 स्थिति ४१८  
 स्थितिस्यापक ६८४  
 स्थित्युत्पत्तिनिरोध ६२५  
 श्लेह ६८३ (४)  
 श्लोक ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६

## ८ - सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः ।

स्फोटपरिकल्पना ४३३  
 स्फोटप्रतिभासबुद्धि ४३५  
 स्फोटसंस्कार ४३४  
 स्फोटाख्यशब्द ४३२  
 स्फोटात्मा शब्द ४३२, ४३५  
 स्फोटाभिव्यक्ति ४३३  
 स्मरण ३८७  
 स्मरणसमवायिनी ११२  
 स्मृतिरूप ११३  
 स्मृति ११३, २७४, २८८, २८९, २९०,  
 २९४, ३२२, ३४३, ३७२, ४३३,  
 ४९४, ४९५, ५२०, ५२३, ५५३ (७)  
 स्मृति-प्रत्यभिज्ञावासना-सन्तानादिव्यव-  
 हार ४१४  
 स्मृतिप्रमोष १४, २८, २९, ३७२  
 स्मृतिरूपता ३७२  
 स्मृतिरूपत्व ५८६  
 स्मृतिसंवेदन ७५  
 स्मृतिसमवायिन् ११३  
 स्मृत्यादि ५६२  
 स्यात्कारपदलङ्घित ४४१, ४४६  
 स्यात्कारलङ्घन ६३९  
 स्यात्प्रयोग ७२५  
 स्यात्शब्दयोजन ७२६  
 स्याद्वादप्ररूपकागम ७३५  
 स्याद्वादप्ररूपणा ७४५  
 स्याद्वादरूपाप्रज्ञापना ७२७  
 स्याद्वादविद् ४५६  
 स्याद्वादाभिगम ७३२  
 स्याद्वादाभिज्ञ ४५६  
 स्याद्वादिन् ७५८  
 स्याद्वादीपग्रह ७१७  
 स्वकरणगुण ५

खकृतकर्मसापेक्षत्वअनपेक्षत्व ३१०  
 खचित ३६३  
 खतत्रचरणकरणप्रवृत्ति ७५६  
 खतत्रेच्छाविरचितसंकेतमात्रभावित्व  
 २२०  
 खतः ( उत्पत्तौ, स्वकार्ये, ज्ञातेः ) ३, ५  
 खतःप्रामाण्य ८  
 खतःप्रामाण्यनिरास २९  
 खतःप्रामाण्यव्याहृति ७  
 खपक्षस्थापन ७६०  
 खपरभावाभावोभयत्वकभावावभासका-  
 प्यक्षादिप्रमाण ७१९  
 खम १४०, ४६२  
 खमजाप्रदूदसाभाविज्ञान ३७०  
 खमावस्था ५०३  
 खमोपलब्धि ४८८ (२)  
 खप्रकाशासुखसंविधि १५३  
 खभाव ७११, ७१४  
 खभावकारण ७११  
 खभावकार्योनुपलम्भाख्यपक्षधर्म ५५९  
 खभावभेद २७४  
 खभावहेतु ३, १७४, १८८  
 खभावहेतुप्रभावित २  
 खभावहेतुसमुत्थ ३५२  
 खभावानुपलम्भ २१  
 खरूपप्रतिभास-प्रत्यय ३६२  
 खरूपविशेषणपक्ष ५३० (१)  
 खर्ग ५०५  
 खर्गप्रापणशक्ति ३८८  
 खलक्षण १०७, १६४, १७४, १७५, १७६,  
 १७७, १७८, १८३, १९४, १९५,  
 १९७, २०४ (४), २०७, २१०,

२११, (१७), २१२, २१६, २३४,  
 २६२, २६३, २६४, २६५, ४१४  
 खलक्षण-संकेत २५०  
 खलक्षणानि १९० (१२)  
 खसन्तति ८९  
 खसमयपरसमयमुक्तव्यापार ७५५  
 खसमयपज्ञापना ४५७  
 खसंबन्धप्रतिभासमानविज्ञप्तिस्वरूप ३५०  
 खसंवेदनप्रत्यक्षसिद्धत्व १३५  
 खसंवेदनमात्रपरमार्थस्वरूप २३७  
 खातच्छ ११, ३०९, ४७३,  
 खाभाषिकव्यत्याद ६४१  
 खाभाषिकविगम ६४३  
 खाभाषिकसंबन्ध ४३६  
 खारम्भकान्यवसन्निवेश १०१  
 खोत्पत्तिहेतु-पदार्थध्वंस ३८९ (१०)  
 ह  
 हर्षविषादाद्यनेकविवर्तितमकभात्मन् १३५  
 हर्षविषादाद्यनेकविवर्तितमकचेतन्य २६०  
 हर्ष-शोक-भय-कुरुगौदासीन्याद्यनेका-  
 कारविवर्तितमकचेतनास्वरूप ४१७  
 हिंसाविधायक ७३१  
 हिंसाविरति-दानचेतस्य ७६०  
 हिंसाविरमणादि ७५५  
 हेतु ५५९, ५६८, ५९०  
 हेतुत्रय ७५९  
 हेतु-त्रैलक्ष्य ५९२  
 हेतुधर्मानुमान ५९३  
 हेतुवाद ६५०  
 हेतुविचय ७३५  
 हेलाभास ५५८, ६७१, ७३३  
 हेलाभासत्व ७२४

९

## \*सन्मतिटीकागताः केचिद् विशिष्टाः शब्दाः ।

अङ्गुल्यप ५३-२०  
 अञ्जनादि-स्यपाकरण १४४-२७  
 अयःशालाका २५२-२०  
 अरघट्टघटीयम् ७३५-२  
 अरणितः ५०-१५  
 अष्टापदनग ६१४-१  
 आढकप्राहिन् २८४-६  
 आदर्श ३७-२३  
 आमलकीफल ११२-११  
 आम्रबकुलादि ४२७-२  
 आम्रास ४८९-१९  
 आर्य २३६-१०  
 आलदान ६०५-२५  
 ऊर्णनाभ ७१५-२३, ७१७-९  
 एक-चित्रपटज्ञान ७०७-३७  
 एकाभिप्रायनियमितस्थपत्यादि-ऐकमत्य १३१-१४  
 कंसपात्री १०७-२१  
 कमण्डलुट्टिकादिलिङ्गवारिन् ७५०-२५  
 करियुथादि ५३-२०  
 कर्क ४४-३२ (३),  
 कलिमार्यादि २३६-१० (१)  
 कल्पनारचित २१६-१५  
 कल्पनाश्लिपिनिरचितल ४२८-११  
 काकतालीयन्याय ५७-३९  
 काकदन्तपरीक्षा १६९-११, १७०-२४, १७१-५  
 काकभक्षित १३५-२८  
 काचकूपिकान्तर्गत ५४१-५  
 कामलादि-दोष ३-२१, १७-२१, ५४५-१५  
 किंशुक १२-१५  
 कुवलाफलकविल्वादि ६७५-८ (३)  
 कृतिबोदय ५१०-६  
 कृत्योत्थापन १३-१६  
 केशोण्डुक १२-२१, १११-७, ११२-२, ३६१-२८  
 केवोन्वुक ४८५-३५, ५१०-१५, ५४८-९, ५४९-२८, ५७३-  
 १२, ५८९-१

कोद्वन्वीज २८२-२९, २८३-१, ३३४-२४  
 कोद्वान्दुर २३९-८  
 कण्डमुण्डादि ५१४-१५  
 खलबिलायन्तर्गतनीजादि ७१३-१८ (१०)  
 चक्षुःश्रवण भुजङ्ग ५७-४  
 गजज्ञान ११-३४  
 गङ्गी २३८-७, ४९७-१० (५) ६८९, ११  
 गीतादिविषया १६-२  
 गीर्वाणनाथ ६३६-२५  
 गृधराज ५६-१०, ५३६-२७  
 गोत्रामन्त्रण ६०५-११  
 गोपालघटिका ५०-१५, ५८-३५, १२०-१३  
 चक्रवर्तिन् २५९-२७  
 चतुर्थरसादि ७४९-३०  
 चन्द्रग्रहण ५०७-२९, ५०८-२  
 चन्द्रापीड ६९४-२  
 चातुर्वर्ष्यश्रमणसंघ ७५४-२७  
 चित्रगतरूपबुद्धि १६-३  
 चित्रज्ञान २४१-१४  
 जाति ११२-१७  
 जीर्णकूपप्रासादादि ३१-२३  
 जीर्णप्रासादादि १२५-४  
 ज्वराविशमन ४९७-११  
 तन्तुलमत्स्य ७५३-२१  
 त्रैवर्णिक ४२-३९, ४३, ९  
 दीर्घशङ्कुली २४७-१८  
 दैनरक-किंशुक १२-३५  
 प्रविड २३६-१०  
 धूपघटिका ११६-१८  
 नड्डलोदक ४७५-९ (४)  
 नराधिप ६२४-५  
 नालिकेरद्वीपनासिन् ७२-१२, ४३९-१२, ५६१-९  
 निम्बादि ६१-३४, ६४-१४  
 नीलकाच ३७-२३  
 परयोचित् ५२४-१  
 पादप्रसारिका ५६८-२३, (१२)  
 पादरोग ४७५-९ (४)  
 पाशारज्जु ७४८-१९

\*परिच्छिष्टस्मिन् स्थूला अष्टाः पृष्ठाङ्गं सूचयन्ति, सूक्ष्मा  
 अष्टाः पङ्क्त्यङ्गं सूचयन्ति, कोष्ठकान्तर्गता अष्टाश्च टिप्पण्यङ्गं  
 सूचयन्ति ॥

## ९ - सम्मतिटीकागताः केचिद् विशिष्टाः शब्दाः ।

पिच्छिकादि ७४९-७  
 पिण्डछर्जर ७१२-१९  
 प्रजापति ७१७-१४ (६)  
 प्राकृतशैली २७२-५  
 प्रासुकोदक ७४९-३०  
 बकुलोत्पल २१८-२१  
 मग्न ६९७-२५  
 भरण्यादय ५१०-९  
 भरतेश्वरप्रभृति ७४८-३७  
 भित्तिचित्र ३-३३  
 मण्यादि ५०-१५  
 मतङ्ग ६९७-२५  
 मन्त्राविष्टकुमारिका ६४-१  
 मरुजङ्गलादि ५२३-१५  
 मरुदेवीस्वामिनी ७५४-११  
 मलयगिरिशिखर ३२०-१५  
 महाप्रासादादिकरण १००-२१, १३१-१४  
 महाश्रिता २१६-१५  
 महासम्मत् ६९४-३ (३)  
 मातृविवाहोचितपारशीकदेश ७१२-१९  
 मूषिकालर्कविषविकार १४७-२७  
 मेरुमस्तक ७५५-१  
 यवाङ्कुर ३५-८  
 रथ्यापुरुष ४५-३४, ४६-१०, ४८, ४  
 राजकीय ३१९-५  
 राजन् २५९-२७  
 रोहिण्युदय ५१०-६  
 लतात्मक-आम्र २६६-२२  
 वज्रकृष्णभनाराचसंहनन ६२२-२४  
 बलातैल ३६-२८  
 बाहीक ३७-१०, ६६४-१२, ६७४-७,  
 विट ५२-१०  
 विन्ध्य २३-४, ६२४-१३, ६९५, १९  
 विनिष्टमास्त्रसंस्कृतचक्षुस् (५-१)

विविद्योषधोपयोगानामाक्षिनेर्मैत्र्य ९-१३  
 विबन्धूनादि ७४९-२०  
 वीणा १६-९  
 वीरणादि ४३७-३  
 वेदव्याख्यान ३९-२७  
 वैद्योपदेश १५०-३१  
 नाय ६९७-२१  
 शकटोदय ५१०-१०  
 शकेन्द्रादि ६३६-२५  
 शङ्ख २५९-२७  
 शङ्खचक्रवर्तिन् ६२४-३(४)  
 शालिबीज ३५-८, २३९-८, २८२-१८, २८३-१, ३०१, ३२,  
 ३३४-२२  
 शिंशापा ३-४  
 शिख्यकलादि ५१-९  
 श्रीहर्ष २५९-२७  
 शृण्णगरी २२२-१३  
 समुद्रोदकपलपरिमाण २२-३२  
 सम्प्रात्यारि ५३६-२७  
 सरित्तटपर्यस्तगुडशकट १७२-१३  
 सहा २३-४  
 सार्वभौमनरपति १३२-३३  
 सिद्धान्तानभिज्ञ ६३३-२  
 सुवर्णकार १४९-३४  
 सूत्रधारैकबुद्धिनिर्मितल १३२-९६  
 सेतुबन्ध ३७७-१९  
 सोमिल ६२५-१०  
 स्थपति १००-२१, १३१-१४, ५३९-३(१)  
 हिमवत् ६९४-८, ६९५-२०  
 हिमवद्विन्ध्य ११४-२५, २४२-१, ६२९-२०, ६४२-१६  
 ६८१-७  
 हिमाचलादि १७६-७, २५०-१९  
 हिरण्यगर्भ ४०-३३, ४२-५, ४६-२३  
 होढदान ६०५-१७(१), ६०६-८

टीकायामनिर्दिष्टस्थलानामवतरणानां सम्पादकैः संशोधितानि स्थलानि ।

अमृतबिन्दु-उपनिषद् ३७  
 आनाराहसूत्र ६३  
 आवश्यकसूत्र ७५०  
 आनरयकसूत्रनिर्युक्ति ४७८, ५४५, ७४६, ७५४, ७५६, ७५७  
 अग्नेव ३२, १७३  
 ओघनिर्युक्ति ७५५  
 कृष्णसुत ७५२  
 गोडपादकारिका २७३  
 चतुर्थद्वान्त्रिका २९  
 जीनविचार ६५४  
 जीनाजीनाभिगमसूत्र ६२९  
 जैमिनीयमीमांसासूत्र ४८, ७९, ८०, ९२, ७३१, ७४४.  
 \*तत्त्वसंग्रहकारिका ६, ११, १८, १९  
 तत्त्वसंग्रहकारिका १८१, १८५, १८६, २०३, २०३, २०६, २०७  
 २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१४, २१५, २१६, २२४,  
 २२५, २२६, २२७, २२९, २३२, २८०, ३८३, ३०१, ३०२  
 तद्वार्याभियमसूत्र ५९, ८०, ९३, ४१२, ५५२, ५५३, ५५५,  
 ६३६, ६५१, ६५६, ७३२, ७३५, ७३७, ७४७  
 \*ध्यानलोक १३३  
 न्यायदर्शनसूत्र ९७, ११९, १७७, १७८, ४७७, ५१८, ५२२,  
 ५३१, ५६०, ५७८, ६६९, ६८३, ७०४, ७२०  
 न्यायबिन्दु ३, ३५२, ५०८, ५९२  
 न्यायवार्तिक ८०, ९९, १००, १०१, १०६, ११४, १३२, १७८,  
 २००, २०१, २०४, ६६८  
 पञ्चबहु ७४९, ७५१  
 पाणिनीयसूत्र १९०, २२५, ४०६, ४२१  
 पातञ्जलसूत्र ६९, १३३  
 प्रज्ञापनासूत्र ६०८  
 प्रथमरतिप्रकरण ६४, ७४९  
 प्रशस्तपादभाष्य ६६१, ६८५

[ परिशिष्टेऽस्मिन् \*एतच्चिह्नानि स्थलानि परिशिष्टसमये  
 लब्धानि ॥ ]

प्रशस्तपादभाष्यकन्दली ७००, ७०८  
 नृददारण्यक उपनिषद् ३२, २७३, २७९, ७३१  
 भगवतीसूत्र ६२५, ६३१, ६३५  
 भगवद्गीता ९८, १५०, ३१०  
 भामहार्ककार १८६  
 महाभारत-आदिपर्व १५३, ७११  
 \*याज्ञवल्क्यस्मृति ४५९, ४७५  
 वाक्यपरीय ७०, १७७, २२२, ३१५, ३१६, ३७९, ३८०, ४३५,  
 ४८९, ५३८  
 नारदस्यायनन्यायभाष्य १२०, १२६, १६१, १७८, ५२१, ५२३,  
 ५४१, ५६२, ५६३, ७२१  
 \*बिभृक्षिमात्रतासिद्धि १०५, ३७६  
 विशेषावश्यकभाष्य ६०८  
 वैशेषिकदर्शनसूत्र १००, १०३, १०५, ११३, १४०, ४५२, ६३३,  
 ६४७, ६५६, ६५८, ६६९, ६७२, ६८६, ७०४, ७३१  
 व्याकरणमहाभाष्य १७७  
 शाबरभाष्य ७१, ५०५, ५७८, ५८०  
 श्लोकार्थिक ४, ५, ६, ७, ८, १०, १६, १८, १९, २२, २३, २४,  
 ३१, ३५, ३६, ३८, ३९, ४०, ४१, ४५, ४६, ४७, ४९, ५१, ५३,  
 ५४, ५५, ५६, ६०, ८८, ९४, १००, १३७, १६९, १८६, १८७  
 १९०, १९१, १९३, १९४, १९५, १९६, २०१, २२३, २४०,  
 २७६, २७८, ३१९, ३२१, ३४९, ३५१, ३६९, ३७७, ४०७,  
 ४३५, ४३९, ४९६, ५०५, ५३५, ५३७, ५६४, ५७४, ५७५,  
 ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८८, ६९६, ७३८,  
 ७८०, ७४१, ७४२, ७४३  
 श्वेताश्वतर-उपनिषद् ४६, ९८, ३१०  
 सन्मतवर्क २९, २८५, ६३८  
 सांख्यकारिका २८१, ३८२, २८४, २९६, ३०७, ३०९, ४१७,  
 ५७२, ७३३  
 स्थानाहसूत्र ९३, ४५३  
 स्वयम्भूस्वोत्र ७५०  
 \*हेतुबिन्दु (हस्तलिखित) ३२९  
 हेतुसुख (अनुपलब्ध) २१७, २२८



सन्मत्यादर्शगतानि सम्पादकीयानि च टिप्पणानि ।



आ

भा० टिप्पण २-३, ४, ५; ३-१२

ग

गु० टि० २-२; ३-८; ४-४; ९-२१; १०-४, ५; १२-४, ५; १५-६; १७-१, २; १९-५; २०-४, ८; २१-६; २२-६; २४-१; २८-४; ३१-७; ३३-१, ७; ३७-२; ४२-६; ४८-६.

घ

बृ० टि० ३२४-८, ९, १५; ३२५-८, १०, १५, १८, २०, २३; ३२६-१, ३, ६, ७, ८, १६; ३२७-४, ५, ७, ११; ३२८-१; ४००-५, ७, ११; ४०१-२; ४०२-७, १०, १५; ४०३-४, ८, १०; ४०४-६, ७, १६; ४०५-५, ९; ४०६-५; ४१०-८, ११; ४१२-६; ४१४-३; ४१५-३; ४१९-८; ४२०-१२; ४२१-४, ६, ७; ४२२-१, ३; ४२३-१, ५, १०, १६, १७; ४२४-१, २, ६, ८, ९, १५, १६, १७, १८; ४२६-२, ४, १४, १५; ४२७-६; ४३०-७, ८; ४३१-१; ४३२-५, ८, १०, ११, १३; ४३३-२, ४, ८, ९; ४३४-६, ८, ११, १२; ४३५-६; ४३६-४, ७, ११, १३, १४; ४३७-५; ४३८-१, ३; ४३९-३, ३, १३, १५, १६, १७; ४४०-७, ८, ९, ११; ४४१-६; ४४५-२; ४४७-१, २, ४; ४४८-१; ४६६-२, ६; ४६७-५, ६; ४६८-१, ४, ६, ८; ४७१-६, ८; ४७२-२, ४, ६, ११; ४७४-२, ५; ४७६-३; ४७७-२, १०, ११, १३; ४७९-१; ४८०-८, ४८१-१; ४८२-१, २, ३; ४८३-१, २, ३, ४, १२; ४८४-१, २, ५, ८, १०, ११; ४८५-१, ३, ७, ८, ९, १०; ४८६-३, ४, ५, ८, ९, १२, १४, १५; ४८७-१, २, ४; ४८८-२, ५; ४९०-३, ५; ४९३-२, ८, १०, १२, १३; ४९४-५; ४९६-१, २, ३, ७, ८; ४९७-२, ७, ९, १३; ४९८-१, २, ४, ५; ५००-७, ९; ५०१-१, २, ४, ५, ८; ५०२-५, ६, ७, ९, १२; ५०३-२, ३, ७; ५०४-१, २, १३; ५०५-३, ४, ५, १०; ५०६-४, ५, ६, ७, ८; ५०७-१, २, ३, ५, ७, १०, ११; ५०८-३, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १९; ५०९-२, ३, ४, ७, ८, १०, ११; ५१०-४; ५१२-२, ३, ४, ५, ६; ५१२-४, ५, ६, ८, १०, १३, १४, १७, १८, २०; ५१३-१, ६, ८, ९, ११, १३, १५; ५१४-१, ३, ९, १०, ११, १७; ५१५-२, ७, ११, ५१६-७; ५१७-३, ७, ११, १४, १५; ५१८-२, ३; ५१९-६, ९, १०, ११, १२, १३; ५२०-२, ५; ५२१-२, ३; ५२२-१, ३, ४, ८, ९; ५२३-१, २, ३, ४, ५, ९, १०, ११; १=९ सं० प०

५२४-३, ६, ७, १०; ५२५-३; ५२६-१, ७, ९; ५२७-२, ९, १२, १३, १४; ५२८-१, २, ३, ४, ७, १०; ५२९-३, ८, ९, १०, १२, १४; ५३१-६; ५३४-३; ५३७-७, १२; ५३८-१, ५, ७, ९, १०; ५३९-१, ७, ८, १२, १३; ५४०-१, २; ५४१-४, ५, ७, ८; ५४२-२, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १३, १४; ५४३-१, २, ५, ६, ७, ९, १०, १४, १५, १६; ५४४-१, ५, ९, १०, १२; ५४५-६, ७, ८, ९, १०, ११, १३; ५४६-२, १२, १३; ५४७-१, ३, ४, ७, ९, १२, १५, १६, १७; ५४८-१, २, ४, ५, ८, ९; ५४९-४, ५, ७, ९, १०, ११, १२, १४; ५५०-३, ४, ७, ९, ५५३-१, ७, १२; ५५४-८; ५५५-१, ४, १०, १३; ५५८-६, ७, ९, ११, १३; ५५९-२, ३; ५६०-५; ५६१-३, ९; ५६२-६, ७; ५६३-२, ४, १०, १२, १४, १५; ५६४-१, २, ५; ५६५-१, २, ३, ८, १०, ११, १२, १४, १७, १८, २०; ५६६-५, ६, ७; ५६७-१, २, ५, ८, १२, १६; ५६९-२, ६; ५७०-१; ५७१-३; ५७३-३, ७; ५७४-८, १३; ५७७-६; ५७८-१, १२, १४; ५८०-२, ५; ५८१-३, ५, ९, ११, १३; ५८२-४, ६; ५८३-३, ९; ५८४-१०, ११; ५८५-२, ३, ४, ७; ५८७-२, ९; ५८८-६, १५, १७; ५९०-४, ५, ६, ७; ५९१-२, ३, ११, १२, १३; ५९२-६, १०; ५९३-२, ४, ७, ८, १०, ११, १३; ५९४-३; ५९५-४; ५९६-२; ६०५-५, ६, ७; ६०६-१, ३; ६०९-५; ६१०-८, १४, ६११-३; ६१२-४, ९, ६१४-१४, १५; ६१५-३, ४, ६, ७; ६३९-३, ४, ५; ६४०-३; ६४३-१, २, ३, ५, ७; ७२७-१.

म

भा० टिप्पण २-२; ७, ९; ३-२, १०; ७-५; ८-२, ७, ८; ३३-७; ४२-६; ४८-६, १०; ६४-५; ७२-६; ९८-३; ३९४-८; ३९५-८, १३, १८; ३९७-४, १४; ४०१-२; ४२२-३; ४२३-१९.

म

भा० टिप्पण १८-१०; ४८-५; ६४-५; ७०-५; ७२-६; ९८-३, ४; १०२-४, ५; ३९४-१५; ३९५-८, ९, १०, १८, २०, २३; ३९६-१, ६, १६; ३९७-४, ५, ७, १४, १५; ४००-११; ४०१-२; ४०२-१०, ११, १५; ४०३-४, ८, १०; ४०४-५, ६, ८, ११; ४०५-५, ९; ४०६-५; ४१०-८, ११; ४१२-६; ४१४-८, १२; ४१५-३, ४, ५; ४१७-८; ४१९-८, १२; ४२०-२, ६, ७, १२, १३, १५; ४२१-४, ६, ७; ४२२-१, ३; ४२३-१, २, ३, ५, ७, ९, १०, ११, १२, १३,

११ - सन्मत्यादर्शगतानि सम्पादकीयानि च टिप्पणानि ।

१४, १६, १७, १९; ४२४-५, ८, १४; ४२५-६, ८, ९, १५,  
१६, १७, १८; ४२६-२, ४, ४२७-१६; ४२८-९; ४२९-३;  
४३०-७, ८; ४३१-१, २, ३; ४३२-५, ८, १०, ११, १३;  
४३३-२, ४, ८, ९; ४३४-८, ११, १२

ल

ल० टि० ४०६-५; ४१०-८, ११; ४१२-६; ४१४-२; ४१५-  
२; ४१९-८; ४२०-१२, १३; ४२२-४, ६, ७; ४२२-१,  
३; ४२३-१, ५, १०, १६; ४२४-१३; ४२५-६, ८, ९, १५,  
१६, १७, १८; ४२६-२, ४, १४, १५; ४२७-६; ४३०-७;  
४३१-१; ४३२-५, ८, १०, ११; ४३३-३, ६, ८, ११, १२;  
४३५-६; ४३७-५; ४३८-१, ३, ४३९-१, ३, १२, १५,  
१६, १७; ४४०-७, ८, ९; ४४१-६; ४४५-२; ४४७-१, २,  
४; ४४८-१; ४६६-२, ६; ४६७-५, ६, ९; ४६८-१, ४, ६;  
४७१-६, ८; ४७२-२, ४, ६, ११, १२; ४७४-२, ५; ४७६-  
२, ९; ४७७-२, १०, ११, १३; ४७९-१; ४८१-१, २;  
४८२-१, २, ३; ४८३-१, २, ३, ४, १२, ४८४-१, ३, ५, ८,  
१०, ११, ४८५-१, २, ७, ८, ९, १०; ४८६-३, ४, ५, ८, ९,  
१३, १४, १५; ४८७-१, २, ३, ४; ४८८-२, ५; ४८९-५;  
५००-७, ९; ५०१-१, २, ४, ५; ५०२-५, ६, ७, ९, १२;  
५०३-२, ३, ७; ५०४-१, २; ५०५-३, ४, ५, १०; ५०६-४,  
५, ६, ७, ८; ५०७-१, ३, ७, १०, ११; ५०८-७, ९, १०, ११,  
१२, १३, १५, १९; ५०९-२, ३, ४, ७, ८, १०, ११, ५१०-  
७; ५११-२, ६; ५१२-४, ५, ६, १०, १३, १४, १७, १८, २०;  
५१३-१, ६, ८, ९, ११, १२, १५; ५१४-१, १, ९, १०, ११,  
१७, ५१५-२, ७, ११, ५१६-७, ५१७-३, ७, ११, १४, १५,  
५१८-३, ३; ५१९-६, ९, १०, ११, १२, १३; ५२१-२;  
५२२-१, ३, ४, ८, ९, ५२३-१, २, ३, ४, ५, १०, ११;  
५२४-३, ५२५-३; ५२६-१, ७, ९; ५२७-३, ९, १२, १३,  
१४; ५२८-१, २, ३, ४, ७, १०; ५२९-२, ८, ९, १०, १२,  
१४; ५३१-६; ५३३-३, ५३४-७; ५३५-७; ५३६-१, ५, ७, ९,  
१०; ५३९-१, ७, ८, १३, १३; ५४०-१, २, ४; ५४१-४,

५, ७, ८; ५४२-२, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १३, १४; ५४३-  
१, २, ५, ६, ७, ९, १०, ११, १२, १५, १६; ५४४-१, ५, १०,  
१२; ५४५-६, ७, ८, ९, १०, ११, १४, ५४६-२, १२, १३;  
५४७-१, ३, ४, ७, ९, १२, १७; ५४८-२, ४, ५, ८, ९, १०;  
५४९-४, ५, ७, ९, १०, ११, १२, १४, ५५०-३, ४, ९;  
५५३-१, ७, १२; ५५८-६, ७, ९, १३; ५६०-५; ५६१-३,  
९; ५६२-६, ७; ५६६-५, ६, ५६७-१, २, ५६९-२, ६;  
५७०-१, ५७३-३, ५७८-१, १२; ५८०-५; ५८१-३, ५,  
९, ११; ५८३-९; ५८८-१५, १७; ५९१-२, ३, १३;  
५९४-२, ५९७-१, ६०५-४, ५, ६१४-१४, १५; ६१५-  
३, ४, ६, ७.

ष

षि० टिप्पण २५-५; २७-३; १०६-२, ६, १०७-८; १७८-  
३.

स

संपादक टिप्पण ७ १०, २-१२; १२-६; १६-९; १९-३, ४;  
२०-३, २२-४; २४-४, ५; २८-३; २९-५; ३०-५, ११,  
१४; ३१-२, ३, ४, ५, ८; ३२-३, ५, ९; ३३-८; ३९-१;  
४१-१, ४४-३; ४६-१; ५२-७, ७०-५, ८७-१, ११०-  
७; ११४-२; ११८-४, ११९-९, १२०-१, १४२-२;  
१४३-७, ९; १६९-३; १७७-११, १७९-२, २०७-३, ४;  
२२१-७, २४८-१; २५१-३; २७६-१४, २८०-६;  
३३८-१५, १९, ३४२-२१, ३४३-७; ३४५-५; ३४९-१;  
३५७-३८; ३७०-२१; ३९६-४; ४००-९, ४१६-१, २;  
४२१-३; ४२३-६; ४३२-४, ९; ४३३-३, ४२८-६;  
५०२-१; ५१२-१४; ५२९-१३; ५४५-५, ५५९-२;  
५६१-१७; ५७२-३, ५७३-४; ५८८-७, ५९१-८, ७, ८;  
५९२-३, ६, ५९३-१४, १५; ६०६-१, ३; ६०८-७;  
६११-५; ६३४-५; ७०५-१, ७०७-४, ७१२-१;  
७२९-२, ७३२-३; ७३३-७, ९; ७३६-३, ७५४-१;  
७५६-६, ७६१-१४.

## सन्मतिटिप्पणीनिर्दिष्टा ग्रन्थकृतो ग्रन्थाश्च ।

अ

अकलङ्क ५९५-१; ६३१-३२-४; ६३४-४.  
 अकलङ्कीय ६३१-३३-४.  
 अक्षपाद ७३३-२.  
 अध्ययन ३३२-२१.  
 अनन्तकीर्य ५६२-७.  
 अनीश्वरवादिन् ५९७-२.  
 अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग २७१-५.  
 अनुयोगद्वारवृत्ति ७५७-२.  
 अनुयोगद्वारसूत्र ४०६-१; ४४१-४२-१०; ५५९-६०-१०.  
 अनेकान्तजयपताका १७७-४, २४२-३३; २४८-१९; २६०-९, १०; ३८०-१०, १३; ४३१-६; ५०३-७; ५६४-९.  
 अनेकान्तजयपताकाटीका (लिखिता) २४३-२०, २१; २४६-३६; २४८-१९; २६०-९, १०; ५०३-७; ५१०-१.  
 अन्तकृद्दशाङ्ग २७१-५.  
 अन्नंभट्टमिताक्षरा २७१-४.  
 अपोहसिद्धि २४३-२.  
 अपोहसिद्धिप्रकरण २६०-११, १२.  
 अभयदेवसूरि ५९७-६०४-२; ६२७-१.  
 अभिधानचिन्तामणि ५३६-९; ५३२-३४-२.  
 अभिधानप्रदीपिका ३५३-११.  
 अमरकोश २२६-९; ५३६-९.  
 अमृतचन्द्र ६३१-३२-४.  
 अमृतचन्द्रीयव्याख्या ६३१-३२-४.  
 अर्हतप्रवचनहृदय ६३४-४.  
 अविद्धकूर्ण १००-४, ३३२-२१; ५८४-५; ६८२-४.  
 अष्टकप्रकरण ७४९-२.  
 अष्टशती २६६-१०; ३३३-११; ३४७-१; ४६५-११;  
 ४२७-१, ४८७-५; ५९५-१, ५९७-६०४-२; ६४४-३.  
 अष्टसहस्री २११-६; २४३-२०; २५७-२७; २६६-१०;  
 ३३२-२२; ३३३-११; ३४७-१; ३५३-१, ३७६-१५;  
 ३८३-९, १०, ११, १२, ३८८-९; ४०१-२; ४१४-६;  
 ४१७-१; ४२७-१; ४२८-५, ६; ४६०-७; ४६५-११;  
 ४७०-२; ४७८-६; ४८०-३, ४; ४८५-१२; ४८७-५;  
 ५१५-१; ५२५-१, २; ५५२-४; ५९५-१; ५२७-६०४-२; ६४४-३; ६४५-३;  
 ७३८-१.  
 अष्टसहस्रीटीका (यशोविजयीया लिखिता) २११-६.

आ

आचाराङ्गसूत्र २७१-५; २७३-१; ६५२-१.  
 आचाराङ्गटीका ७५७-२.  
 आदिपर्वन् ७११-२.  
 आतपरीक्षा ५६२-७०-७.  
 आतमीमांसा ३३३-११; ३४७-१; ४१७-१; ४२८-५, ६;  
 ४४२-२; ४६५-११; ४७०-१; ५९५-१; ६४४-३;  
 ७०५-४; ७०६-४; ७१५-१.  
 आर्यसमितीय ४५८-६.  
 आवश्यकनिर्युक्ति ४७८-२; ५४०-३; ६०८-७; ७५४-३;  
 ७५६-४; ७५७-१, २.  
 आवश्यकसूत्र ७३४-१; ७५०-२.  
 आवश्यकहारिमन्त्रीटीका २७२-८; ४७८-२.  
 आश्वमेधिकपर्वन् ४९१-३.

ई

ईश्वरकृष्ण ५३३-१; ५५९-१०.  
 ईश्वरवादिन् ५९७-२.

उ

उत्तराध्ययनसूत्र ६३१-४; ६७१-७;  
 उत्तराध्ययनपाहअटीका ७४७-१; ७५१-६.  
 उद्योत ६५२-१.  
 उद्योतकर ३३२-११; ६५९-८; ६६४-१; ६६८-४;  
 ७१६-८; ७१७-२.  
 उपवर्ष ४३१-७.  
 उपाध्याययशोविजय २६०-९; २६१-१.  
 उपासकदशाङ्ग २७१-५.  
 उमास्वाति ६३१-४.  
 उल्लूकमहाषि ६५६-३.

ओ

ओषनिर्युक्ति ७५५-२, ३.

औ

औपनिषद् ५९७-२.  
 औपपातिकसूत्र ६०८-७.

क

कठोपनिषद् २७३-७.  
 कणाद ६५६-३; ७३३-१.  
 कन्दली ४६९-६; ५३८-१३; ५५९-१०.  
 (जुओ प्र. पा. भा. कन्दली)

९२

१२ - सन्मतिटिप्पणीनिर्दिष्टा ग्रन्थकृतो ग्रन्थाश्च ।

कपयुज ७५२-२.  
कमलगील २०४-१९; ५३३-२; ५६९-७; ६६१-२.  
कालत्रय्याकरण २७१-४.  
कापिल ६४४-३.  
काशिका १७२-२; २२६-९; ४०६-३.  
कीर्ति ४८७-५; ५५८-१४; ५६९-३;  
( जुओ धर्मकीर्ति )  
कुन्दकुन्द ६३१-४.  
कुमारसम्भव ४९१-३.  
कुमारिल १८५-१४; १९९-१९; २०४-१९; ५३३-२;  
५५९-१०; ५८०-१.  
कुमारिलभट्ट ६-५; ५७४-२;  
केवलज्ञानकेवलदर्शनोपयोगचर्चा ५९७ थी ६०४-२.  
कैयट ६५२-१.  
कौमारिल ५७८-१४.

ग

गणरत्नमहोदधि १७२-२.  
गुणरत्नसूरी ५०५-६; ७१०-५.  
गोसाचार्य ५६५-३.  
गोशालकचरित ७१४-४.  
गोडपादकारिका २७३-१, ५, ८; २७९-१, ५; ३८३-९.  
गौतम ६५९-८.  
ग्रन्थकार ( सि. दि. ) ४२२-१.

घ

घनरत्नान्तमत १९३-२.  
घनशुभिन ६५२-१.  
चरकसंहिता ५५९-१०.  
चरकानार्य ५५९-१०.  
चान्द्रव्याकरण १७९-३; २७१-४; ६५२-१.  
चार्वाक ५९७-२.  
चार्वाकमत ५५४-१.  
चित्तसुखी ५५८-१४.

ज

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ६३५-१.  
जयन्तमत ५२१-४; ५७४-१; ५७८-१४; ६५९-८;  
७०६-५.  
जिनभद्रगणिसमाश्रमण ५९७ थी ६०४-२; ६५३-३.  
जीवाजीवाभिमगसूत्र ६३५-१; ६३९-१.  
जैन ५४०-३; ५४३-१३; ५९७-२; ६४४-३.  
जैनतर्कपरिभाषा ४८०-१.  
जैनताकिंक ५५९-१०.  
जैनवैदस्त्युद्यादिशास्त्रान्तर ३०-१.  
जैनशास्त्र ३०-१३.

जैनागम ५५९-१०.  
जैनाचार्य ५५९-१०.  
जैनेन्द्रव्याकरण ४६१-२; ६५२-१.  
जैसिनि ५३४-९.  
जैमिनीय ५४०-३; ५९७-२.  
ज्ञातधर्मकथासूत्र ९३-३; २७१-५.  
ज्ञानचिन्दु ५५३-१३; ५९७ थी ६०४-२; ६०९-१, ६;  
६१०-९, ११; ६१७-२; ६१८-६; ६१९-१.  
ज्ञानसार ७४९-२.  
ज्ञानेश्वरस्वती ६५२-१.

ट

टीकाकृत ३१५-२.

ठ

तत्त्वबोधिनी ६५२-१.

तत्त्वसंग्रहकारिका १००-४; १७३-९; १७४-१, ८, १४;  
१७५-३, ४; १७६-५, ६, ८, ९; १७७-२, ५; १७८-८, ९,  
१०; १७९-५, ८; १८०-३, ६, ८, ११; १८१-२; १८२-४;  
१८३-३, ८, १०, १७, १८, १९; १८४-१, १०, १२;  
१८५-४, ७, ८, १५, १६; १८६-१, २, ३, ४, ५, ६, ९, १०,  
११, १२; १८७-३, ६, ९, १२, १४, १५, १८, १९, २१, २२;  
१८८-४, ७, ९, १२, १५, १८; १८९-१, ३, ५, १२, १६, १८;  
१९०-३, ३, ८, १०, १३, १५, १८; १९१-१, ३, ५, १०, ११,  
१३, १६; १९२-१, ३, ५, ७, १०, १२, १४; १९३-१, ४, ५,  
७, १०; १९४-६, ३, ५, ८; १९५-१०, १६, १८, २३;  
१९६-१, ८, १७; १९७-३, ७, ८, १४; १९८-३, ४, ५, ७,  
१५; १९९-१, ८, १३, १६; २००-१, १२; २०१-१, ५, ६,  
११, १२; २०२-१, ५, ९, १८; २०३-१, ७, १६, २७; २०४-  
४, ८, ९, १४, २०, २०५-१, ४, ५, १०, १७, २०६-३, १६,  
२४, ३०, ३२; २०७-७, ८, १३, १८, २६; २०८-८, ९, १५,  
२४, २६; २१०-१०, १२, १३, १६, १८, २०; २११-३, १०,  
१४, १७; २१२-८, १६, १८, २२, २५; २१३-११, २०;  
२१४-७, १३, १७, २३, २४; २१५-७, १५; २१६-२, ६,  
१४, १७; २१७-३, ९, १२, १५; २१८-४, १०, ११, १६;  
२१९-१, १४, १५; २२०-२, ४, ६, ११, १३, १८; २२१-  
१, ८, १२, १५, १९; २२२-३, ५, १४, १७; २२३-१, ५, ८,  
१३, १८; २२४-१, १०, ११, १६, २०; २२५-३, ५, ११,  
१७, २१; २२६-१२, १४; २२७-१, १२, १६, २३; २२८-  
३, ७, ११, १८; २२९-३, ११, १५, २०; २३०-१, ८, १६;  
२०; २३१-६, ९, १२, १३, १६, १८, २०; २३२-३, १०;  
२३६-९; २३९-१४, १५, १७, १९, २०; २४३-२; २८२-  
१२, १६; २८३-२, ८, ९, १६; २९६-२, ४; २९७-१३;  
२९८-१, ६, १७, १९; २९९-१, ३, ६, ८; ३००-५; ३०१-  
११; ३०२-३, ६; ३०३-४, ९, ११, १४, १७; ३०४-६, ८,  
१०; ३०५-१४; ३०६-२, ५, ७, ९; ३०७-११; ३०८-४

१२ - सन्मतितिप्पणीनिर्दिष्टा ग्रन्थकृतो ग्रन्थाश्च ।

३३२-२१; ३३३-६; ३३७-२९, ३१, ३२; ३५८-२३;  
 ३७९-११; ३८१-२, ३, ४, ९, ११; ३८२-६, ९, १०, १२,  
 १३, १५; ३८३-५, ६; ३८४-१, २, ६, ११, १४; ३८५-  
 १७; ४३५-१, २; ४३७-७, ४८८-९; ४२७-५; ५३३-  
 २; ५३७-१, २; ५५९-१०; ५६९-७; ५७७-६, ७;  
 ५७९-१, २, ४; ५७६-१, ४, ६, ७, ८; ५७७-१, ३, ८;  
 ५७८-१४; ५७९-२, ३, ५; ५८०-३, ७, ८, ९; ५८१-  
 ६, ८, ९, १०; ५८२-३, ७, ८, १०, ११; ५८३-२, ४, ६,  
 ७; ५८४-२, ४, ५, ८; ५८५-११; ५८६-१०, १३, १५;  
 ५८७-१, ५; ५९०-२; ६४४-३; ६५७-४, ५; ६५८-  
 ५, ६, ७, ८, ९, ६५९-२, ६, ७, १०, ११; ६६०-१, ३, ४, ६,  
 ७, १०, १३; ६६१-१, ४, ५, ६; ६६२-२, ४, १०; ६६३-  
 १, ३, ४, ५, ६, ७, ६६४-२, ३, ६, ७, ८; ६६५-४, ५, ६;  
 ६६६-१, ३, ४, ५; ६६७-२, ४; ६६८-२, ५, ६; ६६९-  
 २, ५; ६७०-१, २, ५; ६७१-२, ३; ६७२-२, ४, ६; ६७३-१,  
 ३, ६, ७; ६७४-५, ६, ७, ८, ९; ६७५-२, ४; ६७६-१;  
 ६७७-१, २, ३, ४; ६७८-१, २, ४, ६; ६७९-२, ४, ६, ८;  
 ६८०-१, ४, ८, ९; ६८१-१, २, ५; ६८२-२, ४, ५, ६, ६८३-  
 १, २, ३; ६८५-१, ३, ४, ७; ६८६-५, ७; ६८७-१, २, ३, ४,  
 ६, ७; ६८८-१, २, ३, ४, ६, ९, १३; ६९०-१, ६, ८;  
 ६९१-१, ३; ६९७-१; ६९८-१, ३, ४; ६९९-२, ४;  
 ७००-१, ३, ५, ६, ७, ८; ७०१-४, ६, ७; ७०२-१, ३, ४, ६,  
 ७, ८, ९; ७०३-३, ४, ५, ७, ८; ७०४-३; ७११-६, ८;  
 ७१२-२, ३, ६; ७१३-१, ३, ४, ५, ८, ९, ११; ७१४-१, ३,  
 ३; ७१५-२, ६, ८; ७१६-१, २, ३, ५, ६; ७१७-२, ३, ४, ५, ६.  
 तत्त्वसंग्रहप्रज्ञिका १७१-१; १७३-५; १७४-२, ५, १२, १५,  
 १७; १७५-६; १७६-३; १७७-८, १०; १७८-७; १७९-  
 २, ९; १८०-४, ५, १०; १८१-३, १०, ११, १२, १६, १७;  
 १८२-६, ८; १८४-२, ५, ९, ११, १५; १८५-१, २, ११,  
 १२; १८६-२, ११; १८७-४, ५, ८; १८८-१, ३, ६, ८, १०,  
 १३; १८९-७, १४; १९०-१४; १९१-५, ६, ७, ९, १४;  
 १९२-२, ८; १९३-२, ५; १९४-३, ४, १०, १६; १९५-  
 १३, १४; १९६-२, ६, ११, १६, १९, २०, २१; १९७-१,  
 ५१, १२, १३; १९८-३, ६, ८, १०, १२, १६, १८, २०;  
 १९९-१, १२, १९; २००-१, २, ३, ७, ९, ११; २०१-७, ९;  
 २०२-४, ६, ७, १०, १३; २०३-४, ५, ११, १४, २१; २०४-  
 १६; २०५-७; २०६-११, १९, २२; २०७-१, १४; २०८-  
 ३, १२, २५; २०९-६, १९; २१०-४, १७; २११-५, ६;  
 २१२-९; २१३-७, ८, २१, २२, २७; २१४-२०; २१५-६,  
 १८, २०; २१६-१२, १८; २१७-१, ४, ६, ८, १०, १२, १५;  
 २१८-१४, १५, २०, २१; २१९-३, ४, ८, १३, १६, १७,  
 १९; २२०-२, ९; २२१-३, १०, ११, १६; २२२-४, ९;  
 २२४-३, १०, १३; २२५-८, ९, १०, १२, १८; २२६-६,  
 ९, १०, १३; २२७-५; २२८-५, १२, १५; २२९-११)

२३०-४, ८, १२, १७, २२; २३१-१; २३२-४, १५, १९;  
 २३६-९; २८०-१३, १४, १५; २८१-७, ८, १०, ११, १२,  
 १३, १६, १७, १८; २८२-१, ३, ४, ५, ६, १३; २८३-५;  
 २८४-४, ६, ११; २९६-७, ८, ९, ११; २९७-२, ३, ६, ११,  
 १२; २९८-२, ४, ५, २३; २९९-४, ९; ३००-१, ७, ८, १०,  
 ११, १४, १५, १६, १७; ३०१-२, ४, ५, १२, १३, १४; ३०२-  
 ९, १२, १३, २१; ३०३-३, ५, ६, ७, ८, १३; ३०४-४, ५, ७,  
 ९; ३०५-२, ३, ११, १५, १६; ३०६-८; ३०७-२, ३, ४;  
 ३२४-२; ३२६-४; ३२७-२१; ३५८-२३; ३७९-११,  
 १२; ३८०-१, २, ३, ४, ६, १०; ३८१-५, ११, १३, १४, १५,  
 १७, १८; ३८२-२, ४, ७, १६; ३८३-१, ५, ८; ३८४-३,  
 १०, ११; ३८५-४, ५, ७, ८, ९, १०, १५, ४००-१०; ४२७-  
 ९; ४३५-२; ४६५-६; ४८०-३, ४८२-६; ५०५-९;  
 ५३३-३; ५३८-१३; ५५५-२; ५५८-१४, ५५९-५,  
 १०; ५७४-३; ५७६-१; ५७७-८; ५७८-११; ५८०-१,  
 २; ५८१-२, ४, ९, १०, ६५७-३, ६, ८, ९; ६५८-१, ४;  
 ६५९-१, ३; ६६०-५, ८, ९; ६६१-३, ७, ९; ६६२-३, ५,  
 ६, ७, ८, ६६३-२; ६६४-१, ४, ५, ९; ६६५-१, २; ६६७-  
 १, ३; ६६८-४, ७; ६६९-१, ३, ६; ६७०-३, ७; ६७१-१;  
 ६७२-३, ५, ६; ६७३-२, ४, ५, ६; ६७४-३; ६७५-१, ३;  
 ६७६-२, ३, ५, ६, ७, ८; ६७७-५; ६७८-३; ६७९-१, ५,  
 ७; ६८०-५, १०; ६८१-३, ४; ६८२-१, ३, ७, ८; ६८३-१,  
 २, ३, ४; ६८४-१; ६८५-५, ६, ८; ६८६-२, ६; ६८७-५  
 ६८८-४; ६९३-१, ५; ६९४-४, ६; ६९५-२; ६९६-१;  
 ६९९-१, ३, ५; ७००-४; ७०१-१, २, ५, ८, ७०२-२;  
 ७०३-६; ७०४-३; ७११-७; ७१२-४, ५; ७१३-१, १२;  
 ७१५-३, ५; ७१६-४, ७, ९; ७१७-१.  
 तत्त्वार्थभाष्य २६१-१; ४४२-२, ५, ५२-७; ६३१-४;  
 ७३९-२.  
 तत्त्वार्थटीका ३१७-११.  
 तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति } २६१-१; ५४०-३; ५४३-१३;  
 तत्त्वार्थभाष्यव्याख्या } ५९७-२; ६३१ थी ३३-४.  
 तत्त्वार्थराजवार्तिक ४४२-२; ४४३-६; ६३१-  
 ६३४-४.  
 तत्त्वार्थलोकवार्तिक १७१-१; २६१-१; ३०५-१; ३१८-१८;  
 ४४२-२; ४८३-११; ४९०-१०; ४९१-३, ५०३-  
 ८; ५०८-३; ५३३-१; ५३४-१; ५४०-३; ५५३-९;  
 ५६२-७; ६३१-४; ६३४-४; ७३५-२.  
 तत्त्वार्थलोकवार्तिकालङ्कार ४९१-३.  
 तत्त्वार्थसार ६३१-४.  
 तत्त्वार्थसूत्र ६४-५; २६१-१; ४५४-४, ५; ६३१-४; ६५४-  
 २, ३; ६५५-१, २, ३; ६७६-४; ७३४-४; ७३५-२;  
 ७३६-१.  
 तत्त्वोपसर्ग ( ति ) ३२६-८, ४६५-६; ५२५-१, २; ५३४-९;  
 ५४७-६; ५४८-३; ५४९-९; ५५०-१.

१२ - सन्मतिटिपणीनिर्दिष्टा ग्रन्थकृतो ग्रन्थाश्च ।

तन्त्रवार्तिक ३१५-१७.  
सायिन १७४-५.  
त्रिभिकाविरुद्धि ५९७-२.

द

दार्शनिकग्रंथ ४६९-६.  
दिमाग १७५-६, १९९-७, ५३१-९.  
दिवाकर ६५६-४.  
दृष्टिवादज्ञ २७१-५.  
देवनन्दिव ६५२-१.  
देशीनाममाला १७३-१; ३१७-३; ६२२-३; ६३६-२.  
द्रव्यगुणपर्यायरास ( लि ) ६३३-२.  
द्रादशारनयचक्र ( लि ) १९५-१३; ३७२-१२.

घ

धर्मकीर्ति ( जुओ कीर्ति ) १५-१२; २११-६, २४२-२१; ४६५-६; ४६७-११, ४८८-९, ५०६-२, ३, ५०८-१; ५५४-४.  
धर्मकीर्तिवृत्तन्यायबिन्दुटीकाटिपणी ४६९-६.  
धर्मकीर्तिवार्तिक ५०३-७.  
धर्मकीर्तिसूत्रि ३३३-११.  
धर्मसंग्रहणी ४९८-६, ५००-८; ५१०-१; ५९७ थी ६०३-३, ६२७-१, ७१२-२.  
धर्मसंग्रहणीवृत्ति २७२-८.  
धर्मोत्तरीया ४६७-११.  
ध्यानशतक ७३४-१.

च

चन्द्रिसूत्रचूर्णा ( लिखित ) ५९७ थी ६०४-२.  
चन्द्रिसूत्रटीका ४७८-२.  
चन्द्रिसूत्रलघुवृत्ति ( लिखित ) ५९७ थी ६०३-२.  
नयचक्र ( हस्त लिखित ) ६३-७, २७१-९; ४४१-१०;  
४४१-१०.  
नयनप्रसादिनी ५५८-१४.  
नयोपदेश २७३-१, ३१७-१२; ३१८-१५, ३१९-१३, १५;  
४४२-३; ६४५-४.  
नयोपदेशश्रुति ३७२-१२; ३८०-१, १३; ३८३-९, १०,  
११.

मागेश ६५२-१.  
निर्ग्रथ ६४४-२.  
निर्युक्तिकार ( भद्रबाहु ) ४२२-१.  
नैयायिक ९८-३; ५४०-३; ५४३-१३, ५७७-७; ५९७-२.  
नैषधीय महाकाव्य ६९७-१.  
न्याय १८३-२१.  
न्यायकथिका ३६६-२.  
न्यायकन्दली ७०६-५.  
न्यायसुमुद्बन्धोदय ( लिखित ) १७४-११; २६०-१, १०;  
४७१-७; ५३७-९; ५४०-३, ६५७-३, ५, ६६२-१, ३.

न्यायदर्शन ९९-५; ११५-६; १५०-४; १७८-७; ३४६-३०;  
४५२-१; ४८७-५, ५१८-१६; ५२७-५; ५३०-१;  
५४०-३; ५५१-६; ५९७-३; ६५९-८; ६७१-६;  
७३३-३.

न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्य ४२२-१.  
न्यायप्रवेश ३१८-४; ३५१-६; ४८८-९.  
न्यायप्रवेशकार ४८८-९.  
न्यायबिन्दुसूत्र ३२८-४, ६, १३, १४; ३५१-६, ३५२-१;  
४८८-९; ५०१-३; ५०६-२, ५७२-६; ५९२-१.  
न्यायबिन्दुटीका ४६५-६.  
न्यायबिन्दुवृत्ति ४६७-११.  
न्यायबिन्दुटीकाटिपणी ( लिखित ) ४६९-६; ४८९-३;  
४९८-६; ५०६-२.  
न्यायमकरन्द ३६६-२.

न्यायमज्जती ४६५-६; ४६६-५, ७, ४६९-६, ४७१-७,  
४८०-३, ४८३-९; ४८७-५; ४८९-३, ५०५-६, ५०७-६;  
५०८-१; ५१९-९, ५२०-६; ५२१-४, ५२२-८;  
५२३-११; ५२४-४, ५२५-१, २, ४, ५, ८, ५२९-११;  
५३०-१, २, ४, ६; ५३१-९; ५३३-१; ५३४-९; ५३५-१,  
४; ५३६-४, ९; ५३७-१, २, ४; ५३८-२, ८; ५३९-१;  
५४०-३, ५४४-३, ३, ५६०-१, ३, ५६१-१२, ५६२-३,  
५, ५६३-५, ९, ५६५-५; ५७४-१; ५७५-५, ५७७-७,  
८, ५७८-१४; ५७९-५; ५८७-५; ५९७-२; ६५९-८,  
६६८-३, ७०६-५.

न्यायवार्तिक १२७-१, १४३-२, १५३-४; १७५-६; १७८-२,  
५, २००-७, २०४-१, २; ३३२-२२, ३४६-३०;  
३७६-९, ४२२-१; ४७१-११, ५१९-४, ९; ५२०-६;  
५२१-१, ४, ५२२-३, ८, ५२४-४, ५२८-५; ५३०-६;  
५३१-७, ९; ५३३-१; ५३४-९, ५४०-३, ५५२-१०;  
५६०-३, ५; ५६१-९२, ५६२-२, ५, ५६३-६, ५६६-१०,  
५७७-७, ५९७-२, ६५९-८, ६६४-१, ६६६-३, ५,  
६६८-३; ६६९-६; ६७७-५; ६८९-६, ६९२-१;  
७१६-८; ७१७-२.

न्यायवार्तिक तार्थटीका ३४६-३०; ३६६-२; ३७६-९;  
४२२-१; ४६९-६; ४७१-११; ४९९-१; ५०३-७;  
५१९-२, ४, ५, ९, ५२०-३, ५२१-१, ४, ५२२-३, ५, ८;  
५२४-४, ५२५-१, २, ४, ५२८-५, ५३०-३; ५३१-७, ९;  
५३३-१, ५३४-९, ५४०-३, ५४३-१३, ५५५-८;  
५५८-१४, ५५९-५, १०, ५६०-५, ५६१-१२, ५६२-२,  
५, ५६६-३, ३०, ५७७-७, ५९७-२, ६५९-८, ६६९-६.

न्यायवादिन् २४३-२१, ५०३-७.  
न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ५०२-१२; ६७६-४.  
न्यायसूत्र १७८-७, ५६०-२.

## १२ - सन्मतिटिप्पणीनिर्विघ्नान्धकृतो ग्रन्थाश्च ।

न्यायसूत्रभाष्यकार ४६९-६.  
 न्यायगमानुसारिणीटीका ४५१-१०.  
 न्यायावतार ३५१-६; ४२२-१; ५२२-२, ५.  
 न्यायावतारटिप्पण २८१-८; ३०८-३; ३११-३, ४, ५, ७, ९;  
 ३१४-५  
 न्यायावतारीटीका ४६५-६.  
 न्यास ७५७-२.  
 प  
 पञ्चाध्यायी ६३१-४.  
 पद्यासक ७५६-५; ७५५-६.  
 पद्यासकटीका ७५५-५.  
 पद्मस्तिकाय ४४२-३; ६३१-४; ६३६-१.  
 पण्डितरत्नकीर्ति २६०-११.  
 पतञ्जलि ६५२-१.  
 पदार्थधर्मसंग्रह ६६१-२.  
 पदार्थप्रवेशक ६६१-२, ३.  
 पराशरभाष्य ६९७-१.  
 पल्लव ४७१-७.  
 पादालच्छीनाममाला १७३-१.  
 पाणिनि १७२-४; २२६-९; २७२-८; ५६६-४.  
 पाणिनिव्याकरण २७१-४, ११, ३१३-१, ४, ६.  
 पाणिनिसूत्र ६५२-१.  
 पातञ्जल ५९७-२.  
 पातञ्जलदर्शन  
 पातञ्जलयोगदर्शन } ३१६-३; ६५४-३.  
 पात्रकेशरिन् ५६९-७.  
 पात्रस्वामिन् ५६९-७.  
 पार्थसारथिमिश्र १५-१२; १७५-६; ४६५-६; ७४२-१.  
 पुष्परजटीका १८२-४, ६.  
 पूज्यपाद ६३१-४.  
 पूर्वमीमांसक ५७७-८.  
 प्रकरणपत्रिका ३६६-२.  
 प्रज्ञाकरगुप्त ४६५-६.  
 प्रज्ञापनाटीका  
 प्रज्ञापनावृत्ति } ५९७-२, ७५१-६.  
 प्रज्ञापनासूत्र ५४०-३; ६०५-१; ६०७-३; ६०८-५; ६५४-  
 १; ७३५-१.  
 प्रथीप ६५२-१.  
 प्रमाणनयतत्त्वबालोकालङ्कार ४४२-३; ४७८-५; ५५२-७.  
 प्रमाणपरीक्षा ३१८-१८; ५५२-४; ५५४-४; ५५५-९.  
 प्रमाणमीमांसक ४६५-१; ४६९-६; ४८०-३; ४८७-५;  
 ५१०-८; ५३३-१; ५३५-१, ९; ५५२-७; ५५४-४;  
 ५५५-३; ५६९-३; ५७०-४.  
 प्रमेयकमलमार्तण्ड २९-१; ३१-१०; ३२-८; ४४-१; ५२-  
 ३; ५६-६, ७; १०१-३; १०६-७; १२६-१; १४३-६; १४९-

४; १५४-१०, ११; १५२-७; १६०-१; १६२-३; १६४-  
 १; १६९-१०, ११; १७३-१०, ११; १७६-३; १७७-४,  
 ७; १८१-१०; १८५-१४, १६; १८९-४, ७; १९१-७, १२,  
 १४, १९; १९२-१३; १९३-८; १९४-३; १९५-६, १३;  
 १९६-२; १९९-२, ४; २०२-७; २३७-१९, २२, २३,  
 २६; २३८-४, ५, ६, १२; २३९-६, ७, १०, १४; २४०-३,  
 १०, १३; २४३-२०; २५१-१४; २५२-२४, २५; २५३-  
 १०; २६१-८, १३, १७, १९, २०, २२, २४, २७३-१३, १४;  
 २७४-१, १३, १५; २७६-११, १६, २७७-१; २८५-३;  
 ३१८-१८; ३१९-१; ३२१-२९; ३२२-१, २; ३२७-  
 १९, २६; ३२८-१, ३, ५, ६, ९, १०, १३, १७, १८; ३२९-  
 ३; ३३०-१०; ३३२-२२; ३४२-२३, २५, २७; ३५१-६,  
 ७; ३५२-१, ४, ८, ९, १५; ३५३-११; ३६९-४; ३७२-  
 १२; ३८०-१, ९; ३८१-११; ३८२-५, १४, १६, ३८३-३,  
 ८, ९, १०, १२; ३८६-७, १३, १४; ३८७-९, १३, १४, १५;  
 ३८८-९, ११, १४, १८, १९; ३८९-८, ९, १०, ११, १४;  
 ३९०-१, १०; ३९१-२०, २२, २९; ३९२-१०, ११, २९;  
 ३९३-१, ११; ३९५-६; ३९८-१, १२; ४०२-१४;  
 ४०३-३; ४३१-७, ८; ४३३-१; ४३५-३; ४५१-७;  
 ४५४-२; ४५८-९; ४५९-३; ४६०-५, ७; ४६५-११;  
 ४६६-५, ४६७-८; ४६९-१, ४७१-७; ४७३-३, ४,  
 ८; ४७६-१, ९; ४७७-६, ७; ४८०-२, ४; ४८३-६, ९, १०;  
 ४८४-१३; ४८५-४; ४८९-१; ४९१-३; ४९३-१;  
 ४९६-६; ४९९-१; ५००-३, ८, १४; ५०३-७, ८; ५१०-  
 २, ८; ५१२-७, ११; ५१३-७; ५३३-१; ५३४-३; ५३५-  
 ३; ५४०-१; ५४३-१३; ५४४-८; ५५४-१, ४, ५७०-३;  
 ५७४-४; ५७५-६; ५७७-४; ५७८-१८; ५७९-५;  
 ५८३-१२; ५८५-४, ५८७-४, ५९०-३; ५९४-४;  
 ६१२-१, ६१३-१; ६४१-४; ६४२-२, ४, ६४७-३;  
 ६५७-३, ७; ६६१-३; ६६९-१, ३; ६७६-२, ३; ६७७-  
 ५, ६९७-१; ७४६-३; ७५१-६.  
 प्रमेयकमलमार्तण्डटिप्पण ५६-७; २४०-१०, १३; २४३-  
 २३; २६१-२४; ३१८-१८; ३८६-७, १३, १४; ३८८-११;  
 ३९१-२२; ३९२-११, ४५९-३; ४७७-६, ४८३-९.  
 प्रमेयरत्नकोश ३०९-१; ४४२-२; ४४३-६.  
 प्रवचनसार ४४२-३; ६३१-४; ६४५-३.  
 प्रवचनसारटीका ४४२-३.  
 प्रवचनसारोद्धार ६३०-३.  
 प्रशस्तरतिप्रकरण ६४-५.  
 प्रशास्त्रदेव ६६१-२.  
 प्रशास्त्रपाद ६६१-२.  
 प्रशास्त्रपादभाष्य १४९-७; ५३८-१३; ५५९-१०;  
 ५९७-३; ६६१-२.  
 प्रशास्त्रपादभाष्यकन्दली ४३१-८; ४३३-१, ६; ४३५-४।

९६

१२ - सन्मतिदिप्यणीनिर्विज्ञा प्रन्थकृतो ग्रन्थाश्च ।

४६९-६; ५००-८; ५०७-६; ५०९-१२; ५१९-९;  
५३८-९; ५४०-३; ५४३-१३; ५४४-१४; ५५१-६;  
५५८-१४; ५७७-८; ५७८-१४; ५७९-५; ५९७-२;  
६३३-१; ६४६-४; ६४८-३; ६५९-८; ६६१-२, ८;  
६६६-५; ६६९-६; ६७२-२, ६; ६७५-२, ३; ६७६-४;  
६८३-३, ५; ६८४-१; ६८६-१; ६९८-१, २; ६९९-२;  
७००-२; ७०४-३, ४; ७०८-१; ७०९-१.

प्रभास्तमति ६९२-२; ७०१-६.

प्रश्नव्याकरणज्ञ २७१-५.

प्राकृतपिण्ड २७१-२३.

प्राकृतप्रकाश २७२-७, ८.

प्राकृतमञ्जरी २७२-८.

प्राकृतरूपान्तार २७२-८.

ब

बन्नीयविश्वकोश १७२-२; २२६-९.

बृहत्संहिता ६५३-१.

बृहदारण्यउपनिषद् २७९-३; २७३-५, ७; ३८३-९, १०,

१२; ७१५-३.

बृहद्ब्रह्मसंह ४५७-३; ४७८-२.

बृहस्पति ५०५-६; ६९७-१.

बोधिन्यर्थावतार ३६६-२; ३७६-१; ५१०-१.

बोधिन्यर्थावतारपत्रिका ३७७-८; ४५५-१; ७१२-२.

बौद्ध १९४-१६; ५४०-३; ५९७-२.

ब्रह्मसूत्र ४६१-२; ५९७-२.

ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य २७९-१४; २८०-१; ६४६-४.

ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यभामती २७८-६; ४५५-२.

ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यभानन्दगिरियटीका ४७२-५.

भ

भगवतीसूत्र ( जुओ व्याख्याप्रज्ञप्ति ) २७१-५; ४४१-१०;

४५५-२, ५५९-१०; ६१०-१ ६१३ १५, ६२५-१;

६३१-१, ४; ६३५-२, ४, ५; ६७१-७; ७१४-४;

७३४-१.

भगवतीसूत्रटीका ३१७-११.

भट्ट ( जुओ कुमारिल ) ६-५; ४६६-५; ५७०-३.

भट्टजयन्त ४७१-७.

भद्रबाहुस्वामिन् ४२२-१; ४७८-२.

भरद्वाज ६५२-१.

भर्तृहरि ४६१-२; ५४३-१३.

भामतीकृत ४६१-२.

भामह १८६-२; २०४-११.

भामहालङ्कार १८६-२, ४, ५, ६, ७; २०४-११.

भारतीयदर्शन ५९७-२.

भाष्यकार ५२२-५; ५३५-३.

भाष्यकृत ६५३-१.

भाष्यटीकाकृत ६५३-३.

भिक्षु १७५-६.

भृगु ६५२-१.

म

मज्झिमनिकाय ३५३-११.

मध्यमकवृत्ति ३०९-५; ३६६-२; ३७७-८; ४५५-१.

मनुस्मृति ६५२-१; ७३१-१.

मलधारिद्वैमचन्द्रसूत्रि ६२०-१.

मलयगिरियनन्दिसूत्रकृति ५९७ थी ६०४-२.

मलयगिरिया ६३५-२.

मल्लवादिन् ४४१-१०; ५९७ थी ६०४-२.

मल्लिषेण ३०८-२.

मत्स्यगीशालक ७१४-४.

महाभारत ४९१-३; ५३६-७; ६५२-१; ७११-२; ७३१-३.

महाभाष्य १७९-१, ३, ४; २२६-९; ३१६-३; ४३१-६;

४७५-४; ६५२-१, ६५३-२.

महायानसूत्रालंकार ३७१-८; ३७७-१.

माठर ७१०-५.

माठरकृति २८१-१, २, ४, ५, ८, ९, ११, १३, १४, १८, १९;

२८२-३, ११, १५; २८३-१; २८४-३, ४, ५, ७, ८, १०,

११, १२, १३; २९६-५; ३०५-८; ३०७-१, १४; ३०९-

४, ५, ३३-१; ७११-५; ७१२-१, ७३३-९.

माध्यमिक ४५८-६.

मीमांसक ५५३-१३; ५५९-१०; ६४४-३.

मीमांसादर्शन ४३१-७; ४६०-४, ४७९-४, ५५९-१०.

मीमांसाशास्त्रभाष्य ४३-४.

मीमांस'सूत्र ५९७-२.

मुक्तावली ५४०-३.

मूलकल्पसूत्र ६१४-२.

य

यशोविजय १८५-१४; २११-६; २६०-९, १०; २६१-१;

३०८-२; ४८०-३, ५०७-६; ६३१-४; ६३३-२;

७४९-२.

यशोविजयतत्त्वार्थभाष्यव्याख्या २६१-१.

यादवप्रकाश ५३३-२.

यापनीयसंघाप्रणामिन् ६१२-१.

यास्कनिष्क ६५३-२.

योगदर्शन ३०७-८; ५९७-२.

योगाचार ४५८-६.

र

रत्नप्रभासूत्रि ५७०-४.

रत्नाकरावतारिका १७०-४; ३२०-२६; ३७६-९; ४४२-२;

४५४-२; ४५५-१; ४७८-५; ४८३-११; ४८८-७;

५४०-३; ५४३-१३; ५७०-४.



## १२ - सन्मतिटिप्पणीनिर्दिष्टा ग्रन्थकृतो ग्रन्थाश्च ।

रविभद्र ५६९-७.  
राजमल ६३१-४.  
राजवार्तिक २६१-१; ५४०-१; ५४३-११; ५५२-७; ७३५-२.  
राजशेखर ३०८-२.  
रत्निक २९६-८.

ल

लङ्कापतासूत्र ३०३-१; ३७७-१.  
लघीयल्लय ५५२-४; ५५३-८, ९.  
लघीयल्लयवृहद्वृत्ति ५५२-७; ५५३-४, ५, ६.  
ललितमिस्तरावृत्ति २७२-८.  
लौकिकन्यायाजलि ३६६-१; ४७५-४; ४७९-४, ५; ५६८-१२; ५९२-९.

घ

बराहमिहिराचार्य ६५३-१.  
वाक्यपदीय १७९-१, ३, ८; १८०-१, २, ६, ८, ११, १८१-२; १८२-४, ६; २२२-६, ७, १५; २३६-११; ३१६-१, २; ४३५-१; ४६१-२; ४९१-३; ५३८-८; ५४३-११; ६५३-२.  
वाक्यपदीयटीका ३१६-२; ४९१-३.  
वाचकउमाखाति ७३४-४.  
वाचस्पतिमिश्र ४७१-११; ५०३-७; ५२२-५; ५५२-१०; ६५९-८.  
वाचस्पतिमिश्रटीका ३१६-२.  
वाचस्पत्यकोष ६३६-४.  
वाजप्यायन १७९-१, २.  
वार्तिक ६५२-१.  
वार्तिककार ४६९-६; ४९८-६.  
वात्स्यायन ६५९-८.  
वात्स्यायनन्यायभाष्य ९९-५; १५३-४; १५४-७; २२५-४; ४२२-१; ४६९-६; ५२१-४; ५२२-२, ८; ५२४-४; ५२८-५; ५३०-६; ५३१-९; ५५९-१०; ५६३-१, ५; ५६६-३, १०; ५७७-७; ५९७-२; ६५९-८; ६६९-६.  
वाद्महाणव ३०८-२.  
वादिदेवसूत्रि ५६९-७; ५७०-३.  
वायुपुराण ६५६-३.  
वार्धमण्य ५३३-१,  
विक्रमसाम्राज्यसिद्धिचिन्ति ५९७-२.  
विद्यानन्दिन् ६३१-३२-४; ६३४-४.  
विद्यानन्दिस्वामिन् ४९१-३; ५६९-७.  
विनिश्चय ३२२-३१.  
विन्ध्यवासिन् ५३३-३; ५३४-२.  
विप्र ६४४-३.  
विमलकृतान्त २७१-५.

११० सं० १०

विपाकसूत्र ९३-३.  
विशेषणवती ५९७-२.  
विशेषावयवकवृहद्वृत्ति ४०६-१.  
विशेषावयवकभाष्य ४४२-२; ४७८-२; ५४०-१; ५५३-९, १०, ११; ५९७ थी ६०४-२; ६१९-४; ६५३-१; ७४६-१; ७४७-१; ७५७-३.  
विशेषावयवकभाष्यटीका } ६०८-४; ६२०-१; ७५०-९, ४.  
विशेषावयवकभाष्यवृत्ति }  
वैद्यकसिन्धु ७१३-१०.  
वैभारिक ४५८-६.  
वैशेषिक ५४०-३; ५४३-१३; ५५९-१०; ५७४-२; ५९७-१; ६३१-४; ६३३-१; ६५७-३.  
वैशेषिकदर्शन ५५१-६; ६३३-२; ६५६-४; ६७६-४; ६८६-३; ७०४-४.  
वैशेषिकद्वान्त्रिषिका ६५६-४.  
व्याख्याप्रणसि भगवतीभाष्य ( जुओ भगवती ) २७१-५.  
व्याख्याप्रणसिसूत्र ६१४-१३.  
व्याधि १७९-३.  
वृद्धसांख्य ५३३-१.  
वृद्धाचार्य ५९७ थी ६०४-२.

श

शाङ्करस्वामिन् ६६७-१; ६९३-१.  
शाङ्कराचार्य ४६१-२.  
शाङ्करस्वामिन् ५७४-२; ५७७-८.  
शान्दानुशासन ४८-५.  
शाकटायन ६१२-१; ६३५-१.  
शाकटायनव्याकरण २७१-४.  
शाक्य ५७४-३.  
शाङ्करभाष्य ५९७-२.  
शान्तरक्षित ४८८-६; ५३३-२; ५७४-६; ५७६-१; ५७८-१४; ६४४-३.  
शान्तिपरिचय ६५२-१.  
शाबरभाष्य २०-५; ५४-१; ५४०-३; ५५२-१०; ५७२-४; ५७४-३; ५७६-१; ५९७-२; ७३०-३.  
शाबरनचन ७४२-१.  
शाश्वतकोश २२६-९.  
शास्त्रीपिका ५०५-९; ५३४-८; ५४०-३; ५५४-३.  
शास्त्रीपिकायुक्तिनेहप्रपूर्णा ५०५-९; ५३५-३; ७४२-१.  
शास्त्रीपिकायुक्तिनेहप्रपूर्णासिद्धान्तबन्धिकाव्याख्या ३६१-३१; ७४२-१.  
शास्त्रवार्तासमुच्चय १७७-४; २६०-२, १०; ३३१-११; ३७७-२; ३८३-९, १०, ११, १२; ४५६-१; ५३३-२; ६३१ थी ३३-४; ६४४-३; ७१०-५; ७११-५.  
शास्त्रवार्तासमुच्चयटीका ( लिखित ) ४४३-६; ५०७-६; ७४७-१; ७५१-६.

१२ - सन्मतिटिप्पणीनिर्दिष्टा ग्रन्थकृतो ग्रन्थाश्च ।

शास्त्रवार्तासमुच्चयस्याख्या २६१-१.

शास्त्रवार्तासमुच्चयस्याद्वादकल्पलता १७५-६; १७९-५,८;  
१८०-२,४,८,११; १८१-२,१९; १८२-४,६; १८४-  
११; १८५-१,२,१४; १९०-१२; १९१-१२,१४,१९;  
१९२-११; १९६-२१; १९८-१०,१२,१८,१९; १९९-  
२,४,५; २०२-२,७,१६; २०३-२६; २०७-१०; २०९-  
८,१७; २१०-४; २११-४; २१२-२०,२३; २१४-१८,  
२३; २१५-१,७,१५,१६,१८; २१६-१०,१५,२२;  
२१८-४,१०,१४; २२०-२,४,९,१८; २२१-११,१२,  
१६; २२२-३,८,२१; २२४-१५; २२५-२३; २२६-  
५,१३,१४; २२७-९,१०; २२८-५,९,१३; २६०-१५,  
१९; २८१-८; ३०८-३; ३३२-३१; ३३३-६,११;  
३७१-८; ३७६-१५; ३७७-३,४,६,८; ३७९-१,  
२,१३; ३८०-१,१०; ४०१-३; ४४३-१; ४४४-२,४,  
४४५-१,५,१०; ४४९-५; ४५०-१; ४७८-२;  
४८२-६; ४९१-३; ४९७-३; ४९९-१,२; ५०२-  
१४; ५०३-४,७,८; ५०४-३,५,६-३, ५०८-३,८;  
५१०-१,७; ५११-१; ५१२-७,११,१५; ५३३-२;  
६३१ शी ३३-४; ६३९-२; ७१२-१; ७१४-७,८.

शिक्षासमुच्चय ३६६-२.

शीलाङ्ग ६१३-१; ७१०-५.

शीलाङ्गानार्य ७५७-२.

श्रीधर ५७७-८; ५७८-१४; ६५९-८; ७०६-५.

श्रीधरीयकन्दली ४६९-६.

श्रीमान्य ३६६-२; ५९७-१.

श्रेताश्वतरोपनिषद् ७१०-५; ७१५-३.

श्लोकनार्तिक ६-५; ७-८; १०-३; ११-२; १८६-९,१०,१२;  
१८७-३,६,९,१३,१६,१७,२१,२३; १८८-४,७,९,१२;  
१५,१८; १८९-१,३,५,१२,१६,१८; १९०-२,३,१०,  
१३,१५,१८; १९१-१,३,४; १९२-१,३,५,७,१०,१२;  
१९३-१,४,७,१०; १९४-२,५,८; १९५-५,१०,१८,  
२३; १९६-१,१७; १९७-२,७,८,१४; १९८-२,४,५,  
७,८,१५; १९९-१,८,१३,१४,१६; २०४-१९; २११-  
१३; २२३-१; २४०-१७,१८; ३१९-३,६,८; ३५१-  
५; ३५८-२३; ४३३-७; ४२९-१; ५३३-३; ५६४-  
८; ५३५-१; ५३७-९,१०,११; ५४०-३; ५५९-  
१०; ५६४-१०; ५७०-३; ५७४-३; ५७५-३; ५७६-  
४; ५७७-४,५; ५७८-१३,१४, ५७९-२,३,५;  
५८०-३,४,७,८; ५८१-४,७,९; ५२७-२; ६४४-३;  
६८८-७; ६९५-३,४,५; ७४०-१.

श्लोकनार्तिकटीका ४-६; १५-१२; ४६५-६.

श्लोकनार्तिकपाथैतारयिमिप्रव्याख्या १९६-१६; १९७-१२;  
१९८-८; १९९-७,१७; २०१-८,९; २४३-२०,२३;

३१९-८; ३६६-२; ४०१-२; ४१४-६; ४३१-७;  
४३७-६,७; ४८३-९; ५०५-१; ५३५-३; ५७७-  
४,५; ७४२-१.

ष

षडभाषाचन्द्रिका २७२-८.

षडदर्शनसमुच्चयसूक्ष्मटीका ४५८-६; ४५९-३; ४६७-११;  
४७५-७; ४८१-५; ४८३-९; ५०५-६,८; ५१०-१;  
७१०-५; ७११-५; ७१२-१; ७३३-५.

स

संयुतनिकाय ३०९-५.

संक्षेपशास्त्रीय २७३-५.

सप्तमहीतराशिणी ४४२-२; ४५१-७.

समन्तभद्र ५१९-१०; ५२५-१; ६२०-१; ७५७-२.

समवायाङ्ग २७१-५.

सन्मति ३३२-२१.

सन्मतिटीकाकार १८५-१४; ४७८-२.

सर्वदर्शनसंग्रह १७९-१,३,४; ३७६-९; ४०१-२; ४१४-  
६; ४३५-२,४; ४५८-६; ४८३-९; ५०५-६.

सर्वार्थसिद्धि २६१-१; ३६६-२; ५५२-७; ६३१-४;  
७३५-२.

सांख्य ४-४; १८३-२०; ५४०-१; ५४३-१३; ५९७-१;  
६४४-३.

सांख्यकारिका २८१-३,५,६; ५३३-१; ५५९-१०; ७३३-  
४,९.

सांख्यकारिकावृत्ति ७११-५.

सांख्यकौमुदी २८४-२; ३०७-९,१६; ५३३-१.

सांख्यतत्त्वकौमुदी ५५२-१०; ५६६-१०.

सांख्यतत्त्वविवेचन ५३३-१.

सांख्यदर्शन ३०९-४; ५३३-१; ५४०-३.

सांख्यप्रश्नचनभाष्य २७७-१६; ५३३-१.

सांख्यवेदान्तप्रक्रिया ५४०-३.

सांख्यसंग्रह २८१-८.

सांख्यसमिति ४२३-१९.

सांख्यशास्त्र ५१९-१०.

मायणमाधव ५०५-६.

सारस्वतन्याकरण २७१-४.

सिद्धमेनसूत्रि २६१-१, ५५९-१०; ६२०-१; ६३१-४;  
७५७-२.

सिद्धमेनदिव्याकर ५९७ शी ६०४-२; ६३१-४.

सिद्धमेनदिव्याकराय ६३१ शी ३३-४.

सिद्धमेनीयद्वात्रिका ६२०-१.

सिद्धान्तकौमुदी १७९-२; ३१३-१,६; ३८१-१; ३८७-  
२; ४०६-३; ४४१-५; ६५२-१.

सिद्धान्तमुक्तावली ५४६-४.

सिद्धिमिलिशयटीका ( लिखित ) ३२६-८; ४६५-६; ४७८-

## १२ - सन्मतिटिप्पणीनिर्दिष्टा ग्रन्थकृतो ग्रन्थाश्च ।

- ५,६; ४७९-४; ४८०-२; ४८१-५; ४८२-६; ४८३-११; ४८८-९; ४९८-६; ५००-८; ५०३-७,८; ५०६-२; ५१०-८; ५१२-३,७; ५२५-१,२,४; ५३७-९; ५५३-८; ५६९-७; ७२८-२.
- सिंहसुरिवादिगणिसमाश्रमण ४४१-१०.
- सीमन्धर ५६९-७.
- सुतनिपात ३५३-११.
- सुमङ्गलविलासिनी ३६६-२.
- सूत्रकृताङ्ग २७१-५; ६१३-१५.
- सूत्रकृताङ्गटीका ३३२-२२; ७१०-५.
- सूत्रकृताङ्गटीकाकृत ६१३-१.
- सूर्यसिद्धान्त ७११-१.
- सोमत ५७४-१.
- सौत्रान्तिक ४५८-६.
- स्तुतिकार ६२०-१; ७५७-२.
- स्थानाङ्गसूत्र २७१-५; ४५३-१; ७३४-१.
- स्फुटार्थभिधानकोश ५४०-३.
- स्फोटसिद्धि ४३१-८,९,१०; ४३२-२; ४३५-३.
- स्याद्वादकारिका ( अन्ययोगव्यवच्छेदत्रिंशिका ) ४८३-११; ४८८-७; ५४३-१३.
- स्याद्वादमञ्जरी ३०८-२; ४४२-२; ४५१-७; ४५४-२; ४५५-१.
- स्याद्वादरत्नाकर ६-५; ७०-२; १६९-१०; १७०-४,७; १७१-१,३,३,१२; १७२-१; १७७-४,७; २०२-४, १०,१६; २०३-४,९; २४८-१९; ३२०-२६; ३७६-१५; ३७९-१२, ३८०-१,५,१०,११,१३; ३८१-११; ३८३-८,९,१०,१२; ४०१-२; ४१४-६; ४३१-७; ४३५-२,३; ४३७-७; ४६५-६; ४६६-५; ४६७-८; ४६९-६; ४७१-७; ४८३-९; ४८८-७; ४९१-३; ४९९-१; ५००-३,८,१४; ५०३-७,८; ५१०-१,८;
- ५१२-११; ५३३-१; ५३४-२; ५३५-१,१; ५४०-३; ५४५-१२; ५६२-२; ५६९-३,७; ५७०-३; ५८७-४,५; ५९४-४; ६१०-१३; ६११-१; ६१३-१; ६६१-३; ६९१-२; ६९७-१.
- ख्यंभूस्तोत्र ६३९-२; ७५७-२.
- हरिभद्र २६०-९; ५३३-१; ६२७-१; ६३१ शी ३३-४; ७१०-५; ७४९-२; ७५७-२.
- हरिभदीयनन्दिसूत्रवृत्ति ५९७ शी ६०४
- हरिभद्रियाबुयोगद्वावृत्ति ७५६-५.
- हर्ष ६९७-१.
- हेतुनिन्दु ६९१-१.
- हेतुनिन्दुतर्कटीका ( लिखित ) १६९-७; १७१-१; ३१८-१७; ३२०-२४,२६; ३२१-५,२१; ३२२-३१; ५६८-८; ५५६-३.
- हेतुसूत्र १९९-६.
- हेमचन्द्र ३१३-६; ४६१-२; ४८७-५; ५३३-२; ५७०-४; ६५२-१; ७५७-२.
- हेलाराजटीका ( नाक्यपदीय ) १७९-१,३.
- हेमचनेकार्यकोश २२६-९; ५२३-६; ६८८-८.
- हेमचन्द्रोपशासन २७१-१३.
- हेमतत्त्वप्रकाशिकावृहत्प्रयास २२६-९.
- हेमधातुपाठ ३१६-३.
- हेमधातुपारायण १७३-३.
- हेमप्राकृतव्याकरण २७२-७,८.
- हेमशन्दानुशासन ४८-५; १७३-२; १७९-२; १९०-९; २२५-२४; ३१३-१,४,६; ३१६-३; ३८१-२; ३८७-२; ४२१-५; ४४१-५; ५६६-४; ६०५-३; ६५२-१; ६५३-२.
- हेमशन्दानुशासनवृहत्प्रवृत्ति ४६१-२; ४७१-१०; ४७९-५.

## सन्मतिसम्पादने उपयुक्तानां ग्रन्थानां सूचिः ।

जनुयोगद्वारसूत्र ( सुरत-आगमोदय समिति )  
 जनुयोगद्वारवृत्ति हरिभद्रीय ( रतलाम आवृत्ति )  
 जनेकान्तजयपताका ( अमदावाद )  
 जनेकान्तजयपताकाटीका ( काशी यशोविजय ग्रंथमाला )  
 जनेकान्तजयपताकाटीका ( लिखिता )  
 अक्षंभटमिताक्षरा ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 अपोहसिद्धिप्रकरण ( सिक्स बुद्धिस्ट न्याय टेक्स्ट विहित-  
 ओथेका इंडिका नं. १२२६ सं. हरप्रसादशाली )  
 अभिधानचिन्तामणिकोश ( काशी-यशोविजय ग्रंथमाला )  
 अभिधानप्पदीपिका ( अमदावाद गूजरात पुरातत्त्व मंदिर )  
 अमरकोश ( मुंबई राजकीय ग्रंथमाला निर्णयसागर प्रेस )  
 अष्टशती ( मुंबई निर्णयसागर प्रेस )  
 अष्टसहस्री ( मुंबई निर्णयसागर प्रेस )  
 अष्टसहस्रीटीका ( लिखिता पूना भांडारकर प्राच्य विद्यासंशो-  
 धनमंदिर )  
 आचारासूत्र ( सुरत आगमोदय समिति )  
 आचारासूत्रटीका ( सुरत आगमोदयसमिति )  
 आत्मपरीक्षा ( काशी-सनातन जैनग्रंथमाला )  
 आत्ममीमांसा ( काशी-सनातन जैनग्रंथमाला )  
 आवश्यकरिच्युक्ति ( काशी-यशोविजय ग्रंथमाला अपूर्ण )  
 आवश्यक हरिभद्रीय ( सुरत आगमोदयसमिति )  
 उत्तराध्ययनसूत्र ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 ऋग्वेद  
 ऋक्संहिता  
 ओघनिर्युक्ति ( सुरत आगमोदयसमिति )  
 कठोपनिषद् ( ईशायाष्टोत्तरातोपनिषद् मुंबई निर्णयसागर प्रेस )  
 कहरसूत्र मूल ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 कातत्रव्याकरण ( विन्डिओथेका इंडिका नं. ८१ )  
 काशिकावृत्ति ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 कुमारसंभव ( मुंबई निर्णयसागर प्रेस )  
 केवलीभुक्तिप्रकरण ( अमदावाद जैन साहित्यसंशोधक )  
 गणरत्नमहोदधि ( प्रयाग सरस्वती प्रेस संपादक भीम-  
 नाथ शर्मा )  
 गोमटसार ( मुंबई निर्णयसागर प्रेस )  
 गौडपादकारिका ( पूना आनंदाश्रम ग्रंथमाला )  
 गहानाथ झा अनुवाचित } ( विन्डिओथेका इंडिका नं. ९८६ )  
 श्लोकवार्तिक  
 चरकसंहिता ( कलकत्ता सं० योगेंद्रनाथ सेन )  
 चान्द्रव्याकरण ( लिप्जीक १९०२ संपा० ई. विन्डीक )

जीवविचारप्रकरण ( मेसाणा )  
 जीवाजीबाभिमसूत्र ( सुरत आगमोदयसमिति )  
 जैनतर्कपरिभाषा ( भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा )  
 जैनेन्द्रव्याकरण ( काशी-सं. विन्धेश्वरीप्रसाद )  
 जैमिनिसूत्र ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ( सुरत आगमोदयसमिति )  
 ज्ञानचिन्दु ( भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा )  
 तत्त्वार्थव्याख्या ( अमदावाद पोथी आकार )  
 तत्त्वार्थटीका ( सुरत देवचंद लालभाई पुस्तकाकार )  
 तत्त्वार्थभाष्य ( पूना आर्हतमत प्रभाकर, कलकत्ता रॉयल एक्स्-  
 याटिक सोसायटी बंगाल )  
 तत्त्वार्थराजवार्तिक ( काशी-सनातनजैनग्रंथमाला )  
 तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक ( मुंबई निर्णयसागर आवृत्ति )  
 तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालङ्कार ( मुंबई निर्णयसागर आवृत्ति )  
 तत्त्वार्थसूत्र ( मेसाणा )  
 तत्त्वसंग्रहकारिका ( वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला )  
 तत्त्वसंग्रह पत्रिका ( वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला )  
 तत्त्वोपप्लव ( लिखित गूजरात पुरातत्त्व मंदिर )  
 तत्त्ववार्तिक ( काशी )  
 त्रिशिकावित्ति ( सं. प्रॉ० सिस्टर लेवी पेरिस )  
 त्रिशिकावित्तिभाष्य ( सं. प्रॉ० सिस्टर लेवी पेरिस )  
 दशवैकालिकसूत्र ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 दशवैकालिकसूत्रनिर्युक्ति ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 देशीनाममाला ( मुंबई राजकीय ग्रंथमाला )  
 द्रव्यगुणपर्यायरास ( लिखित )  
 द्वादशारनयचक्र ( लिखित )  
 धर्मसंग्रह ( नौद ) ( ऑक्स्फर्ड युनिवर्सिटी प्रेस १८८५ )  
 धर्मसंग्रहणी ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 धर्मसंग्रहणीवृत्ति ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 नयनप्रसादिनी चित्तुखी ( मुंबई निर्णयसागर प्रेस )  
 नयोपदेशवृत्ति ( भावनगर आत्मानंदसभा )  
 नवतत्त्व  
 नियमसार ( मुंबई जैन ग्रंथरत्नाकर कार्यालय )  
 नैषधकाव्य ( मुंबई निर्णयसागर प्रेस )  
 नन्दिसूत्रचूर्णः ( रतलामनी आवृत्ति )  
 नन्दिसूत्र मलयगिरिटीका ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 नन्दिसूत्रलघुटीका ( लिखित )  
 न्यायकुमुदचन्द्रोदय ( लिखित )  
 न्यायदर्शन ( काशी-विद्याविलास प्रेस )

## १३ - सन्मतिसम्पादने उपयुक्तानां ग्रन्थानां सूचिः ।

न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्य ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 न्यायप्रवेशसूत्र ( वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला )  
 न्यायप्रवेशसूत्रवृत्ति ( वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला )  
 न्यायविन्दुप्रकरण ( विन्डिलओथेका बुद्धिका नं. ७, १९१८ )  
 न्यायविन्दुप्रकरणटीका ( विन्डिलओथेका बुद्धिका नं. ७, १९१८ )  
 न्यायमञ्जरी ( सं० गंगाधरशास्त्री विजयनगर ग्रंथमाला )  
 न्यायवार्तिक ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका ( काशी-विद्याविलासप्रेस )  
 न्यायसिद्धान्तमुक्तावली ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 न्यायावतार ( पाटण हेमचंद्राचार्य ग्रंथमाला )  
 न्यायावतारटिप्पण ( पाटण हेमचंद्राचार्य ग्रंथमाला )  
 पक्षाध्यायी ( सुरत जैनविजयप्रेस )  
 पञ्चाशकटीका ( भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा )  
 पञ्चास्तिकाय ( मुंबई रायचंद जैन ग्रंथमाला )  
 पराशरमाधव ( विन्डिलओथेका इन्डिका प्रथमभाग )  
 परीक्षामुख ( सं० धनदयामदास जैन )  
 पाह्यलच्छीनाममाला ( भावनगर सं० बेचरदास जीवराज दोसी )  
 पाणिनीयव्याकरण ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 पाणिनीयमहाभाष्य ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 पाणिनीयव्याकरणवार्तिक ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 पातञ्जलयोगदर्शनवाचस्पतिमिश्रटीका ( काशी-विद्याविलासप्रेस )  
 प्रमाणनयतरबालोकालङ्कारसूत्र ( काशी-यशोविजय ग्रंथमाला )  
 प्रमाणपरीक्षा ( काशी-सनातन जैनग्रंथमाला )  
 प्रमाणमीमांसा ( पूना आर्हतमत प्रभाकर पुस्तककार, अमदा-  
 वाद पोथीआकार )  
 प्रमेयकमलमार्तण्ड ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 प्रमेयकमलमार्तण्डटिप्पण ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 प्रमेयरत्नकोश ( भावनगर जैन धर्मप्रसारक सभा )  
 प्रवचनसार ( मुंबई रायचंद जैन शास्त्रमाला )  
 प्रवचनसारोद्धार ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 प्रशमरतिप्रकरण ( कलकत्ता रॉयल एशियाटिक सोसायटी  
 बेंगल तत्त्वार्थभाष्यपुस्तकान्तः )  
 प्रशस्तकन्दली ( विजयनगर ग्रंथमाला सं० विधेश्वरीप्रसाद  
 द्विवेदी )  
 प्रज्ञापनासूत्र ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 प्राकृतपिङ्गल ( कलकत्ता सं० चंद्रमोहन घोष )  
 प्राकृतप्रकाश ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 प्राकृतमञ्जरी ( मुंबई निर्णयसागर प्रेस )  
 प्राकृतरूपावतार ( सं. ई. हुल्श-रॉयल एशियाटिक सोसायटी )  
 बृहदारण्यकोपनिषत् ( पूना आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथमाला )  
 बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य ( पूना आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथमाला )  
 बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक ( पूना आनंदाश्रम संस्कृत  
 ग्रंथमाला )  
 बृहद्व्यसंप्रह ( मुंबई रायचंद जैन शास्त्रमाला )

बृहत्संहिता ( काशी-पं. सुधाकर द्विवेदी संपादित )  
 बोधिचर्यावतार प्रज्ञापारमितापञ्जिका ( विन्डिलओथेका इन्डिका  
 १५० )  
 ब्रह्मीयविश्वकोश ( कलकत्ता आवृत्ति )  
 ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यभामतीटीका ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 भगवद्गीता ( मुंबई निर्णयसागर प्रेस )  
 भगवतीसूत्र ( रायचंद जिनागमसंप्रह )  
 भगवतीसूत्रटीका ( सुरत आगमोदयसमिति )  
 भामहालङ्कार ( मुंबई राजकीय ग्रंथमाला )  
 मज्झिमनिकाय ( सी. वि. राजवाडे संपादित )  
 मध्यमकवृत्ति ( विन्डिलओथेका बुद्धिका नं. ४ )  
 मनुस्मृति ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 महाभारत आदिपर्व ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 महाभारत वनपर्व ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 महाभारत शान्तिपर्व ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 महायानसूत्रालङ्कार ( पेरिस १९०७ सं० सिल्वनू लेवी )  
 महाव्युत्पत्ति ( विन्डिलओथेका बुद्धिका नं. १३ )  
 माठरवृत्ति ( साङ्ख्यकारिका ) ( काशी-चोखंबा ग्रंथमाला )  
 मीमांसादर्शन ( काशी-विद्याविलासप्रेस )  
 यास्कनिष्कृत ( मुंबई राजकीय ग्रंथमाला )  
 योगदर्शन ( काशी-विद्याविलासप्रेस )  
 पातञ्जलदर्शन ( काशी-विद्याविलासप्रेस )  
 रत्नाकरावतारिका ( काशी-यशोविजय ग्रंथमाला )  
 रामायणअरण्यकाण्ड ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 लघीयस्त्रय ( मुंबई माणिकचंद दिगंबर जैनग्रंथमाला )  
 लघीयस्त्रय स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति ( लिखित )  
 ललितविस्तार ( सुरत देवचंद लालभाई )  
 लौकिकन्यायाज्ञलि ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 लङ्कावतारसूत्र ( कलकत्ता सं. शरचंद्रदास अने विद्याभूषण )  
 वाक्यपदीयमूल ( काशी-चोखंबा ग्रंथमाला )  
 वाक्यपदीयटीका हेलाराजकृता ( काशी-चोखंबा ग्रंथमाला )  
 वाक्यपदीयटीका पुण्यराजकृता ( काशी-चोखंबा ग्रंथमाला )  
 वाचस्पत्यकोश ( कलकत्ता )  
 वात्स्यायनभाष्य ( काशी विद्याविलासप्रेस )  
 व्यासभाष्य ( पूना आनंदाश्रमग्रंथमाला )  
 वायुपुराण ( विन्डिलओथेका इन्डिका नं. ८५ )  
 विशोपवन्ती ( लिखित )  
 विशेषपादयकबृहद्वृत्ति ( काशी-यशोविजय ग्रंथमाला )  
 विशेषपादयकभाष्य ( काशी-यशोविजय ग्रंथमाला )  
 विश्वसिमात्रतासिद्धि ( सं. प्रॉ. सिल्वनू लेवी पेरिस )  
 वैजयन्तीकोश ( मद्रास सहकारीप्रेस )  
 वैद्यकसिन्धु ( कविरत्न उमेशचंद्र गुप्त कलकत्ता )  
 वैशेषिकदर्शन ( मुंबई गुजरातीप्रेस, काशी-विद्याविलासप्रेस )

१३ - सन्मतिसम्पादने उपयुक्तानां ग्रन्थानां सूचिः ।

वैशेषिकद्वित्रिंशिका ( भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा )  
 शाकटायनव्याकरण ( मद्रास १८९३ नी आवृत्ति )  
 शाबरभाष्य ( काशी-विद्याविलासप्रेस )  
 शाश्वतकोश ( पूना सं. कृष्णाजी गोविंद ओक )  
 शास्त्रदीपिका युक्तिज्ञेहप्रपूर्णीसिद्धान्तचन्द्रिकाव्याख्यायुता  
 ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 शास्त्रवार्तासमुच्चय ( सुरत देवचंदलालभाई )  
 शास्त्रवार्तासमुच्चयस्याद्वादकल्पलताटीका ( सुरत देवचंदलालभाई )  
 शिक्षासमुच्चय ( विन्डिलओथेका बुद्धिका नं. १. १९०२ नी  
 आवृत्ति )  
 श्रीभाष्य ( मुंबई राजकीय ग्रंथमाला )  
 श्वेताश्वतरोपनिषत् ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 श्लोकवार्तिक ( काशी-चोखंबा ग्रंथमाला )  
 श्लोकवार्तिकपर्यायसाराधिसिद्ध्याख्या ( काशी-चोखंबा ग्रंथमाला )  
 षड्दर्शनसमुच्चय ( भावनगर आत्मानंद सभा )  
 षड्दर्शनसमुच्चयवृहद्भूति ( विन्डिलओथेका इंडिका नं. १६७ )  
 षड्भाषाचन्द्रिका ( सं. कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी )  
 ( मुंबई राजकीय ग्रंथमाला )  
 सनातन जैनग्रन्थमाला प्रथमगुच्छक  
 सन्मतितर्कप्रकरण ( अमदावाद गुजरातपुरातत्त्वमंदिर )  
 सप्तमञ्जीतरङ्गिणी ( मुंबई रायचंद जैनग्रंथमाला )  
 सर्वदर्शनसंग्रह ( पूना भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधनमंदिर )  
 सर्वार्थसिद्धि ( कोल्हापुर जैनंद सुद्रणालय )  
 सारस्वतव्याकरण ( मुंबई निर्णयसागरप्रेस )  
 सिद्धिविनिश्चय ( लिखित )  
 छुतनिपात ( पूना-पि. वि. बापट )  
 सूत्रकृताङ्गसूत्र ( सुरत आगमोदयसमिति )  
 सूत्रकृताङ्गटीका ( " )

सुमङ्गलविलासिनी ( पालिटेक्स्ट सोसायटी १८८६ )  
 सूर्यसिद्धान्त ( उदयनारायणसिंह आर्यनो हिंदी अनुवाद )  
 संक्षेपशारीरक ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 संयुक्तनिकाय ( पालिटेक्स्ट सोसायटी १८९८ )  
 साङ्ख्यकारिका ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 साङ्ख्यदर्शन ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 साङ्ख्यप्रवचनभाष्य ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 साङ्ख्यसंग्रह ( काशी-विद्याविलास प्रेस )  
 स्थानाङ्गसूत्र ( सुरत आगमोदयसमिति )  
 स्थानाङ्गटीका ( सुरत आगमोदयसमिति )  
 स्फुटार्थअभिधर्मकोशव्याख्या ( विन्डिलओथेका बुद्धिका नं २१ )  
 स्फोटसिद्धिन्यायविचार ( त्रिवेन्द्र-संस्कृतग्रंथमाला )  
 स्याद्वादमञ्जरी ( पूना-आर्हतमतप्रभाकर )  
 स्याद्वादरत्नाकर ( पूना-आर्हतमतप्रभाकर पुस्तकाकार, अमदा-  
 वाद पोथी आकार )  
 स्वयंभूस्तोत्र ( श्रीवर प्रेस सोलापुर )  
 हेतुमुख  
 हेतुबिन्दुतर्कटीका ( अमदावाद गुजरातपुरातत्त्वमंदिर लिखित )  
 हैमअनेकार्थकोश ( सं. धीयोडोर जचेरी एज्युकेशन सोसा-  
 यटी प्रेस )  
 हैमच्छन्दोऽनुशासन ( मुंबई निर्णयसागर आवृत्ति )  
 हैमतत्त्वप्रकाशिका बृहद्भयास ( हैमचंद्राचार्य ग्रंथमाला पाठण )  
 हैमश्रानुपारायण ( मुंबई सं. जोह० किस्ट एज्युकेशन सोसा-  
 यटी प्रेस )  
 हैमप्राकृतव्याकरण ( मुंबई राजकीय आवृत्ति )  
 हैमव्याकरणवृहद्भूति ( अमदावाद आवृत्ति )  
 हैमव्याकरण ( अमदावाद आवृत्ति )



“ગૌતમ-વીરની યાદ અપાવે

ગુરુ-શિષ્યની જોડી”



પૂ. આ. શ્રી ભુવનભાનુસૂરીશ્વરજી મ. સા.

પ. પૂ. આ. શ્રી પ્રેમસૂરીશ્વરજી મ. સા.





પ. પૂ. આ. શ્રી જયઘોષસૂરીશ્વરજી મ. સા.

વિરાટ વાદળ ભણી  
પોતાના સમગ્ર અસ્તિત્વને ઓગાળવા  
દોટ મૂકતાં નાનલડાં સૂર્યકિરણના  
આ અપ્રતિમ શૌર્યને  
વાદલડી સાત રંગોના  
નવલાં નજરાણાથી  
નવાજે છે.

અખિલ બ્રહ્માંડમાં  
ઘટતી પ્રત્યેક ઘટના, પ્રત્યેક પદાર્થ  
જિનશાસનના જલધરમાં  
જ્યારે વિલીન બને છે  
ત્યારે સાત નયના  
સમન્વયની ઘટના  
સાકાર થાય છે.  
જિનશાસનની  
આ ઉજ્જવળ યશોગાથાને  
વાર્ણવતું મેઘધનુષ  
એટલે  
સન્મતિ - તર્કપ્રકરણ



પ્રત્યેક ક્ષંડ કા મૂલ્ય - ૬૦૦/- રૂપયે  
સમ્પૂર્ણ સેટ મૂલ્ય ૩૦૦૦/- રૂપયે